| पुस्तकोंका नाम. | कीमत |
|---|---|
| **धर्मशास्त्र ग्रंथाः ।** | |
| मनुस्मृति सान्वय भाषाटीका कुल्लूक-भट्टके अनुकूल ग्लेज .... .... | २॥) |
| तथा रफ.... .... .... .... | २) |
| व्रतराज अतिउत्तम टिप्पणी सहित जिस्मेंवर्षभरकी सबतिथियोंके व्रतउद्यापननिर्णय कथाहै .... .... .... | ४) |
| व्रतराजटिप्पणीसहित रफ .... .... | ३॥) |
| निर्णयामृत छपताहै.... .... .... | |
| याज्ञवल्क्यस्मृति मिताक्षरा प०मिहिरचदकृत पद, योजना, भावार्थ और तात्पर्यार्थ और टिप्पणी तथा भाषाटीकासहित अत्युत्तम .... .... | ५) |
| निर्णयसिंधु टिप्पणीसहित अत्युत्तम.... | ३) |
| तथा रफकागज .... .... .... | २॥) |
| अष्टादशस्मृति उत्तम शुद्ध मोटा टैप | २॥) |
| मनुस्मृति सटीक कुल्लूकभट्टकृतटीकासहित जिल्दबंधी. .... .... | २) |
| विवादार्णवसेतु ( धर्मशास्त्र व न्याय-राजनीति ) .... .... .... | २) |
| बृहत्पाराशरीस्मृति ( धर्मशास्त्र ) .... | १॥) |
| पाराशरीस्मृतिका उत्तरखंड .... | १) |
| शुक्रनीति भाषाटीकासहित ( अत्युत्तम-राजनीति ) .... .... | १॥) |
| [illegible]पद्धति .... .... | [illegible] |
| [illegible] .... .... .... | [illegible] |

| पुस्तकोंका नाम | कीमत |
|---|---|
| प्रपचसारविवेक ( इस जन्ममें मनुष्यका अवश्य कर्त्तव्य कर्म ) ... .... | १) |
| क्षौरनिर्णय मूल . .. .... .... | -) |
| तिथिनिर्णय .. .... .... .... | =) |
| धर्मराजका लेखा . .. ... .... | ॥) |
| आशौचनिर्णय .... .... .... | =) |
| भवाब्धिसेतु भाषाटीकासहित .... | ॥।) |
| वर्णविवेकचंद्रिका, ... .... .... | =) |
| स्मृत्यर्थसागर माध्वसप्रदायी धर्मशास्त्र वैष्णवोंको परमोपयोगी ... .. | १॥) |
| **कर्मकांडग्रंथाः ।** | |
| सस्कारभास्कर यजुर्वेदी सब सस्कारोंकी विधि प्रयोग और मत्रसहित .... | २॥।) |
| जन्मदिन पूजा पद्धति . .. .... | =) |
| गोदान पद्धति .... ... .... | -॥) |
| पूजापकजभास्कर ... .. .... | २) |
| सकाम शिवपूजन विधान भा टीका | १) |
| स्वस्तिवाचन ( पुण्याहवाचन ) .... | -॥) |
| आचारार्क.... .... .... ... | ॥।) |
| आचारादर्श ... .... .... | ॥।) |
| दशकर्मपद्धति .... .. .... | ।=) |
| वासिष्ठीहवनपद्धति ... .... .... | १) |
| लबोदरीहवनपद्धति .... .... | १) |
| श्राद्धविवेक ( सब श्राद्धोंकी विधिहै ) | ॥।) |
| शुद्धिविवेक .... .... .... | ॥) |
| एकोद्दिष्ट .... .. | =) |
| पार्वणश्राद्ध ... | =) |

| पुस्तकोंका नाम | कीमत |
|---|---|
| उपाकर्मपद्धति ( श्रावणीयजुर्वेदकी ) | ॥।) |
| कर्मविपाकचरणगत रफ१०आना ग्लेज | ॥।) |
| कर्मविपाक भाषाटीका रफ .... | १।) |
| वेदोक्तवास्तुपद्धति ... .... .... | ।=) |
| व्रतोद्यापनकौमुदी ( सब व्रतोद्यापन ) | ॥।) |
| दानचद्रिका .... ... .... | ॥=) |
| सर्वदेवप्रतिष्ठासग्रह ( प्रतिष्ठा करानेका ऐसा ग्रथ आजतक अन्यत्र नही छपा) | ३) |
| नवरत्नविवाहपद्धति भाषाटीकासह ... | १।) |
| वैवाहपद्यावली ( नोतनी अर्थात् बिनतीमें कहने योग्य दोनो पक्षके श्लोक भाषाटीका .. . ... .... | ॥।) |
| ज्येष्ठाशाति. .. .... .... .... | =) |
| पचकशाति.... .... .... .... | =) |
| नवग्रहविधानपद्धति.... .... .... | १) |
| जलोत्सर्गप्रकाश वापी, कूप, तडागादिका उत्सर्ग .... .... .... | १॥।) |
| संध्या यजुर्वेदी मूल .... .... | -॥) |
| तथा भाषाटीका .... .... .... | -)॥ |
| सध्यावैष्णवी. . .. .... .... | -) |
| क्षत्रियसध्या . . .. .... | -) |
| वैश्यसध्या .. .... .... .... | -) |
| कात्यायनी तर्पण . . .... .... | =) |
| नित्यकर्मपद्धति ... .... ... | ≡) |
| नारायणबलि .... .... .... | ।=) |
| कुशकडिकाभाष्य . . .... .. . | १) |
| रार्वपूजा .... .... .... .... | =) |
| शिवार्चन ... | |

| पुस्तकोंका नाम | कीमत |
|---|---|
| रुद्रविधानपद्धति .... .... .... | ।=) |
| कात्यायनीशांति .... .... .... | =) |
| यजु० आह्निक ( प्रातःकालसेशयनपर्यन्तके कर्म ) .... .... .... | १) |
| पचयज्ञ सस्कृतटीका सहित .... | ।=) |
| पचयज्ञ भाषा टीका.... .... ... | १) |
| प्रतिष्ठामयूख .... .... ... | ।=) |
| विवाहपद्धति मूल बडे अक्षरोंकी ... | ।=) |
| यज्ञोपवीत मूल .... .... .... | =) |
| तथा भाषाटीका .... .... .... | ॥) |
| देवऋषितर्पण .... .... .... | -) |
| प्रेतमजरी भाषाटीका .... .... | ।=) |
| **व्याकरणग्रथाः ।** | |
| सिद्धांतकौमुदी अष्टाध्यायी, गणपा०, धातुपा० लिगानुशासनपा० और सत्रसूचीस० अक्षर मोटा .... .... | ४) |
| सिद्धांतकौमुदी अतिउत्तम और बारीक टैपमे छप रहीहै .... .... .... | २) |
| अष्टाध्यायी, गणपाठ, धातुपाठ, लिगानुशा० .... .... .... .... | १) |
| लघुसिद्धांतकौमुदीटिप्पणसहितजिल्द मोटा अक्षर .... .... .... | ॥।) |

**पुस्तक मिलनेका ठिकाना—**

तथ[illegible] श्रीकृ[illegible] ... ८८



शे७... ... ५४ | ५६ पितृवर्णनम् ... ... ... ... ८८

कलिदोषेण मन्दमतय उत्सत्स्यन्त इति विनिश्चित्य भगवता व्यासावतारं धृत्वा ब्राह्मादिमहापुराणानि गणेशाद्युपपुराणानि च विनाभतानि संति। एतानि च क्वचित्कतिचिदुपलभ्यन्ते क्वचिदपूर्णानि चेत्यनुपपत्तिः सर्वेषां लाभाय। तान्यस्माभिर्महता परिश्रमेण भूयसा द्रव्यव्ययेन च संगृह्य बहूनां पुस्तकानां साहाय्येन शास्त्रिजनद्वारा संशोध्य प्रकाशयितुमुपक्रांतानि संति। तत्र श्रीमद्भागवत-ब्रह्मवैवर्त-मार्कण्डेय-कालिकापुराण-पद्मपुराण-मत्स्यपुराणप्रभृतीन्यनेकानि पुराणपुस्तकानि मुद्रयित्वा प्रकाशितानि संति। संप्रति चैतच्छ्रीमद्वायुपुराणं भूयसा वित्तव्ययेन मुद्रयित्वा प्रकाशितमस्ति। एतच्च श्रीमद्वायुपुराणं भगवता वायुदेवेन शांशपायनमहर्षये प्रोक्तम्। अस्मिंश्च सर्गप्रतिसर्गवंशमन्वंतरवंशानुचरितानीति पञ्च विषया यथावदुपवर्णिताः संति। तथा चात्र प्रक्रियापादः, उपोद्घातपादः, अनुषंगपादः, उपसंहारपादश्चेति चत्वारः पादाः सन्ति। तैश्चैतत्पुराणं कामधुगिवेष्टार्थप्रतिपादकं जरीजागर्ति। तत्र प्रथमे प्रक्रियापादे प्रबोधप्रलयस्थित्युत्पत्तयो भूयसा विस्तरेण वर्णिताः सन्ति। अथ चानेकविधाः श्रौताचाराः स्मार्ताचारा नानाविधतीर्थक्षेत्रमाहात्म्यानि गयाश्राद्धादिविधानानि भुवनाण्डकोशपरिमाणानि सरित्समुद्रशैलविभागाश्चेत्यनेकविधविषयैः परिपूर्णावयवमिदं श्रीमद्वायुपुराणं सर्वलोकोपकारकमिति मत्वा चिरादस्य प्रकाशने रुचिरासीत्। अथ च भूयसा भागधेयेन वाचकानां श्रोतॄणां चोपलब्धमिदं वायुपुराणपुस्तकम्। तदेतदस्माभिरुपलभ्य शास्त्रिणां साहाय्येन सुपरिष्करणेन संशोध्य च स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम्। विज्ञापयामः सर्वान्भूतलनिवासिनो विद्वज्जनान् एतत्पुराणमवश्यं संगृह्य तद्द्वारा धर्मार्थकाममोक्षाभिधेयांश्चतुःपुरुषार्थान्समासादयन्त्विति। सर्वग्राहकजनजिघृक्षापरिपूर्तये मूल्यमप्यत्यल्पमेवास्य स्थापितमस्ति। अपरं च विज्ञापयामः। यदि केषांचिद्विदुषां निकटे कानिचिद्धस्तलिखितानि पुराणपुस्तकानि भवेयुस्तानि तैः संप्रेषणीयानि संशोधनहेतवे तदर्थं च तेभ्यो मुद्रितपुस्तकं तेषां स्वकीयं पुस्तकं सहैव दास्यते इति सूचनोररीकर्तव्या तत्रभवद्भिर्विद्वज्जनैः। शम्॥

समस्तविद्वज्जनकृपाभिलाषी-खेमराज श्रीकृष्णदास "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना-मुम्बई.

# अथ श्रीमद्वायुपुराण—प्रथमखण्डानुक्रमणिका ।

इति श्रीमद्वायुपुराणद्वितीयखण्डानुक्रमणिका.

श्रीगणेशाय नमः ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ॥ देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ जयति पराशरसूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो
व्यासः ॥ यस्यास्यकमलगलितं वाङ्मयममृतं जगत् पिबति॥ प्रपद्ये देवमीशानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ॥ महादेवं महात्मानं सर्व्वस्य जगतः पतिम् ॥१॥
ब्रह्माणं लोककर्त्तारं सर्व्वज्ञमपराजितम् ॥ प्रभुं भूतभविष्यस्य साम्प्रतस्य च सत्पतिम् ॥ २ ॥ ज्ञानमप्रतिमं यस्य वैराग्यं च जगत्पतेः ॥ ऐश्वर्य्यञ्चै
व धर्म्मश्च सहसिद्धिचतुष्टयः ॥ ३ ॥ य इमान् पश्यते भावान्नित्यं सदसदात्मकान् ॥ आविशन्ति पुनस्तं वै क्रियाभावार्थमीश्वरम् ॥ ४ ॥ लोककृ
ल्लोकतत्त्वज्ञो योगमास्थाय तत्त्ववित् ॥ असृजत् सर्व्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ५ ॥ तमजं विश्वकर्म्माणं चित्पतिं लोकसाक्षिणम् ॥ पुराणा
ख्यानजिज्ञासुर्व्रजामि शरणं प्रभुम् ॥ ६ ॥ ब्रह्मवायुमहेन्द्रेभ्यो नमस्कृत्य समाहितः ॥ ऋषीणाञ्च वरिष्ठाय वसिष्ठाय महात्मने॥७॥ तन्नप्त्रे चातियशसे जातू
कर्णाय चर्षये ॥ वसिष्ठाय च शुचये कृष्णद्वैपायनाय च ॥ ८ ॥ पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्मोक्तं वेदसम्मितम् ॥ धर्म्मार्थन्यायसंयुक्तैरागमैः सुविभूषि
तम् ॥ ९ ॥ असीमकृष्णे विक्रान्ते राजन्येऽनुपमत्विषि ॥ प्रशासतीमां धर्मेण भूमिं भूमिपसत्तमे ॥ १० ॥ ऋषयः संशितात्मानः सत्यव्रतपरायणाः ॥
ऋजवो नष्टरजसः शान्ता दान्ता जितेन्द्रियाः ॥ ११ ॥ धर्म्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे दीर्घसत्रन्तु ईजिरे ॥ नद्यास्तीरे दृषद्वत्याः पुण्यायाः शुचिरोधसः ॥ दी
क्षितास्ते यथाशास्त्रं नैमिषारण्यगोचराः ॥ १२ ॥ द्रष्टुं तान् स महाबुद्धिः सूतः पौराणिकोत्तमः ॥ लोमानि हर्षयाञ्चक्रे श्रोतॄणां यत् सुभाषितैः ॥ क
र्म्मणा प्रथितस्तेन लोकेऽस्मिँल्लोमहर्षणः ॥ १३ ॥ तपःश्रुताचारनिधेर्व्वेदव्यासस्य धीमतः ॥ शिष्यो बभूव मेधावी त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ १४ ॥
पुराणवेदो ह्यखिलोयस्मिन् सम्यक् प्रतिष्ठितः ॥ भारती चैव विपुला महाभारतवर्द्धिनी ॥ १५ ॥ धर्मार्थकाममोक्षार्थाः कथा यस्मिन् प्रतिष्ठिताः ॥
सूक्ताः सुपरिभाषाश्च भूमावोषधयो यथा ॥१६॥ स तान्नयायेन सुधियो न्यायविन्मुनिपुङ्गवान् ॥ अभिगम्योपसंसृत्य नमस्कृत्य कृताञ्जलिः ॥ तोषयामास
मेधावी प्रणिपातेन तानृषीन् ॥ १७॥ ते चापि सत्रिणः प्रीताः ससदस्या महौजसः ॥ तस्मै साम च पूजाञ्च यथावत् प्रतिपेदिरे ॥ १८॥ अथ
तेषां पुराणस्य शुश्रूषा समपद्यत ॥ दृष्ट्वा तमतिविश्वस्तं विद्वांसं लोमहर्षणम् ॥ १९ ॥ तस्मिन् सत्रे गृहपतिः सर्व्वशास्त्रविशारदः ॥ इङ्गितैर्भा
वमालक्ष्य तेषां सूतमनोदयत् ॥ २० ॥ त्वया सूत महाबुद्धिर्भगवान् ब्रह्मवित्तमः ॥ इतिहासपुराणार्थं व्यासः सम्यगुपासितः ॥ दुदोह वै मतिं तस्य
त्वं पुराणाश्रयां कथाम् ॥ २१॥ एषाञ्च ऋषिमुख्यानां पुराणं प्रति धीमताम् ॥ शुश्रूषास्ति महाबुद्धे तच्छ्रावयितुमर्हसि ॥२२॥ सर्व्वे ह्यमे महात्मानो
नानागोत्राः समागताः ॥ स्वान् स्वान् वंशान् पुराणैस्तु शृणुयुर्ब्रह्मवादिनः ॥ २३ ॥ सपुत्रान् दीर्घसत्रेऽस्मिञ्छ्रावयेथा मुनीनथ ॥

दीक्षिष्यमाणैरस्माभिस्तेन प्रागसि संस्मृतः ॥ २४ ॥ इति सन्नोदितः सूतस्तैरेव मुनिभिः पुरा ॥ पुराणार्थं पुराणज्ञैः सत्यव्रतपरायणैः ॥ २५ ॥
स्वधर्म्म एष सूतस्य सद्भिर्दृष्टः पुरातनैः ॥ देवतानामृषीणाञ्च राज्ञाञ्चामिततेजसाम् ॥ २६ ॥ वंशानां धारणं कार्य्यं श्रुतानाञ्च महात्मनाम् ॥
इतिहासपुराणेषु दिष्टा ये ब्रह्मवादिभिः ॥ २७ ॥ न हि वेदेष्वधीकारः कश्चित् सूतस्य दृश्यते ॥ वैन्यस्य हि पृथोर्य्यज्ञे वर्त्तमाने महात्मनः ॥ सुत्या
यामभवत् सूतः प्रथमं वर्णवैकृतः ॥ २८ ॥ ऐन्द्रेण हविषा तत्र हविः पृक्तं बृहस्पतेः ॥ जुहावेन्द्राय देवाय ततः सूतो व्यजायत ॥ प्रमादात्तत्र
सञ्जज्ञे प्रायश्चित्तञ्च कर्म्मसु ॥ २९ ॥ शिष्यहव्येन यत् पृक्तमभिभूतं गुरोर्हविः ॥ अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णवैकृतः ॥ ३० ॥ यच्च क्षत्रात् समभव
द्ब्राह्मणाऽवरयोनितः॥ततः पूर्व्वेण साधर्म्यात्तुल्यधर्म्मा प्रकीर्त्तितः ॥३१॥ मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्म्मः क्षत्रोपजीवनम् ॥ रथनागाश्वचरितं जघन्यञ्च चिकि
त्सितम् ॥ ३२ ॥ तत् स्वधर्म्ममहं पृष्टो भवद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ कस्मात् सम्यङ्न विब्रूयां पुराणमृषिपूजितम् ॥ ३३ ॥ पितॄणां मानसी कन्या वासवी सम
पद्यत ॥ अपध्याता च पितृभिर्म्मत्स्ययोनौ बभूव सा ॥ ३४ ॥ अरणीव हुताशस्य निमित्तं यस्य जन्मनः ॥ तस्यां जातो महायोगी व्यासो वेदविदां
वरः ॥ ३५ ॥ तस्मै भगवते कृत्वा नमो व्यासाय वेधसे ॥ पुरुषाय पुराणाय भृगुवाक्यप्रवर्त्तिने ॥ मानुषच्छद्मरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे ॥ ३६ ॥
जातमात्रञ्च यं वेद उपतस्थे ससङ्ग्रहः ॥ धर्म्ममेव पुरस्कृत्य जातूकर्णादवाप तम् ॥ ३७॥ मतिं मन्थानमाविध्य येनासौ श्रुतिसागरात् ॥ प्रकाशं जनि
तो लोके महाभारतचन्द्रमाः ॥ ३८॥ वेदद्रुमश्च यं प्राप्य सशाखः समपद्यत ॥ भूमिकालगुणान् प्राप्य बहुशाखो यथा द्रुमः ॥ ३९॥ तस्मादहमुपश्रुत्य
पुराणं ब्रह्मवादिनः ॥ सर्व्वज्ञात्सर्व्ववेदेषु पूजिता दीप्ततेजसः ॥ ४० ॥ पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि यदुक्तं मातरिश्वना ॥ पृष्टेन मुनिभिः पूर्व्वं नैमिषीयैर्म
हात्मभिः ॥ ४१ ॥ महेश्वरः परोऽव्यक्तश्चतुर्बाहुश्चतुर्मुखः ॥ अचिन्त्यश्चाप्रमेयश्च स्वयम्भूर्हेतुरीश्वरः ॥ ४२ ॥ अव्यक्तं कारणं यद्यन्नित्यं सदसदात्म
कम् ॥ महदादिविशेषान्तं सृजतीति विनिश्चयः ॥ ४३ ॥ अण्डं हिरण्मयञ्चैव बभूवाप्रतिमन्ततः ॥ अण्डस्यावरणञ्चाद्भिरपामपि च तेजसा ॥
॥ ४४ ॥ वायुना तस्य नभसा नभो भूतादिना वृतम् ॥ भूतादिर्महता चैव अव्यक्तेनावृतो महान् ॥ ४५ ॥ अतोऽत्र विश्वदेवानामृषी
णाञ्चोपवर्णितम् ॥ नदीनां पर्व्वतानाञ्च प्रादुर्भावोऽत्र शस्यते ॥ ४६ ॥ मन्वन्तराणां सर्व्वेषां कल्पानाञ्चोपवर्णनम् ॥ कीर्त्तनं ब्रह्मक्षत्रस्य ब्रह्म
जन्म च कीर्त्त्यते ॥ ४७ ॥ अतो ब्रह्मणि स्रष्टृत्वं प्रजासर्गोपवर्णनम् ॥ अवस्थाश्चात्र कीर्त्त्यन्ते ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ ४८ ॥ कल्पानां वत्सराश्चैव ज
गतः स्थापनन्तथा ॥ शयनञ्च हरेरत्र पृथिव्युद्धरणन्तथा ॥ ४९ ॥ सन्निवेशः पुरादीनां वर्णाश्रमविभागशः ॥ वृक्षाणां गृहसंस्थानां सिद्धानाञ्च वि

नाशनम् ॥ ५० ॥ योजनानां पथाञ्चैव सञ्चरो बहुविस्तरः ॥ स्वर्गे स्थानविभागश्च मर्त्त्यानां भुविचारिणाम् ॥ ५१ ॥ वृक्षाणामोषधीनाञ्च वीरुधाञ्च प्रकीर्त्तनम्॥वृक्षनारकिकीटत्वं मर्त्त्यानां परिकीर्त्तितम् ॥ ५२ ॥ देवतानामृषीणाञ्च द्वे सृती परिकीर्त्तिते ॥ अन्नादीनां तनूनाञ्च सर्जनन्त्यजनन्तथा ॥ ५३ ॥ प्रथमं सर्व्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम् ॥ अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः ॥ ५४ ॥ अङ्गानि धर्म्मशास्त्रञ्च व्रतानि नियमास्तथा ॥ पशूनां पुरुषाणाञ्च सम्भवः परिकीर्त्तितः ॥ ५५ ॥ तथा निर्व्वचनं प्रोक्तं कल्पस्य च परिग्रहः ॥ नव सर्गाः पुनः प्रोक्ता ब्रह्मणो बुद्धिपूर्व्वकाः ॥ ५६ ॥ त्रयोऽन्ये बुद्धिपूर्व्वास्तु ततो लोकानकल्पयत् ॥ ब्रह्मणोऽवयवेभ्यश्च धर्म्मादीनां समुद्भवः ॥ ५७ ॥ ये द्वादश प्रसूयन्ते प्रजाः कल्पे पुनः पुनः ॥ कल्पयोरन्तरं प्रोक्तं प्रतिसन्धिश्च यस्तयोः ॥ ५८ ॥ तमोमात्रावृतत्वाच्च ब्रह्मणोऽधर्म्मसम्भवः ॥ तथैव शतरूपायाः सम्भवश्च ततः परम् ॥ ५९ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रसूत्याकूतयश्च ताः ॥ कीर्त्त्यन्ते धूतपाप्मानो येषु लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ ६० ॥ रुचेः प्रजापतेश्चोर्द्धमाकूत्यां मिथुनोद्भवः ॥ प्रसूत्यामपि दक्षस्य कन्यानां प्रभवस्ततः ॥ ६१ ॥ दाक्षायणीषु चाप्यूर्द्धं श्रद्धाद्यासु महात्मनाम् ॥ धर्म्मस्य कीर्त्त्यते सर्गः सात्विकस्य सुखोदयः ॥ ६२ ॥ तथाऽधर्म्मस्य हिंसायां तामसोऽशुभलक्षणः ॥ महेश्वरस्य सत्याञ्च प्रजासर्गः प्रकीर्तितः ॥ ६३ ॥ निरामयञ्च ब्रह्माणं तादृशं कीर्तितं पुनः ॥ योगं योगनिधिः प्राह द्विजानां मुक्तिकांक्षिणाम् ॥ ६४ ॥ अवतारश्च रुद्रस्य महाभाग्यं तथैव च ॥ त्रैवेदिकां कथाञ्चापि संवादः परमो महान् ॥ ६५ ॥ ब्रह्मनारायणाभ्याञ्च यत्र स्तोत्रं प्रकीर्त्तितम् ॥ स्तुतस्ताभ्यां स देवेशस्तुतोष भगवान् शिवः ॥ ६६ ॥ प्रादुर्भावोऽथ रुद्रस्य ब्रह्मणोऽङ्के महात्मनः ॥ कीर्त्त्यते नाम हेतुश्च यथाऽरोदीन्महामनाः ॥ ६७ ॥ रुद्रादीनि यथा ह्यष्टौ नामान्याप्नोत् स्वयम्भुवः ॥ यथा च तैर्व्याप्तमिदं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ६८ ॥ भृग्वादीनामृषीणाञ्च प्रजासर्गोपवर्णनम् ॥ वसिष्ठस्य च ब्रह्मर्षेर्यत्र गोत्रानुकीर्त्तनम् ॥ ६९ ॥ अग्नेः प्रजायाः सम्भूतिः स्वाहायां यत्र कीर्त्तिता ॥ पितॄणां द्विप्रकाराणां स्वधायास्तदनन्तरम् ॥ ७० ॥ पितृवंशप्रसङ्गेन कीर्त्त्यते च महेश्वरात् ॥ दक्षस्य शापः सत्यर्थे भृग्वादीनाञ्च धीमताम् ॥ ७१ ॥ प्रतिशापश्च रुद्रस्य दक्षादद्भुतकर्म्मणः ॥ प्रतिषेधश्च वैरस्य कीर्त्यते यत्र विस्तरात् ॥ ७२ ॥ तेषां नियोगो द्वीपेषु देशेषु च पृथक् पृथक् ॥ स्वायम्भुवस्य सर्गस्य ततश्चाप्यनुकीर्त्तनम् ॥७३॥ उक्तो नाभेर्निसर्गश्च रजसश्च महात्मनः ॥ द्वीपानां ससमुद्राणां पर्व्वतानाञ्च कीर्त्तनम् ॥ ७४ ॥ वर्षाणाञ्च नदीनाञ्च तद्भेदानाञ्चस वंशः ॥ द्वीपभेदसहस्राणामन्तर्भेदश्च सप्तसु ॥ ७५ ॥ विस्तरान् मण्डलाच्चैव जम्बूद्वीपसमुद्रयोः ॥ प्रमाणं योजनाग्रेण कीर्त्त्यते पर्व्वतैः सह ॥ ७६ ॥

हिमवान् हेमकूटस्तु निषधो मेरुरेव च ॥ नीलः श्वेतः शृङ्गवांश्च कीर्त्त्यन्ते वर्षपर्वताः ॥ ७७ ॥ तेषामन्तरविष्कम्भा उच्छ्रायायामविस्तराः ॥
कीर्त्त्यन्ते योजनाग्रेण ये च तत्र निवासिनः ॥ ७८ ॥ भारतादीनि वर्षाणि नदीभिः पर्वतैस्तथा ॥ भूतैश्चोपनिविष्टानि गतिमद्भिर्ध्रुवैस्तथा ॥ ७९ ॥
जम्बूद्वीपादयो द्वीपाः समुद्रैः सप्तभिर्वृताः ॥ ततश्चाप्यम्मयी भूमिर्लोकालोकश्च कीर्त्यते ॥ ८० ॥ अण्डस्यान्तास्त्विमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी ॥
भूरादयश्च कीर्त्त्यन्ते वरणैः प्राकृतैः सह ॥ ८१ ॥ सर्वञ्च तत्प्रधानस्य परिमाणैकदेशिकम् ॥ सन्यासपरिमाणञ्च संक्षेपेणैव कीर्त्यते ॥ ८२ ॥
सूर्य्याचन्द्रमसोश्चैव पृथिव्याश्चाप्यशेषतः ॥ प्रमाणं योजनाग्रेण साम्प्रतैरभिमानिभिः ॥ महेन्द्राद्याः सभाः पुण्या मानसोत्तरमूर्द्धनि ॥ ८३ ॥ अत ऊर्द्ध्वं
गतिश्चोक्ता स्वर्गस्यालातचक्रवत् ॥ नागवीथ्यजवीथ्योश्च लक्षणं परिकीर्त्त्यते ॥ ८४ ॥ काष्ठयोर्लेखयोश्चैव मण्डलानाञ्च योजनैः ॥ लोकालोकस्य
सन्ध्याया अह्नो विषुवतस्तथा ॥ ८५ ॥ लोकपालाः स्थिताश्चोर्द्ध्वं कीर्त्त्यन्ते ये चतुर्दिशम् ॥ पितॄणां देवतानां च पन्थानौ दक्षिणोत्तरौ ॥ ८६ ॥
गृहिणां न्यासिनाञ्चोक्तौ रजःसत्त्वसमाश्रयात् ॥ कीर्त्त्यते च पदं विष्णोर्धर्म्माद्या यत्र धिष्ठिताः ॥ ८७ ॥ सूर्य्याचन्द्रमसोश्चारो ग्रहाणां ज्योतिषान्त
था ॥ कीर्त्त्यते ध्रुवसामर्थ्यात् प्रजानां च शुभाशुभम् ॥ ८८ ॥ ब्रह्मणा निर्म्मितः सौरः स्यन्दनोऽर्थवशात् स्वयम् ॥ कीर्त्त्यते भगवान् येन प्रसर्पति दिवि
स्वयम् ॥ ८९ ॥ स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा ॥ गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः ॥ ९० ॥ अपां सारमयस्येन्दोः कीर्त्यते च रथस्तथा ॥
वृद्धिक्षयौ च सोमस्य कीर्त्त्येते सूर्य्यकारितौ ॥ ९१ ॥ सूर्य्यादीनां स्यन्दनानां ध्रुवादेव प्रकीर्त्तनम् ॥ कीर्त्त्यते शिशुमारश्च यस्य पुच्छे ध्रुवः स्थितः ॥ ९२ ॥
तारारूपाणि सर्व्वाणि नक्षत्राणि ग्रहैः सह ॥ निवासा यत्र कीर्त्त्यन्ते देवानां पुण्यकारिणाम् ॥ ९३ ॥ सूर्य्यरश्मिसहस्रे च वर्षशीतोष्णनिःस्रवः ॥ प्रविभा
गश्च रश्मीनां नामतः कर्म्मतोऽर्थतः ॥ ९४ ॥ परिमाणगती चोक्ते ग्रहाणां सूर्य्यसंश्रयात् ॥ यथा चाशु विषात् प्राप्ता शम्भोः कण्ठस्य नीलता ॥ ९५ ॥
ब्रह्मप्रसादितस्याशु विषादः शूलपाणिनः ॥ स्तूयमानः सुरैर्विष्णुः स्तौति देवं महेश्वरम् ॥ ९६ ॥ लिङ्गोद्भवकथा पुण्या सर्वपापप्रणाशिनी ॥ विश्वरूपात्
प्रधानस्य परिणामोऽयमद्भुतः ॥ ९७ ॥ पुरूरवस ऐलस्य माहात्म्यानुप्रकीर्त्तनम् ॥ पितॄणां द्विप्रकाराणां तर्पणं चामृतस्य वै ॥ ९८ ॥ ततः पर्व्वाणि कीर्त्त्यन्ते पर्व्व
णाञ्चैव सन्धयः ॥ स्वर्गलोकगतानां च प्राप्तानाञ्चाप्यधोगतिम् ॥ पितॄणां द्विप्रकाराणां श्राद्धेनानुग्रहो महान् ॥ ९९ ॥ युगसंख्याप्रमाणं च कीर्त्यते च कृते युगे ॥
त्रेतायुगे चापकर्षाद्वार्तायाः संप्रवर्त्तनम् ॥ १०० ॥ वर्णानामाश्रमाणाञ्च संस्थानञ्च प्रवर्त्तनम् ॥ वर्णानामाश्रमाणाञ्च संस्थितिर्धर्म्मतस्तथा ॥ १०१ ॥
यज्ञप्रवर्त्तनञ्चैव संवादो यत्र कीर्त्यते ॥ ऋषीणां वसुना सार्द्धं वसोश्चाधः पुनर्गतिः ॥ १०२ ॥ प्रश्नानां दुर्वचत्वं च स्वायम्भुवमृते मनुम् ॥ प्रशंसा

तपसश्चोक्ता युगावस्थाश्च कृत्स्नशः ॥ द्वापरस्य कलेश्चात्र सङ्क्षेपेण प्रकीर्तनम् ॥ १०३ ॥ देवतिर्य्यङ्मनुष्याणां प्रमाणानि युगेयुगे ॥ कीर्त्यन्ते युगसा
मर्थ्यात् परिणाहोच्छ्रयायुषः ॥ १०४ ॥ शिष्टादीनां च निर्देशः प्रादुर्भावश्च कीर्त्यते ॥ वेदस्य तद्द्विजातानां मंत्राणां च प्रकीर्तनम् ॥ १०५ ॥ शाखा
नां परिमाणं च वेदव्यासादिशब्दनम् ॥ मन्वन्तराणां संहारः संहारान्ते च सम्भवः ॥ १०६ ॥ देवतानामृषीणां च मनोः पितृगणस्य च ॥ न शक्यं विस्त
राद्वक्तुमित्युक्तं च समासतः ॥ १०७ ॥ मन्वन्तरस्य संख्या च मानुषेण प्रकीर्तिता ॥ मन्वन्तराणां सर्व्वेषामेतदेव च लक्षणम् ॥ १०८ ॥ अतीता
नागतानां च वर्त्तमानेन कीर्त्यते ॥ तथा मन्वन्तराणां च प्रतिसन्धानलक्षणम् ॥ १०९ ॥ अतीतानागतानां च प्रोक्तं स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ मन्वन्तरत्रयं चै
व कालज्ञानं च कीर्त्यते ॥ ११० ॥ मन्वन्तरेषु देवानां प्रजेशानां च कीर्त्तनम् ॥ दक्षस्य चापि दौहित्राः प्रियाया दुहितुः सुताः ॥ ब्रह्मादिभिस्ते जनिता
दक्षेणैव च धीमता ॥ १११ ॥ सावर्णाद्याश्च कीर्त्यन्ते मनवो मेरुमाश्रिताः ॥ ध्रुवस्योत्तानपादस्य प्रजासर्गोपवर्णनम् ॥ ११२ ॥ पृथुनापि च वैन्येन
भूमेर्दोहप्रवर्त्तनम् ॥ पात्राणां पयसां चैव वंशानां च विशेषणम् ॥ ब्रह्मादिभिः पूर्व्वमेव दुग्धा चेयं वसुन्धरा ॥ ११३ ॥ दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां
प्रजापतेः ॥ दक्षस्य कीर्त्यते जन्म सोमस्यांशेन धीमतः ॥ ११४ ॥ भूतभव्यभवेशत्वं महेन्द्राणां च कीर्त्यते ॥ मन्वादिका भविष्यन्ति आख्या
नैर्बहुभिर्वृताः ॥ ११५ ॥ वैवस्वतस्य च मनोः कीर्त्यते सर्गविस्तरः ॥ देवस्य महतो यज्ञे वारुणीं बिभ्रतस्तनुम् ॥ ब्रह्मशुक्रात् समुत्पत्तिर्भृग्वादी
नां च कीर्त्यते ॥ ११६ ॥ विनिवृत्ते प्रजासर्गे चाक्षुषस्य मनोः शुभे ॥ दक्षस्य कीर्त्यते सर्गो ध्यानाद्वैवस्वतेऽन्तरे ॥ ११७ ॥ नारदः प्रियसंवादी
दक्षपुत्रान्महाबलान् ॥ ११७ ॥ नाशयामास शापाय आत्मनो ब्रह्मणः सुतः ॥ ११८ ॥ ततो दक्षोऽसृजत् कन्या वीरिण्यामेव विश्रुताः ॥ की
र्त्यते धर्म्मसर्गश्च काश्यपस्य च धीमतः ॥ ११९ ॥ अत ऊर्ध्वं ब्रह्मणश्च विष्णोश्चैव भवस्य च ॥ एकत्वं च पृथक्त्वं च विशेषत्वं च कीर्त्यते ॥ १२० ॥
ईशत्वाच्च यथा शप्ता जाता देवाः स्वयम्भुवा ॥ मरुत्प्रसादो मरुतां दित्या देवांशसम्भवाः ॥ १२१ ॥ कीर्त्यन्ते मरुतांश्चाथ गणास्ते सप्तसप्तकाः ॥
देवत्वं पितृवाक्येन वायुस्कन्धेन चाश्रयः ॥ १२२ ॥ दैत्यानां दानवानाञ्च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम् ॥ सर्व्वभूतपिशाचानां पशूनां पक्षिवीरुधाम् ॥ उत्प
त्तयश्चाप्सरसां कीर्त्यन्ते बहुविस्तरात् ॥ १२३ ॥ समुद्रसंयोगकृतं जन्मैरावतहास्तिनः ॥ वैनतेयसमुत्पत्तिस्तथा चास्याभिषेचनम् ॥ १२४ ॥ भृगू
णां विस्तरश्चोक्तस्तथाचाङ्गिरसामपि ॥ कश्यपस्य पुलस्त्यस्य तथैवात्रेर्महात्मनः ॥ १२५ ॥ पराशरस्य च मुनेः प्रजानां यत्र विस्तरः ॥ देवता
नामृषीणाञ्च प्रजोत्पत्तिस्ततः परम् ॥ १२६ ॥ तिस्रः कन्याः प्रकीर्त्त्यन्ते यासु लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥ पितृदौहित्रनिर्देशो देवानां जन्म चोच्यते ॥ १२७ ॥

विस्तरस्ते भगवतः पञ्चानां सुमहात्मनाम् ॥ इलाया विस्तरश्चोक्त आदित्यस्य ततः परम् ॥ १२८ ॥ विकुक्षिचरितञ्चोक्तं धुन्धोश्चैव निवर्हणम् ॥
बृहद्बलान्तसंक्षेपादिक्ष्वाक्वाद्याः प्रकीर्त्तिताः ॥१२९॥ निम्यादीनां क्षितीशानां यावज्जह्नुगणादिति ॥ कीर्त्त्यते विस्तरो यश्च ययातेरपि भूपतेः ॥ १३० ॥
यदुवंशसमुद्देशो हैहयस्य च विस्तरः ॥ क्रोष्टोरनन्तरं चोक्तस्तथा वंशस्य विस्तरः ॥ १३१ ॥ ज्यामघस्य च माहात्म्यं प्रजासर्गश्च कीर्त्त्यते ॥ देवावृ
धस्य त्वर्कस्य वृष्टेश्चैव महात्मनः ॥ १३२॥ अत्रिमित्रान्वयश्चैव विष्णोर्दिव्याभिशंसनम् ॥ विवस्वतोऽथ संप्राप्तिर्मणिरत्नस्य धीमतः ॥ १३३ ॥ युधा
जितः प्रजासर्गः कीर्त्त्यते च महात्मनः ॥ कीर्त्त्यते चान्वयः श्रीमान् राजर्षेर्देवमीढुषः ॥ १३४ ॥ पुनश्च जन्म चाप्युक्तं चरितञ्च महात्मनः ॥ कं
सस्य चापि दौरात्म्यं एकान्तेन समुद्भवः ॥ १३५ ॥ वासुदेवस्य देवक्यां विष्णोर्जन्म प्रजापतेः ॥ विष्णोरनन्तरञ्चापि प्रजासर्गोपवर्णनम् ॥ १३६ ॥
देवासुरे समुत्पन्ने विष्णुना स्त्रीवधे कृते ॥ संरक्षता शक्रवधं शापः प्राप्तः पुरा भृगोः॥ भृगुश्चोत्थापयामास दिव्यां शुक्रस्य मातरम् ॥१३७॥ देवानामसुरा
णाञ्च संग्रामा द्वादशाद्भुताः ॥ नारसिंहप्रभृतयः कीर्त्त्यन्ते प्राणनाशनाः ॥१३८॥ शुक्रेणाराधनं स्थाणोर्घोरेण तपसा कृतम् ॥ वरदानप्रलुब्धेन यत्र शर्व
स्तवः कृतः॥ अनन्तरं विनिर्दिष्टं देवासुरविचेष्टितम् ॥ १३९ ॥ जयन्त्या सह सक्ते तु यत्र शुक्रे महात्मनि ॥ असुरान्मोहयामास शुक्ररूपेण बुद्धिमान्॥
बृहस्पतिस्तु तान् शुक्रः शशाप सुमहाद्युतिः ॥१४०॥ उक्तं च विष्णुमाहात्म्यं विष्णोर्जन्मादिशब्दनम् ॥ तुर्वसुः शुक्रदौहित्रो देवयान्यां यदोरभूत् ॥
अनुर्द्रुह्युस्तथा पूरुर्ययातितनया नृपाः ॥ १४१ ॥ अत्र वंश्या महात्मानस्तेषां पार्थिवसत्तमाः ॥ कीर्त्यन्ते दीर्घयशसो भूरिद्रविणतेजसः ॥ १४२ ॥
कुशिकस्य च विप्रर्षेः सम्यग्यो धर्म्मसंश्रयः ॥ बार्हस्पत्यन्तु सुरभिर्यत्र शापमिहानुदत् ॥ १४३ ॥ कीर्त्तनं जह्नुवंशस्य शन्तनोर्वीर्य्यशब्दनम् ॥
भविष्यतां तथा राज्ञामुपसंहारशब्दनम् ॥ १४४ ॥ अनागतानां सप्तानां मनूनां चोपवर्णनम् ॥ भौमस्यान्ते कलियुगे क्षीणे संहारवर्णनम् ॥ १४५ ॥ प
रार्द्धपरयोश्चैव लक्षणं परिकीर्त्त्यते ॥ ब्रह्मणो योजनाग्रेण परिमाणविनिर्णयः ॥ १४६ ॥ नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिकः स्मृतः ॥ त्रिविधः स
र्वभूतानां कीर्त्त्यते प्रतिसञ्चरः ॥ १४७ ॥ अनावृष्टिर्भास्कराच्च घोरः संवर्त्तकोऽनलः ॥ मेघो ह्येकार्णवं वायुस्तथा रात्रिर्म्महात्मनः ॥ १४८ ॥
संख्यालक्षणमुद्दिष्टं ततो ब्राह्मं विशेषतः॥ भूरादीनां च लोकानां सप्तानामुपवर्णनम् ॥ कीर्त्त्यन्ते चात्र निरयाः पापानां रौरवादयः ॥ १४९ ॥ ब्रह्मलो
कोपरिष्टात्तु शिवस्य स्थानमुत्तमम् ॥ यत्र संहारमायान्ति सर्वभूतानि संक्षये ॥ १५० ॥ सर्वेषां चैव सत्वानां परिणामविनिर्णयः ॥ ब्रह्मणः प्रतिसंसर्गे
सर्वसंहारवर्णनम् ॥ १५१ ॥ अष्टरूप्यमतः प्रोक्तं प्राणस्याष्टकमेव च ॥ गतिश्चोर्ध्वमधश्चोक्ता धर्माधर्मसमाश्रयात् ॥ १५२ ॥ कल्पे कल्पे च भूतानां

महतामपि संक्षयः ॥ प्रसंख्याय च दुःखानि ब्रह्मणश्चाप्यनित्यता ॥ १५३ ॥ दौरात्म्यं चैव भोगानां परिणामविनिर्णयः ॥ दुर्लभत्वं च मोक्षस्य वैरा
ग्याद्दोषदर्शनम् ॥ १५४ ॥ व्यक्ताव्यक्तं परित्यज्य सत्त्वं ब्रह्मणि संस्थितम् ॥ नानात्वदर्शनाच्छुद्धं ततस्तदभिवर्त्तते ॥ १५५ ॥ ततस्तापत्रया
तीतो नीरूपाख्यो निरञ्जनः ॥ आनन्दो ब्रह्मणः प्रोक्तो न बिभेति कुतश्चन ॥ १५६ ॥ कीर्त्त्यते च पुनः सर्गो ब्रह्मणोऽन्यस्य पूर्ववत् ॥
कीर्त्त्यते ऋषिवंशश्च सर्वपापप्रणाशनः ॥ १५७ ॥ इति कृत्यसमुद्देशः पुराणस्योपवर्णितः ॥ कीर्त्त्यन्ते जगतो ह्यत्र सर्वप्रलयविक्रियाः ॥
प्रवृत्तयश्च भूतानां निवृत्तीनां फलानि च ॥ १५८ ॥ प्रादुर्भावो वसिष्ठस्य शक्तेर्जन्म तथैव च ॥ सौदासान्निग्रहस्तस्य विश्वामित्रकृतेन च ॥ १५९ ॥
पराशरस्य चोत्पत्तिरदृश्यत्वं यथा विभोः ॥ जज्ञे पितॄणां कन्यायां व्यासश्चापि यथा मुनिः ॥ १६० ॥ शुकस्य च तथा जन्म सह पुत्रस्य धीमतः ॥
पराशरस्य प्रद्वेषो विश्वामित्रकृतो यथा ॥ १६१ ॥ वसिष्ठसम्भृतश्चाग्निर्विश्वामित्रजिघांसया ॥ सन्तानहेतोर्विभुना चीर्णः स्कन्देन धीमता ॥ दैवेन वि
धिना विप्र विश्वामित्रहितैषिणा ॥ १६२ ॥ एकं वेदश्चतुष्पादश्चतुर्द्धा पुनरीश्वरः ॥ यथा बिभेद भगवान् व्यासः सर्व्वान् स्वबुद्धितः ॥ तस्य शिष्यैः
प्रशिष्यैश्च शाखाभेदाः पुनः कृताः ॥ १६३ ॥ प्रयोगैः षड्गुणैर्यैश्च यथा पृष्टः स्वयम्भुवा ॥ पृष्टेन चानुपृष्टास्ते मुनयो धर्म्मकाङ्क्षिणः ॥ देशं पुण्यम
भीप्सन्तो विभुना तद्धितैषिणा ॥ १६४ ॥ सुनाभं दिव्यरूपाख्यं सत्याङ्गं शुभविक्रमम् ॥ अनौपम्यमिदञ्चक्र वर्त्तमानमतन्द्रिताः ॥ पृष्ठतो यात नि
यतास्ततः प्राप्स्यथ यद्धितम् ॥ १६५ ॥ गच्छतो धर्म्मचक्रस्य यत्र नेमिर्विशीर्य्यते ॥ पुण्यः स देशो मन्तव्य इत्युवाच तदा प्रभुः ॥ उक्त्वा चैव
मृषीन् ब्रह्मा ह्यदृश्यत्वमगात्पुनः ॥ १६६ ॥ गङ्गागर्भसमाहारं नैमिषेयत्वमेव च ॥ ईजिरे चैव सत्रेण मुनयो नैमिषे तदा ॥ मृते शरद्वति तथा तस्य
चोत्थापनं कृतम् ॥ १६७ ॥ ऋषयो नैमिषेयास्तु श्रद्धया परया पुनः ॥ निःसीमां गामिमां कृत्स्नां कृत्वा राजानमाहरन् ॥ यथाविधि यथाशास्त्रं तमा
तिथ्यैरपूजयन् ॥ १६८ ॥ प्रीतं तथाकृतातिथ्यं राजानं विधिवत्तदा ॥ अन्तर्द्धानगतः क्रूरः स्वर्भानुरसुरोऽहरत् ॥ १६९ ॥ अनुसम्रुह्तं चापि नृपमैडं
यथा पुरा ॥ गन्धर्व्वसहितं दृष्ट्वा कलापग्रामवासिनम् ॥ १७० ॥ सान्निपातः पुनस्तस्य यथा यज्ञे महर्षिभिः ॥ दृष्ट्वा हिरण्मयं सर्व्वं यज्ञे वस्तु महा
त्मनाम् ॥ १७१ ॥ तदा वै नैमिषेयाणां सत्रे द्वादशवार्षिके ॥ यथा विवदमानस्तु ऐडः संस्थापितस्तु तैः ॥ १७२ ॥ जनयित्वा त्वरण्यान्ते ऐडपुत्रं
यथायुषम् ॥ समापयित्वा तत्सत्रमायुषं पर्य्युपासते ॥ १७३ ॥ एतत्सर्व्वं यथावृत्तं व्याख्यातं द्विजसत्तमाः ॥ ऋषीणां परमं चात्र लोकतन्त्रमनुत्तम
म् ॥ १७४ ॥ ब्रह्मणा यत्पुरा प्रोक्तं पुराणं ज्ञानमुत्तमम् ॥ अवतारश्च रुद्रस्य द्विजानुग्रहकारणात् ॥ १७५ ॥ तथा पाशुपता योगाः स्थानानाञ्चैव

कीर्त्तनम् ॥ लिङ्गोद्भवस्य देवस्य नीलकण्ठत्वमेव च ॥ १७६ ॥ कथ्यते यत्र विप्राणां वायुना ब्रह्मवादिना ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं पापप्रणाशनम् ॥ कीर्त्तनं श्रवणं चास्य धारणञ्च विशेषतः ॥ १७७ ॥ अनेन हि क्रमेणेदं पुराणं संप्रचक्ष्यते ॥ सुखमर्थः समासेन महानप्युपलभ्यते ॥ तस्मात् किञ्चित्समुद्दिश्य पश्चाद्वक्ष्यामि विस्तरम् ॥ १७८ ॥ पादमाद्यमिदं सम्यक् योऽधीयीत जितेन्द्रियः ॥ तेनाधीतं पुराणं तत् सर्व्वं नास्त्यत्र संशयः ॥ १७९ ॥ यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः ॥ न चेत्पुराणं संविद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः ॥ ॥ १८० ॥ इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत् ॥ बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ॥ १८१ ॥ अभ्यसन्निममध्यायं साक्षात् प्रोक्तं स्वयम्भुवा॥ आपदं प्राप्य मुच्येत यथेष्टां प्राप्नुयाद्गतिम् ॥ १८२ ॥ यस्मात् पुरा ह्यनितीदं पुराणं तेन तत् स्मृतम्॥निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१८३॥ नारायणः सर्व्वमिदं विश्वं व्याप्य प्रवर्त्तते ॥ तस्यापि जगतः स्रष्टुः स्रष्टा देवो महेश्वरः ॥ १८४ ॥ अतश्च संक्षेपमिमं शृणुध्वं महेश्वरः सर्व्वमिदं पुराणम् ॥ स सर्गकाले च करोति सर्गान् संहारकाले पुनराददीत ॥ १८५ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुक्रमणिका नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

शुक उवाच। प्रत्यब्रुवन् पुनः सूतमृषयस्ते तपोधनाः ॥ कुत्र सत्रं समभवत् तेषामद्भुतकर्म्मणाम् ॥ १ ॥ कियन्तं चैव तत्कालं कथं च समवर्त्तत ॥ आचचक्ष पुराणं च कथं तेभ्यः प्रभञ्जनः ॥ २ ॥ आचक्ष्व विस्तरेणेदम्परं कौतूहलं हि नः ॥ इति सत्रोदितः सूतः प्रत्युवाच शुभं वचः ॥ ३ ॥ शृणुध्वं यत्र ते धीरा ईजिरे सत्रमुत्तमम् ॥ यावन्तंचाभवत् कालं यथा च समवर्तत ॥ ४॥ सिसृक्षमाणा विश्वं हि यत्र विश्वसृजः पुरा ॥ सत्रं हि ईजिरे पुण्यं सहस्रं परिवत्सरान् ॥ ५ ॥ तपो गृहपतिर्य्यत्र ब्रह्मा ब्रह्माऽभवत् स्वयम् ॥ इलाया यत्र पत्नीत्वं शामित्रं यत्र बुद्धिमान् ॥ मृत्युश्चक्रे महातेजास्तस्मिन् सत्रे महात्मनाम् ॥ ६ ॥ विबुधा ईजिरे तत्र सहस्रं शतिवत्सरान् ॥ भ्रमतो धर्म्मचक्रस्य यत्र नेमिरशीर्य्यत ॥ कर्म्मणा तेन विख्यातं नैमिषं मुनिपूजितम् ॥७॥ यत्र सा गोमती पुण्या सिद्धचारणसेविता ॥ रोहिणी सुषुवे तत्र ततः सौम्योऽभवत् सुतः ॥८॥ शक्तिर्ज्ज्येष्ठः समभवद्वसिष्ठस्य महात्मनः॥ अरुन्धत्याः सुता यत्र शतमुत्तमतेजसः ॥ ९ ॥ कल्माषपादो नृपतिर्यत्र शतञ्च शक्तिना ॥ यत्र वैरं समभद्विश्वामित्रवसिष्ठयोः ॥ १० ॥ अदृश्यन्त्यां समभवन्मुनिर्य्यत्र पराशरः ॥ पराभवो वसिष्ठस्य यस्मिन् जातेप्यवर्त्तत ॥ ११ ॥ तत्र ते ईजिरे सत्रं नैमिषे ब्रह्मवादिनः ॥ नैमिषे ईजिरे यत्र नैमिषेयास्ततः स्मृताः ॥ १२ ॥ तत्सत्रमभवत्तेषां समा द्वादश धीमताम् ॥ पुरूरवसि विक्रान्ते प्रशासति वसुन्धराम् ॥ १३ ॥ अष्टादश समुद्रस्य द्वीपानश्नन् पुरूरवाः ॥ तुतोष नैव रत्नानां लोभादिति हि नः श्रुतम् ॥ १४ ॥ उर्व्वशी चकमे यं च देवहूतिप्रणोदिता ॥ आजहार च तत्सत्रं स्वर्वे

श्यासहस्रङ्गतः ॥ १५ ॥ तस्मिन्नरपतौ सत्रं नैमिषेयाः प्रचक्रिरे ॥ यं गर्भं सुषुवे गङ्गा पावकाद्दीप्ततेजसम् ॥ तदुल्बं पर्व्वते न्यस्तं हिरण्यं प्रत्यपद्य
त ॥ १६ ॥ हिरण्मयन्ततश्चक्रे यज्ञवाटं महात्मनाम् ॥ विश्वकर्म्मा स्वयं देवो भावयन् लोकभावनम् ॥ १७ ॥ बृहस्पतिस्ततस्तत्र तेषाममितते
जसाम् ॥ ऐलः पुरूरवा भेजे तं देशं मृगयां चरन् ॥ १८ ॥ तं दृष्ट्वा महदाश्चर्य्यं यज्ञवाटं हिरण्मयम् ॥ लोभेन हतविज्ञानस्तदादातुं प्रचक्रमे ॥ १९ ॥
नैमिषेयास्ततस्तस्य चुक्रुधुर्नृपतेर्भृशम् ॥ निजघ्नुश्चापि संक्रुद्धाः कुशवज्रैर्मनीषिणः ॥ ततो निशान्ते राजानं मुनयो दैवनोदिताः ॥ २० ॥
कुशवज्रैर्विनिष्पिष्टः स राजा व्यजहात्तनुम् ॥ और्व्वशेयं ततस्तस्य पुत्रञ्चक्रुर्नृपं भुवि ॥ २१ ॥ नहुषस्य महात्मानं पितरं यं प्रचक्षते ॥ स तेषु
वर्त्तते सम्यग् धर्म्मशीलो महीपतिः ॥ आयुरारोग्यमत्युग्रं तस्मिन् स नरसत्तमः ॥ २२ ॥ सान्त्वयित्वा च राजानं ततो ब्रह्मविदां वराः ॥
सत्रमारेभिरे कर्त्तुं यथावद्धर्म्मभूतये ॥ २३ ॥ बभूव सत्रं तत्तेषां बह्वाश्चर्य्यं महात्मनाम् ॥ विश्वं सिसृक्षमाणानां पुरा विश्वसृजामिव ॥ २४ ॥
वैखानसैः प्रियसखैर्वालखिल्यैर्मरीचिकैः ॥ अन्यैश्च मुनिभिर्जुष्टं सूर्य्यवैश्वानरप्रभैः ॥ २५ ॥ पितृदेवाप्सरःसिद्धैर्गन्धर्व्वोरगचारणैः ॥ सम्भारैस्तु शुभै
र्जुष्टन्तैरैन्द्रसदो यथा ॥ २६ ॥ स्तोत्रसत्रग्रहैर्देवान् पितॄन् पित्र्यैश्च कर्म्मभिः ॥ आनर्चुश्च यथाजाति गन्धर्व्वादीन् यथाविधि ॥ २७ ॥ आराधयितुमि
च्छन्तस्ततः कर्म्मान्तरेष्वथ ॥ जगुः सामानि गन्धर्व्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ २८ ॥ व्याजह्रुर्मुनयो वाचं चित्राक्षरपदां शुभाम् ॥ मन्त्रादितत्त्ववि
द्वांसो जगदुश्च परस्परम् ॥ २९ ॥ वितण्डावचनाश्चैके निजघ्नुः प्रतिवादिनः ॥ ऋषयस्तत्र विद्वांसः साङ्ख्यार्थन्यायकोविदाः ॥ ३० ॥
न तत्र दुरितं किंचिद्विदधुर्ब्रह्मराक्षसाः ॥ न च यज्ञहनो दैत्या न च यज्ञमुपोऽसुराः ॥ ३१ ॥ प्रायश्चित्तं दुरिष्टं वा न तत्र समजायत ॥ शक्तिप्रज्ञा
क्रियायोगैर्विधिरासीत् स्वनुष्ठितः ॥ ३२ ॥ एवं वितेनिरे सत्रं द्वादशाब्दं मनीषिणः ॥ भृग्वाद्या ऋषयो धीरा ज्योतिष्टोमान् पृथक् पृथक् ॥
चक्रिरे पृष्ठगमनान् सर्व्वानयुतदक्षिणान् ॥ ३३ ॥ समाप्तयज्ञास्ते सर्वे वायुमेव महाधिपम् ॥ पप्रच्छुरमितात्मानं भवद्भिर्य्यदहं द्विजाः ॥ प्रणोदितश्च
वंशार्थं स च तानब्रवीत्प्रभुः ॥ ३४ ॥ शिष्यः स्वयम्भुवो देवः सर्व्वप्रत्यक्षदृग्वशी ॥ अणिमादिभिरष्टाभिरैश्वर्य्यैर्यः समन्वितः ॥ ३५ ॥ तिर्य्यग्योन्या
दिभिर्धर्मैः सर्वलोकान्बिभर्त्ति यः ॥ सप्तस्कंधादिकं शश्वत् प्लवते योजनाद्वरः ॥ ३६ ॥ विषये नियता यस्य संस्थिताः सप्तका गणाः ॥ व्यूहांस्त्रया
णां भूतानां कुर्व्वन् यश्च महाबलः ॥ तेजसश्चात्त्युपध्यानन्दधातीमं शरीरिणम् ॥ ३७ ॥ प्राणाद्यावृत्तयः पञ्च करणानां च वृत्तिभिः ॥ प्रेर्य्यमाणाः शरी
राणां कुर्व्वते यास्तु धारणम् ॥ ३८ ॥ आकाशयोनिर्हि गुणः शब्दस्पर्शसमान्वितः ॥ तैजसप्रकृतिश्चोक्तोऽप्ययं भावो मनीषिभिः ॥ ३९ ॥ तत्राभि

मानी भगवान् वायुश्चातिक्रियात्मकः ॥ वाताराणिः समाख्यातः शब्दशास्त्रविशारदः ॥ ४० ॥ भारत्या श्लक्ष्णया सर्व्वान् मुनीन् प्रह्लादयन्निव ॥ पुरा
णज्ञः सुमनसः पुराणाश्रययुक्तया ॥ ४१ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते द्वादशवार्षिकसत्रनिरूपणं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ छ ॥ ॥ सूतउ
वाच । महेश्वरायोत्तमवीर्य्यकर्म्मणे सुरर्षभायामितबुद्धितेजसे ॥ सहस्रसूर्यानलवर्च्चसे नमस्त्रिलोकसंहारविसृष्टये नमः ॥ १ ॥ प्रजापतीन्
लोकनमस्कृतांस्तथा स्वयम्भुरुद्रप्रभृतीन् महेश्वरान् ॥ भृगुं मरीचिं परमेष्ठिनं मनुं रजस्तमोधर्म्ममथापि कश्यपम् ॥ २ ॥ वसिष्ठदक्षात्रिपुल
स्त्यकर्द्दमान् रुचिं विवस्वन्तमथापि च क्रतुम् ॥ मुनिं तथैवाङ्गिरसं प्रजापतिं प्रणम्य मूर्ध्ना पुलहं च भावतः ॥ ३ ॥ तथैव चाक्रोधनमेकविंशतिं
प्रजाविवृद्ध्यार्पितकार्य्यशासनम् ॥ पुरातनानप्यपरांश्च शाश्वतांस्तथैव चान्यान् सगणानवस्थितान् ॥ ४ ॥ तथैव चान्यानपि धैर्य्यशोभिनो
मुनीन् बृहस्पत्युशनःपुरोगमान् ॥ तपःशुभाचारऋषीन् दयान्वितान् प्रणम्य वक्ष्ये कलिपापनाशिनीम् ॥ ५ ॥ प्रजापतेः सृष्टिमिमामनुत्तमां सुरेश
देवर्षिगणैरलङ्कृताम् ॥ शुभामतुल्यामनघामृषिप्रियां प्रजापतीनामपि चोल्बणार्च्चिषाम् ॥ ६ ॥ तपोभृतां ब्रह्मदिनादिकालिकीं प्रभूतमाविष्कृ
तपौरुषश्रियम् ॥ श्रुतौ स्मृतौ च प्रसृतामुदाहृतां परां पराणामनिलप्रकीर्त्तिताम् ॥ ७ ॥ समासबन्धैर्नियतैर्य्यथातथं विशब्दनेनापि मनः
प्रहर्षिणीम् ॥ यस्याश्च बद्धा प्रथमा प्रवृत्तिः प्राधानिकी चेश्वरकारिता च ॥ ८ ॥ यत्तत्स्मृतं कारणमप्रमेयं ब्रह्म प्रधानं प्रकृतिप्रसूति ॥ आत्मा गुहा
योनिरथापि चक्षुः क्षेत्रं तथैवामृतमक्षरञ्च ॥ ९ ॥ शुक्रं तपः सत्वमतिप्रकाशं तद्व्याप्ति नित्यं पुरुषं द्वितीयम् ॥ तमप्रमेयं पुरुषेण युक्तं स्वयम्भुवा लो
कपितामहेन ॥ १० ॥ उत्पादकत्वाद्रजसोतिरेकात् कालस्य योगान्निगमावधेश्च ॥ क्षेत्रज्ञयुक्तान् नियतान्विकारान् लोकस्य सन्तानविवृद्धिहेतून् ॥ प्रकृ
त्यवस्था सुषुवे तथाष्टौ सङ्कल्पमात्रेण महेश्वरस्य ॥ ११ ॥ देवासुराद्रिद्रुमसागराणां मनुप्रजेशर्षिपितृद्विजानाम् ॥ पिशाचयक्षोरगराक्षसानां ताराग्रहार्कर्क्ष
निशाचराणाम् ॥ १२ ॥ मासर्त्तुसंवत्सररात्र्यहानां दिक्कालयोगादियुगायनानाम् ॥ वनौषधीनामपि वीरुधाञ्च जलौकसामप्सरसां पशूनाम् ॥ १३ ॥
विद्युत्सरिन्मेघविहङ्गमानं यत्सूक्ष्मगं यद्भुवि यद्दियत्स्थम् ॥ यतस्थावरं यत्र यदस्ति किञ्चित् सर्व्वस्य तस्यास्ति गतिर्विभक्तिः ॥ १४ ॥ छन्दांसि वेदाः
सऋचो यजूंषि सामानि सोमश्च तथैव यज्ञः ॥ आजीव्यमेषां यदभीप्सितञ्च देवस्य तस्यैव च वै प्रजापतेः ॥ १५ ॥ वैवस्वतस्यास्य मनोः पुरस्तात् सम्भू
तिरुक्ता प्रसवश्च तेषाम् ॥ येषामिदं पुण्यकृतां प्रसूत्या लोकत्रयं लोकनमस्कृतानाम् ॥ सुरेशदेवर्षिमनुप्रवी नामापूरितञ्चोपरिभूषितञ्च ॥ १६ ॥

१ एतदग्रेऽयमधिकश्चरण उपलभ्यते 'विशुद्धवाग्बुद्धिशरीरतेजसाम्' इति । २ एतदग्रेऽयमधिकश्चरण उपलभ्यते 'आब्रह्मणो यावदियं प्रसूतिः' इति ।

रुद्रस्य शापात् पुनरुद्भवश्च दक्षस्य चाप्यत्र मनुष्यलोके ॥ वासः क्षितौ वा नियमाद्भवस्य दक्षस्य चात्र प्रतिशापलाभः ॥ १७ ॥ मन्वन्तराणां परिवर्त्त
नानि युगेषु सम्भूतिविकल्पनञ्च ॥ ऋषित्वमार्षस्य च संप्रवृद्धिर्य्यथायुगादिष्वपि चेत्तदत्र ॥ १८ ॥ ये द्वापरेषु प्रथयन्ति वेदान् व्यासाश्च तेऽत्र क्रमशो
निबद्धाः ॥ कल्पस्य संख्या भुवनस्य संख्या ब्राह्मस्य चाप्यत्र दिनस्य संख्या ॥ १९ ॥ अण्डोद्भिजस्वेदजरायुजानां धर्म्मात्मनां स्वर्गनिवासिनां वा ॥
ये यातनास्थानगताश्च जीवास्तर्केण तेषामपि च प्रमाणम् ॥ २० ॥ आत्यन्तिकः प्राकृतिकश्च योऽयं नैमित्तिकश्च प्रतिसर्गहेतुः ॥ बन्धश्च मोक्षश्च वि
शिष्य तत्र प्रोक्ता च संसारगतिः परा च ॥ २१ ॥ प्रकृत्यवस्थेषु च कारणेषु या च स्थितिर्य्या च पुनः प्रवृत्तिः ॥ तच्छास्त्रयुक्त्या स्वमतिप्रयत्नात्
समस्तमाविष्कृतधीधृतिभ्यः ॥ विप्रा ऋषिभ्यः समुदाहृतं यद्यथातथं तच्छृणुतोच्यमानम् ॥ २२ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते सृष्टिप्रकरणं नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ऋषयस्तु ततः श्रुत्वा नैमिषारण्यवासिनः ॥ प्रत्यूचुस्ते ततः सर्व्वे सूतं पर्य्याकुलेक्षणाः ॥ १ ॥ भवान् वै वंशकुशलो व्यासात्
प्रत्यक्षदर्शवान् ॥ तस्मात्त्वं भवनं कृत्स्नं लोकस्यामुष्य वर्णय ॥ २ ॥ यस्य यस्यान्वया ये ये तांस्तानिच्छाम वेदितुम् ॥ तेषां पूर्व्वर्षिसृष्टिं च विचित्रा
न्तां प्रजापतेः ॥३ ॥ असकृत्परिपृष्टस्तैर्म्महात्मा लोमहर्षणः ॥ विस्तरेणानुपूर्व्या च कथयामास सत्तमः ॥ ४ ॥ ॥ लोमहर्षण उवाच ॥ ॥ पृष्टां चैतां
कथां दिव्यां श्लक्ष्णां पापप्रणाशिनीम् ॥ कथ्यमानां मया चित्रां बह्वर्थां श्रुतिसम्मताम् ॥५॥ यश्चेमान्धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः ॥ श्रावयेच्चापि विप्रेभ्यो
यतिभ्यश्च विशेषतः ॥ ६ ॥ शुचिः पर्व्वसु युक्तात्मा तीर्थेष्वायतनेषु च ॥ दीर्घमायुरवाप्नोति स पुराणानुकीर्त्तनात् ॥ स्ववंशधारणं कृत्वा स्वर्गलोके
महीयते ॥७॥ विस्तारावयवं तेषां यथाशब्दं यथाश्रुतम् ॥ कीर्त्त्यमानं निबोधध्वं सर्व्वेषां कीर्त्तिवर्द्धनम् ॥८॥ धन्यं यशस्यं शत्रुघ्नं स्वर्ग्यमायुर्विवर्धनम् ॥
कीर्त्तनं स्थिरकीर्त्तीनां सर्व्वेषां पुण्यकारिणाम् ॥ ९ ॥ सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वंतराणि च ॥ वंशानुचरितञ्चेति पुराणं पंचलक्षणम् ॥ १० ॥
कल्पेभ्योऽपि हि यः कल्पः शुचिभ्यो नियतः शुचिः ॥ पुराणं सम्प्रवक्ष्यामि मारुतं वेदसम्मितम् ॥ ११ ॥ प्रबोधः प्रलयश्चैव स्थितिरुत्पत्तिरेव च ॥
प्रक्रिया प्रथमः पादः कथ्यवस्तुपरिग्रहः ॥ १२ ॥ उपोद्घातोऽनुषङ्गश्च उपसंहार एव च ॥ धर्म्यं यशस्यमायुष्यं सर्व्वपापप्रणाशनम् ॥ १३ ॥
एवं हि पादाश्चत्वारः समासात् कीर्त्तिता मया ॥ वक्ष्याम्येतान् पुनस्तांस्तु विस्तरेण यथाक्रमम् ॥ १४ ॥ तस्मै हिरण्यगर्भाय पुरुषायेश्वराय च ॥
अन्ताय प्रथमायैव विशिष्टाय प्रजात्मने ॥ ब्रह्मणे लोकतन्त्राय नमस्कृत्य स्वयम्भुवे ॥ १५ ॥ महदाद्यं विशेषान्तं सवैरूप्यं सलक्षणम् ॥ पंचप्रमाणं ष
ड्स्रयेतं पुरुषाधिष्ठितं नुतम् ॥ असंशयात् प्रवक्ष्यामि भूतसर्गमनुत्तमम् ॥ १६ ॥ अव्यक्तं कारणं यत्तु नित्यं सदसदात्मकम् ॥ प्रधानं प्रकृतिं चैव यमाहुस्तत्त्व

चिन्तकाः॥१७॥ गन्धवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शविवर्ज्जितम् ॥ अजातं ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्यवस्थितम् ॥१८॥ जगद्योनिं महद्भूतं परं ब्रह्म सनातनम् ॥ विग्रहं सर्व्वभूतानामव्यक्तमभवत् किल ॥ १९ ॥ अनाद्यन्तमजं सूक्ष्मन्त्रिगुणं प्रभवाव्ययम्॥ असाम्प्रतमविज्ञेयं ब्रह्माग्रे समवर्त्तत ॥ २० ॥ तस्यात्मना सर्व्वमिदं व्याप्तमासीत्तमोमयम् ॥ गुणसाम्ये तदा तस्मिन् गुणभावे तमोमये ॥ २१ ॥ सर्गकाले प्रधानस्य क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्य वै ॥ गुणभावाद्वाच्यमानो महान् प्रादुर्बभूव ह ॥ २२ ॥ सूक्ष्मेण महता सोऽथ अव्यक्तेन समावृतः ॥ सत्त्वोद्रिक्तो महानग्रे सत्त्वमात्रप्रकाशकम् ॥ मनो महांश्च विज्ञेयो मनस्तत्कारणं स्मृतम् ॥ २३ ॥ लिङ्गमात्रसमुत्पन्नः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः ॥ धर्म्मादीनान्तु रूपाणि लोकतत्त्वार्थहेतवः ॥ महांस्तु सृष्टिं कुरुते नोद्यमानः सिसृक्षया ॥ २४ ॥ मनो महान्मतिर्ब्रह्मा पूर्बुद्धिः ख्यातिरीश्वरः ॥ प्रज्ञा चितिः स्मृतिः संवित् विपुरं चोच्यते बुधैः ॥ २५ ॥ मनुते सर्व्वभूतानां यस्माच्चेष्टाफलं विभुः ॥ सौक्ष्मत्वेन विवृद्धानां तेन तन्मन उच्यते ॥ २६ ॥ तत्त्वानामग्रजो यस्मान्महांश्च परिमाणतः ॥ शेषेभ्योऽपि गुणेभ्योऽसौ महानिति ततःस्मृतः ॥ २७ ॥ बिभर्त्ति मानं मनुते विभागं मन्यतेऽपि च ॥ पुरुषो भोगसम्बन्धात् तेन चासौ मतिः स्मृतः ॥ २८ ॥ बृहत्त्वाद्बृंहणत्वाच्च भावानां सलिलाश्रयात् ॥ यस्माद्बृंहयते भावान् ब्रह्मा तेन निरुच्यते ॥ २९ ॥ आपूरयित्वा यस्माच्च कृत्स्नान्देहाननुग्रहैः ॥ तत्त्वभावांश्च नियतांस्तेन पूरिति चोच्यते ॥ ३० ॥ बुध्यते पुरुषश्चात्र सर्व्वभावान् हिताहितान् ॥ यस्माद्बोधयते चैव तेन बुद्धिर्निरुच्यते ॥ ३१ ॥ ख्यातिः प्रत्युपभोगश्च यस्मात् संवर्त्तते ततः ॥ भोगश्च ज्ञाननिष्ठत्वात्तेन ख्यातिरिति स्मृतः ॥ ३२ ॥ ख्यायते तद्गुणैर्वापि नामादिभिरनेकशः ॥ तस्माच्च महतः संज्ञा ख्यातिरित्यभिधीयते ॥ ३३ ॥ साक्षात् सर्व्वं विजानाति महात्मा तेन चेश्वरः ॥ तस्माज्जाता ग्रहाश्चैव प्रज्ञा तेन स उच्यते ॥ ३४ ॥ ज्ञानादीनि च रूपाणि क्रतुकर्म्मफलानि च ॥ चिनोति यस्माद्भोगार्थन्तेनासौ चितिरुच्यते ॥ ३५ ॥ वर्त्तमानान्यतीतानि तथा चानागतान्यपि ॥ स्मरते सर्व्वकार्य्याणि तेनासौ स्मृतिरुच्यते ॥३६॥ कृत्स्नं च विन्दते ज्ञानं तस्मान्माहात्म्यमुच्यते ॥ तस्माद्विदेर्व्विदेश्चैव संविदित्यभिधीयते ॥३७॥ विद्यते स च सर्व्वस्मिन् सर्व्वन्तस्मिंश्च विद्यते ॥ तस्मात्संविदिति प्रोक्तो महान्वै बुद्धिमत्तरैः ॥३८॥ज्ञानात्तु ज्ञानमित्याह भगवान् ज्ञानसन्निधिः ॥ द्वन्द्वानां विपुरीभावाद्विपुरं प्रोच्यते बुधैः॥३९॥सर्व्वेशत्वाच्च लोकानामवश्यं च तथेश्वरः॥बृहत्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भव उच्यते॥४०॥क्षेत्रक्षेत्रज्ञविज्ञानादेकत्वाच्च सकः स्मृतः॥यस्मातपुर्य्यनुशेते च तस्मात् पुरुष उच्यते॥नोत्पादितत्वात् पूर्व्वत्वात् स्वयम्भूरिति चोच्यते ॥४१॥ पर्य्यायवाचकैः शब्दैस्तत्त्वमाद्यमनुत्तमम् ॥ व्याख्यातं तत्त्वभावज्ञैरेवं सद्भावचिन्तकैः ॥ ४२ ॥ महान् सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानः सिसृक्षया ॥ सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च तस्य वृत्तिद्वयं

स्मृतम् ॥ ४३ ॥ धर्म्मादीनि च रूपाणि लोकतत्त्वार्थहेतवः ॥ त्रिगुणस्तु स विज्ञेयः सत्वराजसतामसः ॥ ४४ ॥ त्रिगुणाद्रजसोद्रिक्तादहङ्कारस्ततोऽभवत् ॥ महता चावृतः सर्गो भूतादिविकृतस्तु सः ॥ ४५ ॥ तस्माच्च तमसोद्रिक्तादहङ्कारादजायत ॥ भूततन्मात्रसर्गस्तु भूतादिस्तामसस्तु सः ॥४६ ॥ आकाशं शुषिरं तस्मादुद्रिक्तं शब्दलक्षणम् ॥ आकाशं शब्दमात्रन्तु भूतादिश्चावृणोत् पुनः ॥ ४७ ॥ शब्दमात्रन्तदाकाशं स्पर्शमात्रं ससर्ज ह ॥ भूतादिस्तु विकुर्व्वाणः शब्दमात्रं ससर्ज ह ॥ ४८ ॥ बलवान् जायते वायुः स वै स्पर्शगुणो मतः ॥ आकाशं शब्दमात्रन्तु स्पर्शमात्रं समावृणोत् ॥४९॥ रसमात्रास्तु ता ह्यापो रूपमात्राभिरावृणोत् ॥ आपो रसान् विकुर्व्वन्त्यो गन्धमात्रं ससर्ज्जिरे ॥ ५० ॥ सङ्घातो जायते तस्मात्तस्य गन्धो गुणः स्मृतः॥ रसमात्रन्तु तत्तोयं गन्धमात्रं समावृणोत् ॥ ५१ ॥ तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्रा तेन तन्मात्रता स्मृता ॥ अविशेषवाचकत्वादविशेषास्ततः स्मृताः ॥ अशान्तघोरमूढत्वादविशेषास्ततः पुनः ॥ ५२ ॥ भूततन्मात्रसर्गोऽयं विज्ञेयस्तु परस्परात् ॥ वैकारिकादहङ्कारात्सत्वोद्रिक्तात्तु सात्विकात् ॥ वैकारिकः स सर्गस्तु युगपत्सम्प्रवर्त्तते ॥५३॥ बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैव पञ्च कर्मेन्द्रियाण्यपि॥ साधकानीन्द्रियाणि स्युर्देवा वैकारिका दश ॥ एकादशं मनस्तत्र देवा वैकारिकाः स्मृताः ॥ ५४॥ श्रोत्रन्त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिका चैव पञ्चमी ॥ शब्दादीनामवाप्त्यर्थं बुद्धियुक्तानि वक्ष्यते॥५५॥ पादौ पायुरुपस्थश्च हस्तौ वाग्दशमी भवेत् ॥ गतिर्विसर्गो ह्यानन्दः शिल्पं वाक्यञ्च कर्म्म च ॥ ५६ ॥ आकाशं शब्दमात्रञ्च स्पर्शमात्रं समाविशेत् ॥ द्विगुणस्तु ततो वायुः शब्दस्पर्शात्मकोऽभवत् ॥५७॥ रूपन्तथैव विशतः शब्दस्पर्शगुणावुभौ ॥ त्रिगुणस्तु ततश्चाग्निः स शब्दस्पर्शरूपवान् ॥ ५८॥ सशब्दस्पर्शरूपञ्च रसमात्रं समाविशत् ॥ तस्माच्चतुर्गुणा ह्यापो विज्ञेयास्ता रसात्मिकाः॥ ५९॥ सशब्दस्पर्शरूपेषु गन्धस्तेषु समाविशत्॥ संयुक्ता गन्धमात्रेण आचिन्वन्ति महीमिमाम् ॥ तस्मात्पञ्चगुणा भूमिः स्थूलभूतेषु दृश्यते॥६०॥शान्ता घोराश्च मूढाश्च विशेषास्तेन ते स्मृताः॥परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्ति परस्परम् ॥६१॥ भूमेरन्तस्त्विदं सर्व्वं लोकालोकघनावृतम् ॥ विशेषा इन्द्रियग्राह्या नियतत्वाच्च ते स्मृताः ॥ ६२ ॥ गुणं पूर्व्वस्य पूर्व्वस्य प्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम् ॥ तेषां यावच्च यद्यच्च तत्तत्तावद्गुणं स्मृतम् ॥ ६३ ॥ उपलभ्य शुचेर्गन्धं केचिद्वायोरनैपुणात् ॥ पृथिव्यामेव तद्विद्यादपां वायोश्च संश्रयात् ॥ ६४ ॥ एते सप्त महावीर्य्या नानाभूताः पृथक् पृथक् ॥ नाशन्कुवन् प्रजाः स्रष्टुमसमागम्य कृत्स्नशः ॥ ते समेत्य महात्मानो ह्यन्योन्यस्यैव संश्रयात् ॥ ६५ ॥ पुरुषाधिष्ठितत्वाच्च अव्यक्तानुग्रहेण च ॥ महदाद्या विशेषान्ता अण्डमुत्पादयन्ति ते ॥ ६६ ॥ एककालं समुत्पन्नं जलबुद्बुदवच्च तत् ॥ विशेषेभ्योऽण्डमभवद् बृहत्तदुदकं च यत् ॥ तत्तस्मिन् कार्य्यकरणं संसिद्धं ब्रह्मणस्तदा ॥ ६७ ॥ प्राकृतेऽण्डे विबुद्धे सन् क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ॥ स वै श

रीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते ॥ ६८ ॥ आदिकर्त्ता च भूतानां ब्रह्माऽग्रे समवर्त्तत ॥ हिरण्यगर्भः सोऽग्रेऽस्मिन् प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः ॥ सर्गे च प्रति सर्गे च क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ॥ ६९ ॥ करणैः सह सृज्यन्ते प्रत्याहारे त्यजन्ति च ॥ भजन्ते च पुनर्देहानसमाहारसन्धिषु ॥ ७० ॥ हिरण्मयस्तु यो मेरुस्तस्योल्बं तन्महात्मनः ॥ गर्भोदकं समुद्राश्च जराय्वस्थीनि पर्वताः ॥ ७१ ॥ तस्मिन्नण्डे त्विमे लोका अन्तर्भूतास्तु सप्त वै ॥ सप्तद्वीपा च पृथ्वीयं समुद्रैः सह सप्तभिः ॥ ७२ ॥ पर्वतैः सुमहद्भिश्च नदीभिश्च सहस्रशः ॥ अन्तस्तस्मिंस्त्विमे लोका अन्तर्विश्वमिदं जगत् ॥ ७३ ॥ चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रौ सग्रहौ सह वायुना ॥ लोकालोकं च यत् किंचिच्चाण्डे तस्मिन् समर्पितम् ॥ ७४ ॥ अद्भिर्दशगुणाभिस्तु बाह्यतोऽण्डं समावृतम् ॥ आपो दशगुणा ह्येवन्तेजसा बाह्यतो वृताः ॥ ७५ ॥ तेजोदशगुणेनैव बाह्यतो वायुना वृतम् ॥ वायोर्दशगुणेनैव बाह्यतो नभसा वृतम् ॥ ७६ ॥ आकाशेन वृतो वायुः खं च भूतादिना वृतम् ॥ भूतादिर्महता चापि अव्यक्तेन वृतो महान् ॥ एतैरावरणैरण्डं सप्तभिः प्राकृतैर्वृतम् ॥ ७७ ॥ एताश्चावृत्य चान्योन्यमष्टौ प्रकृतयः स्थिताः ॥ प्रसर्गकाले स्थित्वा च ग्रसन्त्येताः परस्परम् ॥ ७८ ॥ एवं परस्परोत्पन्ना धारयन्ति परस्परम् ॥ आधाराधेयभावेन विकारस्य विकारिषु ॥ ७९ ॥ अव्यक्तं क्षेत्रमुद्दिष्टं ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥ इत्येष प्राकृतः सर्गः क्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तु सः ॥ अबुद्धिपूर्वं प्रागासीत् प्रादुर्भूता तडिद्यथा ॥ ८० ॥ एतद्धिरण्यगर्भस्य जन्म यो वेद तत्त्वतः ॥ आयुष्मान् कीर्तिमान् धन्यः प्रजावांश्च भवत्युत ॥ ८१ ॥ निवृत्तिकामोऽपि नरः शुद्धात्मा लभते गतिम् ॥ पुराणश्रवणान्नित्यं सुखं च क्षेममाप्नुयात् ॥ ८२ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते सृष्टिप्रकरणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ छ ॥ ॥ लोमहर्षण उवाच ॥ यद्धि सृष्टेस्तु संख्यातं मया कालान्तरन्द्विजाः ॥ एतत् कालान्तरं ज्ञेयमहर्वै पारमेश्वरम् ॥ १ ॥ रात्रिस्त्वेतावती ज्ञेया परमेशस्य कृत्स्नशः ॥ अहस्तस्य तु या सृष्टिः प्रलयो रात्रिरुच्यते ॥ २ ॥ अहश्च विद्यते तस्य न रात्रिरिति धारणा ॥ उपचारः प्रक्रियते लोकानां हितकाम्यया ॥ ३ ॥ प्रजाः प्रजानाम्पतय ऋषयो मुनिभिः सह ॥ ऋषीन् सनत्कुमाराख्यान् ब्रह्मसायुज्यगैः सह ॥ ४ ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च महाभूतानि पञ्च च ॥ तन्मात्रा इन्द्रियगणो बुद्धिश्च मनसा सह ॥ ५ ॥ अहस्तिष्ठन्ति ते सर्वे परमेशस्य धीमतः ॥ अहरन्ते प्रलीयन्ते रात्र्यन्ते विश्वसंभवः ॥ ६ ॥ स्वात्मन्यवस्थिते सत्वे विकारे प्रतिसंहते ॥ साधर्म्येणावतिष्ठेते प्रधानपुरुषावुभौ ॥ ७ ॥ तमः सत्वगुणावेतौ समत्वेन व्यवस्थितौ ॥ अत्रोद्रिक्तौ प्रसूतौ च तौ तथा च परस्परम् ॥ गुणसाम्ये लयो ज्ञेयो वैषम्ये सृष्टिरुच्यते ॥ ८ ॥ तिलेषु वा यथा तैलं घृतं पयसि वा स्थितम् ॥ तथा तमसि सत्वे च रजोऽव्यक्ताश्रितं स्थितम् ॥ ९ ॥ उपास्य रजनीं कृत्स्नां परां माहेश्वरीं तदा ॥

अहमुखे प्रवृत्ते च पुरः प्रकृतिसम्भवः ॥ १० ॥ क्षोभयामास योगेन परेण परमेश्वरः ॥ प्रधानं पुरुषञ्चैव प्रविश्याण्डं महेश्वरः ॥ ११ ॥ प्रधानात्
क्षोभ्यमाणात्तु रजो वै समवर्त्तत ॥ रजः प्रवर्त्तकं तत्र बीजेष्वपि यथा जलम् ॥ १२ ॥ गुणवैषम्यमासाद्य प्रसूयन्ते ह्यधिष्ठिताः ॥ गुणेभ्यः क्षोभ्य
माणेभ्यस्त्रयो देवा विजज्ञिरे ॥ आश्रिताः परमा गुह्याः सर्व्वात्मानः शरीरिणः ॥ १३ ॥ रजो ब्रह्मा तमो ह्यग्निः सत्वं विष्णुरजायत ॥ रजःप्रका
शको ब्रह्मा स्रष्टृत्वेन व्यवस्थितः ॥ १४ ॥ तमःप्रकाशकोऽग्निस्तु कालत्वेन व्यवस्थितः ॥ सत्वप्रकाशको विष्णुरौदासीन्ये व्यवस्थितः ॥ १५ ॥
एत एव त्रयो वेदा एत एव त्रयोऽग्नयः ॥ परस्पराश्रिता ह्येते परस्परमनुव्रताः ॥ १६ ॥ परस्परेण वर्त्तन्ते धारयन्ति परस्परम् ॥ अन्योन्यमिथु
ना ह्येते ह्यन्योन्यमुपजीविनः ॥ क्षणं वियोगो न ह्येषान्न त्यजन्ति परस्परम् ॥ १७ ॥ ईश्वरो हि परो देवो विष्णुस्तु महतः परः ॥ ब्रह्मा तु रजसो
द्रिक्तः सर्गायेह प्रवर्त्तते ॥ परश्च पुरुषो ज्ञेयः प्रकृतिश्च परा स्मृता ॥ १८ ॥ अधिष्ठितोऽसौ हि महेश्वरेण प्रवर्त्तते चोद्यमानः समन्तात् ॥ अनुप्रवर्त्तन्ति
महान्त एव चिरस्थिताः स्वे विषये प्रियत्वात् ॥ १९ ॥ प्रधानं गुणवैषम्यात्सर्गकाले प्रवर्त्तते ॥ ईश्वराधिष्ठितात् पूर्व्वन्तस्मात्सदसदात्मकात् ॥ ब्रह्मा बुद्धिश्च
मिथुनं युगपत्सम्बभूवतुः ॥ २० ॥ तस्मात्तमोऽव्यक्तमयः क्षेत्रज्ञो ब्रह्मसंज्ञितः ॥ संसिद्धः कार्य्यकरणैर्ब्रह्माऽग्रे समवर्त्तत ॥ २१ ॥ तेजसा प्रथमो धीमानव्यक्तः
संप्रकाशते ॥ स वै शरीरी प्रथमः कारणत्वे व्यवस्थितः ॥ २२ ॥ अप्रतीघेन ज्ञानेन ऐश्वर्य्येण च सोऽन्वितः ॥ धर्म्मेण चाप्रतीघेन वैराग्येण समन्वितः ॥ २३ ॥
तस्येश्वरस्याप्रतिघं ज्ञानं वैराग्यलक्षणम् ॥ धर्म्मैश्वर्य्यकृता बुद्धिर्ब्राह्मी जज्ञेऽभिमानिनः ॥ २४ ॥ अव्यक्ताज्जायते चास्य मनसा च यदिच्छति ॥ वशीकृत
त्वाद्वैगुण्यात् सुरेशत्वात्स्वभावतः ॥ २५ ॥ चतुर्मुखस्तु ब्रह्मत्वे कालत्वे चान्तकोऽभवत् ॥ सहस्रमूर्द्धा पुरुषस्तिस्रोऽवस्थाः स्वयम्भुवः ॥ २६ ॥ सत्वं रजश्च
ब्रह्मत्वे कालत्वे च रजस्तमः ॥ सात्विकं पुरुषत्वे च गुणवृत्तिः स्वयम्भुवः ॥ २७ ॥ लोकान् सृजति ब्रह्मत्वे कालत्वे संक्षिपत्यपि ॥ पुरुषत्वे ह्युदासीनस्तिस्रोऽव
स्थाः प्रजापतेः ॥ २८ ॥ ब्रह्मा कमलगर्भाभः कालो जात्याञ्जनप्रभः ॥ पुरुषः पुण्डरीकाक्षो रूपं तत्परमात्मनः ॥ २९ ॥ योगेश्वरः शरीराणि करोति विकरोति
च ॥ नानाकृतिक्रियारूपनामवृत्तिः स्वलीलया ॥ ३० ॥ त्रिधा यद्वर्त्तते लोके तस्मात्त्रिगुण उच्यते ॥ चतुर्द्धा प्रविभक्तत्वाच्चतुर्व्यूहः प्रकीर्त्तितः ॥ ३१ ॥ यदा
प्नोति यदादत्ते यच्चास्ति विषयं प्रति ॥ तच्चास्य सततं भावस्तस्मादात्मा निरुच्यते ॥ ३२ ॥ ऋषिः सर्व्वगतत्वाच्च शरीराद्यात्स्वयं प्रभुः ॥
स्वामित्वमस्य तत्सर्व्वं विष्णुः सर्व्वप्रवेशनात् ॥ ३३ ॥ भगवान् भगसद्भावाद्रागो रागस्य शासनात् ॥ परश्च तु प्रकृतत्वादवनादोमितिः स्मृतः ॥ ३४ ॥
सर्व्वज्ञः सर्व्वविज्ञानात् सर्व्वः सर्व्वं यतस्ततः ॥ नराणामयनं यस्मात्तेन नारायणः स्मृतः ॥ ३५ ॥ त्रिधा विभज्य स्वात्मानं त्रैलोक्यं सम्प्रवर्त्तते ॥

सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिस्तु यत् ॥ अग्रे हिरण्यगर्भः स प्रादुर्भूतश्चतुर्मुखः ॥ ३६ ॥ आदित्वाच्चादिदेवोऽसावजातत्वादजः स्मृतः ॥
पाति यस्मात्प्रजाः सर्व्वाः प्रजापतिरतः स्मृतः ॥ ३७॥ देवेषु च महान् देवो महादेवस्ततः स्मृतः॥सर्व्वेशत्वाच्च लोकानामवश्यत्वात्तथेश्वरः॥ ३८ ॥
बृहत्त्वाच्च स्मृतो ब्रह्मा भूतत्वाद्भूत उच्यते ॥ क्षेत्रज्ञः क्षेत्रविज्ञानाद्विभुः सर्व्वगतो यतः ॥ ३९ ॥ यस्मात् पुर्य्यनुशेते च तस्मात् पुरुष उच्यते ॥
नोत्पादितत्वात् पूर्व्वत्वात् स्वयम्भूरिति स स्मृतः ॥ ४० ॥ इज्यत्वादुच्यते यज्ञः कविर्विक्रान्तदर्शनात् ॥ क्रमणः क्रमणीयत्वाद्वर्णकस्याभिपाल
नात् ॥ ४१ ॥ आदित्यसंज्ञः कपिलस्त्वग्रजोऽग्निरिति स्मृतः ॥ हिरण्यमस्य गर्भोऽभूद्धिरण्यस्यापि गर्भजः ॥ तस्माद्धिरण्यगर्भः स पुराणेऽस्मिन्निरु
च्यते॥ ४२ ॥ स्वयम्भुवो निवृत्तस्य कालो वर्षाग्रजस्तु यः ॥ न शक्यः परिसंख्यातुमपि वर्षशतैरपि ॥ ४३ ॥ कल्पसंख्यानिवृत्तेस्तु पराख्यो ब्र
ह्मणः स्मृतः ॥ तावच्छेषोऽस्य कालोऽन्यस्तस्यान्ते प्रतिसृज्यते ॥ ४४ ॥ कोटिकोटिसहस्राणि अन्तर्भूतानि यानि वै ॥ समतीतानि कल्पानान्तावच्छे
षाः परास्तु ये ॥ ४५ ॥ यस्त्वयं वर्त्तते कल्पो वाराहन्तं निबोधत ॥ प्रथमः साम्प्रतस्तेषां कल्पोऽयं वर्त्तते द्विजाः ॥ ४६ ॥ तस्मि
न् स्वायम्भुवाद्यास्तु मनवः स्युश्चतुर्दश ॥ अतीता वर्त्तमानाश्च भविष्या ये च वै पुनः ॥ ४७ ॥ तैरियं पृथिवी सर्व्वा सप्तद्वीपा
समन्ततः ॥ पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरैः ॥ प्रजाभिस्तपसा चैव तेषां शृणुत विस्तरम् ॥ ४८ ॥ मन्वन्तरेण चैकेन
सर्व्वाण्येवान्तराणि वै ॥ भविष्याणि भविष्यैश्च कल्पः कल्पेन चैव ह ॥ ४९ ॥ अतीतानि च कल्पानि सोदकानि सहान्वयैः ॥
अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्यो विजानता ॥ ५० ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते सृष्टिप्रकरणं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ ७॥ ॥ सूत उवाच॥
आपो ह्यग्रे समभवन्नष्टेऽग्नौ पृथिवीतले ॥ सान्तरालैकलीनेऽस्मान्नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥ १ ॥ एकार्णवे तदा तस्मिन् न प्राज्ञायत किंचन ॥ तदा स भ
गवान् ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ २ ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः ॥ ब्रह्मा नारायणाख्यः स सुष्वाप सलिले तदा ॥ ३ ॥ सत्त्वोद्रे
कात् प्रबुद्धस्तु शून्यं लोकमुदीक्ष्य सः ॥ इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ॥ ४ ॥ आपो नारा वै तनव इत्यपां नाम शुश्रुमः ॥ अप्सु शेते
च यत्तस्मात्तेन नारायणः स्मृतः ॥ ५ ॥ तुल्यं युगसहस्रस्य नैशं कालमुपास्य सः ॥ शर्व्वर्य्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ॥ ६ ॥ ब्रह्मा तु स
लिले तस्मिन् वायुर्भूत्वा तदाचरत् ॥ निशायामिव खद्योतः प्रावृट्काले ततस्ततः ॥ ७॥ ततस्तु सलिले तस्मिन् विज्ञायान्तर्गतां महीम् ॥ अनुमा
नादसंमूढो भूमेरुद्धरणं प्रति ॥ ८ ॥ अकरोत् स तनुं त्वन्यां कल्पादिषु यथा पुरा॥ ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत् ॥ ९ ॥ सलिलेनाप्लु

तां भूमिं दृष्ट्वा स तु समन्ततः ॥ किन्नु रूपं महत् कृत्वा उद्धरेयमहं महीम्॥१०॥जलक्रीडासु रुचिरं वाराहं रूपमस्मरत् ॥ अधृष्यं सर्व्वभूतानां वाङ्मयं धर्म्मसंज्ञितम्॥११॥दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमुच्छ्रितम्॥नीलमेघप्रतीकाशं मेघस्तनितनिःस्वनम्॥१२॥महापर्व्वतवर्ष्माणं श्वेतं तीक्ष्णोग्रदंष्ट्रिणम्॥ विद्युदग्निप्रकाशाक्षमादित्यसमतेजसम्॥१३॥पीनवृत्तायतस्कन्धं सिंहविक्रान्तगामिनम्॥पीनोन्नतकटीदेशं सुश्लक्ष्णं शुभलक्षणम् ॥१४॥ रूपमास्थाय वि पुलंवाराहममितं हरिः॥पृथिव्युद्धरणार्थाय प्रविवेश रसातलम्॥१५॥स वेदवाद्युपद्रष्टा क्रतुवक्षाश्चितीमुखः ॥ अग्निजिह्वो दर्भरोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः ॥१६॥अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः ॥ आज्यनाशः स्रुवतुण्डः सामघोषस्वनो महान् ॥१७॥ सत्यधर्म्ममयः श्रीमान् धर्म्मविक्रमसंस्थितः ॥ प्राय श्चित्तरतो घोरः पशुजानुर्महाकृतिः॥१८॥ऊर्द्धगात्रो होमलिङ्गः स्थानबीजो महौषधिः॥वेद्यान्तरात्मा मन्त्रास्फिगाज्यस्पृक् सोमशोणितः॥१९॥वेदस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यातिवेगवान् ॥ प्राग्वंशकायो द्युतिमान्नानादीक्षाभिरन्वितः ॥ २० ॥ दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो विभुः ॥ उपाकर्मोष्ठरुचिरः प्रवर्ग्यवित्तभूषणः ॥२१॥ नानाच्छन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः॥ छायापत्नीसहायो वै मणिशृङ्ग इवोच्छ्रितः॥भूत्वा यज्ञवराहो वै अपः स प्राविशत् प्र भुः ॥ २२ ॥ अद्भिः संछादितामुर्वीं स तामश्नन् प्रजापतिः ॥ उपगम्योज्जहाराशु अपस्ताश्च स विन्यसत्॥२३॥सामुद्रीर्वै समुद्रेषु नादेयीश्च नदीष्वथ ॥ रसातलतले मग्नां रसातलतले गताम् ॥ प्रभुर्ल्लोकहितार्थाय दंष्ट्रयाभ्युज्जहार गाम्॥२४॥ततः स्वस्थानमानीय पृथिवीं पृथिवीकरः ॥ मुमोच पूर्व्वं मनसा धारयित्वा धराधरः॥२५॥तस्योपरि जलौघस्य महती नौरिव स्थितः॥चरितत्वाच्च देवस्य न मही याति विप्लवम्॥२६॥ ततोद्धृत्य क्षितिं देवो जगतः स्था पनेच्छया॥पृथिव्याः प्रविभागाय मनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः॥पृथिवीं तु समीकृत्य पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन् ॥२७॥प्राक् सर्व्वे दह्यमानास्तु तदा संवर्त्तकाग्निना॥ तेनाग्निना विशीर्णास्ते पर्वता भुवि सर्वशः॥२८॥शैत्यादेकार्णवे तस्मिन्वायुनापस्तु संहताः॥निषिक्ता यत्र यत्रासंस्तत्रतत्राचलोऽभवत् ॥२९॥स्कन्नाचल त्वादचलाः पर्व्वभिः पर्व्वताः स्मृताः॥ गिरयोऽन्तर्निगीर्णत्वाच्चयनाच्च शिलोच्चयाः॥३०॥ततस्तेषु विशीर्णेषु लोकोदधिगिरिष्वथ ॥ विश्वकर्म्मा विभजते कल्पादिषु पुनः पुनः॥३१॥ससमुद्रामिमां पृथ्वीं सप्तद्वीपां सपर्व्वताम्॥भूराद्यांश्चतुरो लोकान् पुनः सोऽथ प्रकल्पयत्॥लोकान् प्रकल्पयित्वा च प्रजासर्गं ससर्ज्ज ह॥३२॥ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः॥ ससर्ज्ज सृष्टिन्तद्रूपां कल्पादिषु यथा पुरा॥३३॥तस्याभिध्यायतः सर्गं तदा वै बुद्धिपूर्वकम्॥ प्रधानसमकालं वै प्रादुर्भूतस्तमोमयः ॥ ३४ ॥ तमो मोहो महामोहस्तामिस्रो ह्यन्धसंज्ञितः ॥ अविद्या पञ्चपर्व्वैषा प्रादुर्भूता महात्मनः ॥ ३५ ॥ पञ्चधा चाश्रितः सर्गो ध्यायतः सोऽभिमानिनः ॥ सर्व्वतस्तमसा चैव दीपः कुम्भवदावृतः ॥ बहिरन्तःप्रकाशश्च शुद्धो निःसंज्ञ एव च ॥ ३६ ॥

यस्मात्तैः संवृता बुद्धिर्मुख्यानि करणानि च ॥ तस्मात्ते संवृतात्मानो नगा मुख्याः प्रकीर्त्तिताः ॥ ३७ ॥ मुख्यसर्गं तथाभूतं ब्रह्मा दृष्ट्वा ह्यसाधकम् ॥
अप्रसन्नमनाः सोऽथ ततो न्यासोऽभ्यमन्यत ॥ ३८ ॥ तस्याभिध्यायतस्तत्र तिर्य्यक्स्रोतोऽभ्यवर्त्तत ॥ यस्मात्तिर्य्यग् व्यवर्त्तत तिर्य्यक्स्रोतस्ततः स्मृ
तम् ॥ ३९ ॥ तमोबहुत्वात्ते सर्व्वे ह्यज्ञानबहुलाः स्मृताः ॥ उत्पथग्राहिणश्चापि ते ध्यानाद्ध्यानमानिनः ॥ ४० ॥ तिर्य्यक्स्रोतस्तु दृष्ट्वा वै द्वितीयं विश्वमीश्वरः ॥
अहंकृता अहंमना अष्टाविंशद्विधात्मकाः ॥ ४१ ॥ एकादशेन्द्रियविधा नवधा चोदयस्तथा ॥ अष्टौ च तारकाद्याश्च तेषां शक्तिविधाः स्मृताः ॥ ४२ ॥
अतः प्रकाशास्ते सर्व्वे आवृताश्च बहिः पुनः ॥ यस्मात्तिर्य्यक् प्रवर्त्तेत तिर्य्यक्स्रोताः स उच्यते ॥ ४३ ॥ तिर्य्यक्स्रोताश्च दृष्ट्वा वै द्वितीयं विश्वमीश्वरः ॥
अभिप्रायमथोद्भूतं दृष्ट्वा सर्व्वन्तथाविधम् ॥ तस्याभिध्यायतो नित्यं सात्त्विकः समवर्त्तत ॥ ४४ ॥ ऊर्द्ध्वस्रोतास्तृतीयस्तु स चैवोर्ध्वं व्यवस्थितः ॥ यस्मा
द्व्यवर्त्ततोर्द्ध्वन्तु ऊर्द्ध्वस्रोतास्ततः स्मृतः ॥ ४५ ॥ ते सुखप्रीतिबहुला बहिरन्तश्च संवृताः ॥ प्रकाशा बहिरन्तश्च ऊर्द्ध्वस्रोतोद्भवाः स्मृताः ॥ ४६ ॥ तेन वा
तादयो ज्ञेयाः सृष्टात्मानो व्यवस्थिताः ॥ ऊर्द्ध्वस्रोतास्तृतीयो वै तेन सर्गस्तु स स्मृतः ॥ ४७ ॥ ऊर्द्ध्वस्रोतःसु सृष्टेषु देवेषु स तदा प्रभुः ॥ प्रीतिमानभवद्ब्रह्मा
ततोऽन्यं सोऽभ्यमन्यत ॥ ससर्ज्ज सर्गमन्यं स साधकं प्रभुरीश्वरः ॥ ४८ ॥ अथाभिध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा ॥ प्रादुर्ब्बभूव चाव्यक्तादर्व्वाक्स्रोतः
सुसाधकम् ॥ यस्मादर्व्वाक् व्यवर्त्तत ततोऽर्व्वाक् स्रोत उच्यते ॥ ४९ ॥ ते च प्रकाशबहुलास्तमःसत्त्वरजोधिकाः ॥ तस्मात्ते दुःखबहुला भूयो भूयश्च कारि
णः ॥ ५० ॥ प्रकाशा बहिरन्तश्च मनुष्याः साधकाश्च ते ॥ लक्षणैस्तारकाद्यैस्ते अष्टधा च व्यवस्थिताः ॥ ५१ ॥ सिद्धात्मानो मनुष्यास्ते गन्धर्वसहधर्म्मिणः ॥
इत्येष तेजसः सर्गो ह्यर्व्वाक्स्रोताः प्रकीर्त्तितः ॥ ५२ ॥ पञ्चमोऽनुग्रहः सर्गश्चतुर्द्धा स व्यवस्थितः ॥ विपर्य्ययेण शक्त्या च तुष्ट्या सिद्ध्या तथैव
च ॥ निवृत्तं वर्त्तमानञ्च तेऽर्थं जानन्ति तत्त्वतः ॥ ५३ ॥ भूतादिकानां सत्त्वानां षष्ठः सर्गः स उच्यते ॥ विपर्य्ययेण भूतादिरशक्त्या च व्यवस्थि
तः ॥ ५४ ॥ प्रथमो महतः सर्गो विज्ञेयो महतस्तु सः ॥ तन्मात्राणां द्वितीयस्तु भूतसर्गः स उच्यते ॥ ५५ ॥ वैकारिकस्तृतीयस्तु सर्ग ऐन्द्रिय
कः स्मृतः ॥ इत्येष प्राकृतः सर्गः सम्भूतो बुद्धिपूर्व्वकः ॥ ५६ ॥ मुख्यसर्गश्चतुर्थस्तु मुख्या वै स्थावराः स्मृताः ॥ तिर्य्यक्स्रोताश्च यः सर्गस्ति
र्य्यग्योनिः स पञ्चमः ॥ ५७ ॥ तथोर्द्ध्वस्रोतसां षष्ठो देवसर्गस्तु स स्मृतः ॥ तथार्व्वाक्स्रोतसां सर्गः सप्तमः स तु मानुषः ॥ ५८ ॥ अष्टमोऽनुग्रहः
सर्गः सात्विकस्तामसस्तु सः ॥ पञ्चैते वैकृताः सर्गाः प्राकृतास्तु त्रयः स्मृताः ॥ ५९ ॥ प्राकृतो वैकृतश्चैव कौमारो नवमः स्मृतः ॥ प्राकृतास्तु त्रयः
सर्गाः कृतास्ते बुद्धिपूर्व्वकाः ॥ ६० ॥ बुद्धिपूर्व्वं प्रवर्त्तन्ते षट् सर्गा ब्रह्मणस्तु ते ॥ विस्तरानुग्रहं सर्गं कीर्त्त्यमानं निबोधत ॥ ६१ ॥ चतुर्द्धावस्थितः सोऽथ

सर्वभूतेषु कृत्स्नशः ॥ विपर्य्ययेण शक्त्या च तुष्ट्या सिद्ध्या तथैव च ॥ ६२ ॥ स्थावरेषु विपर्य्यासस्तिर्य्यग्योनिषु शक्तिता ॥ सिद्धात्मानो मनुष्यास्तु
तुष्टिर्देवेषु कृत्स्नशः ॥ ६३ ॥ इत्येते प्राकृताश्चैव वैकृताश्च नव स्मृताः ॥ सर्गाः परस्परस्याथ प्रकारा बहवः स्मृताः ॥ ६४ ॥ अग्रे ससर्ज्ज वै ब्रह्मा
मानसानात्मनः समान् ॥ सनन्दनञ्च सनकं विद्वांसञ्च सनातनम् ॥ ६५ ॥ विज्ञानेन निवृत्तास्ते वैवर्त्तेन महौजसः ॥ संबुद्धाश्चैव नानात्वादप्रविद्धास्त्रयोऽ
पि ते ॥ असृष्ट्वैव प्रजासर्गं प्रतिसर्गङ्गताः पुनः ॥ ६६ ॥ तदा तेषु व्यतीतेषु तदान्यान् साधकांश्च तान् ॥ मानसानसृजद्ब्रह्मा पुनः स्थानाभिमानिनः ॥
आभूतसंप्लवावस्थान्नामतस्तान्निबोधत ॥ ६७ ॥ आपोऽग्निः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिशस्तथा ॥ स्वर्गं दिवः समुद्रांश्च नदान् शैलान् वनस्पतीन् ॥ ६८ ॥
ओषधीनां तथात्मानो ह्यात्मानो वृक्षवीरुधाम् ॥ लवाः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्त्ताः सन्धिरात्र्यहाः ॥ ६९ ॥ अर्द्धमासाश्च मासाश्च अयनाब्दयुगानि च ॥
स्थानाभिमानिनः सर्व्वे स्थानाख्याश्चैव ते स्मृताः ॥ ७० ॥ वक्त्रादस्य ब्राह्मणाः संप्रसूताः तद्वक्षस्तः क्षत्रियाः पूर्व्वभागे ॥ वैश्याश्चोर्वोर्य्यस्य पद्भ्याञ्च
शूद्राः सर्व्वे वर्णा गात्रतः संप्रसूताः ॥ ७१ ॥ नारायणः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसम्भवम् ॥ अण्डाज्जज्ञे पुनर्ब्रह्मा लोकास्तेन कृताः स्वयम् ॥ ७२ ॥ एष वः कथि
तः पादः समासान्न तु विस्तरात् ॥ अनेनाद्येन पादेन पुराणं संप्रकीर्त्तितम् ॥ ७३ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते सृष्टिप्रकरणं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ समाप्तः
प्रक्रियापादः ॥ इत्येष प्रथमः पादः प्रक्रियार्थः प्रकीर्त्तितः ॥ श्रुत्वा तु संहृष्टमनाः काश्यपेयः सनातनः ॥ १ ॥ सम्बोध्य सूतं वचसा पप्रच्छाथोत्तरां क
थाम् ॥ अतःप्रभृति कल्पञ्च प्रतिसंधिं प्रचक्ष्व नः ॥ २ ॥ समतीतस्य कल्पस्य वर्त्तमानस्य चोभयोः ॥ कल्पयोरन्तरं यच्च प्रतिसंधिर्य्यतस्तयोः ॥ ए
तद्वेदितुमिच्छामः अत्यन्तकुशलो ह्यसि ॥ ३ ॥ लोमहर्षण उवाच ॥ अत्र वोऽहं प्रवक्ष्यामि प्रतिसंधिश्च यस्तयोः ॥ समतीतस्य कल्पस्य वर्त्तमानस्य
चोभयोः ॥ ४ ॥ मन्वन्तराणि कल्पेषु येषु यानि च सुव्रताः ॥ यश्चायं वर्त्तते कल्पो वाराहः साम्प्रतः शुभः ॥ ५ ॥ अस्मात् कल्पाच्च यः कल्पः पूर्व्वोऽ
तीतः सनातनः ॥ तस्य चास्य च कल्पस्य मध्यावस्थान्निबोधत ॥ ६ ॥ प्रत्याहृते पूर्व्वकल्पे प्रतिसंधिं च तत्र वै ॥ अन्यः प्रवर्त्तते कल्पो जनार्लोकात्
पुनःपुनः ॥ ७ ॥ व्युच्छिन्नात् प्रतिसंधेस्तु कल्पात् कल्पः परस्परम् ॥ व्युच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्व्वाः कल्पान्ते सर्व्वशस्तदा ॥ तस्मात् कल्पात्तु कल्पस्य प्रतिसं
धिर्न्निगद्यते ॥ ८ ॥ मन्वन्तरयुगाख्यानामव्युच्छिन्नाश्च सन्धयः ॥ परस्पराः प्रवर्त्तन्ते मन्वन्तरयुगैः सह ॥ ९ ॥ उक्ता ये प्रक्रियार्थेन पूर्व्वकल्पाः समासतः ॥
तेषां परार्द्धकल्पानां पूर्व्वो ह्यस्मात्तु यः परः ॥ आसीत् कल्पो व्यतीतो वै परार्द्धेन परस्तु सः ॥ १० ॥ अन्ये भविष्या ये कल्पा अपरार्द्धाद्गुणीकृताः ॥
प्रथमः साम्प्रतस्तेषां कल्पोऽयं वर्त्तते द्विजाः ॥ ११ ॥ यस्मिन् पूर्व्वः परार्द्धे तु द्वितीये पर उच्यते ॥ एतावान् स्थितिकालश्च प्रत्याहारस्ततः स्मृतः ॥ १२ ॥

अस्मात् कल्पात्तु यः पूर्व्वं कल्पोऽतीतः सनातनः॥ चतुर्य्युगसहस्रान्ते अहोमन्वन्तरैः पुरा ॥ १३ ॥ क्षीणे कल्पे तदा तस्मिन् दाहकाले ह्युपस्थिते॥
तस्मिन् कल्पे तदा देवा आसन्वैमानिकास्तु ये ॥ १४ ॥ नक्षत्रग्रहतारास्तु चन्द्रसूर्य्यग्रहाश्च ये ॥ अष्टाविंशतिरेवैताः कोट्यस्तु सुकृतात्मनाम्॥ १५ ॥
मन्वन्तरे तथैकस्मिन् चतुर्दशसु वै तथा ॥ त्रीणि कोटिशतान्यासन् कोट्याद्विनवतिस्तथा ॥ अष्टाधिकाः सप्तशताः सहस्राणां स्मृताः पुरा ॥ १६ ॥
वैमानिकानां देवानां कल्पेऽतीते तु येऽभवन् ॥ एकैकस्मिंस्तु कल्पे वै देवा वैमानिकाः स्मृताः ॥ १७ ॥ अथ मन्वन्तरेष्वासंश्चतुर्दशसु वै दिवि ॥
देवाश्च पितरश्चैव मुनयो मनवस्तथा ॥ १८ ॥ तेषामनुचरा ये च मनुपुत्रास्तथैव च ॥ वर्णाश्रमिभिरीड्याश्च तस्मिन् काले तु ये सुराः ॥ मन्वन्तरेषु
ये ह्यासन् देवलोके दिवौकसः ॥ १९ ॥ ते तैः संयोजकैः सार्द्धं प्राप्ते सङ्कलने तथा ॥ तुल्यनिष्ठास्तु ते सर्व्वे प्राप्ते ह्याभूतसंप्लवे ॥ २० ॥ ततस्ते व
श्यभावित्वाद्बुद्ध्वा पर्य्यायमात्मनः ॥ त्रैलोक्यवासिनो देवास्तस्मिन् प्राप्ते ह्युपप्लवे ॥ २१ ॥ तेऽनौत्सुक्यविषादेन त्यक्त्वा स्थानानि भावतः ॥ मह
र्ल्लोकाय संविग्नास्ततस्ते दधिरे मतिम् ॥२२॥ ते युक्ता उपपद्यन्ते महासिस्थैः शरीरकैः ॥ विशुद्धिबहुलाः सर्व्वे मानसीं सिद्धिमास्थिताः ॥२३॥ तैः कल्प
वासिभिः सार्द्धं महानासादितस्तु यैः ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैस्तद्भक्तैश्चापरैर्जनैः ॥ २४ ॥ मत्वा तु ते महर्ल्लोकं देवसङ्घाश्चतुर्दश ॥ ततस्ते जनलोकाय सो
द्वेगा दधिरे मतिं ॥ २५ ॥ विशुद्धिबहुलाः सर्व्वे मानसीं सिद्धिमास्थिताः ॥ तैः कल्पवासिभिः सार्द्धं महानासादितस्तु यैः ॥२६॥ दशकृत्व इवावृत्त्या
तस्माद्गच्छन्ति स्वस्तपः॥तत्र कल्पान् दश स्थित्वा सत्यं गच्छन्ति वै पुनः॥एतेन क्रमयोगेन यान्ति कल्पनिवासिनः॥२७॥एवं देवयुगानान्तु सहस्राणि
परस्परात्॥गतानि ब्रह्मलोकं वै अपरावर्त्तिनीं गतिम्॥२८॥आधिपत्यं विना ते वै ऐश्वर्य्येण तु तत्समाः॥भवन्ति ब्रह्मणस्तुल्या रूपेण विषयेण च ॥ २९ ॥
तत्र ते ह्यवतिष्ठन्ति प्रीतियुक्ताः प्रसङ्गमात् ॥ आनन्दं ब्रह्मणः प्राप्य मुच्यन्ते ब्रह्मणा सह ॥ ३० ॥ अवश्यम्भाविनाऽर्थेन प्राकृतेनैव ते स्वयम् ॥ नाना
त्वेनाभिसम्बद्धास्तदा तत्कालभाविनः ॥ ३१ ॥ स्वरूपतो बुद्धिपूर्व्वं यथा भवति जाग्रतः ॥ तत्कालभावि तेषां तु तथा ज्ञानं प्रवर्त्तते ॥ ३२ ॥ प्र
त्याहारे तु भेदानां येषां भिन्नाभिसूष्मणाम् ॥ तैः सार्द्धं प्रतिसृज्यन्ते कार्य्याणि करणानि च ॥३३॥ नानात्वदर्शनात्तेषां ब्रह्मलोकनिवासिनाम् ॥ विन
ष्टस्वाधिकाराणां स्वेन धर्मेण तिष्ठताम् ॥ ३४॥ ते तुल्यलक्षणाः सिद्धाः शुद्धात्मानो निरञ्जनाः ॥ प्रकृतौ कारणातीताः स्वात्मन्येव व्यवस्थिताः ॥३५॥
प्रख्यापयित्वा ह्यात्मानं प्रकृतिस्तेषु सर्व्वशः ॥ पुरुषाव्यवहृतत्वेन प्रतीता न प्रवर्त्तते ॥ ३६ ॥ प्रवर्तिते पुनः सर्गे तेषां वा कारणं पुनः ॥ संयोगे
प्राकृते तेषां युक्तानां तत्त्वदर्शिनाम् ॥ ३७ ॥ अत्रापवर्गिणां तेषामपुनर्मार्गगामिनाम् ॥ अभावः पुनरुत्पत्तौ शान्तानामर्च्चिषामिव ॥ ३८ ॥ तत

स्तेषु गतेषूर्द्ध्वं त्रैलोक्यात्सुमहात्मसु ॥ तैः सार्द्धं ये महर्ल्लोकात्तदा नासादिता जनाः ॥ तच्छिष्टाश्चेह तिष्ठन्ति कल्पादेहमुपासते ॥ ३९ ॥ गन्धर्वाद्याः
पिशाचान्ता मानुषा ब्राह्मणादयः ॥ पशवः पक्षिणश्चैव स्थावराः ससरीसृपाः ॥ ४० ॥ तिष्ठत्सु तेषु तत्कालं पृथिवीतलवासिषु ॥ सहस्रं यत्तु रश्मीनां
सूर्य्यस्येह विभासते ॥ ते सप्तरश्मयो भूत्वा ह्येकैको जायते रविः ॥ ४१ ॥ क्रमेणोत्तिष्ठमानास्ते त्रीन् लोकान् प्रदहन्त्युत ॥ जङ्गमं स्थावरं चैव नदीः
सर्व्वांश्च पर्व्वतान् ॥ पूर्व्वं शुष्का ह्यनावृष्ट्या सूर्य्यैस्तैश्च प्रधूपिताः ॥ ४२ ॥ तदा ते विविशुः सर्व्वे निर्दग्धाः सूर्य्यरश्मिभिः ॥ जङ्गमाः स्थावराः स
र्व्वे धर्म्माधर्म्मात्मकास्तु वै ॥ ४३ ॥ दग्धदेहास्ततस्ते वै गताः पापयुगात्यये ॥ योन्या तया ह्यनिर्मुक्ताः शुभपापानुबन्धया ॥ ४४ ॥ ततस्ते ह्युप
पद्यन्ते तुल्यरूपा जने जनाः ॥ विशुद्धिबहुलाः सर्व्वे मानसीं सिद्धिमास्थिताः ॥ ४५ ॥ उषित्वा रजनीं तत्र ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ पुनः सर्गे भवन्ती
ह ब्रह्मणो मानसीप्रजाः ॥ ४६ ॥ ततस्तेषु प्रवृत्तेषु जने त्रैलोक्यवासिषु ॥ निर्दग्धेषु च लोकेषु तेषु सूर्य्यैस्तु सप्तभिः ॥ वृष्ट्या क्षितौ प्लावि
तायां विशीर्णेष्वालयेषु च ॥ ४७ ॥ समुद्राश्चैव मेघाश्च आपः सर्व्वाश्च पार्थिवाः ॥ व्रजन्त्येकार्णवत्वं हि सलिलाख्यास्तदाश्रिताः ॥ ४८ ॥ आ
गतागतिकं तद्वै यदा तु सलिलं बहु ॥ संछाद्येमां स्थितां भूमिमर्णवाख्या तदा च सा ॥ ४९ ॥ आभाति यस्मान्नाभान्ति भासन्तो व्याप्तिदीप्तिषु ॥
सर्व्वतः समनुप्लाव्य तासाञ्चाम्भो विभाव्यते ॥ ५० ॥ तदम्भस्तनुते यस्मात् सर्व्वां पृथ्वीं समन्ततः ॥ धातुस्तनोतिर्विस्तारे तेनाम्भस्तनवः
स्मृताः ॥ ५१ ॥ अरमित्येष शीघ्रन्तु निपातः कविभिः स्मृतः ॥ एकार्णवे भवन्त्यापो न शीघ्रास्तेन ते नराः ॥ ५२ ॥ तस्मिन् युगसहस्रान्ते संस्थि
ते ब्रह्मणोऽहनि ॥ राजन्यां वर्त्तमानायान्तावत्तत् सलिलात्मना ॥५३॥ ततस्तु सलिले तस्मिन्नष्टेऽग्नौ पृथिवीतले ॥ प्रशान्तवातेऽन्धकारे निरालोके सम
न्ततः ॥ ५४ ॥ येनैवाधिष्ठितं हीदं ब्रह्मा स पुरुषः प्रभुः ॥ विभागमस्य लोकस्य पुनर्व्वै कर्तुमिच्छति ॥ ५५ ॥ एकार्णवे तदा तस्मिन्नष्टे स्थाव
रजङ्गमे ॥ तदा स भवति ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ ५६ ॥ सहस्रशीर्षा पुरुषो रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः ॥ ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु सुष्वाप सलिले
तदा ॥ ५७ ॥ सत्त्वोद्रेकात् प्रबुद्धस्तु शून्यं लोकमवेक्ष्य च ॥ इमञ्चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति ॥५८॥ आपो नाराख्यास्तनव इत्यपान्नाम शु
श्रुमः ॥ आपूर्य्य नाभिं तत्रास्ते तेन नारायणः स्मृतः ॥५९॥ सहस्रशीर्षा सुमनाः सहस्रपात् सहस्रचक्षुर्व्वदनः सहस्रभुक् ॥ सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजा
पतिस्त्रयीपथे यः पुरुषो निरुच्यते ॥ ६०॥ आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता एको ह्यपूर्व्वः प्रथमन्तुराषाट् ॥ हिरण्यगर्भः पुरुषो महात्मा स पठ्यते वै त
मसः परस्तात् ॥ ६१ ॥ कल्पादौ रजसोद्रिक्तो ब्रह्मा भूत्वाऽसृजत् प्रजाः ॥ कल्पान्ते तमसोद्रिक्तो कालो भूत्वाऽग्रसत् पुनः ॥ ६२ ॥ स वै नारायणा

ख्यस्तु सत्त्वोद्रिक्तोऽर्णवे स्वपन् ॥ त्रिधा विभज्य चात्मानं त्रैलोक्ये समवर्त्तत ॥ ६३ ॥ सृजते ग्रसते चैव वीक्षते च त्रिभिस्तु तान् ॥ एकार्णवे
तदा लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥ ६४ ॥ चतुर्युगसहस्रान्ते सर्व्वतः सलिलावृते ॥ ब्रह्मा नारायणाख्यस्तु अप्रकाशार्णवे स्वपन् ॥ ६५ ॥
चतुर्विधाः प्रजा ग्रस्त्वा ब्राह्म्यां रात्र्यां महार्णवे ॥ पश्यन्ति तं महर्ल्लोकात् सुप्तं कालं महर्षयः ॥ ६६ ॥ भृग्वादयो यथा सप्त कल्पे
ह्यस्मिन् महर्षयः ॥ ततो विवर्त्तमानैस्तैर्महान् परिगतः परः ॥ ६७ ॥ गत्यर्थाद् ऋषयो धातोर्नामनिर्वृत्तिरादितः ॥ तस्माद्दृषिपरत्वेन
महांस्तस्मान्महर्षयः ॥ ६८ ॥ महर्ल्लोकस्थितैर्दृष्टः कालः सुप्तस्तदा च तैः ॥ सत्याद्याः सप्त ये ह्यासन् कल्पेऽतीते महर्षयः ॥ ६९ ॥
एवं ब्राह्मीषु रात्रीषु ह्यतीतासु सहस्रशः ॥ दृष्टवन्तस्तथा ह्यन्ये सुप्तं कालं महर्षयः ॥ ७० ॥ कल्पस्यादौ तु बहुशो यस्मात् संस्थाश्चतुर्दश ॥
कल्पयामास वै ब्रह्मा तस्मात् कालो निरुच्यते॥७१॥ स स्रष्टा सर्व्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः॥व्यक्ताव्यक्तो महादेवस्तस्य सर्व्वमिदं जगत् ॥७२॥
इत्येष प्रतिसन्धिर्व्वः कीर्त्तितः कल्पयोर्द्वयोः ॥ साम्प्रतातीतयोर्म्मध्ये प्रागवस्था बभूव या ॥ ७३ ॥ कीर्त्तिता तु समासेन कल्पे कल्पे यथा तथा ॥
साम्प्रन्तते प्रवक्ष्यामि कल्पमेतं निबोधत ॥ ७४ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते प्रतिसन्धिकीर्त्तनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ७ ॥ ॥ सूत उवाच ॥
तुल्यं युगसहस्रस्य नैशङ्कालमुपास्य सः ॥ शर्व्वर्य्यन्ते प्रकुरुते ब्रह्मत्वं सर्गकारणात् ॥ १ ॥ ब्रह्मा तु सलिले तस्मिन् वायुर्भूत्वा तदाचरत् ॥
अन्धकारे तदा तस्मिन् नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥ २ ॥ जलेन समनुव्याप्ते सर्व्वतः पृथिवीतले॥ अविभागेन भूतेषु समन्तात्सुस्थितेषु च ॥ ३ ॥ निशाया
मिव खद्योतः प्रावृट्काले ततस्ततः ॥ तदाकाशे चरन् सोऽथ वीक्ष्यमाणः स्वयम्भुवः ॥ ४ ॥ प्रतिष्ठाया ह्युपायन्तु मार्गमाणस्तदा प्रभुः ॥ ततस्तु
सलिले तस्मिन् ज्ञात्वा ह्यन्तर्गतां महीम् ॥ ५ ॥ अनुमानात्तु सम्बुद्धो भूमेरुद्धरणं प्रति ॥ चकारान्यान्तनुश्चैव पूर्व्वकल्पादिषु स्मृताम् ॥ ६ ॥ स तु
रूपं वराहस्य कृत्वाऽपः प्राविशत् प्रभुः ॥ अद्भिः सञ्छादितामुर्व्वीं समीक्ष्याथ प्रजापतिः ॥ ७ ॥ उद्धृत्योर्व्वीमथाद्भ्यस्तु अपस्तास्तु स विन्यसत् ॥
सामुद्रीस्तु समुद्रेषु नादेयीर्निम्नगास्वपि ॥ पार्थिवीस्तु स विन्यस्य पृथिव्यां सोऽचिनोद्गिरीन् ॥ ८ ॥ प्राक्सर्गे दह्यमाने तु तदा संवर्त्तकाग्निना ॥
तेनाग्निना प्रलीनास्ते पर्व्वता भुवि सर्व्वशः ॥ ९ ॥ शैत्यादेकार्णवे तस्मिन् वायुनापस्तु संहताः ॥ निषक्ता यत्र यत्रासंस्तत्रतत्राऽचलोऽभवत् ॥१०॥
स्कन्नाचलत्वादचलाः पर्व्वभिः पर्वताः स्मृताः ॥ गिरयोऽद्रिर्निगीर्णत्वाच्चयनाच्च शिलोच्चयाः ॥ ११ ॥ ततस्तु तां समुद्धृत्य क्षितिमन्तर्ज्जलात् प्रभुः ॥
स्वस्थाने स्थापयित्वा च विभागमकरोत् पुनः ॥१२॥ सप्त सप्त तु वर्षाणि तस्या द्वीपेषु सप्तसु॥ विषमाणि समीकृत्य शिलाभिराचिनोद्गिरीन् ॥१३॥

द्वीपेषु तेषु वर्षाणि चत्वारिंशत्तथैव च ॥ तावन्तः पर्व्वताश्चैव वर्षान्ते समवस्थिताः ॥ सर्गादौ सन्निविष्टास्ते स्वभावेनैव नान्यथा ॥ १४ ॥ सप्त
द्वीपाः समुद्राश्च अन्योन्यस्य तु मण्डलम् ॥ सन्निकृष्टाः स्वभावेन समावृत्य परस्परम् ॥ १५ ॥ भूराख्यांश्चतुरो लोकांश्चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह ॥ पूर्व्वं तु
निर्म्ममे ब्रह्मा स्थानानीमानि सर्व्वशः ॥ १६ ॥ कल्पस्य चास्य ब्रह्मा वै ह्यसृजत् स्थानिनः पुरा ॥ आपोऽग्निः पृथिवी वायुरन्तरिक्षं दिवं तथा ॥ १७ ॥
स्वर्गं दिशः समुद्रांश्च नदीः सर्व्वांश्च पर्व्वतान् ॥ ओषधीनां तथात्मानमात्मानं वृक्षवीरुधाम् ॥ १८ ॥ लवाः काष्ठाः कलाश्चैव मुहूर्तं सं
धिरात्र्यहम् ॥ अर्द्धमासांश्च मासांश्च अयनाब्दयुगानि च ॥ १९ ॥ स्थानाभिमानिनश्चैव स्थानानि च पृथक् पृथक् ॥ स्थानात्मनः
स सृष्ट्वा वै युगावस्थां विनिर्म्ममे ॥२०॥ कृतन्त्रेता द्वापरं च कलिं चैव तथा युगम् ॥ कल्पस्यादौ कृतयुगे प्रथमे सोऽसृजत् प्रजाः ॥ २१ ॥ प्रागुक्ता
या मया तुभ्यं पूर्व्वकालं प्रजास्तु ताः ॥ तस्मिन् संवर्त्तमाने तु कल्पे दग्धास्तदाऽग्निना ॥ २२ ॥ अप्राप्ता यास्तपोलोकं जनलोकं समाश्रिताः ॥
प्रवर्तंति पुनः सर्गे बीजार्थं ता भवन्ति हि॥२३॥ बीजार्थेन स्थितास्तत्र पुनः सर्गस्य कारणात् ॥ ततस्ताः सृज्यमानास्तु सन्तानार्थं भवन्ति हि॥२४॥
धर्म्मार्थकाममोक्षाणामिह ताः साधकाः स्मृताः ॥ देवाश्च पितरश्चैव ऋषयो मनवस्तथा ॥ २५ ॥ ततस्ते तपसा युक्ता स्थानान्यापूरयन्ति हि ॥ ब्रह्म
णो मानसास्ते वै सिद्धात्मानो भवन्ति हि ॥ २६ ॥ ये सर्गद्वेषयुक्तेन कर्म्मणा ते दिवं गताः ॥ आवर्त्तमाना इह ते सम्भवन्ति युगे युगे ॥ २७ ॥ स्वक
र्म्मफलशेषेण ख्याताश्चैव तथात्मिकाः ॥ संभवन्ति जनाल्लोकात् कर्म्मसंशयबन्धनात् ॥ २८ ॥ आशयः कारणं तत्र बोद्धव्यं कर्म्मणां तु सः ॥ तैः क
र्म्मभिस्तु जायन्ते जनाल्लोकाः शुभाशुभैः ॥ २९ ॥ गृह्णन्ति ते शरीराणि नानारूपाणि योनिषु ॥ देवाद्यस्थावरान्ते च उत्पद्यन्ते परस्परम् ॥ ३० ॥
तेषां ये यानि कर्म्माणि प्राक् सृष्टेः प्रतिपेदिरे ॥ तान्येते प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥ ३१ ॥ हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्म्माधर्म्मे ऋतानृते ॥
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥ ३२ ॥ कल्पेष्वासन् व्यतीतेषु रूपनामानि यानि च ॥ तान्येवानागते काले प्रायशः प्रतिपेदिरे ॥३३॥ त
स्मात्तु नामरूपाणि तान्येव प्रतिपेदिरे ॥ पुनः पुनस्ते कल्पेषु जायन्ते नामरूपतः ॥ ३४ ॥ ततः सर्गे ह्यवष्टब्धे सिसृक्षोर्ब्रह्मणस्तु वै ॥ प्रजास्ता
ध्यायतस्तस्य सत्याभिध्यायिनस्तदा ॥ ३५ ॥ मिथुनानां सहस्रन्तु सोऽसृजद्वै मुखात्तदा ॥ जनास्ते ह्युपपद्यन्ते सत्त्वोद्रिक्ताः सुचेतसः ॥ ३६ ॥
सहस्रमन्यद्वक्षस्तो मिथुनानां ससर्ज्ज ह ॥ ते सर्व्वे रजसोद्रिक्ताः शुष्मिणश्चाप्यशुष्मिणः ॥ ३७ ॥ सृष्ट्वा सहस्रमन्यत्तु द्वन्द्वानामूरुतः पुनः ॥ रजस्त
मोभ्यामुद्रिक्ता ईहाशीलास्तु ते स्मृताः ॥ ३८ ॥ पद्भ्यां सहस्रमन्यत्तु मिथुनानां ससर्ज्ज ह ॥ उद्रिक्तास्तमसा सर्व्वे निःश्रीका ह्यल्पतेजसः ॥ ३९ ॥

ततो वै हर्षमानास्ते द्वन्द्वोत्पन्नास्तु प्राणिनः ॥ अन्योन्या हृच्छयाविष्टा मैथुनायोपचक्रमुः ॥ ४० ॥ ततःप्रभृति कल्पेऽस्मिन् मिथुनोत्पत्तिरुच्यते ॥
मासे मासेऽर्त्तवं यद्यत्तदाज्ञासीद्धि योषिताम् ॥ ४१ ॥ तस्मात्तदा न सुषुवुः सेवितैरपि मैथुनैः ॥ आयुषोऽन्ते प्रसूयन्ते मिथुनान्येव ते सकृत् ॥ ४२ ॥
कुटकाः कुविकाश्चैव उत्पद्यन्ते मुमूर्षिताः ॥ ततः प्रभृतिकल्पेऽस्मिन् मिथुनानां हि सम्भवः ॥ ४३ ॥ ध्याते तु मनसा तासां प्रजानां जायते सकृत् ॥
शब्दादिविषयः शुद्धः प्रत्येकं पञ्चलक्षणः ॥ ४४ ॥ इत्येवं मनसा पूर्व्वं प्राक्सृष्टिर्य्या प्रजापतेः ॥ तस्यान्ववाये सम्भूता यैरिदं पूरितं जगत् ॥ ४५ ॥
सरित्सरः समुद्रांश्च सेवन्ते पर्व्वतानपि ॥ तदा नात्यम्बुशीतोष्णा युगे तस्मिन् चरन्ति वै ॥४६॥ पृथ्वीरसोद्भवं नाम आहारं ह्याहरन्ति वै ॥ ताः प्रजाः
कामचारिण्यो मानसीं सिद्धिमास्थिताः ॥४७॥ धर्माधर्मौ न तास्वास्तां निर्विशेषाः प्रजास्तु ताः॥ तुल्यमायुः सुखं रूपं तासां तस्मिन् कृते युगे॥४८॥
धर्माधर्मौ न तास्वास्तां कल्पादौ तु कृते युगे॥स्वेन स्वेनाधिकारेण जज्ञिरे ते कृते युगे॥४९॥चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां दिव्यसंख्यया॥आद्यं कृतयुगं
प्राहुः सन्ध्यानान्तु चतुःशतम्॥५०॥ततः सहस्रशस्तासु प्रजासु प्रथितास्वपि॥न तासाम्प्रतिघातोऽस्ति न द्वन्द्वनापि च क्रमः॥५१॥पर्व्वतोदधिसेविन्यो ह्य
निकेताश्रयास्तु ताः॥विशोकाःसत्त्वबहुलाः एकान्तसुखितप्रजाः॥५२॥ता वै निकामचारिण्यो नित्यं मुदितमानसाः॥ पशवः पक्षिणश्चैव न तदासन् सरी
सृपाः ॥५३॥ नोद्भिज्जा नारकाश्चैव ते ह्यधर्म्मप्रसूतयः॥न मूलफलपुष्पञ्च नार्त्तवं ह्यृतवो न च ॥५४॥ सर्व्वकामसुखः कालो नात्यर्थं ह्युष्णशीतता ॥
मनोभिलषिताः कामास्तासां सर्व्वत्र सर्व्वदा ॥ ५५ ॥ उत्तिष्ठन्ति पृथिव्यां वै ताभिर्ध्याता रसोत्थिताः ॥ बलवर्णकरी तासां सिद्धिः सा रोगनाशि
नी ॥ ५६ ॥ असंस्कार्य्यैः शरीरैश्च प्रजास्ताः स्थिरयौवनाः ॥ तासां विशुद्धात् सङ्कल्पाज्जायन्ते मिथुनाः प्रजाः ॥ ५७ ॥ समं जन्म च रूपञ्च म्रि
यन्ते चैव ताः समम् ॥ तदा सत्यमलोभश्च क्षमा तुष्टिः सुखन्दमः ॥ ५८ ॥ निर्विशेषाः कृताः सर्व्वा रूपायुःशीलचेष्टितैः ॥ अबुद्धिपूर्व्वकं वृत्तं प्रजानां
जायते स्वयम् ॥ ५९ ॥ अप्रवृत्तिः कृतयुगे कर्म्मणोः शुभपापयोः ॥ वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च न तदासन्न सङ्करः ॥ ६० ॥ अनिच्छाद्वेषयुक्तास्ते वर्त्तयन्ति
परस्परम् ॥ तुल्यरूपायुषः सर्व्वा अधमोत्तमवर्ज्जिताः ॥६१॥ सुखप्राया ह्यशोकाश्च उत्पद्यन्ते कृते युगे॥नित्यप्रहृष्टमनसो महासत्वा महाबलाः॥ ६२॥
लाभालाभौ न तास्वास्तां मित्रामित्रे प्रियाप्रिये ॥ मनसा विषयस्तासान्निरीहाणां प्रवर्त्तते ॥ न लिप्सन्ति हि ताऽन्योन्यन्नानुगृह्णन्ति चैव हि ॥ ६३ ॥
ध्यानं परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ॥ प्रवृत्तं द्वापरे यज्ञं दानं कलियुगे वरम् ॥ ६४ ॥ सत्त्वं कृतं रजस्त्रेता द्वापरन्तु रजस्तमौ ॥ कलौ तमस्तु
विज्ञेयं युगवृत्तवशेन तु ॥ ६५ ॥ कालः कृते युगे त्वेष तस्य संख्यान्निबोधत ॥ चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणान्तत् कृतं युगम् ॥ ६६ ॥ सन्ध्यांशौ

तस्य दिव्यानि शतान्यष्टौ च संख्यया ॥ तदा तासां बभूवायुर्न्नं च क्लेशविपत्तयः॥६७॥ ततः कृतयुगे तस्मिन् सन्ध्यांशे हि गते तु वै ॥ पादावशिष्टो भवति युगधर्म्मस्तु सर्व्वशः ॥६८॥ सन्ध्यायामप्यतीतायामन्तकाले युगस्य तु॥ पादतश्चावतिष्ठेत्तु सन्ध्याधर्म्मो युगस्य तु ॥ एवं कृते तु निःशेषे सिद्धिस्त्वन्तर्द्धे तदा ॥ ६९ ॥ तस्याञ्च सिद्धौ भ्रष्टायां मानस्यामभवत्ततः ॥ सिद्धिरन्या युगे तस्मिंस्त्रेतायामन्तरे कृताः ॥ ७० ॥ सर्गादौ या मयाष्टौ तु मानस्यो वै प्रकीर्त्तिताः ॥ अष्टौ ताः क्रमयोगेन सिद्धयो यान्ति संक्षयम् ॥ ७१ ॥ कल्पादौ मानसी ह्येषा सिद्धिर्भवति सा कृते॥ मन्वन्तरेषु सर्व्वेषु चतुर्युगविभागशः ॥ वर्णाश्रमाचारकृतः कर्म्मसिद्धोद्भवः स्मृतः ॥ ७२ ॥ सन्ध्याकृतस्य पादेन सन्ध्यापादेन चांशतः ॥ कृतसन्ध्यांशका ह्येते त्रींस्त्रीन् पादान् परस्परान् ॥ ह्रसन्ति युगधर्म्मैस्ते तपःश्रुतबलायुषैः ॥ ७३॥ ततः कृतांशे क्षीणे तु बभूव तदनन्तरम् ॥ त्रेतायां युगमन्यन्तु कृतांशमृषिसत्तमाः॥७४॥ तस्मिन् क्षीणे कृतांशे तु तच्छिष्टासु प्रजास्विह ॥ कल्पादौ संप्रवृत्तायास्त्रेतायाः प्रमुखे तदा ॥ ७५ ॥ प्रणश्यति तदा सिद्धिः कालयोगेन नान्यथा ॥ तस्यां सिद्धौ प्रणष्टायामन्या सिद्धिरवर्त्तत ॥७६॥ अपां सौक्ष्म्ये प्रतिगते तदा मेघात्मना तु तौ ॥ मेघेभ्यस्तनयित्नुभ्यः प्रवृत्तं वृष्टिसर्ज्जनम् ॥ ७७॥ सकृदेव तया वृष्ट्या संयुक्ते पृथिवीतले ॥ प्रादुरासंस्तदा तासां वृक्षास्तु गृहसंस्थिताः ॥ ७८ ॥ सर्वप्रत्युपभोगस्तु तासां तेभ्यः प्रजायते ॥ वर्त्तयन्ति हि तेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखे प्रजाः ॥ ७९ ॥ ततः कालेन महता तासामेव विपर्य्ययात् ॥ रागलोभात्मको भावस्तदा ह्याकस्मिकोऽभवत् ॥ ८० ॥ यत्तद्भवति नारीणां जीवितान्ते तदार्त्तवम् ॥ तदा तद्वै न भवति पुनर्युगबलेन तु ॥८१॥ तासां पुनः प्रवृत्तं तु मासे मासे तदार्त्तवम् ॥ ततस्तेनैव योगेन वर्त्ततां मिथुने तदा ॥ ८२ ॥ तासां तत्कालभावित्वान्मासि मास्युपगच्छताम् ॥ अकाले ह्यार्त्तवोत्पत्तिर्गर्भोत्पत्तिरजायत ॥ ८३ ॥ विपर्य्ययेण तासां तु तेन कालेन भाविना ॥ प्रणश्यन्ति ततः सर्व्वे वृक्षास्ते गृहसंस्थिताः ॥८४॥ ततस्तेषु प्रणष्टेषु विभ्रांता व्याकुलेन्द्रियाः ॥ अभिध्यायन्ति तां सिद्धिं सत्याभिध्यायिनस्तदा ॥ ८५ ॥ प्रादुर्ब्बभूवुस्तासां च वृक्षास्ते गृहसंस्थिताः ॥ वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलान्याभरणानि च ॥ ८६ ॥ तेष्वेव जायते तासां गंधवर्णरसान्वितम् ॥ अमाक्षिकं महावीर्य्यं पुटके पुटके मधु ॥८७॥ तेन ता वर्तयंतिस्म मुखे त्रेतायुगस्य च ॥ हृष्टतुष्टास्तया सिद्ध्या प्रजा वै विगतज्वराः ॥ ८८ ॥ पुनः कालांतरेणैव पुनर्ल्लोभावृतास्तु ताः ॥ वृक्षांस्तान् पर्य्यगृह्णंत मधु वामाक्षिकं बलात् ॥ ८९ ॥ तासां तेनापचारेण पुनर्ल्लोकक्रूतेन वै ॥ प्रणष्टा मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षाः क्वचित् क्वचित् ॥ ९० ॥ तस्यामेवाल्पशिष्टायां संध्याकालवशात्तदा ॥ प्रावर्तत तदा तासां द्वंद्वान्यभ्युत्थितानि तु ॥ ९१ ॥ शीतवातातपैस्तीव्रैस्ततस्ता दुःखिता भृशम् ॥ द्वंद्वैस्ताः पीड्यमानास्तु चक्रुरावरणानि च ॥ ९२ ॥ कृत्वा द्वंद्वप्रतीकारं निके

तानि हि भेजिरे ॥ पूर्व्वं निकामचारास्ते अनिकेताश्रया भृशम् ॥ ९३ ॥ यथायोग्यं यथाप्रीति निकेतेष्ववसन् पुनः ॥ मरुधन्वसु निम्नेषु पर्व्वतेषु नदीषु च ॥ संश्रयंति च दुर्गाणि धन्वानं शाश्वतोदकम् ॥ ९४ ॥ यथायोगं यथाकामं समेषु विषमेषु च ॥ आरब्धास्ते निकेता वै कर्त्तुं शीतोष्णवारणम् ॥ ९५ ॥ ततः संस्थापयामास खेटानि च पुराणि च ॥ ग्रामांश्चैव यथाभागं तथैवांतःपुराणि च ॥९६॥ तासामायामविष्कम्भान् संनिवेशांतराणि च ॥ चक्रुस्तदा यथाप्रज्ञं प्रदेशः संज्ञितस्तु तैः॥९७॥अंगुष्ठस्य प्रदेशिन्या व्यासः प्रादेश उच्यते ॥ तालः स्मृतो मध्यमया गोकर्णश्चाप्यनामया॥९८॥ कनिष्ठया वितस्तिस्तु द्वादशाङ्गुल उच्यते ॥ रत्निरंगुलपर्व्वाणि संख्यया त्वेकविंशतिः ॥ ९९ ॥ चतुर्विंशतिभिश्चैव हस्तः स्यादङ्गुलानि तु ॥ किष्कुः स्मृतो द्विरत्निस्तु द्विचत्वारिंशदङ्गुलम् ॥१००॥ चतुर्हस्तं धनुर्दण्डो नालिकायुगमेव च ॥ धनुःसहस्रे द्वे तत्र गव्यूतिस्तैर्विभाव्यते ॥१०१॥ अष्टौ धनुःसहस्राणि योजनं तैर्निरुच्यते ॥ एतेन योजनेनैव सन्निवेशस्ततः कृतः ॥ १०२ ॥ चतुर्णामेव दुर्गाणां स्वसमुत्थानि त्रीणि तु ॥ चतुर्थं कृत्रिमं दुर्गं तस्य वक्ष्याम्यहं विधिम्॥१०३॥सौधोच्चवप्रप्राकारं सर्व्वतश्चातकावृतम्॥ तदेकं स्वस्तिकद्वारं कुमारीपुरमेव च॥१०४॥श्रोतसीसह तद्वारं निखातं पुनरेव च ॥ हस्ताष्टौ च दश श्रेष्ठा नवाष्टौ वाऽपरे मताः॥१०५॥ खेटानां नगराणाञ्च ग्रामाणाञ्चैव सर्व्वशः॥ त्रिविधानाञ्च दुर्गाणां पर्व्वतोदकवन्धनम्॥१०६॥त्रिविधानाञ्च दुर्गाणां विष्कम्भायाममेव च ॥ योजनानाञ्च विष्कम्भमष्टभागार्द्धमायतम् ॥१०७॥ परमार्द्धार्द्धमायामं प्रागुदक्प्रवरं पुरम् ॥ छिन्नकर्णं विकर्णन्तु व्यञ्जनं कृशसंस्थितम्॥१०८॥ वृत्तं हीनञ्च दीर्घञ्च नगरं न प्रशस्यते॥चतुरस्रार्ज्जवन्दिक्स्थं प्रशस्तं वै पुरं परम् ॥१०९॥ चतुर्विंशतिराद्यन्तु हस्तानष्टशतं परम् ॥अत्र मध्यं प्रशंसन्तिं ह्रस्वोत्कृष्टविवर्ज्जितम् ॥११०॥अथ किष्कुशतान्यष्टौ प्राहुर्मुख्यनिवेशनम्॥नगरादर्धविष्कम्भं खेटं ग्रामं ततो बहिः॥१११॥ नगराद्योजनं खेटं खेटाद्ग्रामोऽर्द्धयोजनम्॥द्विक्रोशं परमा सीमा क्षेत्रसीमा चतुर्द्धनुः ॥ ११२ ॥ विंशद्धनूंषि विस्तीर्णो दिशां मार्गस्तुतैः कृतः ॥ विंशद्धनुर्ग्राममार्गः सीमामार्गो दशैव तु ॥११३॥ धनूंषि दश विस्तीर्णः श्रीमान् राजपथः स्मृतः॥नृवाजिरथनागानामसम्बाधः सुसञ्चरः॥११४॥धनूंषि चैव चत्वारि शाखारथ्यास्तुतैः कृताः॥ गृहरथ्योपरथ्याश्च द्विकाश्चाप्युपरथ्यकाः॥११५॥ घण्टापथश्चतुष्पादस्त्रिपदञ्च गृहान्तरम्॥वृत्तिमार्गास्त्वर्द्धपदं प्राग्वंशः पदिकः स्मृतः॥११६॥अवस्करं परीवाहं पदमात्रं समन्ततः॥ कृतेषु तेषु स्थानेषु पुनश्चक्रुर्गृहाणि वै ॥११७ ॥ यथा ते पूर्व्वमासन्वै वृक्षास्तु गृहसंस्थिताः॥ तथा कर्तुं समारब्धाश्चिन्तयित्वा पुनः पुनः ॥११८॥वृक्षाश्चैव गताः शाखा न ताश्चैव परागताः॥ अत ऊर्द्धगताश्चान्या एवं तिर्य्यग्गताः पुरा॥११९॥बुद्ध्याऽन्विष्यस्तथा न्यायो वृक्षशाखा यथा गताः॥तथा कृतास्तु तैः शाखास्तस्माच्छालास्तु ताः स्मृताः ॥१२०॥

एवं प्रसिद्धाः शाखाभ्यः शालाश्चैव गृहाणि च ॥ तस्मात्ता वै स्मृताः शालाः शालात्वं चैव तासु तत् ॥१२१॥ प्रसीदाति मनस्तासु मनः प्रसादयन्ति ताः ॥ तस्माद्गृहाणि शालाश्च प्रासादाश्चैव संज्ञिताः ॥ १२२ ॥ कृत्वा द्वन्द्वोपघातांस्तान् वार्त्तोपायमचिन्तयन् ॥ नष्टेषु मधुना सार्द्धं कल्पवृक्षेषु वै तदा ॥ विषादव्याकुलास्ता वै प्रजास्तृष्णाक्षुधात्मिकाः ॥ १२३ ॥ ततः प्रादुर्बभौ तासां सिद्धिस्त्रेतायुगे पुनः ॥ वार्त्तार्थसाधिकाप्यन्या वृत्तिस्तासां हि कामतः ॥ १२४॥ तासां वृष्ट्युदकानीह यानि निम्नैर्गतानि तु॥वृष्ट्या तदभवत्स्रोतः खातानि निम्नगाः स्मृताः ॥१२५॥ एवं नद्यः प्रवृत्तास्तु द्वितीये वृष्टिसर्जने ॥ ये परस्तादपां स्तोका आपन्नाः पृथिवीतले ॥ १२६ ॥ अपाम्भूमेश्च संयोगादोषध्यस्तासु चाभवन्॥ पुष्पमूलफलिन्यस्तु ओषध्यस्ताः प्रजज्ञिरे॥१२७॥अफालकृष्टाश्चानुप्ता ग्राम्याऽरण्याश्चतुर्दश॥ऋतुपुष्पफलाश्चैव वृक्षा गुल्माश्च जज्ञिरे॥१२८॥प्रादुर्भावश्च त्रेतायां वार्त्तायामौषधस्य तु॥ तेनौषधेन वर्त्तन्ते प्रजास्त्रेतायुगे तदा ॥ १२९ ॥ ततः पुनरभूत्तासां रागो लोभश्च सर्व्वशः ॥ अवश्यम्भाविनार्थेन त्रेतायुगवशेन तु ॥ १३० ॥ ततस्ताः पर्य्यगृह्णन्त नदीक्षेत्राणि पर्व्वतान् ॥ वृक्षान् गुल्मौषधीश्चैव प्रसह्यन्तु यथाबलं ॥ १३१ ॥ सिद्धात्मानस्तु ये पूर्व्वं व्याख्याताः प्राकृते मया ॥ ब्रह्मणा मानवास्ते वै उत्पन्ना योजनादिह ॥१३२॥ शान्ताश्च शुष्मिणश्चैव कर्म्मिणो दुःखिनस्तदा ॥ ततः प्रवर्त्तमानास्ते त्रेतायां जज्ञिरे पुनः॥१३३॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा द्रोहिजनास्तथा ॥ भाविताः पूर्व्वजातीषु कर्म्मभिश्च शुभाशुभैः ॥१३४॥इतस्तेभ्यो बला ये तु सत्यशीला ह्यहिंसकाः ॥ वीतलोभा जितात्मानो निवसन्ति स्म तेषु वै ॥१३५॥ प्रतिगृह्णन्ति कुर्व्वन्ति तेभ्यश्चान्येऽल्पतेजसः ॥ एवं विप्रतिपन्नेषु प्रपन्नेषु परस्परम् ॥१३६॥ तेन दोषेण तेषां ता ओषध्यो मिषतां तदा॥प्रणष्टा ह्रियमाणा वै मुष्टिभ्यां सिकता यथा ॥१३७॥अग्रसद्भूर्य्युगबलाद्ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश॥ फलं गृह्णन्ति पुष्पैश्च पुष्पं पत्रैश्च याः पुनः॥१३८॥ततस्तासु प्रणष्टासु विभ्रान्तास्ताः प्रजास्तदा॥स्वयम्भुवं प्रभुं जग्मुः क्षुधाविष्टाः प्रजापतिम्॥१३९॥वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्त आदौ त्रेतायुगस्य तु॥ब्रह्मा स्वयम्भूर्भगवान् ज्ञात्वातासां मनीषितम्॥१४०॥युक्तंप्रत्यक्षदृष्टेन दर्शनेनविचार्य्य च॥ग्रस्ताः पृथिव्या ओषध्यो ज्ञात्वा प्रत्यदुहत्पुनः॥१४१॥कृत्वा वत्सं सुमेरुं तु दुदोह पृथिवीमिमाम्॥ दुग्धेयं गौस्तदा तेन बीजानि पृथिवीतले ॥१४२॥ जज्ञिरे तानि बीजानि ग्राम्यारण्यास्तु ताः पुनः॥ओषध्यः फलपाकांताः सप्तसप्तदशास्तु ताः॥१४३॥व्रीहयश्चयवाश्चैवगोधूमा अणवस्तिलाः॥प्रियङ्गवो ह्युदाराश्च कारूषाश्च सतीनकाः॥१४४॥ माषामुद्गा मसूराश्च निष्पावाः सकुलस्थकाः ॥ आढक्यश्चणकाश्चैव सप्तसप्तदशाः स्मृताः ॥१४५॥ इत्येता ओषधीनां तु ग्राम्याणां जातयः स्मृताः ॥ ओषध्यो यज्ञियाश्चैव ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश॥१४६॥ व्रीहयः सयवा माषा गोधूमा अणवस्तिलाः ॥ प्रियंगुसप्तमा ह्येते अष्टमी तु कुलत्थिका॥१४७॥ श्यामाका

स्त्वथ नीवारा जर्त्तिलाः सगवेधुकाः॥कुरुविंदा वेणुयवास्तथा मर्कटकाश्च ये॥१४८॥ग्राम्यारण्याः स्मृता ह्येता ओषध्यस्तु चतुर्दश॥उत्पन्नाः प्रथमा ह्येता
आदौ त्रेतायुगस्य तु॥१४९॥अफालकृष्टा ओषध्यो ग्राम्यारण्यास्तु सर्व्वशः॥वृक्षा गुल्मलतावल्लीवीरुधस्तृणजातयः॥१५०॥मूलैः फलैश्च रोहिण्यो गृह्णन्
पुष्पैश्च जायते ॥ पृथ्वी दुग्धा तु बीजानि यानि पूर्वं स्वयम्भुवा॥१५१॥ऋतुपुष्पफलास्ता वै ओषध्यो जज्ञिरे त्विह ॥ यदा प्रसृष्टा ओषध्यो न प्ररोहंति ताः
पुनः ॥ १५२ ॥ ततः स तासां वृत्त्यर्थं वार्त्तोपायं चकार ह ॥ ब्रह्मा स्वयंभूर्भगवान् दृष्ट्वा सिद्धिं तु कर्म्मजाम् ॥१५३॥ ततः प्रभृत्यथौषध्यः कृष्टपच्या
स्तु जज्ञिरे ॥ संसिद्धायान्तु वार्त्तायान्ततस्तासां स्वयंभुवः ॥ मर्य्यादाः स्थापयामास यथारब्धाः परस्परम् ॥ १५४ ॥ ये वै परिगृहीतारस्तासामा
सन्विधात्मकाः ॥ इतरेषां कृतत्राणाः स्थापयामास क्षत्रियान् ॥ १५५ ॥ उपतिष्ठंति ये तान्वै यावंतो निर्भयास्तथा ॥ सत्यं ब्रह्म यथा भूतं ब्रुवंतो
ब्राह्मणाश्च ते ॥ १५६ ॥ ये चान्येप्यबलास्तेषां वैश्यसंकर्म्मसंस्थिताः ॥ कीनाशा नाशयंति स्म पृथिव्यां प्रागतंद्रिताः ॥ वैश्यानेव तु तानाहुः की
नाशान् वृत्तिसाधकान् ॥ १५७ ॥ शोचंतश्च द्रवंतश्च परिचर्य्यासु ये रताः ॥ निस्तेजसोऽल्पवीर्य्याश्च शूद्रास्तानब्रवीत्तु सः ॥ १५८ ॥ तेषां क
र्म्माणि धर्म्मांश्च ब्रह्मा तु व्यदधात् प्रभुः ॥ संस्थितौ प्राकृतायां तु चातुर्व्वर्णस्य सर्व्वशः ॥ १५९ ॥ पुनः प्रजास्तु ता मोहात् तान् धर्म्मांतानपा
लयन् ॥ वर्णधर्मैरजीवन्त्यो व्यरुध्यंत परस्परम् ॥१६०॥ ब्रह्मा तमर्थं बुद्ध्वा तु याथातथ्येन वै प्रभुः ॥ क्षत्रियाणां बलं दण्डं युद्धमाजीवमादिशत्॥१६१॥
याजनाध्यापनं चैव तृतीयं च परिग्रहम् ॥ ब्राह्मणानां विभुस्तेषां कर्म्माण्येतान्यथादिशत् ॥ १६२ ॥ पाशुपाल्यं च वाणिज्यं कृषिं चैव विशां ददौ ॥
शिल्पाजीवं भृतिञ्चैव शूद्राणां व्यदधात् प्रभुः ॥ १६३ ॥ सामान्यानि तु कर्म्माणि ब्रह्मक्षत्रविशां पुनः ॥ यजनाध्ययनं दानं सामान्यानि तु तेषु
च ॥ १६४ ॥ कर्म्माजीवन्ततो दत्त्वा तेभ्यश्चैव परस्परम् ॥ लोकान्तरेषु स्थानानि तेषां सिद्ध्याऽददत् प्रभुः ॥ १६५ ॥ प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं
स्थानं क्रियावताम् ॥ स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम् ॥ १६६ ॥ वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्म्ममुपजीविनाम् ॥ गान्धर्व्वं शूद्रजातीनां
प्रतिचारेण तिष्ठताम् ॥ १६७ ॥ स्थानान्येतानि वर्णानां व्यत्याचारवतां स्वयम् ॥ ततः स्थितेषु वर्णेषु स्थापयामास चाश्रमान् ॥ १६८ ॥ गृहस्थो ब्र
ह्मचारित्वं वानप्रस्थं सभिक्षुकम् ॥ आश्रमांश्चतुरो ह्येतान् पूर्व्वमास्थापयत् प्रभुः ॥ १६९ ॥ वर्णकर्म्माणि ये केचित्तेषामिह न कुर्व्वते ॥ कुतः कर्म्मा
क्षितिं प्राहुराश्रमस्थानवासिनः ॥ १७० ॥ ब्रह्मा तान् स्थापयामास आश्रमान्नामनामतः ॥ निर्देशार्थं ततस्तेषां ब्रह्मा धर्म्मान् प्रभाषत ॥ प्रस्थानानि
च तेषां वै यमांश्च नियमांश्च ह ॥ १७१ ॥ चातुर्व्वर्णात्मकः पूर्वं गृहस्थश्चाश्रमः स्मृतः ॥ त्रयाणामाश्रमाणाञ्च प्रतिष्ठायोनिरेव च ॥ यथाक्रमं प्रवक्ष्या

मि यमैश्च नियमैश्च ते ॥१७२॥ दाराऽग्नयोऽथातिथेयइज्याश्राद्धक्रियाः प्रजाः ॥ इत्येष वै गृहस्थस्य समासाद्धर्म्मसंग्रहः ॥१७३॥ दण्डी च मेखली चैव
ह्यधःशायी तथा जटी ॥ गुरुशुश्रूषणम्भैक्षं विद्याद्धि ब्रह्मचारिणः ॥ १७४ ॥ चीरपत्राजिनानि स्युर्धान्यमूलफलौषधम् ॥ उभे सन्ध्येऽवगाहश्च होमश्चारण्य
वासिनाम् ॥ १७५ ॥ आसन्नमुसले भैक्षमस्तेयं शौचमेव च ॥ अप्रमादोऽव्यवायश्च दया भूतेषु च क्षमा ॥ १७६ ॥ अक्रोधो गुरुशुश्रूषा सत्यञ्च दशमं
स्मृतम् ॥ दशलक्षणिको ह्येष धर्म्मः प्रोक्तः स्वयम्भुवा ॥ १७७ ॥ भिक्षोर्व्रतानि पञ्चात्र पञ्चैवोपव्रतानि च ॥ आचारशुद्धिर्नियमः शौचञ्च प्रतिकर्म्म च ॥
सम्यग्दर्शनमित्येवं पञ्चैवोपव्रतान्यपि ॥१७८॥ ध्यानं समाधिर्मनसेन्द्रियाणां ससागरैर्भैक्षमथोपगम्य ॥ मौनं पवित्रोपचितैर्विमुक्तिः परिव्रजो धर्म्ममिमं वद
न्ति ॥ १७९ ॥ सर्वे ते श्रेयसे प्रोक्ता आश्रमा ब्रह्मणा स्वयम् ॥ सत्यार्जवन्तपः क्षान्तिर्योगेज्या दमपूर्विका ॥ १८० ॥ वेदाः साङ्गाश्च यज्ञाश्च व्रतानि
नियमाश्च ये ॥ न सिद्ध्यन्ति प्रदुष्टस्य भावदोष उपागते ॥ १८१ ॥ बहिः कर्म्माणि सर्वाणि प्रसिद्ध्यन्ति कदा च न ॥ अन्तर्भावप्रदुष्टस्य कुर्वतो
ऽपिपराक्रमान् ॥ १८२ ॥ सर्वस्वमपि यो दद्यात् कलुषेणान्तरात्मना ॥ न तेन धर्म्मभाक् स स्याद्भाव एवात्र कारणम् ॥ १८३ ॥ एवं देवाः
सपितर ऋषयो मनवस्तथा ॥ तेषां स्थानममुष्मिंस्तु संस्थितानां प्रचक्षते ॥ १८४ ॥ अष्टाऽशीतिसहस्राणि ऋषीणामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ स्मृतं
तु तेषां तत्स्थानं तदेव गुरुवासिनम् ॥ १८५ ॥ सप्तर्षीणान्तु यत्स्थानं स्मृतन्तद्वै दिवौकसाम् ॥ प्राजापत्यं गृहस्थानां न्यासिनां ब्रह्मणः क्षयः ॥
योगिनाममृतं स्थानं नानाधीनां न विद्यते ॥ १८६ ॥ स्थानान्याश्रमिणां तानि ये स्वधर्म्मे व्यवस्थिताः ॥ चत्वार एते पन्थानो देवयाना विनिर्मिताः ॥
॥ १८७ ॥ ब्रह्मणा लोकतन्त्रेण आद्ये मन्वन्तरे भुवि ॥ पन्थानो देवयानाय तेषां द्वारं रविः स्मृतः ॥ १८८ ॥ तथैव पितृयाणानां चन्द्रमा द्वारमु
च्यते ॥ एवं वर्णाश्रमाणां वै प्रविभागे कृते तदा ॥ यदास्य न व्यवर्त्तन्त प्रजा वर्णाश्रमात्मिकाः ॥ १८९ ॥ ततोऽन्या मानसीः सोऽथ त्रेतामध्ये
ऽसृजत् प्रजाः ॥ आत्मनः स्वशरीराच्च तुल्याश्चैवात्मना तु वै ॥ १९० ॥ तस्मिंस्त्रेतायुगे त्वाद्ये मध्यं प्राप्ते क्रमेण तु ॥ ततोऽन्या मानसीस्तत्र
प्रजाः स्रष्टुं प्रचक्रमे ॥ १९१ ॥ ततः सत्त्वरजोद्रिक्ताः प्रजाः सोऽथासृजत् प्रभुः ॥ धर्म्मार्थकाममोक्षाणां वार्त्तायाश्चैव साधिकाः ॥ १९२ ॥ देवाश्च पित
रश्चैव ऋषयो मनवस्तथा । युगानुरूपा धर्म्मेण यैरिमा विचिताः प्रजाः ॥ १९३ ॥ उपस्थिते तदा तस्मिन् प्रजाधर्मे स्वयम्भुवः ॥ अभिदध्यौ प्रजाः
सर्वाः नानारूपास्तु मानसीः ॥ १९४ ॥ पूर्वोक्ता या मया तुभ्यञ्जनलोकं समाश्रिताः ॥ कल्पेऽतीते तु ते ह्यासन् देवाद्यास्तु प्रजा इह ॥ १९५ ॥
ध्यायतस्तस्य ताः सर्वाः सम्भूत्यर्थमुपस्थिताः ॥ मन्वन्तरक्रमेणेह कनिष्ठे प्रथमे मताः ॥ १९६ ॥ ख्यात्यानुबन्धैस्तैस्तैस्तु सर्वार्थैरिह भाविताः ॥

कुशलाकुशलप्रायैः कर्म्मभिस्तैः सदा प्रजाः ॥ तत्कर्म्मफलशेषेण उपष्टब्धाः प्रजज्ञिरे ॥ १९७ ॥ देवासुरपितृत्वैश्च पशुपक्षिसरीसृपैः ॥ वृक्षनारकिकीटत्वै स्तैस्तैर्भावैरुपस्थिताः ॥ आधीनार्थं प्रजानाञ्च आत्मनो वै विनिर्म्ममे ॥ १९८ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते चतुराश्रमविभागो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ सूत उवाच ॥ ॥ ततोऽभिध्यायतस्तस्य जज्ञिरे मानसीप्रजाः ॥ तच्छरीरसमुत्पन्नैः कार्य्यैस्तैः कारणैः सह ॥ क्षेत्रज्ञाः समवर्त्तन्त गात्रेभ्य स्तस्य धीमतः ॥ १ ॥ ततो देवासुरपितॄन् मानवञ्च चतुष्टयम् ॥ सिसृक्षुरम्भांस्येतांश्च स्वात्मना समयूयुजत् ॥ २ ॥ युक्तात्मनस्ततस्तस्य ततो मात्रा स्वयम्भुवः ॥ तमभिध्यायतः सर्गं प्रयत्नोऽभूत् प्रजापतेः ॥ ३ ॥ ततोऽस्य जघनात् पूर्वमसुरा जज्ञिरे सुताः ॥ असुः प्राणः स्मृतो विप्रास्तज्जन्मान स्ततोऽसुराः ॥ ४ ॥ यया सृष्टाः सुरास्तन्वा तां तनुं स व्यपोहत ॥ सापविद्धा तनुस्तेन सद्यो रात्रिरजायत ॥ ५ ॥ सा तमोबहुला यस्मात्ततो रात्रिस्त्रियामिका ॥ आवृतास्तमसा रात्रौ प्रजास्तस्मात् स्वयम्भुवः ॥ ६ ॥ दृष्ट्वा सुरांस्तु देवेशस्तनुमन्यामपद्यत ॥ अव्यक्तां सत्त्वबहुलां ततस्तां सोऽभ्ययूयुजत् ॥ ततस्तां युञ्जतस्तस्य प्रियमासीत् प्रभोः किल ॥ ७ ॥ ततो मुखे समुत्पन्ना दीव्यतस्तस्य देवताः ॥ यतोऽस्य दीव्यतो जातास्तेन देवाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ८ ॥ धातुर्दिवीति यः प्रोक्तः क्रीडायां स विभाव्यते ॥ तस्यान्तन्वान्तु दिव्यायां जज्ञिरे तेन देवताः ॥ ९ ॥ देवान् सृष्ट्वाथ देवेशस्तनुमन्यामपद्यत ॥ सत्त्वमात्रात्मिकां देवस्ततोऽन्यां सोऽभ्यपद्यत ॥ १० ॥ पितृवन्मन्यमानस्तान् पुत्रान् प्राध्यायत प्रभुः ॥ पितरो ह्युपपक्षाभ्यां रात्र्यहोरन्तरासृजत् ॥ तस्मात्ते पितरो देवाः पुत्रत्वन्तेन तेषु तत् ॥ ११ ॥ यया सृष्टास्तु पितरस्तान्तनुं स व्यपोहत ॥ सापविद्धा तनुस्तेन सद्यः सन्ध्या प्रजायत ॥ १२ ॥ तस्मादहस्तु देवानां रात्रिर्य्या साऽसुरी स्मृता ॥ तयोर्मध्ये तु वै पैत्री या तनुः सा गरीयसी ॥ १३ ॥ तस्माद्देवासुराः सर्व्वे ऋषयो मनवस्तथा ॥ ते युक्तास्तामुपासन्ते ब्रह्मणो मध्यमान्तनुम् ॥ १४ ॥ ततोऽन्यां स पुनर्ब्रह्मा तनुं वै प्रत्यपद्यत ॥ रजोमात्रात्मिकायान्तु मनसा सोऽसृजत् प्रभुः ॥ १५ ॥ रजःप्रायात् ततः सोऽथ मानसानसृजत् सुतान् ॥ मनसस्तु ततस्तस्य मानसा जज्ञिरे प्रजाः ॥ १६ ॥ दृष्ट्वा पुनः प्रजाश्चापि स्वान्तनुन्तामपोहत ॥ सापविद्धा तनुस्तेन ज्योत्स्ना सद्यस्त्वजायत ॥ १७ ॥ तस्माद्भवन्ति संहृष्टा ज्योत्स्नाया उद्भवे प्रजाः ॥ इत्येतास्तनवस्तेन व्यपविद्धा महात्मना ॥ १८ ॥ सद्यो रात्र्यहनी चैव सन्ध्या ज्योत्स्ना च जज्ञिरे ॥ ज्योत्स्ना सन्ध्या तथाहश्च सत्त्वमात्रात्मकं स्वयम् ॥ तमोमात्रात्मिका रात्रिः सा वै तस्मात्त्रियामिका ॥ १९ ॥ तस्माद्देवा दिव्यतत्त्वा हृष्टाः सृष्टा मुखात्तु वै ॥ यस्मात्तेषां दिवा जन्म बलिनस्तेन ते दिवा ॥ २० ॥ तन्वा यदसुरान् रात्रौ जघनादसृजत् प्रभुः ॥ प्राणेभ्यो रात्रिजन्मानो ह्यसह्या निशि तेन ते ॥ २१ ॥ एतान्येव भविष्याणां देवानामसुरैः सह ॥ पितॄणां मानवानाञ्च अतीतानागतेषु वै ॥

मन्वन्तरेषु सर्व्वेषां निमित्तानि भवन्ति हि ॥ २२ ॥ ज्योत्स्ना रात्र्यहनी सन्ध्या चत्वार्य्याभासितानि वै ॥ भान्ति यस्मात्ततो भासि भाशब्दोऽयं मनीषिभिः ॥ व्याप्तिदीप्त्यां निगदितः पुनश्चाह प्रजापतिः ॥ २३ ॥ सोऽम्भांस्येतानि दृष्ट्वा तु देवदानवमानवान् ॥ पितॄंश्च वासृजत्सोऽन्यानात्मनो विबुधान् पुनः ॥ २४ ॥ तामुत्सृज्य तनुं कृत्स्नान्ततोऽन्यामसृजत् प्रभुः ॥ मूर्तिं रजस्तमःप्रायां पुनरेवाभ्ययूयुजत् ॥ २५ ॥ अन्धकारे क्षुधाविष्टस्ततोऽन्यां सृजते पुनः ॥ तेन सृष्टाः क्षुधात्मानस्तेम्भांस्यादातुमुद्यताः ॥ २६ ॥ अम्भांस्येतानि रक्षाम उक्तवन्तश्च तेषु च ॥ राक्षसास्ते स्मृता लोके क्रोधात्मानो निशाचराः ॥ २७ ॥ येऽब्रुवन् क्षिणुमोऽम्भांसि तेषां हृष्टाः परस्परम् ॥ तेन ते कर्म्मणा यक्षा गुह्यकाः क्रूरकर्म्मिणः ॥ २८ ॥ रक्षणे पालने चापि धातुरेष विभाव्यते ॥ य एष क्षितिधातुर्वै क्षयणे सन्निरुच्यते ॥ २९ ॥ तान्दृष्ट्वा ह्यप्रियेणास्य केशाः शीर्य्यंत धीमतः ॥ शीतोष्णाच्चोच्छ्रिता ह्यूर्द्ध्वं तदारोहंत तं प्रभुम् ॥ ३० ॥ हीना मच्छिरसो व्याला यस्माच्चैवापसर्प्पिताः ॥ व्यालात्मानः स्मृता व्यालाद्धीनत्वादहयः स्मृताः ॥ ३१ ॥ पन्नत्वात्पन्नगाश्चैव सर्पाश्चैवापसर्प्पिणः ॥ तेषां पृथिव्यां निलयाः सूर्य्याचन्द्रमसोरधः ॥ ३२ ॥ तस्य क्रोधोद्भवो योऽसावग्निगर्भसुदारुणः ॥ स तु सर्पसहोत्पन्नानाविवेश विषात्मिकान् ॥ ३३ ॥ सर्प्पान् दृष्ट्वा ततः क्रोधात् क्रोधात्मानो विनिर्म्ममे ॥ वर्णेन कपिशेनोग्रास्ते भूताः पिशिताशनाः ॥ ३४ ॥ भूतत्वात्ते स्मृता भूताः पिशाचाः पिशिताशनात् ॥ वयतो गास्ततस्तस्य गन्धर्व्वा जज्ञिरे तदा ॥ ३५ ॥ ध्यायतीत्येष धातुर्वै यात्रार्थे परिपठ्यते ॥ पिबतो जज्ञिरे गास्तु गंधर्व्वास्तेन ते स्मृताः ॥ ३६ ॥ अष्टास्वेतासु सृष्टासु देवयोनिषु स प्रभुः ॥ ततः स्वच्छन्दतोऽन्यानि वयांसि वयसोऽसृजत् ॥ ३७ ॥ छाद्यतस्तानि छन्दांसि वयसो पि वयांस्यपि ॥ शून्यान् दृष्ट्वा तु देवो वैऽसृजत्पक्षिगणानपि ॥ ३८ ॥ मुखतोऽजान् ससर्ज्जाथ वक्षसश्च वयोऽसृजत् ॥ गाश्चैवाथोदराद्ब्रह्मा पार्श्वाभ्याञ्च विनिर्म्ममे ॥३९॥ पद्भ्याञ्चाश्वान् समातङ्गान् शरभान् गवयान् मृगान् ॥ उष्ट्रानश्वतरांश्चैव ताश्चान्याश्चैव जातयः ॥ ४० ॥ ओषध्यः फलमूलानि रोमतस्तस्य जज्ञिरे ॥ एवं पश्वोषधीः सृष्ट्वा न्ययुञ्जत्सोऽध्वरे प्रभुः ॥ ४१ ॥ तस्मादादौ तु कल्पस्य त्रेतायुगमुखे तदा ॥ गौरजः पुरुषो मेषो ह्यश्वोऽश्वतरगर्दभौ ॥ एतान् ग्राम्यान् पशूनाहुरारण्यांश्च निबोधत ॥ ४२ ॥ श्वापदा द्विखुरो हस्ती वानरः पक्षिपञ्चमाः ॥ उन्दकाः पशवः सृष्टाः सप्तमास्तु सरीसृपाः ॥४३॥ गायत्रं वरुणञ्चैव त्रिवृत्सौम्यं रथन्तरम् ॥ अग्निष्टोमञ्च यज्ञानां निर्म्ममे प्रथमान्मुखात् ॥ ४४ ॥ छन्दांसि त्रैष्टुभङ्कर्म्म स्तोमं पञ्चदशन्तथा ॥ बृहत्साममथोक्थञ्च दक्षिणात्सोऽसृजन्मुखात् ॥ ४५ ॥ सामानि जगतीच्छन्दस्तोमं पञ्चदशन्तथा ॥ वैरूप्यमतिरात्रञ्च पश्चिमादसृजन्मुखात् ॥ ४६ ॥ एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्य्यामाणमेव च ॥ अनुष्टुभं सवैराजमुत्त

रादसृजन्मुखात् ॥ ४७ ॥ विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ॥ वयांसि च ससर्जादौ कल्पस्य भगवान् प्रभुः ॥ ४८ ॥ उच्चावचानि भूतानि
गात्रेभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥ ब्रह्मणस्तु प्रजासर्गं सृजतो हि प्रजापतेः॥४९॥सृष्ट्वा चतुष्टयं पूर्व्वं देवासुरपितॄन् प्रजाः ॥ ततः सृजति भूतानि स्थावराणि चराणि
च ॥ ५० ॥ यक्षान् पिशाचान् गन्धर्व्वान् तथैवाप्सरसाङ्गणान् ॥ नरकिन्नररक्षांसि वयः पशुमृगोरगान् ॥ ५१ ॥ अव्ययञ्च व्ययं चैव यदिदं स्थाणु
जङ्गमम् ॥ तेषां ये यानि कर्म्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे ॥ तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥ ५२ ॥ हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्म्माधर्म्मौ
वृतानृते ॥ तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥ ५३ ॥ महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्त्तिषु ॥ विनियोगञ्च भूतानां धातैव व्यदधात्
स्वयम् ॥ ५४ ॥ केचित् पुरुषकारन्तु प्राहुः कर्म्म च मानवाः ॥ दैवमित्यपरे विप्राः स्वभावं दैवचिन्तकाः ॥ ५५ ॥ पौरुषं कर्म्म दैवञ्च फलवृत्तिस्व
भावतः ॥ न चैकं न पृथग्भावमधिकं न तयोर्विदुः ॥ एतदेवञ्च नैकञ्च न चोभे न च वाप्युभे ॥५६॥ कर्म्मस्थान् विषयान् ब्रूयुः सत्त्वस्थाः समदर्शिनः॥
नामरूपञ्च भूतानां कृतानाञ्च प्रपञ्चनम् ॥ वेदशब्देभ्य एवादौ निर्म्ममे स महेश्वरः ॥ ५७ ॥ ऋषीणां नामधेयानि याश्च देवेषु दृष्टयः ॥ शर्व्वर्य्यन्ते
प्रसूतानां तान्येवास्य ददाति सः ॥ ५८ ॥ यथर्त्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्य्यये ॥ दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु॥५९॥ एवंविधासु
सृष्टासु ब्रह्मणाऽव्यक्तजन्मना ॥ शर्व्वर्य्यन्ते प्रदृश्यन्ते सिद्धिमाश्रित्य मानसीम् ॥ ६० ॥ एवंभूतानि सृष्टानि चराणि स्थावराणि च ॥ यदास्य ताः प्रजाः
सृष्टा न व्यवधन्त धीमतः ॥ ६१ ॥ अथान्यान्मानसान् पुत्रान् सदृशानात्मनोऽसृजत् ॥ भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमाङ्गिरसन्तथा ॥ ६२ ॥ मरीचिं द
क्षमत्रिं च वसिष्ठं चैव मानसम् ॥ नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः ॥ तेषां ब्रह्मात्मकानां वै सर्व्वेषां ब्रह्मवादिनाम् ॥ ६३ ॥ ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मा रुद्रं
रोषात्मसंभवम् ॥ संकल्पं चैव धर्मं च पूर्व्वेषामपि पूर्व्वजः॥६४॥अग्रे ससर्ज्ज वै ब्रह्मा मानसानात्मनः समान् ॥सनन्दनं ससनकं विद्वांसं च सनातनम्॥६५॥
सनत्कुमारं च विभुं सनकं च सनन्दनं ॥ न ते लोकेषु सर्ज्जन्ते निरपेक्षाः सनातनाः ॥ ६६ ॥ सर्व्वे ते ह्यागतज्ञाना वीतरागा विमत्सराः ॥ तेष्वेवं
निरपेक्ष्येषु लोकवृत्तानुकारणात् ॥ ६७ ॥ हिरण्यगर्भो भगवान् परमेष्ठी ह्यचिन्तयत् ॥ तस्य रोषात्समुत्पन्नः पुरुषोऽर्कसमद्युतिः ॥ अर्द्धनारीनरवपुः
तेजसा ज्वलनोपमः ॥ ६८ ॥ सर्व्वं तेजोमयं जातमादित्यसमतेजसम् ॥ विभजात्मानमित्युक्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥६९॥ एवमुक्ता द्विधाभूतः पृथक् स्त्री
पुरुषः पृथक् ॥ स चैकादशधा जज्ञे अर्द्धमात्मानमीश्वरः ॥ ७० ॥ तेनोक्तास्ते महात्मानः सर्व्व एव महात्मना ॥ जगतो बहुलीभावमधिकृत्य हितैषि
णः ॥ ७१ ॥ लोकवृत्तान्तहेतोर्हि प्रयतध्वमतन्द्रिताः ॥ विश्वं विश्वस्य लोकस्य स्थापनाय हिताय च ॥ ७२ ॥ एवमुक्तास्तु रुरुदुर्दुद्रुवुश्च समन्ततः॥

रोदनाद्द्रावणाच्चैव रुद्रा नाम्नेतिविश्रुताः ॥७३॥ यैर्हि व्याप्तमिदं सर्व्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ तेषामनुचरा लोके सर्व्वलोकपरायणाः ॥७४॥ नैकनाग
युतबला विक्रान्ताश्च गणेश्वराः ॥ तत्र या सा महाभागा शंकरस्यार्द्धकायिनी ॥ ७५ ॥ प्रागुक्ता तु मया तुभ्यं स्त्री स्वयंभोर्मुखोद्गता ॥ कायार्द्धं दक्षि
णन्तस्याः शुक्लं वामं तथाऽसितम् ॥ ७६ ॥ आत्मानं विभजस्वेति सोक्ता देवी स्वयंभुवा ॥ सा तु प्रोक्ता द्विधाभूता शुक्ला कृष्णा च वै द्विजाः ॥
तस्या नामानि वक्ष्यामि शृणुध्वं सुसमाहिताः ॥ ७७ ॥ स्वाहा स्वधा महाविद्या मेधा लक्ष्मीः सरस्वती ॥ अपर्णा चैकपर्णा च तथा स्यादेव
पाटला ॥ ७८ ॥ उमा हैमवती षष्ठी कल्याणी चैव नामतः ॥ ख्यातिः प्रज्ञा महाभागा लोके गौरीति विश्रुता ॥ ७९ ॥ विश्वरूपमथार्य्यायाः
पृथग्देहविभावनात् ॥ शृणु संक्षेपतस्तस्या यथावदनुपूर्व्वशः ॥ ८० ॥ प्रकृतिर्नियता रौद्री दुर्गा भद्रा प्रमाथिनी ॥ कालरात्रिर्महामाया
रेवती भूतनायिका ॥ ८१ ॥ द्वापरान्तविकारेषु देव्या नामानि मे शृणु ॥ गौतमी कौशिकी आर्य्या चण्डी कात्यायनी सती ॥ ८२ ॥
कुमारी यादवी देवी वरदा कृष्णपिङ्गला ॥ बर्हिर्ध्वजा शूलधरा परमब्रह्मचारिणी ॥ ८३ ॥ माहेन्द्री चेन्द्रभगिनी वृषकन्यैकवाससी ॥
अपराजिता बहुभुजा प्रगल्भा सिंहवाहिनी ॥ ८४ ॥ एकानसा दैत्यहनी माया महिषमर्द्दिनी ॥ अमोघा विन्ध्यनिलया विक्रान्ता गणनायिका ॥८५॥
देवीनामविकाराणि इत्येतानि यथाक्रमम् ॥ भद्रकाल्यास्तवोक्तानि देव्या नामानि तत्त्वतः ॥८६॥ ये पठन्ति नरास्तेषां विद्यते न पराभवः ॥ अरण्ये
प्रान्तरे वापि पुरे वापि गृहेऽपि वा ॥ ८७ ॥ रक्षामेतां प्रयुञ्जीत जले वापि स्थलेऽपि वा ॥ व्याघ्रकुम्भीरचौरेभ्यो भूतस्थाने विशेषतः ॥ आधिष्वपि च
सर्व्वासु देव्या नामानि कीर्त्तयेत् ॥ ८८ ॥ अर्भकग्रहभूतैश्च पूतनामातृभिः सदा ॥ अभ्यर्द्दितानां बालानां रक्षामेतां प्रयोजयेत् ॥ ८९ ॥ महादेवीकुले
द्वे तु प्रज्ञा श्रीश्च प्रकीर्त्त्यते । आभ्यां देवीसहस्राणि यैर्व्याप्तमखिलं जगत् ॥ ९० ॥ साऽसृजद् व्यवसायन्तु धर्म्मं भूतसुखावहम् ॥ सङ्कल्पश्चैव कल्पादौ
जज्ञिरेऽव्यक्तयोनितः ॥ ९१ ॥ मानसश्च रुचिर्न्नाम विज्ञेयो ब्रह्मणः सुतः ॥ प्राणात् स्वादसृजद्दक्षञ्चक्षुर्भ्याञ्च मरीचिकम् ॥ ९२ ॥ भृगुस्तु हृदयाज्जज्ञे
ऋषिः सलिलजन्मनः ॥ शिरसोऽङ्गिरसश्चैव श्रोत्रादत्रिन्तथैव च ॥ ९३ ॥ पुलस्त्यञ्च तथोदानाद्व्यानाच्च पुलहं पुनः ॥ समानजं वसिष्ठन्तु अपा
नान्निर्म्ममे क्रतुम् ॥ ९४ ॥ अभिमानात्मकं भद्रं निर्म्ममे नीललोहितम् ॥ इत्येते ब्रह्मणः पुत्राः प्राणजा द्वादश स्मृताः ॥ ९५ ॥ इत्येते मानसाः पु
त्रा विज्ञेया ब्रह्मणः सुताः ॥ भृग्वादयस्तु ये सृष्टा न चैते ब्रह्मवादिनः ॥ ९६ ॥ गृहमेधिनः पुराणास्ते धर्म्मस्तैः प्राक् प्रवर्त्तितः ॥ द्वादशैते
प्रवर्त्तन्ते सह रुद्रेण वै प्रजाः ॥ ९७ ॥ ऋभुः सनत्कुमारस्तु द्वावेतावूर्द्ध्वरेतसौ ॥ पूर्व्वोत्पन्नौ पुरा तेभ्यः सर्व्वेषामपि पूर्व्वजौ ॥ ९८ ॥

व्यतीते प्रथमे कल्पे पुराणे लोकसाधकौ ॥ वैराजे तावुभौ लोके तेजः संक्षिप्य चास्थितौ ॥ ९९ ॥ तावुभौ योगधर्म्माणावारो
प्यात्मानमात्मनि ॥ प्रजाधर्म्मञ्च कामञ्च वर्त्तयेतां महौजसा ॥ १०० ॥ यथोत्पन्नस्तथैवेह कुमार इति चोच्यते ॥ तस्मात्सनत्कुमारोयमिति
नामास्य कीर्तितम् ॥ १०१ ॥ तेषां द्वादश ते वंशा दिव्या देवगुणान्विताः ॥ क्रियावन्तः प्रजावन्तो महर्षिभिरलङ्कृताः ॥ १०२ ॥ इत्येष
करणोद्भूतो लोकान् स्रष्टुं स्वयंभुवः ॥ महदादिविशेषान्तो विकारः प्रकृतेः स्वयम् ॥ १०३ ॥ चन्द्रसूर्यप्रभालोको ग्रहनक्षत्रमण्डितः ॥
नदीभिश्च समुद्रैश्च पर्व्वतैश्च समावृतः ॥ १०४ ॥ पुरैश्च विविधाकारैः प्रीतैर्ज्जनपदैस्तथा ॥ तस्मिन् ब्रह्मवनेऽव्यक्ते ब्रह्मा चरति शर्व्वरीम् ॥ १०५ ॥
अव्यक्तबीजप्रभवस्तस्यैवानुग्रहोत्थितः ॥ बुद्धिस्कन्धमयश्चैव इन्द्रियाङ्कुरकोटरः ॥ १०६ ॥ महाभूतप्रशाखश्च विशेषैः पत्रवांस्तथा ॥ धर्म्माधर्म्मसुपु
ष्पस्तु सुखदुःखफलोदयः ॥ १०७ ॥ आजीवः सर्व्वभूतानामयं वृक्षः सनातनः ॥ एतद् ब्रह्मवलं चैव ब्रह्मवृक्षस्य तस्य ह ॥ १०८ ॥ अव्यक्तं कारणं
यत्तन्नित्यं सदसदात्मकम् ॥ इत्येषोऽनुग्रहः सर्गो ब्रह्मणः प्राकृतस्तु यः ॥ १०९ ॥ मुख्यादयस्तु षट्सर्गा वैकृता बुद्धिपूर्व्वकाः ॥ त्रैकाले समवर्त्तन्त
ब्रह्मणस्तेऽभिमानिनः ॥ ११० ॥ सर्गाः परस्परस्याथ कारणं ते बुधैः स्मृताः ॥ दिव्यौ सुपर्णौ सयुजौ सशाखौ पटविद्रुमौ ॥ १११ ॥ एकस्तु यो द्रु
मं वेत्ति नान्यः सर्व्वात्मनस्ततः ॥ द्यौर्मूर्द्धानं यस्य विप्रास्तुवन्ति खन्नाभिं वै चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे ॥ दिशः श्रोत्रे चरणौ चास्य भूमिः सोऽचिन्त्यात्मा
सर्व्वभूतप्रसूतिः ॥ ११२ ॥ वक्त्राद्यस्य ब्राह्मणाः संप्रसूता यद्वक्षस्तः क्षत्रियाः पूर्व्वभागे ॥ वैश्याश्चोरोर्यस्य पद्भ्यां च शूद्राः सर्व्वे वर्णा गात्रतः
संप्रसूताः॥११३॥महेश्वरः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसंभवम्॥अण्डाज्जज्ञे पुनर्ब्रह्मा येन लोकाः कृतास्त्विमे॥११४॥इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते देवादिसृ
ष्टिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥९॥छ॥ ॥ सूत उवाच ॥ एवंभूतेषु लोकेषु ब्रह्मणा लोककर्तृणा॥ यदा ता न प्रवर्त्तन्ते प्रजाः केनापि हेतुना॥१॥तमोमात्रा
वृतो ब्रह्मा तदाप्रभृति दुःखितः ॥ ततः स विदधे बुद्धिमर्थनिश्चयगामिनीम् ॥ २ ॥ अथात्मनि समस्राक्षीत्तमोमात्रां नियामिकाम् ॥ राजसत्वं पराजित्य
वर्त्तमानं स धर्म्मतः॥३॥तप्यते तेन दुःखेन शोकश्चक्रे जगत्पतिः॥तमश्च व्यनुदत्तस्माद्रजस्तमसमावृणोत्॥४॥तत्तमः प्रतिनुत्तं वै मिथुनं स व्यजायत ॥
अधर्म्माच्चरणाज्जज्ञे हिंसा शोकादजायत ॥ ५ ॥ ततस्तस्मिन् समुद्भूते मिथुने चरणात्मनि ॥ ततश्च भगवानासीत् प्रीतश्चैवमशिश्रियत् ॥ ६ ॥स्वां
तनुं स ततो ब्रह्मा तामपोहदभास्वराम् ॥ द्विधाकरोत्स तं देहमर्द्धेन पुरुषोऽभवत् ॥ ७ ॥ अर्द्धेन नारी सा तस्य शतरूपा व्यजायत ॥ प्राकृतां
भूतधात्रीं तां कामान्वै सृष्टवान् विभुः ॥ ८ ॥ सा दिवं पृथिवीञ्चैव महिम्ना व्याप्य धिष्ठिता ॥ ब्रह्मणः सा तनुः पूर्व्वादिवमावृत्य तिष्ठति ॥ ९ ॥ या

त्वर्द्धात् सृजते नारी शतरूपा व्यजायत ॥ सा देवी नियुतन्तप्त्वा तपः परमदुश्चरम् ॥ १० ॥ भर्त्तारन्दीप्तयशसं पुरुषं प्रत्यपद्यत ॥ स वै स्वायम्भुवः पूर्व्वं पुरुषो मनुरुच्यते ॥ ११ ॥ तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ॥ लब्धा तु पुरुषः पत्नीं शतरूपामयोनिजाम् ॥ १२ ॥ तया स रमते सार्द्धं तस्मात्सा रतिरुच्यते ॥ प्रथमः संप्रयोगः स कल्पादौ समवर्त्तत ॥ १३ ॥ विराजमसृजत् ब्रह्मा सोऽभवत् पुरुषो विराट् ॥ सम्राण्मानसरूपात्तु वैराजस्तु मनुः स्मृतः ॥ १४ ॥ स वैराजः प्रजासर्गः स सर्गे पुरुषो मनुः ॥ वैराजात्पुरुषाद्वीराच्छतरूपा व्यजायत ॥ १५ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ ॥ कन्ये द्वे च महाभागे याभ्यां जाताः प्रजास्त्विमाः ॥ १६ ॥ देवी नाम्ना तथाकूतिः प्रसूतिश्चैव ते शुभे ॥ स्वायम्भुवः प्रसूतिन्तु दक्षाय व्यसृजत् प्रभुः ॥ १७ ॥ प्राणो दक्षस्तु विज्ञेयः सङ्कल्पो मनुरुच्यते ॥ रुचेः प्रजापतेश्चैव आकूतिं प्रत्यपादयत् ॥ १८ ॥ आकूत्यां मिथुनं जज्ञे मानसस्य रुचेः शुभम् ॥ यज्ञश्च दक्षिणा चैव यमकौ सम्बभूवतुः ॥ १९ ॥ यज्ञस्य दक्षिणायाञ्च पुत्रा द्वादश जज्ञिरे ॥ यामा इति समाख्याता देवाः स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ २० ॥ यमस्य पुत्रा यज्ञस्य तस्माद्यामास्तु ते स्मृताः ॥ अजिताश्चैव शूकाश्च गणौ द्वौ ब्रह्मणः स्मृतौ ॥२१॥यामाः पूर्व्वं परिक्रान्ता यतः संज्ञा दिवौकसः ॥ स्वायम्भुवसुतायान्तु प्रसूत्यां लोकमातरः ॥२२॥ तस्यां कन्याश्चतुर्विंशद्दक्षस्त्वजनयत् प्रभुः ॥ सर्व्वास्ताश्च महाभागाः सर्व्वाः कमललोचनाः ॥ २३ ॥ योगपत्न्यश्च ताः सर्व्वाः सर्व्वास्ता योगमातरः ॥ श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ॥ बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिः सिद्धिः कीर्त्तिस्त्रयोदशी ॥ २४ ॥ पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्म्मो दाक्षायणीः प्रभुः ॥ द्वाराण्येतानि चैवास्य विहितानि स्वयम्भुवा॥२५॥ताभ्यः शिष्टा यवीयस्य एकादश सुलोचनाः॥ख्यातिः सत्यथ संभूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा॥२६॥सन्नतिश्चानसूया च ऊर्ज्जा स्वाहा स्वधा तथा ॥ तास्ततः प्रत्यपद्यन्त पुनरन्ये महर्षयः॥२७॥रुद्रो भृगुर्मरीचिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः॥ पुलस्त्योऽत्रिर्वसिष्ठश्च पितरोऽग्निस्तथैव च॥२८॥ सतीं भवाय प्रायच्छत् ख्यातिञ्च भृगवे तथा ॥ मरीचये च सम्भूतिं स्मृतिमङ्गिरसे ददौ ॥२९॥ प्रीतिं चैव पुलस्त्याय क्षमां वै पुलहाय च ॥ क्रतवे सन्नतिं नाम अनसूयान्तथाऽत्रये ॥ ३० ॥ ऊर्ज्जां ददौ वसिष्ठाय स्वाहां वै ह्यग्नये ददौ ॥स्वधां चैव पितृभ्यस्तु तास्वपत्यानि वक्ष्यते ॥ ३१ ॥ एते सर्व्वे महाभागाः प्रज्ञाः स्वानुष्ठिताः स्थिताः ॥ मन्वन्तरेषु सर्वेषु यावदाहूतसंप्लवम् ॥३२॥ श्रद्धा कामं विजज्ञे वै दर्पो लक्ष्मीसुतः स्मृतः ॥ धृत्यास्तु नियमः पुत्रस्तुष्ट्याः सन्तोष उच्यते ॥३३॥ पुष्ट्या लाभः सुतश्चापि मेधापुत्रः श्रुतस्तथा ॥ क्रियायास्तु नयः प्रोक्तो दण्डः समय एव च॥३४॥ बुद्धेर्बोधसुतश्चापि अप्रमादश्च तावुभौ ॥ लज्जाया विनयः पुत्रो व्यवसायो वपुःसुतः ॥ ३५ ॥ क्षेमः शान्तिसुतश्चापि सुखं सिद्धेर्व्यजायत ॥

यशः कीर्त्तेः सुतश्चापि इत्येते धर्म्मसूनवः ॥ ३६॥कामस्य हर्पः पुत्रो वै देव्या रत्या व्यजायत ॥ इत्येष वै सुखोदर्कः सर्गो धर्म्मस्य कीर्त्तितः ॥ ३७ ॥
जज्ञे हिंसा त्वधर्म्माद्वै निकृतिश्चानृतावुभौ ॥ निकृत्यानृतयोर्जज्ञे भयं नरक एव च ॥ ३८ ॥ माया च वेदना चापि मिथुनद्वयमेतयोः ॥ भयाज्ज
ज्ञेऽथ सा माया मृत्युं भूतापहारिणम् ॥३९॥ वेदनायास्ततश्चापि दुःखं जज्ञेऽथ रौरवात् ॥ मृत्योर्व्याधिज्वरा शोकाः क्रोधोऽसूया च जज्ञिरे ॥ दुःखान्त
रा स्मृता ह्येते सर्व्वे चाधर्म्मलक्षणाः ॥ ४० ॥ तेषां भार्य्याऽस्ति पुत्रो वा ते सर्व्वे निधनाः स्मृताः ॥ इत्येष तामसः सर्गो जज्ञे धर्म्मनियामकः ॥४१॥
प्रजाः सृजेति व्यादिष्टो ब्रह्मणा नीललोहितः ॥ सोऽभिध्याय सतीं भार्य्यां निर्ममे ह्यात्मसम्भवाम् ॥४२॥नाधिकान्न च हीनांस्तान्मानसानात्मनः समान् ॥
सहस्रं हि सहस्राणामसृजत् कृत्तिवाससा ॥ तुल्याश्चैवात्मनः सर्व्वे रूपतेजोवलश्रुतैः ॥ ४३ ॥ पिङ्गलान् सनिषङ्गांश्च सकपर्दान् विलोहितान् ॥ विवा
सान् हरिकेशांश्च दृष्टिघ्नांश्च कपालिनः ॥ ४४ ॥ वहुरूपान् विरूपांश्च विश्वरूपांश्च रूपिणः ॥ रथिनो वर्म्मिणश्चैव धर्म्मिणश्च वरूथिनः ॥ ४५ ॥ सह
स्रशतवाहूंश्च दिव्यान् भौमान्तरिक्षगान् ॥ स्थूलशीर्षानष्टदंष्ट्रान्द्विजिह्वांस्त्रिलोचनान् ॥ ४६ ॥ अन्नादान् पिशितादांश्च आज्यपान् सोमपांस्तथा ॥
मेदपांश्चातिकायांश्च शितिकण्ठोग्रमन्यवः॥४७॥सोपासङ्गतलत्रांश्च धन्विनो ह्युपवर्म्मिणः॥आसीनान् धावतश्चैव जृम्भितश्चैव धिष्ठितान् ॥४८॥ अध्या
पिनोऽथ जपतो युञ्जतोऽध्यायतस्तथा ॥ ज्वलतो वर्षतश्चैव द्योतमानान् प्रधूपितान् ॥ ४९ ॥ बुद्धान् बुद्धतमांश्चैव ब्रह्मिष्ठान् शुभदर्शनान् ॥ नीलग्री
वान् सहस्राक्षान् सर्व्वांश्चाथ क्षपाचरान् ॥५०॥ अदृश्यान् सर्वभूतानां महायोगान् महौजसः ॥ रुदतो द्रवतश्चैव एवं युक्तान् सहस्रशः ॥ अपातयामान
सृजत् रुद्ररूपान् सुरोत्तमान् ॥ ५१ ॥ ब्रह्मा दृष्ट्वाऽब्रवीदेतान्मास्राक्षीरीदृशीः प्रजाः ॥ स्रष्टव्या नात्मनस्तुल्याः प्रजा नैवाधिकास्त्वया ॥ अन्याः सृज
त्वं भद्रन्ते स्थितोहन्त्वं सृज प्रजाः ॥ ५२ ॥ एते ये वै मया सृष्टा विरूपा नीललोहिताः ॥ सहस्राणां सहस्रन्तु आत्मनोपमनिर्म्मिताः ॥ ५३ ॥ एते
देवा भविष्यन्ति रुद्रा नाम महावलाः ॥ पृथिव्यामन्तरिक्षे च रुद्रनाम्ना प्रतिश्रुताः ॥ ५४ ॥ शतरुद्रसमाम्नाता भविष्यन्तीह यज्ञियाः ॥ यज्ञभाजो
भविष्यन्ति सर्वे देवयुगैः सह ॥ ५५ ॥ मन्वन्तरेषु ये देवा भविष्यन्तीह च्छन्दजाः ॥ तैः सार्द्धमिज्यमानास्ते स्थास्यन्तीह युगक्षयात् ॥ ५६ ॥ एवमु
क्तस्तदा ब्रह्मा महादेवेन धीमता ॥ प्रत्युवाच तदा भीमं हृष्यमाणः प्रजापतिः ॥ ५७ ॥ एवं भवतु भद्रं ते यथा ते व्याहृतं प्रभो ॥ ब्रह्मणा समनुज्ञा
ते सदा सर्व्वमभूत् किल ॥ ५८ ॥ ततःप्रभृति देवेशो न प्रासूयत वै प्रजाः ॥ ऊर्द्ध्वरेताः स्थितः स्थाणुर्य्यावदाभूतसंप्लवम् ॥ यस्माच्चोक्तं स्थितोऽस्मी
ति ततः स्थाणुरिति स्मृतः ॥ ५९ ॥ ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्य्यं तपः सत्यं क्षमा धृतिः ॥ स्रष्टृत्वमात्मसम्बोधस्त्वधिष्ठातृत्वमेव च ॥ अथ यानि

दशैतानि नित्यन्तिष्ठन्ति शङ्करे ॥ ६० ॥ सर्व्वान् देवान् ऋषींश्चैव समेतानसुरैः सह ॥ अत्येति तेजसा देवो महादेवस्ततः स्मृतः ॥ ६१ ॥
अत्येति देवानैश्वर्य्याद्बलेन च महासुरान् ॥ ज्ञानेन च मुनीन् सर्व्वान् योगाद्भूतानि सर्व्वशः ॥ ६२ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ योगं तपश्च सत्यञ्च धर्मञ्चापि
महामुने ॥ माहेश्वरस्य ज्ञानस्य साधनञ्च प्रचक्ष्व नः ॥ ६३ ॥ येन येन च धर्मेण गतिं प्राप्स्यन्ति वै द्विजाः ॥ तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि योगं माहे
श्वरं प्रभो ॥ ६४ ॥ वायुरुवाच ॥ पञ्च धर्म्माः पुराणे तु रुद्रेण समुदाहृताः ॥ माहेश्वर्यं यथा प्रोक्तं रुद्रैरक्लिष्टकर्म्मभिः ॥ ६५ ॥ आदित्यैर्व्वसुभिः
साध्यैरश्विभ्याञ्चैव सर्व्वशः ॥ मरुद्भिर्भृगुभिश्चैव ये चान्ये विबुधालयाः ॥ ६६ ॥ यमशुक्रपुरोगैश्च पितृकालान्तकैस्तथा ॥ एतैश्चान्यैश्च बहुभिस्ते ध
र्म्माः पर्य्युपासिताः ॥६७॥ ते वै प्रक्षीणकर्म्माणः शारदाम्बरनिर्म्मलाः॥उपासते मुनिगणाः सन्धायात्मानमात्मनि ॥६८॥ गुरुप्रियहिते युक्ता गुरूणां वै
प्रियेप्सवः ॥ विमुच्य मानुषं जन्म विहरन्ति च देववत् ॥ ६९ ॥ महेश्वरेण ये प्रोक्ताः पञ्च धर्माः सनातनाः ॥ तान् सर्व्वान् क्रमयोगेन उच्यमानान्नि
बोधत ॥ ७० ॥ प्राणायामस्तथा ध्यानं प्रत्याहारोऽथ धारणा ॥ स्मरणञ्चैव योगेऽस्मिन् पञ्च धर्म्माः प्रकीर्त्तिताः ॥ ७१ ॥ तेषां क्रमविशेषेण लक्षणं
कारणं तथा ॥ प्रवक्ष्यामि तथा तत्त्वं यथा रुद्रेण भाषितम् ॥ ७२ ॥ प्राणायामगतिश्चापि प्राणस्यायाम उच्यते ॥ स चापि त्रिविधः प्रोक्तो मन्दो म
ध्योत्तमस्तथा ॥ ७३ ॥ प्राणानाञ्च निरोधस्तु स प्राणायामसंज्ञितः ॥ प्राणायामप्रमाणन्तु मात्रा वै द्वादश स्मृताः ॥ ७४ ॥ मन्दो द्वादशमात्रस्तु उ
द्धाता द्वादश स्मृताः ॥ मध्यमश्च द्विरुद्धातश्चतुर्विंशतिमात्रिकः ॥ ७५ ॥ उत्तमस्त त्रिरुद्धातो मात्राः षट्त्रिंशदुच्यते ॥ स्वेदकम्पविषादानां जननो
ह्युत्तमः स्मृतः ॥ ७६ ॥इत्येतत् त्रिविधं प्रोक्तं प्राणायामस्य लक्षणम् ॥ प्रमाणञ्च समासेन लक्षणञ्च निबोधत ॥ ७७ ॥ सिंहो वा कुञ्जरो वापि तथाऽ
न्यो वा मृगो वने ॥ गृहीतः सेव्यमानस्तु मृदुः समुपजायते ॥७८॥ तथा प्राणो दुराधर्षः सर्व्वेषामकृतात्मनाम् ॥ योगतः सेव्यमानस्तु स एवाभ्यासतो
व्रजेत् ॥७९॥ स चैव हि यथा सिंहः कुञ्जरो वापि दुर्व्बलः ॥ कालान्तरवशाद्योगाद्दम्यते परिमर्द्दनात् ॥ ८० ॥ परिधाय मनो मन्दं वश्यत्वं चाधिगच्छ
ति ॥ परिधाय मनोदेवं तथा जीवति मारुतः ॥ ८१ ॥ वश्यत्वं हि यथा वायुर्गच्छते योगमास्थितः ॥ तदा स्वच्छन्दतः प्राणं नयते यत्र चेच्छ
ति ॥ ८२ ॥ यथा सिंहो गजो वापि वश्यत्वादवतिष्ठते ॥ अभयाय मनुष्याणां मृगेभ्यः संप्रवर्त्तते ॥ ८३ ॥ यथा परिचितश्चायं वायुर्वै विश्वतोमुखः ॥
परिध्यायमानः संरुद्धः शरीरे किल्बिषन्दहेत् ॥ ८४ ॥ प्राणायामेन युक्तस्य विप्रस्य नियतात्मनः ॥ सर्व्वे दोषाः प्रणश्यन्ति सत्त्वस्थश्चै
व जायते ॥ ८५ ॥ तपांसि यानि तप्यन्ते व्रतानि नियमाश्च ये ॥ सर्व्वयज्ञफलञ्चैव प्राणायामश्च तत्समः ॥ ८६ ॥ अब्बिन्दुं यः

कुशाग्रेण मासि मासि समश्नुते ॥ संवत्सरशतं साग्रं प्राणायामश्च तत्समम् ॥ ८७ ॥ प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम् ॥ प्रत्या
हारेण विषयान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥ ८८ ॥ तस्माद्युक्तः सदा योगी प्राणायामपरो भवेत् ॥ सर्व्वपापविशुद्धात्मा परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ८९ ॥
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते मन्वन्तरादिवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ॥ एकं महान्तं दिवसमहोरात्रमथापि वा ॥
अर्द्धमासं तथा मासमयनाब्दयुगानि च ॥ १ ॥ महायुगसहस्राणि ऋषयस्तपसि स्थिताः ॥ उपासते महात्मानः प्राणं दिव्येन चक्षुषा ॥ २ ॥ अत
ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्राणायामप्रयोजनम् ॥ फलञ्चैव विशेषेण यथाह भगवान् प्रभुः ॥ ३ ॥ प्रयोजनानि चत्वारि प्राणायामस्य विद्धि वै ॥ शान्तिः प्रशा
न्तिर्दीप्तिश्च प्रसादश्च चतुष्टयम् ॥ ४ ॥ घोराकारशिवानान्तु कर्म्मणां फलसम्भवम् ॥ स्वयङ्कृतानि कालेन इहामुत्र च देहिनाम् ॥ ५ ॥ पितृमातृ
प्रदुष्टानां ज्ञातिसम्बन्धिसङ्करैः ॥ क्षपणं हि कषायाणां पापानां शान्तिरुच्यते ॥ ६ ॥ लोभमानात्मकानां हि पापानामपि संयमः ॥ इहामुत्र
हितार्थाय प्रशान्तिस्तप उच्यते ॥ ७ ॥ सूर्य्येन्दुग्रहताराणां तुल्यस्तु विषयो भवेत् ॥ ऋषीणाञ्च प्रसिद्धानाम् ज्ञानविज्ञानसम्पदां ॥ ८ ॥
अतीतानागतानाञ्च दर्शनं साम्प्रतस्य च ॥ बुद्धस्य समतां यान्ति दीप्तिः स्यात्तप उच्यते ॥ ९ ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च मनः पञ्च च मारुतान् ॥
प्रसादयति येनासौ प्रसाद इति संज्ञितः ॥ १० ॥ इत्येष धर्म्मः प्रथमः प्राणायामश्चतुर्विधः ॥ सन्निकृष्टफलो ज्ञेयः सद्यःकालप्रसादजः ॥ ११ ॥
अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य लक्षणम् ॥ आसनं च यथातत्वं युञ्जतो योगमेव च ॥ १२ ॥ ओङ्कारं प्रथमं कृत्वा चन्द्रसूर्यौ प्रणम्य च ॥
आसनं स्वस्तिकं कृत्वा पद्ममर्द्धासनन्तथा ॥ १३ ॥ समजानुरेकजानुरुत्तानः सुस्थितोऽपि च ॥ समो दृढासनो भूत्वा संहृत्य चरणावुभौ ॥ १४ ॥
संवृतास्योऽवबद्धाक्ष उरो विष्टभ्य चाग्रतः ॥ पार्ष्णिभ्यां वृषणे छाद्य तथा प्रजननं ततः ॥ १५ ॥ किंचिदुन्नामितशिराः शिरो ग्रीवां तथैव च ॥
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥ १६ ॥ तमःप्रच्छाद्य रजसा रजः सत्त्वेन च्छादयेत् ॥ ततः सत्त्वास्थितो भूत्वा योगं युञ्जन् समाहितः ॥ १७ ॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च मनः पंच स मारुतान् ॥ निगृह्य समवायेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् ॥ १८ ॥ यस्तु प्रत्याहरेत् कामान् कूर्म्मोऽङ्गानीव सर्वतः ॥
तथात्मरतिरेकस्थः पश्यत्यात्मानमात्मनि ॥ १९ ॥ पूरयित्वा शरीरन्तु स बाह्याभ्यन्तरं शुचिः ॥ आकण्ठनाभियोगेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् ॥ २० ॥
कलामात्रस्तु विज्ञेयो निमेषोन्मेष एव च ॥ तथा द्वादशमात्रस्तु प्राणायामो विधीयते ॥ २१ ॥ धारणाद्वादशायामो योगो वै धारणाद्वयम् ॥
तथा वै योगयुक्तश्च ऐश्वर्य्यं प्रतिपद्यते ॥ वीक्षते परमात्मानं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ २२ ॥ प्राणायामेन युक्तस्य विप्रस्य नियतात्मनः ॥

सर्व्वे दोषाः प्रणश्यन्ति सत्त्वस्थश्चैव जायते ॥ २३ ॥ एवं वै नियताहारः प्राणायामपरायणः ॥ जित्वा जित्वा सदा भूमिमारोहेत्तु सदा मुनिः ॥ २४॥
अजिता हि महाभूमिर्दोषानुत्पादयेद्बहून ॥ विवर्द्धयति सम्मोहं न रोहेदजितां ततः ॥ २५ ॥ नालेन तु यथा तोयं यन्त्रेणैव बलान्वितः ॥
आपिबेत प्रयत्नेन तथा वायुर्जितश्रमः ॥ २६ ॥ नाभ्यां च हृदये चैव कण्ठे उरसि चानने ॥ नासाग्रे तु तथा नेत्रे भ्रुवोर्म्मध्येऽथ मूर्द्धनि ॥ २७ ॥
किंचिदूर्द्ध्वं परस्मिंश्च धारणा परमा स्मृता ॥ प्राणापानसमारोधात् प्राणायामः स कथ्यते ॥ २८ ॥ मनसो धारणा चैव धारणेति प्रकीर्तिता ॥ निवृत्ति
र्विषयाणान्तु प्रत्याहारस्तु संज्ञितः ॥ २९ ॥ सर्व्वेषां समवाये तु सिद्धिः स्याद्योगलक्षणा ॥ तयोत्पन्नस्य योगस्य ध्यानं वै सिद्धिलक्षणम् ॥
ध्यानयुक्तः सदा पश्येदात्मानं सूर्य्यचन्द्रवत् ॥ ३० ॥ सत्त्वस्यानुपपत्तौ तु दर्शनन्तु न विद्यते ॥ अदेशकालयोगस्य दर्शनन्तु न विद्यते ॥ ३१ ॥
अग्न्यभ्याशे वने वापि शुष्कपर्णचये तथा ॥ जन्तुव्याप्ते श्मशाने वा जीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ॥ ३२ ॥ सशब्दे सभये वापि चैत्यवल्मीकसंचये ॥ उदपाने
तथा नद्यान्न बाधातः कदाचन ॥ ३३ ॥ क्षुधाविष्टस्तथाऽप्रीतो न च व्याकुलचेतनः ॥ युञ्जीत परमं ध्यानं योगी ध्यानपरः सदा ॥ ३४ ॥ एतान् दो
षान् विनिश्चित्य प्रमादाद्यो युनक्ति वै ॥ तस्य दोषाः प्रकुप्यन्ति शरीरे विघ्नकारकाः ॥ ३५ ॥ जडत्वं बधिरत्वं च मूकत्वं चाधिगच्छति ॥ अन्धत्वं
स्मृतिलोपश्च जरा रोगस्तथैव च ॥ ३६ ॥ तस्य दोषाः प्रकुप्यन्ति अज्ञानाद्यो युनक्ति वै ॥ तस्माज्ज्ञानेन शुद्धेन योगी युञ्जेत्समाहितः ॥ ३७ ॥
अप्रमत्तः सदा चैव न दोषान् प्राप्नुयात् क्वचित् ॥ तेषां चिकित्सां वक्ष्यामि दोषाणां च यथाक्रमम् ॥ यथा गच्छन्ति ते दोषाः प्राणायामसमुत्थिताः॥३८॥
स्निग्धां यवागूमत्युष्णां भुक्त्वा तत्रावधारयेत् ॥ एतेन क्रमयोगेन वातगुल्मं प्रशाम्यति ॥ ३९ ॥ गुदावर्त्तप्रतीकारमिदं कुर्य्याच्चिकित्सितम् ॥ भुक्त्वा दधि
यवागूर्वा वायुरूर्द्ध्वं ततो व्रजेत् ॥ ४० ॥ वायुग्रंथिं ततो भित्त्वा वायुदेशे प्रयोजयेत् ॥ तथापि न विशेषः स्याद्धारणां मूर्ध्नि धारयेत् ॥४१॥युञ्जानस्य तनुं
तस्य सत्त्वस्थस्यैव देहिनः ॥ गुदावर्त्तप्रतीघाते एतत् कुर्य्याच्चिकित्सितम् ॥४२॥ सर्व्वगात्रप्रकम्पेन समारब्धस्य योगिनः ॥ इमां चिकित्सां कुर्व्वीत तया
संपद्यते सुखी ॥ ४३ ॥ मनसा यद्गतं किंचिद्विष्टम्भीकृत्य धारयेत् ॥ उरोद्घाते उरःस्थानं कण्ठदेशे च धारयेत् ॥४४॥ त्वचोऽवघाते तां वाचि बाधिर्य्ये श्रो
त्रयोस्तथा ॥ जिह्वास्थाने तृषार्त्तस्तु अग्रे स्नेहांश्च तन्तुभिः ॥ फलं वै चिन्तयेद्योगी ततः संपद्यते सुखी ॥ ४५ ॥ क्षये कुष्ठे सकीलासे धारयेत्सर्व्वसात्त्वि
कीम् ॥ यस्मिन् यस्मिन् रजोदेशे तस्मिन् युक्तो विनिर्दिशेत् ॥४६॥ योगोत्पन्नस्य विप्रस्य इदं कुर्य्याच्चिकित्सितं ॥ वंशकीलेन मूर्द्धानं धारयाणस्य
ताडयेत् ॥ मूर्ध्निकीलं प्रतिष्ठाप्य काष्ठं काष्ठेन ताडयेत् ॥ ४७॥ भयभीतस्य सा संज्ञा ततः प्रत्यागमिष्यति ॥ अथ वा लुप्तसंज्ञस्य हस्ताभ्यां तत्र धार

येत् ॥४८॥ प्रतिलभ्य ततः संज्ञां धारणां मूर्द्ध्नि धारयेत् ॥ स्निग्धमल्पं च भुञ्जीत ततः संपद्यते सुखी ॥ ४९ ॥ अमानुषेण सत्त्वेन यदा बुध्यति योगवित् ॥ दिवं च पृथिवीञ्चैव वायुमग्निं च धारयेत् ॥ ५० ॥ प्राणायामेन तत्सर्व्वं दह्यमानं वशीभवेत् ॥ अथापि प्रविशेद्देहं ततस्तं प्रतिषेधयेत् ॥ ५१ ॥ ततः संस्तभ्य योगेन धारयानस्य मूर्द्धनि ॥ प्राणायामाग्निना दग्धं तत्सर्व्वं विलयं व्रजेत् ॥ ५२ ॥ कृष्णसर्पापराधं तु धारयेद्धृदयोदरे ॥ महर्जनस्तपः सत्यं हृदि कृत्वा तु धारयेत् ॥ ५३ ॥ विषस्य तु फलं पीत्वा विशल्यां धारयेत्ततः ॥ सर्व्वतः सनगां पृथ्वीं कृत्वा मनसि धारयेत् ॥ ५४ ॥ हृदि कृत्वा समुद्रांश्च तथा सर्व्वांश्च देवताः ॥ सहस्रेण घटानाञ्च युक्तः स्नायीत योगवित् ॥ ५५ ॥ उदके कण्ठमात्रे तु धारणां मूर्द्ध्नि धारयेत् ॥ प्रतिश्रोतोविषाविष्टो धारयेत् सर्व्वगात्रिकीम् ॥ ५६ ॥ शीर्णोऽर्कपत्रपुटकैः पिबेद्वल्मीकमृत्तिकाम् ॥ चिकित्सितविधिर्ह्येष विश्रुतो योगनिर्म्मितः ॥ ५७ ॥ व्याख्यातस्तु समासेन योगदृष्टेन हेतुना ॥ ब्रुवतो लक्षणं विद्धि विप्रस्य कथयेत् क्वचित् ॥ ५८ ॥ अथापि कथयेन्मोहात्तद्विज्ञानं प्रलीयते ॥ तस्मात् प्रवृत्तिर्य्योगस्य न वक्तव्या कथञ्चन ॥ ५९ ॥ सत्त्वं तथाऽऽरोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रभा सुस्वरसौम्यता च ॥ गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिः प्रथमा शरीरे ॥ ६० ॥ आत्मानं पृथिवीञ्चैव ज्वलन्तीं यदि पश्यति ॥ कृत्वान्यं विशते चैव विद्यात् सिद्धिमुपस्थिताम् ॥ ६१ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते पाशुपतयोगो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ छ ॥

॥ सूत उवाच ॥

॥ अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपसर्गा यथा तथा ॥ प्रादुर्भवन्ति ये दोषा दृष्टतत्त्वस्य देहिनः ॥ १ ॥ मानुष्यान् विविधान् कामान् कामयेत ऋतुं स्त्रियः ॥ विद्यादानफलञ्चैव उपसृष्टस्तु योगवित् ॥२॥ अग्निहोत्रं हविर्य्यज्ञमेतत् प्रायतनन्तथा ॥ मायाकर्म्म धनं स्वर्गमुपसृष्टस्तु काङ्क्षति ॥ ३ ॥ एष कर्म्मसु युक्तस्तु सोऽविद्यावशमागतः ॥ उपसृष्टन्तु जानीयाद्बुद्ध्या चैव विसर्ज्जयेत् ॥ नित्यं ब्रह्मपरो युक्त उपसर्गात् प्रमुच्यते ॥ ४ ॥ जितप्रत्युपसर्गस्य जितश्वासस्य देहिनः ॥ उपसर्गाः प्रवर्त्तन्ते सात्त्वराजसतामसाः ॥ ५ ॥ प्रतिभाश्रवणे चैव देवानाञ्चैव दर्शनम् ॥ भ्रमावर्त्तश्च इत्येते सिद्धिलक्षणसंज्ञिताः ॥ ६ ॥ विद्याकाव्यं तथा शिल्पं सर्व्वं वाचावृतानि तु ॥ विद्यार्थाश्चोपतिष्ठन्ति प्रभावस्यैव लक्षणम् ॥ ७ ॥ शृणोति शब्दान् श्रोतव्यान् योजनानां शतादपि ॥ सर्व्वज्ञश्च विधिज्ञश्च योगी चोन्मत्तवद्भवेत् ॥ ८ ॥ यक्षराक्षसगन्धर्व्वान् वीक्षते दिव्यमानुषान् ॥ वेत्ति तांश्च महायोगी उपसर्गस्य लक्षणम् ॥ ९ ॥ देवदानवगन्धर्व्वान् ऋषींश्चापि तथा पितॄन् ॥ प्रेक्षते सर्व्वतश्चैव उन्मत्तन्तं विनिर्द्दिशेत् ॥ १० ॥ भ्रमेण भ्राम्यते योगी चोद्यमानोऽन्तरात्मना ॥ भ्रमेण भ्रान्तबुद्धेस्तु ज्ञानं सर्व्वं प्रणश्यति ॥ ११ ॥ वार्त्ता नाशयते चित्तं चोद्यमानोऽन्तरात्मना ॥ वर्त्तनाक्रान्तबुद्धेस्तु सर्व्वं ज्ञानं प्रणश्यति ॥ १२॥

आवृत्य मनसा शुक्लं पटं वा कम्बलं तथा ॥ ततस्तु परमं ब्रह्म क्षिप्रमेवानुचिन्तयेत् ॥ १३ ॥ तस्माच्चैवात्मनो दोषांस्तूपसर्गानुपस्थितान् ॥ प
रित्यजेत मेधावी यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः ॥ १४ ॥ ऋषयो देवगन्धर्व्वा यक्षोरगमहासुराः ॥ उपसर्गेषु संयुक्ता आवर्त्तन्ते पुनः पुनः ॥ १५ ॥
तस्माद्युक्तः सदा योगी लघ्वाहारी जितेन्द्रियः ॥ तथा सुतः सुसूक्ष्मेषु धारणां मूर्द्ध्नि धारयेत् ॥ १६ ॥ ततस्तु योगयुक्तस्य जितेन्द्रियस्य योगिनः ॥
उपसर्गाः पुनश्चान्ते जायन्ते प्राणसंज्ञकाः ॥ १७ ॥ पृथिवीं धारयेत्सर्व्वां ततश्चापो ह्यनन्तरम् ॥ ततोऽग्निञ्चैव सर्व्वेषामाकाशं मन एव च ॥ १८ ॥
ततः परां पुनर्बुद्धिं धारयेद्यततो यती ॥ सिद्धीनाञ्चैव लिङ्गानि दृष्ट्वा दृष्ट्वा परित्यजेत् ॥ १९ ॥ पृथ्वीं धारयमाणस्य मही सूक्ष्मा प्रवर्त्तते ॥
अपो धारयमाणस्य आपः सूक्ष्मा भवन्ति हि ॥ शीता रसाः प्रवर्त्तन्ते सूक्ष्मा ह्यमृतसन्निभाः ॥ २० ॥ तेजो धारयमाणस्य तेजः सूक्ष्मं प्रवर्त्तते ॥ आ
त्मानं मन्यते तेजस्तद्भावमनुपश्यति ॥ २१ ॥ आत्मानं मन्यते वायुं वायुवन्मण्डलं प्रभो ॥ आकाशं धारयाणस्य व्योम सूक्ष्मं प्रवर्त्तते ॥ २२ ॥
पश्यते मण्डलं सूक्ष्मं घोषश्चास्य प्रवर्त्तते ॥ आत्मानं मन्यते नित्यं वायुः सूक्ष्मः प्रवर्त्तते ॥ २३ ॥ तथा मनो धारयतो मनः सूक्ष्मं प्रवर्त्तते ॥ मनसा
सर्व्वभूतानां मनस्तु विशते हि सः ॥ बुद्ध्या बुद्धिं यदा युञ्जेत्तदा विज्ञाय बुद्ध्यते ॥ २४ ॥ एतानि सप्त सूक्ष्माणि विदित्वा यस्तु योगवित् ॥
परित्यजति मेधावी स बुद्ध्या परमं व्रजेत् ॥ २५ ॥ यस्मिन् यस्मिंश्च संयुक्तो भूत ऐश्वर्य्यलक्षणे ॥ तत्रैव सङ्गं भजते तेनैव प्रविनश्यति ॥ २६ ॥
तस्माद्विदित्वा सूक्ष्माणि संसक्तानि परस्परम् ॥ परित्यजति यो बुद्ध्या स परं प्राप्नुयाद्द्विजः ॥ २७ ॥ दृश्यन्ते हि महात्मान ऋषयो दिव्यचक्षुषः ॥
संसक्ताः सूक्ष्मभावेषु ते दोषास्तेषु संज्ञिताः ॥ २८ ॥ तस्मान्न निश्चयः कार्य्यः सूक्ष्मेष्विह कदाचन ॥ ऐश्वर्य्याज्जायते रागो विरागं ब्रह्म चोच्यते॥२९॥
विदित्वा सप्त सूक्ष्माणि षडङ्गञ्च महेश्वरम् ॥ प्रधानं विनियोगज्ञः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥ ३० ॥ सर्व्वज्ञता तृप्तिरनादिबोधः स्वतन्त्रता नित्यमलुप्तशक्तिः॥
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विधिज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥ ३१ ॥ नित्यं ब्रह्मवनो युक्त उपसर्गैः प्रमुच्यते ॥ जितश्वासोपसर्गस्य जितरागस्य यो
गिनः ॥ एका बहिःशरीरेऽस्मिन् धारणा सर्व्वकामिकी ॥ ३२ ॥ विशेद्यदा द्विजो युक्तो यत्र यत्रार्प्पयेन्मनः ॥ भूतान्याविशते वापि त्रैलोक्यञ्चापि
कम्पयेत् ॥ ३३ ॥ एतया प्रविशेद्देहं हित्वा देहं पुनस्त्विह ॥ मनोद्वारं हि योगानामादित्यञ्च विनिर्द्दिशेत् ॥ ३४ ॥ आदानादिक्रियाणान्तु आदित्य इ
ति चोच्यते ॥ एतेन विधिना योगी विरक्तः सूक्ष्मवर्ज्जितः ॥ प्रकृतिं समतिक्रम्य रुद्रलोके महीयते ॥ ३५ ॥ ऐश्वर्य्यगुणसम्प्राप्तं ब्रह्मभूतन्तु तं प्रभुम् ॥
देवस्थानेषु सर्व्वेषु सर्व्वतस्तु निवर्त्तते ॥ ३६ ॥ पैशाचेन पिशाचांश्च राक्षसेन च राक्षसान् ॥ गान्धर्व्वेण च गन्धर्व्वान् कौबेरेण कुबेरजान् ॥ ३७ ॥

इन्द्रमैन्द्रेण स्थानेन सौम्यं सौम्येन चैव हि ॥ प्रजापतिं तथा चैव प्राजापत्येन साधयेत् ॥ ३८ ॥ ब्राह्मं ब्राह्मेयेन चाप्येवमुपामन्त्रयते प्रभुम् ॥ तत्र सक्तस्तु उन्मत्तस्तस्मात्सर्व्वं प्रवर्त्तते ॥ ३९ ॥ नित्यं ब्रह्मपरो युक्तः स्थानान्येतानि वै त्यजेत् ॥ असज्यमानः स्थानेषु द्विजः सर्वगतो भवेत् ॥ ४० ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते योगोपसर्गनिरूपणं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ छ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि ऐश्वर्य्यगुणविस्तरम् ॥ येन योगविशेषेण सर्व्वलोकानतिक्रमेत् ॥ १ ॥ तत्राष्टगुणमैश्वर्य्यं योगिनां समुदाहृतम् ॥ तत्सर्व्वं क्रमयोगेन उच्यमानं निबोधत ॥ २ ॥ अणिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेव च ॥ प्राकाम्यञ्चैव सर्व्वत्र ईशित्वञ्चैव सर्व्वतः ॥ ३ ॥ वशित्वमथ सर्व्वत्र यत्र कामावसायिता ॥ तच्चापि विविधं ज्ञेयमैश्वर्य्यं सर्व्वकामिकम् ॥ ४ ॥ सावद्यं निरवद्यं च सूक्ष्मञ्चैव प्रवर्त्तते ॥ सावद्यं नाम तत्तत्त्वं पञ्चभूतात्मकं स्मृतम् ॥ ५ ॥ निरवद्यं तथा नाम पञ्चभूतात्मकं स्मृतम् ॥ इन्द्रियाणि मनश्चैव अहङ्कारश्च वै स्मृतम् ॥ ६ ॥ तत्र सूक्ष्मप्रवृत्तन्तु पञ्चभूतात्मकं पुनः ॥ इन्द्रियाणि मनश्चैव बुद्ध्याहङ्कारसंज्ञितम् ॥ ७ ॥ तथा सर्व्वमयञ्चैव आत्मस्था ख्यातिरेव च ॥ संयोग एवं त्रिविधः सूक्ष्मेष्वेव प्रवर्त्तते ॥ ८ ॥ पुनरष्टगुणस्यापि तेष्वेवाथ प्रवर्त्तते ॥ तस्य रूपं प्रवक्ष्यामि यथाह भगवान् प्रभुः ॥ ९ ॥ त्रैलोक्ये सर्व्वभूतेषु जीवस्यानियतः स्मृतः ॥ अणिमा च यथाव्यक्तं सर्व्वं तत्र प्रतिष्ठितम् ॥ १० ॥ त्रैलोक्ये सर्व्वभूतानां दुष्प्राप्यं समुदाहृतम् ॥ तच्चापि भवति प्राप्यं प्रथमं योगिनां बलात् ॥ ११ ॥ लम्बनं प्लवनं योगे रूपमस्य सदा भवेत् ॥ शीघ्रगं सर्व्वभूतेषु द्वितीयं तत्पदं स्मृतम् ॥ १२ ॥ त्रैलोक्ये सर्व्वभूतानां प्राप्तिः प्राकाम्यमेव च ॥ महिमा चापि यो यस्मिंस्तृतीयो योग उच्यते ॥ १३ ॥ त्रैलोक्ये सर्व्वभूतेषु त्रैलोक्यमगमं स्मृतम् ॥ प्रकामान् विषयान् भुङ्क्ते न च प्रतिहतः क्वचित् ॥ त्रैलोक्ये सर्व्वभूतानां सुखदुःखं प्रवर्त्तते ॥ १४ ॥ ईशो भवति सर्व्वत्र प्रविभागेन योगवित् ॥ वश्यानि चैव भूतानि त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ भवन्ति सर्व्वकार्य्येषु इच्छतो न भवन्ति च ॥ १५ ॥ यत्र कामावसायित्वं त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ इच्छया चेन्द्रियाणि स्युर्भवन्ति न भवन्ति च ॥ १६ ॥ शब्दः स्पर्शो रसो गन्धो रूपं चैव मनस्तथा ॥ प्रवर्त्तन्तेऽस्य चेच्छातो न भवन्ति तथेच्छया ॥ १७ ॥ न जायते न म्रियते भिद्यते न च छिद्यते ॥ न दह्यते न मुह्यते हीयते न च लिप्यते ॥ १८ ॥ न क्षीयते न क्षरति न खिद्यति कदाचन ॥ क्रियते चैव सर्व्वत्र तथा विक्रियते न च ॥ १९ ॥ अगन्धरसरूपस्तु स्पर्शशब्दविवर्जितः ॥ अवर्णो ह्यवरश्चैव तथा वर्णस्य कर्हिचित् ॥ २० ॥ भुङ्क्तेऽथ विषयांश्चैव विषयैर्न च युज्यते ॥ ज्ञात्वा तु परमं सूक्ष्मं सूक्ष्मत्वाच्चापवर्गकः ॥ २१ ॥ व्यापकस्त्वपवर्गाच्च व्यापित्वात्पुरुषयः स्मृतः ॥ पुरुषः सूक्ष्मभावात्तु ऐश्वर्य्ये परतः स्थितः ॥ २२ ॥ गुणान्तरन्तु ऐश्वर्य्ये सर्वतः सूक्ष्म उच्यते ॥

ऐश्वर्य्यमप्रतीघाति प्राप्य योगमनुत्तमम् ॥ अपवर्गं ततो गच्छेत् सुसूक्ष्मं परमं पदम् ॥ २३ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते योगैश्वर्य्याणि नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ छ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ॥ न चैवमागतो ज्ञानाद्रागात् कर्म्म समाचरेत् ॥ राजसन्तामसं वापि भुक्त्वा तत्रैव युज्यते ॥ १ ॥ तथा सुकृतकर्म्मा तु फलं स्वर्गे समश्नुते ॥ तस्मात् स्थानात् पुनर्भ्रष्टो मानुष्यमनुपद्यते ॥ २ ॥ तस्माद्ब्रह्म परं सूक्ष्मं ब्रह्म शाश्वतमुच्यते ॥ ब्रह्म एव हि सेवेत ब्रह्मैव परमं सुखम् ॥ ३ ॥ परिश्रमस्तु यज्ञानां महतार्थेन वर्त्तते ॥ भूयो मृत्युवशं याति तस्मान्मोक्षः परं सुखम् ॥ ४ ॥ अथ वै ध्यानसंयुक्तो ब्रह्मयज्ञपरायणः ॥ न स स्याद् व्यापितुं शक्यो मन्वन्तरशतैरपि ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा तु पुरुषं दिव्यं विश्वाख्यं विश्वरूपिणम् ॥ विश्वपादशिरोग्रीवं विश्वेशं विश्वभावनम् ॥ विश्वगन्धं विश्वमाल्यं विश्वाम्बरधरं प्रभुम् ॥ ६ ॥ गोभिर्मही संयतते पतत्रिणं महात्मानं परमसतिं वरेण्यम् ॥ कविं पुराणमनुशासितारं सूक्ष्माच्च सूक्ष्मं महतो महान्तम् ॥ योगेन पश्यन्ति न चक्षुषा तं निरिन्द्रियं पुरुषं रुक्मवर्णम् ॥ ७ ॥ अलिङ्गिनं पुरुषं रुक्मवर्णं सलिङ्गिनं निर्गुणं चेतनंच ॥ नित्यं सदा सर्व्वगतन्तु शौचं पश्यन्ति युक्त्या ह्यचलं प्रकाशम् ॥ ८ ॥ तद्भावितस्तेजसा दीप्यमानः अपाणिपादोदरपार्श्वजिह्वः ॥ अतीन्द्रियोऽद्यापि सुसूक्ष्म एकः पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ॥ ९ ॥ नास्यास्त्यबुद्धं न च बुद्धिरस्ति स वेद सर्वं न च वेदवेद्यः ॥ तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तं सचेतनं सर्व्वगतं सुसूक्ष्मम् ॥ १० ॥ तामाहुर्मुनयः सर्व्वे लोके प्रसवधर्म्मिणीम् ॥ प्रकृतिं सर्व्वभूतानां युक्ताः पश्यन्ति चेतसा ॥ ११ ॥ सर्व्वतः पाणिपादान्तं सर्व्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ॥ सर्व्वतः श्रुतिमाँल्लोके सर्व्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १२ ॥ युक्ता योगेन चेशानं सर्व्वतश्च सनातनम् ॥ पुरुषं सर्व्वभूतानां तस्माद्ध्याता न मुह्यते ॥ १३ ॥ भूतात्मानं महात्मानं परमात्मानमव्ययम् ॥ सर्व्वात्मानं परं ब्रह्म तद्वै ध्यात्वा न मुह्यति ॥ १४ ॥ पवनो हि यथा ग्राह्यो विचरन् सर्व्वमूर्तिषु ॥ पुरि शेते तथाग्रे च तस्मात् पुरुष उच्यते ॥ अथ चेल्लुतधर्म्मात्तु स विशेषैश्च कर्म्मभिः ॥ १५ ॥ ततस्तु ब्रह्मयोन्यां वै शुक्रशोणितसंयुतम् ॥ स्त्रीपुमांसप्रयोगेण जायते हि पुनः पुनः ॥ १६ ॥ ततस्तु गर्भकाले तु कललं नाम जायते ॥ कालेन कललश्चापि बुद्बुदश्च प्रजायते ॥ १७ ॥ मृत्पिण्डस्तु यथा चक्रे चक्रावर्त्तेन पीडितः ॥ हस्ताभ्यां क्रियमाणस्तु विश्वत्वमुपगच्छति ॥ १८ ॥ एवमात्मास्थिसंयुक्तो वायुना समुदीरितः ॥ जायते मानुषस्तत्र यथा रूपं तथा मनः ॥ १९ ॥ वायुः सम्भवते तेषां वातात् सञ्जायते जलम् ॥ जलात्संभवति प्राणः प्राणाच्छुक्रं विवर्द्धते ॥ २० ॥ रक्तभागास्त्रयस्त्रिंशच्छुक्रभागाश्चतुर्दश ॥ भागतोऽर्द्धपलं कृत्वा ततो गर्भं निषेवते ॥ २१ ॥ ततस्तु गर्भसंयुक्तः पञ्चभिर्वायुभिर्वृतः ॥ पितुः शरीरात् प्रत्यङ्गरूपमस्योपजायते ॥ २२ ॥ ततोऽस्य मातुराहारात् पीतलीढप्रवेशितम् ॥ नाभिः

स्रोतःप्रवेशेन प्राणाधारो हि देहिनाम् ॥ २३ ॥ नवमासान् परिक्लिष्टः संवेष्टितशिरोधरः ॥ वेष्टितः सर्व्वगात्रैश्च अपर्य्यायक्रमागतः॥ नवमासोषितश्चैव योनिच्छिद्रादवाङ्मुखः २४ ॥ ततस्तु कर्म्मभिः पापैर्नरयं प्रतिपद्यते ॥ असिपत्रवनञ्चैव शाल्मलीच्छेदभेदयोः ॥ २५ ॥ तत्र निर्भर्त्सनञ्चैव तथा शोणितभोजनम् ॥ एतास्तु यातना घोराः कुम्भीपाकसुदुःसहाः ॥२६॥ यथा ह्यापस्तु विच्छिन्नाः स्वरूपमुपयान्ति वै ॥ तस्माच्छिन्नाश्च भिन्नाश्च यातनास्थानमागताः ॥ २७ ॥ एवं जीवस्तु तैः पापैस्तप्यमानः स्वयं कृतैः ॥ प्राप्नुयात् कर्म्मभिर्दुःखं शेषं वा यदि चेतरम् ॥ २८ ॥ एकेनैव तु गन्तव्यं सर्व्वमृत्युनिवेशनं ॥ एकेनैव च भोक्तव्यं तस्मात् सुकृतमाचरेत् ॥ २९ ॥ न ह्येनं प्रस्थितं कश्चिद्गच्छन्तमनुगच्छति ॥ यदनेन कृतं कर्म्म तदेनमनुगच्छति॥३०॥ ते नित्यं यमविषये विभिन्नदेहाः क्रोशन्तः सततमनिष्टसंप्रयोगैः ॥ शुष्यन्ते परिगतवेदनाशरीराः बह्वीभिः सुभृशमधर्म्मयातनाभिः ॥ ३१ ॥ कर्म्मणा मनसा वाचा यदभीष्टं निषेव्यते ॥ तत् प्रसह्य हरेत् पापं तस्मात् सुकृतमाचरेत् ॥ ३२ ॥ यादृग् जातानि पापानि पूर्व्वं कर्म्माणि देहिनः ॥ संसारन्तामसं तादृक् षड्विधं प्रतिपद्यते ॥ ३३ ॥ मानुष्यम्पशुभावञ्च पशुभावान्मृगो भवेत् ॥ मृगत्वात् पक्षिभावन्तु तस्माच्चैव सरीसृपः ॥ ॥३४॥ सरीसृपत्वाद्गच्छद्धि स्थावरत्वन्न संशयः ॥ स्थावरत्वं पुनः प्राप्तो यावदुन्मिषते नरः ॥ कुलालचक्रवद्भ्रान्तस्तत्रैव परिकीर्त्तितः॥३५॥इत्येवं हि मनुष्यादिः संसारे स्थावरान्तके ॥ विज्ञेयस्तामसो नाम तत्रैव परिवर्त्तते ॥३६॥ सात्विकश्चापि संसारो ब्रह्मादिः परिकीर्त्तितः॥ पिशाचान्तः स विज्ञेयः स्वर्गस्थानेषु देहिनाम् ॥३७॥ ब्राह्मे तु केवलं सत्त्वं स्थावरे केवलं तमः ॥ चतुर्दशानां स्थानानां मध्ये विष्टम्भकं रजः ॥ मर्म्मसु च्छिद्यमानेषु वेदनार्त्तस्य देहिनः ॥ ३८ ॥ ततस्तु परमं ब्रह्म कथं विप्रः स्मरिष्यति ॥ संस्कारात् पूर्व्वधर्म्मस्य भावनायां प्रणोदितः ॥ मानुष्यं भजते नित्यं तस्मान्नित्यं समादधेत ॥ ३९ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते पाशुपतयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ छ ॥ छ ॥

॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ॥ चतुर्दशविधं ह्येतद्बुद्ध्वा संसारमण्डलम् ॥ तथा समारभेत् कर्म्म संसारभयपीडितः ॥ १ ॥ ततः स्मरति संसारचक्रेण परिवर्त्तितः ॥ तस्मात्तु सततं युक्तो ध्यानतत्परयुञ्जकः ॥ तथा समारभेद्योगं यथात्मानं स पश्यति ॥ २ ॥ एष आद्यः परं ज्योतिरेष सेतुरनुत्तमः ॥ विवृद्धो ह्येष भूतानां न सम्भेदश्च शाश्वतः ॥ ३ ॥ तदेनं सेतुमात्मानं अग्निं वै विश्वतोमुखम् ॥ हृदिस्थं सर्व्वभूतानामुपासीत विधानवित् ॥ ४ ॥ हुत्वाष्टावाहुतीः सम्यक् शुचिस्तद्गतमानसः ॥ वैश्वानरं हृदिस्थन्तु यथावदनुपूर्व्वशः ॥ अपः पूर्व्वं सकृत् प्राश्य तुष्णीं भूत्वा उपासते ॥ ५ ॥ प्राणायेति ततस्तस्य प्रथमा ह्याहुतिः स्मृता ॥ अपानाय द्वितीया तु समानायेति चापरा ॥ ६ ॥ उदानाय चतुर्थीति व्यानायेति च पञ्चमी ॥ स्वाहा

कारैः परं हुत्वा शेषं भुञ्जीत कामतः ॥ अपः पुनः सकृत् प्राश्य त्र्याचम्य हृदयं स्पृशेत् ॥ ७ ॥ ॐप्राणानां ग्रन्थिरस्यात्मा रुद्रो ह्यात्मा विशान्तकः ॥ स रुद्रो ह्यात्मनः प्राणा एवमाप्याययेत् स्वयम् ॥८॥ त्वं देवानामपि ज्येष्ठ उग्रस्त्वं चतुरो वृषा ॥ मृत्युघ्नोऽसि त्वमस्मभ्यं भद्रमेतद्धुतं हविः॥९॥ एवं हृदयमालभ्य पादाङ्गुष्ठे तु दक्षिणे ॥ विश्राव्य दक्षिणं पाणिं नाभिं वै पाणिना स्पृशेत् ॥ ततः पुनरुपस्पृश्य चात्मानमभिसंस्पृशेत् ॥ १० ॥ अक्षिणी नासिका श्रोत्रे हृदयं शिर एव च ॥ द्वावात्मानावुभावेतौ प्राणापानावुदाहृतौ ॥ ११ ॥ तयोः प्राणोऽन्तरात्मास्य बाह्योऽपानोऽत उच्यते ॥ अन्नं प्राणस्तथापानं मृत्युर्ज्जीवितमेव च ॥ १२ ॥ अन्नं ब्रह्म च विज्ञेयं प्रजानां प्रसवस्तथा ॥ अन्नाद्भूतानि जायन्ते स्थितिरन्नेन चेष्यते ॥ वर्द्धन्ते तेन भूतानि तस्मादन्नन्तदुच्यते ॥ १३ ॥ तदेवाग्नौ हुतं ह्यन्नं भुञ्जते देवदानवाः ॥ गन्धर्व्वयक्षरक्षांसि पिशाचाश्चान्नमेव हि ॥ १४ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते पाशुपतयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ॥ अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि शौचाचारस्य लक्षणम् ॥ यदनुष्ठाय शुद्धात्मा प्रेत्य स्वर्गं हि चाप्नुयात् ॥ १ ॥ उदकार्थी तु शौचानां मुनीनामुत्तमं पदम् ॥ यस्तु तेष्वप्रमत्तः स्यात् स मुनिर्न्नावसीदति ॥ २ ॥ मानावमानौ द्वावेतौ तावेवाहुर्विषामृते ॥ अवमानं विषन्तत्र मानन्त्वमृतमुच्यते ॥ ३ ॥ यस्तु तेष्वप्रमत्तः स्यात् स मुनिर्न्नावसीदति ॥ गुरोः प्रियहिते युक्तः स तु संवत्सरं वसेत् ॥ ४ ॥ नियमेष्वप्रमत्तस्तु यमेषु च सदा भवेत् ॥ प्राप्यानुज्ञान्ततश्चैव ज्ञानागमनमुत्तमम् ॥ अविरोधेन धर्म्मस्य विचरेत् पृथिवीमिमाम् ॥ ५ ॥ चक्षुःपूतं व्रजेन्मार्गं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् ॥ सत्यपूतां वदेद्वाणीमिति धर्म्मानुशासनम् ॥ ६ ॥ आतिथ्यं श्राद्धयज्ञेषु न गच्छेद्योगवित् क्वचित् ॥ एवं ह्यहिंसको योगी भवेदिति विचारणा ॥ ७ ॥ वह्नौ विधूमे व्यङ्गारे सर्व्वस्मिन् भुक्तवज्जने ॥ विचरेन्मतिमान् योगी न तु तेष्वेव नित्यशः ॥ ८ ॥ यथैवमवमन्यन्ते यथा परिभवन्ति च ॥ युक्तस्तथा चरेद्भैक्षं सतां धर्म्ममदूषयन् ॥ ९ ॥ भैक्षं चरेद्गृहस्थेषु यथाचारगृहेषु च ॥ श्रेष्ठा तु परमा चेयं वृत्तिरस्योपदिश्यते ॥ १० ॥ अत ऊर्द्ध्वं गृहस्थेषु शालीनेषु चरेद्द्विजः ॥ श्रद्दधानेषु दान्तेषु श्रोत्रियेषु महात्मसु ॥ ११ ॥ अत ऊर्द्ध्वं पुनश्चापि अदुष्टपतितेषु च ॥ भैक्षचर्य्या विवर्णेषु जघन्या वृत्तिरुच्यते ॥ १२ ॥ भैक्षं यवागूं तक्रं वा पयो यावकमेव च ॥ फलमूलं विपक्कं वा पिण्याकं शक्तितोपि वा ॥ १३ ॥ इत्येते वै मया प्रोक्ता योगिनां सिद्धिवर्द्धनाः ॥ आहारास्तेषु सिद्धेषु श्रेष्ठं भैक्षमिति स्मृतम् ॥ १४ ॥ अब्बिन्दुं यः कुशाग्रेण मासे मासे समश्नुते ॥ न्यायतो यस्तु भिक्षेत स पूर्व्वोक्ताद्विशिष्यते ॥१५॥ योगिनां चैव सर्वेषां श्रेष्ठं चान्द्रायणं स्मृतम् ॥ एकं द्वे त्रीणि चत्वारि शक्तितो वा समाचरेत् ॥ १६ ॥ अस्तेयं ब्रह्मचर्य्यञ्च अलोभस्त्याग एव च ॥ व्रतानि चैव भिक्षूणामहिंसा परमार्थिता ॥ १७॥ अक्रोधो गुरुशु

श्रूषा शौचमाहारलाघवम् ॥ नित्यं स्वाध्याय इत्येते नियमाः परिकीर्त्तिताः ॥ १८ ॥ बीजयोनिर्गुणवपुर्बद्धः कर्म्मभिरेव च ॥ यथा द्विप इवारण्ये मनुष्याणां विधीयते ॥१९ ॥ प्राप्यते वाचिरादेवाङ्कुशेनेव निवारितः ॥ एवं ज्ञानेन शुद्धेन दग्धबीजो ह्यकल्मषः ॥ विमुक्तबन्धः शान्तोऽसौ मुक्त इत्यभिधीयते ॥२०॥ वेदैस्तुत्या सर्व्वयज्ञक्रियास्तु यज्ञे जप्यं ज्ञानिनामाहुरग्र्यम् ॥ ज्ञानाद्ध्यानं सङ्गरागव्यपेतं तस्मिन् प्राप्ते शाश्वतस्योपलब्धिः ॥ २१ ॥ दमः शमः सत्यमकल्मषत्वं मौनं च भूतेष्वखिलेष्वथार्ज्जवम् ॥ अतीन्द्रियज्ञानमिदं तथार्ज्जवं प्राहुस्तथा ज्ञानविशुद्धसत्त्वाः ॥ २२ ॥ समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी शुचिस्तथैवात्मरतिर्जितेन्द्रियः ॥ समाप्नुयुर्योगमिमं महाधियो महर्षयश्चैवमनिन्दितामलाः ॥ २३ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते शौचाचारलक्षणं नाम षोडशोऽध्यायः॥१६॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ॥ आश्रमत्रयमुत्सृज्य प्राप्तस्तु परमाश्रमम् ॥ अतः संवत्सरस्यान्ते प्राप्य ज्ञानमनुत्तमम् ॥१ ॥ अनुज्ञाप्य गुरुं चैव विचरेत् पृथिवीमिमाम् ॥ सारभूतमुपासीत ज्ञानं यज्ज्ञेयसाधकम् ॥२॥ इदं ज्ञानमिदं ज्ञेयमिति यस्तुषितश्चरेत् ॥ अपि कल्पसहस्रायुर्नैव ज्ञेयमवाप्नुयात् ॥३॥ त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः ॥ पिधाय बुद्ध्या द्वाराणि ध्याने ह्येवं मनो दधेत् ॥ ४ ॥ शून्येष्वेवावकाशेषु गुहासु च वने तथा ॥ नदीनां पुलिने चैव नित्यं युक्तः सदा भवेत् ॥ ५ ॥ वाग्दण्डः कर्म्मदण्डश्च मनोदण्डश्च ते त्रयः ॥ यस्यैते नियता दण्डाः स त्रिदण्डी व्यवस्थितः ॥ ६ ॥ अवस्थितो ध्यानरतिर्जितेन्द्रियः शुभाशुभे हित्य च कर्म्मणी उभे ॥ इदं शरीरं प्रविमुच्य शास्त्रतो न जायते म्रियते वा कदाचित् ॥ ७ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते परमाश्रमप्राप्तिकथनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ छ ॥ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ॥ अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि यतीनामिह निश्चयम् ॥ प्रायश्चित्तानि तत्त्वेन यान्यकामकृतानि तु ॥ अथ कामकृतेष्याहुः सूक्ष्मधर्म्मविदो जनाः ॥ १ ॥ पापञ्च त्रिविधं प्रोक्तं वाङ्मनःकायसम्भवम् ॥ सततं हि दिवा रात्रौ येनेदं बध्यते जगत् ॥ २ ॥ न कर्म्माणि न चाप्येष तिष्ठतीतिपरा श्रुतिः ॥ क्षणमेव प्रयोज्यन्तु आयुषस्तु विधारणात् ॥ ३ ॥ भवेद्धीरोऽप्रमत्तस्तु योगो हि परमं बलम् ॥ न हि योगात्परं किञ्चिन्नराणामिह दृश्यते ॥ तस्माद्योगं प्रशंसन्ति धर्म्मयुक्ता मनीषिणः ॥ ४ ॥ अविद्यां विद्यया तीर्त्वा प्राप्यैश्वर्य्यमनुत्तमम् ॥ दृष्ट्वा परापरं धीराः परं गच्छन्ति तत्पदम् ॥ ५ ॥ व्रतानि यानि भिक्षूणां तथैवोपव्रतानि च ॥ एकैकापक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ ६ ॥ उपेत्य तु स्त्रियं कामात् प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥ प्राणायामसमायुक्तं कुर्य्यात्सान्तपनं तथा ॥ ७ ॥ ततश्चरति निर्दिष्टं कृच्छ्रस्यान्ते समाहितः ॥ पुनराश्रममागम्य चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ॥ न मर्म्मयुक्तं वचनं हिनस्तीति मनीषिणः ॥ ८ ॥ तथापि च न कर्त्तव्यः प्रसङ्गो ह्येष दारुणः ॥ अहोरात्राधिकः कश्चिन्नास्त्यधर्म इति श्रुतिः ॥ ९ ॥

हिंसा ह्येषा परा सृष्टा दैवतैर्मुनिभिस्तथा ॥ यदेतद्द्रविणं नाम प्राणा ह्येते बहिश्चराः ॥ स तस्य हरति प्राणान् यो यस्य हरते धनम् ॥ १० ॥ एवं कृत्वा स दुष्टात्मा भिन्नवृत्तो व्रताच्युतः ॥ भूयो निर्व्वेदमापन्नश्चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् ॥ ११ ॥ विधिना शास्त्रदृष्टेन संवत्सरमिति श्रुतिः ॥ ततः संवत्सरस्यान्ते भूयः प्रक्षीणकल्मषः ॥ भूयो निर्व्वेदमापन्नश्चरेद्भिक्षुरतन्द्रितः ॥ १२ ॥ अहिंसा सर्व्वभूतानां कर्म्मणा मनसा गिरा ॥ अकामादपि हिंसेत यदि भिक्षुः पशून् मृगान् ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रं कुर्व्वीत चान्द्रायणमथापि वा ॥ १३ ॥ स्कन्देदिन्द्रियदौर्व्बल्यात् स्त्रियं दृष्ट्वा यतिर्यदि ॥ तेन धारयितव्या वै प्राणायामास्तु षोडश ॥ १४ ॥ दिवा स्कन्नस्य विप्रस्य प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ त्रिरात्रमुपवासश्च प्राणायामशतं तथा ॥ १५ ॥ रात्रौ स्कन्नः शुचिः स्नातो द्वादशैव तु धारणाः ॥ प्राणायामेन शुद्धात्मा विरजा जायते द्विजः ॥ १६ ॥ एकान्नं मधु मांसं वा ह्यामश्राद्धं तथैव च ॥ अभोज्यानि यतीनाञ्च प्रत्यक्षलवणानि च ॥ १७ ॥ एकैकातिक्रमे तेषां प्रायश्चित्तं विधीयते ॥ प्राजापत्येन कृच्छ्रेण ततः पापात् प्रमुच्यते ॥ १८ ॥ व्यतिक्रमाच्च ये केचिद्वाङ्मनःकायसम्भवम् ॥ सद्भिः सह विनिश्चित्य यद्ब्रूयुस्तत्समाचरेत् ॥ १९ ॥ विशुद्धबुद्धिः समलोष्टकाञ्चनः समस्तभूतेषु चरन् समाहितः ॥ स्थानं ध्रुवं शाश्वतमव्ययं सतां परं स गत्वा न पुनर्हि जायते ॥ २० ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते यतिप्रायश्चित्तविधिर्नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ ॥ वायुरुवाच ॥ अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि अरिष्टानि निबोधत ॥ येन ज्ञानविशेषेण मृत्युं पश्यति चात्मनः ॥ १ ॥ अरुन्धतीं ध्रुवञ्चैव सोमच्छायां महापथम् ॥ यो न पश्येत्स नो जीवेन्नरः संवत्सरात्परम् ॥ २ ॥ अरश्मिवन्तमादित्यं रश्मिवन्तञ्च पावकम् ॥ यः पश्येन्न च जीवेत मासादेकादशात्परम् ॥ ३ ॥ वमेन्मूत्रं करीषं वा सुवर्णं रजतं तथा ॥ प्रत्यक्षमथ वा स्वप्ने दशमासान् स जीवति ॥ ४ ॥ अग्रतः पृष्ठतो वापि खण्डं यस्य पदम्भवेत् ॥ पांशुले कर्दमे वापि सप्तमासान् स जीवति ॥ ५ ॥ काकः कपोतो गृध्रो वा निलीयेद्यस्य मूर्द्धनि ॥ क्रव्यादो वा खगः कश्चित् षण्मासान्नातिवर्त्तते ॥ ६ ॥ बध्येद्वायसपङ्क्तीभिः पांशुवर्षेण वा पुनः ॥ छायां वा विकृतां पश्येच्चतुःपञ्च स जीवति ॥ ७ ॥ अनभ्रे विद्युतं पश्येद्दक्षिणां दिशमाश्रिताम् ॥ उदकेन्द्रधनुर्वापि त्रयो द्वौ वा स जीवति ॥ ८ ॥ अप्सु वा यदि वाऽऽदर्शे आत्मानं यो न पश्यति ॥ अशिरस्कन्तथात्मानं मासादूर्द्ध्वं न जीवति ॥ ९ ॥ शवगन्धि भवेद्गात्रं वसागन्धि ह्यथापि वा ॥ मृत्युर्ह्युपस्थितस्तस्य अर्द्धमासं स जीवति ॥ १० ॥ सम्भिन्नो मारुतो यस्य मर्म्मस्थानानि कृन्तति ॥ अद्भिः स्पृष्टो न हृष्येच्च तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥ ११ ॥ ऋक्षवानरयुक्तेन रथेनाशान्तु दक्षिणाम् ॥ गायन्नथ व्रजेत् स्वप्ने विद्यान्मृत्युरुपस्थितः ॥ १२ ॥ कृष्णाम्बरधरा श्यामा गायन्ती वाथ चाङ्गना ॥ यन्नयेद्दक्षिणामाशां स्वप्ने सोपि न जीवति ॥ १३ ॥ छिद्रं वासश्च कृष्णञ्च स्वप्ने यो विधृयान्नरः ॥ भग्नं वा श्रव

णं दृष्ट्वा विद्यान्मृत्युरुपास्थितः ॥ १४ ॥ आमस्तकतलाद्यस्तु निमज्जेत्पङ्कसागरे ॥ दृष्ट्वा तु तादृशं स्वप्नं सद्य एव न जीवति ॥ १५ ॥ भस्माङ्गारांश्च केशांश्च नदीं शुष्कां भुजङ्गमान् ॥ पश्येद्यो दशरात्रन्तु न स जीवेत तादृशः ॥ १६ ॥ कृष्णैश्च विकटैश्चैव पुरुषैरुद्यतायुधैः ॥ पाषाणैस्ताड्यते स्वप्ने यः सद्यो न स जीवति ॥ १७ ॥ सूर्य्योदये प्रत्युषासि प्रत्यक्षं यस्य वै शिवा ॥ क्रोशन्ती सम्मुखाभ्येति स गतायुर्भवेन्नरः ॥ १८ ॥ यस्य वै स्नातमात्रस्य हृदयं पीड्यते भृशम् ॥ जायते दन्तहर्षश्च तं गतायुषमादिशेत् ॥ १९ ॥ भूयो भूयः श्वसेद्यस्तु रात्रौ वा यदि वा दिवा ॥ दीपगन्धञ्च नो वेत्ति विद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥ २० ॥ रात्रौ चेन्द्रायुधं पश्येद् दिवा नक्षत्रमण्डलम् ॥ परनेत्रेषु चात्मानं न पश्येन्न स जीवति ॥ २१ ॥ नेत्रमेकं स्रवेद्यस्य कर्णौ स्थानाच्च भ्रश्यतः ॥ नासा च वक्रा भवति स ज्ञेयो गतजीवितः ॥ २२ ॥ यस्य कृष्णा खरा जिह्वा पङ्कभासञ्च वै मुखम् ॥ गण्डे चिपिटके रक्ते तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥ २३ ॥ मुक्तकेशो हसंश्चैव गायन् नृत्यंश्च यो नरः ॥ याम्याशाभिमुखो गच्छेत्तदन्तं तस्य जीवितम् ॥ २४ ॥ यस्य स्वेदसमुद्भूताः श्वेतसर्षपसन्निभाः ॥ स्वेदा भवन्ति ह्यसकृत्तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥ २५ ॥ उष्ट्रा वा रासभा वापि युक्ताः स्वप्ने रथेऽशुभाः ॥ यस्य सोपि न जीवेत दक्षिणाभिमुखो गतः ॥ २६ ॥ द्वे चात्र परमेऽरिष्टे एतद्रूपं परं भवेत् ॥ घोषं न शृणुयात् कर्णे ज्योतिर्नेत्रे न पश्यति ॥ २७ ॥ श्वभ्रे यो निपतेत् स्वप्ने द्वारञ्चास्य न विद्यते ॥ न चोत्तिष्ठति यः श्वभ्रात्तदन्तं तस्य जीवितम् ॥ २८ ॥ ऊर्द्ध्वा च दृष्टिर्न च सम्प्रतिष्ठा रक्ता पुनः सम्परिवर्त्तमाना ॥ मुखस्य चोष्मा शुषिरा च नाभिरत्युष्णमूत्रो विषमस्थ एव ॥ २९ ॥ दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रत्यक्षं योऽभिहन्यते ॥ तं पश्येदथ हन्तारं स हतस्तु न जीवति ॥ ३० ॥ अग्निप्रवेशं कुरुते स्वप्नान्ते यस्तु मानवः ॥ स्मृतिं नोपलभेच्चापि तदन्तं तस्य जीवितम् ॥ ३१ ॥ यस्तु प्रावरणं शुक्लं स्वकं पश्यति मानवः ॥ रक्तं कृष्णमपि स्वप्ने तस्य मृत्युरुपास्थितः ॥ ३२ ॥ अरिष्टसूचिते देहे तस्मिन् काल उपागते ॥ त्यक्त्वा भयविषादञ्च उद्गच्छेद्बुद्धिमान्नरः ॥ ३३ ॥ प्राचीं वा यदि वोदीचीं दिशं निष्क्रम्य वै शुचिः ॥ समेऽतिस्थावरे देशे विविक्ते जनवर्ज्जिते ॥ ३४ ॥ उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा स्वस्थः स्वाचान्त एव च ॥ स्वस्तिकोपनिविष्टश्च नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥ समकायशिरोग्रीवन्धारयेन्नावलोकयेत् ॥ ३५ ॥ यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता ॥ प्रागुदक्प्रवणे देशे तस्माद्युञ्जीत योगवित् ॥ ३६ ॥ प्राणे च रमते नित्यं चक्षुषोः स्पर्शने तथा ॥ श्रोत्रे मनसि बुद्धौ च तथा वक्षसि धारयेत् ॥ ३७ ॥ कालधर्म्मञ्च विज्ञाय समूहञ्चैव सर्व्वशः ॥ द्वादशाध्यात्ममित्येवं योगधारणमुच्यते ॥ ३८ ॥ शतमष्टशतं वापि धारणां मूर्ध्नि धारयेत् ॥ न तस्य धारणायोगाद्वायुः सर्व्वं प्रवर्त्तते ॥ ३९ ॥ ततस्त्वापूरयेद्देहमोङ्कारेण समाहितः ॥ अथोङ्कारमयो योगी

न क्षरेत्त्वक्षरी भवेत् ॥ ४० ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते अरिष्टानि नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ॥ अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि ओङ्कारप्राप्तिलक्षणम् ॥ एष त्रिमात्रो विज्ञेयो व्यञ्जनश्चात्र सस्वरम् ॥ १ ॥ प्रथमा वैद्युती मात्रा द्वितीया तामसी स्मृता ॥ तृतीया निर्गुणी विद्यान्मात्रामक्षरगामिनीम् ॥ २ ॥ गन्धर्व्वीति च विज्ञेया गान्धारस्वरसम्भवा ॥ पिपीलिकासमस्पर्शा प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते ॥ ३ ॥ तथा प्रयुक्तमोङ्कारं प्रतिनिर्वाति मूर्द्धनि ॥ तथोङ्कारमयो योगी ह्यक्षरे त्वक्षरी भवेत् ॥ ४ ॥ प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ॥ अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ ५ ॥ ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म गुहायां निहितं पदम् ॥ ओमित्येतत्त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयोऽग्नयः ॥ विष्णुक्रमास्त्रयस्त्वेते ऋक्सामानि यजूंषि च ॥ ॥ ६ ॥ मात्राश्चात्र चतस्रस्तु विज्ञेयाः परमार्थतः ॥ तत्र युक्तश्च यो योगी तस्य सालोक्यतां व्रजेत् ॥ ७ ॥ अकारस्त्वक्षरो ज्ञेय उकारः स्वरितः स्मृतः ॥ मकारस्तु प्लुतो ज्ञेयस्त्रिमात्र इति संज्ञितः ॥ ८ ॥ अकारस्त्वथ भूर्लोक उकारो भुवरुच्यते ॥ सव्यञ्जनो मकारश्च स्वर्ल्लोकश्च विधीयते ॥ ९ ॥ ओङ्कारस्तु त्रयो लोकाः शिरस्तस्य त्रिविष्टपम् ॥ भुवनान्तञ्च तत्सर्व्वं ब्राह्मन्तत्पदमुच्यते ॥ १० ॥ मात्रापदं रुद्रलोको ह्यमात्रस्तु शिवं पदम् ॥ एवन्ध्यानविशेषेण तत्पदं समुपासते ॥ ११ ॥ तस्माद्ध्यानरतिर्नित्यममात्रं हि तदक्षरम् ॥ उपास्यं हि प्रयत्नेन शाश्वतं पदमिच्छता ॥ १२ ॥ ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा ततो दीर्घा त्वनन्तरम् ॥ ततः प्लुतवती चैव तृतीया उपदिश्यते ॥ १३ ॥ एतास्तु मात्रा विज्ञेया यथावदनुपूर्व्वशः ॥ यावच्चैव तु शक्यन्ते धार्य्यन्ते तावदेव हि ॥ १४ ॥ इन्द्रियाणि मनो बुद्धिं ध्यायन्नात्मनि यः सदा ॥ अत्राष्टमात्रमपि चेच्छृणुयात्फलमाप्नुयात् ॥ १५ ॥ मासे मासेऽश्वमेधेन यो यजेत शतं समाः ॥ न स तत् प्राप्नुयात् पुण्यं मात्रया यदवाप्नुयात् ॥ १६ ॥ अब्बिन्दुं यः कुशाग्रेण मासे मासे पिबेन्नरः ॥ संवत्सरशतं पूर्णं मात्रया तदवाप्नुयात् ॥ १७ ॥ इष्टापूर्त्तस्य यज्ञस्य सत्यवाक्ये च यत् फलम् ॥ अभक्षणे च मांसस्य मात्रया तदवाप्नुयात् ॥ १८ ॥ स्वाम्यर्थे युध्यमानानां शूराणामनिवर्त्तिनाम् ॥ यद्भवेत्तत् फलं दृष्टं मात्रया तदवाप्नुयात् ॥ १९ ॥ न तथा तपसोग्रेण न यज्ञैर्भूरिदक्षिणैः ॥ यत् फलं प्राप्नुयात् सम्यग् मात्रया तदवाप्नुयात् ॥ २० ॥ तत्र वै योऽर्द्धमात्रो यः प्लुतो नामोपदिश्यते ॥ एषा एव भवेत् कार्य्या गृहस्थानान्तु योगिनाम् ॥ २१ ॥ एषा चैव विशेषेण ऐश्वर्य्यसमलक्षणा ॥ योगिनान्तु विशेषेण ऐश्वर्येऽह्यष्टलक्षणे ॥ अणिमाद्येति विज्ञेया तस्माद्युञ्जीत तां द्विजः ॥ २२ ॥ एवं हि योगी संयुक्तः शुचिर्दान्तो जितेन्द्रियः ॥ आत्मानं विन्दते यस्तु स सर्व्वं विन्दते द्विजः ॥ २३ ॥ ऋचो यजूंषि सामानि वेदोपनिषदस्तथा ॥ योगज्ञानादवाप्नोति ब्राह्मणो ध्यानचिन्तकः ॥ २४ ॥ सर्व्वभूतलयो भूत्वा अभूतः स तु जायते ॥ योगी सङ्क्रमणं कृत्वा

याति वै शाश्वतं पदम् ॥ २५ ॥ अपि चात्र चतुर्हस्तां ध्यायमानश्चतुर्मुखीम् ॥ प्रकृतिं विश्वरूपाख्यां दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ॥२६॥ अजामेतां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाम् ॥ अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥ अष्टाक्षरां षोडशपाणिपादां चतुर्मुखीं त्रिशिखामेकशृङ्गाम् ॥ आद्यामजां विश्वसृजां स्वरूपां ज्ञात्वा बुधास्त्वमृतत्वं व्रजन्ति ॥ ये ब्राह्मणाः प्रणवं वेदयन्ति न ते पुनः संसरन्तीह भूयः ॥ २७ ॥ इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोङ्कारसंज्ञितम्॥ यस्तु वेदयते सम्यक् तथा ध्यायति वा पुनः॥२८॥संसारचक्रमुत्सृज्य मुक्तबन्धनबन्धनः ॥ अचलं निर्गुणं स्थानं शिवं प्राप्नोत्यसंशयः ॥ इत्येतद्वै मया प्रोक्तमोङ्कारप्राप्तिलक्षणम् ॥२९॥ नमो लोकेश्वराय सङ्कल्पकल्पग्रहणाय महान्तमुपतिष्ठते तद्धो हितं यद्ब्रह्मणे नमः ॥ सर्व्वत्र स्थानिने निर्गुणाय सम्भक्तयोगीश्वराय च ॥ पुष्करपर्णमिवाद्भिर्विशुद्धमिव ब्रह्ममुपतिष्ठेत्पवित्रं पवित्राणां पवित्रं पवित्रेण परिपूरितेन पवित्रेण ह्रस्वन्दीर्घप्लुतमिति तदेतमोङ्कारमशब्दमस्पर्शमरूपमरसमगन्धं पर्य्युपासेत अविघ्नेशानाय विश्वरूपो न तस्य अविघ्नेशानाय नमो योगीश्वरायेति च येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वस्तनितं येन नाकस्तयोरन्तरिक्षमिमे वरीयसो देवानां हृदयं विश्वरूपो न तस्य प्राणापानौपम्यं चास्ति ओङ्कारोविश्वविश्वा वै यज्ञः यज्ञो वै वेदः वेदो वै नमस्कारः नमस्कारो रुद्रः नमो रुद्राय योगेश्वराधिपतये नमः ॥ ॥ इति सिद्धिप्रत्युपस्थानं सायंप्रातर्मध्याह्ने नमः इति ॥ ॥ सर्व्वकामफलोरुद्रः ॥ यथा वृन्तात् फलं पक्वं पवनेन समीरितम् ॥ नमस्कारेण रुद्रस्य तथा पापं प्रणश्यति ॥३०॥ यथा रुद्रनमस्कारः सर्व्वधर्म्मफलो ध्रुवः॥ अन्यदेवनमस्कारो न तत् फलमवाप्नुयात्॥३१॥तस्मात् त्रिषवणं योगी उपासीत महेश्वरम्॥दशविस्तारकं ब्रह्म तथा च ब्रह्म विस्तरम् ॥ ३२ ॥ ओङ्कारं सर्व्वतः काले सर्व्वं विहितवान् प्रभुः॥ तेन तेन तु विष्णुत्वं नमस्कारं महायशाः ॥३३॥ नमस्कारस्तथा चैव प्रणवस्तुवते प्रभुम् ॥ प्रणवं स्तुवते यज्ञो यज्ञं संस्तुवते नमः ॥ नमस्तुवाति वै रुद्रस्तस्माद्रुद्रपदं शिवम् ॥३४॥ इत्येतानि रहस्यानि यतीनां वै यथाक्रमम् ॥ यस्तु वेदयते ध्यानं स परं प्राप्नुयात्पदम् ॥३५॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते ओङ्कारप्राप्तिलक्षणं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ॥ छ ॥

॥ सूत उवाच ॥ ॥ ऋषीणामग्निकल्पानां नैमिषारण्यवासिनाम् ॥ ऋषिः श्रुतिधरः प्राज्ञः सावर्णिर्नाम नामतः ॥ १ ॥ तेषां सोप्यग्रतो भूत्वा वायुं वाक्यविशारदः ॥ सातत्यं तत्र कुर्वन्तं प्रियार्थं सत्रयाजिनाम् ॥ विनयेनोपसंगम्य पप्रच्छ स महाद्युतिम् ॥२॥ ॥ सावर्णिरुवाच ॥ ॥ विभो पुराणसंबद्धां कथां वै वेदसंमिताम् ॥ श्रोतुमिच्छामहे सम्यक् प्रसादात्सर्व्वदर्शिनः ॥ ३॥ हिरण्यगर्भो भगवान् ललाटान्नीललोहितम् ॥ कथं तत्तेजसं देवं लब्धवान् पुत्रमात्मनः ॥ ४ ॥ कथंच भगवान् जज्ञे ब्रह्मा कमलसंभवः ॥ रुद्रत्वं चैव शर्व्वस्य स्वात्मजस्य कथं पुनः ॥ ५ ॥ कथं च विष्णो रुद्रेण सार्द्धं

प्रीतिरनुत्तमा ॥ सर्व्वे विष्णुमया देवा सर्व्वे विष्णुमया गणाः ॥ ६ ॥ न च विष्णुसमा काचिद्गतिरन्या विधीयते ॥ इत्येवं सततं देवा गायन्ते नात्र संश
यः ॥ भवस्य स कथं नित्यं प्रणामं कुरुते हरिः ॥ ७ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ एवमुक्ते तु भगवान् वायुः सावर्णिमब्रवीत् ॥ अहो साधु त्वया सा
धो पृष्टः प्रश्नो ह्यनुत्तमः ॥ ८ ॥ भवस्य पुत्रजन्मत्वं ब्रह्मणः सोऽभवद्यथा ॥ ब्रह्मणः पद्मयोनित्वं रुद्रत्वं शंकरस्य च ॥ ९ ॥ द्वाभ्यामपि च सम्प्रीतिर्वि
ष्णोश्चैव भवस्य च ॥ यच्चापि कुरुते नित्यं प्रणामं शंकरस्य च ॥ विस्तरेणानुपूर्व्याच्च शृणुत ब्रुवतो मम ॥ १० ॥ मन्वन्तरस्य संहारे पश्चिमस्य महा
त्मनः ॥ आसीत्तु सप्तमः कल्पः पद्मो नाम द्विजोत्तम ॥ वाराहः साम्प्रतस्तेषां तस्य वक्ष्यामि विस्तरम् ॥ ११ ॥ ॥ सावर्णिरुवाच ॥ ॥ कियता
चैव कालेन कल्पः सम्भवते कथम् ॥ किं च प्रमाणं कल्पस्य तत्र प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥ १२ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ॥ मन्वन्तराणां सप्तानां कालसंख्या यथा
क्रमम् ॥ प्रवक्ष्यामि समासेन ब्रुवतो मे निबोधत॥१३॥कोटीनां द्वे सहस्रे वै अष्टौ कोटिशतानि च ॥ द्विषष्टिश्च तथा कोट्यो नियुतानि च सप्ततिः ॥कल्पा
र्द्धस्य तु संख्यायामेतत् सर्व्वमुदाहृतम्॥१४॥पूर्व्वोक्तौ च गुणच्छेदौ वर्षाग्रं लब्धमादिशेत्॥ शतं चैव तु कोटीनां कोटीनामष्टसप्ततिः॥ द्वे च शतसहस्रे तु
नवतिर्नियुतानि च॥१५॥ मानुषेण प्रमाणेन यावद्वैवस्वतान्तरम्॥ एष कल्पस्तु विज्ञेयः कल्पार्द्धं द्विगुणीकृतः१६॥अनागतानां सप्तानामेतदेव यथाक्रमम्॥
प्रमाणं कालसंख्याया विज्ञेयं मतमैश्वरम् ॥ १७ ॥ नियुतान्यष्टपञ्चाशत्तथाऽशीतिशतानि च ॥ चतुरशीतिश्चान्यानि प्रयुतानि प्रमाणतः ॥ १८ ॥
सप्तर्षयो मनुश्चैव देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः ॥ एतत् कालस्य विज्ञेयं वर्षाग्रन्तु प्रमाणतः ॥ १९ ॥ एवं मन्वन्तरं तेषां मानुषान्तः प्रकीर्त्तितः ॥ प्रणवान्ताश्च
ये देवाः साध्या देवगणाश्च ये ॥ विश्वे देवाश्च ये नित्याः कल्पं जीवन्ति ते गणाः ॥ २० ॥ अयं यो वर्त्तते कल्पो वाराहः स तु कीर्त्यते ॥ यस्मिन्
स्वायम्भुवाद्याश्च मनवश्च चतुर्दश ॥२१॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ कस्माद्वाराहकल्पोऽयं नामतः परिकीर्त्तितः ॥ कस्माच्च कारणाद्देवो वराह इति
कीर्त्यते ॥ २२ ॥ को वा वराहो भगवान् कस्य योनिः किमात्मकः ॥ वराहः कथमुत्पन्न एतदिच्छाम वेदितुम् ॥ २३ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ॥
वराहस्तु यथोत्पन्नो यस्मिन्नर्थे च कल्पितः ॥ वाराहश्च यथा कल्पः कल्पत्वं कल्पना च या ॥ २४ ॥ कल्पयोरन्तरं यच्च तस्य चास्य च कल्पितम्॥
तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥२५॥ भवस्तु प्रथमः कल्पो लोकादौ प्रथितः पुरा ॥ ज्ञातव्यो भगवानत्र ह्यानन्दः साम्प्रतः स्वयम् ॥२६॥
ब्रह्मस्थानमिदं दिव्यं प्राप्तं वा दिव्यसम्भवम् ॥ द्वितियस्तु भुवः कल्पस्तृतीयस्तप उच्यते ॥२७॥ भवश्चतुर्थो विज्ञेयः पंचमो रम्भ एव च ॥
ऋतुकल्पस्तथा षष्ठः सप्तमस्तु क्रतुः स्मृतः ॥ २८ ॥ अष्टमस्तु भवेद्वह्निर्नवमो हव्यवाहनः ॥ सावित्रो दशमः कल्पो भुवस्त्वेकादशः

स्मृतः ॥ २९ ॥ उशिको द्वादशस्तत्र कुशिकस्तु त्रयोदशः ॥ चतुर्दशस्तु गन्धर्व्वो गान्धर्व्वो यत्र वै स्वरः ॥ उत्पन्नस्तु यथा नादो गन्धर्व्वा
यत्र चोत्थिताः ॥ ३० ॥ ऋषभस्तु ततः कल्पो ज्ञेयः पंचदशो द्विजाः ॥ ऋषयो यत्र सम्भूताः स्वरो लोकमनोहरः ॥ ३१ ॥ षड्जस्तु
षोडशः कल्पः षड् जना यत्र चर्षयः ॥ शिशिरश्च वसन्तश्च निदाघो वर्ष एव च ॥ ३२ ॥ शरद्धेमन्त इत्येते मानसा ब्रह्मणः सुताः ॥ उत्पन्नाः
षड्जसंसिद्धाः पुत्राः कल्पे तु षोडशे ॥ ३३ ॥ यस्माज्जातैश्च तैः षड्भिः सद्यो जातो महेश्वरः ॥ तस्मात् समुत्थितः षड्जः स्वरस्तूदधिसन्नि
भः ॥ ३४ ॥ ततः सप्तदशः कल्पो मार्जालीय इति स्मृतः ॥ मार्ज्जालीयं तु तत् कर्म्म यस्माद्ब्राह्ममकल्पयत् ॥ ३५ ॥ ततस्तु मध्यमो नाम कल्पोऽष्टा
दश उच्यते ॥ यस्मिंस्तु मध्यमो नाम स्वरो धैवतपूजितः ॥ उत्पन्नः सर्व्वभूतेषु मध्यमो वै स्वयंभुवः॥३६॥ततस्त्वेकोनविंशस्तु कल्पो वैराजकः स्मृतः॥
वैराजो यत्र भगवान् मनुर्वै ब्रह्मणः सुतः ॥ ३७ ॥ तस्य पुत्रस्तु धर्मात्मा दधीचिर्नाम धार्म्मिकः ॥ प्रजापतिर्महातेजा बभूव त्रिदशेश्वरः ॥ ३८ ॥
अकामयत गायत्री यजमानं प्रजापतिम् ॥ तस्माज्जज्ञे स्वरः स्निग्धः पुत्रस्तस्य दधीचिनः ॥ ३९ ॥ ततो विंशतिमः कल्पो निषादः परिकीर्त्ति
तः ॥ प्रजापतिस्तु तं दृष्ट्वा स्वयम्भूप्रभवं तदा ॥ विरराम प्रजाः स्रष्टुं निषादस्तु तपोऽतपत् ॥ ४० ॥ दिव्यं वर्षसहस्रन्तु निराहारो जितेन्द्रियः ॥ तमु
वाच महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥४१॥ ऊर्द्ध्वबाहुं तपोग्लानं दुःखितं क्षुत्पिपासितम् ॥ निषीदेत्यब्रवीदेनं पुत्रं शान्तं पितामहः ॥ तस्मान्निषादः स
म्भूतः स्वरस्तु स निषादवान् ॥ ४२ ॥ एकविंशतिमः कल्पो विज्ञेयः पञ्चमो द्विजाः ॥ प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥ ४३ ॥ ब्रह्मणो मा
नसाः पुत्राः पञ्चैते ब्रह्मणः समाः ॥ तैस्त्वर्थवादिभिर्युक्तैर्वाग्भिरिष्टो महेश्वरः ॥४४॥ यस्मात्परिगतैर्गीतः पञ्चभिस्तैर्महात्मभिः ॥ स्वरस्तु पञ्चमः स्नि
ग्धः तस्मात्कल्पस्तु पञ्चमः॥४५॥ द्वाविंशस्तु तथा कल्पो विज्ञेयो मेघवाहनः ॥ यत्र विष्णुर्महाबाहुर्मेघो भूत्वा महेश्वरम् ॥ दिव्यं वर्षसहस्रन्तु अवहत्
कृत्तिवाससम् ॥४६॥ तस्य निःश्वसमानस्य भाराक्रान्तस्य वै मुखात् ॥ निर्जगाम महाकायः कालो लोकप्रकाशनः॥यस्त्वयं पठ्यते विप्रैर्विष्णुर्वै कश्य
पात्मजः ॥ ४७ ॥ त्रयोविंशतिमः कल्पो विज्ञेयश्चिन्तकस्तथा ॥ प्रजापतिसुतः श्रीमान् चितिश्च मिथुनञ्च तौ ॥ ४८ ॥ ध्यायतो ब्रह्मणश्चैव यस्माच्चि
न्ता समुत्थिता ॥ तस्माच्च चिन्तकः सो वै कल्पः प्रोक्तः स्वयम्भुवा ॥ ४९ ॥ चतुर्विंशतिमश्चापि ह्याकूतिः कल्प उच्यते ॥ आकूतिश्च तथा देवी
मिथुनं सम्बभूव ह ॥ ५० ॥ प्रजाः स्रष्टुं तथाकूतिं यस्मादाह प्रजापतिः ॥ तस्मात् स पुरुषो ज्ञेय आकूतिः कल्पसंज्ञितः ॥ ५१ ॥ पञ्चविंशतिमः क
ल्पो विज्ञातिः परिकीर्त्तितः ॥ विज्ञातिश्च तथा देवी मिथुनं संम्प्रसूयते ॥५२॥ ध्यायतः पुत्रकामस्य मनस्यध्यात्मसंज्ञितम् ॥ विज्ञातं वै समासेन विज्ञा

तिस्तु ततः स्मृतः ॥ ५३ ॥ षड्विंशस्तु ततः कल्पो मन इत्यभिधीयते ॥ देवी च शाङ्करी नाम मिथुनं सम्प्रसूयते ॥ ५४ ॥ प्रजा वै
चिन्तमानस्य स्रष्टुकामस्य वै तदा ॥ यस्मात् प्रजासम्भवनादुत्पन्नस्तु स्वयम्भुवा ॥ तस्मात् प्रजासम्भवनाद्भावनासम्भवः स्मृतः ॥ ५५ ॥
सप्तविंशतिमः कल्पो भावो वै कल्पसंज्ञितः ॥ पौर्णमासी तथा देवी मिथुनं समपद्यत ॥ ५६ ॥ प्रजा वै स्रष्टुकामस्य ब्रह्मणः
परमेष्ठिनः ॥ ध्यायतस्तु परं ध्यानं परमात्मानमीश्वरम् ॥ ५७ ॥ अग्निस्तु मण्डलीभूत्वा रश्मिजालसमावृतः ॥ भुवन्दिवञ्च विष्टभ्य दीप्यते
स महावपुः ॥ ५८ ॥ ततो वर्षसहस्रान्ते सम्पूर्णे ज्योतिमण्डले ॥ आविष्टया सहोत्पन्नमपश्यत् सूर्य्यमण्डलम् ॥ ५९ ॥ यस्माद्दृश्यो
भूतानां ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ दृष्टस्तु भगवान् देवः सूर्य्यः सम्पूर्णमण्डलः ॥ ६० ॥ सर्व्वे योगाश्च मन्त्राश्च मण्डलेन सहोत्थिताः ॥ य
स्मात् कल्पो ह्ययं दृष्टस्तस्मात्तं दर्शमुच्यते ॥ ६१ ॥ यस्मान्मनसि सम्पूर्णो ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ पुरा वै भगवान् सोमः पौर्णमासी ततः स्मृता ॥ ६२ ॥
तस्मात्तु पर्व्वदर्शे वै पौर्णमासश्च योगिभिः ॥ उभयोः पक्षयोर्ज्येष्ठमात्मनो हितकाम्यया ॥ ६३ ॥ दर्शश्च पौर्णमासश्च ये यजन्ति द्विजातयः ॥ न
तेषां पुनरावृत्तिर्ब्रह्मलोकात् कदाचन ॥ ६४ ॥ योऽनाहिताग्निः प्रयतो वीराध्वानं गतोपि वा ॥ समाधाय मनस्तीव्रं मन्त्रमुच्चारयेच्छनैः ॥ ६५ ॥ त्व
मग्ने रुद्रो असुरो मही दिवस्त्वं शर्व्वो मारुतं पृष्ट ईशिषे ॥ त्वं पाशगन्धर्व्वशिषं पूषा विधत्तपासिना ॥ इत्येव मन्त्रं मनसा सम्यगुच्चारये द्विजः ॥
अग्निं प्रविशते यस्तु रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ६६ ॥ सोमश्चाग्निस्तु भगवान् कालो रुद्र इति श्रुतिः ॥ तस्माद्यः प्रविशेदग्निं स रुद्रान्न निवर्त्तते ॥ ६७ ॥
अष्टाविंशतिमः कल्पो बृहदित्यभिसंज्ञितः ॥ ब्रह्मणः पुत्रकामस्य स्रष्टुकामस्य वै प्रजाः ॥ ध्यायमानस्य मनसा बृहत्साम रथन्तरम् ॥ ६८ ॥ यस्मा
त्तत्र समुत्पन्नो बृहतः सर्व्वतोमुखः ॥ तस्मात्तु बृहतः कल्पो विज्ञेयस्तत्त्वचिन्तकैः ॥ ६९ ॥ अष्टाशीतिसहस्राणां योजनानां प्रमाणतः ॥ रथन्तर
न्तु विज्ञेयं परमं सूर्य्यमण्डलम् ॥ तस्मादण्डन्तु विज्ञेयमभेद्यं सूर्य्यमण्डलम् ॥ ७० ॥ यत्सूर्य्यमण्डलञ्चापि बृहत्साम तु भिद्यते ॥ भित्त्वा
चैनं द्विजा यान्ति योगात्मानो दृढव्रताः ॥ सङ्घातमुपनीताश्च अन्ये कल्पा रथन्तरे ॥ ७१ ॥ इत्येतत्तु मया प्रोक्तं चित्रमध्यात्मदर्शनम् ॥
अतः परं प्रवक्ष्यामि कल्पानां विस्तरं शुभम् ॥ ७२ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते कल्पनिरूपणं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ छ ॥ ॥ ऋषय
ऊचुः ॥ ॥ अत्यद्भुतमिदं सर्व्वं कल्पानान्ते महामुने ॥ रहस्यं वै समाख्यातं मन्त्राणाञ्च प्रकल्पनम् ॥ १ ॥ न तवाविदितं किञ्चित् त्रिषु लोकेषु विद्य
ते ॥ तस्माद्विस्तरतः सर्व्वाः कल्पसंख्या ब्रवीहि नः ॥ २ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ अत्र वः कथयिष्यामि कल्पसंख्यां यथा तथा ॥ युगाग्रञ्च वर्षाग्रन्तु ब्रह्मणः परमे

ष्ठिनः ॥ ३ ॥ एकं कल्पसहस्रन्तु ब्रह्मणोऽब्दः प्रकीर्त्तितः ॥ एतदष्टसहस्रन्तु ब्रह्मणस्तद्युगं स्मृतम् ॥ ४ ॥ एकं युगसहस्रन्तु सवनं तत् प्रजापतेः॥ सवनानां सहस्रन्तु द्विगुणं त्रिवृतं तथा ॥५॥ ब्रह्मणः स्थितिकालस्य चैतत्सर्व्वं प्रकीर्त्तितम् ॥ तस्य संख्यां प्रवक्ष्यामि पुरस्ताद्वै यथाक्रमम् ॥ ६ ॥ अष्टाविंशतिर्ये कल्पा नामतः परिकीर्त्तिताः ॥ तेषां पुरस्ताद्वक्ष्यामि कल्पसंज्ञां यथाक्रमम् ॥ ७ ॥ रथन्तरस्य साम्नस्तु उपरिष्टान्निबोधत ॥ कल्पान्ते नामधेयानि मन्त्रोत्पत्तिश्च यस्य या ॥ ८ ॥ एकोनविंशकः कल्पो विज्ञेयः श्वेतलोहितः ॥ यस्मिंस्तत् परमध्यानं ध्यायतो ब्रह्मणस्तथा ॥९॥ श्वेतोष्णीषः श्वेतमाल्यः श्वेताम्बरधरः शिखी ॥ उत्पन्नस्तु महातेजाः कुमारः पावकोपमः ॥ १० ॥ भीमं मुखं महारौद्रं सुघोरं श्वेतलोहितम् ॥ दीप्तं दीप्तेन वपुषा महास्यं श्वेतवर्च्चसम् ॥ ११ ॥ तं दृष्ट्वा पुरुषः श्रीमान् ब्रह्मा वै विश्वतोमुखः ॥ कुमारं लोकधातारं विश्वरूपं महेश्वरम् ॥१२॥ पुराणपुरुषं देवं विश्वात्मा योगिनां चिरम् ॥ ववन्दे देवदेवेशं ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ १३ ॥ हृदि कृत्वा महादेवं परमात्मानमीश्वरम् ॥ सद्योजातं ततो ब्रह्म ब्रह्मा वै समचिन्तयत् ॥ ज्ञात्वा मुमोच देवेशो हृष्टो हासं जगत्पतिः ॥ १४ ॥ ततोऽस्य पार्श्वतः श्वेता ऋषयो ब्रह्मवर्च्चसः ॥ प्रादुर्भूता महात्मानः श्वेतमाल्यानुलेपनाः ॥ १५ ॥ सुनन्दो नन्दकश्चैव विश्वनन्दोऽथ नन्दनः ॥ शिष्यास्ते वै महात्मानो यैस्तु ब्रह्म ततो वृतम् ॥ १६ ॥ तस्याग्रे श्वेतवर्णाभः श्वेतनामा महामुनिः ॥ विजज्ञेऽथ महातेजा यस्माज्जज्ञे नरस्त्वसौ ॥ १७ ॥ तत्र ते ऋषयः सर्व्वे सद्योजातं महेश्वरम् ॥ तस्माद्विश्वेश्वरं देवं ये प्रपश्यन्ति वै द्विजाः ॥ प्राणायामपरा युक्ता ब्रह्मणि व्यवसायिनः ॥ १८ ॥ ते सर्व्वे पापनिर्म्मुक्ता विमला ब्रह्मवर्च्चसः ॥ ब्रह्मलोकमतिक्रम्य ब्रह्मलोकं व्रजन्ति च ॥ १९ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ॥ ततस्त्रिंशत्तमः कल्पो रक्तो नाम प्रकीर्त्तितः ॥ रक्तो यत्र महातेजा रक्तवर्णमधारयत् ॥ २० ॥ ध्यायतः पुत्रकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ प्रादुर्भूतो महातेजाः कुमारो रक्तविग्रहः ॥ रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तनेत्रः प्रतापवान् ॥ २१ ॥ स तं दृष्ट्वा महादेवं कुमारं रक्तवाससम्॥ध्यानयोगं परङ्गत्वा बुबुधे विश्वमीश्वरम् ॥ २२ ॥ स तं प्रणम्य भगवान् ब्रह्मा परमयन्त्रितः ॥ वामदेवं ततो ब्रह्मा ब्रह्मात्मकं व्यचिन्तयत् ॥ २३ ॥ एवं ध्यातो महादेवो ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ मनसा प्रीतियुक्तेन पितामहमथाब्रवीत् ॥ २४ ॥ ध्यायता पुत्रकामेन यस्मात्तेहं पितामहः ॥ दृष्टः परमया भक्त्या ध्यानयोगेन सत्तम ॥ २५ ॥ तस्माद्ध्यानं परं प्राप्य कल्पे कल्पे महातपाः ॥ वेत्स्यसे मां महासत्त्व लोकधातारमीश्वरम् ॥ एवमुक्त्वा ततः शर्व्वः अट्टहासं मुमोच ह ॥ २६ ॥ ततस्तस्य महात्मानश्चत्वारश्च कुमारकाः ॥ सम्बभूवुर्महात्मानो विरेजुः शुद्धबुद्धयः ॥ २७ ॥ विरजश्च विवाहश्च विशोको विश्वभावनः ॥ ब्रह्मण्या ब्रह्मणस्तुल्या वीरा अध्यवसायिनः ॥ २८ ॥

रक्ताम्बरधराः सर्व्वे रक्तमाल्यानुलेपनाः ॥ रक्तभस्मानुलिप्ताङ्गा रक्तास्या रक्तलोचनाः ॥ २९ ॥ ततो वर्षसहस्रान्ते ब्रह्मण्या व्यवसायिनः ॥ गृणन्तश्च महात्मानो ब्रह्म तद्धामदैवकम् ॥ ३० ॥ अनुग्रहार्थं लोकानां शिष्याणां हितकाम्यया ॥ धर्मोपदेशमखिलं कृत्वा ते ब्राह्मणाः स्वयम् ॥ पुनरेव महादेवं प्रविष्टा रुद्रमव्ययम् ॥३१॥ येऽपि चान्ये द्विजश्रेष्ठा युञ्जाना वाममीश्वरम् ॥ प्रपद्यन्ति महादेवं तद्भक्तास्तत्परायणाः ॥३२॥ ते सर्व्वे पापनिर्मुक्ता विमला ब्रह्मवर्च्चसः ॥ रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ३३ ॥॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते कल्पसंख्यानिरूपणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः॥२२॥

॥ ॥ वायुरुवाच ॥ एकत्रिंशत्तमः कल्पः पीतवासा इति स्मृतः ॥ ब्रह्मा यत्र महातेजाः पीतवर्णत्वमागतः ॥ १ ॥ ध्यायतः पुत्रकामस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥प्रादुर्भूतो महातेजाः कुमारः पीतवस्त्रवान् ॥२॥ पीतगन्धानुलिप्ताङ्गः पीतमाल्यधरो युवा ॥ पीतयज्ञोपवीतश्च पीतोष्णीषो महाभुजः॥३॥ तं दृष्ट्वा ध्यानसंयुक्तं ब्रह्मा लोकेश्वरं प्रभुम् ॥ मनसा लोकधातारं ववन्दे परमेश्वरम् ॥ ४ ॥ ततोध्यानगतस्तत्र ब्रह्मा माहेश्वरीं पराम् ॥ अपश्यद्गां विरूपां च महेश्वरमुखच्युताम् ॥ ५ ॥ चतुष्पदां चतुर्व्वक्त्रां चतुर्हस्तां चतुःस्तनीं ॥ चतुर्नेत्रां चतुःशृङ्गीं चतुर्दंष्ट्रां चतुर्मुखीम् ॥ द्वात्रिंशल्लोकसंयुक्तामीश्वरीं सर्व्वतोमुखीम् ॥६॥ स तां दृष्ट्वा महातेजाः महादेवीं महेश्वरीम् ॥ पुनराह महादेवः सर्व्वदेवनमस्कृतः ॥७॥ मतिः स्मृतिर्बुद्धिरिति गायमानः पुनः पुनः॥ एह्येहीति महादेवी सोत्तिष्ठत् प्राञ्जलिर्भृशम् ॥ ८ ॥ विश्वमावृत्य योगेन जगत्सर्व्वं वशीकुरु ॥ अथ वा महादेवेन रुद्राणी त्वं भविष्यसि ॥ ब्राह्मणानां हितार्थाय परमार्थं भविष्यसि ॥ ९ ॥ अथैनां पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः ॥ प्रददौ देवदेवेशश्चतुष्पादां महेश्वरीम् ॥ ततस्तां ध्यानयोगेन विदित्वा परमेश्वरीम् ॥ १० ॥ ब्रह्मा लोकनमस्कार्य्यः प्रपद्य तां महेश्वरीम् ॥ गायत्रीन्तु ततो रौद्रीं ध्यात्वा ब्रह्मा सुयन्त्रितः ॥ ११ ॥ इत्येतां वैदिकीं विद्यां रौद्रीं गायत्रीमर्पिताम् ॥ जपित्वा तु महादेवीं रुद्रलोकनमस्कृताम् ॥ प्रपन्नस्तु महादेवं ध्यानयुक्तेन चेतसा ॥ १२ ॥ ततस्तस्य महादेवो दिव्यं योगं पुनः स्मृतः॥ ऐश्वर्य्यं ज्ञानसम्पत्तिं वैराग्यं च ददौ पुनः ॥ १३ ॥ अथाट्टहासं मुमुचे भीषणं दीप्तमीश्वरः ॥ ततोऽस्य सर्व्वतो दीप्ताः प्रादुर्भूताः कुमारकाः ॥ १४ ॥ पीतमाल्याम्बरधराः पीतगन्धविलेपनाः ॥ पीतोष्णीषशिरस्काश्च पीतास्याः पीतमूर्द्धजाः ॥१५॥ ततो वर्षसहस्रान्ते उषित्वा विमलौजसः॥ योगात्मानस्ततः स्नाता ब्राह्मणानां हितैषिणः॥१६॥धर्म्मयोगबलोपेता ऋषीणां दीर्घसत्रिणाम्॥ उपदिश्य तु ते योगं प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम् ॥१७॥ एवमेतेन विधिना प्रपन्ना ये महेश्वरम्॥अन्योपि नियतात्मानो ध्यानयुक्ता जितेन्द्रियाः॥१८॥ते सर्व्वे पापमुत्सृज्य विरजा ब्रह्मवर्च्चसः॥ प्रविशन्ति महादेवं रुद्रन्ते त्वपुनर्भवाः॥ १९ ॥ ॥वायुरुवाच॥ ततस्तस्मिन् गते कल्पे पीतवर्णे स्वयम्भुवः ॥ पुनरन्यः प्रवृत्तस्तु सितकल्पो हि नाम

तः ॥२०॥ एकार्णवे तदा वृत्ते दिव्ये वर्षसहस्रके ॥ स्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुःखितः ॥ २१ ॥ तस्य चिन्तयमानस्य पुत्रकामस्य वै प्रभोः ॥ कृष्णः समभवद्वर्णो ध्यायतः परमेष्ठिनः ॥ २२ ॥ अथापश्यन्महातेजाः प्रादुर्भूतं कुमारकम् ॥ कृष्णवर्णं महावीर्य्यं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ २३ ॥ कृष्णाम्बरवरोष्णीषं कृष्णयज्ञोपवीतिनम् ॥ कृष्णेन मौलिना युक्तं कृष्णस्रगनुलेपनम् ॥ २४ ॥ स तं दृष्ट्वा महात्मानममरं घोरमन्त्रिणम् ॥ ववन्दे देवदेवेशं विश्वेशं कृष्णपिङ्गलम् ॥ २५ ॥ प्राणायामपरः श्रीमान् हृदि कृत्वा महेश्वरम् ॥ मनसा ध्यानसंयुक्तं प्रपन्नस्तु यतीश्वरम् ॥ अघोरेति ततो ब्रह्मा ब्रह्म एवानुचिन्तयन् ॥ २६ ॥ एवं वै ध्यायतस्तस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ मुमोच भगवान् रुद्रः अट्टहासं महास्वनम् ॥ २७ ॥ अथास्य पार्श्वतः कृष्णाः कृष्णस्रगनुलेपनाः ॥ चत्वारस्तु महात्मानः सम्बभूवुः कुमारकाः ॥ २८ ॥ कृष्णाः कृष्णाम्बरोष्णीषाः कृष्णास्याः कृष्णवाससः ॥ तैश्चाट्टहासः सुमहान् हुङ्कारश्चैव पुष्कलः ॥ नमस्कारश्च सुमहान् पुनः पुनरुदीरितः ॥ २९ ॥ ततो वर्षसहस्रान्ते योगात्तत् पारमेश्वरम् ॥ उपासित्वा महाभागाः शिष्येभ्यः प्रददुस्ततः ॥ ३० ॥ योगेन योगसम्पन्नाः प्रविश्य मनसा शिवम् ॥ अमलं निर्गुणं स्थानं प्रविष्टा विश्वमीश्वरम् ॥ ३१ ॥ एवमेतेन योगेन ये चाप्यन्ये द्विजातयः ॥ स्मरिष्यन्ति विधानज्ञा गन्तारो रुद्रमव्ययम् ॥ ३२ ॥ ततस्तस्मिन् गते कल्पे कृष्णरूपे भयानके ॥ अन्यः प्रवर्त्तितः कल्पो विश्वरूपस्तु नामतः ॥ ३३ ॥ विनिवृत्ते तु संहारे पुनः सृष्टे चराचरे ॥ ब्रह्मणः पुत्रकामस्य ध्यायतः परमेष्ठिनः ॥ प्रादुर्भूता महानादा विश्वरूपा सरस्वती ॥ ३४ ॥ विश्वमाल्याम्बरधरं विश्वयज्ञोपवीतिनम् ॥ विश्वोष्णीषं विश्वगन्धं विश्वस्थानं महाभुजम् ॥ ३५ ॥ अथ तं मनसा ध्यात्वा युक्तात्मा वै पितामहः ॥ ववन्दे देवमीशानं सर्व्वेशं सर्व्वगं प्रभुम् ॥ ३६ ॥ ओमीशान नमस्तेऽस्तु महादेव नमोऽस्तु ते ॥ एवं ध्यानगतं तत्र प्रणमन्तं पितामहम् ॥ उवाच भगवानीशः प्रीतोऽहन्ते किमिच्छसि ॥ ३७ ॥ ततस्तु प्रणतो भूत्वा वाग्भिः स्तुत्वा महेश्वरम् ॥ उवाच भगवान् ब्रह्मा प्रीतः प्रीतेन चेतसा ॥ ३८ ॥ यदिदं विश्वरूपन्ते विश्वगं विश्वमीश्वरम् ॥ एतद्वेदितुमिच्छामि कश्चायं परमेश्वरः ॥ ३९ ॥ कैषा भगवती देवी चतुष्पादा चतुर्मुखी ॥ चतुःशृङ्गी चतुर्व्वक्त्रा चतुर्दन्ता चतुःस्तनी ॥ ४० ॥ चतुर्हस्ता चतुर्नेत्रा विश्वरूपा कथं स्मृता ॥ किन्नामधेया कोऽस्यात्मा किंवीर्य्या वापि कर्म्मतः ॥ ४१ ॥ ॥ महेश्वर उवाच ॥ ॥ रहस्यं सर्वमन्त्राणां पावनं पुष्टिवर्द्धनम् ॥ शृणुष्वैतत्परं गुह्यमादिसर्गं यथातथम् ॥ ४२ ॥ अयं योवर्त्तते कल्पो विश्वरूपस्त्वसौ स्मृतः ॥ यस्मिन् भवादयो देवाः षड्विंशन्मनवः स्मृताः ॥ ४३ ॥ ब्रह्मस्थानमिदं चापि यदा प्राप्तं त्वया विभो ॥ तदाप्रभृति कल्पश्च त्रयस्त्रिंशत्तमो ह्ययम् ॥ ४४ ॥ शतं शतसहस्राणामतीता ये स्वयम्भुवः ॥ पुरस्तात्तव देवेश तान्

शृणुष्व महामुने ॥ ४५ ॥ आनन्दस्तु स विज्ञेय आनन्दस्ते महालयः ॥ गालव्यगोत्रतपसा मम पुत्रस्त्वमागतः ॥ ४६ ॥ त्वयि योगश्च साङ्ख्यश्च तपो विद्याविधिः क्रिया ॥ ऋतं सत्यञ्च यद्ब्रह्म अहिंसा सन्ततिक्रमाः ॥ ४७ ॥ ध्यानं ध्यानवपुः शान्तिर्विद्याऽविद्यामतिर्धृतिः ॥ कान्तिः शान्तिः स्मृतिर्मेधा लज्जा शुद्धिः सरस्वती ॥ तुष्टिः पुष्टिः क्रिया चैव लज्जा क्षान्तिः प्रतिष्ठिता ॥ ४८ ॥ षड्विंशत्तद्गुणा ह्येषा द्वात्रिंशाक्षरसंज्ञिता ॥ प्रकृतिं विद्धि तां ब्रह्मंस्त्वत्प्रसूतिं महेश्वरीम् ॥ ४९ ॥ सैषा भगवती देवी तत्प्रसूतिः स्वयम्भुवः ॥ चतुर्मुखी जगद्योनिः प्रकृतिर्गौः प्रकीर्त्तिता ॥ प्रधानं प्रकृतिं चैव यदाहुस्तत्त्वचिन्तकाः ॥ ५० ॥ अजामेतां लोहितां शुक्लकृष्णां विश्वं संप्रसृजमानां सुरूपाम् ॥ अजोऽहं वै बुद्धिमान्विश्वरूपां गायत्रीं गां विश्वरूपां हि बुद्ध्वा ॥ ५१ ॥ एवमुक्त्वा महादेवः अट्टहासमथाकरोत् ॥ वलितास्फोटितरवं कहाकहनदन्तथा ॥ ५२ ॥ ततोऽस्य पार्श्वतो दिव्याः सर्व्वरूपाः कुमारकाः ॥ जटी मुण्डी शिखण्डी च अर्द्धमुण्डश्च जज्ञिरे ॥ ५३ ॥ ततस्ते तु यथोक्तेन योगेन सुमहौजसः ॥ दिव्यं वर्षसहस्रन्तु उपासित्वा महेश्वरम् ॥ ५४ ॥ धर्म्मोपदेशं नियतं कृत्वा योगमयं दृढम् ॥ शिष्टानां नियतात्मानः प्रविष्टा रुद्रमीश्वरम् ॥ ५५ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥

॥ ततो विस्मयमापन्नो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ प्रपन्नस्तु महादेवं भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ उवाच वचनं सर्व्वं श्वेतत्वन्ते कथं विभो ॥ ५६ ॥ ॥ भगवानुवाच ॥ ॥ श्वेतकल्पो यदा ह्यासीदहं श्वेतस्ततोऽभवम् ॥ श्वेतोष्णीषः श्वेतमाल्यः श्वेताम्बरधरः शिवः ॥ ५७ ॥ श्वेतास्थिमांसरोमा च श्वेतत्वक् श्वेतलोहितः ॥ तेन नाम्ना च विख्यातः श्वेतकल्पस्तदा ह्यसौ ॥ ५८ ॥ मत्प्रसादाच्च देवेशः श्वेताङ्गः श्वेतलोहितः ॥ श्वेतवर्णा तदा ह्यासीद्गायत्री ब्रह्मसंज्ञिता ॥ ५९ ॥ यस्मादहं च देवेश त्वया गुह्ये पदे स्थितः ॥ विज्ञातः स्वेन तपसा सद्यो जातः सनातनः ॥ सद्यो जातेति ब्रह्मैतद् गुह्यं चैव प्रकीर्तितम् ॥ ६० ॥ तस्माद् गुह्यत्वमापन्नं ये वेत्स्यति द्विजातयः ॥ तत्समीपङ्गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ६१ ॥ यदाऽहं च पुनस्त्वासं लोहितो नाम नामतः ॥ मत्कृतेन वर्णेन कल्पो वै लोहितः स्मृतः ॥ ६२ ॥ तदा लोहितमांसास्थिलोहितक्षीरसन्निभा ॥ लोहिताक्षस्तनवती गायत्री गौः प्रकीर्तिता ॥ ६३ ॥ ततोऽस्य लोहितत्वेन वर्णस्य च विपर्य्यये ॥ वामत्वाच्चैव योगस्य वामदेवत्वमागतः ॥ ६४ ॥ तथापि हि महासत्त्व त्वयाऽहं नियतात्मना ॥ विज्ञातः श्वेतवर्णेन तस्माद्वर्णोत्तमः स्मृतः ॥ ततोऽहं वामदेवेति ख्यातिं यातो महीतले ॥ ६५ ॥ ये चापि वामदेवत्वं ज्ञास्यन्तीह द्विजातयः ॥ विज्ञाय चेमां रुद्राणीं गायत्रीं मातरं विभो ॥ ६६ ॥ सर्व्वपापविनिर्मुक्ता विरजा ब्रह्मवर्चसः ॥ रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ६७ ॥ यदा तु पुनरेवायं कृष्णवर्णो भयानकः ॥ मत्कृतेन च वर्णेन मत्कल्पः कृष्ण उच्यते ॥ ६८ ॥ तत्राऽहं कालसंकाशः कालो लोकप्रकाशनः ॥ विज्ञातोऽहन्त्वया

ब्रह्मन् घोरो घोरपराक्रमः ॥ ६९ ॥ तस्माद्घोरत्वमापन्नं ये मां वेत्स्यन्ति भूतले ॥ तेषामघोरः शान्तश्च भविष्याम्यहमव्ययः ॥ ७० ॥ तस्माद्विश्वत्वमा
पन्नं ये मां पश्यन्ति भूतले ॥ तेषां शिवश्च सौम्यश्च भविष्यामि सदैव तु ॥ ७१ ॥ तस्माच्च विश्वरूपो वै कल्पोऽयं समुदाहृतः ॥ विश्वरूपा तथा चे
यं सावित्री समुदाहृता ॥ ७२ ॥ सर्व्वरूपास्तथा चेमे संवृत्ता मम पुत्रकाः ॥ चत्वारस्ते समाख्याताः पादा वै लोकसंमताः ॥ ७३ ॥ तस्माच्च सर्व्व
वर्णत्वं प्रजात्वं मे भविष्यति ॥ सर्व्वभक्ष्या च मेध्या च वर्णतश्च भविष्यति ॥ ७४ ॥ मोक्षो धर्म्मस्तथार्थश्च कामश्चेति चतुष्टयम् ॥ तस्माद्वेत्ता च वेद्यं
च चतुर्द्धा वै भविष्यति ॥ ७५ ॥ भूतग्रामाश्च चत्वारः आश्रमाश्चतुरस्तथा ॥ धर्म्मस्य पादाश्चत्वारश्चत्वारो मम पुत्रकाः ॥ ७६ ॥ तस्माच्चतुर्युगाव
स्थं जगद्वै सचराचरम् ॥ चतुर्द्धाऽवस्थितं चैव चतुष्पादं भविष्यति ॥ ७७ ॥ भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथ महस्तथा ॥ जनस्तपश्च शांतश्च
रुद्रलोकस्ततः परम् ॥ ७८ ॥ स्वर्लोको हि तृतीयस्तु चतुर्थस्तु महः स्मृतः ॥ तत्र लोकः परं स्थानं परन्तद्योगिनां स्मृतम् ॥ ७९ ॥ निर्म्ममा निरहं
काराः कामक्रोधविवर्ज्जिताः ॥ द्रक्ष्यन्ते तद्विदो युक्ता ध्यानतत्परयुञ्जकाः ॥ ८० ॥ यस्माच्चतुष्पदा ह्येषा त्वया दृष्टा सरस्वती ॥ तस्माच्च पशवः स
र्व्वे भविष्यन्ति चतुष्पदाः ॥ तस्माच्चैषां भविष्यन्ति चत्वारो वै पयोधराः ॥ ८१ ॥ सोमश्च मन्त्रसंयुक्तो यस्मान्मम मुखाच्च्युतः ॥ जीवः प्राणभृतां ब्रह्म
न् सर्वः पीत्वा स्तनैर्धृतम् ॥ ८२ ॥ तस्मात् सोममयं चैतदमृतं चैव संज्ञितम् ॥ चतुष्पादा भविष्यन्ति श्वेतत्वं चास्य तेन तत् ॥ ८३ ॥ यस्माच्चैवं क्रियाभूत्वा
द्विपादा वै महेश्वरी ॥ दृष्टा पुनस्त्वया चैषा सावित्री लोकभाविनी ॥ तस्माद्वै द्विपदाः सर्वे द्विस्तनाश्च नराः स्मृताः ॥ ८४ ॥ यस्माच्चैवमजा भूत्वा सर्ववर्णा
महेश्वरी ॥ दृष्टा त्वया महासत्त्वा सर्वभूतधरा परा ॥ तस्मात्तु विश्वरूपत्वमजानां वै भविष्यति ॥ ८५ ॥ अजश्चैव महातेजा विश्वरूपो भविष्यति ॥
अमोघरेताः सर्वत्र मुखे चास्य हुताशनः ॥ तस्मात् सर्वगतो मेध्यः पशुरूपी हुताशनः ॥ ८६ ॥ तपसा भावितात्मानो ये वै द्रक्ष्यन्ति वै द्विजाः ॥
ईशित्वे च शिवत्वे च सर्वगं सर्वतः स्थिरम् ॥ ८७ ॥ रजस्तमोविनिर्मुक्तास्त्यक्त्वा मानुष्यकम्भुवि ॥ मत्समीपं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ८८ ॥
इत्येवमुक्तो भगवान् ब्रह्मा रुद्रेण वै द्विजाः ॥ प्रणम्य प्रयतो भूत्वा पुनराह पितामहः ॥ ८९ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भगवन् देवदेवेश विश्वरूपी महेश्वरः ॥ इमास्तव
महादेव तनवो लोकवन्दिताः ॥ ९० ॥ विश्वरूप महासत्त्व कस्मिन् काले महाभुज ॥ कस्यां वा युगसम्भूत्यां द्रक्ष्यन्ति त्वां द्विजातयः ॥ ९१ ॥ केन
वा तत्त्वयोगेन ध्यानयोगेन केन वा ॥ तनवस्ते महादेव शक्या द्रष्टुं द्विजातिभिः ॥ ९२ ॥ ॥ भगवानुवाच ॥ ॥ तपसा नैव योगेन दानधर्म्मफलेन वा ॥
न तीर्थफलयोगेन क्रतुभिर्वा सदक्षिणैः ॥ ९३ ॥ न वेदाध्यापनैर्वापि न वित्तेन निवेदनैः ॥ शक्योऽहं मानुषैर्द्रष्टुं ऋते ध्यानात्परं न हि ॥ ९४ ॥ साध्यो नारायण

श्चैव विष्णुस्त्रिभुवनेश्वरः ॥ भविष्यतीह नाम्ना तु वाराहो नाम विश्रुतः॥९५॥चतुर्बाहुश्चतुष्पादश्चतुर्नेत्रश्चतुर्मुखः॥तदा संवत्सरो भूत्वा यज्ञरूपी भविष्यति॥
षडङ्गश्च त्रिशीर्षश्च त्रिस्थाने त्रिशरीरवान् ॥ ९६ ॥ कृतन्त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुर्युगम् ॥ एतस्य पादाश्चत्वारः अङ्गानि क्रतवस्तथा ॥ ९७ ॥
भुजाश्च वेदाश्चत्वारो ऋतुः सन्धिमुखानि च ॥ द्वे मुखे द्वे च अयने नेत्राश्च चतुरस्तथा ॥ ९८ ॥ शिरांसि त्रीणि पर्वाणि फाल्गुन्याषाढकृत्तिकाः ॥
दिव्यान्तरिक्षभौमानि त्रीणि स्थानानि यानि तु ॥ सम्भवः प्रलयश्चैव आश्रमौ द्वौ प्रकीर्त्तितौ ॥ ९९ ॥ स यदा कालरूपाभो वराहत्वे व्यवस्थितः ॥
भविष्यति यदा साध्यो विष्णुर्नारायणः प्रभुः ॥ १०० ॥ तदा त्वमपि देवेश चतुर्वक्त्रो भविष्यसि ॥ ब्रह्मलोकनमस्कार्यौ विष्णुर्नारायणः प्रभुः ॥
॥ १०१ ॥ एकार्णवे प्लुवे चैव शयानं पुरुषं हरिम् ॥ यदा द्रक्ष्यसि देवेशं ध्यानयुक्तं महामुनिम् ॥ १०२ ॥ तदावां मम योगेन मोहितौ नष्टचेतसौ ॥
अन्योन्यस्पर्द्धिनौ रात्रावविज्ञाय परस्परम् ॥ १०३ ॥ एकैकस्योदरस्थांस्तु दृष्ट्वा लोकांश्चराचरान् ॥ विस्मयं परमङ्गत्वा ध्यानाद्बुद्धा तु मानुषौ ॥
॥ १०४ ॥ ततस्त्वं पद्मसंभूतः पद्मनाभः सनातनः ॥ पद्माङ्कितस्तदा कल्पे ख्यातिं यास्यसि पुष्कलाम् ॥ १०५ ॥ ततस्तस्मिंस्तदा कल्पे वाराहे
सप्तमे प्रभोः ॥ पुनर्विष्णुर्महातेजाः कालो लोकप्रकालनः ॥ मनुर्वैवस्वतो नाम तव पुत्रो भविष्यति ॥ १०६ ॥ तदा चतुर्युगावस्थे कल्पे तस्मिन्
युगान्तके ॥ भविष्यामि शिखायुक्तः श्वेतो नाम महामुनिः ॥ १०७ ॥ हिमवच्छिखरे रम्ये छागले पर्व्वतोत्तमे ॥ चतुःशिष्याः शिवे युक्ता भविष्यन्ति
तदा मम ॥ १०८ ॥ श्वेतश्चैव शिवश्चैव श्वेताश्वः श्वेतलोहितः ॥ चत्वारस्ते महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ १०९ ॥ ततस्ते ब्रह्मभूयिष्ठा दृष्ट्वा
ब्रह्मगतिं पराम् ॥ तत्समीपं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ११० ॥ पुनस्तु मम देवेशो द्वितीयद्वापरे प्रभुः ॥ प्रजापतिर्यदा व्यासः सत्यो नाम
भविष्यति ॥ १११ ॥ तदा लोकहितार्थाय सुतारो नाम नामतः ॥ भविष्यामि कलौ तस्मिन् लोकानुग्रहकारणात् ॥ ११२ ॥ तत्रापि मम ते
पुत्रा भविष्या नाम नामतः ॥ दुन्दुभिः शतरूपश्च ऋचीकः क्रतुमांस्तथा ॥ ११३ ॥ प्राप्य योगं तथा ज्ञानं ब्रह्म चैव सनातनम् ॥ रुद्रलोकं गमिष्य
न्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥११४॥तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः ॥ तदा ह्यहं भविष्यामि दमनस्तु युगान्तिके ॥११५॥ तत्रापि च भविष्यन्ति
चत्वारो मम पुत्रकाः॥विशोकश्च विकेशश्च विशापः शापनाशनः ॥११६॥ तेऽपि तेनैव मार्गेण योगोक्तेन महौजसः॥ रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्ल
भम्॥ ११७ ॥ चतुर्थे द्वापरे चैव यदाव्यासोऽङ्गिराः स्मृतः॥तदाऽप्यहं भविष्यामि सुहोत्रो नाम नामतः॥११८॥तत्रापि मम सत्पुत्राश्चत्वारश्चतपोधनाः ॥
भविष्यन्ति द्विजश्रेष्ठा योगात्मानो दृढव्रताः ॥११९॥ सुमुखो दुर्मुखश्चैव दुर्दमो दुरतिक्रमः ॥ प्राप्य योगगतिं सूक्ष्मां विमला दग्धकिल्बिषाः ॥ तेऽपि

तेनैव मार्गेण गमिष्यन्ति न संशयः ॥ १२० ॥ पञ्चमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता यदा ॥ तदा चापि भविष्यामि कङ्को नाम महातपाः ॥ अनुग्रहा
र्थं लोकानां योगात्मा नैककर्म्मकृत् ॥ १२१ ॥ चत्वारस्तु महाभागा विरजाः शुद्धयोनयः ॥ पुत्रा मम भविष्यन्ति योगात्मानो दृढव्रताः ॥ १२२ ॥
सनः सनन्दनश्चैव प्रभुर्यश्च सनातनः ॥ ऋतुः सनत्कुमारश्च निर्ममा निरहंकृताः ॥ मत्समीपं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ १२३ ॥ परिवृत्ते पुनः
षष्ठे मृत्युर्व्यासो यदा विभुः ॥ तदाऽप्यहं भविष्यामि लोकाक्षिर्नाम नामतः ॥ १२४ ॥ शिष्याश्च मम ते दिव्या योगात्मानो दृढव्रताः ॥ भविष्यन्ति
महाभागाश्चत्वारो लोकसम्मताः ॥ १२५ ॥ सुधामा विरजश्चैव शङ्खपाद्रव एव च ॥ योगात्मानो महात्मानस्ते सर्व्वे दग्धकिल्बिषाः ॥ तेऽपि तेनैव
मार्गेण गमिष्यन्ति न संशयः ॥ १२६ ॥ सप्तमे परिवर्त्ते तु यदा व्यासः शतक्रतुः ॥ विभुर्नाम महातेजाः पूर्व्वमासीच्छतक्रतुः ॥ १२७ ॥ तदाऽप्य
हं भविष्यामि कलौ तस्मिन् युगान्तिके ॥ जैगीषव्येति विख्यातः सर्व्वेषां योगिनां वरः ॥ १२८ ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति युगे तदा ॥ सा
रस्वतः सुमेधाश्च वसुवाहः सुवाहनः ॥ १२९ ॥ तेऽपि तेनैव मार्गेण ध्यानयुक्तिं समाश्रिताः ॥ भविष्यन्ति महात्मानो रुद्रलोकपरायणाः ॥ १३० ॥
वसिष्ठश्चाष्टमे व्यासः परिवर्त्ते भविष्यति ॥ कपिलश्चासुरिश्चैव तथा पञ्चशिखो मुनिः ॥ वाग्वलिश्च महायोगी सर्व्वे एव महौजसः ॥ १३१ ॥ प्राप्य
माहेश्वरं योगं ध्यानिनो दग्धकल्मषाः ॥ मत्समीपं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ १३२ ॥ परिवर्त्तेऽथ नवमे व्यासः सारस्वतो यदा ॥ तदा चाहं भ
विष्यामि ऋषभो नाम नामतः ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः ॥ १३३ ॥ पराशरश्च गार्ग्यश्च भार्गवो ह्यङ्गिरास्तथा ॥ भविष्यन्ति महा
त्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ १३४ ॥ सर्वे तपोवलोत्कृष्टाः शापानुग्रहकोविदाः ॥ तेपि तेनैव मार्गेण योगोक्तेन तपस्विनः ॥ ध्यानमार्गं समासाद्य ग
मिष्यन्ति तथैव ते ॥१३५॥ दशमे द्वापरे व्यासस्त्रिधामा नामनामतः॥यदा भविष्यति विप्रास्तदाऽहं भविता पुनः ॥१३६॥ हिमवच्छिखरे रम्ये भृगुतुङ्गे
नगोत्तमे॥नाम्ना भृगोस्तु शिखरन्तस्मात्तच्छिखरम्भृगुः॥१३७॥तत्रैव मम ते पुत्रा भविष्यन्ति दृढव्रताः॥वलवन्धुर्निरामित्रः केतुशृङ्गस्तपोधनः॥१३८॥
योगात्मानो महात्मानो ध्यानयोगसमन्विताः ॥ रुद्रलोकं गमिष्यन्ति तपसा दग्धकल्मषाः ॥ १३९ ॥ एकादशे द्वापरे तु त्रिवृद्व्यासो भविष्यति ॥
तदाऽप्यहं भविष्यामि गङ्गाद्वारे कलेर्धुरि ॥१४०॥ उग्रा नाम महानादास्तत्रैव मम पुत्रकाः ॥ भविष्यन्ति महौजस्काः सुवृत्ता लोकविश्रुताः॥१४१॥
लम्बोदरश्च लम्बश्च लम्बाक्षो लम्बकेशकः ॥ प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय संस्थिताः ॥ तेऽपि तेनैव मार्गेण गमिष्यन्ति परां गतिम् ॥ १४२ ॥
द्वादशे परिवर्त्ते तु शततेजा महामुनिः ॥ भविष्यति महासत्त्वो व्यासः कविवरोत्तमः ॥ १४३ ॥ ततोऽप्यहं भविष्यामि अत्रिर्नाम युगान्तिके ॥

हैमकं वनमासाद्य योगमास्थाय भूतले ॥ १४४ ॥ अत्रापि मम ते पुत्रा भस्मस्नानानुलेपनाः ॥ भविष्यन्ति महायोगा रुद्रलोकपरायणाः ॥ १४५ ॥
सर्व्वज्ञः समबुद्धिश्च साध्यः सर्व्वस्तथैव च ॥ रुद्रलोकं गमिष्यन्ति ध्यानयोगपरायणाः॥ १४६ ॥ त्रयोदशे पुनः प्राप्ते परिवर्त्ते क्रमेण तु ॥ ध
र्म्मो नारायणो नाम व्यासस्तु भविता यदा ॥ १४७ ॥ तदाप्यहं भविष्यामि वालिर्नाम महामुनिः ॥ वालखिल्याश्रमे पुण्ये पर्व्वते गन्धमादने ॥ १४८ ॥
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः ॥ सुधामा काश्यपश्चैव वसिष्ठो विरजास्तथा ॥ १४९ ॥ महायोगबलोपेता विमला ऊर्द्ध्वरेतसः ॥ तेनैव
योगमार्गेण गमिष्यन्ति न संशयः ॥ १५० ॥ सुरक्षणो यदा व्यासः पर्य्यायेतु चतुर्द्दशे ॥ तत्रापि पुनरेवाहं भविष्यामि युगान्तिके ॥ १५१ ॥ वंशे
त्वाङ्गिरसः श्रेष्ठो गौतमो नाम योगवित् ॥ तस्माद्भविष्यते पुण्यं गौतमं नाम तद्वनम् ॥ १५२ ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति कलौ तथा ॥ अत्रि
रुग्रतपाश्चैव श्रावणोऽथ स्रविष्टकः ॥ १५३ ॥ योगात्मानो महात्मानो ध्यानयोगपरायणाः ॥ तेऽपि तेनैव मार्गेण रुद्रलोकनिवासिनः ॥ १५४ ॥ ततः
प्राप्ते पञ्चदशे परिवर्त्ते क्रमागते॥आरुणिस्तु यदा व्यासो द्वापरे भविता प्रभुः ॥१५५॥ तदाप्यहं भविष्यामि नाम्ना वेदशिरा द्विजाः॥तत्र वेदशिरा नाम
अस्त्रन्तत्पारमेश्वरम्॥१५६॥ भविष्यति महावीर्य्यं वेदशीर्षाच पर्व्वतः ॥ हिमवत्पृष्ठमाश्रित्य सरस्वत्या नगोत्तमे ॥ १५७ ॥ तदापि मम ते पुत्रा भवि
ष्यन्ति तपोधनाः॥कुणिश्च कुणिबाहुश्च कुशरीरः कुनेत्रकः ॥१५८॥ योगात्मानो महात्मानो ब्रह्मिष्ठाश्चोर्द्ध्वरेतसः॥तेऽपि तेनैव मार्गेण रुद्रलोकं गतास्तु
ते ॥ १५९ ॥ ततः षोडशमे चापि परिवर्त्ते क्रमागते ॥ व्यासस्तु सञ्जयो नाम भविष्यति तदा प्रभुः ॥ १६० ॥ तदाऽप्यहं भविष्यामि गोकर्णो ना
म नामतः॥तस्माद्भविष्यते पुण्यं गोकर्णं नाम तद्वनम् ॥१६१॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः ॥ कश्यपो ह्युशनाश्चैव च्यवनोऽथ बृहस्पतिः ॥
तेऽपि तेनैव मार्गेण गमिष्यन्ति परं पदम् ॥ १६२ ॥ ततः सप्तदशे चैव परिवर्त्ते क्रमागते ॥ तदा भविष्यति व्यासो नाम्ना देवकृतञ्जयः ॥ १६३ ॥
तदाप्यहं भविष्यामि गुहावासीति नामतः ॥ हिमवच्छिखरे चैव महातुङ्गे महालये ॥ सिद्धिक्षेत्रं महापुण्यं भविष्यति महालयम् ॥ १६४ ॥ तत्राऽ
पि मम ते पुत्रा ब्रह्मण्या योगवेदिनः ॥ भविष्यन्ति महात्मानो सर्वज्ञा निरहङ्कृताः ॥ १६५ ॥ उतथ्यो वामदेवश्च महाकालो महालयः ॥ तेषां शतस
हस्रन्तु शिष्याणां ध्यानसाधनम् ॥ १६६ ॥ भविष्यन्ति तदा कल्पे सर्व्वे ते ध्यानयुञ्जकाः ॥ ते तु सन्निहिता योगे हृदि कृत्वा महेश्वरम् ॥ महालये
पदं क्षिप्त्वा प्रविष्टाः शिवमव्ययम् ॥ १६७ ॥ ये चान्येऽपि महात्मानः काले तस्मिन् युगान्तिके॥ ध्यानयुक्तेन मनसा विमलाः शुद्धबुद्धयः ॥१६८॥
गत्वा महालयं पुण्यं दृष्ट्वा माहेश्वरम् पदम् ॥ तूर्णं तारयते जन्तून् दशपूर्व्वान् दशापरान् ॥ १६९ ॥ आत्मानमेकविंशञ्च तारयित्वा महार्णवम् ॥

मम प्रसादाद्यास्यन्ति रुद्रलोकं गतज्वराः ॥ १७० ॥ ततोऽष्टादशमे चैव परिवर्त्ते यदा भवेत् ॥ तदा ऋतञ्जयो नाम व्यासस्तु भविता मुनिः ॥ तदाऽप्यहं भविष्यामि शिखण्डी नाम नामतः ॥ १७१ ॥ सिद्धक्षेत्रे महापुण्ये देवदानवपूजिते ॥ हिमवच्छिखरे पुण्ये शिखण्डी यत्र पर्व्वतः ॥ शिखण्डिनो वनञ्चापि ऋषिसिद्धनिषेवितम् ॥ १७२ ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः ॥ वाच श्रवा ऋतीकश्च शावासश्च दृढव्रतः ॥ १७३ ॥ योगात्मानो महाशक्ताः सर्व्वे ते वेदपारगाः ॥ प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं व्रजन्ति ते ॥ १७४ ॥ ततस्त्वेकोनविंशे तु परिवर्त्ते क्रमागते ॥ व्यासस्तु भविता नाम्ना भरद्वाजो महामुनिः॥१७५॥ तत्राप्यहं भविष्यामि जटामालीति नामतः ॥ हिमवच्छिखरे रम्ये जटायुर्यत्र पर्व्वतः॥१७६॥तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः ॥ हिरण्यनामा कौशिल्यः काक्षीवः कुथुमिस्तथा ॥१७७॥ ईश्वरा योगधर्म्माणः सर्व्वे ते ह्यूर्द्ध्वरेतसः॥ प्राप्य माहेश्वरं योगं गमिष्यन्ति न संशयः॥१७८॥ ततो विंशतिमे सर्गे परिवर्त्ते क्रमेण तु ॥ वाचःश्रवाः स्मृतो व्यासो भविष्यति महामतिः॥१७९॥तदाप्यहं भविष्यामि ह्यट्टहासीति नामतः ॥ अट्टहासप्रियाश्चापि भविष्यन्ति तदा नराः ॥ १८० ॥ तत्रैव हिमवत्पृष्ठे सिद्धचारणसेविते ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः ॥ युक्तात्मानो महासत्त्वा ध्यानिनो नियतव्रताः ॥ १८१ ॥ सुमन्तुर्वर्वरिर्विद्वान् सुबन्धुः कुशिकन्धरः ॥ प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकाय ते गताः ॥ ॥ १८२ ॥ एकविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्त्ते क्रमेण तु ॥ वाचस्पतिः स्मृतो व्यासो यदा स ऋषिसत्तमः ॥ १८३ ॥ तदाऽप्यहं भविष्यामि दारुको नाम नामतः ॥ तस्माद्भविष्यते पुण्यं देवदारुवनं महत् ॥ १८४ ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः ॥ प्लक्षो दाक्षायणिश्चैव केतुमाली वकस्तथा ॥ १८५ ॥ योगात्मानो महात्मानो नियता ह्यूर्द्ध्वरेतसः ॥ परमं योगमास्थाय रुद्रं प्राप्तास्तथानघाः ॥ १८६ ॥ द्वाविंशे परिवर्त्ते तु व्यासः शुक्लायनो यदा ॥ तदाऽप्यहं भविष्यामि वाराणस्यां महामुनिः ॥१८७॥ नाम्ना वै लाङ्गली भीमो यत्र देवाः सवासवाः ॥ द्रक्ष्यन्ति मां कलौ तस्मिन्नवतीर्णं हलायुधम् ॥ १८८ ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुधार्म्मिकाः ॥ तुल्यार्चिर्मधुपिङ्गाक्षः श्वेतकेतुस्तथैवच ॥ १८९ ॥ ते पि माहेश्वरं योगं प्राप्य ध्यानपरायणाः ॥ विरजा ब्रह्मभूयिष्ठा रुद्रलोकाय संस्थिताः ॥१९० ॥ परिवर्त्ते त्रयोविंशे तृणविन्दुर्य्यदा मुनिः ॥ व्यासो भविष्यति ब्रह्मा तदाऽहं भविता पुनः ॥ श्वेतो नाम महाकायो मुनिपुत्रः सुधार्म्मिकः ॥ १९१ ॥ तत्र कालञ्जरिष्यामि तदा गिरिवरोत्तमे ॥ तेन कालञ्जरो नाम भविष्यति स पर्व्वतः ॥१९२॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति महौजसः ॥ उषिजो बृहदुक्थश्च देवलः कविरेव च ॥ प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं गता हि ते॥१९३॥परिवर्त्ते चतुर्विंशे ऋक्षो व्यासो भविष्यति ॥ तत्राऽहं भविता ब्रह्मन् कलौ तस्मिन् युगान्तिके ॥ शूली नाम महायोगी नैमिषे योगि

वन्दिते ॥ १९४ ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपस्विनः ॥ शालिहोत्रोऽग्निवेश्यश्च युवनाश्वः शरद्वसुः ॥ तेऽपि योगबलोपेता रुद्रं यास्यन्ति सुव्रताः ॥ १९५ ॥ पञ्चविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्त्ते यथाक्रमम् ॥ वासिष्ठस्तु यदा व्यासः शक्तिर्नाम भविष्यति ॥ १९६ ॥ तदाऽप्यहं भविष्यामि दण्डी मुण्डीश्वरः प्रभुः ॥ कोटिवर्षं समासाद्य नगरं देवपूजितम् ॥ १९७ ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति क्रमागताः ॥ योगात्मानो महात्मानः सर्वे ते ह्यूर्द्ध्वरेतसः ॥ १९८ ॥ छगलः कुम्भकर्णाश्यः कुम्भश्चैव प्रबाहुकः ॥ प्राप्य माहेश्वरं योगं गमिष्यन्ति तथैव ते ॥ १९९ ॥ षड्विंशे परिवर्त्ते तु यदा व्यासः पराशरः ॥ तदाऽप्यहं भविष्यामि सहिष्णुर्नाम नामतः ॥ पुण्यं रुद्रवनं प्राप्य कलौ तस्मिन् युगान्तिके ॥ २०० ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति सुधार्म्मिकाः ॥ उलूको वैद्युतश्चैव सर्वको ह्याश्वलायनः ॥ प्राप्य माहेश्वरं योगं गन्तारस्ते तथैव हि ॥ २०१ ॥ सप्तविंशतिमे प्राप्ते परिवर्त्ते क्रमागते ॥ जातूकर्ण्यो यदा व्यासो भविष्यति तपोधनः ॥ २०२ ॥ तदाऽप्यहं भविष्यामि सोमशर्म्मा द्विजोत्तमः॥ प्रभासतीर्थमासाद्य योगात्मा लोकविश्रुतः॥२०३॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपोधनाः ॥ अक्षपादः कणादश्च उलूको वत्स एव च ॥ २०४ ॥ योगात्मानो महात्मानो विमलाः शुद्धबुद्धयः ॥ प्राप्य माहेश्वरं योगं रुद्रलोकं ततो गताः ॥ २०५ ॥ अष्टाविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्त्ते क्रमागते ॥ पराशरसुतः श्रीमान् विष्णुर्लोकपितामहः ॥ २०६ ॥ यदा भविष्यति व्यासो नाम्ना द्वैपायनः प्रभुः ॥ तदा षष्ठेन चांशेन कृष्णः पुरुषसत्तमः ॥ वसुदेवाद्यदुश्रेष्ठो वासुदेवो भविष्यति ॥ २०७ ॥ तदा चाहं भविष्यामि योगात्मा योगमायया ॥ लोकविस्मयनार्थाय ब्रह्मचारिशरीरकः ॥ २०८ ॥ श्मशाने मृतमुत्सृष्टं दृष्ट्वा लोकमनाथकम् ॥ ब्राह्मणानां हितार्थाय प्रविष्टो योगमायया ॥ २०९ ॥ दिव्यां मेरुगुहां पुण्यां त्वया सार्द्धञ्च विष्णुना ॥ भविष्यामि तदा ब्रह्मन् नकुली नाम नामतः ॥ २१० ॥ कायारोहणमित्येवं सिद्धक्षेत्रञ्च वै तदा ॥ भविष्यति तु विख्यातं यावद्भूमिर्द्धरिष्यति ॥ २११ ॥ तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति तपस्विनः ॥ कुशिकश्चैव गार्ग्यश्च मित्रको रुष्ट एव च ॥ २१२ ॥ योगयुक्ता महात्मानो ब्राह्मणा वेदपारगाः ॥ प्राप्य माहेश्वरं योगं विमला ह्यूर्द्ध्वरेतसः ॥ रुद्रलोकं गमिष्यन्ति पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ २१३ ॥ इत्येतद्वै मया प्रोक्तमवतारेषु लक्षणम् ॥ मन्वादिकृष्णपर्य्यन्तमष्टाविंशयुगक्रमात् ॥ तत्र स्मृतिसमूहानां विभागो धर्म्मलक्षणम् ॥ २१४ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते माहेश्वरावतारयोगो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ चत्वारि भारते वर्षे युगानि मुनयो विदुः ॥ कृतं त्रेता द्वापरं च तिष्यं चेति चतुर्युगम् ॥ १ ॥ एतत्सहस्रपर्य्यंतमहर्यद्ब्रह्मणः स्मृतम् ॥ यामाद्यास्तु गणाः सप्त रोमवन्तश्चतुर्दश॥२॥ सशरीराः श्रूयन्ते स्म जनलोकं सहा

नुगाः ॥ एवं देवेष्वतीतेषु महर्ल्लोकाज्जनन्तपः ॥ ३ ॥ मन्वन्तरेष्वतीतेषु देवाः सर्वे महौजसः ॥ ततस्तेषु गतेपूर्द्ध्वं सायुज्यं कल्पवासिनाम् ॥ ४ ॥
समेत्य देवैस्ते देवाः प्राप्ते सङ्कालने तदा ॥ महर्लोकं परित्यज्य गणास्ते वै चतुर्दश ॥ ५ ॥ भूतादिष्ववशिष्टेषु स्थावरान्तेषु वै तदा ॥ शून्येषु तेषु
लोकेषु महान्तेषु भुवादिषु ॥ देवेष्वथ गतेपूर्द्ध्वं कल्पवासिषु वै जनम् ॥ ६ ॥ तत्संहृत्य ततो ब्रह्मा देवर्षिगणदानवान् ॥ संस्थापयाति वै सर्व्वान् दाह
वृष्ट्या युगक्षये ॥ ७ ॥ योऽतीतः सप्तमः कल्पो मया वः परिकीर्तितः ॥ समुद्रैः सप्तभिर्गाढमेकीभूतैर्महार्णवैः ॥ आसीदेकार्णवं घोरमविभागं तमोमय
म् ॥ ८ ॥ मायथैकार्णवे तस्मिन् शङ्खचक्रगदाधरः ॥ जीमूताभोऽम्बुजाक्षश्च किरीटी श्रीपतिर्हरिः ॥ ९ ॥ नारायणमुखोद्गीर्णः सोऽष्टमः पुरुषोत्तमः ॥ अ
ष्टबाहुर्महोरस्को लोकानां योनिरुच्यते ॥ किमप्यचिन्त्यं युक्तात्मा योगमास्थाय योगवित् ॥ १० ॥ फणासहस्रकलितन्तमप्रतिमवर्चसम् ॥ महाभोग
पतेर्भोगमन्वास्तीर्य्यं महोच्छ्रयम् ॥ तस्मिन्महति पर्य्यङ्के शेते वै कनकप्रभे ॥ ११ ॥ एवं तत्र शयानेन विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ आत्मारामेण क्रीडा
र्थं सृष्टं नाभ्यां तु पङ्कजम् ॥ १२ ॥ शतयोजनविस्तीर्णं तरुणादित्यवर्चसम् ॥ वज्रदण्डं महोत्सेधं लीलया प्रभविष्णुना ॥ १३ ॥ तस्यैवं
क्रीडमानस्य समीपं देवमीढुषः ॥ हेमब्रह्माण्डजो ब्रह्मा रुक्मवर्णो ह्यतीन्द्रियः ॥ चतुर्मुखो विशालाक्षः समागम्य यदृच्छया ॥ १४ ॥ श्रिया
युक्तेन नव्येन सुप्रभेण सुगन्धिना ॥ तं क्रीडमानं पद्मेन दृष्ट्वा ब्रह्मा तु भेजिवान् ॥ १५ ॥ स विस्मयमथागम्य शस्य संपूर्णया गिरा ॥ प्रोवाच
को भवान् शेते आश्रितो मध्यमम्भसाम् ॥१६॥ अथ तस्याच्युतः श्रुत्वा ब्रह्मणस्तु शुभं वचः ॥ उदतिष्ठत पर्य्यङ्काद्विस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ १७ ॥
प्रत्युवाचोत्तरञ्चैव क्रियते यच्च किञ्चन ॥ द्यौरन्तरिक्षं भूतञ्च परं पदमहं प्रभुः ॥ १८ ॥ तमेवमुक्त्वा भगवान् विष्णुः पुनरथाब्रवीत् ॥ कस्त्वं ख
लु समायातः समीपं भगवान् कुतः॥ कुतश्च भूयो गन्तव्यं कुत्र वा ते प्रतिश्रयः ॥ १९ ॥ को भवान् विश्वमूर्त्तिस्त्वं कर्त्तव्यं किञ्च ते मया ॥ एवं ब्रुवा
णं वैकुण्ठं प्रत्युवाच पितामहः ॥ २० ॥ यथा भवांस्तथा चाहमादिकर्त्ता प्रजापतिः ॥ नारायणसमाख्यातः सर्व्वं वै मयि तिष्ठति ॥ २१ ॥ सविस्मयं प
रं श्रुत्वा ब्रह्मणा लोककर्तृणा ॥ सोऽनुज्ञातो भगवता वैकुण्ठो विश्वसम्भवः ॥ २२ ॥ कौतूहलान्महायोगी प्रविष्टो ब्रह्मणो मुखम् ॥ इमानष्टादशद्वीपान्
ससमुद्रान् सपर्व्वतान् ॥ प्रविश्य स महातेजाश्चातुर्व्वर्ण्यसमाकुलान् ॥ ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तान् सप्तलोकान् सनातनान् ॥ २३ ॥ ब्रह्मणस्तूदरे दृष्ट्वा स
र्व्वान् विष्णुर्महायशाः ॥ अहोऽस्य तपसो वीर्य्यं पुनः पुनरभाषत ॥ २४ ॥ पर्य्यटन् विविधान् लोकान् विष्णुर्नानाविधाश्रमान् ॥ ततो वर्षसहस्रान्ते
नान्तं हि ददृशे तदा ॥ २५ ॥ तदाऽस्य वक्त्रान्निष्क्रम्य पन्नगेन्द्रारिकेतनः ॥ अजातशत्रुर्भगवान् पितामहमथाब्रवीत् ॥ २६ ॥ भगवन् आदि मध्यञ्च

अन्तं कालदिशोर्न च ॥ नाहमन्तं प्रपश्यामि ह्युदरस्य तवानघ ॥२७॥ एवमुक्त्वाब्रवीद्भूयः पितामहमिदं हरिः ॥ भवानप्येवमेवाद्य ह्युदरं मम शाश्वतम् ॥
प्रविश्य लोकान् पश्यैताननौपम्यान् द्विजोत्तम ॥ २८ ॥ मनःप्रह्लादनीं वाणीं श्रुत्वा तस्याभिनन्द्य च ॥ श्रीपतेरुदरं भूयः प्रविवेश पितामहः ॥ २९ ॥
तानेव लोकान् गर्भस्थः पश्यन् सोऽचिन्त्यविक्रमः ॥ पर्य्यटित्वादिदेवस्य ददर्शान्तं न वै हरेः ॥ ३० ॥ ज्ञात्वागमन्तस्य पितामहस्य द्वाराणि सर्व्वा
णि पिधाय विष्णुः ॥ विभुर्म्मनः कर्त्तुमियेष चाशु सुखं प्रसुप्तोऽस्मि महाजलौघे ॥ ३१ ॥ ततो द्वाराणि सर्व्वाणि पिहितान्युपलक्ष्यते ॥ सूक्ष्मं कृत्वा
त्मनो रूपं नाभ्यां द्वारमविन्दत ॥ ३२ ॥ पद्मसूत्रानुमार्गेण ह्यनुगम्य पितामहः ॥ उज्जहारात्मनो रूपं पुष्कराच्चतुराननः ॥ विरराजारवि
न्दस्थः पद्मगर्भसमद्युतिः ॥ ३३ ॥ एतस्मिन्नन्तरे ताभ्यामेकैकस्य तु कार्त्स्न्यतः ॥ प्रवर्त्तमाने संहर्षे मध्ये तस्यार्णवस्य तु ॥ ३४ ॥
॥ सूत उवाच ॥ ॥ ततो ह्यपरिमेयात्मा भूतानां प्रभुरीश्वरः ॥ शूलपाणिर्महादेवो हैमचीराम्बरच्छदः ॥ आगच्छद् यत्र सोऽनन्तो
नागभोगपतिर्हरिः ॥ ३५ ॥ शीघ्रं विक्रमतस्तस्य पद्भ्यामत्यन्तपीडिताः ॥ उद्भूतास्तूर्णमाकाशे पृथुलास्तोयबिन्दवः ॥ अत्युष्णाश्चातिशी
ताश्च वायुस्तत्र ववौ भृशम् ॥ ३६ ॥ तद्दृष्ट्वा महदाश्चर्य्यं ब्रह्मा विष्णुमभाषत ॥ अब्बिन्दवो हि स्थूलोष्णाः कम्पते चाम्बुजं भृशम् ॥
एतं मे संशयं ब्रूहि किञ्चान्यत् त्वञ्चिकीर्षसि ॥ ३७ ॥ एतदेवंविधं वाक्यं पितामहमुखोद्भवम् ॥ श्रुत्वा प्रतिमकर्म्माह भगवानसुरान्तकृत् ॥
॥ ३८ ॥ किन्तु खल्वत्र मे नाभ्यां भूतमन्यत्कृतालयम् ॥ वदन्ति प्रियमत्यर्थं विप्रियेपि च ते मया ॥ ३९ ॥ इत्येवं मनसा ध्यात्वा प्रत्युवाचेदमुत्तरम् ॥
किन्न्वत्र भगवांस्तस्मिन् पुष्करे जातसम्भ्रमः ॥ ४० ॥ किं मया यत् कृतन्देव यन्मां प्रियमनुत्तमम् ॥ भाषसे पुरुषश्रेष्ठ किमर्थं ब्रूहि तत्त्वतः ॥४१॥
एवं ब्रुवाणं देवेशं लोकयात्रान्तु तत्त्वगाम् ॥ प्रत्युवाचाम्बुजाभास्को ब्रह्मा वेदनिधिः प्रभुः ॥ ४२ ॥ योऽसौ तवोदरं पूर्व्वं प्रविष्टोऽहं त्वदिच्छया ॥
यथा ममोदरे लोकाः सर्व्वे दृष्टास्त्वया प्रभो ॥ तथैव दृष्टाः कार्त्स्न्येन मया लोकास्तवोदरे ॥४३॥ ततो वर्षसहस्रान्ते उपावृत्तस्य मेऽनघ ॥ नूनं म
त्सरभावेन मां वशीकर्तुमिच्छता ॥ आशु द्वाराणि सर्व्वाणि घटितानि त्वया पुनः ॥ ४४ ॥ ततो मया महाभाग सञ्चिन्त्य स्वेन चेतसा ॥ लब्धो ना
भ्यां प्रवेशस्तु पद्मसूत्राद्विनिर्गमः ॥४५॥ माभूत्ते मनसोऽल्पोऽपि व्याघातोऽयं कथञ्चन ॥ इत्येषानुगतिर्विष्णोः कार्य्याणामौपसर्गिकी ॥ ४६ ॥ यन्म
यानन्तरं कार्य्यं मयाध्यवसितं त्वयि ॥ त्वाञ्चाबाधितुकामेन क्रीडापूर्व्वं यदृच्छया ॥ आशु द्वाराणि सर्व्वाणि घटितानि मया पुनः ॥ ४७॥ न तेऽन्य
थावमन्तव्यो मान्यः पूज्यश्च मे भवान् ॥ सर्व्वं मर्षय कल्याण यन्मयाऽप कृतन्तव ॥ तस्मान्मयोच्यमानस्त्वं पद्मादवतर प्रभो ॥ ४८ ॥ नाहं भवन्तं

शक्नोमि सोढुन्तेजोमयं गुरुम् ॥ स चोवाच वरं ब्रूहि पद्मादवतराम्यहम् ॥ ४९ ॥ ॥ विष्णुरुवाच ॥ पुत्रो भव ममारिघ्न मुदं प्राप्स्यसि शोभनम् ॥
सत्यधनो महायोगी त्वमीड्यः प्रणवात्मकः ॥ ५० ॥ अद्यप्रभृति सर्व्वेश श्वेतोष्णीषविभूषणः ॥ पद्मयोनिरितीत्येवं ख्यातो नाम्ना भविष्यसि ॥
पुत्रो मे त्वं भव ब्रह्मन् सर्व्वलोकाधिप प्रभो ॥ ५१ ॥ ततः स भगवान् ब्रह्मा वरं गृह्य किरीटिनः ॥ एवं भवतु चेत्युक्त्वा प्रीतात्मा गतम
त्सरः ॥ ५२ ॥ प्रत्यासन्नमथायातं बालार्काभं महाननम् ॥ भूतमत्यद्भुतं दृष्ट्वा नारायणमथाब्रवीत् ॥ ५३ ॥ अप्रमेयो महावक्त्रो दंष्ट्री
व्यस्तशिरोरुहः ॥ दशबाहुस्त्रिशूलाङ्को नयनैर्विश्वतोमुखः ॥ ५४ ॥ लोकप्रभुः स्वयं साक्षाद्विकृतो मुञ्जमेखली ॥ मेढ्रेणोर्ध्वेन महता
नदमानोऽतिभैरवम् ॥ ५५ ॥ कः खल्वेष पुमान् विष्णो तेजोराशिर्महाद्युतिः ॥ व्याप्य सर्व्वा दिशो द्याञ्च इत एवाभिवर्त्तते ॥ ५६ ॥ ते
नैवमुक्तो भगवान् विष्णुर्ब्रह्माणमब्रवीत् ॥ पद्भ्यान्तलनिपातेन यस्य विक्रमतोऽर्णवे ॥ वेगेन महताकाशे व्यथिताश्च जलाशयाः ॥ ५७ ॥ छटाभिर्वि
ष्णुतोऽत्यर्थं सिच्यते पद्मसम्भवः ॥ घ्राणजेन च वातेन कम्पमानं त्वया सह ॥ दोधूयते महापद्मं स्वच्छन्दं मम नाभिजम् ॥ ५८ ॥ स एष भगवानी
शो ह्यनादिश्चान्तकृद्विभुः ॥ भवानहञ्च स्तोत्रेण ह्युपतिष्ठाव गोध्वजम् ॥ ५९ ॥ ततः क्रुद्धोऽम्बुजाभास्कं ब्रह्मा प्रोवाच केशवम् ॥ न भवान् न्यूनमात्मा
नं लोकानां योनिमुत्तमम् ॥ ६० ॥ ब्रह्माणं लोककर्त्तारं माञ्च वेत्ति सनातनम् ॥ कोऽयं भोः शङ्करो नाम ह्यावयोर्व्यतिरिच्यते ॥ ६१ ॥ तस्य तत् क्रो
धजं वाक्यं श्रुत्वा विष्णुरभाषत ॥ मा मैवं वद कल्याण परिवादं महात्मनः ॥ ६२ ॥ मायायोगेश्वरो धर्मो दुराधर्षो वरप्रदः ॥ हेतुरस्यात्र जगतः पुरा
णः पुरुषोऽव्ययः ॥ ६३ ॥ जीवः खल्वेष जीवानां ज्योतिरेकं प्रकाशते ॥ बालक्रीडनकैर्देवः क्रीडते शङ्करः स्वयम् ॥ ६४ ॥ प्रधानमव्ययं ज्योतिरव्यक्तं
प्रकृतिस्तमः ॥ अस्य चैतानि नामानि नित्यं प्रसवधर्म्मिणः ॥ यः कः स इति दुःखार्त्तैर्मृग्यते यतिभिः शिवः ॥ ६५ ॥ एष बीजी भवान् बीजमहं यो
निः सनातनः ॥ एवमुक्तोऽथ विश्वात्मा ब्रह्मा विष्णुमभाषत ॥ ६६ ॥ भवान्योनिरहं बीजं कथं बीजी महेश्वरः ॥ एतन्मे सूक्ष्ममव्यक्तं संशयं छेत्तुमर्ह
सि ॥ ६७ ॥ ज्ञात्वा चैवं समुत्पत्तिं ब्रह्मणा लोकतन्त्रिणा ॥ इदं परमसादृश्यं प्रश्नमभ्यवदद्धरिः ॥ ६८ ॥ अस्मान्महत्तरं गुह्यं भूतमन्यन्न विद्यते ॥
महतः परमं धाम शिवमध्यात्मिनां पदम् ॥ ६९ ॥ द्वैधीभावेन चात्मानं प्रविष्टस्तु व्यवस्थितः ॥ निष्कलः सूक्ष्ममव्यक्तः सकलश्च महेश्वरः ॥ ७० ॥
अस्य मायाविधिज्ञस्य अगम्यगहनस्य च ॥ पुरा लिङ्गं भवद्बीजं प्रथमं त्वादिसर्गिकम् ॥ ७१ ॥ मयि योनौ समायुक्तं तद्बीजं कालपर्य्ययात् ॥
हिरण्मयमपारन्तद्योन्यामण्डमजायत ॥ ७२ ॥ शतानि दशवर्षाणामण्डञ्चाप्सु प्रतिष्ठितम् ॥ अन्ते वर्षसहस्रस्य वायुना तद्द्विधा कृतम् ॥ ७३ ॥

कपालमेकं द्यौर्जज्ञे कपालमपरं क्षितिः ॥ उल्बन्तस्य महोत्सेधं योऽसौ कनकपर्व्वतः ॥ ७४ ॥ ततस्तस्मात् प्रबुद्धात्मा देवो देववरः प्रभुः ॥ हिरण्यगर्भो भगवान् अहं जज्ञे चतुर्भुजः ॥ ७५ ॥ ततो वर्षसहस्रान्ते वायुना तद्द्विधाकृतम् ॥ अतारार्केन्दुनक्षत्रं शून्यं लोकमवेक्ष्य च ॥ कोऽयमत्रेत्यभिध्याते कुमारास्तेऽभवंस्तदा ॥ ७६ ॥ प्रियदर्शनास्सुतनवो येऽतीताः पूर्व्वजास्तव ॥ भूयो वर्षसहस्रान्ते तत एवात्मजास्तव ॥ भुवनानलसङ्काशाः पद्मपत्रायतेक्षणाः ॥७७ ॥ श्रीमान् सनत्कुमारस्तु ऋभुश्चैवोर्द्ध्वरेतसौ ॥ सनातनश्च सनकस्तथैव च सनन्दनः ॥ उत्पन्नाः समकालं ते बुद्ध्याऽतीन्द्रियदर्शनाः ॥ ७८ ॥ उत्पन्नाः प्रतिघात्मानो जगदुश्च तदैव हि ॥ नारप्स्यन्ते च कर्म्माणि तापत्रयविवर्जिताः ॥ ७९ ॥ अस्य सौम्यं बहुक्लेशं जराशोकसमन्वितम् ॥ जीवितं मरणं चैव संभवश्च पुनः पुनः ॥ ८० ॥ स्वप्नभूतं पुनः स्वर्गं दुःखानि नरकांस्तथा ॥ विदित्वा चागमं सर्व्वमेवेयं भवितव्यताम् ॥ ८१ ॥ ऋभुं सनत्कुमारञ्च दृष्ट्वा तव वशे स्थितौ ॥ त्रयस्तु त्रीन् गुणान् हित्वा आत्मजाः सनकादयः ॥ वैवर्त्तेन तु ज्ञानेन निवृत्तास्ते महौजसः ॥ ८२ ॥ ततस्तेष्वप्रवृत्तेषु सनकादिषु वै त्रिषु ॥ भविष्यसि विमूढस्तु मायया शङ्करस्य तु ॥ ८३ ॥ एवं कल्पे तु वैकल्पे संज्ञा नश्यति तेऽनघ ॥ कल्पशेषाणि भूतानि सूक्ष्माणि पार्थिवानि च ॥ ८४ ॥ सा चैषा ह्यैश्वरी माया जगतः समुदाहृता ॥ स एष पर्व्वतो मेरुर्देवलोक उदाहृतः ॥ ८५ ॥ तवैवेदं हि माहात्म्यं दृष्ट्वा चात्मानमात्मना ॥ ज्ञात्वा चेश्वरसद्भावं ज्ञात्वा मामम्बुजेक्षणम् ॥ ८६ ॥ महादेवं महायोगं भूतानां वरदं प्रभुम् ॥ प्रणवात्मानमासाद्य नमस्कृत्या जगद्गुरुम् ॥ त्वाञ्च माञ्चैव संक्रुद्धो निःश्वासान्निर्दहेदयम् ॥ ८७ ॥ एवं ज्ञात्वा महायोगं अभ्युत्तिष्ठन् महाबलः ॥ अहं त्वामग्रतः कृत्वा स्तोष्येऽहमनलप्रभम् ॥ ८८ ॥ ॥ सूतउवाच ॥ ॥ ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा ततः स गरुडध्वजः ॥ अतीतैश्च भविष्यैश्च वर्त्तमानैस्तथैव च ॥ नामभिश्छान्दसैश्चैव इदं स्तोत्रमुदीरयत् ॥ ८९ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते सुव्रतेऽनन्ततेजसे ॥ नमःक्षेत्राधिपतये बीजिने शूलिने नमः ॥ ९० ॥ अमेढ्रायोर्द्ध्वमेढ्राय नमो वैकुण्ठरेतसे ॥ नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय अपूर्वप्रथमाय च ॥ ९१ ॥ नमो हव्याय पूज्याय सद्योजाताय वै नमः ॥ गह्वराय धनेशाय हेमचीराम्बराय च ॥ ९२ ॥ नमस्ते ह्यस्मदादीनां भूतानां प्रभवाय च ॥ वेदकर्म्मावदानानां द्रव्याणां प्रभवे नमः ॥ ९३ ॥ नमो योगस्य प्रभवे सांख्यस्य प्रभवे नमः ॥ नमो ध्रुवनिशीथानामृषीणां पतये नमः ॥ ९४ ॥ विद्युदशनिमेघानां गर्ज्जितप्रभवे नमः ॥ उदधीनाञ्च प्रभवे द्वीपानां प्रभवे नमः ॥ ९५ ॥ अद्रीणां प्रभवे चैव वर्षाणां प्रभवे नमः ॥ नमो नदानां प्रभवे नदीनां प्रभवे नमः ॥ ९६ ॥ नमश्चौषधिप्रभवे वृक्षाणां प्रभवे नमः ॥ धर्म्माध्यक्षाय धर्म्माय स्थितीनां प्रभवे नमः ॥ ९७ ॥ नमो रसानां

प्रभवे रत्नानां प्रभवे नमः ॥ नमः क्षणानां प्रभवे कलानां प्रभवे नमः ॥ ९८ ॥ निमेषप्रभवे चैव काष्ठानां प्रभवे नमः ॥ अहोरात्रार्द्धमासानां मासानां प्रभवे नमः ॥ ९९ ॥ नम ऋतूनां प्रभवे संख्यायाः प्रभवे नमः ॥ प्रभवे च परार्द्धस्य परस्य प्रभवे नमः ॥ १०० ॥ नमः पुराणप्रभवे युगस्य प्रभवे नमः ॥ चतुर्व्विधस्य सर्गस्य प्रभवेऽनन्तचक्षुषे ॥ १०१ ॥ कल्पोदये निबद्धानां वार्त्तानां प्रभवे नमः ॥ नमो विश्वस्य प्रभवे ब्रह्मादिप्रभवे नमः ॥ ॥ १०२ ॥ विद्यानां प्रभवे चैव विद्यानां पतये नमः ॥ नमो व्रतानां पतये मन्त्राणां पतये नमः ॥१०३॥ पितॄणां पतये चैव पशूनां पतये नमः ॥ वाग्वृषाय नमस्तुभ्यं पुराणवृषभाय च ॥ १०४ ॥ सुचारुचारुकेशाय ऊर्द्ध्वचक्षुःशिराय च ॥ नमः पशूनां पतये गोवृषेन्द्रध्वजाय च ॥ १०५ ॥ प्रजापतीनां पतये सिद्धानां पतये नमः ॥ गरुडोरगसर्पाणां पक्षिणां पतये नमः ॥ १०६ ॥ गोकर्णाय च गोष्ठाय शङ्कुकर्णाय वै नमः ॥ वाराहायाप्रमेयाय रक्षोऽधिपतये नमः ॥ १०७ ॥ नमो ह्यप्सरसांत्ये पतये गणानां ह्रीमये नमः ॥ अम्भसां पतये चैव तेजसां पतये नमः ॥ १०८ ॥ नमोऽस्तु लक्ष्मीपतये श्रीमते ह्रीमते नमः ॥ बलाबलसमूहाय ह्यक्षोभ्यक्षोभणाय च ॥ १०९ ॥ दीर्घशृङ्गैकशृङ्गाय वृषभाय ककुद्मिने ॥ नमस्थैर्याय वपुषे तेजसे सुप्रभाय च ॥ ११० ॥ भूताय च भविष्याय वर्त्तमानाय वै नमः ॥ सुवर्च्चसेऽथ वीराय शूराय ह्यतिगाय च ॥ १११ ॥ वरदाय वरेण्याय नमः सर्व्वगताय च ॥ नमो भूताय भव्याय भवाय महते तथा ॥ ११२ ॥ जनाय च नमस्तुभ्यं तपसे वरदाय च ॥ नमो वन्द्याय मोक्षाय जनाय नरकाय च ॥ ११३ ॥ भवाय भजमानाय इष्टाय याजकाय च ॥ अभ्युदीर्णाय दीप्ताय तत्त्वाय निर्गुणाय च ॥ ११४ ॥ नमः पाशाय हस्ताय नमः स्वाभरणाय च ॥ हुताय अपहुताय प्रहुतप्राशिताय च ॥ ११५ ॥ नमोऽस्त्विष्टाय मूर्त्ताय ह्यग्निष्टोमर्त्विजाय च ॥ नम ऋताय सत्याय भूताधिपतये नमः ॥ ११६ ॥ सदस्याय नमश्चैव दक्षिणावभृथाय च ॥ अहिंसायाथ लोकानां पशुमन्त्रौषधाय च ॥ ११७ ॥ नमस्तुष्टिप्रदानाय त्र्यम्बकाय सुगन्धिने ॥ नमोऽस्त्विन्द्रियपतये परिहाराय स्रग्विणे ॥ ११८ ॥ विश्वाय विश्वरूपाय विश्वतोऽक्षिमुखाय च ॥ सर्व्वतःपाणिपादाय रुद्रायाप्रमिताय च ॥ ११९ ॥ नमो हव्याय कव्याय हव्यकव्याय वै नमः ॥ नमः सिद्धाय मेध्याय चेष्टाय त्वव्ययाय च ॥ १२० ॥ सुवीराय सुघोराय ह्यक्षोभ्यक्षोभणाय च ॥ सुमेधसे सुप्रजाय दीप्ताय भास्कराय च ॥ १२१ ॥ नमो नमः सुपर्णाय तपनीयनिभाय च ॥ विरूपाक्षाय त्र्यक्षाय पिङ्गलाय महौजसे ॥ १२२ ॥ दृष्टिघ्नाय नमश्चैव नमः सौम्येक्षणाय च ॥ नमो धूम्राय श्वेताय कृष्णाय लोहिताय च ॥ १२३ ॥ पिशिताय पिशङ्गाय पीताय च निषङ्गिणे ॥ नमस्ते सविशेषाय निर्व्विशेषाय वै नमः ॥ १२४ ॥ नमो वै पद्मवर्णाय मृत्युघ्नाय च मृत्यवे ॥ नमः श्यामा

य गौराय कद्रवे रोहिताय च ॥ १२५ ॥ नमः कान्ताय सन्ध्याभ्रवर्णाय बहुरूपिणे ॥ नमः कपालहस्ताय दिग्वस्त्राय कपर्दिने ॥ १२६ ॥ अप्रमे याय शर्वाय ह्यवध्याय वराय च ॥ पुरस्तात् पृष्ठतश्चैव बिभ्राणाय कृशानवे ॥ १२७ ॥ दुर्गाय महते चैव रोधाय कपिलाय च ॥ अर्कप्रभशरी राय बलिने रंहसाय च ॥ १२८ ॥ पिनाकिने प्रसिद्धाय स्फीताय प्रसृताय च ॥ सुमेधसेऽक्षमालाय दिग्वासाय शिखण्डिने ॥ १२९ ॥ चित्राय चित्रवर्णाय विचित्राय धराय च ॥ चेकितानाय तुष्टाय नमस्त्वनिहिताय च ॥ १३० ॥ नमः क्षान्ताय शान्ताय वज्रसंहननाय च ॥ रक्षो घ्नाय मखघ्नाय शितिकण्ठोर्द्ध्वरेतसे ॥ १३१ ॥ अरिहाय कृतान्ताय तिग्मायुधधराय च ॥ समोदाय प्रमोदाय इरिणायैव ते नमः ॥ १३२ ॥ प्रणवप्रणवेशाय भक्तानां शर्मदाय च ॥ मृगव्याधाय दक्षाय दक्षयज्ञहराय च ॥ १३३ ॥ सर्व्वभूताय भूताय सर्व्वेशातिशयाय च ॥ पुरभेत्रे च शान्ताय सुगन्धाय वरेशवे ॥ १३४ ॥ पुष्पवन्तस्वरूपाय भगनेत्रान्तकाय च ॥ कणादाय वरिष्ठाय कामाङ्गदहनाय च ॥ १३५ ॥ रवेः करालचक्राय नागेन्द्रदमनाय च ॥ दैत्यानामन्तकायाथो दिव्याक्रन्दकराय च ॥ १३६ ॥ श्मशानरतिनित्याय नमस्त्र्यम्बकधारिणे ॥ नमस्ते प्राणपालाय धवमालाधराय च ॥ १३७ ॥ प्रहीणशोकैर्विविधैर्भूतैः परिष्टुताय च ॥ नरनारीशरीराय देव्याः प्रियकराय च ॥ १३८ ॥ जटिने दण्डिने तुभ्यं व्यालयज्ञोपवीतिने ॥ नमोऽस्तु नृत्यशीलाय वाद्यनृत्यप्रियाय च ॥ १३९ ॥ मन्यवे गीतशीलाय सुगीतिगायते नमः ॥ कटककराय भीमाय चोग्ररूपधराय च ॥ १४० ॥ विभीषणाय भीमाय भगप्रमथनाय च ॥ सिद्धसङ्घातगीताय महाभागाय वै नमः ॥ १४१ ॥ नमो मुक्ताट्टहासाय क्ष्वेडितास्फोटिताय च ॥ नदते कूर्दते चैव नमः प्रमुदिताय च ॥ १४२ ॥ नमोऽद्भुताय स्वपते धावते प्रस्थिताय च ॥ ध्या यते जृम्भते चैव तुदते द्रवते नमः ॥ १४३ ॥ चलते क्रीडते चैव लम्बोदरशरीरिणे ॥ नमः कृताय कम्पाय मुण्डाय विकराय च ॥ १४४ ॥ नम उन्मत्तवेषाय किंकिणीकाय वै नमः ॥ नमो विकृतवेषाय क्रूरोग्रामर्षणाय च ॥ १४५ ॥ अप्रमेयाय दीप्ताय दीप्तये निर्गुणाय च ॥ नमः प्रियाय वादाय मुद्रामणिधराय च ॥ १४६ ॥ नमस्तोकाय तनवे गुणैरप्रतिमाय च ॥ नमो गणाय गुह्याय अगम्यागमनाय च ॥ १४७ ॥ लोक धात्री त्वियं भूमिः पादौ सज्जनसेवितौ ॥ सर्व्वेषां सिद्धयोगानामधिष्ठानन्तवोदरम् ॥ १४८ ॥ मध्येऽन्तरिक्षं विस्तीर्णन्तारागणविभूषितम् ॥ तारापथ इवा भाति श्रीमान् हारस्तवोरसि ॥ १४९ ॥ दिशो दश भुजास्ते वै केयूराङ्गदभूषिताः ॥ विस्तीर्णपरिणाहश्च नीलाम्बुदचयोपमः ॥ १५० ॥ कण्ठस्ते शो भते श्रीमान् हेमसूत्रविभूषितः ॥ दंष्ट्राकरालदुर्द्धर्षमनौपम्यं मुखं तव ॥ १५१ ॥ पद्ममालाकृतोष्णीषं शीर्षण्यं शोभते कथम् ॥ दीप्तिः सूर्य्ये वपुश्च

न्द्रे स्थैर्य्यं भूर्य्योनिलो बले ॥ १५२ ॥ तैक्ष्ण्यमग्नौ प्रभा चन्द्रे खे शब्दः शैत्यमप्सु च ॥ अक्षरोत्तमनिष्पन्दान् गुणानेतान्विदुर्बुधाः ॥ १५३ ॥ जपो
जप्यो महायोगी महादेवो महेश्वरः ॥ पुरेशयो गुहावासी खेचरो रजनीचरः ॥ १५४ ॥ तपोनिधिर्गुहगुरुर्नन्दनो नन्दिवर्द्धनः ॥ हयशीर्षो धराधाता
विधाता भूतिवाहनः ॥ १५५ ॥ बोद्धव्यो बोधनो नेता धूर्व्वहो दुष्प्रकम्पकः ॥ बृहद्रथो भीमकर्म्मा बृहत्कीर्त्तिर्धनञ्जयः ॥ १५६ ॥ घण्टाप्रियो ध्व
जी छत्री पताकाध्वजिनीपतिः ॥ कवची पट्टिशी शङ्खी पाशहस्तः परश्वभृत् ॥ १५७ ॥ अगमस्त्वनघः शूरो देवराजारिमर्दनः ॥ त्वां प्रसाद्य
पुराऽस्माभिर्द्विषन्तो निहता युधि ॥ १५८ ॥ अग्निस्त्वं चार्णवान् सर्वान् पिबन्नेव न तृप्यसे ॥ क्रोधागारः प्रसन्नात्मा कामहा कामदः प्रियः ॥ १५९ ॥
ब्रह्मण्यो ब्रह्मचारी च गोघ्नस्त्वं शिष्टपूजितः ॥ वेदानामव्ययः कोशस्त्वया यज्ञः प्रकल्पितः ॥ १६० ॥ हव्यञ्च वेदं वहति वेदोक्तं हव्यवाहनः ॥
प्रीते त्वयि महादेव वयं प्रीता भवामहे ॥ १६१ ॥ भवानीशो नादिमान् धामराशिर्ब्रह्मा लोकानान्त्वं कर्त्ता त्वादिसर्गः ॥ साङ्ख्याः प्रकृतिभ्यः परमं
त्वां विदित्वा क्षीणध्यानास्ते न मृत्युं विशन्ति ॥ १६२ ॥ योगेन त्वान्ध्यानिनो नित्ययुक्ताः ज्ञात्वा भोगान् सन्त्यजन्ते पुनस्तान् ॥ येऽन्ये मर्त्त्या
स्त्वां प्रपन्ना विशुद्धास्ते कर्म्मभिर्दिव्यभोगान् भजन्ते ॥ १६३ ॥ अप्रमेयस्य तत्त्वस्य यथा विद्मः स्वशक्तितः ॥ कीर्त्तितं तव माहात्म्यमपारं
परमात्मनः ॥ शिवो नो भव सर्व्वत्र योऽसि सोऽसि नमोऽस्तु ते ॥ १६४ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते शार्व्वस्तवं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥
॥ सूत उवाच ॥ ॥ संपिबन्निव तौ दृष्ट्वा मधुपिङ्गायतेक्षणः ॥ प्रहृष्टवदनोऽत्यर्थमभवच्च स्वकीर्त्तनात् ॥ १ ॥ उमापतिर्विरूपाक्षो दक्षयज्ञविना
शनः ॥ पिनाकी खण्डपरशुर्भूतप्रान्तस्त्रिलोचनः ॥ २ ॥ ततः स भगवान् देवः श्रुत्वा वाक्यामृतन्तयोः ॥ जानन्नपि महाभागः प्रीतपूर्व्वमथाब्रवीत् ॥३॥
कौ भवन्तौ महात्मानौ परस्परहितैषिणौ ॥ समेतावम्बुजाभाक्षौ तस्मिन् घोरे जलप्लवे ॥ ४ ॥ तावूचतुर्महात्मानौ सन्निरीक्ष्य परस्परम् ॥ भगवन्
किञ्च तथ्येन विज्ञातेन त्वया विभो ॥ कुत्र वा सुखमानन्त्यमिच्छाचारमृते त्वया ॥ ५ ॥ उवाच भगवान् देवो मधुरश्लक्ष्णया गिरा ॥ भो भो हिर
ण्यगर्भ त्वां त्वां च कृष्ण वदाम्यहम् ॥ ६ ॥ प्रीतोऽहमनया भक्त्या शाश्वताक्षरयुक्तया ॥ भवन्तौ माननीयौ वै मम ह्यर्हतरावुभौ ॥ युवाभ्यां किन्द
दाम्यद्य वराणां वरमुत्तमम् ॥७॥ तेनैवमुक्ते वचने ब्रह्माणं विष्णुरब्रवीत् ॥ ब्रूहि ब्रूहि महाभाग वरो यस्ते विवक्षितः ॥ ८ ॥ प्रजाकामोऽस्म्यहं विष्णो ॥ ३५ ॥
पुत्रमिच्छामि धूर्व्वहम् ॥ ततः स भगवान् ब्रह्मा वरेप्सुः पुत्रलिप्सया ॥ ९ ॥ अथ विष्णुरुवाचेदं प्रजाकामं प्रजापतिम् ॥ वीरमप्रतिमं पुत्रं यत्त्वमि
च्छसि धूर्व्वहम् ॥ १० ॥ पुत्रत्वेनाभियुङ्क्ष्व त्वं देवदेवं महेश्वरम् ॥ स तस्य वाक्यं संपूज्य केशवस्य पितामहः ॥ ११ ॥ ईशानं वरदं रुद्रमभिवाद्य

कृताञ्जलिः ॥ उवाच पुत्रकामस्तु वाक्यानि सह विष्णुना ॥ १२ ॥ यदि मे भगवान् प्रीतः पुत्रकामस्य नित्यशः ॥ पुत्रो मे भव विश्वात्मन् त्वत्तुल्यो
वापि धूर्व्वहः ॥ नान्यं वरमहं वव्रे प्रीते त्वयि महेश्वर ॥ १३ ॥ तस्य तां प्रार्थनां श्रुत्वा भगवान् भगनेत्रहा ॥ निष्कल्मषममायञ्च बाढमित्यब्रवी
द्वचः ॥ १४ ॥ यदा कार्य्यसमारम्भे कस्मिंश्चित्तव सुव्रत ॥ अनिष्पत्तौ च कार्य्यस्य क्रोधस्त्वां समुपेष्यति ॥ आत्मैकादश ये रुद्रा विहिताः प्राण
हेतवः ॥ १५ ॥ सोऽहमेकादशात्मा वै शूलहस्तः सहानुगः ॥ ऋषिर्म्मित्रो महात्मा वै ललाटाद्भविता तदा ॥ १६ ॥ प्रसादमतुलं कृत्वा ब्रह्मणस्तादृशं
पुरा ॥ विष्णुं पुनरुवाचेदं ददामि च वरन्तव ॥ १७ ॥ स होवाच महाभागो विष्णुर्भवमिदं वचः ॥ सर्व्वमेतत् कृतं देव परितुष्टोऽसि मे यदि ॥
त्वयि मे सुप्रतिष्ठाऽस्तु भक्तिरम्बुदवाहन ॥ १८ ॥ एवमुक्तस्ततो देवः तमभाषत केशवम् ॥ विष्णो शृणु यथा देव प्रीतोऽहन्तव शाश्वत ॥ १९ ॥
प्रकाशश्चाप्रकाशश्च जङ्गमं स्थावरञ्च यत् ॥ विश्वरूपमिदं सर्व्वं रुद्रनारायणात्मकम् ॥ २० ॥ अहमग्निर्भवान् सोमो भवान् रात्रिरहं दिनम् ॥
भवानृतमहं सत्यं भवान् क्रतुरहं फलम् ॥ २१ ॥ भवान् ज्ञानमहं ज्ञेयं यज्जपित्वा सदा जनाः ॥ मां विशन्ति त्वयि प्रीते जनाः सुकृतकारिणः ॥
आवाभ्यां सहिता चैव गतिर्नान्या युगक्षये ॥ २२ ॥ आत्मानं प्रकृतिं विद्धि मां विद्धि पुरुषं शिवम् ॥ भवानर्द्धशरीरं मे त्वहन्तव यथैव च ॥ २३ ॥
वामपार्श्वमहम्मह्यं श्यामं श्रीवत्सलक्षणम् ॥ त्वञ्च वामेतरं पार्श्वं त्वहं वै नीललोहितः ॥ २४ ॥ त्वञ्च मे हृदयं विष्णो तव चाहं हृदि स्थितः ॥
भवान् सर्व्वस्य कार्य्यस्य कर्त्ताहमधिदैवतम् ॥२५॥ तदेहि स्वस्ति ते वत्स गमिष्याम्यम्बुदप्रभ ॥ एवमुक्त्वा गतो विष्णोर्देवोऽन्तर्द्धानमीश्वरः॥२६॥
ततः सोऽन्तर्हिते देवे संप्रहृष्टस्तदा पुनः ॥ अशेत शयने भूप प्रविश्यान्तर्जले हरिः ॥ २७ ॥ तं पद्मं पद्मगर्भाभं पद्माक्षः पद्मसम्भवः ॥
सम्प्रहृष्टमना ब्रह्मा भेजे ब्राह्मं तदासनम् ॥ २८ ॥ अथ दीर्घेण कालेन तत्राप्यप्रतिमावुभौ ॥ महाबलौ महासत्त्वौ भ्रातरौ मधुकैटभौ ॥ २९ ॥
ऊचतुश्चैव वचनं भक्ष्यो वै नौ भविष्यसि ॥ एवमुक्त्वा तु तौ तस्मिन्नन्तर्द्धानं गतावुभौ ॥ ३० ॥ दारुणन्तु तयोर्भावं ज्ञात्वा पुष्करसम्भवः ॥ मा
हात्म्यं चात्मनो बुद्ध्वा विज्ञातुमुपचक्रमे ॥ ३१ ॥ कर्णिकावटनं भूयो नाभ्यजानाद्यदा गतिम् ॥ ततः स पद्मनालेन अवतीर्य्य रसातलम् ॥ कृष्णा
जिनोत्तरासङ्गन्ददर्शोऽन्तर्जले हरिम् ॥ ३२ ॥ स च तं बोधयामास विबुद्धं चेदमब्रवीत् ॥ भूतेभ्यो मे भयं देव त्रायस्वोत्तिष्ठ शङ्कर ॥ ३३ ॥ ततः स
भगवान् विष्णुः सप्रहासमरिन्दमः॥ न भेतव्यं न भेतव्यमित्युवाच मुनिः स्वयम्॥३४॥तस्मात्पूर्वं त्वया चोक्तं भूतेभ्यो मे महद्भयम्॥तस्माद्भूतादिवा
श्यैस्तौ दैत्यौ त्वं नाशयिष्यसि ॥ ३५ ॥ भूर्भुवःस्वस्ततो देवं दिविक्षुस्तमयोनिजम् ॥ ततः प्रदक्षिणं कृत्वा तमेवासीनमागतम् ॥ ३६ ॥ गते

तस्मिंस्ततोऽनन्त उद्वीर्य्य भ्रातरौ मुखात् ॥ विष्णुं जिष्णुश्च प्रोवाच ब्रह्माणमभिरक्षताम् ॥ मधुकैटभयोर्ज्ञात्वा तयोरागमनं पुनः ॥३७॥ चक्राते रूप
सादृश्यं विष्णोर्जिष्णोश्च सत्तमौ॥ कृतसादृश्यरूपौ तौ तावेवाभिमुखौ स्थितौ॥३८॥ततस्तौ प्रोचतुर्दैत्यौ ब्रह्माणं दारुणं वचः॥अस्माकं युध्यमानानां
मध्ये वै प्राश्निको भव ॥ ३९ ॥ ततस्तौ जलमाविश्य संस्तम्भ्यापः स्वमायया ॥ चक्रतुस्तुमुलं युद्धं यस्य येनेप्सितं तदा ॥ ४० ॥ तेषान्तु युध्य
मानानां दिव्यं वर्षशतङ्गतम् ॥ न च युद्धमदोत्सेको ह्यन्योन्यं संन्यवर्त्तत ॥ ४१ ॥ लक्षणद्वयसंस्थानाद्रूपवन्तौ स्थितेङ्गितौ ॥ सादृश्याद्व्याकुलम
ना ब्रह्मा ध्यानमुपागमत् ॥ ४२ ॥ स तयोरन्तरं बुद्ध्वा ब्रह्मा दिव्येन चक्षुषा ॥ पद्मकेसरजं सूक्ष्मं बबन्ध कवचन्तयोः ॥ आमेखलञ्च गात्रञ्च ततो मन्त्र
मुदाहरत् ॥ ४३ ॥ जपतस्त्वभवत्कन्या विश्वरूपसमुत्थिता ॥ पद्मेन्दुवदनप्रख्या पद्महस्ता शुभा सती ॥ तां दृष्ट्वा व्यथितौ दैत्यौ भयादर्णविव
र्ज्जितौ ॥ ४४ ॥ ततः प्रोवाच तां कन्यां ब्रह्मा मधुरया गिरा ॥ काऽत्र त्वमवगन्तव्या ब्रूहि सत्यमनिन्दिते ॥ ४५ ॥ साम्ना संपूज्य सा कन्या ब्रह्माणं
प्राञ्जलिस्तदा ॥ मोहिनीं विद्धि मां मायां विष्णोः सन्देशकारिणीम् ॥ ४६ ॥ त्वया सङ्कीर्त्यमानाऽहं ब्रह्मन् प्राप्ता त्वरायुता ॥ अस्याः प्रीतमना ब्रह्मा
गौणं नाम चकारह ॥ ४७ ॥ मया च व्याहृता यस्मात्त्वञ्चैव समुपस्थिता ॥ महाव्याहृतिरित्येव नाम ते विचरिष्यति ॥ ४८ ॥ उत्थिता च शिरो
भित्त्वा सावित्री तेन चोच्यते ॥ एकानंशात्तु यस्मात्त्वमनेकांशा भविष्यसि॥४९॥गौणानि तावदेतानि कर्म्मजान्यपराणि च ॥ नामानि ते भविष्यन्ति म
त्प्रसादात् शुभानने ॥ ५० ॥ ततस्तौ पीड्यमानौ तु वरमेनमयाचताम् ॥ अनावृतं नौ मरणं पुत्रत्वञ्च भवेत्तव ॥ ५१ ॥ तथेत्युक्त्वा ततस्तूर्णमनय
द्यमसादनम् ॥ अनयत् कैटभं विष्णुर्जिष्णुश्चाप्यनयन्मधुम् ॥ ५२ ॥ एवन्तौ निहतौ दैत्यौ विष्णुना जिष्णुना सह ॥ प्रीतेन ब्रह्मणा चाथ लोकानां
हितकाम्यया ॥ ५३ ॥ पुत्रत्वमीशेन यथा ह्यात्मा दत्तो निबोधत ॥ विष्णुना जिष्णुना सार्द्धं मधुकैटभयोस्तथा ॥ सम्पराये व्यतिक्रान्ते ब्रह्मा विष्णु
मभाषत ॥ ॥ ५४ ॥ अद्य वर्षशतं पूर्णं समयः प्रत्युपस्थितः ॥ संक्षेपसंप्लवङ्घोरं स्वस्थानं यामि चाप्यहम् ॥ ५५ ॥ स तस्य वचसा देवः संहारमकरो
त्तदा ॥ महीं निस्थावरां कृत्वा प्रकृतिस्थांश्च जङ्गमान् ॥ ५६ ॥ यदि गोविन्द भद्रन्ते क्षिप्तस्ते यादसां पतिः॥ब्रूहि यत् करणीयं स्यान्मया ते लक्ष्मि
वर्द्धन ॥ ५७ ॥ बाढं शृणु त्वं हेमाभ पद्मयोने वचो मम ॥ प्रसादो यस्त्वया लब्ध ईश्वरात् पुत्रलिप्सया ॥ ५८ ॥ तन्तथा सफलं कृत्वा मत्तोऽ
भूदनृणो भवान् ॥ चतुर्व्विधानि भूतानि सृज त्वं विसृजस्व वा ॥ ५९ ॥ अवाप्य संज्ञाङ्गोविन्दात् पद्मयोनिः पितामहः ॥ प्रजाः स्रष्टुमनास्तेपे तप
उग्रं ततो महत् ॥ ६० ॥ तस्यैवन्तप्यमानस्य न किञ्चित्समवर्त्तत ॥ ततो दीर्घेण कालेन दुःखात् क्रोधो व्यवर्द्धत ॥ ६१ ॥ सक्रोधाविष्टनेत्राभ्या

मपतन्नश्रुबिन्दवः ॥ ततस्तेभ्योऽश्रुबिन्दुभ्यो वातपित्तकफात्मकाः ॥ ६२ ॥ महाभागा महासत्त्वाः स्वस्तिकैरभ्यलङ्कृताः ॥ प्रकीर्णकेशाः सर्पास्ते प्रादुर्भूता महाविषाः ॥ ६३ ॥ सर्पास्तथाग्रजान् दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिन्दत ॥ अहो धिक् तपसा मह्यं फलमीदृशकं यदि ॥ लोकवैनाशिकी जज्ञे आदावेव प्रजा मम ॥ ६४ ॥ तस्य तीव्राभवन्मूर्च्छा क्रोधामर्षसमुद्भवा ॥ मूर्च्छाभितापेन तदा जहौ प्राणान् प्रजापतिः ॥ ६५ ॥ तस्याप्रतिमवीर्य्यस्य देहात् कारुण्यपूर्वकम् ॥ आत्मैकादश ते रुद्राः प्रोद्भूता रुदतस्तथा ॥ रोदनात् खलु रुद्रास्ते रुद्रत्वं तेन तेषु तत् ॥ ६६ ॥ ये रुद्राः खलु ते प्राणा ये प्राणास्ते तदात्मकाः ॥ प्राणाः प्राणभृतां ज्ञेयाः सर्व्वभूतेष्ववस्थिताः ॥ ६७ ॥ अत्युग्रस्य महत्त्वस्य साधुना चरितस्य च ॥ तस्य प्राणान् ददौ भूयस्त्रिशूली नीललोहितः ॥ ललाटात् पद्मयोनेस्तु प्रभुरेकादशात्मकः ॥ ६८ ॥ ब्रह्मणः सोऽददात् प्राणानात्मजः स तदा प्रभुः ॥ प्रहृष्टवदनो रुद्रः किंचित् प्रत्यागतासवम् ॥ अभ्यभाषत्तदा देवो ब्रह्माणं परमं वचः ॥ ६९ ॥ उपयाचस्व मां ब्रह्मन् स्मर्त्तुमर्हसि चात्मनः ॥ मां च वेत्थात्मजं रुद्रं प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥७०॥ श्रुत्वा त्विदं वचस्तस्य प्रभूतञ्च मनोगतम् ॥ पितामहः प्रसन्नात्मा नेत्रे फुल्लाम्बुजप्रभैः ॥ ७१ ॥ ततः प्रत्यागतप्राणः स्निग्धगम्भीरया गिरा ॥ उवाच भगवान् ब्रह्मा शुद्धजाम्बूनदप्रभः ॥ ७२ ॥ भो भो वद महाभाग आनन्दयसि मे मनः ॥ को भवान् विश्वभूतिस्त्वं स्थित एकादशात्मकः ॥ ७३ ॥ एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणाऽनन्ततेजसा ॥ ततः प्रत्यवदद्रुद्रो ह्यभिवाद्यात्मजैः सह ॥ ७४ ॥ यत्ते वरमहं ब्रह्मन् याचितो विष्णुना सह ॥ पुत्रो मे भव देवेति त्वत्तुल्यो वापि धूर्वहः ॥७५॥ लोकेषु विश्रुतैः कार्य्यं सर्वैर्विश्वात्मसम्भवैः ॥ विषादन्त्यज देवेश लोकांस्त्वं स्रष्टुमर्हसि ॥ ७६ ॥ एवं स भगवानुक्तो ब्रह्मा प्रीतमनाभवत् ॥ रुद्रं प्रत्यवदद्भूयो लोकान्ते नीललोहितम् ॥ ७७ ॥ साहाय्यं मम कार्य्यार्थं प्रजाः सृज मया सह ॥ बीजी त्वं सर्व्वभूतानां तत्प्रपन्नस्तथा भव ॥ बाढमित्येव तां वाणीं प्रतिजग्राह शङ्करः ॥ ७८ ॥ ततः स भगवान् ब्रह्मा कृष्णाजिनविभूषितः ॥ मनोऽग्रे सोऽसृजद्देवो भूतानां धारणां ततः ॥ जिह्वां सरस्वतीञ्चैव ततस्तां विश्वरूपिणीम् ॥७९॥ भृगुमङ्गिरसं दक्षं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥ वसिष्ठञ्च महातेजाः ससृजे सप्त मानसान् ॥८०॥ पुत्रानात्मसमानन्यान् सोऽसृजद्विश्वसम्भवान् ॥ तेषां भूयोऽनुमार्गेण गावो वक्राद्विजज्ञिरे ॥ ८१ ॥ ओङ्कारप्रमुखान् वेदानभिमान्याश्च देवताः ॥ एवमेतान् यथाप्रोक्तान् ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ८२ ॥ दक्षाद्यान् मानसान् पुत्रान् प्रोवाच भगवान् प्रभुः ॥ प्रजाः सृजत भद्रं वो रुद्रेण सह धीमता ॥ ८३ ॥ अनुगम्य महात्मानं प्रजानां पतयस्तदा ॥ वयमिच्छामहे देव प्रजाः स्रष्टुं त्वया सह ॥ ब्रह्मणस्त्वेष सन्देशस्तव चैव महेश्वर ॥ ८४ ॥ तैरेवमुक्तो भगवान् रुद्रः प्रोवाच तान् प्रभुः ॥ ब्रह्मणश्चात्मजा मह्यं प्राणान् गृह्य च वै सुराः ॥ ८५ ॥

कृत्वाग्रजाग्रजानेतान् ब्राह्मणानात्मजान्मम ॥ ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तान् सप्तलोकान्ममात्मकान् ॥ भवन्तः स्रष्टुमर्हन्ति वचनान्मम स्वस्ति वः॥ ८६ ॥
तेनैवमुक्ताः प्रत्यूचुः रुद्रमाद्यन्त्रिशूलिनम् ॥ यथाज्ञापयसे देव तथा तद्वै भविष्यति ॥ ८७ ॥ अनुमान्य महादेवं प्रजानां पतयस्तदा ॥ ऊचुर्दक्षं महा
त्मानं भवान् श्रेष्ठः प्रजापतिः ॥ त्वां पुरस्कृत्य भद्रन्ते प्रजाः स्रक्ष्यामहे वयम् ॥८८॥ एवमस्त्विति वै दक्षः प्रत्यपद्यत भाषितम् ॥ तैः सह स्रष्टुमारेभे
प्रजाकामः प्रजापतिः ॥ सर्गस्थिते ततः स्थाणौ ब्रह्मा सर्गमथासृजत् ॥ ८९ ॥ अथास्य सप्तमेऽतीते कल्पे वै सम्बभूवतुः ॥ ऋभुः सनत्कुमारश्च तपो
लोकनिवासिनौ ॥ ततो महर्षीनन्यान् स मानसानसृजत् प्रभुः ॥ ९० ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते मधुकैटभोत्पत्तिविनाशवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽ
ध्यायः ॥ २५ ॥ सूत उवाच ॥ अहो विस्मयनीयानि रहस्यानि महामते ॥ त्वयोक्तानि यथातत्त्वं लोकानुग्रहकारणात् ॥ १ ॥ तत्र वै संशयो मह्यमव
तारेषु शूलिनः ॥ किं कारणं महादेवः कलिं प्राप्य सुदारुणम् ॥ हित्वा युगानि पूर्व्वाणि अवतारं करोति वै॥२॥अस्मिन्मन्वन्तरे चैव प्राप्ते वैवस्वते प्रभो ॥
अवतारं कथञ्चक्रे एतदिच्छामि वेदितुम् ॥ ३ ॥ न तेऽस्त्यविदितं किञ्चिदिह लोके परत्र च ॥ भक्तानामुपदेशार्थं विनयात् पृच्छतो मम ॥ कथय
स्व महाप्राज्ञ यदि श्राव्यं महामतम् ॥ ४ ॥ लोमश उवाच ॥ एवं पृष्टोऽथ भगवान् वायुर्लोकहिते रतः ॥ इदमाह महातेजा वायुर्लोकनमस्कृतः ॥
॥ ५ ॥ एतद्गुह्यतमं लोके यन्मान्त्वं परिपृच्छसि ॥ तत्सर्व्वं शृणु गाधेय उच्यमानं यथाक्रमम् ॥ ६ ॥ पुरा ह्येकार्णवे वृत्ते दिव्ये वर्षसहस्रके ॥
स्रष्टुकामः प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुःखितः ॥ ७ ॥ तस्य चिन्तयमानस्य प्रादुर्भूतः कुमारकः ॥ दिव्यगन्धः सुधापेक्षी दिव्यां श्रुतिमुदीरयन् ॥ ८ ॥
अशब्दस्पर्शरूपान्तामगन्धां रसवर्ज्जिताम् ॥ श्रुतिं ह्युदीरयन् देवो यामविन्दच्चतुर्म्मुखः ॥ ९ ॥ ततस्तु ध्यानसंयुक्तस्तप आस्थाय भैरवम् ॥ चिन्त
यामास मनसा त्रितयं कोऽन्वयन्त्विति ॥ १० ॥ तस्य चिन्तयमानस्य प्रादुर्भूतं तदक्षरम् ॥ अशब्दस्पर्शरूपञ्च रसगन्धविवर्ज्जितम् ॥ ११ ॥ अथोत्तमं
स लोकेषु स्वमूर्त्तिश्चापि पश्यति ॥ ध्यायन्वै स तदा देवमथैनं पश्यते पुनः ॥ १२ ॥ तं श्वेतमथ रक्तञ्च पीतं कृष्णं तदा पुनः ॥ वर्णस्थं तत्र पश्ये
त न स्त्री न च नपुंसकम् ॥ १३ ॥ तत्सर्व्वं सुचिरं ज्ञात्वा चिन्तयन् हि तदक्षरम् ॥ तस्य चिन्तयमानस्य कण्ठादुत्तिष्ठतेऽक्षरः ॥ १४ ॥ एकमात्रो
महाघोषः श्वेतवर्णः सुनिर्मलः ॥ स ओङ्कारो भवेद्वेदः अक्षरं वै महेश्वरः ॥ १५ ॥ ततश्चिन्तयमानस्य त्वक्षरं वै स्वयम्भुवः ॥ प्रादुर्भूतन्तु रक्तन्तु स
देवः प्रथमः स्मृतः ॥१६॥ ऋग्वेदं प्रथमं तस्य त्वग्निमीळे पुरोहितम् ॥ एतां दृष्ट्वा ऋचं ब्रह्मा चिन्तयामास वै पुनः ॥ तदक्षरं महातेजाः किमेतदिति
लोककृत् ॥ १७ ॥ तस्य चिन्तयमानस्य तस्मिन्नथ महेश्वरः ॥ द्विमात्रमक्षरं जज्ञे ईशित्वेन द्विमात्रिकम् ॥ १८ ॥ ततः पुनर्द्विमात्रं तु चिंतयामास

चाक्षरम् ॥ प्रादुर्भूतं च रक्तं तच्छेदने गृह्य सा यजुः ॥ १९ ॥ इषे त्वोर्ज्जेत्वा वायवस्थ देवो वः सविता पुनः ॥ ऋग्वेद एकमात्रस्तु द्विमात्रन्तु यजुः स्मृतम् ॥२०॥ ततो वेदं द्विमात्रं तु दृष्ट्वा चैव तदक्षरम् ॥ द्विमात्रं चिन्तयन् ब्रह्मा त्वक्षरं पुनरीश्वरः ॥ २१॥ तस्य चिन्तयमानस्य चोङ्कारः सम्बभूव ह ॥ ततस्तदक्षरं ब्रह्मा ओङ्कारं समचिन्तयत् ॥ २२ ॥ अथापश्यत्ततः पीतामृचं चैव समुत्थिताम् ॥ अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये ॥२३॥ ततस्तु स महातेजा दृष्ट्वा वेदानुपस्थितान् ॥ चिन्तयित्वा च भगवांस्त्रिसन्ध्यं यत्त्रिरक्षरम् ॥ त्रिवर्णं यत् त्रिषवणमोङ्कारं ब्रह्मसंज्ञितम् ॥२४॥ ततश्चैव त्रिसंयोगात् त्रिवर्णं तु तदक्षरम् ॥ लक्ष्यालक्ष्यप्रदृश्यं च सहितं त्रिदिवं त्रिकम् ॥ २५ ॥ त्रिमात्रं त्रिपदं चैव त्रियोगं चैव शाश्वतम् ॥ तस्मात्तदक्षरं ब्रह्मा चिन्तयामास वै प्रभुः ॥ २६ ॥ तस्मात्तदक्षरं सोऽथ ब्रह्मरूपं स्वयम्भुवः ॥ चतुर्दशमुखं देवं पश्यते दीप्ततेजसम् ॥ तमोङ्कारं स कृत्वादौ विज्ञेयः स स्वयम्भुवः ॥ २७ ॥ चतुर्मुखमुखात्तस्मादजायन्त चतुर्दश ॥ नानावर्णाः स्वरा दिव्यमाद्यं तच्च तदक्षरम् ॥ तस्मात् त्रिषष्टिवर्णा वै अकारप्रभवाः स्मृताः ॥ २८ ॥ ततः साधारणार्थाय वर्णानान्तु स्वयम्भुवः ॥ अकाररूप आदौ तु स्थितः स प्रथमः स्वरः ॥ ॥ २९ ॥ ततस्तेभ्यः स्वरेभ्यस्तु चतुर्दश महामुखाः ॥ मनवः सम्प्रसूयन्ते दिव्या मन्वन्तरे स्वराः ॥ ३० ॥ चतुर्दशमुखो यश्च अकारो ब्रह्मसंज्ञितः॥ ब्रह्मकल्पः समाख्यातः सर्ववर्णः प्रजापतिः ॥ ३१ ॥ मुखात्तु प्रथमात्तस्य मनुः स्वायम्भुवः स्मृतः ॥ अकारस्तु स विज्ञेयः श्वेतवर्णः स्वयम्भुवः॥३२॥ द्वितीयात्तु मुखात्तस्य आकारो वै मुखः स्मृतः ॥ नाम्ना स्वारोचिषो नाम वर्णः पाण्डुर उच्यते ॥ ३३ ॥ तृतीयात्तु मुखात्तस्य इकारो यजुषां वरः ॥ यजुर्मयः स चादित्यो यजुर्वेदो यतः स्मृतः ॥ ३४ ॥ ईकारः स मनुर्ज्ञेयो रक्तवर्णः प्रतापवान् ॥ ततः क्षत्रं प्रवर्त्तन्त तस्माद्रक्तस्तु क्षत्रियः ॥ ३५ ॥ चतुर्थात्तु मुखात्तस्य उकारः स्वर उच्यते ॥ वर्णतस्तु स्मृतस्ताम्रः स मनुस्तामसः स्मृतः ॥ ३६ ॥ पञ्चमात्तु मुखात्तस्य ऊकारो नाम जायते ॥ पीतको वर्णतश्चैव मनुश्चापि चरिष्णवः॥३७॥ततः षष्ठान्मुखात्तस्य ओङ्कारः कापिलः स्मृतः॥वरिष्ठश्च ततः षष्ठो विजयः स महातपाः ॥३८॥ सप्तमात्तु मुखात्तस्य ततो वैवस्वतो मनुः॥ऋकारश्च स्वरस्तत्र वर्णतः कृष्ण उच्यते॥३९॥अष्टमात्तु मुखात्तस्य ॠकारः श्यामवर्णतः॥ श्यामाक्षरसवर्णश्च ततः सावर्णिरुच्यते॥४०॥मुखात्तु नवमात्तस्य ऌकारो नवमः स्मृतः ॥ धूम्रो वै वर्णतश्चापि धूम्रश्च मनुरुच्यते॥४१॥दशमात्तु मुखात्तस्य ॡकारः प्रभुरुच्यते ॥ समश्चैव सवर्णश्च बभौ सावर्णिको मनुः ॥ ४२ ॥ मुखादेकादशात्तस्य एकारो मनुरुच्यते ॥ पिशङ्गो वर्णतश्चैव पिशङ्गो वर्ण उच्यते ॥ ४३ ॥ द्वादशात्तु मुखात्तस्य ऐकारो नाम उच्यते ॥ पिशङ्गो भस्मवर्णाभः पिशङ्गो मनुरुच्यते ॥ ४४ ॥ त्रयोदशान्मुखात्तस्य ओकारो वर्ण उच्यते ॥

पञ्चवर्णसमायुक्त ओकारो वर्ण उत्तमः॥४५॥चतुर्दशमुखात्तस्य औकारो वर्ण उच्यते ॥ कर्बुरो वर्णतश्चैव मनुः सावर्णिरुच्यते ॥४६॥ इत्येते मनवश्चैव स्वरा वर्णाश्च कल्पतः ॥ विज्ञेया हि यथातत्त्वं स्वरतो वर्णतस्तथा ॥४७॥ परस्परसवर्णाश्च स्वरा यस्माद् वृता हि वै ॥ तस्मात्तेषां सवर्णत्वादन्वयस्तु प्रकीर्तितः ॥ ४८ ॥ सवर्णाः सदृशाश्चैव यस्माज्जातास्तु कल्पजाः ॥ तस्मात् प्रजानां लोकेऽस्मिन् सवर्णाः सर्वसन्धयः ॥ ४९ ॥ भविष्यन्ति यथाशैलं वर्णाश्च न्यायतोऽर्थतः॥अभ्यासात्सन्धयश्चैव तस्माज्ज्ञेयाः स्वरा इति ॥५०॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते स्वरोत्पत्तिर्नामषड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ अस्मिन् कल्पे त्वया चोक्तः प्रादुर्भावो महात्मनः ॥ महादेवस्य रुद्रस्य साधकैर्मुनिभिः सह ॥ १ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ उत्पत्तिरादिसर्गस्य मया प्रोक्ता समासतः ॥ विस्तरेणास्य वक्ष्यामि नामानि तनुभिः सह ॥ २ ॥ पत्नीषु जनयामास महादेवः सुतान् बहून् ॥ कल्पेऽष्टमे व्यतीते तु यस्मिन् कल्पे तु तच्छृणु ॥ ३ ॥ कल्पादौ चात्मनस्तुल्यं सुतं प्रध्यायतः प्रभोः ॥ प्रादुरासीत्ततोऽङ्केऽस्य कुमारो नीललोहितः ॥ तं दधे सुस्वरं घोरं निर्दहन्निव तेजसा ॥ ४ ॥ दृष्ट्वा रुदन्तं सहसा कुमारं नीललोहितम् ॥ किं रोदिषि कुमारेति ब्रह्मा तं प्रत्यभाषत ॥५॥ सोऽब्रवीद्देहि मे नाम प्रथमं वै पितामह ॥ रुद्रस्त्वं देव नाम्नासि इत्युक्तः सोऽरुदत्पुनः ॥ ६ ॥ किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं पुनरब्रवीत् ॥ नाम देहि द्वितीयं मे इत्युवाच स्वयम्भुवम् ॥ ७ ॥ भवस्त्वं देव नाम्नासि इत्युक्तः सोऽरुदत्पुनः ॥ किं रोदिषीति तं ब्रह्मा प्रत्युवाचाथ शङ्करम् ॥ ८ ॥ तृतीयं देहि मे नाम इत्युक्तः प्रत्युवाच तम् ॥ शिवस्त्वं देव नाम्नासि इत्युक्तः सोऽरुदत्पुनः ॥ ९ ॥ किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं पुनरब्रवीत् ॥ चतुर्थं देहि मे नाम इत्युवाच स्वयम्भुवम् ॥ १० ॥ पशूनां त्वं पतिर्देव इत्युक्तः सोऽरुदत्पुनः ॥ किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं पुनरब्रवीत् ॥११॥ पञ्चमं देहि मे नाम इत्युक्तः प्रत्युवाच तम् ॥ ईशस्त्वं देव नाम्नासि इत्युक्तः सोऽरुदत्पुनः ॥ १२ ॥ किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं पुनरब्रवीत् ॥ षष्ठं मे नाम देहीति इत्युवाचाथ तं प्रभुम् ॥ १३ ॥ भीमस्त्वं देव नाम्नासि इत्युक्तः सोऽरुदत्पुनः॥ किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं पुनरब्रवीत् ॥ १४ ॥ सप्तमं देहि मे नाम इत्युक्तः प्रत्युवाच तम् ॥ उग्रस्त्वं देव नाम्नासि इत्युक्तः सोऽरुदत्पुनः ॥ १५ ॥ किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं पुनरब्रवीत् ॥ अष्टमं देहि मे नाम त्वं विभो पुनरब्रवीत् ॥ महादेवस्तु नाम्नासि इत्युक्तो विरराम ह ॥१६॥ लब्ध्वा नामानि चैतानि ब्रह्मणो नीललोहितः ॥ प्रोवाच नाम्नामेतेषां भूतानि प्रदिशेति ह ॥ १७ ॥ ततोऽभिसृष्टास्तनव एषां नाम्नां स्वयम्भुवा ॥ सूर्य्यो मही जलं वह्निर्वायुराकाशमेव च ॥ १८ ॥ दीक्षितो ब्राह्मणश्चन्द्र इत्येते ब्रह्मधातवः ॥ तेषु पूज्यश्च वन्द्यः स्याद्रुद्रस्तान्न हिनस्ति वै ॥ १९ ॥ ततोऽब्रवीत् पुनर्ब्रह्मा तं देवं नीललोहितम् ॥

द्वितीयं नामधेयन्ते मया प्रोक्तं भवेति यत् ॥ एतस्यापो द्वितीया ते तनुर्नाम्ना भविष्यति ॥ २० ॥ इत्युक्ते यत् स्थिरं तस्य शरीरस्थं रसात्मकम् ॥ तद्विवेश ततस्तोयं तस्मादापो भवः स्मृतः ॥२१॥ यस्माद्भवन्ति भूतानि ताभ्यस्ता भावयन्ति च ॥ भवनाद्भावनाच्चैव भूतानां सम्भवः स्मृतः ॥ २२ ॥ तस्मान्मूत्रं पुरीषञ्च नाप्सु कुर्व्वीत सर्वदा ॥ न स्नायेदप्सु नग्नश्च न निष्ठीवेत् कदाचन ॥ २३ ॥ मैथुनं नैव सेवेत शिरःस्नानञ्च वर्जयेत् ॥ न प्रीतः परिचक्षीत वहन्न संस्थितोपि वा ॥ २४ ॥ मेध्यामेध्यशरीरत्वान्नैव दुष्यन्त्यपः क्वचित् ॥ विवर्णरसगन्धाश्च अल्पाश्च परिवर्जयेत् ॥ २५ ॥ अपां योनिः समुद्रश्च तस्मात्तं कामयन्ति ताः ॥ मेध्याश्चैवामृताश्चैव भवन्ति प्राप्य सागरम् ॥ २६ ॥ तस्मादपो न रुन्धीत समुद्रं कामयन्ति ताः ॥ न हिनस्ति भवो देवः सदैवं योऽप्सु वर्त्तते ॥ २७ ॥ ततोऽब्रवीत् पुनर्ब्रह्मा तं देवं कृष्णलोहितम् ॥ शर्व्वस्त्वमिति यन्नाम तृतीयं समुदाहृतम् ॥ तस्य भूमिस्तृतीया तु तनुर्नाम्ना भवत्वियम् ॥ २८ ॥ इत्युक्ते यत् स्थिरं तस्य शरीरस्यास्थिसंज्ञितम्॥तद्विवेश ततो भूमिस्तस्माद्भूः शर्व उच्यते ॥ २९ ॥ तस्मात् कुर्व्वीत नो विद्वान् पुरीषम्मूत्रमेव वा ॥ न च्छायायां न सोपाने स्वच्छायां नापि मेहयेत् ॥ ३० ॥ शिरः प्रावृत्य कुर्व्वीत अन्तर्द्धाय तृणैर्महीम् ॥ य एवं वर्त्तते भूमौ तं शर्व्वो न हिनस्ति वै ॥३१॥ ततोऽब्रवीत्पुनर्ब्रह्मा तं देवं नीललोहितम् ॥ ईशान इति यत् प्रोक्तं चतुर्थं नाम ते मया॥३२॥ चतुर्थस्य चतुर्थी स्याद्वायुर्नाम्ना तनुस्तव ॥ इत्युक्ते यच्छरीरस्थं पञ्चधा प्राणसंज्ञितम् ॥ ३३ ॥ विवेश तं तदा वायुरीशानो वायुरुच्यते ॥ तस्मादेनं परिवदेदायतं वायुमीश्वरम् ॥ एवं युक्तमथेशानो नैव देवो हिनस्ति तम् ॥ ३४ ॥ ततोऽब्रवीत् पुनर्ब्रह्मा तं देवं धूम्रलोहितम् ॥ यत्ते पशुपतीत्युक्तं मया नामेह पञ्चमम् ॥ पञ्चमी पञ्चमस्यैव तनुर्नाम्नाऽग्निरस्तु ते ॥ ३५ ॥ इत्युक्ते यच्छरीरस्थं तेजस्तस्योपसंज्ञितम् ॥ विवेश तत्तदा ह्यग्निस्तस्मात्पशुपतिः पतिः ॥ ३६ ॥ चन्द्रमास्तु स्मृतः सोमः तस्यात्मा ह्योषधीगणः ॥ एवं यो वर्त्तते विद्वान् सदा पर्व्वणि पर्व्वणि ॥ न हन्ति तं महादेव एवं वन्देत तं प्रभुम् ॥ ३७ ॥ गोपायति दिवादित्यः प्रजा नक्तन्तु चन्द्रमाः ॥ एकरात्रे समेयातां सूर्य्याचन्द्रमसावुभौ ॥ अमावास्यानिशायान्तु तस्यां युक्तः सदा वसेत् ॥ ३८ ॥ तत्राविष्टं सर्वमिदन्तनुभिर्नामभिः सह ॥ एकाकी यश्चरत्येषः सूर्य्योऽसौ चन्द्र उच्यते ॥ ३९ ॥ सूर्य्यस्य यत् प्रकाशेन वीक्ष्यन्ते चक्षुषा प्रजाः ॥ शुक्रात्मा संस्थितो रुद्रः पिबत्यम्भो गभस्तिभिः ॥ ४० ॥ अद्यते पीयते चैवाप्यन्नपानात्मकानि या ॥ तनुरात्मभवा सा वै देहेष्वेवोपचीयते ॥ ४१ ॥ यया धत्ते प्रजाः सर्व्वाः स्थिरभूतेन चेतसा ॥ पार्थिवी सा तनुस्तस्य शार्व्वी धारयति प्रजाः ॥ ४२ ॥ यावत् स्थिता शरीरेषु भूतानां प्राणवृत्तिभिः ॥ वाय्वात्मिका तु ऐशानी सा

प्राणाः प्राणिना सह ॥ ४३ ॥ पीताशितानि पचाति भूतानां जठरेषु या ॥ ततः पाशुपती तस्य पाचिका शक्तिरुच्यते ॥ ४४ ॥ यानीह सुषिराणि
स्युर्देहेष्वन्तर्गतानि वै ॥ वायोः सञ्चरणार्थाय सा भीमा चोच्यते तनुः ॥ ४५ ॥ वैतानदीक्षितानां तु या स्थितिर्ब्रह्मवादिनाम् ॥ तनुरुग्रात्मिका सा तु
तेनोग्रो दीक्षितः स्मृतः ॥ ४६ ॥ यत्तु सङ्कल्पकं तस्य प्रजास्विह समं स्थितम् ॥ सा तनुर्म्मानसी तस्य चन्द्रमाः प्राणिषु स्थितः ॥ ४७ ॥ नवो न
वो भवति हि जायमानः पुनः पुनः ॥ नीयते यो यथाकामं विबुधैः पितृभिः सह ॥ महादेवोऽमृतात्माऽसौ ह्यम्मयश्चन्द्रमाः स्मृतः ॥ ४८ ॥ तस्य
या प्रथमा नाम्ना तनू रौद्री प्रकीर्त्तिता॥ पत्नी सुवर्चला तस्य पुत्रस्तस्याः शनैश्चरः ॥ ४९ ॥ भवस्य या द्वितीया तु तनुरापः स्मृता तु वै ॥ तस्यो
षाऽत्र स्मृता पत्नी पुत्रश्चाप्युशना स्मृत ॥ ५० ॥ शर्वस्य या तृतीया तु नाम भूमिस्तनुः स्मृता ॥ पत्नी तस्य विकेशीति पुत्रश्चाङ्गारकः स्मृतः ॥
॥ ५१ ॥ ईशानस्य चतुर्थस्य स्वर्गतस्य च या तनुः ॥ तस्य पत्नी शिवा नाम पुत्रश्चास्य मनोजवः ॥ ५२ ॥ नाम्ना पशुपतेर्या तु तनुरग्निर्द्विजैः स्मृ
ता ॥ तस्य पत्नी स्मृता स्वाहा स्कन्दश्चापि सुतः स्मृतः ॥ ५३ ॥ नाम्ना षष्ठस्य या भीमा तनुराकाश उच्यते ॥ दिशः पत्न्यः स्मृतास्तस्य
स्वर्गश्चास्य सुतः स्मृतः ॥ ५४ ॥ उग्रा तनुः सप्तमी या दीक्षितैर्ब्राह्मणैः स्मृता ॥ दीक्षा पत्नी स्मृता तस्य सन्तानः पुत्र उच्यते ॥ ५५ ॥ नाम्नाऽष्टम
स्य महतस्तनुर्या चन्द्रमाः स्मृतः ॥ पत्नी तु रोहिणी तस्य पुत्रश्चास्य बुधः स्मृतः ॥५६॥ इत्येतास्तनवस्तस्य नामभिः परिकीर्त्तिताः ॥ तास्तु वन्द्या
नमस्याश्च प्रतिनाम तनूषु वै ॥५७॥ भक्तेः सूर्येऽप्सु पृथिव्यां वाय्वग्निव्योमदीक्षिते ॥ तथा च वै चन्द्रमसि तनुभिर्नामभिः सह ॥ प्रजावानेति सायुज्य
मीश्वरस्य नरो हि सः ॥५८॥ इत्येतद्वो मयाख्यातं गुह्यं भीमस्य तद्यशः ॥ शन्नोऽस्तु द्विपदे नित्यं शन्नोऽस्तु च चतुष्पदे ॥५९॥ एतत् प्रोक्तं निदानं
वस्तनूनां नामभिः सह॥महादेवस्य देवस्य भृगोस्तु शृणुत प्रजाः ॥ ६० ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते महादेवतनुवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः२७॥
॥ सूत उवाच ॥ ॥ भृगोः ख्यातिर्विजज्ञेऽथ ईश्वरौ सुखदुःखयोः॥ शुभाशुभप्रदातारौ सर्वप्राणभृतामिह ॥ देवौ धाताविधातारौ मन्वन्तरविचारिणौ॥
॥ १ ॥ तयोर्ज्येष्ठा तु भगिनी देवी श्रीर्लोकभाविनी ॥ सा तु नारायणं देवं पतिमासाद्य शोभनम् ॥ नारायणात्मजौ साध्वी बलोत्साहौ व्यजायत॥२॥
तस्यास्तु मानसाः पुत्रा ये चान्ये दिव्यचारिणः ॥ ये वहन्ति विमानानि देवानां पुण्यकर्म्मणाम् ॥ ३ ॥ द्वे तु कन्ये स्मृते भार्य्ये विधातुर्धातुरेव ॥ ३९ ॥
च ॥ आयतिर्नियतिश्चैव तयोः पुत्रौ दृढव्रतौ ॥ ४ ॥ पाण्डुश्चैव मृकण्डुश्च ब्रह्मकोशौ सनातनौ ॥ मनस्विन्यां मृकण्डोश्च मार्कण्डेयो बभूव ह॥ ५ ॥
सुतो वेदशिरास्तस्य मूर्द्धन्यायामजायत ॥ पीवर्य्यां वेदशिरसः पुत्रा वंशकराः स्मृताः॥ मार्कण्डेया इतिख्याता ऋषयो वेदपारगाः ॥ ६ ॥ पाण्डोश्च

पुण्डरीकायां द्युतिमानात्मजोऽभवत् ॥ उत्पन्नौ द्युतिमन्तश्च सृजवानश्च तावुभौ ॥ तयोः पुत्राश्च पौत्राश्च भार्गवाणां परस्परम् ॥ स्वायम्भुवेऽन्तरेऽतीते मरीचेः शृणुत प्रजाः ॥ ७ ॥ पत्नी मरीचेः सम्भूतिर्विजज्ञे सात्मसम्भवम् ॥ प्रजायते पूर्णमासं कन्याश्चेमा निबोधत ॥ कृष्टिः पुष्टिस्त्विषा चैव तथा चापचितिः शुभा ॥ ८ ॥ पूर्णमासः सरस्वत्यां द्वौ पुत्रावुदपादयत् ॥ विरजश्चैव धर्मिष्ठं पर्व्वसश्चैव तावुभौ ॥ ९ ॥ विरजस्यात्मजो विद्वान् सुधामा नाम विश्रुतः ॥ सुधामसुतवैराजः प्राच्यान्दिशि समाश्रितः ॥ १० ॥ लोकपालः सुधर्म्मात्मा गौरीपुत्रः प्रतापवान् ॥ पर्वसः सर्वगणानाम्प्रविष्टः स महायशाः ॥ ११ ॥ पर्वसः पर्वसायान्तु जनयामास वै सुतौ ॥ यज्ञवामञ्च श्रीमन्तं सुतं काश्यपमेव च ॥ तयोर्गोत्रकरौ पुत्रौ तौ जातौ धर्म्मनिश्चितौ ॥ १२ ॥ स्मृतिश्चाङ्गिरसः पत्नी जज्ञे तावात्मसम्भवौ ॥ पुत्रौ कन्याश्चतस्रश्च पुण्यास्ता लोकविश्रुताः ॥ १३ ॥ सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ॥ तथैव भरताग्निश्च कीर्त्तिमन्तश्च तावुभौ ॥ १४ ॥ अग्नेः पुत्रन्तु पर्जन्यं संहूती सुषुवे प्रभुम् ॥ हिरण्यरोमा पर्जन्यो मारीच्यामुदपादयत् ॥ आभूतसंप्लवस्थायी लोकपालः स वै स्मृतः ॥ १५ ॥ जज्ञे कीर्तिमतश्चापि धेनुका तावकल्मषौ ॥ वरिष्ठं धृतिमन्तश्चाप्युभावङ्गिरसां वरौ ॥ १६ ॥ तयोः पुत्राश्च पौत्राश्च येऽतीता वै सहस्रशः ॥ अनसूयापि जज्ञे तान् पञ्चात्रेयानकल्मषान् ॥ १७ ॥ कन्याश्चैव श्रुतिं नाम माता शङ्खपदस्य या ॥ कर्दमस्य तु या पत्नी पुलहस्य प्रजापतेः ॥ १८ ॥ सत्यनेत्रश्च हव्यश्च आपोमूर्तिः शनीश्वरः ॥ सोमश्च पञ्चमस्तेषामासीत् स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ यामेऽतीते सहातीताः पञ्चात्रेयाः प्रकीर्तिताः ॥ १९ ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च ह्यत्रिणा वै महात्मना ॥ स्वायम्भुवेऽन्तरे यामे शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २० ॥ प्रीत्यां पुलस्त्यभार्य्यायां दत्तालिस्तत्सुतोऽभवत् ॥ पूर्वजन्मनि सोगस्त्यः स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ मध्यमो देवबाहुश्च विनीतो नाम ते त्रयः ॥ २१ ॥ स्वसा यवीयसी तेषां सद्वती नाम विश्रुता ॥ पर्जन्यजननी शुभ्रा पत्नी त्वग्नेः स्मृता शुभा ॥२२॥ पौलस्त्यस्य ऋषेश्चापि प्रीतिपुत्रस्य धीमतः ॥ दत्तालेः सुषुवे पत्नी सुजङ्घादीन् बहून् सुतान् ॥ पौलस्त्या इति विख्याताः स्मृताः स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ २३ ॥ क्षमा तु सुषुवे पुत्रान् पुलहस्य प्रजापतेः ॥ ते चाग्निवर्चसः सर्व्वे येषां कीर्तिः प्रतिष्ठिता ॥ २४ ॥ कर्दमश्चाम्बरीषश्च सहिष्णुश्चेति ते त्रयः ॥ ऋषिर्धनकपीवांश्च शुभा कन्या च पीवरी ॥ २५ ॥ कर्दमस्य श्रुतिः पत्नी आत्रेय्यजनयत्सुतान् ॥ पुत्रं शङ्खपदश्चैव कन्यां काम्यां तथैव च ॥ २६॥ स वै शङ्खपदः श्रीमान् लोकपालः प्रजापतिः ॥ दक्षिणस्यां दिशि रतः काम्यां दत्त्वा प्रियव्रते ॥ २७ ॥ काम्या प्रियव्रताल्लेभे स्वायम्भुवसमान् सुतान् ॥ दशकन्याद्वयश्चैव यैः क्षत्रं सम्प्रवर्तितम् ॥ २८ ॥ पुत्रो धनकपीवांश्च सहिष्णुर्नाम

विश्रुतः ॥ यशोधारी विजज्ञे वै कामदेवः सुमध्यमः ॥ २९ ॥ ऋतोः ऋतुसमः पुत्रो विजज्ञे सन्ततिः शुभा ॥ नैषां भार्य्यास्ति पुत्रो वा सर्व्वे ते ऊर्द्ध्व
रेतसः ॥ षष्ट्येतानि सहस्राणि वालखिल्या इति श्रुताः ॥ ३० ॥ अरुणस्याग्रतो यान्ति परिवार्य्य दिवाकरम् ॥ आभूतसंप्लवात्सर्वे पतङ्गसहचारिणः
॥ ३१॥ स्वसारौ तु यवीयस्यौ पुण्यात्मसुमती च ते ॥ पर्व्वसस्य स्नुषे ते वै पूर्णमाससुतस्य वै ॥३२॥ ऊर्जायान्तु वसिष्ठस्य पुत्रा वै सप्त जज्ञिरे ॥
ज्यायसी च स्वसा तेषां पुण्डरीका सुमध्यमा ॥ ३३ ॥ जननी सा द्युतिमतः पाण्डोस्तु महिषी प्रिया ॥ अस्यां त्विमे यवीयांसो
वासिष्ठाः सप्त विश्रुताः ॥ ३४ ॥ रजः पुत्रोऽर्द्धबाहुश्च सवनश्चाधनश्च यः ॥ सुतपाः शुक्र इत्येते सर्व्वे सप्तर्षयः स्मृताः ॥ ३५ ॥
रजसो वाप्यजनयन्मार्कण्डेयी यशस्विनी ॥ प्रतीच्यां दिशि राजन्यं केतुमन्तं प्रजापतिम्॥३६॥गोत्राणि नामभिस्तेषां वासिष्ठानां महात्मनाम्॥ स्वाय
म्भुवेन्तरेऽतीतास्त्वग्नेस्तु शृणुत प्रजाः ॥ ३७ ॥ इत्येष ऋषिसर्गस्तु सानुबन्धः प्रकीर्त्तितः ॥ विस्तरेणानुपूर्व्या चाप्यग्नेस्तु शृणुत प्रजाः ॥ ३८॥
॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते ऋषिवंशानुकीर्त्तनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ छ ॥ ॥ योऽसावग्निरभिमानी ह्यासीत् स्वायम्भुवेऽ
न्तरे ॥ ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्तस्मात्स्वाहा व्यजायत ॥ १ ॥ पावकः पवमानश्च पावमानश्च यः स्मृतः ॥ शुचिः शौरस्तु विज्ञेयः स्वाहापुत्रास्त्रयस्तु
ते ॥२॥ निर्म्मथ्य पवमानस्तु शुचिः शौरस्तु यः स्मृतः ॥ पावका वैद्युताश्चैव तेषां स्थानानि यानि वै॥ ३ ॥ पवमानात्मजश्चैव कव्यवाहन उच्यते ॥
पावकात् सहरक्षस्तु हव्यवाहः शुचेः सुतः ॥ ४ ॥ देवानां हव्यवाहोऽग्निः पितॄणां कव्यवाहनः ॥ सहरक्षोऽसुराणान्तु त्रयाणान्तु त्रयोऽग्नयः ॥ ५ ॥
एतेषां पुत्रपौत्रास्तु चत्वारिंशन्नवैव तु ॥ वक्ष्यामि नामतस्तेषां प्रविभागं पृथक् पृथक् ॥ ६ ॥ वैद्युतो लौकिकाग्निस्तु प्रथमो ब्रह्मणः सुतः ॥ ब्रह्मौदना
ग्निस्तत्पुत्रो भरतो नाम विश्रुतः ॥७॥ वैश्वानरमुखस्तस्य महः काव्यो ह्यपां रसः॥ अमृतोऽथर्वणा पूर्व्वं मथितः पुष्करोदधौ ॥ सोऽथर्व्वा लौकिका
ग्निस्तु दध्यङ्चाऽथर्वणः सुतः ॥८॥ अथर्वा तु भृगुर्ज्ञेयोऽप्यङ्गिराऽथर्वणः सुतः ॥ तस्मात् स लौकिकाग्निस्तु दध्यङ्चाऽथर्वणः सुतः ॥ ९ ॥ अथ यः
पवमानोऽग्निर्निर्म्मन्थ्यः कविभिः स्मृतः ॥ स ज्ञेयो गार्हपत्योऽग्निस्ततः पुत्रद्वयं स्मृतम् ॥ १०॥ शंस्यस्त्वाहवनीयोऽग्निर्यः स्मृतो हव्यवाहनः ॥ द्विती
यस्तु सुतः प्रोक्तः शुक्रोऽग्निर्यः प्रणीयते ॥ ११ ॥ तथा सभ्यावसथ्यौ वै शंस्यस्याग्नेः सुतावुभौ ॥ शंस्यास्तु षोडश नदीश्चकमे हव्यवाहनः॥ योऽसा 
वाहवनीयोऽग्निरभिमानी द्विजैः स्मृतः ॥ १२॥ कावेरीं कृष्णवेणीञ्च नर्मदां यमुनान्तथा॥ गोदावरीं वितस्ताञ्च चन्द्रभागामिरावतीम् ॥ १३ ॥ विपा
शां कौशिकीञ्चैव शतद्रुं सरयून्तथा ॥ सीतां सरस्वतीञ्चैव ह्लादिनीं पावनीं तथा ॥ १४ ॥ तासु षोडशधात्मानं प्रविभज्य पृथक् पृथक् ॥ आत्मानं

व्यदधात्तासु धिष्णीष्वथ बभूव सः ॥ १५ ॥ धिष्ण्यो दिव्यभिचारिण्यस्तासूत्पन्नास्तु धिष्णयः ॥ धिष्णीषु जज्ञिरे यस्माद्धिष्णयस्तेन कीर्त्तिताः ॥
॥ १६ ॥ इत्येते वै नदीपुत्रा धिष्णीष्वेव विजज्ञिरे ॥ तेषां विहरणीया ये उपस्थेयाश्च येऽग्नयः ॥ तान् शृणुध्वं समासेन कीर्त्यमानान् यथा तथा ॥
॥ १७ ॥ ऋतुः प्रवाहणोऽग्नीध्रः पुरस्ताद्धिष्णयोऽपरे ॥ विधीयन्ते यथा स्थानं सौत्येऽह्नि सवनक्रमात् ॥ १८ ॥ अनिर्देश्यान्यवाच्यानामग्नीनां शृणुत
क्रमम् ॥ सम्राडऽग्निः कृशानुर्यो द्वितीयोत्तरवेदिकः ॥ १९ ॥ सम्राडऽग्निः स्मृता ह्यष्टौ उपतिष्ठन्ति तान् द्विजाः ॥ अधस्तात्पर्षदन्यस्तु द्वितीयः
सोऽत्र दृश्यते ॥ २० ॥ प्रतद्वोचे नभो नाम चत्वारि स विभाव्यते ॥ ब्रह्मज्योतिर्वसुर्नाम ब्रह्मस्थाने स उच्यते ॥ २१ ॥ हव्यसूर्य्याग्निसंसृष्टः शामित्रे
स विभाव्यते ॥ विश्वस्याथ समुद्रोग्निर्ब्रह्मस्थाने स कीर्त्त्यते ॥ २२ ॥ ऋतुधामा च सुज्योतिरौदुम्बर्य्यां स कीर्त्त्यते ॥ ब्रह्मज्योतिर्वसुर्नाम ब्रह्मस्थाने
स उच्यते ॥ २३ ॥ अजैकपादुपस्थेयः स वै शालामुखीयकः ॥ अनुदेश्योप्यहिर्बुध्न्यः सोऽग्निर्गृहपतिः स्मृतः ॥ २४ ॥ शंस्यस्यैव सुताः सर्वे उपस्थे
या द्विजैः स्मृताः ॥ ततो विहरणीयांश्च वक्ष्याम्यष्टौ तु तत्सुतान् ॥ २५ ॥ ऋतुप्रवाहणोऽग्नीध्रस्तत्रस्था धिष्णयोऽपरे ॥ विह्रियन्ते यथास्थानं सौ
त्येऽह्नि सवनक्रमात् ॥ २६ ॥ पौत्रेयस्तु ततो ह्यग्निः स्मृतो यो हव्यवाहनः ॥ शान्तिश्चाग्निः प्रचेतास्तु द्वितीयः सत्य उच्यते ॥ २७ ॥
तथाग्निर्विश्वदेवस्तु ब्रह्मस्थाने स उच्यते ॥ अवक्षुरच्छावाकस्तु भुवः स्थाने विभाव्यते ॥ २८ ॥ उशीराग्निः सवीर्यस्तु नैष्टीयः संविभाव्यते ॥
अष्टमस्तु व्यरत्तिस्तु मार्जालीयः प्रकीर्तितः ॥ २९ ॥ धिष्ण्या विहरणीया ये सौम्येनान्येन चैव हि ॥ तयोर्यः पावको नाम स चापां गर्भ उच्यते॥३०॥
अग्निः सोऽवभृथो ज्ञेयः सम्यक् प्राप्याप्सु हूयते॥हृच्छयस्तत्सुतो ह्यग्निर्जठरे यो नृणां स्थितः ॥ ३१ ॥ मन्युमान् जाठरस्याग्नेर्विद्वानग्निः सुतः स्मृतः ॥
परस्परोच्छ्रितः सोऽग्निर्भूतानां ह विभुर्महान् ॥ ३२ ॥ पुत्रः सोऽग्नेर्मन्युमतो घोरः संवर्त्तकः स्मृतः ॥ पिबन्नपः स वसति समुद्रे वडवामुखः ॥ ३३ ॥ समुद्र
वासिनः पुत्रः सहरक्षो विभाव्यते ॥ सहरक्षसुतः क्षामो गृहाणि स दहेन्नृणाम् ॥ ३४ ॥ क्रव्यादोऽग्निः सुतस्तस्य पुरुषानत्ति यो मृतान् ॥ इत्येते पाव
कस्याग्नेः पुत्रा ह्येवं प्रकीर्त्तिताः ॥ ३५ ॥ ततः शुचेस्तु यैः सौरैर्गन्धर्वैरसुरावृतैः ॥ मथितो यस्त्वरण्यां वै सोऽग्निरग्निः समिद्ध्यते ॥ ३६ ॥ आयुर्ना
माथ भगवान् पशौ यस्तु प्रणीयते ॥ आयुषो महिमान् पुत्रः स शावान्नामतः सुतः ॥ ३७ ॥ पाकयज्ञेष्वभिमानी सोऽग्निस्तु सवनः स्मृतः ॥ पुत्रश्च
सवनस्याग्नेरद्भुतः स महायशाः ॥ ३८ ॥ विविचिस्त्वद्भुतस्यापि पुत्रोऽग्नेः स महान् स्मृतः ॥ प्रायश्चित्तेऽथ भीमानां हुतं भुङ्क्ते हविः सदा ॥ ३९ ॥
विविचेस्तु सुतो ह्यर्को योऽग्निस्तस्य सुतास्त्विमे ॥ अनीकवान् वासृजवांश्च रक्षोहा पितृकृत्तथा ॥ सुरभिर्वसुरन्नादो प्रविष्टो यश्च रुक्मवान् ॥ ४० ॥

शुचेरग्नेः प्रजा ह्येषा वह्नयस्तु चतुर्द्दश ॥ इत्येते वह्नयः प्रोक्ताः प्रणीयन्तेऽध्वरेषु ये ॥ ४१ ॥ आदिसर्गे ह्यतीता वै यामैः सह सुरोत्तमैः ॥ स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमग्नयस्तेऽभिमानिनः ॥ ४२ ॥ एते विहरणीयास्तु चेतनाचेतनेष्विह ॥ स्थानाभिमानिनो लोके प्रागासन् हव्यवाहनाः ॥ ४३ ॥ काम्यनैमित्तिकाजस्रेष्वेते कर्मस्ववस्थिताः ॥ पूर्वमन्वन्तरेऽतीते शुक्रैर्यामैः सुतैः सह ॥ देवैर्महात्मभिः पुण्यैः प्रथमस्यान्तरे मनोः ॥४४॥ इत्येतानि मयोक्तानि स्थानानि स्थानिनश्च ह ॥ तैरेव तु प्रसङ्ख्यातमतीतानागतेष्वपि ॥ ४५ ॥ मन्वन्तरेषु सर्व्वेषु लक्षणं जातवेदसाम् ॥ सर्व्वे तपस्विनो ह्येते सर्व्वे ह्यवभृथास्तथा ॥ प्रजानां पतयः सर्व्वे ज्योतिष्मन्तश्च ते स्मृताः ॥४६॥ स्वारोचिषादिषु ज्ञेयाः सावर्ण्यन्तेषु सप्तसु ॥ मन्वन्तरेषु सर्वेषु नानारूपप्रयोजनैः ॥ ४७ ॥ वर्त्तन्ते वर्त्तमानैश्च देवैरिह सहाग्नयः ॥ अनागतैः सुरैः सार्द्धं वर्त्तन्तेऽनागताग्नयः ॥ ४८ ॥ इत्येष विनयोऽग्नीनां मया प्रोक्तो यथातथम् ॥ विस्तरेणानुपूर्व्या च पितॄणां वक्ष्यते ततः ॥ ४९ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते अग्निवंशवर्णनं नामोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ब्रह्मणः सृजतः पुत्रान् पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ अम्भांसि जज्ञिरे तानि मनुष्यासुरदेवताः ॥ १ ॥ पितृवन्मन्यमानस्य जज्ञिरे पितरोऽस्य वै ॥ तेषान्निसर्गः प्रागुक्तो विस्तरस्तस्य वक्ष्यते ॥२॥ देवासुरमनुष्याणां दृष्ट्वा देवोऽभ्यभाषत ॥ पितृवन्मन्यमानस्य जज्ञिरे वोपपक्षिताः ॥३॥ मध्वादयः षड्तवस्तान् पितॄन् परिचक्षते ॥ ऋतवः पितरो देवा इत्येषा वैदिकी श्रुतिः॥४॥ मन्वन्तरेषु सर्वेषु ह्यतीतानागतेष्वपि ॥ एते स्वायम्भुवे पूर्वमुत्पन्ना ह्यन्तरे शुभे ॥५॥ अग्निष्वात्ताः स्मृता नाम्ना तथा बर्हिषदश्च वै॥अयज्वानस्तथातेषामासन् वै गृहमेधिनः॥अग्निष्वात्ताः स्मृतास्ते वै पितरोऽनाहिताग्नयः॥६॥ यज्वानस्तेषु ये ह्यासन् पितरः सोमपीथिनः॥ स्मृता बर्हिषदस्ते वै पितरस्त्वग्निहोत्रिणः ॥ ऋतवः पितरो देवाः शास्त्रेऽस्मिन्निश्चयो मतः॥७॥ मधुमाधवौ रसौ ज्ञेयौ शुचिशुक्रौ तु शुष्मिणौ॥ नभश्चैव नभस्यश्च जीवावेतावुदाहृतौ॥८॥इषश्चैव तथोर्जश्च सुधावन्तावुदाहृतौ॥सहश्चैव सहस्यश्च मन्युमन्तौ तु तौ स्मृतौ ॥तपश्चैव तपस्यश्च घोरावेतौ तु शैशिरौ॥९॥कालावस्थास्तु षट् तेषाम्मासाख्या वै व्यवस्थिताः॥त इमे ऋतवः प्रोक्ताश्चेतनाचेतनास्तु वै॥१०॥ऋतवो ब्रह्मणः पुत्रा विज्ञेयास्तेऽभिमानिनः॥ मासार्द्धमासस्थानेषु स्थानश्च ऋतवोर्त्तवाः॥११॥स्थानानां व्यतिरेकेण ज्ञेयाः स्थानाभिमानिनः॥ अहोरात्रञ्च मासाश्च ऋतवश्चायनानि च ॥ १२ ॥ संवत्सराश्च स्थानानि कालावस्थाभिमानिनः ॥ निमेषाश्च कलाः काष्ठा मुहूर्त्ता वै दिनक्षपाः॥१३॥ एतेषु स्थानिनो ये तु कालावस्थास्ववस्थिताः ॥ तन्मयत्वात्तदात्मानस्तान् वक्ष्यामि निबोधत ॥ १४ ॥ पर्व्वण्यास्तिथयः सन्ध्या पक्षा मासार्द्धसंज्ञिताः ॥ द्वावर्द्धमासौ मासस्तु द्वौ मासावृतुरुच्यते ॥१५॥ ऋतुत्रयंचायनं द्वेऽ अयने दक्षिणोत्तरे ॥ संवत्सरः सुमेकस्तु स्थानान्येतानि स्थानिनाम्॥१६॥

ऋतवः सुमेकपुत्रा विज्ञेया ह्यष्टधा तु षट् ॥ ऋतुपुत्राः स्मृताः पञ्च प्रजास्त्वार्त्तवलक्षणाः ॥ १७ ॥ यस्माच्चैवार्त्तवेयास्तु जायन्ते स्थाणुजङ्गमाः ॥ आर्त्तवाः पितरश्चैव ऋतवश्च पितामहाः ॥ १८ ॥ सुमेकात्तु प्रसूयन्ते म्रियन्ते च प्रजातयः ॥ तस्मात् स्मृतः प्रजानां वै सुमेकः प्रपितामहः ॥१९॥ स्थानेषु स्थानिनो ह्येते स्थानात्मानः प्रकीर्त्तिताः ॥ तदाख्यास्तन्मयत्वाच्च तदात्मानश्च ते स्मृताः ॥ २० ॥ प्रजापतिः स्मृतो यस्तु स तु संवत्सरो मतः ॥ संवत्सरः स्मृतो ह्यग्निः ऋतमित्युच्यते द्विजैः ॥ २१ ॥ ऋतात्तु ऋतवो यस्माज्जज्ञिरे ऋतवस्ततः ॥ मासाः षडृतवो ज्ञेयास्तेषां पञ्चार्त्तवाः सुताः ॥ २२ ॥ द्विपदाश्चतुष्पदाश्चैव पक्षिसंसर्पतामपि ॥ स्थावराणां च पञ्चानां पुष्पं कालार्त्तवं स्मृतम् ॥ २३ ॥ ऋतुत्वमार्त्तवत्वञ्च पितृत्वञ्च प्रकीर्त्तितम् ॥ इत्येते पितरो ज्ञेया ऋतवश्चार्त्तवाश्च ये ॥ २४ ॥ सर्व्वभूतानि तेभ्योऽथ ऋतुकालाद्विजज्ञिरे ॥ तस्मादेतेऽपि पितर आर्त्तवा इति नः श्रुतम् ॥२५॥ मन्वन्तरेषु सर्व्वेषु स्थिताः कालाभिमानिनः ॥ स्थानाभिमानिनो ह्येते तिष्ठन्तीह प्रसंयमात् ॥२६॥ अग्निष्वात्ता बर्हिषदः पितरो द्विविधाः स्मृताः॥ जज्ञाते च पितृभ्यस्तु द्वे कन्ये लोकविश्रुते ॥२७॥ मेना च धारिणी चैव याभ्यां विश्वमिदं धृतम् ॥ पितरस्ते निजे कन्ये धर्म्मार्थं प्रददुः शुभे ॥ त उभे ब्रह्मवादिन्यौ योगिन्यौ चैव ते उभे॥२८॥अग्निष्वात्तास्तु ये प्रोक्तास्तेषां मेना तु मानसी ॥ धारणी मानसी चैव कन्या बर्हिषदां स्मृता॥२९॥मेरोस्तु धारणीं नाम पत्न्यर्थं व्यसृजन् शुभाम्॥ पितरस्ते बर्हिषदः स्मृता ये सोमपीथिनः॥३०॥ अग्निष्वात्तास्तु तां मेनां पत्नीं हिमवते ददुः॥स्मृतास्ते वै तु दौहित्रास्तद्दौहित्रान् निबोधत ॥ ३१ ॥ मेना हिमवतः पत्नी मैनाकं सान्वसूयत ॥ गङ्गा सरिद्वरा चैव पत्नी या लवणोदधेः ॥ मैनाकस्यानुजः क्रौञ्चः क्रौञ्चद्वीपो यतः स्मृतः ॥ ३२ ॥ मेरोस्तु धारणी पत्नी दिव्यौषधिसमन्वितम् ॥ मन्दरं सुषुवे पुत्रं तिस्रः कन्याश्च विश्रुताः ॥ ३३ ॥ वेला च नियतिश्चैव तृतीया चायतिः पुनः ॥ धातुश्चैवायतिः पत्नी विधातुर्नियतिः स्मृता ॥ ३४ ॥ स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वन्तयोर्वै कीर्त्तिताः प्रजाः ॥ सुषुवे सागराद्वेला कन्यामेकामनिन्दिताम् ॥ ३५ ॥ सावर्णिना च सामुद्री पत्नी प्राचीनबर्हिषः ॥ सवर्णा साथ सामुद्री दशप्राचीनबर्हिषः ॥ सर्व्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ३६ ॥ तेषां स्वायम्भुवो दक्षः पुत्रत्वे जज्ञिवान् प्रभुः ॥ त्र्यम्बकस्याभिशापेन चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ॥ ३७ ॥ एतच्छ्रुत्वा ततः सूतमपृच्छच्छांशपायनः ॥ उत्पन्नः स कथं दक्षो ह्यभिशापाद्भवस्य तु ॥ चाक्षुषस्यान्वये पूर्व्वं तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥ ३८ ॥ इत्युक्तः कथयामास सूतो दक्षाश्रितां कथाम् ॥ शांशपायनमामन्त्र्य त्र्यम्बकाच्छापकारणम् ॥ ३९ ॥ दक्षस्यासन् सुता ह्यष्टौ कन्या याः कीर्त्तिता मया ॥ स्वेभ्यो गृहेभ्यो ह्यानाय्य ताः पिताभ्यर्च्चयद्गृहे ॥ ततस्त्वभ्यर्च्चिताः सर्व्वा न्यवसंस्ताः पितुर्गृहे ॥ ४० ॥ तासां ज्येष्ठा सती नाम पत्नी या त्र्यम्बकस्य वै ॥ ना

जुहावात्मजां तां वै दक्षो रुद्रमभिद्विषन् ॥ ४१ ॥ अकरोत्स नतिं दक्षे न कदाचिन्महेश्वरः ॥ जामाता श्वशुरे तस्मिन् स्वभावात् तेजसि स्थितः ॥ ४२ ॥ ततो ज्ञात्वा सती सर्व्वाः स्वस्रः प्राप्ताः पितुर्गृहम् ॥ जगाम साप्यनाहूता सती तत् स्वं पितुर्गृहम् ॥ ४३ ॥ ततोऽब्रवीत् सा पितरं देवी क्रोधादमर्षिता ॥ यवीयसीभ्यो ज्यायसीं किन्तु पूजामिमां प्रभो ॥ असम्मतामवज्ञाय कृतवानसि गर्हिताम् ॥ ४४ ॥ अहं ज्येष्ठा वरिष्ठा हि न त्वं सत् कर्त्तुमर्हसि ॥ एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दक्षः संरक्तलोचनः ॥ ४५ ॥ त्वन्तु श्रेष्ठा वरिष्ठा च पूज्या बाला सदा मम ॥ तासां ये चैव भर्त्तारस्ते मे बहुमताः सदा ॥ ४६ ॥ ब्रह्मिष्ठाश्च तपिष्ठाश्च महायोगाः सुधार्म्मिकाः ॥ गुणैश्चैवाधिकाः श्लाघ्याः सर्व्वे ते त्र्यम्बकात्सति ॥ ४७ ॥ वसिष्ठोऽत्रिः पुलस्त्यश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः ॥ भृगुर्मरीचिश्च तथा श्रेष्ठा जामातरो मम ॥ ४८ ॥ तस्यात्मा स च ते शर्व्वो भक्ता चासि हि तं सदा ॥ तेन त्वां न बुभूषामि प्रतिकूलो हि मे भवः ॥ ४९ ॥ इत्युवाच तदा दक्षः संप्रमूढेन चेतसा ॥ शापार्थमात्मनश्चैव ये चोक्ताः परमर्षयः ॥ ५० ॥ तथोक्ता पितरं सा वै क्रुद्धा देवीदमब्रवीत् ॥ वाङ्मनःकर्म्मभिर्य्यस्माददुष्टां मां विगर्हसे ॥ तस्मात्त्यजाम्यहन्देहमिदन्तात तवात्मजम् ॥ ५१ ॥ ततस्तेनावमानेन सती दुःखादमर्षिता ॥ अब्रवीद्वचनं देवी नमस्कृत्य महेश्वरम् ॥ ५२ ॥ यत्राहमुपपत्स्येहं पुनर्देहेन भास्वता ॥ तत्राप्यहमसंमूढा सम्भूता धार्मिकी पुनः ॥ गच्छेयं धर्म्मपत्नीत्वं त्र्यम्बकस्यैव धर्म्मतः ॥ ५३ ॥ तत्रैवाथ समासीना युक्तात्मानं समादधे ॥ धारयामास चाग्नेयीं धारणां मनसात्मनः ॥ ५४ ॥ तत आग्नेयीसमुत्थेन वायुना समुदीरितः ॥ सर्व्वाङ्गेभ्यो विनिःसृत्य वह्निर्भस्म चकार ताम् ॥ ५५ ॥ तदुपश्रुत्य निधनं सत्या देवोऽथ शूलधृक् ॥ संवादश्च तयोर्बुद्ध्वा याथातथ्येन शङ्करः ॥ दक्षस्याथ ऋषीणाञ्च चुकोप भगवान् प्रभुः ॥ ५६ ॥ यस्मादवमता दक्ष मत्कृते नाम सा सती ॥ प्रशस्ताश्चेतराः सर्व्वाः स्वसुता भर्तृभिः सह ॥ ५७ ॥ तस्माद्वैवस्वतं प्राप्य पुनरेव महर्षयः ॥ उत्पत्स्यन्ते द्वितीये वै मम यज्ञे ह्ययोनिजाः ॥ ५८ ॥ हुते वै ब्रह्मणा शुक्रे चाक्षुषस्यान्तरे मनोः ॥ अभिव्याहृत्य च ऋषीन् दक्षमभ्यगमत् पुनः ॥ ५९ ॥ भविता चाक्षुषो राजा चाक्षुषस्य समन्वये ॥ प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चैव प्रचेतसः ॥ ६० ॥ दक्ष इत्येव नाम्ना त्वं मार्षायां जनयिष्यसि ॥ कन्यायां शाखिनाञ्चैव प्राप्ते वै चाक्षुषेऽन्तरे ॥ ६१ ॥ ॥ दक्ष उवाच ॥ ॥ अहं तत्रापि ते विघ्नमाचरिष्यामि दुर्म्मते ॥ धर्म्मार्थकामयुक्तेषु कर्म्मस्विह पुनः पुनः ॥ ६२ ॥ यस्मात् त्वं मत्कृते क्रूरमृषीन् व्याहृतवानसि ॥ तस्मात्सार्द्धं सुरैर्यज्ञे न त्वां यक्ष्यन्ति वै द्विजाः ॥ ६३ ॥ हुत्वाहुतिं ततः क्रूरः अपस्त्यक्ष्यन्ति कर्म्मसु ॥ इहैव वत्स्यसि तथा दिवं हित्वा युगक्षयात् ॥ ६४ ॥ ॥ रुद्र उवाच ॥ सर्वेषामेव लोकानां भूर्लोकस्त्वादिरुच्यते ॥ तमहं धारयिष्यामि निदेशात् परमेष्ठिनः ॥ ६५ ॥

अस्यां क्षितौ वृता लोकाः सर्व्वे तिष्ठन्ति भास्कराः ॥ तानहं धारयामीह सततं न तवाज्ञया ॥ ६६ ॥ चातुर्व्वर्ण्यं हि देवानां ते चाप्येकत्र भुञ्जते ॥ नाहं तैः सह भोक्ष्यामि ततो दास्यन्ति ते पृथक् ॥ ततो देवैः स तैः सार्द्धं नेज्यते पृथगिज्यते ॥ ६७ ॥ ततोऽभिव्याहृतो दक्षो रुद्रेणामिततेजसा ॥ स्वायम्भुवेऽन्तरे त्यक्त्वा उत्पन्नो मानुषेष्विह ॥ ६८ ॥ ज्ञात्वा गृहपतिं दक्षं ज्ञानानामीश्वरं प्रभुम् ॥ दक्षो नाम महायज्ञैः सोऽयजद्दैवतैः सह ॥ ६९ ॥ अथ देवी सती या तु प्राप्ते वैवस्वतेऽन्तरे ॥ मेनायां तामुमां देवीं जनयामास शैलराट् ॥ ७० ॥ सा तु देवी सती पूर्व्वं ततः पश्चादुमाऽभवत् ॥ सहव्रता भवस्यैषा न तया मुच्यते भवः ॥ यावदिच्छति संस्थातुं प्रभुर्मन्वन्तरेष्विह ॥ ७१ ॥ मारीचं कश्यपं देवी यथादितिरनुव्रता ॥ साध्यं नारायणं श्रीस्तु मघवन्तं शची यथा ॥ ७२ ॥ विष्णुं कीर्त्ती रुचिः सूर्य्यं वसिष्ठञ्चाप्यरुन्धती ॥ नैतास्तु विजहत्येतान् भर्तॄन् देव्यः कथंचन ॥ आवर्त्तमानकल्पेषु पुनर्जायन्ति तैः सह ॥ ७३ ॥ एवं प्राचेतसो दक्षो जज्ञे वै चाक्षुषेऽन्तरे ॥ प्राचीनबर्हिषः पौत्रः पुत्रश्चैव प्रचेतसः ॥ ७४ ॥ दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मार्षायाश्च पुनर्नृपः ॥ जज्ञे रुद्राभिशापेन द्वितीयेऽस्मिन्निति श्रुतिः ॥ ७५ ॥ भृग्वादयस्तु ते सर्व्वे जज्ञिरे वै महर्षयः ॥ आद्ये त्रेतायुगे पूर्वं मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥ देवस्य महतो यज्ञे वारुणीं बिभ्रतस्तनुम् ॥ ७६ ॥ इति सानुशयो ह्यासीत्तयोर्जात्यन्तरागतः ॥ प्रजापतेस्तु दक्षस्य त्र्यम्बकस्य च धीमतः ॥ ७७ ॥ तस्मान्नानुशयः कार्य्यो वैरिष्विह कदाचन ॥ जात्यन्तरगतस्यापि भावितस्य शुभाशुभैः ॥ जन्तुं न मुञ्चति ख्यातिस्तत्र कार्य्यं विजानता ॥ ७८ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ प्राचेतसस्य दक्षस्य कथं वैवस्वतेऽन्तरे ॥ विनाशमगमत् सूत हयमेधः प्रजापतेः ॥ ७९ ॥ देव्या मृत्युं कृतं मत्वा क्रुद्धं सर्वात्मकं प्रभुम् ॥ कथं प्रासादयद्दक्षः स यज्ञः साधितः कथम् ॥ एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो ब्रूहि यथातथम् ॥ ८० ॥ ॥ सूत उवाच ॥ पुरा मेरोर्द्विजश्रेष्ठाः शृङ्गं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ज्योतिष्कं नाम सावित्रं सर्वरत्नविभूषितम् ॥ ८१ ॥ अप्रमेयमनाधृष्यं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ तस्मिन् देवो गिरिश्रेष्ठे सर्वधातुविभूषिते ॥ पर्य्यङ्क इव विभ्राजन्नुपविष्टो बभूव ह ॥ ८२ ॥ शैलराजसुता चास्य नित्यं पार्श्वस्थिताऽभवत् ॥ आदित्याश्च महात्मानो वसवश्चामितौजसः ॥ ८३ ॥ तथैव च महात्मानावश्विनौ भिषजां वरौ ॥ तथा वैश्रवणो राजा गुह्यकैः परिवारितः ॥ ८४ ॥ यक्षाणामीश्वरः श्रीमान् कैलासनिलयः प्रभुः ॥ उपासते महात्मानं उशनाच महामुनिः ॥ सनत्कुमारप्रमुखास्ते चैव परमर्षयः ॥ ८५ ॥ अङ्गिरःप्रमुखाश्चैव तथा देवर्षयोऽपरे ॥ विश्वावसुश्च गन्धर्वस्तथा नारदपर्वतौ ॥ ८६ ॥ अप्सरोगणसङ्घाश्च समाजग्मुरनेकशः ॥ ववौ शिवः सुखो वायुर्नानागन्धवहः शुचिः ॥ ८७ ॥ सर्वर्तुकुसुमोपेताः पुष्पवन्तो द्रुमास्तथा ॥ तथा विद्याधराश्चैव सिद्धाश्चैव तपोधनाः ॥ ८८ ॥ महादेवं पशुपतिं पर्य्युपासन्ति तत्र वै ॥ भूतानि च तथान्यानि नानारूपधराण्यथ ॥ ८९ ॥

राक्षसाश्च महारौद्राः पिशाचाश्च महाबलाः ॥ बहुरूपधरा हृष्टा नानाप्रहरणोद्यताः ॥ ९० ॥ देवस्यानुचरास्तत्र तस्थुर्वैश्वानरोपमाः ॥ नन्दीश्वरश्च भगवान् देवस्यानुमते स्थितः ॥ ९१ ॥ प्रगृह्य ज्वलितं शूलं दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ गङ्गा च सरितां श्रेष्ठा सर्वतीर्थजलोद्भवा ॥ पर्य्युपासत तन्देवरूपिणी द्विजसत्तमाः ॥ ९२ ॥ एवं स भगवांस्तत्र दीप्यमानः सुरर्षिभिः ॥ देवैश्च सुमहाभागैर्महादेवो व्यवस्थितः ॥ ९३ ॥ पुरा हिमवतः पृष्ठे दक्षो वै यज्ञमारभत् ॥ गङ्गाद्वारे शुभे देशे ऋषिसिद्धनिषेविते ॥ ९४ ॥ ततस्तस्य मखे देवाः शतक्रतुपुरोगमाः ॥ गमनाय समागम्य बुद्धिमापेदिरे तदा ॥ ९५ ॥ स्वैर्विमानैर्महात्मानो ज्वलद्भिर्ज्वलनप्रभाः ॥ देवस्यानुमतेऽगच्छन् गङ्गाद्वार इति श्रुतिः ॥ ९६ ॥ गन्धर्वाप्सरसाकीर्णं नानाद्रुमलतावृतम् ॥ ऋषिसङ्घैः परिवृतं दक्षं धर्म्मभृतां वरम् ॥९७॥ पृथिव्यामन्तरिक्षे वा ये च स्वर्लोकवासिनः ॥ सर्वे प्राञ्जलयो भूत्वा उपतस्थुः प्रजापतिम् ॥ ९८ ॥ आदित्या वसवो रुद्राः साध्याः सह मरुद्गणैः ॥ जिष्णुना सहिताः सर्वे आगता यज्ञभागिनः ॥ ९९ ॥ ऊष्मपाः सोमपाश्चैव आज्यपा धूमपास्तथा ॥ अश्विनौ पितरश्चैव आगता ब्रह्मणा सह ॥१००॥ एते चान्ये च बहवो भूतग्रामास्तथैव च ॥ जरायुजाण्डजाश्चैव स्वेदजोद्भिज्जकास्तथा ॥१०१॥ आहूता मन्त्रतः सर्वे देवाश्च सह पत्निभिः ॥ विराजन्ते विमानस्था दीप्यमाना इवाग्नयः ॥१०२॥ तान् दृष्ट्वा मन्युमाविष्टो दधीचो वाक्यमब्रवीत् ॥ अपूज्यपूजने चैव पूज्यानां चाप्यपूजने ॥ नरः पापमवाप्नोति महद्वै नात्र संशयः ॥१०३॥ एवमुक्त्वा तु विप्रर्षिः पुनर्दक्षमभाषत ॥ पूज्यन्तु पशुभर्त्तारं कस्मान्नाह्वयसे प्रभुम् ॥१०४॥ ॥ दक्ष उवाच ॥ सन्ति मे बहवो रुद्राः शूलहस्ताः कपर्द्दिनः ॥ एकादशावस्थगता नान्यं वेद्मि महेश्वरम् ॥ १०५ ॥ ॥ दधीच उवाच ॥ ॥ सर्वे निमन्त्रिता देवा येन ईशो निमन्त्रितः ॥ यथाहं शङ्कराद्दूर्द्धं नान्यं पश्यामि दैवतम् ॥ तथा दक्षस्य विपुलो यज्ञोऽयं न भविष्यति ॥१०६॥ ॥ ॥ दक्ष उवाच ॥ ॥ एतन्मखे शूर सुवर्णपात्रे हविः समस्तं विधिमन्त्रपूतम् ॥ विष्णोर्नयाम्यप्रतिमस्य सर्वं प्रभोर्विभो ह्याहवनीयानित्यम् ॥१०७॥ गतास्तु देवता ज्ञात्वा शैलराजसुता तदा ॥ उवाच वचनं साध्वी देवं पशुपतिं तदा ॥ १०८ ॥ ॥ उमोवाच ॥ ॥ भगवन् क्व गता ह्येते देवाः शक्रपुरोगमाः ॥ ब्रूहि तत्त्वेन तत्त्वज्ञ संशयो मे महानयम् ॥ १०९ ॥ ॥ महेश्वर उवाच ॥ ॥ दक्षो नाम महाभागो प्रजानां पतिरुत्तमः ॥ हयमेधेन यजते तत्र यान्ति दिवौकसः ॥ ११० ॥ ॥ देव्युवाच ॥ ॥ यज्ञमेतं महाभाग किमर्थं न गतोऽसि वै ॥ केन वा प्रतिषेधेन गमनं प्रतिषिध्यते ॥ १११ ॥ ॥ ॥ महेश्वर उवाच ॥ सुरैरेव महाभागे सर्व्वमेतदनुष्ठितम् ॥ यज्ञेषु मम सर्व्वेषु न भाग उपकल्पितः ॥ ११२ ॥ पूर्व्वोपायोपपन्ने न मार्गेण वरवर्णिनि ॥ न मे सुराः प्रयच्छन्ति भागं यज्ञस्य धीमतः ॥ ११३ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ भगवन् सर्वदेवेषु प्रभावानधिको गुणैः ॥ अजेय

श्चाप्यधृष्यश्च तेजसा यशसा श्रिया ॥ ११४ ॥ अनेन तु महाभाग प्रतिषेधेन नामतः ॥ अतीव दुःखमापन्ना वेपथुश्च ममानघ ॥ ११५ ॥ किं नाम
दानं नियमन्तपो वा कुर्य्यामहं येन पतिर्म्ममाद्य ॥ लभेत भागं भगवानचिन्त्यो यज्ञस्य चार्द्धं त्वथ वा तृतीयम् ॥ ११६ ॥ एवं ब्रुवाणां भगवान
चिन्त्यः पत्नीं प्रहृष्टः क्षुभितामुवाच ॥ न वेत्सि देवेशि कृशोदराङ्गि किं नाम युक्तं वचनन्त्वदेम् ॥ ११७ ॥ अहं हि जानामि विशालनेत्रे ध्यानेन
सर्व्वं हि वदन्ति सन्तः ॥ न वाद्य मोहेन महेन्द्रदेवो लोकत्रयं सर्व्वथा संप्रमूढम् ॥११८॥ मामध्वरे शंसितारः स्तुवन्ति रथन्तरे साम गायन्ति गेयम् ॥
मां ब्राह्मणा ब्रह्मसत्रे यजन्ते माध्वर्य्यवः कल्पयन्ते च भागम् ॥ ११९ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ ॥ अप्राकृतोऽपि भगवान् सर्व्वस्त्रीजनसंसदि ॥ स्तौति गो
पायते वापि स्वमात्मानं न संशयः ॥ १२० ॥ ॥ भगवानुवाच ॥ ॥ नात्मानं स्तौमि देवेशि पश्य त्वमुपगच्छ च ॥ यं स्रक्ष्यामि वरारोहे भागार्थं वरव
र्णिनि ॥ १२१ ॥ एवमुक्त्वा तु भगवान् पत्नीं प्राणैरपि प्रियाम् ॥ सोऽसृजद्भगवान्वक्त्राद्भूतं क्रोधाग्निसन्निभम् ॥ १२२ ॥ सहस्रशीर्षं देवञ्च सहस्रचरणेक्षणम् ॥
सहस्रमुद्गरधरं सहस्रशरपाणिनम् ॥ २२३ ॥ शङ्खचक्रगदापाणिं दीप्तकार्मुकधारिणम् ॥ परश्वासिधरं देवं महारौद्रं भयावहम् ॥ १२४ ॥ घोररूपेण
दीप्यन्तं चन्द्रार्द्धकृतभूषणम् ॥ वसानं चर्म्म वैयाघ्रं महारुधिरनिःस्रवम् ॥ १२५ ॥ दंष्ट्राकरालं विभ्रान्तं महावक्त्रं महोदरम् ॥ विद्युज्जिह्वं प्रल
म्बोष्ठं लम्बकर्णं दुरासदम् ॥ १२६ ॥ कुलिशोद्योतितकरम्भाभिर्ज्वलितमूर्द्धजम् ॥ ज्वालामालापरिक्षिप्तं मुक्तादामविभूषितम् ॥ १२७ ॥ तेजसा
चैव दीप्यन्तं युगान्तामिव पावकम् ॥ आकर्णदारितास्यान्तश्चतुर्दिक्षु भयानकम् ॥ १२८ ॥ महाबलं महातेजं महापुरुषमीश्वरम् ॥ विश्वहर्त्तृमहा
कायं महान्यग्रोधमण्डलम् ॥ युगपच्चन्द्रशतवद्दीप्यन्तं मन्मथाग्निवत् ॥ १२९ ॥ चतुर्महास्यं सिततीक्ष्णदंष्ट्रं महोग्रतेजोबलकौतुकाढ्यम् ॥ युगान्तसू
र्य्याग्निसहस्रभासं सहस्रचन्द्रामलकान्तिकान्तम् ॥ प्रदीप्तसर्व्वौषधिमन्दराभं सुमेरुकैलासहिमाद्रितुल्यम् ॥ १३० ॥ युगार्काभं महावीर्य्यं चारुनासं
महाननम् ॥ प्रचण्डगण्डं दीप्ताक्षमग्निज्वालाविलाननम् ॥ १३१ ॥ मृगेन्द्रकृत्तिवसनं महाभुजगवेष्टितम् ॥ उष्णीषिणं चन्द्रधरं क्वचिदुग्रं क्वचित्सम
म् ॥ १३२ ॥ नानाकुसुममूर्द्धानं नानागन्धानुलेपनम् ॥ नानारत्नविचित्राङ्गं नानाभरणभूषितम् ॥ १३३ ॥ कार्णिकारस्रजं दीप्तं क्रोधादुद्भ्रान्तलोचनम् ॥
क्वचिन्नृत्यति चित्राङ्गं क्वचिद्वदति सुस्वरम् ॥ १३४ ॥ क्वचिद्ध्यायति युक्तात्मा क्वचित्स्थूलं प्रमार्जति ॥ क्वचिद्गायति विश्वात्मा
क्वचिद्रौति मुहुर्मुहुः ॥ १३५ ॥ ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्य्यन्तपः सत्यं क्षमा धृतिः ॥ प्रभुत्वमात्मसंबोधो ह्यधिष्ठानगुणैर्युतः ॥ १३६ ॥
जानुभ्यामवनिं गत्वा प्रणतः प्राञ्जलिः स्थितः ॥ आज्ञापय त्वं देवेश किं कार्य्यं करवाणि ते ॥ १३७ ॥ तमुवाचाक्षिप मखं दक्षस्येह

महेश्वरः ॥ देवस्यानुमतिं श्रुत्वा वीरभद्रो महाबलः ॥ प्रणम्य शिरसा पादौ देवेशस्य उमापतेः ॥ १३८ ॥ ततो बन्धात् प्रमुक्तेन सिंहेनेवेह लीलया ॥
देव्या मन्युकृतं मत्वा हतो दक्षस्य स क्रतुः ॥१३९॥ मन्युना च महाभीमा भद्रकाली महेश्वरी ॥ आत्मनः सर्वसाक्षित्वे तेन सार्द्धं सहानुगा ॥ १४० ॥
स एष भगवान् क्रुद्धः प्रेतावासकृतालयः ॥ वीरभद्र इति ख्यातो देव्या मन्युप्रमार्जकः ॥ १४१ ॥ सोऽसृजद्रोमकूपेभ्यो रौद्रान्नाम गणेश्वरान् ॥ रुद्रा
नुगा महावीर्य्या रुद्रवीर्य्यपराक्रमाः ॥ १४२ ॥ रुद्रस्यानुचराः सर्व्वे सर्व्वे रुद्रसमप्रभाः ॥ ते निपेतुस्ततस्तूर्णं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १४३ ॥
ततः किलकिलाशब्द आकाशं पूरयन्निव ॥ तेन शब्देन महता त्रस्ताः सर्व्वे दिवौकसः ॥ १४४ ॥ पर्वताश्च व्यशीर्य्यन्त कम्पते च वसुन्धरा ॥ मेरु
श्च घूर्णते विप्राः क्षुभ्यन्ते वरुणालयाः ॥ १४५ ॥ अग्नयो नैव दीप्यन्ते न च दीप्यन्ति भास्कराः ॥ ग्रहा नैव प्रकाशन्ते नक्षत्राणि न तारकाः ॥ १४६ ॥
ऋषयो नाभ्यभाषन्त न देवा न च दानवाः ॥ एवं हि तिमिरीभूतं निर्दहन्ति विमानिताः ॥ १४७ ॥ सिंहनादं प्रमुञ्चन्ते घोररूपा महाबलाः ॥ प्रभञ्ज
न्ते परे घोरा यूपानुत्पाटयन्ति च ॥ १४८ ॥ प्रमर्द्दन्ति तथा चान्ये विनृत्यन्ति तथाऽपरे ॥ आधावन्ति प्रधावन्ति वायुवेगा मनोजवाः ॥ १४९ ॥
चूर्णन्ते यज्ञपात्राणि यागस्यायतनानि च ॥ शीर्य्यमाणानि दृश्यन्ते तारा इव नभस्तलात् ॥ १५० ॥ दिव्यान्नपानभक्षाणां राशयः पर्वतोपमाः ॥ क्षीर
नद्यस्तथा चान्या घृतपायसकर्दमाः ॥ मधुमण्डोदका दिव्याः खण्डशर्करवालुकाः ॥ १५१ ॥ षड्रसान्निवहन्त्यन्या गुडकुल्या मनोरमाः ॥ उच्चावचानि
मांसानि भक्ष्याणि विविधानि च ॥ १५२ ॥ यानि कानि च दिव्यानि लेह्यचोष्यं तथाऽपरे ॥ भुञ्जते विविधैर्वक्त्रैर्विलुण्ठन्ति च सर्वशः ॥ क्रीडन्ति विवि
धाकाराश्चिक्षिपुः सुरयोषितः ॥ १५३ ॥ रुद्रकोपप्रयुक्तास्तु सर्वदेवैः सुरक्षितम् ॥ तं यज्ञमहनन् शीघ्रं रुद्रकल्पाः समीपतः ॥ १५४ ॥ चक्रुरन्ये तथा
नादान् सर्वभूतभयंकरान् ॥ छित्त्वा शिरोऽन्ये यज्ञस्य विनदन्ति भयङ्कराः ॥ १५५ ॥ दक्षो दक्षपतिश्चैव देवो यज्ञपतिस्तथा ॥ मृगरूपेण चाकाशे प्रपला
यितुमारभत् ॥१५६॥ वीरभद्रोऽप्रमेयात्मा ज्ञात्वा तस्य बलन्तदा ॥ अन्तरिक्षगतस्याशु चिच्छेदास्य शिरो महान् ॥ १५७ ॥ दक्षः प्रजापतिश्चैव विनष्ट
भ्रान्तचेतनः ॥ क्रुद्धेन वीरभद्रेण शिरः पादेन पीडितः ॥ जराभिभूततीव्रात्मा निपपात महीतले ॥ १५८ ॥ त्रयस्त्रिंशद्देवतानां ताः कोट्यो विमलात्मकाः ॥
पाशेनाग्निबलेनाशु बद्धाः सिंहबलेन च ॥ १५९ ॥ ततो जग्मुर्महात्मानं सर्वे देवा महाबलम् ॥ प्रसीद भगवन् रुद्र भृत्यानां मा क्रुधः प्रभो ॥ १६० ॥ ततो ब्रह्मा
दयो देवा दक्षश्चैव प्रजापतिः ॥ ऊचुः प्राञ्जलयो भूत्वा कथ्यतां को भवानिति ॥ १६१ ॥ ॥ वीरभद्र उवाच ॥ ॥ न च देवो न चादित्यो न च भोक्तुमिहागतः ॥
नैव द्रष्टुं हि देवेन्द्रान्न च कौतूहलान्वितः ॥ १६२ ॥ दक्षयज्ञविनाशार्थं सम्प्राप्तं विद्धि मामिह ॥ वीरभद्र इति ख्यातं रुद्रकोपाद्विनिर्गतम् ॥ १६३ ॥

भद्रकाली च विज्ञेया देव्याः क्रोधाद्विनिर्गता ॥ प्रेषिता देवदेवेन यज्ञान्तिकमिहागता ॥ १६४ ॥ शरणं गच्छ राजेन्द्र देवन्तं त्वमुमापतिम् ॥ वरं
क्रोधोऽपि रुद्रस्य वरदानं न देवतः ॥ १६५ ॥ वीरभद्रवचः श्रुत्वा दक्षो धर्म्मभृतां वरः ॥ तोषयामास देवेशं शूलपाणिं महेश्वरम् ॥ १६६ ॥ प्रदुष्टे
यज्ञवादे तु विद्रुतेषु द्विजातिषु ॥ तारामृगमये दीप्ते रौद्रे भीममहानले ॥ १६७ ॥ शूलनिर्भिन्नवदनैः कूजद्भिः परिचारकैः ॥ निखातोत्पाटितैर्यूपैर
पविद्धैर्य्यतस्ततः ॥ १६८ ॥ उत्पतद्भिः पतद्भिश्च गृध्रैरामिषगृध्नुभिः ॥ पक्षपातविनिर्धूतैः शिवाशतनिनादितैः ॥ १६९ ॥ प्राणापानौ सन्निरुध्य
ततः स्थानेन यत्नतः ॥ विचार्य्य सर्वतो दृष्टिं बहुदृष्टिरमित्रजित् ॥ १७० ॥ सहसा देवदेवेशः अग्निकुण्डादुपागतः ॥ चन्द्रसूर्य्यसहस्रस्य तेजः सं
वर्त्तकोपमम् ॥ १७१ ॥ प्रहस्य चैनं भगवानिदं वचनमब्रवीत् ॥ नष्टस्ते ज्ञानतो दक्ष प्रीतिस्ते मयि साम्प्रतम् ॥ १७२ ॥ स्मितं कृत्वाऽब्रवीद्वा
क्यं ब्रूहि किं करवाणि ते ॥ श्रावितश्च समाख्याय देवानाङ्गुरुभिः सह ॥ १७३ ॥ तमुवाचाञ्जलिं कृत्वा दक्षो देवं प्रजापतिः ॥ भीतशङ्कितवित्रस्तः
सबाष्पवदनेक्षणः ॥ १७४ ॥ यदि प्रसन्नो भगवान् यदि वाहन्तव प्रियः ॥ यदि वाहमनुग्राह्यो यदि देयो वरो मम ॥ १७५ ॥ यज्जग्धं भक्षितं
पीतमशितं यच्च नाशितम् ॥ चूर्णीकृतश्चापविद्धं यज्ञसम्भारमीदृशम् ॥ १७६ ॥ दीर्घकालेन महता प्रयत्नेन च सञ्चितम् ॥ तन्न मिथ्या भवेन्मह्यं वर
मेतं वृणोम्यहम् ॥ १७७ ॥ तथास्त्वित्याह भगवान् भगनेत्रहरो हरः ॥ धर्म्माध्यक्षं महादेवं त्र्यक्षन्तं वै प्रजापतिः ॥ १७८ ॥ जानुभ्यामवनीङ्ग
त्वा दक्षो लब्ध्वा भवाद्वरम् ॥ नाम्नामष्टसहस्रेण स्तुतवान् वृषभध्वजम् ॥ १७९ ॥ ॥ दक्ष उवाच ॥ नमस्ते देवदेवेश देवारिबलसूदन ॥ देवेन्द्र ह्य
मरश्रेष्ठ देवदानवपूजित ॥ १८० ॥ सहस्राक्ष विरूपाक्ष त्र्यक्ष यक्षाधिपप्रिय ॥ सर्वतःपाणिपादस्त्वं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखः ॥ सर्वतःश्रुतिमान्
लोके सर्वानावृत्त्य तिष्ठसि ॥ १८१ ॥ शङ्कुकर्ण महाकर्ण कुम्भकर्णार्णवालय ॥ गजेन्द्रकर्ण गोकर्ण पाणिकर्ण नमोऽस्तु ते ॥ १८२ ॥
शतोदर शतावर्त्त शतजिह्व शतानन ॥ गायन्ति त्वां गायत्रिणो ह्यर्चयन्ति तथार्चिनः ॥ १८३ ॥ देवदानवगोप्ता च ब्रह्मा च त्वं शतक्रतुः ॥ मूर्त्तीश
स्त्वं महामूर्त्तं समुद्राम्बुधराय च ॥ १८४ ॥ सर्वा ह्यस्मिन् देवतास्ते गावो गोष्ठ इवासते ॥ शरीरन्ते प्रपश्यामि सोममग्निं जलेश्वरम् ॥ १८५ ॥
आदित्यमथ विष्णुञ्च ब्रह्माणं सबृहस्पतिम् ॥ क्रिया कार्य्यं कारणञ्च कर्त्ता करणमेव च ॥ १८६ ॥ असच्च सदसच्चैव तथैव प्रभवाव्ययम् ॥ नमो भवाय
शर्वाय रुद्राय वरदाय च ॥ १८७ ॥ पशूनां पतये चैव नमस्त्वन्धकघातिने ॥ त्रिजटाय त्रिशीर्षाय त्रिशूलवरधारिणे ॥ १८८ ॥ त्र्यम्बकाय त्रिनेत्रा
य त्रिपुरघ्नाय वै नमः ॥ नमश्चण्डाय मुण्डाय प्रचण्डाय धराय च ॥ १८९ ॥ दण्डिमासक्तकर्णाय दण्डिमुण्डाय वै नमः ॥ नमोऽर्द्धदण्डकेशाय

निष्काय विकृताय च ॥ १९० ॥ विलोहिताय धूम्राय नीलग्रीवाय ते नमः ॥ नमस्त्वप्रतिरूपाय शिवाय च नमोऽस्तु ते ॥ १९१ ॥ सूर्य्याय सूर्य्य
पतये सूर्य्यध्वजपताकिने ॥ नमः प्रमथनाथाय वृषस्कन्धाय धन्विने ॥ १९२ ॥ नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च ॥ हिरण्यकृतचूडाय हिरण्य
पतये नमः ॥ १९३ ॥ सत्रघाताय दण्डाय वर्णपानपुटाय च ॥ नमः स्तुताय स्तुत्याय स्तूयमानाय वै नमः ॥ १९४ ॥ सर्वायाभक्ष्यभक्ष्याय सर्वभूता
न्तरात्मने ॥ नमो होत्राय मन्त्राय शुक्लध्वजपताकिने ॥ १९५ ॥ नमो नमाय नम्याय नमः किलिकिलाय च ॥ नमस्ते शयमानाय शयितायोत्थिता
य च ॥ १९६ ॥ स्थिताय चलमानाय मुद्राय कुटिलाय च ॥ नमो नर्त्तनशीलाय मुखवादित्रकारिणे ॥ १९७ ॥ नाट्योपहारलुब्धाय गीतवाद्यरताय
च ॥ नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय बलप्रमथनाय च ॥ १९८ ॥ कलनाय च कल्पाय क्षयायोपक्षयाय च ॥ भीमदुन्दुभिहासाय भीमसेनप्रियाय च ॥ १९९ ॥
उग्राय च नमो नित्यं नमस्ते दशबाहवे ॥ नमः कपालहस्ताय चिताभस्मप्रियाय च ॥ २०० ॥ विभीषणाय भीष्माय भीष्मव्रतधराय च ॥ नमो विकृ
तवक्षाय खड्गजिह्वाग्रदंष्ट्रिणे ॥ २०१ ॥ पक्वाममांसलुब्धाय तुम्बवीणाप्रियाय च ॥ नमो वृषाय वृष्याय वृष्णये वृषणाय च ॥ २०२ ॥ कटङ्कटाय
चण्डाय नमः सावयवाय च ॥ नमस्ते वरकृष्णाय वराय वरदाय च ॥ २०३ ॥ वरगन्धमाल्यवस्त्राय वरातिवरये नमः ॥ नमो वर्षाय वाताय छायायै
आतपाय च ॥ २०४ ॥ नमो रक्तविरक्ताय शोभनायाक्षमालिने ॥ सम्भिन्नाय विभिन्नाय विविक्तविकटाय च ॥ २०५ ॥ अघोररूपरूपाय
घोरघोरतराय च ॥ नमः शिवाय शान्ताय नमः शान्ततराय च ॥ २०६ ॥ एकपाद्बहुनेत्राय एकशीर्षन्नमोऽस्तु ते ॥ नमो वृद्धाय लुब्धाय
संविभागप्रियाय च ॥ २०७ ॥ पञ्चमालार्चिताङ्गाय नमः पाशुपताय च ॥ नमश्चण्डाय घाण्टाय घण्टया जग्धरन्ध्रिणे ॥ २०८ ॥ सहस्रशतघण्टाय
घण्टामालाप्रियाय च ॥ प्राणदण्डाय त्यागाय नमो हिलिहिलाय च ॥ २०९ ॥ हूंहूङ्काराय पाराय हूंहूङ्कारप्रियाय च ॥ नमश्च शम्भवे नित्यं गि
रिवृक्षकलाय च ॥ २१० ॥ गर्भमांसशृगालाय तारकाय तराय च ॥ नमो यज्ञाधिपतये द्रुतायोपद्रुताय च ॥ २११ ॥ यज्ञवाहाय दानाय तप्याय
तपनाय च ॥ नमस्तटाय भव्याय तडितां पतये नमः ॥ २१२ ॥ अन्नदायान्नपतये नमोऽस्त्वन्नभवाय च ॥ नमः सहस्रशीर्ष्णे च सहस्रचरणाय च ॥ २१३ ॥
सहस्रोद्यतशूलाय सहस्रनयनाय च ॥ नमोऽस्तु बालरूपाय बालरूपधराय च ॥ २१४ ॥ बालानाञ्चैव गोप्त्रे च बालक्रीडनकाय च ॥ नमः
शुद्धाय बुद्धाय क्षोभणायाक्षताय च ॥ २१५ ॥ तरङ्गाङ्कितकेशाय मुक्तकेशाय वै नमः ॥ नमः षट्कर्म्मनिष्ठाय त्रिकर्म्मनिरताय च ॥ २१६ ॥ वर्णा
श्रमाणां विधिवत् पृथक्कर्म्मप्रवर्तिने ॥ नमो घोषाय घोष्याय नमः कलकलाय च ॥ २१७ ॥ श्वेतपिङ्गलनेत्राय कृष्णरक्तेक्षणाय च ॥ धर्म्मार्थ

काममोक्षाय क्रथाय क्रथनाय च ॥ २१८ ॥ साङ्ख्याय साङ्ख्यमुख्याय योगाधिपतये नमः ॥ नमो रथ्यविरथ्याय चतुष्पथरताय च ॥२१९॥ कृष्णा
जिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने ॥ ईशानवज्रसंहाय हरिकेश नमोऽस्तु ते ॥ अविवेकैकनाथाय व्यक्ताव्यक्त नमोऽस्तु ते ॥ २२० ॥ काम कामद
कामघ्न धृष्टोद्दृप्तनिषूदन ॥ सर्व्व सर्व्वद सर्व्वज्ञ सन्ध्याराग नमोऽस्तु ते ॥ २२१ ॥ महाबाल महाबाहो महासत्व महाद्युते ॥ महामेघवरप्रेक्ष महाकाल नमो
ऽस्तु ते ॥२२२॥ स्थूलजीर्णाङ्गजटिने वल्कलाजिनधारिणे ॥ दीप्तसूर्य्याग्निजटिने वल्कलाजिनवाससे ॥ सहस्रसूर्य्यप्रतिम तपोनित्य नमोऽस्तु ते॥२२३॥
उन्मादनशतावर्त्त गङ्गातोयार्द्धमूर्द्धज ॥ चन्द्रावर्त्त युगावर्त्त मेघावर्त्त नमोऽस्तु ते ॥ २२४ ॥ त्वमन्नमन्नकर्त्ता च अन्नदश्च त्वमेव हि ॥ अन्नस्रष्टा च पक्ता
च पक्वभुक्तपचे नमः ॥ २२५ ॥ जरायुजोऽण्डजश्चैव स्वेदजोद्भिज्ज एव च ॥ त्वमेव देवदेवेशो भूतग्रामश्चतुर्विधः ॥ २२६ ॥ चराचरस्य ब्रह्मा त्वं
प्रतिहर्त्ता त्वमेव च ॥ त्वमेव ब्रह्मविदुषामपि ब्रह्मविदां वरः ॥ २२७ ॥ सत्वस्य परमा योनिरब्वायुज्योतिषां निधिः ॥ ऋक्सामानि तथोङ्कारमाहुस्त्वां
ब्रह्मवादिनः ॥ २२८ ॥ हविर्हावी हवो हावी हुवां वाचाहुतिः सदा ॥ गायन्ति त्वां सुरश्रेष्ठ सामगा ब्रह्मवादिनः ॥ २२९ ॥ यजुर्म्मयो ऋङ्मयश्च सामा
थर्वमयस्तथा ॥ पठ्यसे ब्रह्मविद्भिस्त्वं कल्पोपनिषदां गणैः ॥ २३० ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वर्णावराश्च ये ॥ त्वामेव मेघसङ्घाश्च विश्वस्त
नितगर्ज्जितम् ॥२३१॥ संवत्सरस्त्वमृतवो मासा मासार्द्धमेव च ॥ कला काष्ठा निमेषाश्च नक्षत्राणि युगा ग्रहाः॥२३२॥ वृषाणां ककुदं त्वं हि गिरीणां शि
खराणि च ॥ सिंहो मृगाणां पततां तार्क्ष्योऽनन्तश्च भोगिनाम् ॥२३३॥ क्षीरोदो ह्युदधीनाञ्च यन्त्राणां धनुरेव च ॥ वज्रम्प्रहरणानाञ्च व्रतानां सत्यमेव
च ॥ २३४ ॥ इच्छा द्वेषश्च रागश्च मोहः क्षामो दमः शमः ॥ व्यवसायो धृतिर्लोभः कामक्रोधौ जयाजयौ ॥ २३५ ॥ त्वङ्गदी त्वं शरी चापि खट्वा
ङ्गी झर्झरी तथा ॥ छेत्ता भेत्ता प्रहर्त्ता च त्वं नेताऽप्यन्तको मतः ॥२३६ ॥ दशलक्षणसंयुक्तो धर्म्मोऽर्थः काम एव च ॥ इन्द्रः समुद्राः सरितः पल्वला
नि सरांसि च ॥ २३७ ॥ लतावल्ली तृणौषध्यः पशवो मृगपक्षिणः ॥ द्रव्यकर्म्मगुणारम्भः कालपुष्पफलप्रदः ॥ २३८ ॥ आदिश्चान्तश्च मध्यश्च गाय
त्र्योङ्कार एव च ॥ हरितो लोहितः कृष्णो नीलः पीतस्तथाऽरुणः ॥ २३९ ॥ कद्रुश्च कपिलश्चैव कपोतो मेचकस्तथा ॥ सुवर्णरेता विख्यातः सुवर्ण
श्चाप्यतो मतः ॥ २४० ॥ सुवर्णनामा च तथा सुवर्णप्रिय एव च ॥ त्वमिन्द्रोऽथ यमश्चैव वरुणो धनदोऽनलः ॥ २४१ ॥ उत्फुल्लश्चित्रभानुश्च स्वर्भा
नुर्भानुरेव च ॥ होत्रं होता च होमस्त्वं हुतञ्च प्रहुतं प्रभुः ॥२४२ ॥ सुपर्णञ्च तथा ब्रह्म यजुषां शतरुद्रियम् ॥ पवित्राणां पवित्रञ्च मङ्गलानाञ्च
मङ्गलम् ॥ २४३ ॥ गिरिः स्तोकस्तथा वृक्षो जीवः पुद्गल एव च ॥ सत्वं त्वञ्च रजस्त्वञ्च तमश्च प्रजनं तथा ॥ २४४ ॥

प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ॥ उन्मेषश्चैव मेषश्च तथा जृम्भितमेव च ॥२४५॥ लोहिताङ्गो गदी दंष्ट्री महावक्त्रो महोदरः ॥ शुचिरोमा
हरिच्छ्मश्रुरूर्द्ध्वकेशस्त्रिलोचनः ॥ २४६ ॥ गीतवादित्रनृत्याङ्गो गीतवादनकप्रियः ॥ मत्स्यो जली जलो जल्यो जवः कालः कली कलः ॥ २४७ ॥
विकालश्च सुकालश्च दुष्कालः कलनाशनः ॥ मृत्युश्चैव क्षयोऽन्तश्च क्षमापायकरो हरः ॥ २४८ ॥ संवर्त्तकोऽन्तकश्चैव संवर्त्तकबलाहकौ ॥ घटो
घटीको घण्टीको चूडालोलबलो बलम् ॥ २४९ ॥ ब्रह्मकालोऽग्निवक्त्रश्च दण्डी मुण्डी च दण्डधृक् ॥ चतुर्युगश्चतुर्वेदश्चतुर्होत्रश्चतुष्पथः ॥ २५० ॥
चतुराश्रमवेत्ता च चातुर्वर्ण्यकरश्च ह ॥ क्षराक्षरप्रियो धूर्त्तोऽगण्योऽगण्यगणाधिपः ॥ २५१ ॥ रुद्राक्षमाल्याम्बरधरो गिरिको गिरिकप्रियः ॥ शिल्पीशः
शिल्पिनां श्रेष्ठः सर्व्वशिल्पप्रवर्त्तकः ॥ २५२ ॥ भगनेत्रान्तकश्चन्द्रः पूष्णो दन्तविनाशनः ॥ गूढावर्त्तश्च गूढश्च गूढप्रतिनिषेविता ॥ २५३ ॥ तरणस्ता
रकश्चैव सर्व्वभूतसुतारणः ॥ धाता विधाता सत्वानां निधाता धारणो धरः ॥ २५४ ॥ तपो ब्रह्म च सत्यञ्च ब्रह्मचर्य्यमथार्जवम् ॥ भूतात्मा भूतकृद्भूतो
भूतभव्यभवोद्भवः ॥ २५५ ॥ भूर्भुवःस्वरितश्चैव तथोत्पत्तिर्महेश्वरः ॥ ईशानो वीक्षणः शान्तो दुर्दान्तो दन्तनाशनः ॥ २५६ ॥ ब्रह्मावर्त्त सुरावर्त्त
कामावर्त्त नमोऽस्तु ते ॥ कामविम्बनिहर्त्ता च कर्णिकाररजःप्रियः ॥ २५७ ॥ मुखचन्द्रो भीममुखः सुमुखो दुर्मुखो मुखः ॥ चतुर्मुखो बहुमुखो रणे
ह्यभिमुखः सदा ॥ २५८ ॥ हिरण्यगर्भः शकुनिर्महोदधिः परो विराट् ॥ अधर्महा महादण्डो दण्डधारो रणप्रियः ॥ २५९ ॥ गोतमो गोप्रतारश्च गोवृ
षेश्वरवाहनः ॥ धर्म्मकृद्धर्म्मस्रष्टा च धर्म्मो धर्म्मविदुत्तमः ॥२६०॥ त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्दो मानदो मान एव च ॥ तिष्ठम् स्थिरश्च स्थाणुश्च निष्कम्पः
कम्प एव च ॥ २६१ ॥ दुर्वारणो दुर्विषदो दुःसहो दुरतिक्रमः ॥ दुर्द्धरो दुष्प्रकम्पश्च दुर्विदो दुर्ज्जयो जयः ॥ २६२ ॥ शशः शशाङ्कः शमनः शीतोष्णं
दुर्जराऽथ तृट् ॥ आधयो व्याधयश्चैव व्याधिहा व्याधिगश्च ह ॥ २६३ ॥ सह्यो यज्ञो मृगा व्याधा व्याधीनामाकरोऽकरः ॥ शिखण्डी पुण्डरीकाक्षः पु
ण्डरीकावलोकनः ॥ २६४ ॥ दण्डधरः सदण्डश्च दण्डमुण्डविभूषितः ॥ विषपोऽमृतपश्चैव सुरापः क्षीरसोमपः ॥ २६५ ॥ मधुपश्चाज्यपश्चैव सर्व्व
पश्च महाबलः ॥ वृषाश्ववाह्यो वृषभस्तथा वृषभलोचनः ॥ २६६ ॥ वृषभश्चैव विख्यातो लोकानां लोकसत्कृतः ॥ चन्द्रादित्यौ चक्षुषी ते हृदयञ्च
पितामहः ॥ अग्निरापस्तथा देवो धर्म्मकर्म्मप्रसाधितः ॥ २६७ ॥ न ब्रह्मा न च गोविन्दः पुराणऋषयो न च ॥ माहात्म्यं वेदितुं शक्ता याथातथ्येन
ते शिव ॥ २६८॥ या मूर्त्तयः सुसूक्ष्मास्ते न मह्यं यान्ति दर्शनम् ॥ ताभिर्म्मां सततं रक्ष पिता पुत्रमिवौरसम् ॥२६९॥ रक्ष मां रक्षणीयोऽहन्तवानघ
नमोऽस्तु ते ॥ भक्तानुकम्पी भगवान् भक्तश्चाहं सदा त्वयि ॥ २७० ॥ यः सहस्राण्यनेकानि पुंसामाहत्य दुर्दृशः ॥ तिष्ठत्येकः समुद्रान्ते स मे गोप्ताऽ

स्तु नित्यशः ॥ २७१ ॥ यं विनिद्रा जितश्वासाः सत्वस्थाः समदर्शिनः ॥ ज्योतिः पश्यन्ति युञ्जानास्तस्मै योगात्मने नमः ॥ २७२ ॥ सम्भक्ष्य सर्व्वं
भूतानि युगान्ते समुपस्थिते ॥ यः शेते जलमध्यस्थस्तं प्रपद्येऽप्सुशायिनम् ॥ २७३ ॥ प्रविश्य वदने राहोर्य्यः सोमं ग्रसते निशि ॥ ग्रसत्यर्कञ्च
स्वर्भानुर्भूत्वा सोमाग्निरेव च ॥ २७४ ॥ येऽङ्गुष्ठमात्राः पुरुषा देहस्थाः सर्व्वदेहिनाम् ॥ रक्षन्तु ते हि मां नित्यं नित्यमाप्याययन्तु माम् ॥ २७५ ॥ ये
चाप्युत्पतिता गर्भादधोभागगताश्च ये ॥ तेषां स्वाहाः स्वधाश्चैव आप्नुवन्तु स्वदन्तु च ॥ २७६ ॥ ये न रोदन्ति देहस्थाः प्राणिनो रोदयन्ति च ॥
हर्षयन्ति च हृष्यन्ति नमस्तेभ्योऽस्तु नित्यशः ॥ २७७ ॥ ये समुद्रे नदीदुर्गे पर्वतेषु गुहासु च ॥ वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारगहनेषु च ॥ २७८ ॥
चतुष्पथेषु रथ्यासु चत्वरेषु सभासु च ॥ चन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्रार्करश्मिषु ॥२७९॥ रसातलगता ये च ये च तस्मात्परङ्गताः ॥ नमस्तेभ्यो
नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यश्च नित्यशः ॥ सूक्ष्माः स्थूलाः कृशा ह्रस्वा नमस्तेभ्यस्तु नित्यशः ॥ २८० ॥ सर्व्वस्त्वं सर्व्वगो देव सर्व्वभूतपतिर्भ
वान् ॥ सर्व्वभूतान्तरात्मा च तेन त्वं न निमन्त्रितः ॥ २८१ ॥ त्वमेव चेज्यसे यस्माद्यज्ञैर्विविधदक्षिणैः ॥ त्वमेव कर्त्ता सर्व्वस्य तेन त्वन्न निमन्त्रि
तः॥२८२॥ अथ वा मायया देव मोहितः सूक्ष्मया त्वया ॥ एतस्मात् कारणाद्वापि तेन त्वन्न निमन्त्रितः ॥२८३ ॥ प्रसीद मम देवेश त्वमेव शरणं
मम ॥ त्वङ्गतिस्त्वं प्रतिष्ठा च न चान्यास्ति न मे गतिः ॥ २८४ ॥ स्तुत्वैवं स महादेवं विरराम प्रजापतिः ॥ भगवानपि सुप्रीतः पुनर्दक्षमभाष
त ॥२८५॥ परितुष्टोऽस्मि ते दक्ष स्तवेनानेन सुव्रत ॥ बहुनात्र किमुक्तेन मत्समीपं गमिष्यसि ॥२८६॥ अथैनमब्रवीद्वाक्यं त्रैलोक्याधिपतिर्भवः ॥
कृत्वाश्वासकरं वाक्यं वाक्यज्ञो वाक्यमाह तम् ॥ २८७ ॥ दक्ष दक्ष न कर्त्तव्यो मन्युर्विघ्नमिमं प्रति ॥ अहं यज्ञहा न त्वन्यो दृश्यते तत्पुरा त्वया ॥
॥ २८८ ॥ भूयश्च तं वरमिमं मत्तो गृह्णीष्व सुव्रत ॥ प्रसन्नवदनो भूत्वा त्वमेकाग्रमनाः शृणु ॥ २८९ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥
प्रजापते मत्प्रसादात् फलभागी भविष्यसि ॥ २९० ॥ वेदान् षडङ्गानुद्धृत्य साङ्ख्यान्योगांश्च कृत्स्नशः ॥ तपश्च विपुलन्तप्त्वा दुश्चरं देवदानवैः ॥
॥ २९१ ॥ अर्थैर्दशार्द्धसंयुक्तैर्गूढमप्राज्ञनिर्म्मितम् ॥ वर्णाश्रमकृतैर्धर्म्मैर्विपरीतं क्वचित्समम् ॥ २९२ ॥ श्रुत्यर्थैरध्यवसितं पशुपाशविमोक्षणम् ॥
सर्वेषामाश्रमाणान्तु मया पाशुपतं व्रतम् ॥ उत्पादितं शुभं दक्ष सर्वपापविमोक्षणम् ॥ २९३ ॥ अस्य चीर्णस्य यत्सम्यक् फलं भवति पुष्कलम् ॥
तदस्तु ते महाभाग मानसस्त्यज्यतां ज्वरः ॥ २९४ ॥ एवमुक्त्वा महादेवः सपत्नीकः सहानुगः ॥ अदर्शनमनुप्राप्तो दक्षस्यामितविक्रमः ॥ २९५ ॥
अवाप्य च तदा भागं यथोक्तं ब्रह्मणा भवः ॥ ज्वरञ्च सर्वधर्म्मज्ञो बहुधा व्यभजत्तदा॥शान्त्यर्थं सर्वभूतानां शृणुध्वन्तत्र वै द्विजाः ॥ २९६ ॥ शी

षंभितापो नागानां पर्वतानां शिलारुजः ॥ अपान्तु नालिकां विद्यान्निर्मोकम्भुजगेष्वपि ॥ २९७ ॥ खोरकः सौरभेयाणां ऊषरः पृथिवीतले ॥
इभानामपि धर्म्मज्ञ दृष्टिप्रत्यवरोधनम् ॥२९८॥ रन्ध्रोद्भूतं तथाश्वानां शिखोद्भेदश्च बर्हिणाम् ॥ नेत्ररोगः कोकिलानां ज्वरः प्रोक्तो महात्मभिः॥२९९॥
अजानां पित्तभेदश्च सर्वेषामिति नः श्रुतम् ॥ शुकानामपि सर्वेषां हिमिका प्रोच्यते ज्वरः ॥ शार्दूलेष्वपि वै विप्राः श्रमो ज्वर इहोच्यते ॥ ३०० ॥
मानुषेषु तु सर्वज्ञ ज्वरो नामैष कीर्तितः ॥ मरणे जन्मनि तथा मध्ये च विशते सदा ॥ ३०१ ॥ एतन्माहेश्वरं तेजो ज्वरो नाम सुदारुणः ॥
नमस्यश्चैव मान्यश्च सर्वप्राणिभिरीश्वरः ॥ ३०२ ॥ इमां ज्वरोत्पत्तिमदीनमानसः पठेत्सदा यः सुसमाहितो नरः ॥ विमुक्तरोगः स नरो मुदा युतो
लभेत कामान् स यथामनीषितान् ॥ ३०३ ॥ दक्षप्रोक्तं स्तवञ्चापि कीर्त्तयेद्यः शृणोति वा ॥ नाशुभं प्राप्नुयात् किञ्चिद्दीर्घञ्चायुरवाप्नुयात् ॥ ३०४ ॥
यथा सर्वेषु देवेषु वरिष्ठो योगवान् हरः ॥ तथा स्तवो वरिष्ठोऽयं स्तवानां ब्रह्मनिर्मितः ॥ ३०५ ॥ यशोराज्यसुखैश्वर्य्यवित्तायुर्धनकाङ्क्षिभिः ॥
स्तोतव्यो भक्तिमास्थाय विद्याकामैश्च यत्नतः ॥ ३०६ ॥ व्याधितो दुःखितो दीनश्चौरत्रस्तो भयार्दितः ॥ राजकार्य्यनियुक्तो वा मुच्यते महतो भयात्
॥ ३०७ ॥ अनेन चैव देहेन गणानां स गणाधिपः ॥ इह लोके सुखं प्राप्य गण एवोपपद्यते ॥ ३०८ ॥ न च यक्षाः पिशाचा वा न नागा न विनायकाः ॥
कुर्य्युर्विघ्नं गृहे तस्य यत्र संस्तूयते भवः ॥ ३०९ ॥ शृणुयाद्वा इदं नारी सुभक्त्या ब्रह्मचारिणी ॥ पितृभिर्भर्तृपक्षाभ्यां पूज्या भवति देववत् ॥ ३१० ॥
शृणुयाद्वा इदं सर्वं कीर्त्तयेद्वाप्यभीक्ष्णशः ॥ तस्य सर्वाणि कार्य्याणि सिद्धिं गच्छन्त्यविघ्नतः ॥ ३११ ॥ मनसा चिन्तितं यच्च यच्च वाचाप्युदाहृतम् ॥
सर्वं सम्पद्यते तस्य स्तवनस्यानुकीर्त्तनात् ॥ ३१२ ॥ देवस्य सगुहस्याथ देव्या नन्दीश्वरस्य तु ॥ बलिं विभवतः कृत्वा दमेन नियमेन च ॥ ३१३ ॥
ततः स युक्तो गृह्णीयान्नामान्याशु यथाक्रमम् ॥ ईप्सितान् लभतेऽत्यर्थं कामान् भोगांश्च मानवः ॥ मृतश्च स्वर्गमाप्नोति स्त्रीसहस्रपरिवृतः ॥ ३१४ ॥ सर्व
कर्म्मसु युक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ॥ पठन् दक्षकृतं स्तोत्रं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ मृतश्च गणसालोक्यं पूज्यमानः सुरासुरैः ॥ ३१५ ॥ वृषेव विधियुक्ते
न विमानेन विराजते ॥ आभूतसंप्लवस्थायी रुद्रस्यानुचरो भवेत् ॥ ३१६ ॥ इत्याह भगवान् व्यासः पराशरसुतः प्रभुः ॥ नैतद्वेदयते कश्चिन्नेदं श्राव्यन्तु
कस्यचित् ॥ ३१७ ॥ श्रुत्वैतत्परमं गुह्यं येऽपि स्युः पापकारिणः ॥ वैश्याः स्त्रियश्च शूद्राश्च रुद्रलोकमवाप्नुयुः ॥ ३१८ ॥ श्रावयेद्यस्तु विप्रेभ्यः सदा
पर्व्वसु पर्व्वसु ॥ रुद्रलोकमवाप्नोति द्विजो वै नात्र संशयः ॥ ३१९ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते दक्षशापवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥
॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ इत्येषा समनुज्ञाता कथा पापप्रणाशिनी ॥ या दक्षमधिकृत्येह कथा शर्व्वादुपागता ॥ १ ॥ पितृवंशप्रसङ्गेन कथा ह्येषा

प्रकीर्त्तिता ॥ पितृणामानुपूर्व्येण देवान् वक्ष्याम्यतः परम् ॥२॥त्रेतायुगमुखे पूर्व्वमासन् स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ देवा यामा इति ख्याताः पूर्वं ये यज्ञसूनवः
॥ ३ ॥ अजिता ब्रह्मणः पुत्रा जिता जिदजिताश्च ये ॥ पुत्राः स्वायम्भुवस्यैते शुक्रनाम्ना तु मानसाः ॥ ४ ॥ तृप्तिमन्तो गणा ह्येते देवानान्तु त्रयः स्मृ
ताः ॥ छन्दोगास्तु त्रयस्त्रिंशत्सर्वे स्वायम्भुवस्य ह ॥ ५ ॥ यदुर्य्ययातिर्द्वौ देवौ दीधयः स्रवसो मतिः ॥ विभासश्च ऋतुश्चैव प्रजातिर्विशतो द्युतिः ॥
॥६ ॥ वायसो मङ्गलश्चैव यामा द्वादश कीर्त्तिताः ॥ अभिमन्युरुग्रदृष्टिः समयोऽथ शुचिश्रवाः ॥ केवलो विश्वरूपश्च सुपक्षो मधुपस्तथा ॥ ७ ॥ तुरीयो
निर्हपुश्चैव युक्तो ग्रावाजिनस्तु ते ॥ यमिनो विश्वदेवाद्यं यविष्ठोऽमृतवानपि ॥ ८ ॥ अजिरो विभुर्विभावश्च मृलिकोऽथ दिदेहकः ॥ श्रुतिश्रृणो बृहच्छु
क्रो देवा द्वादश कीर्त्तिताः ॥ ९ ॥ आसन् स्वायम्भुवस्यैते अन्तरे सोमपायिनः ॥ त्विषिमन्तो गणा ह्येते वीर्य्यवन्तो महाबलाः ॥ १० ॥ तेषामिन्द्रः
सदा ह्यासीद्विश्वभुक् प्रथमो विभुः ॥ असुरा ये तदा तेषामासन् दायादबान्धवाः ॥ ११ ॥ सुपर्णयक्षगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ॥ अष्टौ ते पितृ
भिः सार्द्धं नासत्या देवयोनयः ॥ १२ ॥ स्वायम्भुवेऽन्तरेऽतीताः प्रजास्त्वासां सहस्रशः ॥ प्रभावरूपसम्पन्ना आयुषा च बलेन च ॥ १३ ॥ विस्त
राद्दिह नोच्यन्ते मा प्रसङ्गो भवत्विह ॥ स्वायम्भुवो निसर्गश्च विज्ञेयः साम्प्रतं मनुः ॥ १४ ॥ अतीते वर्त्तमानेन दृष्टो वैवस्वतेन सः ॥ प्रजाभिर्देवता
भिश्च ऋषिभिः पितृभिः सह॥१५॥तेषां सप्तर्षयः पूर्व्वमासन्ये तान् निबोधत॥ भृग्वङ्गिरा मरीचिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः॥१६॥अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च स
प्त स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ अग्नीध्रश्चातिबाहुश्च मेधा मेधातिथिर्वसुः ॥१७॥ ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्यः सवनः पुत्र एव च ॥ मनोः स्वायम्भुवस्यैते दश
पुत्रा महौजसः॥१८॥ वायुप्रोक्ता महासत्वा राजानः प्रथमेऽन्तरे ॥ सासुरन्तत्सगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम्॥सपिशाचमनुष्यञ्च सुपर्णाप्सरसाङ्गणम्॥१९॥
नो शक्यमानुपूर्व्येण वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ बहुत्वान्नामधेयानां सङ्ख्या तेषां कुले तथा ॥ २० ॥ या वै व्रजकुलाख्यास्तु आसन् स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ का
लेन बहुनातीता अयनाब्दयुगक्रमैः ॥ २१ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ क एष भगवान् कालः सर्वभूतापहारकः ॥ कस्य योनिः किमादिश्च किन्तत्त्वं
स किमात्मजः ॥ २२ ॥ किमस्य चक्षुः का मूर्त्तिः के चास्यावयवाः स्मृताः ॥ किंनामधेयः कोऽस्यात्मा एतत् प्रब्रूहि पृच्छताम् ॥ २३ ॥ ॥ सूत
उवाच ॥ ॥ श्रूयतां कालसद्भावः श्रुत्वा चैवावधार्य्यताम् ॥ सूर्य्ययोनिर्निमेषादिः सङ्ख्याचक्षुः स उच्यते ॥ २४ ॥ मूर्त्तिरस्य त्वहोरात्रे निमेषावयव
श्च सः ॥ संवत्सरशतं त्वस्य नाम चास्य कलात्मकम् ॥ साम्प्रतानागतातीतकालात्मा स प्रजापतिः ॥२५॥ पञ्चानां प्रविभक्तानां कालावस्थान्निबोध
त ॥ दिनार्द्धमासमासैस्तु ऋतुभिस्त्वयनैस्तथा ॥ २६ ॥ संवत्सरस्तु प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः ॥ इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सरः ॥ २७ ॥

वत्सरः पञ्चमस्तेषां कालः स युगसंज्ञितः ॥ तेषान्तु तत्त्वं वक्ष्यामि कीर्त्यमानन्निबोधत ॥ २८ ॥ ऋतुरग्निस्तु यः प्रोक्तः स तु संवत्सरो मतः ॥ आ
दित्ये यस्त्वऽसौ सारः कालाग्निः परिवत्सरः ॥ २९ ॥ शुक्लकृष्णा गतिश्चापि अपां सारमयः स्वगः ॥ स इडावत्सरः सोमः पुराणे निश्चयो मतः ॥ ३० ॥
यश्चायन्तपते लोकांस्तनुभिः सप्तसप्तभिः ॥ आशुकर्त्ता च लोकस्य स वायुरिति वत्सरः ॥ ३१ ॥ अहङ्कारात् रुदन् रुद्रः सद्भूतो ब्रह्मणस्त्वयः ॥ स
रुद्रो वत्सरस्तेषां विजज्ञे नीललोहितः ॥ तेषां हि तत्त्वं वक्ष्यामि कीर्त्यमानं निबोधत ॥ ३२ ॥ अङ्गप्रत्यङ्गसंयोगात् कालात्मा प्रपितामहः ॥ ऋक्सा
मयजुषां योनिः पञ्चानां पतिरीश्वरः ॥ ३३ ॥ सोऽग्निर्य्यजुश्च सोमश्च स भूतः स प्रजापतिः ॥ प्रोक्तः संवत्सरश्चेति सूर्यो योऽग्निर्मनीषिभिः ॥ ३४ ॥
यस्मात् कालविभागानां मासर्त्त्वयनयोरपि ॥ ग्रहनक्षत्रशीतोष्णवर्षायुःकर्म्मणां तथा ॥ योजितः प्रविभागानां दिवसानाञ्च भास्करः ॥ ३५ ॥ वैकारि
कः प्रसन्नात्मा ब्रह्मपुत्रः प्रजापतिः ॥ एकेनैकोऽथ दिवसो मासोऽथर्तुः पितामहः ॥ ३६ ॥ आदित्यः सविता भानुर्जीवनो ब्रह्मसत्कृतः ॥ प्रभवश्चात्य
यश्चैव भूतानां तेन भास्करः ॥ ३७ ॥ ताराभिमानी विज्ञेयस्तृतीयः परिवत्सरः ॥ सोमः सर्वौषधिपतिर्य्यस्मात्स प्रपितामहः ॥ ३८ ॥ आजीवः
सर्वभूतानां योगक्षेमकृदीश्वरः ॥ अवेक्षमाणः सततं बिभर्त्ति जगदंशुभिः ॥ ३९ ॥ तिथीनां पर्व्वसन्धीनां पूर्णिमादर्शयोरपि ॥
योनिर्निशाकरो यश्च योऽमृतात्मा प्रजापतिः ॥ ४० ॥ तस्मात् स पितृमान् सोम ऋग्यजुश्छन्दआत्मकः ॥ प्राणापानसमानाद्यैर्व्यानोदानात्मकैर
पि ॥ ४१ ॥ कर्म्मभिः प्राणिनां लोके सर्वचेष्टाप्रवर्त्तकः ॥ प्राणापानसमानानां वायूनाञ्च प्रवर्त्तकः ॥ ४२ ॥ पञ्चानाञ्चेन्द्रियमनोबुद्धिस्मृतिज
लात्मनाम् ॥ समानकालकरणः क्रियाः सम्पादयन्निव ॥ ४३ ॥ सर्व्वात्मा सर्वलोकानामावहः प्रवहादिभिः ॥ विधाता सर्वभूतानां क्षमी नित्यं प्रभ
ञ्जनः ॥ ४४ ॥ योनिरग्नेरपां भूमेरवेश्चन्द्रमसश्च यः ॥ वायुः प्रजापतिर्भूतं लोकात्मा प्रपितामहः ॥ ४५ ॥ प्रजापतिमुखैर्देवैः सम्यगिष्टफला
र्थिभिः ॥ त्रिभिरेव कपालैस्तु अम्बकैरोषधिक्षये ॥ इज्यते भगवान् यस्मात्तस्मात्र्यम्बक उच्यते ॥ ४६ ॥ गायत्री चैव त्रिष्टुप् च जगती चैव
या स्मृता ॥ त्र्यम्बका नामतः प्रोक्ता योनयः सवनस्य ताः ॥ ४७ ॥ ताभिरेकत्वभूताभिस्त्रिविधाभिः स्ववीर्य्यतः ॥ त्रिसाधनपुरोडाशस्त्रिकपा
लः स वै स्मृतः ॥ ४८ ॥ इत्येतत्पञ्चवर्षं हि युगं प्रोक्तं मनीषिभिः ॥ यच्चैव पञ्चधात्मा वै प्रोक्तः संवत्सरो द्विजैः ॥ सैकं षट्कं विजज्ञेऽथ
मध्वादीनृतवः किल ॥ ४९ ॥ ऋतुपुत्रार्त्तवः पञ्च इति सर्गः समासतः ॥ इत्येष पवमानो वै प्राणिनां जीवितानि तु ॥ ५० ॥ नदीवे
गसमायुक्तं कालो धावति संहरन् ॥ अहोरात्रकरस्तस्मात् स वायुरभवत्पुनः ॥ ५१ ॥ एते प्रजानां पतयः प्रधानाः सर्वदेहिनाम् ॥ पितरः सर्व

लोकानां लोकात्मानः प्रकीर्त्तिताः ॥ ५२ ॥ ध्यायतो ब्रह्मणो वक्त्रादुद्यन् समभवद्भवः ॥ ऋषिर्विप्रो महादेवो भूतात्मा प्रपितामहः ॥ ५३ ॥ ईश्वरः स र्वभूतानां प्रणवायोपपद्यते ॥ आत्मवेशेन भूतानामङ्गप्रत्यङ्गसम्भवः ॥ ५४ ॥ अग्निः संवत्सरः सूर्य्यश्चन्द्रमा वायुरेव च ॥ युगाभिमानी कालात्मा नित्यं सङ्क्षेपकृद्विभुः ॥ उन्मादकोऽनुग्रहकृत्स इद्वत्सर उच्यते ॥ ५५ ॥ रुद्राविष्टो भगवता जगत्यस्मिन् स्वतेजसा ॥ आश्रयाश्रयसंयोगात्तनुभिर्नाम भिस्तथा ॥ ५६ ॥ ततस्तस्य तु वीर्य्येण लोकानुग्रहकारकम् ॥ द्वितीयं भद्रसंयोगं सन्ततस्यैककारकम् ॥ ५७ ॥ देवत्वञ्च पितृत्वञ्च कालत्वञ्चास्य यत्परम् ॥ तस्माद्वै सर्व्वथा भद्रस्तद्वद्भिरभिपूज्यते ॥ ५८ ॥ पतिः पतीनां भगवान् प्रजेशानां प्रजापतिः ॥ भवनः सर्वभूतानां सर्वेषां नीललोहितः ॥ ओषधीः प्रतिसन्धत्ते रुद्रः क्षीणाः पुनः पुनः ॥ ५९ ॥ इत्येषां यदपत्यं वै न तच्छक्यं प्रमाणतः ॥ बहुत्वात् परिसङ्ख्यातुं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥ ६० ॥ इमं वंशं प्रजेशानां महतां पुण्यकर्म्मणाम् ॥ कीर्त्तयन् स्थिरकीर्त्तीनां महतीं सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ६१ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते देववंशवर्णनं नामै कत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ छ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ॥ अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि प्रणवस्य विनिश्चयम् ॥ ओङ्कारमक्षरं ब्रह्म त्रिवर्णश्चादितः स्मृतम् ॥ १ ॥ यो यो यस्य यथा वर्णो विहितो देवतास्तस्था ॥ ऋचो यजूंषि सामानि वायुरग्निस्तथा जलम् ॥ २ ॥ तस्मात्तु अक्षरादेव पुनरन्ये प्रजज्ञिरे ॥ चतुर्दश महात्मा नो देवानां ये तु दैवताः ॥ ३ ॥ तेषु सर्वगतश्चैव सर्वगः सर्वयोगवित् ॥ अनुग्रहाय लोकानामादिमध्यान्त उच्यते ॥ ४ ॥ सप्तर्षयस्तथेन्द्रा ये देवाश्च पितृ भिः सह ॥ अक्षरान्निःसृताः सर्वे देवदेवान्महेश्वरात् ॥ ५ ॥ इहामुत्र हितार्थाय वदन्ति परमं पदम् ॥ पूर्वमेव मयोक्तस्ते कालस्तु युगसंज्ञितः ॥ ६ ॥ कृतं त्रेता द्वापरश्च युगादिः कलिना सह ॥ परिवर्त्तमानैस्तैरेव भ्रममाणेषु चक्रवत् ॥ ७ ॥ देवतास्तु तदोद्विग्नाः कालस्य वशमागताः ॥ न शक्नु वन्ति तन्मानं संस्थापयितुमात्मना ॥ ८ ॥ तदा ते वाग्यता भूत्वा आदौ मन्वन्तरस्य वै ॥ ऋषयश्चैव देवाश्च इन्द्रश्चैव महातपाः ॥ ९ ॥ समाधाय मनस्तीव्रं सहस्रं परिवत्सरान् ॥ प्रपन्नास्ते महादेवं भीताः कालस्य वै तदा ॥ १० ॥ अयं हि कालो देवेशश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्मुखः ॥ कोऽस्य वि द्यान्महादेव अगाधस्य महेश्वर ॥ ११ ॥ अथ दृष्ट्वा महादेवस्तन्तु कालश्चतुर्मुखम् ॥ न भेतव्यमिति प्राह को वः कामः प्रदीयताम् ॥ १२ ॥ तत्करिष्याम्यहं सर्वं न वृथायं परिश्रमः ॥ उवाच देवो भगवान् स्वयङ्कालः सुदुर्जयः ॥ १३ ॥ यदेतस्य मुखं श्वेतं चतुर्जिह्वं हि लक्ष्यते ॥ एतत् कृतयुगं नाम तस्य कालस्य वै मुखम् ॥ असौ देवः सुरश्रेष्ठो ब्रह्मा वैवस्वतो मुखः ॥ १४ ॥ यदेतद्रक्तवर्णाभं तृतीयं वः स्मृतं मया ॥ त्रिजिह्वं लेलिहा नन्तु एतत् त्रेतायुगं द्विजाः ॥ १५ ॥ अत्र यज्ञप्रवृत्तिस्तु जायते हि महेश्वरात् ॥ ततोऽत्र इज्यते यज्ञास्तिस्रो जिह्वास्त्रयोऽग्नयः ॥ इष्ट्वा चैवाग्नयो विप्राः

कालजिह्वा प्रवर्त्तते ॥ १६ ॥ यदेतद्वै मुखं भीमं द्विजिह्वं रक्तपिङ्गलम् ॥ द्विपादोऽत्र भविष्यामि द्वापरं नाम तद्युगम् ॥ १७ ॥ यदेतत् कृष्णवर्णाभन्तुरी
यं रक्तलोचनम् ॥ एकजिह्वं पृथु श्यामं लेलिहानं पुनः पुनः ॥१८॥ ततः कलियुगं घोरं सर्वलोकभयङ्करम् ॥ कल्पस्य तु मुखं ह्येतच्चतुर्थं नाम भीषणम्
॥ १९ ॥ न मुखं नापि निर्वाणं तस्मिन् भवति वै युगे ॥ कालग्रस्ता प्रजा चापि युगे तस्मिन् भविष्यति ॥ २० ॥ ब्रह्मा कृतयुगे पूज्यस्त्रेतायां यज्ञ
उच्यते ॥ द्वापरे पूज्यते विष्णुरहम्पूज्यश्चतुर्ष्वपि ॥ २१ ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च यज्ञश्च कालस्यैव कलास्त्रयः ॥ सर्व्वेष्वेव हि कालेषु चतुर्मूर्तिर्महेश्वरः॥२२॥
अहं जनो जनयिता वः कालः कालप्रवर्त्तकः ॥ युगकर्ता तथा चैव परं परपरायणः ॥ २३ ॥ तस्मात् कलियुगं प्राप्य लोकानां हितकारणात् ॥ अभया
र्थञ्च देवानामुभयोर्लोकयोरपि ॥२४॥ तदा भव्यश्च पूज्यश्च भविष्यामि सुरोत्तमाः ॥ तस्माद्भयं न कार्य्यं च कलिं प्राप्य महौजसः ॥ २५ ॥ एवमुक्ता
स्ततः सर्वा देवता ऋषिभिः सह ॥ प्रणम्य शिरसा देवं पुनरूचुर्जगत्पतिम् ॥२६॥ ॥ देवर्षय ऊचुः ॥ महातेजा महाकायो महावीर्य्यो महाद्युतिः ॥ भीषणः
सर्वभूतानां कथं कालश्चतुर्मुखः ॥२७॥ ॥ महादेव उवाच ॥ एष कालश्चतुर्मूर्तिश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्मुखः॥ लोकसंरक्षणार्थाय अतिक्रामति सर्वशः ॥२८॥ नासाध्यं
विद्यते चास्य सर्वस्मिन् सचराचरे॥कालः सृजति भूतानि पुनः संहरति क्रमात्॥२९॥सर्वे कालस्य वशगा न कालः कस्यचिद्वशे ॥ तस्मात्तु सर्वभूतानि का
लः कलयते सदा॥३०॥विक्रमस्य पदान्यस्य पूर्वोक्तान्येकसततिः॥तानि मन्वन्तराणीह परिवृत्तयुगक्रमात् ॥३१॥ एकं पदं परिक्रम्य पदानामेकसततिः॥
यदाकालः प्रक्रमते तदा मन्वन्तरक्षयः ॥३२॥ एवमुक्त्वा तु भगवान् देवर्षिपितृदानवान् ॥ नमस्कृतश्च तैः सर्वैस्तत्रैवान्तरधीयत॥३३॥ एवं स काले भग
वान् देवर्षिपितृदानवान् ॥ पुनः पुनः संहरते सृजते च पुनः पुनः ॥ ३४ ॥ अतो मन्वन्तरे चैव देवर्षिपितृदानवैः ॥ पूज्यते भगवानीशो भयात्
कालस्य तस्य वै ॥ ३५ ॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कलौ कुर्यात्तपो द्विजः ॥ प्रपन्नस्य महादेवं तस्य पुण्यफलं महत् ॥ तस्माद्देवा दिवङ्गत्वा अवतीर्य्य
च भूतले ॥ ३६ ॥ ऋषयश्चैव देवाश्च कलिम्प्राप्य सुदारुणम् ॥ तप इच्छन्ति भूयिष्ठं कर्त्तुं धर्म्मपरायणाः ॥ अवतारान् कलिं प्राप्य करोति च पुनः
पुनः ॥ ३७ ॥ एवं कालान्तरे सर्वे येऽतीता वै सहस्रशः ॥ वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन् देवराजर्षयस्तथा ॥ ३८ ॥ देवापिः पौरवो राजा मनुश्चेक्ष्वाकुवंश
जाः ॥ महायोगबलोपेताः कालान्तरमुपासते ॥ ३९ ॥ क्षीणे कलियुगे तस्मिंस्तिष्ये त्रेतायुगे कृते ॥ सप्तर्षिभिश्चैव सार्द्धं भाव्ये त्रेतायुगे पुनः ॥ गोत्रा 
णां क्षत्रियाणाञ्च भविष्यास्ते प्रकीर्त्तिताः ॥ ४० ॥ द्वापरान्ते प्रतिष्ठन्ते क्षत्रिया ऋषिभिः सह ॥ कृते त्रेतायुगे चैव तथा क्षीणे च द्वापरे ॥ नराः पा
तकिनो ये वै वर्त्तन्ते ते कलौ स्मृताः ॥ ४१ ॥ मन्वन्तराणां सतानां सान्तानार्थां श्रुतिः स्मृतिः ॥ एवमेतेषु सर्व्वेषु युगक्षयक्रमस्तथा ॥ ४२ ॥ परस्प

रं युगानाञ्च ब्रह्मक्षत्रस्य चोद्भवः ॥ यथा वै प्रकृतिस्तेभ्यः प्रवृत्तानां यथा क्षयम् ॥४३॥ जामदग्न्येन रामेण क्षत्रे निरवशेषिते ॥ क्रियन्ते कुलटाः सर्वाः क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः ॥ द्विवङ्गतानहन्तुभ्यं कीर्त्तयिष्ये निबोधत ॥ ४४ ॥ ऐडामिक्ष्वाकुवंशस्य प्रकृतिं परिचक्षते ॥ राजानः श्रेणिबन्धास्तु तथाऽन्ये क्षत्रिया भुवि ॥ ४५ ॥ ऐडवंशेऽथ सम्भूता यथा चेक्ष्वाकवो नृपाः ॥ तेभ्य एव शतं पूर्णं कुलानामभिषेचितम् ॥ ४६ ॥ तावदेव तु भोजानां विस्तरो द्विगुणः स्मृतः ॥ भोजन्तु त्रिशतं क्षत्रं चतुर्द्धा तद्यथादिशम् ॥ ४७ ॥ तेष्वतीतास्तु राजानो ब्रुवतस्तान्निबोधत ॥ शतं वै प्रतिविन्ध्यानां हैहयानां तथा शतम् ॥ ४८ ॥ धार्त्तराष्ट्रास्त्वेक शतं अशीतिर्जनमेजयाः ॥ शतं वै ब्रह्मदत्तानां कुलानां वीर्यिणां शतम् ॥ ४९ ॥ ततः शतन्तु पौलानां शतं काशिकुशादयः ॥ तथाऽपरं सहस्रन्तु येऽतीताः शशबिन्दवः ॥ इजानास्तेऽश्वमेधैस्तु सर्वे नियुतदक्षिणैः ॥ ५० ॥ एवं संक्षेपतः प्रोक्ता न शक्या विस्तरेण तु ॥ वक्तुं राजर्षयः कृत्स्ना येऽतीतास्तैर्युगैः सह ॥ ५१ ॥ एते ययातिवंशस्य बभूवुर्वंशवर्द्धनाः ॥ कीर्तिता द्युतिमन्तस्ते ये लोकान् धारयन्ति वै ॥ ५२॥ लभन्ते च वरान् पञ्च दुर्लभान् ब्रह्मलौकिकान् ॥ आयुः पुत्रा धनं कीर्तिरैश्वर्य्यं भूतिरेव च ॥ ५३ ॥ धारणाच्छ्रवणाच्चैव पञ्चवर्गस्य धीमताम् ॥ तथोक्ता लौकिकाश्चैव ब्रह्मलोकं व्रजन्ति वै ॥५४॥ चत्वार्य्याहुः सहस्राणि वर्षाणां च कृतं युगम् ॥ तस्य तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥ ५५ ॥ कृते वै प्रक्रियापादश्चतुःसाहस्र उच्यते ॥ तस्माच्चतुःशतं सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥ ५६ ॥ त्रेतादीनि सहस्राणि संख्यया मुनिभिः सह ॥ तस्यापि त्रिशती सन्ध्या सन्ध्यांशास्त्रिशतः स्मृतः ॥ ५७ ॥ अनुषङ्गपादस्त्रेतायास्त्रिसाहस्रस्तु सङ्ख्यया ॥ द्वापरे द्वे सहस्रे तु वर्षाणां सम्प्रकीर्तितम् ॥ ५८ ॥ तस्यापि द्विशती सन्ध्या सन्ध्यांशो द्विशतस्तथा ॥ उपोद्घातस्तृतीयस्तु द्वापरे पाद उच्यते ॥५९॥ कलिं वर्षसहस्रन्तु प्राहुः सङ्ख्याविदो जनाः ॥ तस्यापि शतिका सन्ध्या सन्ध्यांशः शतमेव च ॥ ६० ॥ संहारपादः संख्यातश्चतुर्थो वै कलौ युगे ससन्ध्यानि सहांशानि चत्वारि तु युगानि वै ॥ ६१ ॥ एतद् द्वादशसाहस्रं चतुर्युगमिति स्मृतम् ॥ एवं पादैः सहस्राणि श्लोकानां पञ्च पञ्च च ॥ ६२ ॥ सन्ध्यासन्ध्यांशकैरेव द्वे सहस्रे तथाऽपरे ॥ एवं द्वादशसाहस्रं पुराणं कवयो विदुः ॥ ६३ ॥ यथा वेदश्चतुष्पादश्चतुष्पादं तथा युगम् ॥ यथा युगश्चतुष्पादं विधात्रा विहितं स्वयम् ॥चतुष्पादं सुराणान्तु ब्रह्मणा विहितं पुरा ॥६४॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते युगधर्म्मनिरूपणं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ॥३२॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ॥ तुल्याभिमानिनः सर्वे जायन्ते नामरूपतः ॥ १ ॥ देवाश्च विविधा ये च तस्मिन् मन्वन्तरेऽधिपाः ॥ ऋषयो मानवाश्चैव सर्वे तुल्याभिमानिनः ॥ २ ॥ महर्षिसर्गः प्रोक्तो वै वंशं स्वायम्भुवस्य तु ॥ विस्तरेणानुपूर्व्या च कीर्त्त्यमानं

निबोधत ॥ ३ ॥ मनोः स्वायम्भुवस्यासन् दश पौत्रास्तु तत्समाः ॥ यैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपसमन्विता ॥ ४ ॥ ससमुद्राकरवती प्रतिवर्षन्निवेशिता ॥ स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमाद्ये त्रेतायुगे तदा ॥ ५ ॥ प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायम्भुवस्य तु ॥ प्रजासर्गतपोयोगैस्तैरियं विनिवेशिता ॥ ६ ॥ प्रियव्रतात् प्रजावन्तः वीरात् कन्या व्यजायत ॥ कन्या सा तु महाभागा कर्द्दमस्य प्रजापतेः ॥ ७ ॥ कन्ये द्वे शतपुत्रांश्च सम्राट् कुक्षिश्च ते उभे ॥ तयोर्वै भ्रातरः शूराः प्रजापतिसमा दश ॥ ८ ॥ अग्नीध्रश्च वपुष्मांश्च मेधा मेधातिथिर्विभुः ॥ ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्यः सवनः सर्व्व एव च ॥९॥ प्रियव्रतोऽभिषिच्यैतान् सप्त सप्तसु पार्थिवान् ॥ द्वीपेषु तेषु धर्मेण द्वीपांस्तांश्च निबोधत ॥ १० ॥ जम्बूद्वीपेश्वरं चक्रे अग्नीध्रन्तु महाबलम् ॥ प्लक्षद्वीपेश्वरश्चापि तेन मेधातिथिः कृतः ॥ ११ ॥ शाल्मलौ तु वपुष्मन्तं राजानमभिषिक्तवान् ॥ ज्योतिष्मन्तं कुशद्वीपे राजानं कृतवान् प्रभुः ॥ १२ ॥ द्युतिमन्तञ्च राजानं क्रौञ्चद्वीपे समादिशत् ॥ शाकद्वीपेश्वरञ्चापि हव्यञ्चक्रे प्रियव्रतः ॥ १३ ॥ पुष्कराधिपतिञ्चापि सवनं कृतवान् प्रभुः ॥ पुष्करे सवनस्यापि महावीतः सुतोऽभवत् ॥ धातकिश्चैव द्वावेतौ पुत्रौ पुत्रवतां वरौ ॥ १४ ॥ महावीतं स्मृतं वर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः ॥ नाम्ना तु धातकेश्चापि धातकीखण्ड उच्यते ॥ १५ ॥ हव्यो व्यजनयत् पुत्रान् शाकद्वीपेश्वरान् प्रभुः ॥ जलदञ्च कुमारञ्च सुकुमारं मणीचकम् ॥ वसुमोदं सुमोदाकं सप्तमञ्च महाद्रुमम् ॥ १६ ॥ जलदं जलदस्याथ वर्षं प्रथममुच्यते ॥ कुमारस्य च कौमारं द्वितीयं परिकीर्त्तितम् ॥ १७ ॥ सुकुमारं तृतीयन्तु सुकुमारस्य कीर्त्तितम् ॥ मणीचकस्य चतुर्थं मणीचकमिहोच्यते ॥ १८ ॥ वसुमोदस्य वै वर्षं पञ्चमं वसुमोदकम् ॥ मोदाकस्य तु मोदाकं वर्षं षष्ठं प्रकीर्त्तितम् ॥१९॥ महाद्रुमस्य नाम्ना तु सप्तमन्तु महाद्रुमम् ॥ एषान्तु नामभिस्तानि सप्तवर्षाणि तत्र वै ॥२०॥ क्रौञ्चद्वीपेश्वरस्यापि पुत्रा द्युतिमतस्तु वै ॥ कुशलो मनुगश्चोष्णः पीवरश्चान्धकारकः ॥ मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सुता द्युतिमतस्तु वै ॥ २१ ॥ तेषां स्वनामभिर्देशाः क्रौञ्चद्वीपाश्रयाः शुभाः ॥ उष्णस्योष्णः स्मृतो देशः पीवरस्यापि पीवरः ॥ २२ ॥ अन्धकारकदेशस्तु अन्धकारश्च कीर्त्त्यते ॥ मुनेस्तु मुनिदेशो वै दुन्दुभेर्दुन्दुभिः स्मृतः ॥ एते जनपदाः सप्त क्रौञ्चद्वीपे तु भास्वराः ॥ २३ ॥ ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्तैते सुमहौजसः ॥ उद्भिदो वेणुमांश्चैव स्वैरथो लवणो धृतिः ॥ षष्ठः प्रभाकरश्चैव सप्तमः कपिलः स्मृतः ॥२४॥ उद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम् ॥ तृतीयं स्वैरथाकारं चतुर्थं लवणं स्मृतम् ॥ २५ ॥ पञ्चमं धृतिमद्वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम् ॥ सप्तमं कपिलं नाम कपिलस्य प्रकीर्त्तितम् ॥२६॥ तेषां द्वीपाः कुशद्वीपे तत्सनामान एव तु ॥ आश्रमाचारयुक्ताभिः प्रजाभिः समलङ्कृताः ॥ २७ ॥ शाल्मलस्येश्वराः सप्त पुत्रास्ते तु वपुष्मतः ॥ श्वेतश्च हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा ॥ वैद्युतो मानसश्चैव सुप्रभः

सप्तमस्तथा ॥ २८ ॥ श्वेतस्य श्वेतदेशस्तु रोहितस्य च रोहितः ॥ जीमूतस्य च जीमूतो हरितस्य च हारितः ॥ २९ ॥ वैद्युतो वैद्युतस्यापि मानस
स्यापि मानसः ॥ सुप्रभः सुप्रभस्यापि सप्तैते देशपालकाः ॥ ३० ॥ सप्तद्वीपे तु वक्ष्यामि जम्बूद्वीपादनन्तरम् ॥ सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरा
नृपाः ॥३१॥ ज्येष्ठः शान्तभयस्तेषां सप्तवर्षाणि तानि वै ॥ तस्माच्छान्तभयाच्चैव शिशिरस्तु सुखोदयः ॥ आनन्दश्च ध्रुवश्चैव क्षेमकश्च शिवस्तथा ॥३२॥
तानि तेषां सनामानि सप्तवर्षाणि भागशः ॥ निवेशितानि तैस्तानि पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ ३३ ॥ मेधातिथेस्तु पुत्रैस्तैः सप्तद्वीपनिवासिभिः ॥
वर्णाश्रमाचारयुक्ताः प्लक्षद्वीपे प्रजाः कृताः ॥ ३४ ॥ प्लक्षद्वीपादिकेष्वेव शाकद्वीपान्तरेषु वै ॥ ज्ञेयः पञ्चसु धर्मो वै वर्णाश्रमविभागशः ॥ ३५ ॥
सुखमायुश्च रूपञ्च बलं धर्मश्च नित्यशः ॥ पञ्चस्वेतेषु द्वीपेषु सर्वं साधारणं स्मृतम् ॥ ३६ ॥ सप्तद्वीपपरिक्रान्तं जम्बूद्वीपं निबोधत ॥
आग्नीध्रं ज्येष्ठदायादं कन्यापुत्रं महाबलम् ॥ प्रियव्रतोऽभ्यषिञ्चत्तं जम्बूद्वीपेश्वरं नृपम् ॥३७॥ तस्य पुत्रा बभूवुर्हि प्रजापतिसमौजसः ॥ ज्येष्ठो नाभिरि
ति ख्यातस्तस्य किम्पुरुषोऽनुजः ॥ ३८ ॥ हरिवर्षस्तृतीयस्तु चतुर्थोऽभूदिलावृतः ॥ रम्यः स्यात्पञ्चमः पुत्रो हरिन्मान् षष्ठ उच्यते ॥ ३९ ॥ कुरु
स्तु सप्तमस्तेषां भद्राश्वो ह्यष्टमः स्मृतः ॥ नवमः केतुमालस्तु तेषां देशान्निबोधत ॥ ४० ॥ नाभेस्तु दक्षिणं वर्षं हिमाह्वन्तु पिता ददौ ॥ हेम
कूटन्तु यद्वर्षं ददौ किम्पुरुषाय तत् ॥ ४१ ॥ नैषधं यत् स्मृतं वर्षं हरिवर्षाय तद्ददौ ॥ मध्यमं यत्सुमेरोस्तु स ददौ तदिलावृते ॥ ४२ ॥ नीलन्तु
यत् स्मृतं वर्षं रम्यायैतत् पिता ददौ ॥ श्वेतं यदुत्तरं तस्मात् पित्रा दत्तं हरिन्मते ॥ ४३ ॥ यदुत्तरं शृङ्गवतो वर्षं तत् कुरवे ददौ ॥ वर्षं माल्यवत
श्चापि भद्राश्वाय न्यवेदयत् ॥ ४४ ॥ गन्धमादनवर्षन्तु केतुमाले न्यवेदयत् ॥ इत्येतानि महान्तीह नववर्षाणि भागशः ॥ ४५ ॥ आग्नीध्रस्तेषु स
र्वेषु पुत्रांस्तानभ्यषिञ्चत ॥ यथाक्रमं स धर्म्मात्मा ततस्तु तपसि स्थितः ॥ ४६ ॥ इत्येतैः सप्तभिः कृत्स्नाः सप्तद्वीपा निवेशिताः ॥ प्रियव्रतस्य
पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायम्भुवस्य तु ॥ ४७ ॥ यानि किम्पुरुषाद्यानि वर्षाण्यष्टौ शुभानि तु ॥ तेषां स्वभावतः सिद्धिः सुखप्राया ह्ययत्नतः ॥ ४८ ॥
विपर्य्ययो न तेष्वस्ति जरामृत्युभयं न च ॥ धर्म्माधर्म्मौ न तेष्वास्तां नोत्तमाधममध्यमाः ॥ न तेष्वस्ति युगावस्था क्षेत्रेष्वेव तु सर्व्वशः ॥ ४९ ॥
नाभेर्हि सर्गं वक्ष्यामि हिमाह्वे तन्निबोधत ॥ नाभिस्त्वजनयत् पुत्रं मेरुदेव्यां महाद्युतिः ॥ ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्व्वक्षत्रस्य पूर्व्वजम् ॥ ५० ॥
ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्रशताग्रजः ॥ सोऽभिषिच्याथ भरतः पुत्रं प्राव्राज्यमास्थितः ॥ ५१ ॥ हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत् ॥ तस्मात्त
द्भारतं वर्षं तस्य नाम्ना विदुर्बुधाः ॥ ५२ ॥ भरतस्यात्मजो विद्वान् सुमतिर्नाम धार्म्मिकः ॥ बभूव तस्मिंस्तद्राज्यं भरतः संन्ययोजयत् ॥ पुत्र

संक्रामितश्रीको वनं राजा विवेश सः ॥ ५३ ॥ तेजसस्तु सुतश्चापि प्रजापतिरमित्रजित् ॥ तैजसस्यात्मजो विद्वान् इन्द्रद्युम्न इति श्रुतः ॥ ५४ ॥ पर
मेष्ठी सुतश्चाथ निधने तस्य शोभनः ॥ प्रतीहारकुले तस्य नाम्ना जज्ञे तदन्वयात् ॥ प्रतिहर्त्तेति विख्यातो जज्ञे तस्यापि धीमतः ॥ ५५ ॥
उन्नेता प्रतिहर्त्तुस्तु भुवस्तस्य सुतः स्मृतः ॥ उद्गीथस्तस्य पुत्रोऽभूत्प्रस्तावश्चापि तत्सुतः ॥ ५६ ॥ प्रस्तावस्तु विभुः पुत्रः पृथुस्तस्य सुतो मतः ॥
पृथोश्चापि सुतो नक्तो नक्तस्यापि गयः स्मृतः ॥ ५७ ॥ गयस्य तु नरः पुत्रो नरस्यापि सुतो विराट् ॥ विराट्सुतो महावीर्य्यो धीमांस्तस्य सुतोऽभ
वत् ॥ ५८ ॥ धीमतश्च महान् पुत्रो महतश्चापि भौवनः ॥ भौवनस्य सुतस्त्वष्टा अरिजस्तस्य चात्मजः ॥ ५९ ॥ अरिजस्य रजः पुत्रः शतजि
द्रजसो मतः ॥ तस्य पुत्रशतन्त्वासीद्राजानः सर्व एव ते ॥ ६० ॥ विश्वज्योतिःप्रधाना यैस्तैरिमा वर्द्धिताः प्रजाः ॥ तैरिदं भारतं वर्षं सप्तख
ण्डं कृतं पुरा ॥ ६१ ॥ तेषां वंशप्रसूतैस्तु भुक्तेयं भारती धरा ॥ कृतत्रेतादियुक्तानि युगाख्यान्येकसप्ततिः ॥ ६२ ॥ येऽतीतास्तैर्युगैः सार्द्धं रा
जानस्ते तदन्वयाः ॥ स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्व्वं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६३ ॥ एष स्वायम्भुवः सर्गो येनेदं पूरितं जगत् ॥ ऋषिभिर्देवतैश्चापि पितृगन्ध
र्व्वराक्षसैः ॥ ६४ ॥ यक्षभूतपिशाचैश्च मनुष्यमृगपक्षिभिः ॥ तेषां सृष्टिरियं लोके युगैः सह विवर्त्तते ॥ ६५ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते स्वायम्भु
ववंशानुकीर्त्तनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ एवं प्रजासन्निवेशं श्रुत्वा च ऋषिपुङ्गवः ॥ पप्रच्छ निपुणः सूतं पृथि
व्यायामविस्तरौ ॥ १ ॥ कति द्वीपाः समुद्रा वा पर्व्वताश्च कति प्रभो ॥ कियन्ति चैव वर्षाणि तेषु नद्यश्च काः स्मृताः ॥ २ ॥ महाभूतप्रमाणञ्च लो
कालोकौ तथैव च ॥ पर्य्यायपरिमाण्यञ्च गतिश्चन्द्रार्कयोस्तथा ॥ एतत् प्रब्रूहि नः सर्व्वं विस्तरेण यथा तथा ॥ ३ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ अत
ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि पृथिव्यायामविस्तरम् ॥ सङ्ख्याञ्चैव समुद्राणां द्वीपानाञ्चैव विस्तरम् ॥ ४ ॥ यावन्ति चैव वर्षाणि तेषु नद्यश्च याः स्मृताः ॥ महाभूत
प्रमाणञ्च लोकालोकौ तथैव च ॥ पर्य्यायपारिमाण्यञ्च गतिश्चन्द्रार्कयोस्तथा ॥ ५ ॥ द्वीपभेदसहस्राणि सप्तस्वन्तर्गतानि वै ॥ न शक्यन्ते प्रमाणेन
वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ ६ ॥ सप्तद्वीपन्तु वक्ष्यामि चन्द्रादित्यग्रहैः सह ॥ येषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ॥ ७ ॥ अचिन्त्याः खलु
ये भावा न तांस्तर्केण भावयेत् ॥ प्रकृतिभ्यः परं यच्च तन्नित्यञ्च प्रचक्ष्यते ॥ ८ ॥ नववर्षं प्रवक्ष्यामि जम्बूद्वीपं यथा तथा ॥ ॥५१॥
विस्तरान्मण्डलाच्चैव योजनैस्तन्निबोधत ॥ ९ ॥ शतमेकं सहस्राणां योजनानां प्रमाणतः ॥ नानाजनपदाकीर्णैः पुरैश्च विविधैः
शुभैः ॥ १० ॥ सिद्धचारणगन्धर्व्वपर्व्वतैरुपशोभितम् ॥ सर्व्वधातुनिबद्धैश्च शिलाजालसमुद्भवैः ॥ पर्व्वतप्रभवाभिश्च नदीभिः पर्व्वतैस्तथा ॥ ११ ॥

जम्बूद्वीपः पृथुः श्रीमान् सर्व्वतः परिवारितः ॥ नवभिश्चावृतः सर्व्वैर्भुवनैर्भूतभावनैः ॥ लावणेन समुद्रेण सर्व्वतः परिवारितः ॥ १२ ॥ जम्बूद्वीपस्य विस्तारात् समेन तु समन्ततः ॥ प्रागायताः सुपर्वाणः षडिमे वर्षपर्व्वताः ॥ अवगाढा उभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ॥ १३ ॥ हिमप्रायश्च हिमवान् हेमकूटश्च हेमवान् ॥ तरुणादित्यवर्णाभो हैरण्यो निषधः स्मृतः ॥ १४ ॥ चातुर्वर्णस्तु सौवर्णो मेरुश्चोच्यतमः स्मृतः ॥ वृत्ताकृतिप्रमाणश्च चतुरस्रः समुच्छ्रितः ॥ १५ ॥ नानावर्णस्तु पार्श्वेषु प्रजापतिगुणान्वितः ॥ नाभिवन्धनसम्भूतो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ १६ ॥ पूर्व्वतः श्वेतवर्णोऽसौ ब्राह्मण्यस्तस्य तेन तत् ॥ पीतश्च दक्षिणेनासौ तेन वैश्यत्वमिष्यते ॥ १७ ॥ भृङ्गपत्रनिभश्चासौ पश्चिमेन महाबलः ॥ तेनास्य शूद्रता दृष्टा मेरोर्नानार्थकारणात् ॥ १८ ॥ पार्श्वमुत्तरतस्तस्य रक्तवर्णं स्वभावतः ॥ तेनास्य क्षत्रता च स्यादिति वर्णाः प्रकीर्त्तिताः ॥ व्यक्तः स्वभावतः प्रोक्तो वर्णतः परिमाणतः ॥ १९ ॥ नीलश्च वैदूर्य्यमयः श्वेतशृङ्गो हिरण्मयः ॥ मयूरबर्हवर्णस्तु शातकौम्भस्तु शृङ्गवान् ॥ २० ॥ एते पर्व्वतराजानः सिद्धचारणसेविताः ॥ तेषामन्तरविष्कम्भो नवसाहस्र उच्यते ॥ २१ ॥ मध्ये त्विलावृतं यस्तु महामेरोः समन्ततः ॥ नवैव तु सहस्राणि विस्तीर्णः पर्व्वतस्तु सः ॥ मध्ये तस्य महामेरोर्निर्धूम इव पावकः ॥ २२ ॥ वेद्यर्द्धं दक्षिणं मेरोरुत्तरार्द्धं तथोत्तरम् ॥ वर्षाणि यानि सप्तात्र तेषां ये वर्षपर्व्वताः ॥ द्वे द्वे सहस्रे विस्तीर्णा योजनानि समुच्छ्रयात् ॥ २३ ॥ जम्बूद्वीपस्य विस्तारात्तेषामायाम उच्यते ॥ योजनानां सहस्राणि शते द्वे मध्यमौ गिरी ॥ २४ ॥ नीलश्च निषधश्चैव ताभ्यां हीनास्तु येऽपरे ॥ श्वेतश्च हेमकूटश्च हिमवान् शृङ्गवांश्च यः ॥ २५ ॥ नवतिर्द्वाविंशीतिर्द्वौ सहस्राण्यायतास्तु ये ॥ तेषां मध्ये जनपदास्तानि वर्षाणि सप्त वै॥२६॥सम्पातविषमैस्तैस्तु पर्व्वतैरावृतानि च ॥ सन्ततानि नदीभेदैरगम्यानि परस्परम् ॥ वसन्ति तेषु सत्वानि नाना जातीनि भागशः ॥२७॥ इदं हैमवतं वर्षं भारतं नाम विश्रुतम् ॥ हेमकूटं परं तस्मान्नाम्ना किम्पुरुषं स्मृतम् ॥ २८ ॥ नैषधं हेमकूटन्तु हरिवर्षं तदुच्यते॥ हरिवर्षात्परश्चैव मेरोश्च तदिलावृतम् ॥ २९ ॥ इलावृतपरं नीलं रम्यकं नाम विश्रुतम् ॥ रम्यात्परतरं श्वेतं विश्रुतन्तद्धिरण्मयम् ॥ हिरण्मयात्परश्चापि शृङ्गवांस्तु कुरु स्मृतम्॥३०॥ धनुःसंस्थे च विज्ञेये द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे ॥ दीर्घाणि तत्र चत्वारि मध्यमन्तदिलावृतम् ॥३१॥ अर्वाक्च निषधस्याथ वेद्यर्द्धं दक्षिणं स्मृतम् ॥परं नीलवतो यच्च वेद्यर्द्धन्तु तदुत्तरम्॥ वेद्यर्द्धे दक्षिणे त्रीणि वर्षाणि त्रीणि चोत्तरे॥३२॥तयोर्मध्ये तु विज्ञेयं मेरुमध्यमिलावृतम् ॥ दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु॥३३॥उदगायतो महाशैलो माल्यवान् नाम पर्व्वतः॥ योजनानां सहस्रोरुरानीलनिषधायतः॥ आयामतश्चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि प्रकीर्त्तितः॥३४॥ तस्य प्रतीच्यां विज्ञेयः पर्वतो गन्धमादनः ॥ आयामादथ विस्तारान्माल्यवानिति विश्रुतः ॥ ३५ ॥

परिमण्डलयोर्मध्ये मेरुरुत्तमपर्वतः ॥ चतुर्वर्णः सुसौवर्णश्चतुरस्रः समुच्छ्रितः ॥ अव्यक्ता धातवः सर्व्वे समुत्पन्ना जलादयः ॥ ३६ ॥ अव्यक्तात् पृथिवीपद्मं मेरुपर्वतकर्णिकम् ॥ चतुष्पथं समुत्पन्नं व्यक्तं पञ्चगुणं महत् ॥ ३७ ॥ ततः सर्व्वाः समुत्पन्ना वृत्तयो द्विजसत्तमाः ॥ नैककल्पार्जितैः पुण्यैर्विविधैः प्रागुपार्जितैः ॥ ३८ ॥ कृतात्मभिर्विनीतात्मा महात्मा पुरुषोत्तमः ॥ महादेवो महायोगी जगज्ज्येष्ठो महेश्वरः ॥ सर्वलोकगतोऽनन्तो ह्यमूर्तित्वादजायत ॥ ३९ ॥ न तस्य प्राकृती मूर्त्तिर्मांसमेदोऽस्थिसम्भवा ॥ योगाच्चैवेश्वरत्वाच्च सर्व्वात्मागत एव सः ॥ ४० ॥ तन्निमित्तं समुत्पन्नं लोकपद्मं सनातनम् ॥ कल्पशेषस्य तस्यादौ कालस्य गतिरीदृशी ॥ ४१ ॥ तस्मिन् पद्मे समुत्पन्नो देवदेवश्चतुर्मुखः ॥ प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा ईशानो जगतः प्रभुः ॥ ४२ ॥ तस्य बीजानि सर्गो हि पुष्करस्य यथार्थवत् ॥ कृत्स्नः प्रजानिसर्गेण विस्तरेणेह कथ्यते ॥ ४३ ॥ यदव्जं वैष्णवं कार्य्यं ततस्तन्नाभितोऽभवत् ॥ पद्माकारा समुत्पन्ना पृथिवी सवनद्रुमा ॥ ४४ ॥ तदस्य लोकपद्मस्य विस्तरेण प्रकाशितम् ॥ वर्णमानं विभागेन क्रमशः शृणुत द्विजाः ॥ ४५ ॥ महाद्वीपास्तु विख्याताश्चत्वारः पत्रसंस्थिताः ॥ ततः कर्णिकसंस्थानो मेरुर्नाम महाबलः ॥ ४६ ॥ नानावर्णेषु पार्श्वेषु पूर्वतः श्वेत उच्यते ॥ पीतन्तु दक्षिणं तस्य शृङ्गं कृष्णं तथाऽपरम् ॥ ४७ ॥ उत्तरं तस्य रक्तं वै शोभिवर्णसमन्वितम् ॥ मेरुस्तु शोभते शुभ्रो राजवत्स तु धिष्ठितः ॥ ४८ ॥ तरुणादित्यवर्णाभो विधूम इव पावकः ॥ चतुरशीतिसाहस्र उत्सेधेन प्रकीर्त्तितः ॥ ४९ ॥ प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्विस्तृतस्तावदेव तु ॥ स शरावस्थितः पूर्व्वं द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ॥ ५० ॥ विस्तारात् त्रिगुणश्चास्य परिणाहः समन्ततः ॥ मण्डलेन प्रमाणेन त्र्यस्रेऽर्द्धन्तु तादिष्यते ॥ ५१ ॥ चत्वारिंशत्सहस्राणि योजनानां समन्ततः ॥ अष्टाभिरधिकानि स्यु स्त्र्यस्रे माने प्रकीर्त्तितम् ॥ ५२ ॥ चतुरस्रेण मानेन परिणाहः समन्ततः ॥ चतुःषष्टिसहस्राणि योजनानां विधीयते ॥ ५३ ॥ स पर्वतो महादिव्यो दिव्यौषधिसमन्वितः ॥ भुवनैरावृतः सर्वो जातरूपमयैः शुभैः ॥ ५४ ॥ तत्र देवगणाः सर्वे गन्धर्वोरगराक्षसाः ॥ शैलराजे प्रदृश्यन्ते शुभाश्चाप्सरसाङ्गणाः ॥ ५५ ॥ स तु मेरुः परिवृतो भुवनैर्भूतभावनः ॥ चत्वारो यस्य देशा वै नानापार्श्वेष्वधिष्ठिताः ॥ ५६ ॥ भद्राश्वो भरतश्चैव केतुमालश्च पश्चिमः ॥ उत्तराः कुरवश्चैव कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥ ५७ ॥ कर्णिका तस्य पद्मस्य समन्तात्परिमण्डला ॥ योजनानां सहस्राणि नवतिः षट् प्रकीर्त्तिताः ॥ चत्वारश्चाप्यशीतिश्च अन्तरान्तरधिष्ठिताः ॥ ५८ ॥ त्रिशतञ्च सहस्राणि योजनानां प्रमाणतः ॥ तस्य केशरजालानि विस्तीर्णानि समन्ततः ॥ ५९ ॥ शतसाहस्रिकायामा साशीतिपृथुलायता ॥ चत्वारि तस्य पत्राणि योजनानाञ्चतुर्द्दिशम् ॥ ६० ॥ तत्र याऽसौ मया पूर्वं कर्णिकेत्यभिशब्दिता ॥ तां वर्ण्यमानामेकाग्राः समासेन

निबोधत ॥ ६१ ॥ शताश्रिमेनं मेनेऽत्रिः सहस्राश्रिमृषिर्भृगुः ॥ अष्टाश्रिमेनं सावर्णिश्चतुरस्रन्तु भागुरिः ॥ ६२ ॥ वार्षायणिस्तु सामुद्रं शरावञ्चैव
गालवः ॥ ऊर्द्ध्ववेणीकृतङ्गार्ग्यः क्रोष्टकिः परिमण्डलम् ॥ ६३ ॥ यद्यद्यस्य हि यत्पार्श्वे पर्वताधिपतेर्ऋषेः ॥ तत्तद्देवास्य वेदासौ ब्रह्मैनं वेद कृत्स्न
शः ॥ ६४ ॥ मणिरत्नमयं चित्रं नानावर्णप्रभायुतम् ॥ अनेकवर्णनिचयं सौवर्णमरुणप्रभम् ॥ ६५ ॥ कान्तं सहस्रपर्वाणं सहस्रोदककन्दरम् ॥ सहस्र
शतपत्रन्तं विद्धि मेरुन्नगोत्तमम् ॥ ६६ ॥ मणिरत्नार्पितस्तम्भैर्मणिचित्रितवेदिकैः ॥ सुवर्णमणिचित्राङ्गं तथा विद्रुमतोरणैः ॥ ६७ ॥
विमानयानैः श्रीमद्भिः शतसङ्घैर्दिवौकसाम् ॥ प्रभादीपितपर्यन्तं मेरुं पर्वणि पर्वणि ॥ ६८ ॥ तस्य पर्वसहस्रेऽस्मिन् नानाश्रयविभूषिते ॥ सर्वदेव
निकायानि सन्निविष्टान्यनेकशः ॥ ६९ ॥ तमावसच्चोर्द्धतले देवदेवश्चतुर्मुखः ॥ ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो वरिष्ठस्त्रिदिवौकसाम् ॥ ७० ॥ महाभुवनसम्पूर्णैः
सर्व्वैः कामफलप्रदैः ॥ महासुरसहस्रैस्तं दिक्ष्वनेकसमाकुलम् ॥ ७१ ॥ तत्र ब्रह्मसभा रम्या ब्रह्मर्षिगणसेविता ॥ नाम्ना मनोवती नाम सर्वलोकेषु वि
श्रुता ॥ ७२ ॥ तत्रेशानस्य देवस्य सहस्रादित्यवर्चसम्॥महाविमानं संस्थाप्य महिम्ना वर्तते सदा ॥ ७३ ॥ तत्र सर्षिगणा देवाश्चतुर्व्वक्त्रस्य ते तदा ॥
तदेव तेजसां राशिर्देवानां तत्र कीर्त्यते ॥ ७४ ॥ तत्रास्ते श्रीपतिः श्रीमान् सहस्राक्षः पुरन्दरः ॥ उपास्यमानस्त्रिदशैर्महायोगैः सुरर्षिभिः ॥ ७५ ॥ तत्र
लोकपतेः स्थानमादित्यसमवर्चसः ॥ महेन्द्रस्य महाराज्ञः सर्व्वसिद्धैर्नमस्कृतम् ॥७६॥ तमिन्द्रलोकं लोकस्य ऋद्ध्या परमया युतम्॥ दीप्यते त्वम
रश्रेष्ठैस्त्रिदशैर्नित्यसेवितम् ॥ ७७ ॥ द्वितीयेऽप्यन्तरतटे वैदिश्ये पूर्व्वदक्षिणे ॥ नानाधातुशतैश्चित्रैः सुरम्यमतितेजसम् ॥ ७८ ॥ नैकरत्नार्थिततल
मनेकस्तम्भसंयुतम् ॥ जाम्बूनदकृतोद्यानं नानारत्नसुवेदिकम् ॥ ७९ ॥ कूटागारैर्विनिक्षिप्तमनेकैर्भवनोत्तमैः ॥ महाविमानं प्रथितं भास्करं जातवेद
सम् ॥ ८० ॥ सा हि तेजोवती नाम हुताशस्य महासभा ॥ साक्षात्तत्र सुरश्रेष्ठः सर्वदेवमुखोऽनलः ॥ ८१ ॥ शिखाशतसहस्राढ्यो ज्वालामाली विभा
वसुः ॥ स्तूयते हूयते चैव तत्र सर्षिगणैः सुरैः ॥ ८२ ॥ अधिदैवकृतं विप्रैर्विशेषः स तु उच्यते ॥ सविभागश्च तेजश्च सर्व एव न संशयः ॥ ८३ ॥ भोगा
न्तरमनुप्राप्त एकतेजो विभुः स्मृतः ॥ पृथक्त्वञ्च हि युक्त्या तु कार्य्यकारणमिश्रितम् ॥ ८४ ॥ तमग्निं लोकलोकज्ञैस्तद्वीर्यैस्तत्पराक्रमैः ॥ महात्मभिर्म
हासिद्धैर्महाभागैर्नमस्कृतम् ॥ ८५ ॥ तृतीयेऽप्यन्तरतटे एवमेव महासभा ॥ वैवस्वतस्य विज्ञेया लोके ख्याता सुसंयमा ॥८६॥ तथा चतुर्थदिग्देशे नैर्ऋ
त्याधिपतेः सभा ॥ नाम्ना कृष्णाङ्गना नाम विरूपाक्षस्य धीमतः ॥८७॥ पञ्चमेऽप्यन्तरतटे एवमेव महासभा ॥ वैवस्वतस्य विज्ञेया नाम्ना शुभवती सती ॥
उदकाधिपतेः ख्याता वरुणस्य महात्मनः ॥ ८८ ॥ परोत्तरे तथा देशे षष्ठेऽन्तरतटे शिवे ॥ वायोर्गन्धवती नाम सभा सर्वगुणोत्तरा ॥ ८९ ॥ सप्त

मेऽप्यन्तरतटे नक्षत्राधिपतेः सभा ॥ नाम्ना महोदया नाम शुद्धवैदूर्य्यवेदिका ॥ ९० ॥ तथाऽष्टमेऽन्तरतटे ईशानस्य महात्मनः ॥ यशोवती नाम स
भा तप्तकाञ्चनसुप्रभा ॥ ९१ ॥ महाविमानान्येतानि दिक्ष्वष्टासु शुभानि हि ॥ अष्टानां देवमुख्यानामिन्द्रादीनां महात्मनाम् ॥ ९२ ॥ ऋषि
भिर्देवगन्धर्वैरप्सरोभिर्महोरगैः ॥ सेवितानि महाभागैरुपस्थानगतैः सदा ॥ ९३ ॥ नाकपृष्ठं दिवं स्वर्गमिति यैः परिपठ्यते ॥ वेदवेदाङ्गविद्भि
र्हि शब्दैः पर्य्यायवाचकैः ॥ ९४ ॥ तदेतत् सर्वदेवानामधिवासे कृतात्मनाम् ॥ देवलोके गिरौ तस्मिन् सर्व्वश्रुतिषु गीयते ॥ ९५ ॥ नियमै
र्विविधैर्यज्ञैर्बहुभिर्नियतात्मभिः ॥ पुण्यैरन्यैश्च विविधैर्नैकजातिशतार्जितैः ॥ प्राप्नोति देवलोकं तं स स्वर्ग इति चोच्यते ॥ ९६ ॥ ॥ इति श्री
महापुराणे वायुप्रोक्ते जम्बूद्वीपवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ यत्तद्वै कर्णिकामूलमिति वै संप्रकीर्तितम् ॥ तद्योजनसह
स्राणां सप्ततीनामधः स्मृतम् ॥ १ ॥ चत्वारिंशत्तथाष्टौ च सहस्राण्यत्र मण्डलम् ॥ शैलराजावृतं रम्यं मेरुमूलमिति श्रुतिः ॥ २ ॥ तेषां गिरिसह
स्राणामनेकेषु महोच्छ्रिताः ॥ दिक्षु सर्वासु पर्य्यन्तैर्मर्य्यादाः पर्वताः स्मृताः ॥ ३ ॥ निकुञ्जकन्दरनदीगुहानिर्झरशोभिताः ॥ बहुप्रासादकटकै
स्तटैश्च कुसुमोज्ज्वलैः ॥ ४ ॥ नितम्बपुष्पमालौघैः सानुभिर्धातुमण्डितैः ॥ शिखरैर्हैमकपिलैर्नैकप्रस्रवणावृतैः ॥ शोभिता गिरयः सर्वे पुष्टै रत्न
समर्पितैः ॥ ५ ॥ विहङ्गशतसंजुष्टैः कुञ्जैरनुपमैरपि ॥ सिंहशार्दूलशरभैर्नैकैश्चामरवारणैः नानावर्णाकृतिधरैः सेविता विविधैर्नगैः ॥ ६ ॥ सप्ताश्व
हरिकृष्णाङ्गमेकैकं दशपर्वतम् ॥ बाह्यमाभ्यन्तरा ये तु त्रिवाहास्तु समाः स्मृताः ॥ ७ ॥ जठरो देवकूटश्च पूर्व्वस्यां दिशि पर्वतौ ॥ तौ दक्षिणोत्त
रायामावानीलनिषधायतौ ॥ ८ ॥ कैलासो हिमवांश्चैव दक्षिणोत्तरपर्वतौ ॥ पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥ ९ ॥ योऽसौ मेरुर्द्विजश्रेष्ठाः
प्रांशुः कनकपर्वतः ॥ विष्कम्भं तस्य वक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ १० ॥ महापादास्तु चत्वारो मेरोरथ चतुर्दिशम् ॥ यैर्धृतत्वान्न चलति
सप्तद्वीपवती मही ॥ ११ ॥ दशयोजनसाहस्र आयामस्तेषु पठ्यते ॥ देवगन्धर्वयक्षाणां नानारत्नोपशोभिताः ॥ नैकनिर्झरवप्राढ्या रम्यकन्दरनिर्म्मि
ताः ॥ १२ ॥ नितम्बपुष्पकादम्बैः शोभिताश्चित्रसानवः ॥ मनःशिलादरीभिश्च हरितालतलैस्तथा ॥ १३ ॥ सुवर्णमणिचित्राभिर्गुहाभिश्च समन्त
तः ॥ शुद्धहिङ्गुलकप्रख्यैः काञ्चनैर्धातुमण्डितैः ॥ १४ ॥ वरकाञ्चनचित्रैश्च प्रवालैः समलङ्कृताः ॥ रुचिराः शतपर्व्वाणः सिद्धावासा मुदान्विताः ॥
महाविमानैः श्रीमद्भिः समन्तात्परिदीपिताः ॥ १५ ॥ पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः ॥ विपुलः पश्चिमे पार्श्वे सुपार्श्वश्चोत्तरे स्मृतः ॥ १६ ॥
तेषां सहस्रशृङ्गेषु वज्रवैदूर्य्यवेदिकाः ॥ शाखासहस्रकलिताः सुमूलाः सुप्रतिष्ठिताः ॥ १७ ॥ स्निग्धैर्नीलैर्वनैः पर्णैः सञ्छन्नाविविधाश्रयाः ॥ अनेकप्र

जनोत्सेधा महापुष्पफलोपगाः १८ ॥ यक्षगन्धर्वसेव्याश्च सेविताः सिद्धचारणैः ॥ महावृक्षाः समुत्पन्नाश्चत्वारो द्वीपकेतवः ॥ १९ ॥ मन्दरस्य गिरेः शृङ्गे महावृक्षः स केतुराट् ॥ आलम्बशाखाशिखरः कन्दरश्चैव पादपः ॥ २० ॥ महाकुम्भप्रमाणैस्तु पुष्पैर्विकचकेसरैः ॥ महागन्धैर्मनोज्ञैश्च शोभितः सर्वकालजैः ॥ २१ ॥ सहस्रमधिकं सोऽथ गन्धेनापूरयद्दिशः ॥ योजनानां समन्ताद्वै मन्दमारुतवीजितः ॥ २२ ॥ वर्ग्केतुरेव प्रथितो भद्राश्वो नाम यो द्विजाः॥ यत्र साक्षात् हृषीकेशः सिद्धसङ्घैर्महीयते ॥ २३॥ तस्य रुद्रकदम्बस्य तदा श्वेतहरो हरिः ॥ प्राप्तवानमरश्रेष्ठः स तत्र सहितः पुरा ॥ २४ ॥ तेन चालोकितं सर्वं द्वीपं द्विपदनायकाः ॥ यस्य नाम्ना समाख्यातो भद्राश्वो नाम नामतः ॥ २५ ॥ दक्षिणस्यापि शैलस्य शिखरे देवसेविता ॥ जम्बूः सदा पुष्पफला सदा माल्योपशोभिता ॥ २६ ॥ महामूलैर्महास्कन्धैः स्निग्धवर्णैर्विभूषिता॥ नवैः सदा पुष्पफलैः शाखाभिश्चोपशोभिता ॥२७॥तस्या ह्यतिप्रमाणानि स्वादूनि च मृदूनि च ॥ फलान्यमृतकल्पानि पतन्ति गिरिमूर्द्धनि ॥ २८ ॥ तस्माद्गिरिवरप्रस्थात् पुनः प्रस्यन्दवाहिनी ॥ नदी जम्बूनदी नाम प्रवृत्ता मधुवाहिनी ॥ २९ ॥ तत्र जाम्बूनदन्नाम सुवर्णं ज्वलनप्रभम् ॥ देवालङ्कारमतुलं जायते पापनाशनम् ॥ ३० ॥ देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥ यत् पिबन्त्यमृतप्रख्यं मधु जाम्बूरसस्रवम् ॥ ३१ ॥ स केतुर्दक्षिणे द्वीपे जम्बूर्लोकेषु विश्रुता ॥ यस्या नाम्ना स विख्यातो जम्बूद्वीपः सनातनः ॥ ३२ ॥ विपुलस्यापि शैलस्य पश्चिमस्य महात्मनः ॥ जातः शृङ्गेऽतिसुमहानश्वत्थश्चैव पादपः॥ ३३ ॥ विलम्बिवरमालाढ्यः सुवर्णमणिवेदिकः ॥ महोच्चस्कन्धविटपो नैकसत्वगुणालयः ॥ ३४ ॥ कुम्भप्रमाणैः सुखदैः फलैः सर्वर्त्तुकैः शुभैः ॥ स केतुः केतुमालानां देवगन्धर्वसेवितः ॥ ३५ ॥ केतुमालेति च यथा तस्या नाम प्रकीर्तितम् ॥ तन्निबोधत विप्रेन्द्रा निरुक्तं नाम कर्म्मतः ॥ ३६ ॥ क्षीरोदमथने वृत्ते दैत्यपक्षे पराजिते ॥ महासमरसम्मर्दवृक्षक्षोभविमर्दिता ॥ ३७ ॥ सहस्राक्षेण विहिता माला तस्य सुतानिता ॥ तस्य स्कन्धे समासक्त्या ह्यश्वत्थस्य वनस्पतेः ॥ ३८ ॥ सा तथैव महागन्धा ह्यम्लाना सर्व्वकामिकी ॥ इज्यते सुमहाभागा विविधैः सिद्धचारणैः ॥ ३९ ॥ तस्य केतोः सदा माला देवदत्ता विराजते ॥ पवनेनेरिता दिव्यं वाति गन्धं मनोरमम् ॥ ४० ॥ ताभ्यां नामाङ्कितो द्वीपः पश्चिमे बहुविस्तरः ॥ केतुमाल इति ख्यातो दिवि चेह च सर्व्वशः ॥ ४१ ॥ स्वपार्श्वस्योत्तरे चापि शृङ्गे जातो महाद्रुमः ॥ न्यग्रोधो विपुलस्कन्धोऽनेकयोजनमण्डलः ॥ ४२ ॥ माल्यदामकलापैश्च विविधैर्गन्धशालिभिः ॥ शाखाविलम्बी शुशुभे सिद्धचारणसेवितः ॥ ४३ ॥ प्रवालकुम्भसदृशैर्मधुपूर्णैः फलैः सदा ॥ सह्युत्तरकुरूणान्तु केतुवृक्षः प्रकाशते ॥ ४४ ॥ सनत्कुमारा वरजा मानसा ब्रह्मणः सुताः ॥ सप्त तत्र महाभागाः कुरवो नाम विश्रुताः ॥ ४५ ॥ तत्र

तैरागतज्ञानैः सत्वस्थैः पुण्यकीर्तिभिः ॥ अक्षयं क्षेममपरं लोकं प्रातं सनातनम् ॥ ४६ ॥ तेषां नामाङ्कितो द्वीपः सतानां वै महात्मनाम् ॥
दिवि चेह च विख्याता उत्तराः कुरवः सदा ॥ ४७ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते जम्बूद्वीपवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥ ७ ॥ ॥
॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ तेषां चतुर्णां वक्ष्यामि शैलेन्द्राणां यथाक्रमम् ॥ अनुबन्धानि रम्याणि सर्वकालर्तुकानि च ॥ १ ॥ सारिकाभिर्मयूरैश्च च
कोरैश्च मदोत्कटैः ॥ शुकैश्च भृङ्गराजैश्च चित्रकैश्च समन्ततः ॥ २ ॥ जीवञ्जीवकनादैश्च हेमकानाञ्च नादितैः ॥ मत्तकोकिलनादैश्च वल्गूनाञ्च निनादि
तैः ॥ ३ ॥ सुग्रीवकाञ्चनरवैः कलविङ्करुतैस्तथा ॥ कूजितान्तरशब्दैश्च सुरम्याणि च सर्वशः ॥ ४ ॥ मदोत्कटैर्मधुरैश्च भ्रमरैश्च महालसैः ॥ उपगीतवना
न्तानि किन्नरैश्च क्वचित् क्वचित् ॥५॥ पुष्पवृष्टिं विमुञ्चन्ति मन्दमारुतकम्पिताः ॥ तरवो यत्र दृश्यन्ते चारुपल्लवशोभिताः ॥६ ॥ स्तवकैर्मञ्जरीभिश्च
ताम्रैः किसलयैस्तथा ॥ मन्दवातवशाल्लोलैर्दोलयद्भिर्युतानि च ॥ ७ ॥ नानाधातुविचित्रैश्च कान्तरूपैः शिलाशतैः ॥ शल्लैः क्वचिद्द्विजश्रेष्ठा विन्य
स्तैः शोभितानि च ॥ ८॥ देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः ॥ सिद्धाप्सरोगणैश्चैव सेवितानि ततस्ततः ॥ ९ ॥ मनोहराणि चत्वारि देवाक्रीडनकान्यथ॥
चतुर्दिशमुदाराणि नाम्ना शृणुत तानि मे ॥ १० ॥ पूर्वं चैत्ररथं नाम दक्षिणं नन्दनं वनम् ॥ वैभ्राजं पश्चिमं विद्यादुत्तरं सवितुर्वनम् ॥११ ॥ महावनेषु
चैतेषु निविष्टानि यथाक्रमम् ॥ अनुबन्धानि रम्याणि विहङ्गैः कूजितानि च ॥१२॥ वनैर्विस्तीर्णतीर्थानि महापुण्यवनानि च ॥ महानागाधिवासानि से
वितानि महात्मभिः ॥ १३ ॥ सुरसामलतोयानि शिवानि सुसुखानि च ॥ सिद्धदेवासुरवरैरुपस्पृष्टजलानि च ॥ १४ ॥ छत्रप्रमाणैर्विकचैर्महागन्धैर्मनोह
रैः ॥ पुण्डरीकैर्महापत्रैरुत्पलैः शोभितानि च ॥ महासरांसि चत्वारि तानि वक्ष्यामि नामतः॥१५॥अरुणोदं सरः पूर्वं दक्षिणं मानसं स्मृतम् ॥ सितोदं
पश्चिमसरो महाभद्रन्तथोत्तरम् ॥ १६ ॥ अरुणोदश्च पूर्वेण ये च शैलास्ततः स्मृताः ॥ तान् कीर्त्यमानांस्तत्त्वेन शृणुध्वं विस्तरान्मम ॥ १७ ॥
शीतान्तश्च कुमुञ्जश्च सुवीरश्चाचलोत्तमः ॥ विकङ्को मणिशैलश्च वृषभश्चाचलोत्तमः ॥ १८॥ महानीलोऽथ रुचकः सबिन्दुर्मन्दरस्तथा ॥ वेणुमांश्च
सुमेधश्च निषधो देवपर्वतः ॥ १९ ॥ इत्येते पर्वतवरा अन्ये च गिरयस्तथा ॥ पूर्वेण मन्दरस्यैते सिद्धवासा उदाहृताः ॥ २० ॥ सरसो मानसस्येह
दक्षिणा ये महाचलाः ॥ ये कीर्तिता मया ते वै नामतस्तान्निबोधत ॥ २१ ॥ शैलस्त्रिशिखरश्चापि शिशिरश्चाचलोत्तमः ॥ कलिङ्गश्च
पतङ्गश्च रुचकश्चैव सानुमान् ॥ २२ ॥ ताम्राभश्च विशाखश्च तथा श्वेतोदरो गिरिः ॥ समूलो विषधारश्च रत्नधारश्च पर्वतः ॥ २३ ॥ एकशृङ्गो
महामूलो गजशैलः पिशाचकः ॥ पञ्चशैलोऽथ कैलासो हिमवांश्चाचलोत्तमः ॥२४ ॥ इत्येते देवचरिता ह्युत्कृष्टाः पर्वतोत्तमाः ॥ दिग्भागे दक्षिणे प्रोक्ता

मेरोरमरवर्चसः ॥ २५ ॥ अपरेण सितोदस्य सरसो द्विजसत्तमाः ॥ उत्तमा ये महाशैलास्तान् प्रवक्ष्ये यथाक्रमम् ॥२६॥ सुवक्षाः शिखिशैलश्च कालो
वैदूर्य्यपर्वतः ॥ कपिलः पिङ्गलो रुद्रः सुरसश्च महाचलः॥२७॥कुमुदो मधुमांश्चैव अञ्जनीमुकुटस्तथा ॥ कृष्णश्च पाण्डरश्चैव सहस्रशिखरश्च ह॥२८॥
पारियात्रश्च शैलेन्द्रस्त्रिशृङ्गश्चाचलोत्तमः ॥ इत्येते पर्वतवरा दिग्भागे पश्चिमे स्मृताः ॥ २९ ॥ महाभद्रस्य सरस उत्तरेणापि श्रीमतः ॥ ये मया
पूर्व्वतः प्रोक्तास्तान्वदिष्ये यथाक्रमम् ॥ ३०॥ शङ्ककूटो महाशैलो वृषभो हंसपर्वतः ॥ नागश्च कपिलश्चैव इन्द्रशैलश्च सानुमान् ॥ ३१ ॥ नीलः कन
कशृङ्गश्च शतशृङ्गश्च पर्वतः ॥ पुष्पको मेघशैलश्च विराजश्चाचलोत्तमः ॥ जारुधिश्चैव शैलेन्द्र इत्येते उत्तराः स्मृताः॥३२॥ एतेषां शैलमुख्यानामन्त
रेषु यथाक्रमम् ॥ स्थाल्योऽह्यन्तरद्रोण्यश्च सरांसि च निबोधत ॥ ३३ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥
॥ सूत उवाच ॥ शीतान्तस्याचलेन्द्रस्य कुमुञ्जस्यान्तरेण तु ॥ द्रोण्यो विहङ्गसङ्घुष्टा नानासत्वनिषेविताः॥१॥त्रियोजनशतायामा विस्तीर्णाः शतयो
जनाः ॥ सुरसामलपानीयरम्यं तत्र सरोवरम् ॥ २ ॥ द्रोण्यायामप्रमाणैस्तु पुण्डरीकैः सुगन्धिभिः ॥ सहस्रशतपत्रैर्हि महापद्मैरलङ्कृतम् ॥ ३ ॥ महोर
गैरध्युषितं महाभोगैर्दुरासदैः ॥ देवदानवगन्धर्व्वैरुपस्पृष्टं जलं शुभम् ॥४॥ पुण्यं तच्छ्रीसरो नाम प्रकाशं दिवि चेह च ॥ प्रसन्नजलसम्पूर्णं शरण्यं
सर्वदेहिनाम् ॥ ५ ॥ तत्र त्वेकं महापद्मं मध्ये पद्मवनस्य ह ॥ कोटिपत्रप्रचारन्तत्तरुणादित्यवर्चसम् ॥ ६ ॥ नित्यं व्याकोशमजरं चाञ्चल्याच्चातिमण्ड
लम् ॥ चारुकेशरजालाढ्यं मत्तषट्पदनादितम् ॥ ७ ॥ तस्मिन् पद्मे भगवती साक्षाच्छ्रीर्नित्यमेव हि ॥ लक्ष्म्याः पद्मं तदावासं मूर्त्तिमत्या न संशयः ॥
॥ ८ ॥ सरसस्तस्य पूर्वस्मिन् तीरे सिद्धनिषेविते ॥ सदा पुष्पफलं रम्यं तत्र बिल्ववनं महत् ॥ ९ ॥ शतयोजनविस्तीर्णं त्रियोजनशतायतम् ॥
अर्धक्रोशोच्चशिखरैर्महावृक्षैः सहस्रशः ॥ १० ॥ शाखासहस्रकलितैर्महास्कन्धैः समाकुलम् ॥ फलैः सुवर्णसङ्काशैर्हरितैः पाण्डरैस्तथा ॥ ११ ॥ अमृत
स्वादुसदृशैर्भेरीमात्रैः सुगन्धिभिः ॥ शीर्य्यमाणैः पतद्भिश्च कीर्णा भूमिर्निरन्तरा ॥१२ ॥ नाम्ना तच्छ्रीवनं नाम सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥ गन्धर्व्वैः किन्नरै
र्य्यक्षैर्महानागैश्च सेवितम् ॥ १३ ॥ सिद्धैश्चैव समाकीर्णं नित्यं बिल्वफलाशिभिः ॥ विविधैर्भूतसङ्घैश्च नित्यमेव निषेवितम् ॥ १४ ॥ तस्मिन् वने
भगवती साक्षाच्छ्रीर्नित्यमेव हि ॥ देवी सन्निहिता तत्र सिद्धसङ्घैर्नमस्कृता ॥ १५ ॥ विकङ्कस्याचलेन्द्रस्य मणिशैलस्य चान्तरे ॥ शतयोजनविस्तीर्णं
द्वियोजनशतायतम् ॥ १६ ॥ विपुलञ्चम्पकवनं सिद्धचारणसेवितम् ॥ पुष्पलक्ष्म्यावृतं भाति ज्वलन्तमिव नित्यदा ॥ १७ ॥ अर्द्धक्रो
शोच्चशिखरैर्महास्कन्धैः पलाशिभिः ॥ प्रफुल्लशाखाशिखरैः पिञ्जरम्भाति तद्वनम् ॥ १८ ॥ द्विबाहुपरिणाहैस्तैस्त्रिहस्तायामविस्तरैः ॥ मनः

शिलाचूर्णनिभैः पाण्डुकेसरशालिभिः ॥ १९ ॥ पुष्पैर्मनोहरैर्व्याप्तं व्याकोशैर्गन्धशालिभिः ॥ विराजते वनं सर्वं मत्तभ्रमरनादितम् ॥ २० ॥ तद्वनं दानवैर्देवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसैः ॥ किन्नरैरप्सरोभिश्च महानागैश्च सेवितम् ॥ २१ ॥ तत्राश्रमं भगवतः कश्यपस्य प्रजापतेः ॥ सिद्धसाध्यगणाकीर्णं नानाश्रुतिविभूषितम् ॥ महानीलकुमुञ्जाभ्यामन्तरेप्यचलावथ ॥ २२ ॥ महानद्याः सुखायास्तु तीरे सिद्धनिषेविते ॥ पञ्चाशद्योजनायामं त्रिंशद्योजनविस्तरम् ॥ रम्यं तालवनं तद्धि अर्द्धक्रोशोच्चमस्तकम् ॥२३॥ महामूलैर्महासारैः स्थिरैरविरलैः शुभैः ॥ कुमुदाञ्जनसंस्थानैः परिवृत्तैर्महाफलैः ॥ मृष्टगन्धरसोपेतैरुपेतं सिद्धसेवितम् ॥ २४ ॥ माहेन्द्रस्य द्विपेन्द्रस्य तत्र वास उदाहृतः ॥ ऐरावतस्य भद्रस्य सर्वलोकेषु विश्रुतः ॥ २५ ॥ वेणुमन्तस्य शैलस्य सुमेधस्योत्तरेण च ॥ सहस्रयोजनायामं विस्तीर्णं शतयोजनम् ॥ २६ ॥ वृक्षगुल्मलतागुच्छैः सर्ववीरुद्विरीरितम् ॥ दूर्वाप्रस्तारमेवाथ सर्वसत्वविवर्जितम् ॥ २७ ॥ तथा निषधशैलस्य देवशैलस्य चोत्तरे ॥ सहस्रयोजनायामा शतयोजनविस्तृता ॥ २८ ॥ सर्वा ह्येकशिला भूमिर्वृक्षवीरुद्विवर्जिता ॥ आप्लुता पादमात्रेण ह्युदकेन समन्ततः ॥ २९ ॥ इत्येता ह्यन्तरद्रोण्यो नानाकाराः प्रकीर्त्तिताः ॥ मेरोः पूर्वेण विप्रेन्द्रा यथावदनुपूर्वशः ॥ ३० ॥॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि दक्षिणान्दिशमाश्रिताः ॥ या द्रोण्यः सिद्धचरिताः शृणु ता ह्यनुपूर्वशः ॥ १ ॥ शिशिरस्याचलेन्द्रस्य पतङ्गस्यान्तरेण च ॥ श्लक्ष्णभूमिश्रिया युक्तं लतालिङ्गितपादपम् ॥ २ ॥ पृथुक्षेपोच्चशिखरैः पादपैरुपशोभितम् ॥ उदुम्बरवनं रम्यं पक्षिसङ्घनिषेवितम् ॥ ३ ॥ पक्वैर्विद्रुमसङ्काशैर्मधुपूर्णैर्मनोरमैः ॥ ज्वलितं तद्वनं भाति महाकुम्भोपमैः फलैः ॥ ४ ॥ तत् सिद्धयक्षगन्धर्वाः किन्नरा उरगास्तथा ॥ विद्याधराश्च मुदिता उपजीवन्ति नित्यशः ॥ ५ ॥ प्रसन्नस्वादुसलिलास्तत्र नद्यो बहूदकाः ॥ सुरसामलतोयास्ताः सरांसि च समन्ततः ॥ ६ ॥ तत्राश्रमं भगवतः कर्दमस्य प्रजापतेः॥रम्यं सुरगणाकीर्णं सर्वतश्चित्रकाननम्॥समन्ताद्योजनशतं तद्वनं परिमण्डलम् ॥ ७॥ ताम्रवर्णस्य शैलस्य पतङ्गस्यान्तरेण तु ॥ शतयोजनविस्तीर्णं द्वियोजनशतायतम् ॥८॥ तरुणादित्यसङ्काशैः पुण्डरीकैः समन्ततः॥ सहस्रपत्रैर्विकचैर्महापद्मैरलङ्कृतम् ॥ ९॥ तथा भ्रमरसंलीनैः शतपत्रैः सुगन्धिभिः ॥ प्रफुल्लैः शोभितजलं रक्तनीलैर्महोत्पलैः ॥ १० ॥ सरोवरं महापुण्यं देवदानवसेवितम् ॥ महोरगैरध्युषितं नीलजालविभूषितम् ॥ ११ ॥ तस्य मध्ये जनपदो ह्यायतः शतयोजनः ॥ त्रिंशद्योजनविस्तीर्णो रक्तधातुविभूषितः ॥ १२ ॥ तस्योपरि महारम्या प्रांशुप्राकारतोरणा ॥ नरनारीगणाकीर्णा स्फीता विभवविस्तरैः ॥ १३ ॥ वलभीकूटनिर्व्यूहैर्मणिभक्तिविचित्रितैः॥ रत्नचित्रार्पिततलैः श्लक्ष्णचित्रोत्तरच्छ

दैः ॥ १४ ॥ महाभवनमालाभिर्महाप्रांशुभिरुत्तमैः ॥ विद्याधरपुरं तत्र शोभते अजयच्छुभम् ॥ १५ ॥ विद्याधरपतिस्तत्र पुलोमा तत्र विश्रुतः ॥ चित्रवेषधरः स्रग्वी माहेन्द्रसदृशद्युतिः ॥ १६ ॥ दीप्तानां चित्रवेषाणां सूर्य्यप्रतिमतेजसाम् ॥ विद्याधरसहस्राणामनेकेषां स राजराट् ॥ १७ ॥ विशाखस्याचलेन्द्रस्य पतङ्गस्यान्तरेण च ॥ सरसस्ताम्रवर्णस्य पूर्वे तीरे परिश्रुतम् ॥ १८ ॥ पञ्चेषुक्षेपणैर्विद्धं सुशाखं वर्णशोभितम् ॥ सर्व्वकालफलं तत्र स्फीतश्चाम्रवणं महत् ॥ १९ ॥ फलैः कनकसङ्काशैर्महास्वादैः सुगन्धिभिः ॥ महाकुम्भप्रमाणैश्चातनुशाखैः समन्ततः ॥ २० ॥ गन्धर्वकिन्नरा यक्षा नागा विद्याधरास्तथा ॥ पिबन्त्याम्ररसं तत्र सुस्वादुं ह्यमृतोपमम् ॥ २१ ॥ तत्राम्ररसपीतानां मुदितानां महात्मनाम् ॥ श्रूयन्ते हृष्टपुष्टानां नादास्तस्मिन् महावने ॥ २२ ॥ सुमूलस्याचलेन्द्रस्य वसुधारस्य चान्तरे ॥ समा सुरभिपूर्णाढ्या विहङ्गरुपशोभिता ॥ २३ ॥ त्रिंशद्योजनविस्तीर्णा पञ्चाशद्योजनायता ॥ तत्र बिल्वस्थली विप्राः शुद्धा निम्नफलद्रुमाः ॥ २४॥ सुस्वादैर्विद्रुमनिभैः फलैर्बिल्वैर्महोपमैः ॥ शीर्य्यमाणैर्विशीर्णैश्च प्रक्लिन्नतलमृत्तिकाः ॥२५॥ तां स्थलीमुपजीवन्ति यक्षगन्धर्वकिन्नराः ॥ सिद्धा नागाश्च बहुशो नित्यं बिल्वफलाशिनः ॥२६॥ अन्तरे वसुधारस्य रत्नधारस्य चान्तरे ॥ त्रिंशद्योजनविस्तीर्णमायतं शतयोजनम् ॥२७॥ सुगन्धं किंशुकवनं नित्यं पुष्पितपादपम् ॥ पुष्पलक्ष्म्यावृतं भाति प्रदीप्तमिव सर्वतः ॥२८॥ यस्य गन्धेन दिव्येन वास्यते परिमण्डलम् ॥ समग्रं योजनशतं काननानि समन्ततः ॥२९॥ तत् सिद्धचारणगणैरप्सरोभिश्च सेवितम् ॥ रम्यं तत् किंशुकवनं जलाशयविभूषितम् ॥ ३० ॥ तत्रादित्यस्य देवस्य दीप्तमायतनं महत् ॥ मासे मासेऽवतरति तत्र सूर्य्यः प्रजापतिः ॥ ३१ ॥ तत्र कालस्य कर्त्तारं सहस्रांशुं सुरोत्तमम् ॥ सिद्धसङ्घा नमस्यन्ति सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ ३२ ॥ पञ्चकूटस्य शैलस्य कैलासस्यान्तरेण तु ॥ षट्त्रिंशद्योजनायामं विस्तीर्णं शतयोजनम् ॥ ३३ ॥ क्षुद्रसत्वैरनाधृष्यं सर्वतो हंसपाण्डुरम् ॥ दुष्पारं सर्वसत्वानां दुर्गमं लोमहर्षणम् ॥ ३४ ॥ इत्येता ह्यन्तरद्रोण्यो दक्षिणे परिकीर्तिताः ॥ यथानुपूर्वमखिलाः सिद्धसङ्घनिषेविताः ॥ ३५ ॥ पश्चिमायां दिशि तथा येऽन्तरद्रोणिविस्तराः ॥ तान् वर्ण्यमानांस्तत्त्वेन शृणुतेमान् द्विजोत्तमाः ॥ ३६ ॥ अन्तराले गिरौ तस्मिन् सुवक्षःशिखिशैलयोः ॥ समन्ताद्योजनशतमेकभूमं शिलातलम् ॥ ३७ ॥ नित्यतप्तं महाघोरं दुःस्पर्शं रोमहर्षणम् ॥ अगम्यं सर्वसत्वानामीश्वराणां सुदारुणम् ॥ ३८ ॥ मध्ये तस्यां शिलास्थल्यां त्रिंशद्योजनमण्डलम् ॥ ज्वालासहस्रकलिलं वह्निस्थानं सुदारुणम् ॥ ३९ ॥ अनिन्धनस्तत्र सदा ज्वालामाली विभावसुः ॥ ज्वलत्येष सदा देवः शश्वत्तत्र हुताशनः ॥ ४० ॥ अधिदेवकृते योऽसावग्नेर्भागो विधीयते ॥ स तत्र ज्वलते नित्यं लोकसंवर्त्तकोऽनलः ॥ ४१ ॥ अन्तरे शैलवर्य्योर्देवा वापि तयोः शुभाः ॥ मातुलुङ्गस्थली तत्र

छायामाढ्ययोजना ॥ ४२ ॥ मधुव्यञ्जनसंस्थानैः सुरसैः कनकप्रभैः ॥ फलैः परिणतैः सर्वा शोभिता सा महास्थली ॥ ४३ ॥
तत्राश्रमं महापुण्यं सिद्धसङ्घनिषेवितम् ॥ बृहस्पतेः प्रमुदितं सर्वकामगुणैर्युतम् ॥ ४४ ॥ तथैव शैलवरयोः कुमुदाञ्जनयोरपि ॥ अन्तरे केसरद्रोणी
ह्यनेकायामयोजना ॥ ४५ ॥ द्विबाहुपरिणाहैस्तैस्त्रिहस्तायतविस्तृतैः ॥ चन्द्रांशुवर्णैर्व्याकोशैर्मत्तषट्पदनादितैः ॥ ४६ ॥ मधुसर्पीरजःपृक्तैर्महागन्धैर्म
नोहरैः ॥ शबलन्तद्वनं भाति कुसुमैः सर्वकालजैः ॥ ४७ ॥ तत्र विष्णोः सुरगुरोर्दीप्तमायतनं महत् ॥ प्रकाशन्त्रिषु लोकेषु सर्वलोकनमस्कृतम्॥४८॥
अन्तरे शैलवरयोः कृष्णपाण्डुरयोरपि ॥ त्रिंशद्योजनविस्तीर्णं नवत्यायतयोजनम् ॥ ४९ ॥ श्लक्ष्णमेकशिलं देशं वृक्षवीरुद्विवर्जितम् ॥ सुखपादप्रचा
रश्च निम्नोन्नतविवर्जितम् ॥ ५० ॥ मध्ये तु सरसस्तस्य रम्या तु स्थलपद्मिनी ॥ सहस्रपत्रैर्व्याकोशैः छत्रमात्रैरलङ्कृता ॥ ५१ ॥ पुण्डरीकैर्महापद्मैरु
चिरैर्गन्धशालिभिः ॥ शतपत्रैश्च विकचैरुत्पलैर्नीलपत्रकैः ॥५२॥ मदोत्कटैर्मधुकरैर्भ्रमरैश्च मदोत्कटैः ॥ मृदुगद्गदकण्ठानां किन्नराणाञ्च निस्वनैः॥५३॥
उपगीतपद्मखण्डाढ्या विस्तीर्णा स्थलपद्मिनी ॥ यक्षगन्धर्वचरिता सिद्धचारणसेविता ॥ ५४ ॥ मध्ये तस्याश्च पद्मिन्याः पञ्चयोजनमण्डलः ॥ न्य
ग्रोधो विपुलस्कन्धो ह्यनेकारोहमण्डितः ॥ ५५ ॥ तत्र चन्द्रप्रभः श्रीमान् पूर्णचन्द्रनिभाननः ॥ सहस्रवदनो देवो नीलवासाः सुरारिहा ॥ ५६ ॥ पद्म
माल्यधरस्थल्यां महाभागोऽपराजितः ॥ इज्यते यक्षगन्धर्वैर्विद्याधरगणैस्तथा ॥ ५७ ॥ तस्मिन्नायतने साक्षादनादिनिधनो हरिः ॥ पद्मोपहारैर्विविधै
रिज्यते सिद्धचारणैः ॥ ५८ ॥ तदनन्तसदो नाम सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥ पद्ममालावलम्बाभिर्मालाभिरुपशोभितम् ॥ ५९ ॥ तथा सहस्रशिखरकुमु
दस्यान्तरेण च ॥ पञ्चाशद्योजनायामन्त्रिंशद्योजनविस्तरम् ॥ इषुक्षेपोच्चशिखरं नानाविहगसेवितम् ॥ ६० ॥ महागन्धैर्महास्वादैर्गजदेहनिभैः फलैः ॥
मधुस्रवैर्महावृक्षैरुपेतं तत् समन्ततः ॥ ६१ ॥ तत्राश्रमं महापुण्यं देवर्षिगणसेवितम् ॥ शुक्रस्य प्रथितं तत्र भास्वरं पुण्यकर्मणः ॥ ६२ ॥ शङ्कुकूटस्य
शैलस्य वृषभस्यान्तरेण च॥ परूषकस्थली रम्या ह्यनेकायतयोजना ॥ ६३॥ बिल्वप्रमाणैश्च शुभैर्महास्वादैः सुगन्धिभिः ॥ फलैः प्रक्लिद्यते भूमिः परु
षैर्वृन्तविच्युतैः ॥ ६४ ॥ तां स्थलीमुपजीवन्ति किन्नरोरगसाधवः ॥ परूषकरसोन्मत्ता मानाढ्यास्तत्र चारणाः ॥ ६५ ॥ कापिञ्जलस्य शैलस्य नागशै
लस्य चान्तरे ॥ द्वियोजनशतायामा विस्तीर्णा शतयोजना ॥ ६६॥ स्थली मनोहरा सा हि नानावनविभूषिता ॥ नानापुष्पफलोपेता किन्नरोरगसेविता
॥ ६७ ॥ द्राक्षावनानि रम्याणि तथा नागवनानि च ॥ खर्जूरवनखण्डानि नीलाशोकवनानि च ॥ ६८ ॥ दाडिमानाञ्च स्वादूनामक्षोटकवनानि
च ॥ अतसीतिलकानाञ्च कदलीनां वनानि च ॥ ६९ ॥ बदरीणाञ्च स्वादूनां वनखण्डानि सर्वशः ॥ स्वादुशीताम्बुपूर्णाभिर्नदीभिः शोभिता

नि च ॥ ७० ॥ तथा पुष्पकशैलस्य महामेघस्य चान्तरे ॥ षष्टियोजनविस्तीर्णा सा भूमिः शतमायता ॥ ७१ ॥ समा पाणितलप्रख्या काठिना पाण्डुरा
घना ॥ वृक्षगुल्मलतागुल्मैस्तृणैश्चापि विवर्जिता ॥ ७२ ॥ वर्जिता विविधैः सत्वैर्नित्यमस्मिन् निराश्रया ॥ सा काननस्थली नाम दारुणा
रोमहर्षणा ॥ ७३ ॥ महासरांसि च तथा महावृक्षास्तथैव च ॥ महावनानि सर्वाणि कान्तनामानि सर्वशः ॥ ७४ ॥ सरसाञ्च वनानाञ्च सा स्थली च
प्रजापतेः ॥ क्षुद्राणां सरसाञ्चैव सङ्ख्या तत्र न विद्यते ॥ ७५ ॥ दश द्वादश सप्ताष्टौ विंशत्रिंशच्च योजनाः ॥ स्थल्यो द्रोण्यश्च विख्याताः सरांसि च
वनानि च ॥ ७६ ॥ केचित् सन्ति महाघोराः श्यामाः पर्व्वतकुक्षयः ॥ सूर्यांशुजालैरस्पृष्टा नित्यं शीता दुरासदाः ॥ ७७ ॥ तथा ह्यनलतप्तानि
सरांसि द्विजसत्तमाः ॥ शैलकुक्ष्यन्तरस्थानि सहस्राणि शतानि च ॥७८॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नामाऽष्टत्रिंशोऽध्यायः॥३८॥
॥ सूत उवाच ॥ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि यस्मिन् यस्मिन् शिलोच्चये ॥ ये सन्निविष्टा देवानां विविधानां गृहोत्तमाः ॥ १ ॥ तत्र योऽसौ महाशैलः शीतान्तो
नैकविस्तरः ॥ नैकधातुशतैश्चित्रैर्नैकरत्नाकराकरः ॥ २ ॥ नितम्बैः पुष्पसालम्बैर्नैकसत्वगुणालयः ॥ महार्हमणिचित्राभिर्हैमवंशैरलङ्कृतः ॥ ३ ॥
नितम्बैः षट्पदोद्गीतैः प्रवालैर्हेमचित्रकैः ॥ तटैः कुसुमसङ्कीर्णैर्मत्तभ्रमरनादितैः ॥ ४ ॥ लतालम्बैश्चित्रवर्द्धिश्चित्रैर्धातुशतार्चितैः ॥ सानुभी रत्नचित्रै
श्च पुष्पाढ्यैश्च विभूषितः ॥ ५ ॥ विमलस्वादुपानीयैर्नैकप्रस्रवणैर्युतः ॥ निकुञ्जैः कुसुमोत्कीर्णैरनेकैश्च विभूषितः ॥ ६ ॥ पुष्पोडुपवहाभिश्च स्र
वन्तीभिरलङ्कृतः ॥ किन्नराचरिताभिश्च दरीभिः सर्वतस्ततः ॥ ७ ॥ यक्षगन्धर्वचरितैरनेकैः कन्दरोदरैः ॥ शोभितश्च सुखासेव्यैश्चित्रैर्गहनसङ्कटैः ॥ ८ ॥
नानासत्वगणाकीर्णैः सुपानीयैः सुखाश्रयैः ॥ नानापुष्पफलोपेतैः पादपैः समलङ्कृतः ॥ ९ ॥ तस्मिन् गुहाश्रयाकीर्णे अनेकोदरकन्दरे ॥ क्रीडावनं
महेन्द्रस्य सर्वकामगुणैर्युतम् ॥ १० ॥ तत्र तद्देवराजस्य पारिजातवनं महत् ॥ प्रकाशं त्रिषु लोकेषु गीयते श्रुतिनिश्चयात् ॥ ११ ॥ तरुणादित्यसंकाशैर्म
हागन्धैर्मनोहरैः ॥ पुष्पैर्भाति नगश्रेष्ठः सुदीप्त इव सर्वशः ॥ १२ ॥ समग्रं योजनशतं तं गन्धमनिलो ववौ ॥ पारिजातकपुष्पाणां माहेन्द्रवननिर्गतः ॥ १३ ॥
वैदूर्य्यनीलैः कमलैः सौवर्णैर्वज्रकेसरैः ॥ सर्वगन्धवलोपेतैर्मत्तषट्पदनादितैः ॥ १४ ॥ व्याकोशैर्विकचैश्चापि शतपत्रैर्मनोहरैः ॥ सपङ्कजैर्महापत्रैर्वा
प्यस्तत्र विभूषिताः ॥ १५ ॥ विरेजुरन्तरम्बुस्थाः सौवर्णमणिभूषिताः ॥ परिप्सन्देक्षणा नित्यं मीनयूथाः सहस्रशः ॥ १६ ॥ कूर्मैश्चानेकसंस्थानैर्हैम
रत्नपरिष्कृतैः ॥ चंचूर्य्यमाणैः सलिलैर्भाति चित्रं समन्ततः ॥ १७ ॥ नानावर्णैश्च शकुनैर्नानारत्नतनूरुहैः ॥ सुवर्णपुष्पैश्चानेकैर्मणितुण्डैर्द्विजातिभिः ॥ १८ ॥
वल्गुस्वरैः सदोन्मत्तैः सम्पतद्भिः समन्ततः ॥ शुशुभे तद्वनं रम्यं सहस्राक्षस्य धीमतः ॥ १९ ॥ मत्तभ्रमरसन्नादैर्विहङ्गानाञ्च कूजितैः ॥ नित्यमानन्दि

तद्वनं तस्मात् क्रीडावनं महत् ॥ २० ॥ सुवर्णपार्श्वैश्च नगैर्मणिमुक्तापुरस्कृतैः ॥ मणिशृङ्गकलापत्रैः पतद्भिश्च समन्ततः ॥ २१ ॥ शाखामृगैश्च चित्रा
ङ्गैर्नानारत्नतनूरुहैः ॥ नानावर्णप्रकारैश्च सत्वैरन्यैः समाकुलम् ॥ २२ ॥ मुञ्चन्ति पुष्पवर्षञ्च तत्र बाललता द्रुमाः ॥ पारिजातकपुष्पाणां मन्दमारुत
कम्पिताः ॥ २३ ॥ शयनासननिर्व्यूहैः स्तीर्णैं रत्नविभूषितैः ॥ विहारभूमयस्तत्र द्विजाः शक्रवने शुभाः ॥ न च शीतो न चाप्युष्णो रविस्तत्र समः
सदा ॥ २४ ॥ नित्यमुन्मादजननो मधुमाधवसम्भवः ॥ वाति चाप्यनिलस्तत्र नानापुष्पाधिवासितः ॥ नित्यं सङ्गसुखाह्लादी श्रमक्लमविनाशनः ॥२५॥
तस्मिन्निन्द्रवने शुभ्रे देवदानवपन्नगाः ॥ यक्षराक्षसगुह्याश्च गन्धर्वाश्चामितौजसः ॥ २६ ॥ विद्याधराश्च सिद्धाश्च किन्नराश्च मुदायुताः ॥ अथा
प्सरोगणाश्चैव नित्यं क्रीडापरायणाः ॥ २७ ॥ तस्य पर्वतराजस्य पूर्वे पार्श्वे महोचितम् ॥ कुमुञ्जं शैलराजानं नैकनिर्झरकन्दरम् ॥ २८ ॥ तस्य
धातुविचित्रेषु कूटेषु बहुविस्तराः ॥ अष्टौ पुर्यो ह्युदीर्णाश्च दानवानां महात्मनाम् ॥ २९ ॥ वज्रके पर्वते चापि अनेकशिखरोदरैः ॥ उदीर्णा राक्षसा
वासा नरनारीसमाकुलाः ॥ ३० ॥ नीलका नाम ते घोरा राक्षसाः कामरूपिणः ॥ तत्र तेऽभिरता नित्यं महाबलपराक्रमाः ॥ ३१ ॥ महानीलेऽपि शैले
न्द्रे पुराणि दश पञ्च च ॥ हयाननानां विख्याताः किन्नराणां महात्मनाम् ॥ ३२ ॥ देवसेनो महाबाहुर्बलमिन्द्रादयस्तथा ॥ तत्र किन्नरराजानो
दशपञ्च च गर्विताः ॥ ३३ ॥ सुवर्णपार्श्वाः प्रायेण नानावर्णसमाकुलैः ॥ बिलप्रवेशैर्नगरैः शैलेन्द्रः सोऽप्यलङ्कृतः ॥ ३४ ॥ अतिदारुणा
दृष्टिविषा ह्यग्निकोपा दुरासदाः ॥ महोरगशतास्तत्र सुवर्णवशवर्तिनः ॥ ३५ ॥ सुनागेऽपि महाशैले दैत्यावासाः सहस्रशः ॥ हर्म्यप्रासादक
लिलाः प्रांशुप्राकारतोरणाः ॥ ३६ ॥ वेणुमन्ते महाशैले विद्याधरपुरत्रयम् ॥ त्रिंशद्योजनविस्तीर्णं पञ्चाशद्योजनायतम् ॥ ३७ ॥ उलूको
रोमशश्चैव महानेत्रश्च वीर्य्यवान् ॥ विद्याधरवरास्तत्र शक्रतुल्यपराक्रमाः ॥ ३८ ॥ वैकङ्के शैलशिखरे ह्यन्तःकन्दरनिर्झरे ॥ महोच्च
शृङ्गे रुचिरे रत्नधातुविचित्रिते ॥ ३९ ॥ तत्रास्ते गारुडिर्नित्यं उरगारिर्दुरासदः ॥ महावायुजवश्चण्डः सुग्रीवो नाम वीर्य्यवान् ॥ ४० ॥
महाप्रमाणैर्विक्रान्तैर्महाबलपराक्रमैः ॥ स शैलो ह्यावृतः सर्वः पक्षिभिः पन्नगारिभिः ॥ ४१ ॥ करञ्जेऽभिरतो नित्यं साक्षाद्भूतपतिः प्रभुः ॥ वृषभाङ्को म
हादेवः शङ्करो योगिनां प्रभुः ॥ ४२ ॥ नानावेषधरैर्भूतैः प्रमथैश्च दुरासदैः ॥ करञ्जे मानवः सर्वे ह्यवकीर्णाः समन्ततः ॥ ४३ ॥ वसुधारे वसुमतां वसू
नाममितौजसाम् ॥ अष्टावायतनान्याहुः पूजितानि महात्मनाम् ॥४४॥ रत्नधातौ गिरिवरे ऋषीणाञ्च महात्मनाम् ॥ सप्ताश्रमाणि पुण्यानि सिद्धावासयुता
नि च ॥४५॥ महाप्रजापतेः स्थानं हेमशृङ्गे नगोत्तमे ॥ चतुर्व्वक्त्रस्य देवस्य सर्वभूतनमस्कृतम् ॥४६॥ गजशैले भगवतो नानाभूतगणावृताः ॥ रुद्राः

प्रमुदिता नित्यं सर्वभूतनमस्कृताः ॥ ४७ ॥ सुमेधे धातुचित्राढ्ये शैलेन्द्रे मेघसन्निभे ॥ नैकोदरदरीवप्रनिकुञ्जैश्चोपशोभिते ॥४८॥ आदित्यानां वसूनाञ्च रुद्राणाञ्चामितौजसाम् ॥ तत्रायतनविन्यासा रम्याश्चैवाश्विनोरपि ॥४९॥ स्थानानि सिद्धैर्देवानां स्थापितानि नगोत्तमे ॥ तत्र पूजापरा नित्यं यक्षगन्धर्वकिन्नराः ॥ ५० ॥ गन्धर्वनगरी स्फीता हेमकक्षे नगोत्तमे ॥ अशीत्यामरपुर्य्याभा महाप्राकारतोरणा ॥ ५१ ॥ सिद्धा ह्यपत्तना नाम गन्धर्वा युद्धशालिनः ॥ येषामधिपतिर्देवो राजराजः कपिञ्जलः ॥ ५२॥ अनले राक्षसावासाः पञ्चकूटेऽपि दानवाः ॥ ऊर्जिता देवरिपवो महाबलपराक्रमाः ॥५३॥ शतशृङ्गे पुरशतं यक्षाणाममितौजसाम् ॥ ताम्राभे काद्रवेयस्य तक्षकस्य पुरोत्तमम् ॥ ५४ ॥ विशाखे पर्वतश्रेष्ठे नैकवप्रदरीशुभे ॥ गुहानिरतवासस्य गुहस्यायतनं महत् ॥ ५५ ॥ श्वेतोदरे महाशैले महाभवनमण्डिते ॥ पुरं गरुडपुत्रस्य सुनाभस्य महात्मनः ॥ ५६ ॥ पिशाचके गिरिवरे हर्म्यं प्रासादमण्डितम् ॥ यक्षगन्धर्वचरितं कुबेरभवनं महत् ॥ ५७ ॥ हरिकूटे हरिर्देवः सर्वभूतनमस्कृतः ॥ प्रभावात्तस्य शैलोऽसौ महानाभः प्रकाशते ॥ ५८ ॥ कुमुदे किन्नरावासा अञ्जने च महोरगाः ॥ कृष्णे गन्धर्व्वनगरा महाभवनशालिनः ॥ ५९ ॥ पाण्डुरे चारुशिखरे महाप्राकारतोरणे ॥ विद्याधरपुरन्तत्र महाभवनमालिनम् ॥ ६० ॥ सहस्रशिखरे शैले दैत्यानामुग्रकर्म्मणाम् ॥ पुराणि समुदीर्णानां सहस्रं हेममालिनाम् ॥ ६१ ॥ मुकुटे पन्नगावासा अनेकाः पर्वतोत्तमाः ॥ पुष्पके वै मुनिगणा नित्यमेव मुदायुताः ॥ ६२ ॥ वैवस्वतस्य सोमस्य वायोर्नागाधिपस्य च ॥ सुपक्षे पर्वतवरे चत्वार्य्यायतनानि च ॥ ६३ ॥ गन्धर्वैः किन्नरैर्यक्षैर्नागैर्विद्याधरोत्तमैः ॥ सिद्धैर्हि तेषु स्थानेषु नित्यमिष्टः प्रपूज्यते ॥ ६४ ॥

इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

॥ सूत उवाच ॥ मर्य्यादा पर्वते शुभ्रे देवकूटे निबोधत ॥ विस्तीर्णे शिखरे तस्य कूटे गिरिवरस्य ह ॥ १ ॥ समन्ताद्योजनशतं महाभवनमण्डितम् ॥ जन्मक्षेत्रं सुपर्णस्य वैनतेयस्य धीमतः ॥ २ ॥ नैकैर्महापक्षिगणैर्गारुडैः शीघ्रविक्रमैः ॥ सम्पूर्णवीर्यसम्पन्नैर्दसनैरुरगारिभिः ॥ ३ ॥ पक्षिराजस्य भवनं प्रथमं तन्महात्मनः ॥ महावायुप्रवेगस्य शाल्मलिद्वीपवासिनः ॥ ४ ॥ तस्यैव चारुमूर्धस्तु कूटेषु च महर्द्धिषु ॥ दक्षिणेषु विचित्रेषु सप्तस्वपि तु शोभिनः ॥ ५ ॥ सन्ध्याभ्राभाः समुदिता रुक्मप्राकारतोरणाः ॥ महाभवनमालाभिः शोभिता देवनिर्म्मिताः ॥ ६ ॥ त्रिंशद्योजनविस्तीर्णाश्चत्वारिंशत्तमायताः ॥ सप्त गन्धर्वनगरा नरनारीसमाकुलाः ॥ ७ ॥ आग्नेया नाम गन्धर्वा महाबलपराक्रमाः ॥ कुबेरानुचरा दीप्तास्तेपान्ते भवनोत्तमाः ॥ ८ ॥ तस्य चोत्तरकूटेषु भुवनस्य महागिरेः ॥ हर्म्यप्रासादबद्धश्च उद्यानवनशोभितम् ॥ ९ ॥ पुरमाशीविषैः पूर्णं महाप्राकारतोरणम् ॥ वादित्रशतनिर्घोषैरानन्दितवना

न्तरम् ॥ १० ॥ दुष्प्रसह्यममित्राणां त्रिंशद्योजनमण्डलम् ॥ नगरं सैंहिकेयानामुदीर्णं देवविद्विषाम् ॥ सिद्धदेवर्षिचरितं देवकूटे निबोधत ॥ ११ ॥ द्वि
तीये द्विजशार्दूल मर्य्यादापर्वते शुभे ॥ महाभवनमालाभिर्नानावर्णाभिरावृतम् ॥ १२ ॥ सुवर्णमणिचित्राभिरनेकाभिरलङ्कृतम् ॥ विशालरथ्यन्दु
र्धर्षं नित्यम्प्रमुदितं शिवम् ॥ १३ ॥ नरनारीगणाकीर्णं प्रांशुप्राकारतोरणम् ॥ षष्टियोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ॥ १४ ॥ नगरं कालकेयाना
मसुराणान्दुरासदम् ॥ देवकूटतटे रम्ये सन्निविष्टं सुदुर्जयम् ॥ महाभ्रचयसङ्काशं सुनासन्नाम विश्रुतम् ॥ १५ ॥ तस्यैव दक्षिणे कूटे त्रिंशद्योजनवि
स्तरम् ॥ द्विषष्टियोजनायामं हेमप्राकारतोरणम् ॥ १६ ॥ हृष्टपुष्टावलिप्तानां आवासाः कामरूपिणाम् ॥ औत्कचानां प्रमुदितं राक्षसानां महापुरम्
॥ १७ ॥ मध्यमे तु महाकूटे देवकूटस्य वै गिरेः ॥ सुवर्णमणिपाषाणैश्चित्रैः श्लक्ष्णतरैः शुभैः ॥ शाखाशतसहस्राद्यैर्नैकारोहसमाकुलम् ॥ १८ ॥
स्निग्धपर्णमहामूलमनेकस्कन्धवाहनम् ॥ रम्यं ह्यविरलच्छायं दशयोजनमण्डलम् ॥ १९ ॥ तत्र भूतवटन्नाम नानाभूतगणालयम् ॥ महादेवस्य प्रथितं
त्र्यम्बकस्य महात्मनः ॥ दीप्तमायतनं तत्र सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥ २० ॥ वराहगजसिंहर्क्षशार्दूलकरभाननैः ॥ गृध्रोलूकमुखैश्चैव मेषोष्ट्राजमहामु
खैः ॥ २१ ॥ कदम्बैर्विकटैः स्थूलैर्लम्बकेशतनूरुहैः ॥ नानावर्णाकृतिधरैर्नानासंस्थानसंस्थितैः ॥ २२ ॥ दीप्तैरनेकैरुग्रास्यैर्भूतैरुग्रपराक्रमैः ॥ अ
शून्यमभवन्नित्यं महापारिषदैस्तथा ॥ २३ ॥ तत्र भूतपतेर्भूता नित्यम्पूजां प्रयुञ्जते ॥ झर्झरैः शङ्खपटहैर्भेरीडिण्डिमगोमुखैः ॥ २४ ॥ रणितालसि
तोद्गीतैर्नित्यंवलितवर्जितैः ॥ विस्फूर्ज्जितशतैस्तत्र पूजायुक्ता गणेश्वराः ॥ प्रीताः पुरारिप्रमथास्तत्र क्रीडापराः सदा ॥ २५ ॥ सिद्धदेवर्षिगन्धर्व
यक्षनागेन्द्रपूजितः॥स्थाने तस्मिन् महादेवः साक्षाल्लोकशिवः शिवः ॥२६॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नाम चत्वारिंशोऽध्यायः॥४०॥
सूतउवाच ॥ विविक्तचारुशिखरं पवित्रं शङ्खवर्चसम् ॥ कैलासं देवभक्तानामालयं सुकृतात्मनाम् ॥ १ ॥ तस्य कूटतटे रम्ये मध्यमे कुन्दसन्निभे ॥
योजनानां शतायामे पञ्चाशच्च तथायतम् ॥ २॥ सुवर्णमणिचित्राभिरनेकाभिरलङ्कृतम् ॥ महाभवनमालाभिर्भूषितं नैकविस्तरम् ॥ ३ ॥ धनाध्यक्षस्य
देवस्य कुबेरस्य महात्मनः ॥ नगरन्तदनाधृष्यमृद्धियुक्तं मुदायुतम् ॥ ४ ॥ तस्य मध्ये सभा रम्या नानाकनकमण्डिता ॥ विपुला नाम विख्याता
विपुलस्तम्भतोरणा ॥ ५ ॥ तत्र तत्पुष्पकं नाम नानारत्नविभूषितम् ॥ महाविमानं रुचिरं सर्वकामगुणैर्युतम् ॥ ६ ॥ मनोजवं कामगमं हेमजालविभू
षितम् ॥ वाहनं यक्षराजस्य कुबेरस्य महात्मनः ॥ ७ ॥ तत्रैकपिङ्गलो देवो महादेवसखः स्वयम् ॥ वसति स्म स यक्षेन्द्रः सर्वभूतनमस्कृतः ॥ ८ ॥
तत्राप्सरोगणैर्य्यक्षैर्गन्धर्वैः सिद्धचारणैः ॥ वसति स्म महात्माऽसौ कुबेरो देवसत्तमः ॥ ९ ॥ तत्र पद्ममहापद्मौ तथा मकरकच्छपौ ॥ कुमुदः शङ्ख

नीलौ च नन्दनो निधिसत्तमः ॥ १० ॥ अष्टावेतेऽक्षया दिव्या धनेशस्य महात्मनः ॥ महानिधानास्तिष्ठन्ति सभायां रत्नसञ्चिताः ॥ ११ ॥ तथेन्द्रा ग्नियमादीनां देवानामप्सरोगणैः ॥ तेषां कैलास आवासो यत्र यक्षेश्वरः प्रभुः ॥ १२ ॥ कृत्वा पूर्वमुपस्थानं यक्षेन्द्रस्य महात्मनः ॥ पश्चाद्गच्छन्ति ये यस्य विहिताः परिचारकाः ॥ १३ ॥ तत्र मन्दाकिनी नाम सुरम्या विपुलोदका ॥ सुवर्णमणिसोपाना नानापुष्पोत्कटोत्कटा ॥ १४ ॥ जाम्बूनदम यैः पद्मैर्गन्धस्पर्शगुणान्वितैः ॥ नीलवैदूर्यपत्रैश्च गन्धोपेतैर्महोत्पलैः ॥ १५ ॥ तथा कुमुदखण्डैश्च महापद्मैरलङ्कृता ॥ यक्षगन्धर्वनारीभिरप्सरोभि श्च शोभिता ॥ १६ ॥ देवदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः ॥ उपस्पृष्टजला रम्या वापी मन्दाकिनी तथा ॥ १७ ॥ तथा अलकनन्दा च नन्दा च सरितां वरा ॥ एतैरेव गुणैर्युक्ता नद्यो देवर्षिसेविताः ॥ १८ ॥ तस्यैव शैलराजस्य पूर्वे कूटे परिश्रुताः ॥ सहस्रयोजनायामास्त्रिंशद्योजन विस्तराः ॥ १९ ॥ दश गन्धर्वनगराः समृद्ध्या परया युताः ॥ महाभवनमालाभिरनेकाभिर्विभूषिताः ॥ २० ॥ सुबाहुहरिकेशाद्या श्चित्रसेनजरादयः ॥ दश गन्धर्वराजानो दीप्तवह्निपराक्रमाः ॥ २१ ॥ तस्यैव पश्चिमे कूटे कुन्देन्दुसदृशप्रभे ॥ नानाधातुशतैश्चित्रैः सिद्धदे वर्षिसेविते ॥ २२ ॥ अशीतियोजनायामं चत्वारिंशत्प्रविस्तरम् ॥ एकैकयक्षभवनं महाभवनमालिनम् ॥ २३ ॥ महायक्षालयान्यत्र त्रिंश द्दाढ्यानि मे शृणु ॥ मुदाऽथ परमर्द्ध्या च संयुक्तानि समन्ततः ॥ २४ ॥ महामालिसुनेत्राद्यास्तथा मणिवरादयः ॥ उदीर्णा यक्षराजानस्तत्र त्रिं शत्सदा बसुः ॥ २५ ॥ इत्येते कथिता यक्षा वाय्वग्निसमतेजसः ॥ येषामधिपतिर्देवः श्रीमान् वैश्रवणः प्रभुः ॥ २६ ॥ तस्यैव दक्षिणे पार्श्वे हिमवत्य चलोत्तमे ॥ निकुञ्जनिर्झरगुहानैकसानुदरीतटे ॥ २७ ॥ अर्णवादर्णवं यावत् पूर्वपश्चायतेऽचले ॥ किन्नराणां पुरशतं निविष्टं वै क्वचित् क्वचित् ॥ २८ ॥ नैकशृङ्गकलापस्य शैलराजस्य कुक्षिषु ॥ नरनारीप्रमुदितं हृष्टपुष्टजनाकुलम् ॥ २९ ॥ द्रुमसुग्रीवसैन्याद्या भगदत्तपुरःसराः ॥ यत्र राजशतं तेषां दीप्तानां बलशालिनाम् ॥ ३० ॥ विवाहो यत्र रुद्रस्य महादेव्योमया सह ॥ तपस्तप्तवती चैव यत्र देवी वराङ्गना ॥ ३१ ॥ किरातरूपिणा चैव यत्र रुद्रे ण क्रीडितम् ॥ यत्र चैव कृतं ताभ्यां जम्बूद्वीपावलोकनम् ॥ ३२ ॥ यत्र ताः सम्मुदा युक्ता नानाभूतगणैर्युताः ॥ चित्रपुष्पफलोपेता रुद्रस्याक्रीडभूम यः ॥ ३३ ॥ दृष्टा गिरिदरीवासाः कृशोदर्य्यो मनोरमाः ॥ सुन्दर्य्यो यत्र किन्नर्य्यो रमन्ते स्म सुलोचनाः ॥ ३४ ॥ विशालाक्षास्तथा यक्षा अन्याश्चा प्सरसाङ्गणाः ॥ गन्धर्वाश्चाङ्गशालिन्यो यत्र तत्र मुदा युताः ॥ ३५ ॥ तत्रैवोमावनं नाम सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥ अर्धनारीनरं रूपं धृतवान् यत्र शङ्करः ॥ ३६ ॥ तथा शरवणं नाम यत्र जातः षडाननः ॥ यत्र चैव कृतोत्साहः क्रौञ्चशैलवनं प्रति ॥ ३७ ॥ ध्वजापताकिनश्चैव किङ्किणीजालमालिनम् ॥

यत्र सिंहरथं युक्तं कार्त्तिकेयस्य धीमतः ॥ ३८ ॥ चित्रपुष्पनिकुञ्जस्य क्रौञ्चस्य च गिरेस्तटे ॥ देवारिस्कन्दनः स्कन्दो यत्र शक्तिं विमुक्तवान् ॥३९॥
यत्राभिषिक्तश्च गुहः सेन्द्रोपेन्द्रैः सुरोत्तमैः ॥ सेनापत्ये च दैत्यारिर्द्वादशार्कप्रतापवान् ॥ ४० ॥ भूतसङ्घावकीर्णानि एतान्यन्यानि च द्विजाः ॥ तत्र तत्र
कुमारस्य स्थानान्यायतनानि च ॥ ४१ ॥ तथा पाण्डुशिला नाम ह्याक्रीडा क्रौञ्चघातिनः ॥ नानाभूतगणाकीर्णे पृष्ठे हिमवतः शुभे ॥ ४२ ॥
तस्य पूर्वे तटे रम्ये सिद्धावाससुदाहृतम् ॥ कलापग्राममित्येवं नाम्ना ख्यातं मनीषिभिः ॥ ४३ ॥ मृकण्डस्य वसिष्ठस्य भरतस्य नलस्य च ॥ विश्वामि
त्रस्य विप्रर्षेस्तथैवोद्दालकस्य च ॥ ४४ ॥ अन्येषाञ्चोग्रतपसां ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥ हिमवत्याश्रमाणाञ्च सहस्राणि शतानि च ॥ ४५ ॥ नैकसि
द्धगणावासं स्थानायतनमण्डितम् ॥ यक्षगन्धर्वचरितं नानाम्लेच्छगणैर्युतम् ॥ ४६ ॥ नानारत्नाकरापूर्णं नानासत्वनिषेवितम् ॥ नानानदीसहस्राणां
सम्भवं वरपर्वतम् ॥ ४७॥ पश्चिमस्याचलेन्द्रस्य निषधस्य यथार्थवत्॥ कीर्त्त्यमानमशेषेण विशेषं शृणुत द्विजाः ॥ ४८ ॥ विस्तीर्णे मध्यमे कूटे हेमधा
तुविभूषिते ॥ दीप्तमायतनं विष्णोः सिद्धर्षिगणसेवितम् ॥ यक्षाप्सरःसमाकीर्णं गन्धर्वगणसेवितम् ॥ ४९ ॥ तत्र साक्षान्महादेवः पीताम्बरधरो हरिः ॥
वरदः सेव्यते सिद्धैर्लोककर्त्ता सनातनः ॥ ५० ॥ तस्यैवाभ्यन्तरे कूटे नानाधातुविभूषिते ॥ तटे निषधकूटस्य श्लक्ष्णचारुशिलातले ॥ ५१ ॥ रुक्मका
ञ्चननिर्य्यूहन्तप्तकाञ्चनतोरणम् ॥ अनेकवलभीकूटप्रतोलीशतसङ्कटम् ॥ ५२ ॥ हर्म्यप्रासादमतुलन्तप्तकाञ्चनभूषितम् ॥ हर्म्यप्रासादबद्धञ्च मुदितञ्चा
तिविस्तरम् ॥ ५३ ॥ उद्यानमालाकलितं त्रिंशद्योजनमायतम्॥दुःप्रसह्यममित्रैस्तत् पूर्णमाशीविषोपमैः॥उलङ्कीनां प्रमुदितं रक्षसां राक्षसं पुरम् ॥५४॥
तस्यैव दक्षिणे पार्श्वे नैकदैत्यगणालये ॥ गुहाप्रवेशं नगरं शैलकुक्षौ दुरासदम् ॥ ५५ ॥ तथैव पश्चिमे कूटे पारिजातशिलोच्चये ॥ देवदानवभागानां स
मृद्धानि पुराणि तु ॥ ५६ ॥ तत्र सोमशिला नाम गिरेस्तस्य महातटे ॥ सोमो यत्रावतरति सदा पर्वसु पर्वसु ॥ ५७ ॥ उपासतेऽत्र श्रीमन्तं ताराप
तिमनिन्दितम् ॥ ऋषिकिन्नरगन्धर्वाः साक्षाद्देवं तमोनुदम् ॥ ५८ ॥ तत्रैव चोत्तरे कूटे ब्रह्मपार्श्वमिति स्मृतम् ॥ स्थानं तत्र सुरेशस्य ब्रह्मणः प्रथित
न्दिवि ॥ ५९ ॥ इज्यापूजानमस्कारैस्तत्र सिद्धाः स्वयम्भुवम् ॥ उपासते महात्मानं यक्षगन्धर्वदानवाः ॥ ६० ॥ तथैवायतनं वह्नेः सर्वलोकेषु विश्रुतम्॥
तत्र विग्रहवान् वह्निः सेव्यते सिद्धचारणैः ॥ ६१ ॥ तथैव चोत्तरे रम्ये त्रिशृङ्गे वरपर्वते ॥ ऋषिसिद्धानुचरिते नानाभूतगणालये ॥ पुरन्तत् त्रिषु लो
केषु हेमचित्रन्तु विश्रुतम् ॥ ६२ ॥ त्रयाणां देवमुख्यानां त्रीण्येवायतनानि च ॥ नारायणस्यायतनं पूर्वकूटे द्विजोत्तमाः ॥ मध्यमे
ब्रह्मणः स्थानं शङ्करस्य तु पश्चिमे ॥ ६३ ॥ दैत्यदानवगन्धर्वैर्यक्षराक्षसपन्नगैः ॥ इजाना अभिपूज्यन्ते देवदेवा महाबलाः ॥ ६४ ॥ तथा पुराणि

रम्याणि देशे चैव क्वचित् क्वचित् ॥ यक्षगन्धर्वनागानां त्रिशृङ्गे वरपर्वते॥ ६५ ॥ तथैव चोत्तरे देशे जारुधौ देवपर्वते ॥ अनेकशृङ्गकलिते सिद्धसाधु निषेविते ॥ ६६ ॥ यक्षाणां किन्नराणाञ्च गन्धर्वाणां सहस्रशः ॥ नागानां राक्षसानाञ्च दैत्यानाञ्च महाबले ॥ ६७ ॥ कूटे तु मध्यमे तस्य सिद्धसङ्घ निषेविते ॥ रम्ये देवर्षिचरिते रत्नधातुविभूषिते ॥ ६८ ॥ पद्मोत्पलवनैः फुल्लैः सौगन्धिकवनैस्तथा ॥ तथा कुमुदखण्डैश्च विकचैरुपशोभिते ॥ ६९ ॥ विहङ्गसङ्घसंघुष्टं नानासत्वनिषेवितम् ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं मत्तषट्पदसेवितम् ॥ ७० ॥ नानासत्वगणाकीर्णं विहङ्गैरुपशोभितम् ॥ चारुतीर्थंसुस म्बाधं त्रिंशद्योजनमण्डलम् ॥ ७१ ॥ सिद्धैरुपस्पृष्टजलं जलदोषविवर्जितम् ॥ तत्रानन्दजलन्नाम महापुण्यजलं सरः ॥ ७२ ॥ तत्र नागपतिश्चण्ड श्चण्डो नाम दुरासदः ॥ शतशीर्षा महाभागो विष्णुचक्राङ्कचिह्नितः ॥ इत्येवमष्टौ विज्ञेया विचित्रा देवपर्वताः ॥ ७३ ॥ पुरैरायतनैः पुण्यैः पुण्योदैश्च सरोवरैः ॥ सुवर्णपर्वतैर्नैकैस्तथा रजतपर्वतैः ॥ ७४ ॥ नानारत्नप्रभासैश्च नैकैश्च मणिपर्वतैः ॥ हरितालपर्व्वतैर्नैकैस्तथा हिङ्गुलकाञ्चनैः ॥ ७५ ॥ शुद्धैर्मनःशिलाजालैर्भास्वरैररुणप्रभैः ॥ नानाधातुविचित्रैश्च नैकैश्च मणिपर्वतैः ॥७६॥ पूर्णा वसुमती सर्व्वा गिरिभिर्नैकविस्तरैः ॥ नदीकन्दरशैलाद्यै रनैकैश्चित्रसानुभिः ॥ ७७ ॥ इत्येवमचलैर्युक्तैर्दैत्यराक्षससाधुभिः ॥ किन्नरोरगगन्धर्वैर्विचित्रैः सिद्धचारणैः ॥ ७८ ॥ गन्धर्वैरप्सरोभिश्च सेविता नैक विस्तराः ॥ पुण्यकृद्भिः समाकीर्णा केसराकृतयो नगाः ॥ ७९ ॥ गिरिजालन्तु तन्मेरोः सिद्धलोकमिति स्मृतम् ॥ चित्रं नानाश्रयोपेतं प्रचारं सुकृ तात्मनाम्॥८०॥नात्युग्रकर्मसिद्धानां प्रतिमा मध्यमाः स्मृताः॥ सहि स्वर्ग इति ख्यातः क्रमस्त्वेष प्रकीर्तितः ८१॥चतुर्महाद्वीपवतीसेयमुर्वी प्रकीर्तिता॥ नानावर्णप्रमाणैर्हि नानावर्णबलैस्तथा ॥ ८२ ॥ नानाभक्ष्यान्नपानैश्च नानाच्छादनभूषणैः ॥ प्रजाविकारैर्विविधैश्चित्रैरध्युषितैः सह ॥ ८३ ॥ चत्वा रो नैकवर्णाद्या महाद्वीपाः परिश्रुताः ॥ भद्राश्च भरताश्चैव केतुमालाश्च पश्चिमाः ॥ उत्तराः कुरवश्चैव कृतपुण्यप्रतिश्रयाः ॥ ८४ ॥ सैषा चतुर्महाद्वीपा नानाद्वीपसमाकुला ॥ पृथिवी कीर्तिता कृत्स्ना पद्माकारा मया द्विजाः ॥ ८५ ॥ तदेषा सान्तरद्वीपा सशैलवनकानना ॥ पद्मेत्यभिहिता कृत्स्ना पृथिवी बहुविस्तरा ॥ ८६ ॥ सब्रह्मसदनं लोकं सदेवासुरमानुषम् ॥ त्रिलोकमिति विख्यातं यत्सत्वैर्व्यवहार्य्यते ॥ ८७ ॥ चन्द्रादित्यावततं यत्तज्जग त्परिगीयते ॥ गन्धवर्णरसोपेतं शब्दस्पर्शगुणान्वितम् ॥ ८८ ॥ तं लोकपद्मं श्रुतिभिः पद्ममित्यभिधीयते ॥ एष सर्व्वपुराणेषु क्रमः सुपरिनिश्चितः ॥ ॥ ८९ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ छ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ सरोवरेभ्यः पुण्योदाः देव नद्यो विनिर्गताः ॥ महौघतोया नद्यश्च ताः शृणुध्वं यथाक्रमम् ॥ १ ॥ आकाशाम्भोनिधेर्योऽसौ सोम इत्यभिधीयते ॥ आधारः सर्वभूतानां देवानाममृ

ताकरः ॥ २ ॥ तस्मात् प्रवृत्ता पुण्योदा नदी ह्याकाशगामिनी ॥ सततेनानिलपथा प्रयाता विमलोदका ॥३॥ सा ज्योतिषि निवर्तन्ती ज्योतिर्गणनि
षेविता ॥ ताराकोटिसहस्राणां नभसश्च समायता ॥ ४ ॥ माहेन्द्रेण गजेन्द्रेण आकाशपथयायिना ॥ क्रीडिता ह्यन्तरतले या सा विशोभितोदका ॥
॥ ५ ॥ नैकैर्विमानसङ्घातैः प्रक्रामद्भिर्नभस्तलम् ॥ सिद्धैरुपस्पृष्टजला महापुण्यजला शिवा ॥ ६ ॥ वायुना प्रेर्य्यमाणा च अनेकाभोगगामिनी ॥
परिवर्त्तत्यहरहर्यथा सूर्य्यस्तथैव सा ॥ ७ ॥ चत्वार्य्यशीतिः पतता योजनानां समन्ततः ॥ वेगेन कुर्वती मेरुं सा प्रयाता प्रदक्षिणम् ॥ ८ ॥
विभिद्यमाना सलिलैस्तैजसेनानिलेन च ॥ मेरोरुत्तरकूटेषु पतिताथ चतुर्ष्वपि ॥ ९ ॥ मेरुकूटतटान्तेभ्य उत्कृष्टेभ्यो निवर्तिता ॥ विकीर्य्यमाणस
लिला चतुर्द्धासंसृतोदका ॥ १० ॥ षष्टियोजनसाहस्रं निरालम्बनमम्बरम् ॥ निपपात महाभागा मेरोस्तस्य चतुर्दिशम् ॥ ११ ॥ सा चतुर्ष्वपि त
श्चैव महापादेषु शोभना॥पुण्या मन्दरपूर्वेण पतिता हि महानदी॥१२॥पूर्वेणांशेन देवानां सर्वसिद्धगणालयम्॥सुवर्णचित्रकटकं नैकनिर्झरकन्दरम्॥१३॥
प्लावयन्ती सशैलेन्द्रं मन्दरञ्चारुकन्दरम् ॥ वप्रप्रतापशमनैरनेकैः स्फाटिकोदकैः ॥ १४ ॥ तथा चैत्ररथं रम्यं प्लावयन्ती प्रदक्षिणम् ॥ प्रविष्टा ह्यम्बर
नदी ह्यरुणोदसरोवरम् ॥ १५ ॥ अरुणोदान्निवृत्ताऽथ शीतान्ते रम्यनिर्झरे ॥ शैले सिद्धगणावासे निपपात सुगामिनी ॥ १६ ॥ सीता नाम महापुण्या
नदीनां प्रवरा नदी ॥ सा निकुञ्जनिरुद्धा तु अनेकाभोगगामिनी ॥ १७ ॥ शीतान्तशिखराद्भ्रष्टा सुकुञ्जे वरपर्वते ॥ निपपात महाभागा तस्मादपि
सुमञ्जसम् ॥ १८ ॥ तस्मान्माल्यवतं शैलं भावयन्ती वरापगा ॥ वैकङ्कं समनुप्राप्ता वैकङ्कान्मणिपर्वतम् ॥ मणिपर्वतान्महाशैलं ऋषभं नैककन्द
रम् ॥ १९ ॥ एवं शैलसहस्राणि दारयन्ती महानदी ॥ पतिताऽथ महाशैले जठरे सिद्धसेविते ॥ २० ॥ तस्मादपि महाशैलं देवकूटं तरङ्गिणी ॥
तस्य कुक्षिसमुद्भ्रान्ता क्रमेण पृथिवीं गता ॥ २१ ॥ सैवं स्थलीसहस्राणि शैलराजशतानि च ॥ वनानि च विचित्राणि सरांसि विविधानि च ॥ २२ ॥
स्रावयन्ती महाभागा विस्फारेष्ववलीकदा ॥ नदी सहस्रानुगता प्रवृत्ता च महानदी ॥ २३ ॥ भद्राश्वं सुमहाद्वीपं प्लावयन्ती वरापगा ॥ प्रविष्टा ह्यर्णवं
पूर्वं पूर्वे द्वीपे महानदी ॥२४॥ दक्षिणेऽपि प्रपन्ना या शैलेन्द्रे गन्धमादने ॥ चित्रैः प्रपातैर्विविधैर्नैकाविस्फालितोदका ॥ २५ ॥ तद्गन्धमादनवनं नन्दनं
देवनन्दनम् ॥ प्लावयन्ती महाभागा प्रयाता सा प्रदक्षिणम्॥२६॥नाम्ना ह्यलकनन्देति सर्वलोकेषु विश्रुता॥प्रविशत्युत्तरसरो मानसं देवमानसम् ॥२७॥ 
मानसाच्छैलराजानं रम्यं त्रिशिखरं गता ॥ त्रिकूटाच्छैलशिखरात् कलिङ्गशिखरं गता ॥ २८ ॥ कलिङ्गशिखराद्भ्रष्टा रुचके निपपात सा ॥
रुचकान्निषधं प्राप्ता ताम्राभं निषधादपि ॥ २९ ॥ ताम्राभशिखराद्भ्रष्टा गता श्वेतोदरं गिरिम् ॥ तस्मात्सुमूलं शैलेन्द्रं वसुधारञ्च पर्वतम् ॥ ३० ॥

हेमकूटं गता तस्मादेवशृङ्गे ततो गता ॥ तस्माद्गता महाशैलं ततश्चापि पिशाचकम् ॥ ३१ ॥ पिशाचकाच्छैलवरात् पञ्चकूटङ्गता पुनः ॥ पञ्चकूटात्तु कैलासं देवावासं शिलोच्चयम् ॥३२॥ तस्य कुक्षिषु विश्रान्ता नैककन्दरसानुषु ॥ हिमवत्युत्तमनदी निपपाताचलोत्तमे ॥ ३३ ॥ सैवं शैलसहस्राणि दारयन्ती महानदी ॥ स्थलीशतान्यनेकानि प्लावयन्त्याशुगामिनी ॥ ३४ ॥ वनानाञ्च सहस्राणि कन्दराणां शतानि च ॥ स्रावयन्ती महाभागा प्रयाता दक्षिणोदधिम् ॥ ३५ ॥ रम्या योजनविस्तीर्णा शैलकुक्षिषु संवृता ॥ या धृता देवदेवेन शङ्करेण महात्मना ॥ ३६ ॥ पावनी द्विजशार्दूल घोराणामपि पाप्मनाम् ॥ शङ्करस्याङ्गसंस्पर्शान्महादेवस्य धीमतः ॥ द्विगुणं पवित्रसलिला सर्वलोके महानदी ॥ ३७ ॥ अनुशैलं समन्ताच्च निर्गता बहुभिर्म्मुखैः ॥ अथोऽन्येनाभिधानेन ख्याता नद्यः सहस्रशः ॥ ३८ ॥ तस्माद्धिमवतो गङ्गा गता सा तु महानदी ॥ एवं गङ्गेति नाम्नादिप्रकाशा सिद्धसेविता ॥ ३९ ॥ धन्यास्ते सत्तमा देशा यत्र गङ्गा महानदी ॥ रुद्रसाध्यानिलादित्यैर्जुष्टतोया यशस्वती ॥ ४० ॥ महापादं प्रवक्ष्यामि मेरोरपि हि पश्चिमम् ॥ नानारत्नाकरं पुण्यं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ॥ ४१ ॥ विपुलं शैलराजानं विपुलोदरकन्दरम् ॥ नितम्बकुञ्जकटकैर्व्विमलैर्म्मण्डितोदरम् ॥ ४२ ॥ अपि या त्र्यम्बकस्यैषा त्रिदशैः सेवितोदका ॥ वायुवेगा गताभोगा लतेव भ्रामिता पुनः ॥ ४३ ॥ मेरुकूटतटाद्भ्रष्टा प्रहतैः स्वादितोदका ॥ विस्तीर्य्यमाणसलिला निर्म्मलांशुकसन्निभा ॥ ४४ ॥ तस्य कूटेऽम्बरनदी सिद्धचारणसेविता ॥ प्रदक्षिणमथावृत्य पतिता सा तु गामिनी ॥ ४५ ॥ देवभ्राजं महाभ्राजं सर्वभ्राजं महावनम् ॥ प्लावयन्ती महाभागा नानापुष्पफलोदका ॥ ४६ ॥ प्रदक्षिणं प्रकुर्वाणा नानावनविभूषिता ॥ प्रविष्टा पश्चिमसरः सितोदं विमलोदकम् ॥ ४७ ॥ सा सितोदाद्विनिष्क्रान्ता सुपक्षं पर्व्वतं गता ॥ सुपक्षतस्तु पुण्योदा ततो देवर्षिसेविता ॥ ४८ ॥ सुपक्षकूटतटगा तस्माच्च संशितोदका ॥ निपपात महाभागा रमण्यं शिखिपर्व्वतम् ॥ ४९ ॥ शिखेश्च पर्व्वतात् कङ्कं कङ्काद्वैदूर्य्यपर्व्वतम् ॥ वैदूर्य्यात् कपिलं शैलं तस्माच्च गन्धमादनम् ॥ ५० ॥ तस्माद्गिरिवरात् प्राप्ता पिञ्जरं वरपर्व्वतम् ॥ पिञ्जरात् सरसं याता तस्माच्च कुमुदाचलम् ॥५१॥ मधुमन्तं जनञ्चैव मुकुटञ्च शिलोच्चयम् ॥ मुकुटाच्छैलशिखरात् कृष्णं याता महागिरिम् ॥५२॥ कृष्णात् श्वेतं महाशैलं महानगनिषेवितम् ॥ श्वेतात् सहस्रशिखरं शैलेन्द्रं पतिता पुनः ॥ ५३ ॥ अनेकाभिः स्रवन्तीभिराप्यायितजला शिवा ॥ एवं शैलसहस्राणि सादयन्ती महानदी ॥ पारिजाते महाशैले निपपाताशुगामिनी ॥ ५४ ॥ अनेकनिर्झरनदी गुहासानुषु राजते ॥ तस्य कुक्षिष्वनेकासु भ्रान्ततोया तरङ्गिणी ॥ ५५ ॥ व्याहन्यमानसंवेगा गण्डशैलैरनेकशः ॥ संविघ्यमानसलिला गता च धरणीतले ॥ ५६ ॥ केतुमालं महाद्वीपं नानाम्लेच्छ

गणैर्युतम् ॥ प्लावयन्ती महाभागा प्रयाता पश्चिमार्णवम् ॥ ५७ ॥ सुवर्णचित्रपार्श्वे तु सुपार्श्वेऽप्युत्तरे गिरौ ॥ मेरोश्चित्रमहापादे महासत्वनिषेविते ॥ ५८ ॥ मेरुकूटतटाद्भ्रष्टा पवनेनेरितोदका ॥ अनेकाभोगवक्राङ्गी क्षिप्यमाणा नभस्तले ॥ ५९ ॥ षष्टियोजनसाहस्रे निरालम्बेऽम्बरे शुभे ॥ विकीर्य्यमाणा मालेव निपपात महानदी ॥ ६० ॥ एवं कूटतटैर्भ्रष्टा नैकैर्देवर्षिसेवितैः ॥ विकीर्य्यमाणसलिला नैकपुष्पोडुपोत्कचा ॥ ६१ ॥ नानारत्नवनोद्देशमरण्यं सवितुर्व्वनम् ॥ महावनं महाभागा प्लावयन्ती प्रदक्षिणम् ॥ ६२ ॥ सरोवरं महापुण्यं महाभागनिषेवितम् ॥ तत्राविवेश कल्याणी महाभद्रं सितोदका ॥ ६३ ॥ भद्रसोमेति नाम्ना हि महापारा महाजवा ॥ महानदी महापुण्या महाभद्रा विनिर्गता ॥ ६४ ॥ नैकनिर्झरवप्राढ्या शङ्खकूटतटे तु सा ॥ तत्र कूटे गिरितटे निपपाताशुगामिनी ॥ ६५ ॥ शङ्खकूटतटाद्भ्रष्टा पपात वृषपर्व्वतम् ॥ वृषपर्व्वताद्वत्सागिरिं नागशैलं ततो गता ॥ ६६ ॥ तस्मान्नीलं नगश्रेष्ठं संप्राप्ता वर्षपर्व्वतम् ॥ नीलात् कपिञ्जलञ्चैव इन्द्रनीलं च निम्नगा ॥ ६७ ॥ ततः परं महानीलं हेमशृङ्गञ्च सा ययौ ॥ हेमशृङ्गाद्गता श्वेतं श्वेताच्च सुनगं ययौ ॥ ६८ ॥ सुनगात् शतशृङ्गञ्च संप्राप्ता सा महानदी ॥ शतशृङ्गान्महाशैलं पुष्करं पुष्पमण्डितम् ॥ ६९ ॥ पुष्कराच्च महाशैलं द्विराजं सुमहाबलम् ॥ वराहपर्व्वतं तस्मान्मयूरञ्च शिलोच्चयम् ॥ ७० ॥ मयूराच्चैकशिखरं कन्दरोदरमण्डितम् ॥ जारुधिं शैलशिखरं निपपाताशुगामिनी ॥ ७१ ॥ एवं गिरिसहस्राणि दारयन्ती महानदी ॥ त्रिशृङ्गं शृङ्गकलिलं मर्य्यादापर्व्वतं गता ॥ ७२ ॥ त्रिशृङ्गतटविभ्रष्टा महाभागनिषेविता ॥ मेरुकूटतटाद्भ्रष्टा पवनेनेरितोदका ॥ ७३ ॥ निरुद्धं पर्व्वतवरं पपात विमलोदका ॥ प्लावयन्ती महाभागा प्रयाता पश्चिमार्णवम् ॥ ७४ ॥ सुवर्णभुवि पार्श्वे तु सुपार्श्वेऽप्युत्तरे गिरौ ॥ मेरोश्चित्रे महापादे महासत्वनिषेविते ॥ ७५ ॥ कन्दरोदरविभ्रष्टा तस्मादपि तरङ्गिणी ॥ नैकभोगा पपातोर्वीं चित्रपुष्पोडुपोत्कचा ॥ ७६ ॥ प्लावयन्ती प्रमुदिता उत्तरान् सा कुरून् शिवा ॥ महाद्वीपस्य मध्येन प्रयाता सोत्तरार्णवम् ॥ ७७ ॥ एवं तास्तु महानद्यश्चतस्रो विमलोदकाः ॥ महागिरितटभ्रष्टाः संप्रयाताश्चतुर्दिशम् ॥ ७८ ॥ तत्सेयं कथितप्राया पृथिवी बहुविस्तरा ॥ मेरुशैलमहाकीर्णा दिशश्च सर्व्वतोदिशम् ॥ ७९ ॥ चतुर्महाद्वीपवती चतुराक्रीडकानना ॥ चतुष्केतुमहावृक्षा चतुर्व्वरसरस्वती ॥ ८० ॥ चतुर्महाशैलवती चतुर्भुजगसंश्रया ॥ अष्टोत्तरमहाशैला तथाष्टवरपर्वता ॥ ८१ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ७ ॥

॥ सूत उवाच ॥ गन्धमादनपार्श्वे तु स्फीता चोपरि गण्डिका ॥ द्वात्रिंशतं सहस्राणि योजनैः पूर्व्वपश्चिमा ॥ १ ॥ अत्यायामश्चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि प्रमाणतः ॥ तत्र ते शुभकर्म्माणः केतुमालाः परिश्रुताः ॥ २ ॥ तत्र काला नराः सर्वे महासत्वा महाबलाः ॥ स्त्रियश्चोत्पलपत्राभाः सर्वास्ताः प्रियद

र्शनाः ॥ ३ ॥ तत्र दिव्यो महावृक्षः पनसः षड्रसाश्रयः ॥ ईश्वरो ब्रह्मणः पुत्रः कामचारी मनोजवः ॥ तस्य पीत्वा फलरसं जीवन्ति हि समायुतम्॥४॥ पार्श्वे माल्यवतश्चापि पूर्वे पूर्वा तु गण्डिका ॥ आयामतोऽथ विस्ताराद्यथैवापरगण्डिका ॥ ५ ॥ भद्राश्वास्तत्र विज्ञेया नित्यं मुदितमानसा ॥ भद्रं सालवनं तत्र कालाम्राश्च महाद्रुमाः ॥ ६ ॥ तत्र ते पुरुषाः श्वेता महासत्त्वा महाबलाः ॥ स्त्रियः कुमुदवर्णाभाः सुन्दर्य्यः प्रियदर्शनाः ॥ ७ ॥ चन्द्रप्रभाश्चन्द्रवर्णाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ॥ चन्द्रशीतलगात्राश्च स्त्रियश्चोत्पलगन्धिकाः ॥ ८ ॥ दशवर्षसहस्राणि तेषामायुर्निरामयम् ॥ कालाम्र स्य रसं पीत्वा सर्व्वदा स्थिरयौवनाः ॥ ९ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ प्रमाणं वर्णमायुश्च यथातथ्येन कीर्तितम् ॥ चतुर्णामपि द्वीपानां समासान्न तु विस्तरात् ॥ १० ॥ ॥ सूत उवाच ॥ भद्राश्वानां यथा चिह्नं कीर्तितं कीर्तिवर्द्धनाः ॥ तच्छृणुध्वन्तु कार्त्स्न्येन पूर्वसिद्धैरुदाहृतम् ॥ ११ ॥ देवकूट स्य सर्वस्य प्रथितस्येह यत्परम् ॥ पूर्वेण दिक्षु सर्वासु यथावच्च प्रकीर्तितम् ॥१२॥ कुलाचलानां पञ्चानां नदीनाञ्च विशेषतः ॥ तथा जनपदानाञ्च यथा दृष्टं यथाश्रुतम् ॥१३॥ शैवालो वर्णमालाग्रः कोरजश्चाचलोत्तमः ॥ श्वेतवर्णश्च नीलश्च पञ्चैते कुलपर्वताः ॥ १४ ॥ तेषां प्रसूतिरन्येपि पर्वता बहुवि स्तराः ॥ कोटिकोटिः क्षितौ ज्ञेयाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १५ ॥ तैर्विमिश्रा जनपदैर्नानासत्त्वसमाकुलाः ॥ नानाप्रकारजातीयास्त्वनेकनृपपालिताः ॥ ॥ १६ ॥ नामधेयैश्च विक्रान्तैः श्रीमद्भिः पुरुषर्षभैः ॥ अध्यासिता जनपदाः कीर्तनीयाश्च शोभिताः ॥ १७ ॥ तेषान्तु नामधेयानि राष्ट्राणि विविधानि च ॥ गिर्य्यन्तरनिविष्टानि समेषु विषमेषु च ॥१८॥ तथा सुमङ्गलाः शुद्धाश्चन्द्रकान्ताः सुनन्दनाः॥ व्रजका नीलशैलेयाः सौवीरा विजयस्थलाः॥१९॥ महास्थलाः सुकामाश्च महाकेशाः सुमूर्द्धजाः ॥ वातरंहाः सोपसङ्गाः परिवायाः पराचकाः ॥ २०॥ सम्भवक्त्रा महानेत्राः शैवालास्तनपास्तथा ॥ कुमु दाः शाकमुण्डाश्च उरःसङ्कीर्णभौमकाः ॥ २१ ॥ सोदका वत्सकाश्चैके वाराहा हारवामकाः ॥ शङ्खाख्या भाविसन्द्राश्च उत्तरा हैमभौमकाः ॥ २२ ॥ कृष्णभौमाः सुभौमाश्च महाभौमाश्च कीर्तिताः ॥ एते चान्ये च विख्याता नानाजनपदा मया ॥२३॥ ते पिबन्ति महापुण्यां महागङ्गां महानदीम्॥आदौ त्रैलोक्य विख्याता शीता शीताम्बुवाहिनी॥२४॥तथा च हंसवसतिर्महाचक्रा च निम्नगा ॥ चक्रा वक्त्रा च कञ्ची च सुरसा चापगोत्तमा॥२५॥ शाखाव ती चेन्द्रनदी मेघा मङ्गारवाहिनी ॥ कावेरी हरितोया च सोमावर्त्ता शतह्रदा ॥२६ ॥ वनमाला वसुमती पम्पा पम्पावती शुभा ॥ सुवर्णा पञ्चवर्णा च तथा पुण्या वपुष्मती ॥ २७ ॥ मणिवप्रा सुवप्रा च ब्रह्मभागा शिलाशिनी ॥ कृष्णतोया च पुण्योदा तथा नागपदी शुभा ॥ २८॥ शैवालिनी मणित टा क्षारोदा चारुणावती ॥ तथा विष्णुपदी चैव महापुण्या महानदी ॥ २९ ॥ हिरण्यवाहिनीला च स्कन्दमाला सुरावती ॥ वामोदा च पताका च वे

ताली च महानदी ॥ ३० ॥ एता गङ्गा महानद्यो नायिका परिकीर्त्तिताः ॥ क्षुद्रनद्यस्त्वसंख्याताः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३१ ॥ पूर्व्वद्वीपस्य वाहिन्यः पुण्यवत्यश्च कीर्त्तिताः ॥ कीर्त्तनेनापि चैतासां पूतः स्यादिति मे मतिः ॥ ३२ ॥ समृद्धराष्ट्रं स्फीतञ्च नानाजनपदाकुलम् ॥ नानावृक्षवनोद्देशं नानानग सुवेष्टितम् ॥ ३३ ॥ नरनारीगणाकीर्णं नित्यं प्रमुदितं शिवम् ॥ बहुधान्यधनोपेतं नानानृपतिपालितम् ॥ उपेतं कीर्त्तनशतैर्नानारत्नाकराकरम् ॥ ३४ ॥ तस्मिन्देशे समाख्याता हेमशङ्खदलप्रभाः ॥ महाकाया महावीर्य्याः पुरुषाः पुरुषर्षभाः ॥ ३५ ॥ सम्भाषणं दर्शनञ्च समस्थानोपसेवनम् ॥ देवैः सह महाभागाः कुर्वते तत्र वै प्रजाः ॥ ३६ ॥ दशवर्षसहस्राणि तेषामायुः प्रकीर्त्तितम् ॥ धर्माधर्मविशेषश्च न तेष्वस्ति महात्मसु ॥ अहिंसा सत्यवाक्यञ्च प्रकृत्यैव हि वर्त्तते ॥ ३७ ॥ ते भक्त्या शङ्करं देवं गौरीं परमवैष्णवीम् ॥ इज्यापूजानमस्कारांस्ताभ्यां नित्यं प्रयुञ्जते ॥ ३८ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ॥ ७ ॥

॥ सूत उवाच ॥ निसर्ग एष विख्यातो भद्राश्वानां यथार्थवत् ॥ शृणुध्वं केतुमालानां विस्तरेण प्रकीर्त्तनम् ॥ १ ॥ निषधस्याचलेन्द्रस्य पश्चिमस्य महात्मन ॥ पश्चिमेन हि यत्तत्र दिक्षु सर्वासु कीर्त्तितम् ॥ २ ॥ कुलाचलानां सप्तानां नदीनाञ्च विशेषतः ॥ तथा जनपदानाञ्च विस्तरं श्रोतुमर्हथ ॥ ३ ॥ विशालः कम्ब लः कृष्णो जयन्तो हरिपर्व्वतः ॥ अशोको वर्द्धमानश्च सप्तैते कुलपर्व्वताः ॥ ४ ॥ तेषां प्रसूतिरन्येऽपि पर्व्वता बहुविस्तराः ॥ कोटिकोटिशता ज्ञेयाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५ ॥ तैर्विमिश्रा जनपदा नानाजातिसमाकुलाः ॥ नानाप्रकारविज्ञेयास्त्वनेकनृपपालिताः ॥ ६ ॥ ते नामधेयैर्विक्रा न्ता विविधाः प्रथिता भुवि ॥ अध्यासिता जनपदैः कीर्त्तिनैश्च विभूषिताः ॥ ७ ॥ तेषां सनामधेयानि राष्ट्राणि विविधानि च ॥ गिर्य्यन्तरनिविष्टानि समेषु विषमेषु च ॥ ८ ॥ यथेह कथिताः पौरा गोमनुष्यकपोतकाः ॥ तत्सुखा भ्रमरा यूथा माहेयाचलकूटकाः ॥ ९ ॥ सुमौलाः स्तावकाः क्रौञ्चाः कृ ष्णाङ्गमणिपुञ्जकाः ॥ कूटकम्बलमौषीयाः समुद्रान्तरकास्तथा ॥ १० ॥ करम्भवाः कुचाः श्वेताः सुवर्णकटका शुभाः ॥ श्वेताङ्गाः कृष्णपादाश्च विहाः कपिलकर्णिकाः ॥ ११ ॥ अत्याकरालगोज्वाला हीनाना वनपातकाः ॥ महिषाः कुसुदाभाश्च करवाटाः सहोत्कचाः ॥ १२ ॥ शुनकासा महाना सा वनासगजभूमिकाः ॥ करञ्जमञ्जमा वाहाः किष्किण्डीपाण्डुभूमिकाः ॥ १३ ॥ कुबेरा धूमजा जङ्गा वङ्गा राजीवकोकिलाः ॥ वाचाङ्गाश्च महाङ्गाश्च म धौरेयाः सुरेचकाः ॥ १४ ॥ पित्तलाः काचलाश्चैव श्रवणा मत्तकासिकाः ॥ गोदावा वकुला वाङ्गा वङ्गका मोदकाः कलाः ॥ १५ ॥ ते पिबन्ति महाभागाः प्रथ मान्तु महानदीम् ॥ सुवप्रां पुण्यसलिलां महानागनिषेविताम् ॥ १६ ॥ कम्बलां तामसीं श्यामां सुमेधां वकुलां नदीम् ॥ विकीर्णां शिखिमालाञ्च तथा

दर्भावतीमपि ॥१७॥ भद्रानदीं शुकनदीं पलाशाञ्च महानदीम् ॥ भीमाम्प्रभञ्जनां काञ्चीं पुण्याञ्चैव कुशावतीम् ॥ १८ ॥ दक्षां शाकवतीञ्चैव पुण्योदाञ्च
महानदीम् ॥ चन्द्रावतीं सुमूलाञ्च ऋषभाञ्चापगोत्तमाम् ॥ १९ ॥ नदीं समुद्रमालाञ्च तथा चम्पावतीमपि ॥ एकाक्षां पुष्कलां वाहां सुवर्णां नन्दिनीमपि
॥२०॥ कालिन्दीञ्चैव पुण्योदां भारतीञ्च महानदीम् ॥ सीतोदाम्पातिकां ब्राह्मीं विशालाञ्च महानदीम् ॥२१॥ पीवरीं कुम्भकारीञ्च रुपाञ्चैवापगोत्तमाम् ॥
महिषीं मानुषीं दण्डां तथा नदनदीं शुभाम् ॥२२॥ एताश्चान्याश्च पीयन्ते बह्व्यो हि सरितोत्तमाः ॥ देवर्षिसिद्धचरिताः पुण्योदाः पापहाः शुभाः ॥२३॥
नानाजनपदास्फीतं महापगाविभूषितम् ॥ नानारत्नौघसम्पूर्णं नित्यं प्रमुदितं शिवम् ॥ २४ ॥ उदीर्णं धनधान्याद्यैर्नरवासैः समन्ततः ॥ सन्निविष्टं महा
द्वीपं पश्चिमं सुकृतात्मनाम् ॥ निसर्गः केतुमालानामेष वः परिकीर्त्तितः ॥ २५ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नाम चतुश्चत्वारिं
शोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ॥ शांशपायन उवाच ॥ ॥ पूर्वापरौ समाख्यातौ द्वौ देशौ नस्त्वया प्रभो ॥ उत्तराणाञ्च वर्षाणां दक्षिणानाञ्च सर्वशः ॥ आ
चक्ष्व नो यथातथ्यं ये च पर्व्वतवासिनः ॥ १ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ दक्षिणेन तु श्वेतस्य नीलस्यैवोत्तरेण तु ॥ वर्षं रमणकं नाम जायन्ते तत्र मा
नवाः ॥ २ ॥ सर्व्वर्तुकामदाः सत्वा जरादुर्गन्धवर्जिताः ॥ शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्व्वे च प्रियदर्शनाः ॥ ३ ॥ तत्रापि सुमहान् दिव्यो न्यग्रोधो रोहिणो
महान् ॥ तस्य पीत्वा फलरसं पिबन्तो वर्त्तयन्त्युत ॥४॥ दशवर्षसहस्राणि शतानि दशपञ्च च ॥ जीवन्ति ते महाभागाः सदा हृष्टा नरोत्तमाः ॥५॥ उत्तरेण तु
श्वेतस्य शृङ्गसाह्वस्य दक्षिणे ॥ वर्षं हिरण्यतं नाम यत्र हैरण्यती नदी ॥६॥ महाबलाः सुतेजस्का जायन्ते तत्र मानवाः ॥ सर्वर्तुकामदाः सत्वा धनिनः प्रियदर्श
नाः ॥ ७ ॥ एकादश सहस्राणि वर्षाणां तेऽमितौजसः ॥ आयुष्प्रमाणं जीवन्ति शतानि दशपञ्च च ॥ ८ ॥ तस्मिन् वर्षे महावृक्षो लकुचः षड्रसाश्रयः ॥
तस्य पीत्वा फलरसं तत्र जीवन्ति मानवाः ॥ ९ ॥ त्रीणि शृङ्गवतः शृङ्गाण्युच्छ्रितानि महान्ति च ॥ एकं मणिमयं तेषामेकञ्चैव हिरण्मयम् ॥ सर्व्वरत्नम
यं चैकं भवनैरुपशोभितम् ॥ १० ॥ उत्तरस्य समुद्रस्य समुन्द्रान्ते च दक्षिणे ॥ कुरवस्तत्र तद्वर्षं पुण्यं सिद्धनिषेवितम् ॥ ११ ॥ तत्र वृक्षा मधुफला
नित्यं पुष्पफलोपगाः ॥ वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च ॥ १२ ॥ सर्व्वकामफलास्तत्र क्वचिद्वृक्षा मनोरमाः ॥ गन्धवर्णरसोपेतं प्रक्षरन्ति
मधूत्तमम् ॥ १३ ॥ अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षास्तत्र मनोरमाः ॥ ये क्षरन्ति सदा क्षीरं षड्रसं ह्यमृतोपमम् ॥ १४ ॥ सर्वा मणिमयी भूमिः सूक्ष्मकाञ्च
नवालुका ॥ सर्व्वतः सुखसंस्पर्शा निष्पङ्का नीरुजा शुभा ॥ १५ ॥ देवलोकाच्च्युतास्तत्र जायन्ते मानवाः शुभाः ॥ शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे च
स्थिरयौवनाः ॥ १६ ॥ मिथुनानि प्रसूयन्ते स्त्रियश्चातिमनोहराः ॥ ते च तं क्षीरिणं वृक्षं पिबन्ति ह्यमृतोपमम् ॥१७॥ मिथुनं जायते सद्यः समञ्चैव विवर्द्धे

ते ॥ समं शीलञ्च रूपं च म्रियन्ते चैव ते समम् ॥ १८ ॥ अन्योन्यमनुरक्ताश्च चक्रवाकसधर्मिणः ॥ अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं सुखनिषेविणः ॥ १९ ॥
त्रयोदश सहस्राणि शतानि दशपञ्च च ॥ जीवन्ति ते महावीर्य्या न चान्यस्त्रीनिषेविणः ॥ २० ॥ कुरूणामपि चैतेषां शृणुध्वं विस्तरेण तु ॥ जारु
धेः शैलराजस्याप्युत्तरेणोत्तरस्य हि ॥ दिक्षु सर्व्वासु यद्यत्र कीर्त्यमानं निबोधत ॥ २१ ॥ अनेककन्दरदरीगुहानिर्झरमण्डितौ ॥ नैककुञ्जवनोपेतौ
चित्रधातुविभूषितौ ॥ २२ ॥ अनेकधातुकलिलौ सर्व्वधातुविभूषितौ ॥ पुष्पमूलफलोपेतौ सिद्धचारणसेवितौ ॥ २३ ॥ द्वावप्येतौ सुमहतावुच्छ्रितौ कुल
पर्वतौ ॥ ताभ्यां कूटशतैर्नैकैस्तद्द्वीपमुपसेवितम् ॥ २४ ॥ चन्द्रकान्तश्च शैलश्च सूर्य्यकान्तश्च सानुमान् ॥ ययोर्मध्ये न सा याता भद्रसोमा महान
दी ॥ २५ ॥ सहस्रशश्च नद्योऽन्याः प्रसन्नसुरसोदकाः ॥ पर्य्याप्तोदाः कुरूणां हि स्नानपानावगाहनैः ॥ २६ ॥ तथाऽन्याः क्षीरवाहिन्यो महानद्यः सह
स्रशः ॥ मधुमैरेयवाहिन्यो घृतवाहिन्य एव च ॥ २७ ॥ दध्नः शतह्रदाश्चान्यास्ततः स्वाद्वन्नपर्वतः ॥ अमृतस्वादुकल्पानि फलानि विविधानि
च ॥ २८ ॥ गन्धवर्णरसाढ्यानि मूलानि च फलानि च ॥ पञ्चयोजनमानानि महागन्धानि सर्वशः ॥ २९ ॥ नानावर्णप्रकाराणि पुष्पाणि च सहस्रशः ॥ उप
भोगसहस्राणि भद्राणि च महान्ति च ॥ ३० ॥ गन्धवर्णरसाढ्यानि स्पर्शोपेतानि सर्वशः ॥ तमालागुरुगन्धानां चन्दनानां वनानि च ॥ ३१ ॥ भ्रमरै
रुपगीतानि प्रफुल्लानि सदैव च ॥ वृक्षगुल्मलताढ्यानि वनानि सुसुखानि च ॥ ३२ ॥ षट्पदैरुपगीतानि द्विजैश्चान्यैर्द्विजोत्तमाः ॥ पद्मोत्पलवनाढ्या
नि सरांसि च सहस्रशः ॥ ३३ ॥ भक्ष्यमाल्यसमृद्धाश्च बहुमाल्यानुलेपनाः ॥ मनोहरसुखैश्चित्रैः पक्षिसङ्घैर्निकूजिताः ॥ ३४ ॥ शयनासनोपभोगाश्च
अनेकगुणविस्तराः ॥ विहारभूमयो रम्याः सर्वर्तुषु सुखप्रदाः ॥ ३५ ॥ आक्रीडाः सर्वतः स्फीताः मणिहेमपरिष्कृताः ॥ शिलागृहा वृक्षगृहा वरे
ण्याः कदलीगृहाः ॥ ३६ ॥ लतागृहसहस्राणि सुसुखानि समन्ततः ॥ शुद्धशङ्खदलाभानि भूमिवेश्मशतानि च ॥ ३७ ॥ तपनीयगवाक्षाणि मणिजाला
न्तराणि च ॥ सुवर्णमणिचित्राणि सर्वत्र विपुलानि च ॥ ३८ ॥ महावृक्षसहस्राणि वरेण्यानि च सर्वशः ॥ नानाकाराणि वासांसि सूक्ष्माणि सुसुखानि च ॥ ३९ ॥
मृदङ्गवेणुपणववीणाद्या बहुविस्तराः ॥ फलन्ति कल्पवृक्षाणां सहस्राणि शतानि च ॥ ४० ॥ सर्वत्रैव तथोद्यानं सर्वत्रैव हि तत्पुरम् ॥ सर्वद्वीपप्रमुदितं नर
नारीसमाकुलम् ॥ प्रवाति चानिलस्तत्र नानापुष्पाधिवासितः ॥ ४१ ॥ नित्यमङ्गसुखाह्लादस्तस्मिन् द्वीपे श्रमापहे ॥ तत्र स्वर्गपरिभ्रष्टा जायन्ते हि
नराः सदा ॥ भौमं तदपि हि स्वर्गं तत्रापि च गुणोत्तमम् ॥ ४२ ॥ चन्द्रकान्ता नरवराः श्यामाङ्गाः पूर्वकूलजाः ॥ श्यामावदाताः सुखिनः सूर्यकान्ता वराः प्र
जाः ॥ ४३ ॥ तस्मिन् देशे नराः श्रेष्ठा देवसत्वपराक्रमाः ॥ सदा विहारिणः सर्वे कामवृत्त्या सुवर्चसः ॥ ४४ ॥ वलयाङ्गदकेयूरहारकुण्डलभूषिताः ॥ स्रग्विणश्चित्रसु

कुटाश्चित्राच्छादनवाससः ॥ ४५ ॥ अजीर्णयौवनधराः सुप्रियाः प्रियदर्शनाः ॥ प्रजा वर्षसहस्राणि जीवन्ति सुवहून्युत ॥४६॥ न ताः प्रसवधर्मिण्यो न
वंशप्रक्षयो विधिः ॥ मिथुनं जायते वृक्षाद्दुपक्षममनीदृशम् ॥ ४७ ॥ सामान्यविभवाः सर्वे ममत्वपरिवर्जिताः ॥ न तत्र विद्यते धर्म्मो नाधर्म्मः सम्प्रव
र्त्तते ॥ ४८ ॥ न व्याधिर्न जरा तत्र न दुर्मेधा न च क्लमः ॥ पूर्णे काले विनश्यन्ति जलबुद्बुदवच्च ते ॥४९ ॥ एवमत्यन्तसुखिनः सर्वदुःखविवर्जिताः ॥
रक्ता धर्म्मं न पश्यन्ति दुःखाद्धर्मोऽभिजायते ॥ ५० ॥ उत्तराणां कुरूणान्तु पार्श्वे ज्ञेयन्तु दक्षिणे ॥ समुद्रमूर्मिमालाढ्यं नानास्वरविभूषितम् ॥५१॥
पञ्चयोजनसाहस्रमतिक्रम्य सुरालयम् ॥ चन्द्रद्वीपमिति ख्यातं चन्द्रमण्डलसंस्थितम् ॥ ५२ ॥ सहस्रयोजनानान्तु सर्वतः परिमण्डलम् ॥ ना
नापुष्पफलोपेतं समृद्ध्या परया युतम् ॥ शतयोजनविस्तीर्णमुच्छ्रितं तावदेव तु ॥ ५३ ॥ तस्य मध्ये गिरिवरः सिद्धचारणसेवितः ॥ चन्द्रतु
ल्यप्रभैः कान्तैश्चन्द्राकारैः सुलक्षणैः ॥ ५४ ॥ श्वेतवैदूर्य्यकुमुदैश्चित्रोऽसौ कुमुदप्रभः ॥ अनेकचित्रकोद्यानो नैकनिर्झरकन्दरः ॥ महासानुदरीकु
ञ्जैर्विविधैः समलङ्कृतः ॥ ५५ ॥ तस्माच्छैलान्महापुण्या चन्द्रांशुविमलोदका ॥ प्रवहत्युत्तमनदी चन्द्रावर्त्ता तरङ्गिणी ॥ ५६ ॥ तत्र चन्द्र
मसः स्थानं नक्षत्राधिपतेर्वरम् ॥ सदाऽवतरते तत्र चन्द्रमा ग्रहनायकः ॥ ५७ ॥ तत्र चन्द्रमसो नाम्ना शैलः स तु परिश्रुतः ॥ चन्द्रद्वीपं
महाद्वीपं प्रकाशं दिवि चेह च ॥ ५८ ॥ तत्र चन्द्रप्रतीकाशाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ॥ चन्द्रकान्ताः प्रजाः सर्वा विमलाश्चन्द्रदैवताः ॥ ५९ ॥
अत्यन्तधार्मिकाः सौम्याः सत्यसन्धाः सुतेजसः ॥ प्रजास्तत्र सदाचारा दशवर्षशतायुषः ॥ ६० ॥ पश्चिमेन तु द्वीपस्य पश्चिमस्य प्रकीर्त्तितम् ॥
चतुर्योजनसाहस्रं समतीत्य महोदधिम् ॥ ६१ ॥ दशयोजनसाहस्रं समन्तात् परिमण्डलम् ॥ द्वीपं भद्राकरं नाम नानापुष्पोपशोभितम् ॥ ६२ ॥
प्रभूतधनधान्याढ्यमनेकनृपपालितम् ॥ नित्यं प्रमुदितं स्फीतं महाशैलैश्च शोभितम् ॥ ६३ ॥ तत्र भद्रासनं वायोर्नानारत्नैश्च मण्डितम् ॥ तत्र
विग्रहवान् वायुः सदा पर्वसु पूज्यते ॥ ६४ ॥ तपनीयसुवर्णाभास्तपनीयविभूषिताः ॥ विराजन्तेऽमरप्रख्यास्तत्र चित्राम्बरस्रजः ॥ ६५ ॥ वीर्य्य
वन्तो महाभागाः पञ्चवर्षशतायुषः ॥ सत्यसन्धा मुदा युक्ताः प्रजास्ता वायुदैवताः ॥ ६६ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ एवमेव निसर्गोऽयं वर्षाणां भारते
युगे ॥ दृष्टः परमतत्त्वज्ञैर्भूयः किं कीर्त्तयामि ते ॥ ६७ ॥ आख्याते त्वेवमृषयः सूतपुत्रेण धीमता ॥ उत्तरश्रवणे भूयः पप्रच्छुस्तदनन्तरम् ॥
॥ ६८ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ यदिदं भारतं वर्षं यस्मिन् स्वायम्भुवादयः ॥ चतुर्दशैते मनवः प्रजासर्गे भवन्त्युत ॥ ६९ ॥ एतद्वेदितु
मिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम ॥ एतत् श्रुत्वा वचस्तेषामब्रवीँल्लोमहर्षणः ॥ ७० ॥ पौराणिकस्तदा सूत ऋषीणां भावितात्मनाम् ॥ एत

द्विस्तरतो भूयस्तानुवाच समाहितः ॥ ७१ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ निसर्ग एष विख्यातः कुरूणान्तु यथार्थवत् ॥ भारतस्य तु
वक्ष्यामि निसर्गं तं निबोधत ॥ ७२ ॥ पुण्यतीर्थे हिमवतो दक्षिणस्याचलस्य हि ॥ पूर्वपश्चायतस्यास्य दक्षिणेन द्विजोत्तमाः ॥ ७३ ॥
तथा जनपदानां च विस्तरं श्रोतुमर्हथ ॥ अत्र वो वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः ॥७४॥ इदं तु मध्यमं चित्रं शुभाशुभफलोदयम् ॥ उत्तरं यत्स
मुद्रस्य हिमवद्दक्षिणं च यत् ॥ ७५ ॥ वर्षं यद्भारतं नाम यत्रेयं भारती प्रजा ॥ भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते ॥ निरुक्तवचनाच्चैव वर्षं तद्भारतं
स्मृतम् ॥ ७६ ॥ ततः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यश्चान्तश्च गम्यते ॥ न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्म विधीयते ॥ ७७ ॥ भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदाः
प्रकीर्तिताः ॥ समुद्रान्तरिता ज्ञेयास्ते त्वगम्याः परस्परम् ॥ ७८ ॥ इन्द्रद्वीपः कसेरुश्च ताम्रवर्णो गभस्तिमान् ॥ नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ
वारुणः ॥ ७९ ॥ अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ॥ योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरम् ॥ ८० ॥ आयतो ह्याकुमारिक्यादागङ्गाप्रभवाच्च
वै ॥ तिर्य्यगुत्तरविस्तीर्णः सहस्राणि नवैव तु ॥ ८१ ॥ द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु नित्यशः ॥ पूर्वे किराता ह्यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्मृ
ताः ॥ ८२ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः ॥ इज्यायुद्धवणिज्याभिर्वर्त्तयन्तो व्यवस्थिताः ॥ ८३ ॥ तेषां संव्यवहारोऽयं वर्त्तते तु प
रस्परम् ॥ धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानां तु स्वकर्मसु ॥ ८४ ॥ सङ्कल्पपञ्चमानां तु आश्रमाणां यथाविधि ॥ इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिर्येषु मानुषी ॥८५॥
यस्त्वयं नवमो द्वीपस्तिर्य्यगायत उच्यते ॥ कृत्स्नं जयति यो ह्येनं स सम्राडिह कीर्त्त्यते ॥ ८६ ॥ अयं लोकस्तु वै सम्राडन्तरिक्षो विराट् स्मृतः ॥
स्वराडन्यः स्मृतो लोकः पुनर्वक्ष्यामि विस्तरम् ॥ ८७ ॥ सप्त चास्मिन् सुपर्वाणो विश्रुताः कुलपर्वताः ॥ महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः ॥
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥८८॥ तेषां सहस्रशश्चान्ये पर्वतास्तु समीपगाः ॥ अभिजाताः सर्वगुणा विपुलाश्चित्रसानवः ॥८९॥ मन्दरः पर्वत
श्रेष्ठो वैहारो दर्दुरस्तथा ॥ कोलाहलः ससुरसः मैनाको वैद्युतस्तथा ॥९०॥ पातन्धमो नाम गिरिस्तथा पाण्डुरपर्वतः ॥ गन्तुप्रस्थः कृष्णगिरिर्गोधनो गिरिरेव
च ॥ ९१ ॥ पुष्पगिर्य्युज्जयन्तौ च शैलो रैवतकस्तथा ॥ श्रीपर्वतश्च कारुश्च कूटशैलो गिरिस्तथा ॥९२॥ अन्ये तेभ्यः परिज्ञाता ह्रस्वाः स्वल्पोपजीविनः ॥
तैर्विमिश्रा जनपदा आर्य्यम्लेच्छाश्च नित्यशः ॥९३॥ पीयन्ते यैरिमा नद्यो गङ्गा सिन्धुः सरस्वती ॥ शतद्रुश्चन्द्रभागा च यमुना सरयूस्तथा ॥ ९४ ॥
इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः ॥ गोमती धुतपापा च बाहुदा च दृषद्वती ॥ ९५ ॥ कौशिकी च तृतीया तु निश्चीरा गण्डकी तथा ॥ इक्षु
र्लोहित इत्येता हिमवत्पादनिःसृताः ॥ ९६ ॥ वेदस्मृतिर्वेदवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च ॥ वर्णाशा चन्दना चैव सतीरा महती तथा ॥ ९७ ॥ परा चर्म

ण्वती चैव विदिशा वेत्रवत्यपि ॥ शिप्रा ह्यवन्ती च तथा पारियात्राश्रयाः स्मृताः ॥ ९८ ॥ शोणो महानदश्चैव नर्म्मदा सुमहाद्रुमा ॥ मन्दाकिनी दशा
र्णा च चित्रकूटा तथैव च ॥ ९९ ॥ तमसा पिप्पला श्रोणी करतोया पिशाचिका ॥ नीलोत्पला विपाशा च जम्बुला वालुवाहिनी ॥ १०० ॥ सितेरजा
शुक्तिमती मकुणा त्रिदिवा क्रमात् ॥ ऋक्षपादात् प्रसूतास्ता नद्यो मणिनिभोदकाः ॥१०१ ॥ तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या मद्रा च निषधा नदी ॥ वेन्वा
वैतरणी चैव शितिबाहुः कुमुद्वती ॥ १०२ ॥ तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तशिला तथा ॥ विन्ध्यपादप्रसूताश्च नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ॥ १०३ ॥
गोदावरी भीमरथी कृष्णा वेण्यथ वञ्जुरा ॥ तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा कावेरी च तथापगा ॥ दक्षिणापथनद्यस्तु सह्यपादाद्विनिःसृताः ॥ १०४ ॥ कृतमाला
ताम्रवर्णा पुष्पजात्युत्पलावती ॥ मलयाभिजातास्ता नद्यः सर्वाः शीतजलाः शुभाः ॥ १०५ ॥ त्रिसामा ऋतुकुल्या च इक्षुला त्रिदिवा च या ॥ लाङ्गु
लिनी वंशधरा महेन्द्रतनयाः स्मृताः ॥ १०६ ॥ ऋषीका सुकुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी ॥ कृपा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ॥ १०७ ॥
सर्वाः पुण्याः सरस्वत्यः सर्वा गङ्गाः समुद्रगाः ॥ विश्वस्य मातरः सर्वा जगत्पापहराः स्मृताः ॥ १०८ ॥ तासां नद्युपनद्योऽपि शतशोऽथ सहस्रशः ॥
तास्त्विमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वाश्चैव सजाङ्गलाः ॥ १०९ ॥ शूरसेना भद्रकारा बोधाः शतपथेश्वरैः ॥ वत्साः किसष्णाः कुल्याश्च कुन्तलाः काशिको
शलाः ॥ ११० ॥ अथ पार्श्वे तिलङ्गाश्च मगधाश्च वृकैः सह ॥ मध्यदेशा जनपदाः प्रायशोऽमी प्रकीर्तिताः ॥१११ ॥ सह्यस्य चोत्तरार्द्धे तु यत्र गोदाव
री नदी ॥ पृथिव्यामिह कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः ॥ ११२ ॥ तत्र गोवर्द्धनो नाम सुरराजेन निर्मितः ॥ रामप्रियार्थं स्वर्गोऽयं वृक्षा ओषधयस्तथा
॥ ११३ ॥ भरद्वाजेन मुनिना तत्प्रियार्थेऽवतारिताः ॥ अन्तःपुरवनोद्देशस्तेन जज्ञे मनोरमः ॥ ११४ ॥ बाह्लीका वाढधानाश्च आभीराः कालतोय
काः ॥ अपरीताश्च शूद्राश्च पह्लवाश्चर्मखण्डिकाः॥११५॥गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरभद्रकाः॥शका ह्रदाः कुलिन्दाश्च परिता हारपूरिकाः॥११६॥
रमटा रुद्धकटकाः केकया दशमानिकाः ॥ क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ॥ ११७ ॥ काम्बोजा दरदाश्चैव बर्बराः प्रियलौकिकाः ॥ पीनाश्चैव
तुषाराश्च पह्लवा बाह्यतोदराः ॥ ११८ ॥ आत्रेयाश्च भरद्वाजाः प्रस्थलाश्च कसेरुकाः ॥ लम्पाका स्तनपाश्चैव पीडिका जुहुडैः सह ॥ ११९ ॥ अपगा
श्चालिमद्राश्च किरातानाञ्च जातयः॥तोमरा हंसमार्गाश्च काश्मीरास्तङ्गणास्तथा॥१२०॥चूलिकाश्चाहुकाश्चैव पूर्णदर्वास्तथैव च ॥ एते देशा ह्युदीच्याश्च
प्राच्यान् देशान्निबोधत॥१२१॥अन्ध्रवाकाः सुजरका अन्तर्गिरिबहिर्गिराः ॥ तथा प्रवङ्गवङ्गेया मालदा मालवर्तिनः॥१२२॥ब्रह्मोत्तराः प्रविजया भार्गवा
गेयमर्थकाः॥प्राग्ज्योतिषाश्च मुण्डाश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः॥माला मगधगोविन्दाः प्राच्यां जनपदाः स्मृताः॥१२३॥अथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः॥

पाण्ड्याश्च केरलाश्चैव चौल्याः कुल्यास्तथैव च॥१२४॥सेतुका मूषिकाश्चैव कुपना वनवासिकाः॥ महाराष्ट्रा माहिषकाः कलिङ्गाश्चैव सर्वशः॥१२५॥अ
भीराः सहचैषीकाः आटव्याश्च वराश्च ये ॥ पुलिन्द्रा विन्ध्यमूलीका वैदर्भा दण्डकैः सह ॥ १२६ ॥ पौनिका मौनिकाश्चैव अश्मका भोगवर्द्धनाः ॥ नै
र्णिकाः कुन्तला आन्ध्रा उद्भिदा नलकालिकाः ॥ १२७ ॥ दाक्षिणात्याश्च वै देशा अपरांस्तान्निबोधत ॥ शूर्पाकाराः कोलवना दुर्गाः कालीतकैः सह
॥१२८॥पुलेयाश्च सुरालाश्च रूपसास्तापसैः सह ॥ तथा तुरसिताश्चैव सर्वे चैव परक्षराः॥१२९॥नासिक्याद्याश्च ये चान्ये ये चैवान्तरनर्मदाः ॥ भानुक
च्छाः समा हेयाः सहसा शाश्वतैरपि ॥ १३० ॥ कच्छीयाश्च सुराष्ट्राश्च अनर्त्ताश्चार्बुदैः सह ॥ इत्येते सम्परीताश्च शृणुध्वं विन्ध्यवासिनः ॥ १३१ ॥
मालवाश्च करूषाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह ॥ उत्तमर्णा दशार्णाश्च भोजाः किष्किन्धकैः सह ॥ १३२ ॥ तोसलाः कोसलाश्चैव त्रैपुरा
वैदिकास्तथा ॥ तुमुरास्तुम्बुराश्चैव षट्सुरा निषधैः सह ॥ १३३ ॥ अनुपास्तुण्डिकेराश्च वीतिहोत्रा ह्यवन्तयः ॥ एते जनपदाः स
र्वे विन्ध्यपृष्ठनिवासिनः ॥ १३४ ॥ अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये ॥ निगर्हरा हंसमार्गाः क्षुपणास्तङ्गणाः खसाः ॥ १३५ ॥
कुशप्रावरणाश्चैव हूणा दर्वाः सहूदकाः ॥ त्रिगर्त्ता मालवाश्चैव किरातास्तामसैः सह ॥ १३६ ॥ चत्वारि भारते वर्षे युगानि ऋषयो विदुः ॥ कृतं त्रेता
द्वापरश्च कलिश्चेति चतुष्टयम् ॥ तेषां निसर्गं वक्ष्यामि उपरिष्टान्निबोधत ॥ १३७ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नाम पञ्चचत्वा
रिंशोऽध्यायः ॥४५॥ ७॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ एतच्छ्रुत्वा तु ऋषय उत्तरं पुनरेव ते ॥ शुश्रूषवो मुदा युक्ताः पप्रच्छुर्लोमहर्षणम् ॥ १ ॥ ॥ ऋ
षय ऊचुः ॥ यच्च किम्पुरुषं वर्षं हरिवर्षं तथैव च ॥ आचक्ष्व नो यथातत्त्वं कीर्त्तितं भारतं त्वया ॥ २ ॥ पृष्टस्त्विदं यथा विप्रैर्यथा प्रश्नं विशेषतः ॥ उवा
च मुनिनिर्दिष्टं पुराणं विहितं यथा ॥ ३ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ शुश्रूषा यत्र वो विप्रास्तच्छृणुध्वं मुदा युताः॥ प्लक्षखण्डः किम्पुरुषे सुमहान्नन्दनोपमः ॥
॥ ४ ॥ दशवर्षसहस्राणि स्थितिः किम्पुरुषे स्मृता ॥ सुवर्णवर्णाश्च नरा स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः ॥५॥ अनामया ह्यशोकाश्च सर्वे ते शुद्धमानसाः ॥ जाय
न्ते मानवास्तत्र निस्तप्तकनकप्रभाः ॥ ६ ॥ वर्षे किम्पुरुषे पुण्ये प्लक्षो मधुवहः शुभः ॥ तस्य किम्पुरुषाः सर्वे पिबन्ति रसमुत्तमम् ॥७॥ अतःपरं किं
पुरुषाद्धरिवर्षः प्रचक्ष्यते ॥ महारजतसङ्काशा जायन्ते तत्र मानवाः ॥ ८ ॥ देवलोकाच्च्युताः सर्वे देवरूपाश्च सर्वशः ॥ हरिवर्षे नराः सर्वे पिबन्तीक्षुरसं 
शुभम्॥९॥एकादश सहस्राणि वर्षाणां तु मुदा युताः॥हरिवर्षे तु जीवन्ति सर्वे मुदितमानसाः॥न जरा बाधते तत्र जीर्य्यन्ति न च ते नराः॥१०॥मध्यमं
यन्मया प्रोक्तं नाम्ना वर्षमिलावृतम् ॥ न तत्र सूर्य्यस्तपति न च जीर्य्यन्ति मानवाः ॥ ११ ॥ चन्द्रसूर्य्यौ सनक्षत्रावप्रकाशाविलावृते ॥ पद्मवर्णाः पद्म

प्रभाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः ॥ पद्मपत्रसुगन्धाश्च जायन्ते तत्र मानवाः ॥१२॥ जम्बूरसफलाहारा ह्यनिष्पन्दाः सुगन्धिनः ॥ मनस्विनो भुक्तभोगाः स्वक
र्म्मफलभोगिनः ॥ १३ ॥ देवलोकाच्च्युताः सर्वे जायन्ते ह्यजरामराः ॥ त्रयोदश सहस्राणि वर्षाणान्ते नरोत्तमाः ॥ १४ ॥ आयुष्प्रमाणं जीवन्ति ते
तु वर्षे त्विलावृते ॥ मेरोः प्रतिदिशं ते तु नवसाहस्रविस्तृते ॥ १५ ॥ योजनानां सहस्राणि षड्विंशस्तस्य विस्तरः ॥ चतुरस्रः समन्ताच्च शरावाकार
संस्थितः ॥ १६ ॥ मेरोस्तु पश्चिमे भागे नवसाहस्रसम्मिते ॥ चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि गन्धमादनपर्व्वतः ॥१७॥ उदग्दक्षिणतश्चैव आनीलनिषधायतः ॥
चत्वारिंशत्सहस्राणि परिवृद्धो महीतलात् ॥ सहस्रमवगाढस्तु तावदेव तु विस्तृतः ॥ १८ ॥ पूर्वेण माल्यवान् शैलस्तत्प्रमाणः प्रकीर्तितः ॥ दक्षिणेन
तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ॥ १९ ॥ तेषां मध्ये महामेरुः सुप्रमाणः प्रकीर्तितः ॥ सर्वेषामेव शैलानामवगाढो यथा भवेत् ॥ २० ॥ निरन्तरस्त
त्प्रमाणः स्यादायामे नियुतः स्मृतः ॥ वृत्तभावात् समुद्रस्य महीमण्डलभावनः ॥ २१ ॥ आयामाः परिहीयन्ते चतुरस्राः समन्ततः ॥ जनावृत्ताश्च
ष्केण भिद्यन्ते मध्यमागताः ॥ २२ ॥ प्रभिन्नाञ्जनसङ्काशा जम्बूरसवती नदी ॥ मेरोस्तु दक्षिणे पार्श्वे निषधस्योत्तरेण तु ॥ २३ ॥ सुदर्शनो नाम म
हाजम्बूवृक्षः सनातनः ॥ नित्यपुष्पफलोपेतः सिद्धचारणसेवितः ॥ २४ ॥ तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपे वनस्पतिः ॥ योजनानां सहस्रं तु शत
श्चान्यमहाद्रुमः ॥ उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवं स्पृशति सर्व्वशः ॥२५॥ अरत्नीनां शतान्यष्टौ एकषष्ट्यधिकानि तु ॥ फलप्रमाणं सङ्ख्यातमृषिभिस्तत्त्वदर्शि
भिः॥२६॥पतमानानि तान्युर्व्यां कुर्वन्ति विपुलं स्वनम्॥तस्या जम्ब्वाः फलरसो नदीभूय प्रसर्पति॥२७॥ मेरुं प्रदक्षिणीकृत्य जम्बूमूलं विशत्यधः॥ते पिब
न्तिसदा हृष्टा जम्बूरसफलावृताः॥२८॥जम्बूरसफलं पीत्वा न जरां प्राप्नुवन्ति ते॥न च क्षुधं न रोगं तु न च मृत्युं तथाविधम् ॥२९॥तत्र जाम्बूनदं नाम कन
कंदेवभूषणम् ॥इन्द्रगोपकसङ्काशं जायते भास्वरन्तु तत्॥३०॥सर्वेषां वर्षवृक्षाणां शुभः फलरसस्तु सः॥स्कन्नं भवति तच्छुक्लं कनकं देवभूषणम्॥३१॥
तेषां मूत्रं पुरीषञ्च दिक्षु सर्वासु भागशः ॥ ईश्वरानुग्रहाद्भूमिर्मृतांश्च ग्रसते तु तान्॥३२॥रक्षःपिशाचा यक्षाश्च सर्वे हैमवताः स्मृताः ॥ हेमकूटे तु गन्ध
र्वा विज्ञेयाः साप्सरोगणाः ॥ ३३ ॥ सर्वे नागास्तु निषधे शेषवासुकितक्षकाः ॥ महामेरौ त्रयस्त्रिंशद्रमन्ते याज्ञिकाः सुराः ॥ नीले तु वैडूर्य्यमये सिद्ध
ब्रह्मर्षयो मताः ॥ ३४ ॥ दैत्यानां दानवानाञ्च श्वेतपर्व्वत उच्यते ॥ शृङ्गवान् पर्व्वतः श्रेष्ठः पितॄणां प्रतिसञ्चरः ॥ ३५ ॥ नवस्वेतेषु वर्षेषु यथाभाग
स्थितेषु वै ॥ भूतान्युपनिविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥ ३६ ॥ तेषां विवृद्धिर्बहुला दृश्यते देवमानुषैः ॥ न शक्या परिसङ्ख्यातुं श्रद्धेयाबुभूष
ता ॥ ३७ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ छ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ सव्ये हिमवतः पार्श्वे

कैलासो नाम पर्व्वतः ॥ तस्मिन्निवसति श्रीमान् कुबेरः सह राक्षसैः ॥ अप्सरोगणसंयुक्तो मोदते ह्यलकाधिपः ॥ १ ॥ कैलासपादात् सम्भूतं पुण्यं शीतजलं शुभम् ॥ मन्दं नाम्ना कुमुद्वन्तं शरदम्बुदसन्निभम् ॥ २ ॥ तस्माद्दिव्या प्रभवति नदी मन्दाकिनी शुभा ॥ दिव्यञ्च नन्दनं तत्र तस्यास्तीरे महद्वनम् ॥ ३ ॥ प्रागुत्तरेण कैलासाद्दिव्यसत्वौषधं गिरिम् ॥ सुरधातुमयं चित्रं सुवर्णं पर्वतं प्रति ॥ ४ ॥ चन्द्रप्रभो नाम गिरिः स शुभ्रो रत्नसन्निभः ॥ तस्य पादे महद्दिव्यमच्छोदं नाम तत्सरः ॥ ५ ॥ तस्माद्दिव्या प्रभवति ह्यच्छोदा नाम निम्नगा ॥ तस्यास्तीरे महादिव्यं वनं चैत्ररथं स्मृतम् ॥ ६ ॥ तस्मिन् गिरौ निवसति मणिभद्रः सहानुगः ॥ यक्षसेनापतिः क्रूरगुह्यकैः परिवारितः ॥ ७ ॥ पुण्या मन्दाकिनी चैव निम्नगाच्छोदिका तथा ॥ महीमण्डलमध्येन प्रविष्टे ते महोदधिम् ॥ ८ ॥ कैलासाद्दक्षिणप्राच्यां शिवसत्वौषधिं गुरुम् ॥ मनःशिलामयं दिव्यं पिशङ्गं पर्वतं प्रति ॥ ९ ॥ लोहितो हेमशृङ्गस्तु गिरिः सूर्य्यप्रभो महान् ॥ तस्य पादे महद्दिव्यं लोहितं नाम तत्सरः ॥ १० ॥ तस्मात् पुण्यः प्रभवति लौहित्यः सदनो महान् ॥ देवारण्यं विशोकञ्च तस्य तीरे महावनम् ॥ ११ ॥ तस्मिन् गिरौ निवसति यक्षो मणिवरो वशी ॥ सौम्यैः सुधार्मिकैश्चैव गुह्यकैः परिवारितः ॥ १२ ॥ कैलासाद्दक्षिणे पार्श्वे क्रूरसत्वौषधं गिरिम् ॥ वृत्रकायात् किलोत्पन्नमञ्जनं त्रिककुत्प्रति ॥ १३ ॥ सर्व्वधातुमयस्तत्र सुमहान् वैद्युतो गिरिः ॥ तस्य पादे सरः पुण्यं मानसं सिद्धसेवितम् ॥ १४ ॥ तस्मात् प्रभवते पुण्या सरयूर्लोकभावनी ॥ तस्यास्तीरे वनं दिव्यं वैभ्राजं नाम विश्रुतम् ॥ १५ ॥ कुबेरानुचरस्तत्र प्रहेतृतनयो वशी ॥ ब्रह्मपातो निवसति राक्षसोऽनन्तविक्रमः ॥ अन्तरिक्षचरैर्घोरैर्यातुधानशतैर्वृतः ॥ १६ ॥ अपरेण तु कैलासान्मुख्यसत्वौषधिं गिरिम् ॥ अरुणं पर्वतश्रेष्ठं रुक्मधातुमयं प्रति ॥ १७ ॥ भवस्य दयितः श्रीमान् पर्वतो मेघसन्निभः ॥ शातकुम्भमयैः शुभ्रैः शिलाजालैः समावृतः ॥ १८ ॥ शतसङ्ख्यैस्तापनीयैः शृङ्गैर्दिवमिवोल्लिखन् ॥ मुञ्जवान् स महादिव्यो दुर्गशैलो हिमार्चितः ॥ १९ ॥ तस्मिन् गिरौ निवसति गिरिशो धूम्रलोहितः ॥ तस्य पादात् प्रभवति शैलोदं नाम तत्सरः ॥ २० ॥ तस्मात् प्रभवते दिव्या शैलोदा नाम निम्नगा ॥ सा चक्षुःशीतयोर्मध्ये प्रविष्टा लवणोदधिम् ॥ २१ ॥ तस्यास्तीरे वनं दिव्यं विश्रुतं सुरभीति वै ॥ अस्त्युत्तरेण कैलासाच्छिवसत्वौषधो गिरिः ॥ २२ ॥ गौरो नाम गिरिस्तत्र हरितालमयः शुभः ॥ हिरण्यशृङ्गः सुमहान् दिव्यो मणिमयो गिरिः ॥ २३ ॥ तस्य पादे महद्दिव्यं शुभं काञ्चनवालुकम् ॥ रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र यातो भगीरथः ॥ २४ ॥ गङ्गानिमित्तं राजर्षिरुवास बहुलाः समाः ॥ दिवं यास्यन्ति मे पूर्वे गङ्गातोयपरिप्लुताः ॥ २५ ॥ तत्र त्रिपथगा देवी प्रथमन्तु प्रतिष्ठिता ॥ सोमपादप्रसूता सा सप्तधा प्रतिपद्यते ॥ २६ ॥ यूपा मणिमयास्तत्र चितयश्च हिरण्मयाः ॥ तत्रेष्ट्वा तु गतः सिद्धिं शक्रः सर्वैः सुरैः सह ॥ २७ ॥ दिविच्छायापथो यस्तु अनुनक्षत्रमण्डलम् ॥

दृश्यते भास्वरो रात्रौ देवी त्रिपथगा तु सा ॥ २८ ॥ अन्तरिक्षं दिवञ्चैव भावयन्ती भुवङ्गता ॥ भवोत्तमाङ्गे पतिता संरुद्धा योगमायया ॥ २९ ॥
तस्या ये बिन्दवः केचित् क्रुद्धायाः पतिताः क्षितौ ॥ कृतं बिन्दुसरस्तत्र ततो बिन्दुसरः स्मृतम् ॥३०॥ ततो निरुद्धा देवी सा भवेन स्मयता किल ॥
चिन्तयामास मनसा शङ्करक्षेपणं प्रति ॥ ३१ ॥ भित्त्वा विशामि पातालं स्रोतसा गृह्य शङ्करम् ॥ ज्ञात्वा तस्या अभिप्रायं क्रूरं देव्या चिकीर्षि
तम् ॥३२॥ तिरोभावयितुं बुद्धिरासीदङ्गेषु तां नदीम् ॥तस्यावलेपं तं बुद्ध्वा नद्याः क्रुद्धस्तु शङ्करः ॥ निरुध्य तु शिरस्येनां वेगेन पतितां भुवि॥३३॥
एतस्मिन्नेव काले तु दृष्ट्वा राजानमग्रतः ॥ धमनीसन्ततं क्षीणं क्षुधापरिगतेन्द्रियम् ॥ ३४ ॥ अनेन तोषितश्चाहं नद्यर्थं पूर्वमेव हि ॥ बुद्ध्वास्य वरदान
न्तु कोपं नियतवांस्तु सः ॥ ३५ ॥ ब्रह्मणो हि वचः श्रुत्वा प्रतिज्ञाधारणं प्रति ॥ ततो विसर्जयामास संरुद्धां स्वेन तेजसा ॥ नदीं भगीरथस्यार्थे तप
सोग्रेण तोषितः ॥ ३६ ॥ ततो विसृज्यमानायाः स्रोतस्तत्सप्तताङ्गतम् ॥ त्रयः प्राचीमभिमुखं प्रतीचीं त्रय एव तु ॥ ३७ ॥ नद्याः स्रोतस्तु गङ्गायाः
प्रत्यपद्यत सप्तधा ॥ नलिनी ह्लादिनी चैव पावनी चैव प्राग्गता ॥ ३८ ॥ सीता चक्षुश्च सिन्धुश्च प्रतीचीं दिशमाश्रिताः ॥ सप्तमीत्वनुगा तासां दक्षिणेन
भगीरथी॥३९तस्माद्भागीरथी या सा प्रविष्टा लवणोदधिम्॥सप्तैता भावयन्तीह हिमाह्वं वर्षमेव तु॥४०॥प्रसूताः सप्त नद्यस्ताः शुभा बिन्दुसरोद्भवाः॥नाना
देशान् भावयन्त्यो म्लेच्छप्रायांश्च सर्वशः॥४१॥उपगच्छन्ति ताः सर्वा यतो वर्षति वासवः ॥ सिरिन्ध्रान् कुन्तलांश्चीनान् बर्बरान्यवसान् द्रुहान् ॥४२॥
रुषाणांश्च कुणिन्दांश्च अङ्गलोकवराश्च ये ॥ कृत्वा द्विधा सिन्धुमरुं सीताऽगात्पश्चिमोदधिम् ॥ ४३ ॥ अथ चीनमरूंश्चैव नङ्गणान् सर्वमूलिकान् ॥
साध्रांस्तुषारांस्तम्पाकान् पह्लवान् दरदान् शकान् ॥ एतान् जनपदान् चक्षुः स्रावयन्ती गतोदधिम् ॥ ४४ ॥ दरदांश्च सकाश्मीरान् गान्धारान् वरपा
न् ह्रदान् ॥ शिवपौरानिन्द्रहासान् वदातींश्च विसर्जयान् ॥ ४५ ॥ सैन्धवान् रन्ध्रकरकान् भ्रमराभीररोहकान् ॥ शुनामुखांश्चोर्द्ध्वमनून् सिद्धचारणसे
वितान् ॥ ४६ ॥ गन्धर्व्वान् किन्नरान् यक्षान् रक्षोविद्याधरोरगान् ॥ कलापग्रामकांश्चैव पारदान् सीगणान् खसान् ॥ ४७ ॥
किरातांश्च पुलिन्दांश्च कुरून् सभरतानपि ॥ पञ्चालकाशिमात्स्यांश्च मगधाङ्गांस्तथैव च ॥ ४८ ॥ ब्रह्मोत्तरांश्च वङ्गांश्च ताम्रलिप्तांस्तथैव च ॥
एतान् जनपदानार्य्यान् गङ्गा भावयते शुभान् ॥४९॥ ततः प्रतिहता विन्ध्ये प्रविष्टा दक्षिणोदधिम्॥ततश्चाह्लादिनी पुण्या प्राचीनाभिमुखी ययौ॥५०॥
प्लावयन्त्युपभोगांश्च निषादानाञ्च जातयः ॥ धीवरानृषिकांश्चैव तथा नीलमुखानपि ॥ ५१ ॥ केरलानुष्ट्रकर्णांश्च किरातानपि चैव हि ॥
कालोदरान् विवर्णांश्च कुमारान् स्वर्णभूषितान् ॥ ५२ ॥ सा मण्डले समुद्रस्य तिरोभूतानुपूर्वशः ॥ ततस्तु पावनी चैव प्राचीमेव दिशं गता ॥ ५३ ॥

कैलासो नाम पर्व्वतः ॥ तस्मिन्निवसति श्रीमान् कुबेरः सह राक्षसैः ॥ अप्सरोगणसंयुक्तो मोदते ह्यलकाधिपः ॥ १ ॥ कैलासपादात् सम्भूतं पुण्यं
शीतजलं शुभम् ॥ मन्दं नाम्ना कुमुद्वन्तं शरदम्बुदसन्निभम् ॥ २ ॥ तस्माद्दिव्या प्रभवति नदी मन्दाकिनी शुभा ॥ दिव्यञ्च नन्दनं तत्र तस्यास्तीरे
महद्वनम्॥३॥प्रागुत्तरेण कैलासाद्दिव्यसत्वौषधं गिरिम् ॥ सुरधातुमयं चित्रं सुवर्णं पर्वतं प्रति॥४॥ चन्द्रप्रभो नाम गिरिः स शुद्धो रत्नसन्निभः ॥तस्य पादे
महद्दिव्यमच्छोदं नाम तत्सरः॥५॥तस्माद्दिव्या प्रभवति ह्यच्छोदा नाम निम्नगा॥तस्यास्तीरे महादिव्यं वनं चैत्ररथं स्मृतम् ॥६॥ तस्मिन् गिरौ निवसति
मणिभद्रः सहानुगः ॥ यक्षसेनापतिः क्रूरगुह्यकैः परिवारितः ॥ ७ ॥ पुण्या मन्दाकिनी चैव निम्नगाच्छोदिका तथा ॥ महीमण्डलमध्येन प्रविष्टे ते महोदधि
म् ॥ ८ ॥ कैलासाद्दक्षिणप्राच्यां शिवसत्वौषधिं गुरुम् ॥ मनःशिलामयं दिव्यं पिशङ्गं पर्वतं प्रति ॥ ९ ॥ लोहितो हेमशृङ्गस्तु गिरिः सूर्य्यप्रभो महान् ॥
तस्य पादे महद्दिव्यं लोहितं नाम तत्सरः ॥ १० ॥ तस्मात् पुण्यः प्रभवति लौहित्यः सदनो महान् ॥ देवारण्यं विशोकञ्च तस्य तीरे महावनम् ॥ ११ ॥
तस्मिन् गिरौ निवसति यक्षो मणिवरो वशी ॥ सौम्यैः सुधार्मिकैश्चैव गुह्यकैः परिवारितः ॥ १२ ॥ कैलासाद्दक्षिणे पार्श्वे क्रूरसत्वौषधं गिरिम् ॥ वृत्र
कायात् किलोत्पन्नमञ्जनं त्रिककुत्प्रति ॥ १३ ॥ सर्व्वधातुमयस्तत्र सुमहान् वैद्युतो गिरिः ॥ तस्य पादे सरः पुण्यं मानसं सिद्धसेवितम् ॥ १४ ॥ त
स्मात् प्रभवते पुण्या सरयूर्लोकभावनी ॥ तस्यास्तीरे वनं दिव्यं वैभ्राजं नाम विश्रुतम् ॥ १५ ॥ कुबेरानुचरस्तत्र प्रहेतृतनयो वशी ॥ ब्रह्मपातो
निवसति राक्षसोऽनन्तविक्रमः ॥ अन्तरिक्षचरैर्घोरैर्यातुधानशतैर्वृतः ॥ १६ ॥ अपरेण तु कैलासान्मुख्यसत्वौषधिं गिरिम् ॥ अरुणं पर्वत
श्रेष्ठं रुक्मधातुमयं प्रति ॥ १७ ॥ भवस्य दयितः श्रीमान् पर्वतो मेघसन्निभः ॥ शातकुम्भमयैः शुभ्रैः शिलाजालैः समावृतः ॥ १८ ॥ शतस
ङ्ख्यैस्तापनीयैः शृङ्गैर्दिवमिवोल्लिखन् ॥ मुञ्जवान् स महादिव्यो दुर्गशैलो हिमार्च्चितः ॥ १९ ॥ तस्मिन् गिरौ निवसति गिरिशो धूम्रलोहितः ॥ तस्य
पादात् प्रभवति शैलोदं नाम तत्सरः ॥ २० ॥ तस्मात् प्रभवते दिव्या शैलोदा नाम निम्नगा ॥ सा चक्षुःशीतयोर्मध्ये प्रविष्टा लवणोदधिम् ॥ २१ ॥
तस्यास्तीरे वनं दिव्यं विश्रुतं सुरभीति वै ॥ अस्त्युत्तरेण कैलासाच्छिवसत्वौषधो गिरिः ॥ २२ ॥ गौरो नाम गिरिस्तत्र हरितालमयः शुभः ॥ हिरण्य
शृङ्गः सुमहान् दिव्यो मणिमयो गिरिः ॥२३॥ तस्य पादे महद्दिव्यं शुभं काञ्चनवालुकम् ॥ रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र यातो भगीरथः॥२४॥ गङ्गानिमित्तं
राजर्षिरुवास बहुलाः समाः ॥ दिवं यास्यन्ति मे पूर्वे गङ्गातोयपरिप्लुताः ॥२५॥ तत्र त्रिपथगा देवी प्रथमन्तु प्रतिष्ठिता ॥ सोमपादप्रसूता सा सप्तधा प्रतिपद्य
ते ॥ २६ ॥ यूपा मणिमयास्तत्र चितयश्च हिरण्मयाः ॥ तत्रेष्ट्वा तु गतः शर्व शक्रः सर्वैः सुरैः सह ॥ २७ ॥ दिविच्छायापथो यस्तु अनुनक्षत्रमण्डलम् ॥

दृश्यते भास्वरो रात्रौ देवी त्रिपथगा तु सा ॥ २८ ॥ अन्तरिक्षं दिवञ्चैव भावयन्ती भुवङ्गता ॥ भवोत्तमाङ्गे पतिता संरुद्धा योगमायया ॥ २९ ॥ तस्या ये बिन्दवः केचित् क्रुद्धायाः पतिताः क्षितौ ॥ कृतं बिन्दुसरस्तत्र ततो बिन्दुसरः स्मृतम् ॥३०॥ ततो निरुद्धा देवी सा भवेन स्मयता किल ॥ चिन्तयामास मनसा शङ्करक्षेपणं प्रति ॥ ३१ ॥ भित्त्वा विशामि पातालं स्रोतसा गृह्य शङ्करम् ॥ ज्ञात्वा तस्या अभिप्रायं क्रूरं देव्या चिकीर्षितम् ॥३२॥ तिरोभावयितुं बुद्धिरासीदङ्गेषु तां नदीम् ॥तस्यावलेपं तं बुद्ध्वा नद्याः क्रुद्धस्तु शङ्करः ॥ निरुध्य तु शिरस्येनां वेगेन पतितां भुवि॥३३॥ एतस्मिन्नेव काले तु दृष्ट्वा राजानमग्रतः ॥ धमनीसन्ततं क्षीणं क्षुधापरिगतेन्द्रियम् ॥ ३४ ॥ अनेन तोषितश्चाहं नद्यर्थं पूर्वमेव हि ॥ बुद्ध्वास्य वरदानन्तु कोपं नियतवांस्तु सः ॥ ३५ ॥ ब्रह्मणो हि वचः श्रुत्वा प्रतिज्ञाधारणं प्रति ॥ ततो विसर्जयामास संरुद्धां स्वेन तेजसा ॥ नदीं भगीरथस्यार्थे तपसोग्रेण तोषितः ॥ ३६ ॥ ततो विसृज्यमानायाः स्रोतस्तत्सप्तताङ्गतम् ॥ त्रयः प्राचीमभिमुखं प्रतीचीं त्रय एव तु ॥ ३७ ॥ नद्याः स्रोतस्तु गङ्गायाः प्रत्यपद्यत सप्तधा ॥ नलिनी ह्लादिनी चैव पावनी चैव प्राग्गता ॥ ३८ ॥ सीता चक्षुश्च सिन्धुश्च प्रतीचीं दिशमाश्रिताः ॥ सप्तमीत्वनुगा तासां दक्षिणेन भगीरथी॥३९तस्माद्भागीरथी या सा प्रविष्टा लवणोदधिम्॥सप्तैता भावयन्तीह हिमाह्वं वर्षमेव तु॥४०॥प्रसूताः सप्त नद्यस्ताः शुभा बिन्दुसरोद्भवाः॥नानादेशान् भावयन्त्यो म्लेच्छप्रायांश्च सर्वशः॥४१॥उपगच्छन्ति ताः सर्वा यतो वर्षति वासवः ॥ सिरिन्ध्रान् कुन्तलांश्चीनान् बर्बरान्यवसान् द्रुहान् ॥४२॥ रुषाणांश्च कुणिन्दांश्च अङ्गलोकवराश्च ये ॥ कृत्वा द्विधा सिन्धुमरुं सीताऽगात्पश्चिमोदधिम् ॥ ४३ ॥ अथ चीनमरूंश्चैव नङ्गणान् सर्वमूलिकान् ॥ साध्रांस्तुषारांस्तम्पाकान् पह्लवान् दरदान् शकान् ॥ एतान् जनपदान् चक्षुः स्रावयन्ती गतोदधिम् ॥ ४४ ॥ दरदांश्च सकाश्मीरान् गान्धारान् वरपान् ह्रदान् ॥ शिवपौरानिन्द्रहासान् वदातींश्च विसर्जयान् ॥ ४५ ॥ सैन्धवान् रन्ध्रकरकान् भ्रमराभीररोहकान् ॥ शुनामुखांश्चोर्द्ध्वमनून् सिद्धचारणसेवितान् ॥ ४६ ॥ गन्धर्वान् किन्नरान् यक्षान् रक्षोविद्याधरोरगान् ॥ कलापग्रामकांश्चैव पारदान् सीगणान् खसान् ॥ ४७ ॥ किरातांश्च पुलिन्दांश्च कुरून् सभरतानपि ॥ पञ्चालकाशिमात्स्यांश्च मगधाङ्गांस्तथैव च ॥ ४८ ॥ ब्रह्मोत्तरांश्च वङ्गांश्च ताम्रलिप्तांस्तथैव च ॥ एतान् जनपदानार्य्यान् गङ्गा भावयते शुभान् ॥४९॥ ततः प्रतिहता विन्ध्ये प्रविष्टा दक्षिणोदधिम्॥ततश्चाह्लादिनी पुण्या प्राचीनाभिमुखी ययौ॥५०॥ प्लावयन्त्युपभोगांश्च निषादानाञ्च जातयः ॥ धीवरानृषिकांश्चैव तथा नीलमुखानपि ॥ ५१ ॥ केरलानुष्ट्रकर्णांश्च किरातानपि चैव हि ॥ कालोदरान् विवर्णांश्च कुमारान् स्वर्णभूषितान् ॥ ५२ ॥ सा मण्डले समुद्रस्य तिरोभूताऽनुपूर्वतः ॥ ततस्तु पावनी चैव प्राचीमेव दिशङ्गता ॥ ५३ ॥

अपथान् भावयन्तीह इन्द्रद्युम्नसरोपि च ॥ तथा खरपथांश्चैव इन्द्रशङ्कुपथानपि ॥ ५४ ॥ मध्येनोद्यानमस्कारान् कुथप्रावरणान् ययौ ॥ इन्द्रद्वीपसमुद्रे
तु प्रविष्टा लवणोदधिम् ॥ ५५ ॥ ततश्च नालिनी चागात् प्राचीमाशां जवेन तु ॥ तोमरान् भावयन्तीह हंसमार्गान् सहूहुकान् ॥ ५६ ॥ पूर्वान्
देशांश्च सेवन्ती भित्त्वा सा बहुधा गिरीन् ॥ कर्णप्रावरणांश्चैव प्राप्य चाश्वमुखानपि ॥ ५७ ॥ सिकतापर्वतमरून् गत्वा विद्याधरान् ययौ ॥ ने
मिमण्डलकोष्ठे तु प्रविष्टा सा महोदधिम् ॥ ५८ ॥ तासां नद्युपनद्यश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ उपगच्छन्ति ताः सर्वा यतो वर्षति वासवः ॥ ५९ ॥
वस्वोकसायास्तीरे तु वारिसुरभिविश्रुते ॥ हरिशृङ्गे तु वसति विद्वान् कौबेरको वशी ॥ ६० ॥ यज्ञोपेतः स सुमहानमितौजाः सुविक्रमः ॥ तत्रागस्त्यैः
परिवृतो विद्वद्भिर्ब्रह्मराक्षसैः ॥ कुबेरानुचरा ह्येते चत्वारस्तत्समाः स्मृताः ॥ ६१ ॥ एवमेव तु विज्ञेया ऋद्धिः पर्वतवासिनाम् ॥ परस्परेण द्विगुणा
धर्म्मतः कामतोऽर्थतः ॥ ६२ ॥ हेमकूटस्य पृष्ठे तु सायनं नाम तत्सरः ॥ मनस्विनी प्रभवति तस्माज्ज्योतिष्मती च सा ॥ ६३ ॥ अवगाह्य ह्युभयतः
समुद्रौ पूर्व्वपश्चिमौ ॥ सरो विष्णुपदं नाम निषधे पर्व्वतोत्तमे ॥ ६४ ॥ तस्माद्द्वयं प्रभवति गान्धर्वी नन्वली च या ॥ मेरोः पश्चात् प्रभवति ह्रदश्चन्द्रप्र
भो महान् ॥ ६५ ॥ तत्र जाम्बूनदी पुण्या यस्यां जाम्बूनदं शुभम् ॥ पयोदन्तु सरो नीले सुशुभ्रं पुण्डरीकवत् ॥ ६६ ॥ पुण्डरीका पयोदा च तस्मान्नद्यौ
विनिर्गते ॥ श्वेतात् प्रभवते पुण्यं सरस्तूत्तरमानसम् ॥ ६७ ॥ ज्योत्स्ना च मृगकान्ता च तस्माद्द्वे संबभूवतुः ॥ मधुमत्सरः पुण्यञ्च पद्ममीनद्विजाकुलम् ॥ ६८ ॥
कल्पवृक्षसमाकीर्णं मधुवत्सर्वतः सुखम् ॥ रुद्रकान्तामिति ख्यातं निर्मितं तद्भवेन तु ॥ ६९ ॥ अन्ये चाप्यत्र विख्याताः पद्ममीनद्विजाकुलाः ॥ नाम्ना रुद्रा
जया नाम द्वादशोदधिसन्निभाः ॥ ७० ॥ तेभ्यः शान्ता च माध्वी च द्वे नद्यौ सम्बभूवतुः ॥ यानि किम्पुरुषाद्यानि तेषु देवो न वर्षति ॥ ७१ ॥ उद्भिज्जान्युदका
न्यत्र प्रवहन्ति सरिद्वराः ॥ ऋषभो दुन्दुभिश्चैव धूम्रश्चैव महागिरिः ॥ ७२ ॥ पूर्वायता महाभागा निम्नगा लवणाम्भसि ॥ चन्द्रकङ्कस्तथा प्राणो महानग्निः
शिलोच्चयः ॥ उदगायता उदीच्यान्ता अवगाढा महोदधिम् ॥ ७३ ॥ सोमकश्च वराहश्च नारदश्च महीधरः ॥ प्रतीचीमायतास्ते वै प्रविष्टा लवणोदधिम् ॥ ७४ ॥
चक्रो बलाहकश्चैव मैनाकश्चैव पर्वतः ॥ आयतास्ते महाशैलाः समुद्रं दक्षिणं प्रति ॥ चन्द्रमैनाकयोर्मध्ये विदिशं दक्षिणां प्रति ॥ ७५ ॥ तत्र संवर्त्त
को नाम सोऽग्निः पिबति तज्जलम् ॥ नाम्ना समुद्रपः श्रीमानौर्वः स वडवामुखः ॥ ७६ ॥ द्वादशैते प्रविष्टा हि पर्वता लवणोदधिम् ॥ महेन्द्रभयवित्रस्ताः 
पक्षच्छेदभयात्तदा ॥ यदेतद्दृश्यते चन्द्रे श्वेते कृष्णशशाकृतिः ॥ ७७ ॥ भारतस्य तु वर्षस्य भेदास्ते नव कीर्तिताः ॥ इहोदितस्य दृश्यन्ते तथाऽ
न्येऽन्यत्र नोदिते ॥ ७८ ॥ उत्तरोत्तरमेतेषां वर्षमुद्दिश्यते गुणैः ॥ आरोग्यायुःप्रमाणाभ्यां धर्म्मतः कामतोऽर्थतः ॥ ७९ ॥ समन्वितानि भूतानि गुणै

रेतैस्तु भागतः ॥ वसन्ति नानाजातीनि तेषु वर्षेषु तानि वै ॥ इत्येषाऽधारयत् सर्वं पृथ्वी विश्वं जगत्स्थिता ॥ ८० ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायु प्रोक्ते भुवनविन्यासो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥ ७ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ दक्षिणेनापि वर्षस्य भारतस्य निबोधत ॥ दशयोजनसाहस्रं समतीत्य महार्णवम् ॥ १ ॥ त्रीण्येव तु सहस्राणि योजनानां समायतम् ॥ अतस्त्रिभागविस्तीर्णं नानापुष्पफलोदयम् ॥ २ ॥ विद्युत्वन्तं महाशैलं तत्रैकं कुलपर्वतम् ॥ येन कूटतटैर्नैकैस्तद्द्वीपं समलङ्कृतम् ॥ ३ ॥ प्रसन्नस्वादुसलिलास्तत्र नद्यः सहस्रशः ॥ वाप्यस्तस्य तु द्वीपस्य प्रवृत्ता विमलोदकाः ॥४॥ तस्य शैलस्य छिद्रेषु विस्तीर्णेष्वायतेषु च ॥ अनेकेषु समृद्धानि नानाकाराणि सर्वशः ॥ ५ ॥ नरनारीसमाढ्यानि मुदितानि वहन्ति च ॥ तेषां तलप्रवेशानि सहस्राणि शतानि च ॥ ६ ॥ पुराणि सन्निविष्टानि पर्वतान्तर्गतानि च ॥ सुसम्बद्धानि चान्योन्यमेकद्वाराणि चान्यथ ॥ ७ ॥ दीर्घश्मश्रुधरात्मानो नीला मेघसमप्रभाः ॥ जातमात्राः प्रजास्तत्र अशीतिपरमायुषः ॥ ८ ॥ शाखामृगसधर्म्माणः फलमूलाशिनस्तथा ॥ गोधर्माणो ह्यनिर्दिष्टाः शौचाचारविवर्जिताः ॥ ९ ॥ तद्द्वीपं तादृशैः पूर्णं मनुजैः क्षुद्रमानुषैः ॥ एवमेतेऽन्तरद्वीपा व्याख्याता आनुपूर्वशः ॥ १० ॥ विंशत्रिंशच्च पञ्चाशत् षटचशीतिः शतं तथा ॥ सहस्रमपि चाप्युक्तं योजनानां समन्ततः ॥ ११ ॥ विस्तीर्णाश्चायताश्चैव नानासत्वसमाकुलाः ॥ बर्हिणद्वीपपर्वाणि क्षुद्रद्वीपाः सहस्रशः ॥ १२ ॥ जम्बूद्वीपप्रदेशात्तु षडन्ये विविधाश्रयाः ॥ अत्र द्वीपाः समाख्याता नानारत्नाकराः क्षितौ ॥ १३ ॥ अङ्गद्वीपं यमद्वीपं मलयद्वीपमेव च ॥ शङ्खद्वीपं कुशद्वीपं वराहद्वीपमेव च ॥१४ ॥ अङ्गद्वीपं निबोध त्वं नानासङ्घसमाकुलम् ॥ नानाम्लेच्छगणाकीर्णं तद्द्वीपं बहुविस्तरम् ॥ १५ ॥ हेमविद्रुमपूर्णानां रत्नानामाकरं क्षितौ ॥ नदीशैलवनैश्चित्रं सन्निभं लवणाम्भसा ॥ १६ ॥ तत्र चक्रगिरिर्नाम नैकनिर्झरकन्दरः ॥ तत्र सा तु दरी चास्य नानासत्वसमाश्रया ॥ १७ ॥ स मध्ये नागदेशस्य नैकदेशो महागिरिः ॥ कोटिभ्यां नागनिलयं प्राप्तो नदनदीपतिम् ॥ १८ ॥ यमद्वीपमिति प्रोक्तं नानारत्नाकराचितम् ॥ तत्रापि द्युतिमान्नाम पर्वतो धातुमण्डितः ॥ समुद्रगानां प्रभवः प्रभवः काञ्चनस्य तु ॥ १९ ॥ तथैव मलयद्वीपमेवमेव सुसंवृतम् ॥ मणिरत्नाकरं स्फीतमाकरं कनकस्य च ॥ २० ॥ आकरं चन्दनानाञ्च समुद्राणां तथाकरम् ॥ नानाम्लेच्छगणाकीर्णं नदीपर्वतमण्डितम् ॥ २१ ॥ तत्र श्रीमांस्तु मलयः पर्वतो रजताकरः ॥ महामलय इत्येवं विख्यातो वरपर्वतः ॥ २२ ॥ द्वितीयं मन्दरं नाम प्रथितञ्च सदा क्षितौ ॥ अगस्त्यभवनं तत्र देवासुरनमस्कृतम् ॥ २३ ॥ तथा काञ्चनपादस्य मलयस्यापरस्य हि ॥ निकुञ्जैस्तृणसोमाङ्गैराश्रमं पुण्यसेवितम् ॥ २४ ॥ नानापुष्पफलोपेतं स्वर्गादपि विशिष्यते ॥ तत्रावतरते स्वर्गः सदा पर्वसु पर्वसु ॥ २५ ॥

तथा त्रिकूटनिलये नानाधातुविभूषिते ॥ अनेकयोजनोत्सेधे चित्रसानुदरीगृहे ॥ २६ ॥ तस्य कूटतटे रम्ये हेमप्राकारतोरणा ॥ निर्यूहवलभी चित्रा
हर्म्यप्रासादमालिनी ॥ २७ ॥ शतयोजनविस्तीर्णा त्रिंशदायामयोजना ॥ नित्यप्रमुदिता स्फीता लङ्का नाम महापुरी ॥ २८ ॥ सा कामरू
पिणां स्थानं राक्षसानां महात्मनाम् ॥ आवासो वलदृप्तानां तद्विद्यादेवविद्विषाम् ॥ मानुषाणामसम्बाधा ह्यगम्या सा महापुरी ॥ २९ ॥
तस्य द्वीपस्य वै पूर्वे तीरे नदनदीपतेः ॥ गोकर्णनामधेयस्य शङ्करस्यालयं महत् ॥ ३० ॥ तथैकराज्यं विज्ञेयं शङ्खद्वीपसमास्थितम् ॥
शतयोजनविस्तीर्णं नानाम्लेच्छगणालयम् ॥ ३१ ॥ तत्र शङ्खगिरिर्नाम धौतशङ्खदलप्रभः ॥ नानारत्नाकरः पुण्यः पुण्यकृद्भिर्निषेवितः ॥३२॥ शङ्खना
गा महापुण्या यस्मात् प्रभवते नदी ॥ यत्र शङ्खमुखो नाम नागराजः कृतालयः ॥ ३३ ॥ तथैव कुमुदद्वीपं नानापुण्योपशोभितम् ॥ नानाग्रामसमा
कीर्णं नानारत्नाकरं शिवम् ॥ ३४ ॥ कुमुदा नाम महाभागा दुष्टचित्तनिवर्हणी ॥ महादेवस्य भगिनी प्रभाभिस्ताभिरिज्यते ॥ ३५ ॥ तथा वराहद्वीपे च
नानाम्लेच्छगणाकुले ॥ नानाजातिसमाकीर्णे नानाधिष्ठानपत्तने ॥ ३६ ॥ धनधान्ययुते स्फीते धर्म्मिष्ठजनसङ्कुले ॥ नदीशैलवनैश्चित्रैर्बहुपुष्पफलोपगैः ॥
॥३७॥ वराहपर्व्वतो नाम तत्र रम्यः शिलोच्चयः ॥ अनेककन्दरदरीगुहानिर्झरशोभितः ॥ ३८ ॥ तस्मात्सुरसपानीया पुण्यतीर्थतरङ्गिणी ॥ वाराही ना
म वरदा प्रवृत्तास्य महानदी ॥३९॥ वाराहरूपिणे तत्र विष्णवे प्रभविष्णवे ॥ अनन्यदेवतास्तस्मै नमस्कुर्वन्ति विप्रजाः ॥४०॥ एवं षडेते कथिता अनुद्वीपाः
समन्ततः ॥ भारतद्वीपदेशो वै दक्षिणे बहुविस्तरः ॥४१॥ एवमेकमिदं वर्षं बहुद्वीपमिहोच्यते ॥ समुद्रजलसम्भिन्नं खण्डं खण्डीकृतं स्मृतम् ॥४२॥ एवञ्चतु
र्म्महाद्वीपः सान्तरद्वीपमण्डितः ॥ सानुद्वीपः समाख्यातो जम्बूद्वीपस्य विस्तरः ॥ ४३ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नामाष्टचत्वारिंशोऽ
ध्यायः ॥ ४८ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ प्लक्षद्वीपं प्रवक्ष्यामि यथावदिव सङ्ग्रहात् ॥ शृणुतेमं यथातत्त्वं ब्रुवतो मे द्विजोत्तमाः ॥१॥ जम्बूद्वीपस्य विस्ताराद्द्विगु
णस्तस्य विस्तरः ॥ विस्तारात्त्रिगुणश्चास्य परिणाहः समन्ततः ॥ तेनावृतः समुद्रोऽयं द्वीपेन लवणोदकः ॥ २ ॥ तत्र पुण्या जनपदाश्चिराच्च म्रियते
प्रजा ॥ कुत एव हि दुर्भिक्षं जराव्याधिभयं कुतः ॥३॥ तत्रापि पर्वताः शुभ्राः सप्तैव मणिभूषणाः ॥ रत्नाकरास्तथा नद्यस्तासान्नामानि वच्मि भोः ॥ ४ ॥
प्लक्षद्वीपादिषु तेषु सप्त सप्तसु सप्तसु ॥ ऋज्वायताः प्रतिदिशं निविष्टाः पर्व्वताः सदा ॥ ५ ॥ प्लक्षद्वीपे तु वक्ष्यामि सप्त द्वीपान्महाचलान् ॥ गोमेद
कोऽत्र प्रथमः पर्व्वतो मेघसन्निभः ॥ ख्यायते तस्य नाम्ना वै वर्षं गोमेदकन्तु तत् ॥ ६ ॥ द्वितीयः पर्व्वतश्चन्द्रः सर्व्वौषधिसमन्वितः ॥ अश्विभ्याममृत
स्यार्थे ओषध्यस्तत्र संस्थिताः ॥ ७ ॥ तृतीयो नारदो नाम दुर्गशैलो महोच्छ्रयः ॥ तत्राचले समुत्पन्नौ पूर्वं नारदपर्व्वतौ ॥ ८ ॥ चतुर्थस्तत्र वै शैलो

दुन्दुभिर्नाम नामतः ॥ शब्दमृत्युः पुरा तस्मिन् दुन्दुभिस्ताडितः सुरैः ॥ रज्जुदारो रज्जुमयः शाल्मलश्चासुरान्तकृत् ॥ ९ ॥ पञ्चमः सोमको नाम देवै यंत्रामृतं पुरा ॥ सम्भृतञ्च हृतं चैव मातुरर्थे गरुत्मता ॥१०॥ षष्ठस्तु सुमना नाम स एवर्षभ उच्यते ॥ हिरण्याक्षो वराहेण तस्मिन् शैले निषूदितः ॥ ॥ ११ ॥ वैभ्राजः सप्तमस्तत्र भ्राजिष्णुः स्फाटिको महान् ॥ यस्माद्विभ्राजतेऽर्चिर्भिर्वैभ्राजस्तेन स स्मृतः ॥ १२ ॥ तेषां वर्षाणि वक्ष्यामि नामतस्तु यथाक्रमम् ॥ गोमेदं प्रथमं वर्षं नाम्ना शान्तभयं स्मृतम् ॥१३॥ चन्द्रस्य शिशिरं नाम नारदस्य सुखोदयम् ॥ आनन्दं दुन्दुभेर्वर्षं सोमकस्य शिवं स्मृतम् ॥ क्षेमकं ऋषभस्यापि वैभ्राजस्य ध्रुवं तथा ॥ १४ ॥ एतेषु देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सहचारणैः ॥ विहरन्ति रमन्ते च दृश्यमानास्तु तैः सह ॥१५ ॥ तेषां नद्यश्च सप्तैव प्रतिवर्षं समुद्रगाः ॥ नामतस्ताः प्रवक्ष्यामि सप्तगङ्गा महानदी ॥१६॥ अभिगच्छन्ति ता नद्यस्ताभ्यश्चान्याः सहस्रशः ॥ बहूदकाश्चौघवत्यो यतो वर्षति वासवः ॥१७॥ ताः पिबन्ति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते ॥ शुभाः शान्तवहाश्चैव प्रमोदा ये च ते शिवाः ॥१८॥ आनन्दाश्च ध्रुवाश्चैव क्षेमकाश्च शिवैः सह ॥ वर्णाश्रमाचारयुक्ताः प्रजास्तेष्वथ सर्वशः ॥ १९ ॥ सर्वेष्वरोगाः सुबलाः प्रजास्त्वामयवर्जिताः ॥ अवसर्पिणी न तेष्वस्ति तथैवोत्सर्पिणी न च ॥ २० ॥ न तत्रास्ति युगावस्था चतुर्युगकृता क्वचित् ॥ त्रेतायुगसमः कालः सर्वदा तत्र वर्त्तते ॥ २१ ॥ प्लक्षद्वीपादिषु ज्ञेयः पञ्चस्वेतेषु सर्वशः ॥ देशस्यानुविधानेन कालस्यानुविधाः स्मृताः ॥ २२ ॥ पञ्चवर्षसहस्राणि तेषु जीवन्ति मानवाः ॥ सुरूपाश्च सुवेषाश्च अरोगा बलिनस्तथा ॥ २३ ॥ सुखमायुर्बलं रूपमारोग्यं धर्म्म एव च ॥ प्लक्षद्वीपादिषु ज्ञेयं शाकद्वीपान्तकेषु च ॥ २४ ॥ प्लक्षद्वीपः पृथुः श्रीमान् सर्वतो धनधान्यवान् ॥ दिव्यौषधिफलोपेतः सर्वौषधिवनस्पतिः ॥२५॥ आवृतः पशुभिः सर्व्वैर्ग्रामारण्यैः सहस्रशः ॥ जम्बूवृक्षेण संख्यातस्तस्य मध्ये द्विजोत्तमाः ॥ प्लक्षो नाम्ना महावृक्षस्तस्य नाम्ना स उच्यते ॥२६॥ स तत्र पूज्यते स्थाणुर्मध्ये जनपदस्य हि ॥ स चापीक्षुरसोदेशः प्लक्षद्वीपसमावृतः ॥ प्लक्षद्वीपस्य चैवेह वैपुल्याद्विस्तरेण तु ॥ २७ ॥ इत्येष सन्निवेशो वः प्लक्षद्वीपस्य कीर्त्तितः ॥ आनुपूर्व्या समासेन शाल्मलन्तन्निबोधत ॥ २८ ॥ ततस्तृतीयं द्वीपानां शाल्मलं द्वीपमुत्तमम् ॥ शाल्मलेन समुद्रस्तु द्वीपेनेक्षुरसोदकः ॥ प्लक्षद्वीपस्य विस्ताराद्द्विगुणेन समावृतः ॥ २९ ॥ तत्रापि पर्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः ॥ रत्नाकरास्तथा नद्यस्तेषु वर्षेषु सप्तसु ॥ ३० ॥ प्रथमः सूर्य्यसङ्काशः कुमुदो नाम पर्वतः ॥ सर्व्वधातुमयैः शृङ्गैः शिलाजालसमुद्गतैः ॥३१॥ द्वितीयः पर्वतस्तस्य उन्नतो नाम विश्रुतः ॥ हरितालमयैः शृङ्गैर्दिवमावृत्य तिष्ठति ॥३२॥ तृतीयः पर्वतस्तस्य बलाहक इति श्रुतः ॥ जात्यञ्जनमयैः शृङ्गैर्दिवमावृत्य तिष्ठति ॥३३॥ चतुर्थः पर्वतो द्रोणो यत्रौषध्यो महाबलाः ॥ विशल्यकरणी चैव मृतसञ्जीवनी तथा ॥ ३४ ॥ कङ्कस्तु पञ्चमस्तत्र पर्वतः सुमहोदयः ॥ दिव्यपुष्पफलो

पेतो वृक्षवीरुत्समावृतः ॥ ३५ ॥ षष्ठस्तु पर्वतस्तत्र महिषो मेघसन्निभः ॥ यस्मिन् सोऽग्निर्निवसति महिषो नाम वारिजः ॥ ३६ ॥ सप्तमः पर्वतस्तत्र
ककुद्मान्नाम भाष्यते॥तत्र रत्नान्यनेकानि स्वयं वर्षति वासवः ॥ प्रजापतिमुपादाय प्राजापत्ये विधिस्त्वयम् ॥ ३७ ॥ इत्येते पर्वताः सप्त शाल्मले मणिभूषि
ताः॥तेषां वर्षाणि वक्ष्यामि सप्तैव तु शुभानि वै॥कुमुदात् प्रथमं श्वेतमुन्नतस्य तु लोहितम्॥३८॥बलाहकस्य जीमूतं द्रोणस्य हरितं स्मृतम्॥कङ्कस्य वैद्युतं
नाम महिषस्य तु मानसम्॥३९॥ ककुदः सुप्रभं नाम सप्तैतानि तु सप्तधा ॥ वर्षाणि पर्वतांश्चैव नदीस्तेषु निबोधत ॥४०॥ पानितोया वितृष्णा च चन्द्रा
शुक्रा विमोचनी॥निवृत्तिः सप्तमी तासां प्रतिवर्षं तु ताः स्मृताः॥४१॥तासां समीपगाश्चान्याः शतशोऽथ सहस्रशः॥अशक्याः परिसंख्यातुं श्रद्धेयास्तु
बुभूषता ॥४२॥ इत्येष सन्निवेशो वः शाल्मलस्यापि कीर्तितः॥प्लक्षवृक्षेण संख्यातस्तस्य मध्ये महाद्रुमः॥४३॥शाल्मलिर्विपुलस्कन्धस्तस्य नाम्ना स
उच्यते ॥ शाल्मलिस्तु समुद्रेण सुरोदेन समन्ततः ॥ विस्ताराच्छाल्मलस्यैव समेन तु समन्ततः ॥ ४४ ॥ उत्तरेषु तु धर्मज्ञा द्वीपेषु शृणुत प्रजाः ॥
यथाश्रुतं यथान्यायं ब्रुवतो मे निबोधत ॥ ४५ ॥ कुशद्वीपं प्रवक्ष्यामि चतुर्थं तं समासतः ॥ सुरोदकः परिवृतः कुशद्वीपेन सर्वतः ॥४६॥ सप्तैव गिरयस्तत्र
वर्ण्यमानान्निबोधत ॥ शाल्मलस्य तु विस्ताराद्द्विगुणेन समन्ततः ॥ ४७ ॥ कुशद्वीपे तु विज्ञेयः पर्वतो विद्रुमोच्चयः ॥ द्वीपस्य प्रथमस्तस्य द्वितीयो हेमपर्व
तः ॥४८॥ तृतीयो द्युतिमान्नाम जीमूतसदृशो गिरिः ॥ चतुर्थः पुष्पवान्नाम पञ्चमस्तु कुशेशयः ॥ ४९ ॥ षष्ठो हरिगिरिर्नाम सप्तमो मन्दरः स्मृतः ॥ मन्दा
इति ह्यपां नाम मन्दरो दारणादपाम्॥५०॥ तेषामन्तरविष्कम्भो द्विगुणः परिवारितः ॥ उद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम् ॥५१॥ तृतीयं स्वैरथाकारं
चतुर्थं लवणं स्मृतम् ॥ पञ्चमं धृतिमद्वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम् ॥ सप्तमं कापिलं नाम सप्तैते वर्षपर्वताः ॥ ५२ ॥ एतेषु देवगन्धर्वाः प्रभास्तु जगदीश्वराः ॥
विहरन्ति रमन्ते च दृश्यमानास्तु वर्षशः ॥ ५३ ॥ न तेषु दस्यवः सन्ति म्लेच्छजात्यस्तथैव च ॥ गौरप्रायो जनः सर्वः क्रमाच्च म्रियते तथा ॥ ५४ ॥
तत्रापि नद्यः सप्तैव धुतपापाः शिवास्तथा ॥ पवित्रा सन्ततिश्चैव द्युतिगर्भा मही तथा ॥ ५५ ॥ अन्यास्ताभ्यः परिज्ञाताः शतशोऽथ सहस्रशः॥अभि
गच्छन्ति ताः सर्वा यतो वर्षति वासवः ॥ ५६ ॥ घृतोदेन कुशद्वीपो बाह्यतः परिवारितः ॥ विज्ञेयः स तु विस्तारात् कुशद्वीपसमेन तु ॥ ५७ ॥
इत्येष सन्निवेशो वः कुशद्वीपस्य वर्णितः ॥ क्रौञ्चद्वीपस्य विस्तारं वक्ष्याम्यहमतः परम् ॥ ५८ ॥ कुशद्वीपस्य विस्ताराद्द्विगुणः स तु वै
स्मृतः ॥ घृतोदकसमुद्रो वै क्रौञ्चद्वीपेन संवृतः ॥ ५९ ॥ तस्मिन् द्वीपे नगश्रेष्ठः क्रौञ्चस्थः प्रथमो गिरिः ॥ क्रौञ्चात्परो वामनको वामना
दन्धकारकः ॥ ६० ॥ अन्धकारात्परश्चापि दिवावृन्नाम पर्वतः ॥ दिवावृतः परश्चापि दिविन्दो गिरिरुच्यते ॥ ६१ ॥ दिविन्दात्परत

श्चापि पुण्डरीको महागिरिः ॥ पुण्डरीकात्परश्चापि प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः ॥ ६२ ॥ एते रत्नमयाः सप्त क्रौञ्चद्वीपस्य पर्व्वताः ॥ बहु
वृक्षफलोपेता नानावृक्षलतावृताः ॥ ६३ ॥ परस्परेण द्विगुणा विष्कम्भाद्वर्षपर्व्वताः ॥ वर्षाणि तत्र वक्ष्यामि नामतस्तु निबोधत ॥ ६४ ॥ क्रौञ्चस्य
कुशली देशो वामनस्य मनोनुगः॥ मनोनुगात्परश्चोष्णस्ततीयो देश उच्यते ॥ ६५ ॥ उष्णात्परः प्रावरकः प्रावरादन्धकारकः ॥ अन्धकारकदेशात्तु
मुनिदेशः परः स्मृतः ॥ ६६ ॥ मुनिदेशात्परश्चैव प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः ॥ सिद्धचारणसङ्कीर्णो गौरप्रायो जनः स्मृतः ॥ ६७ ॥ तत्रापि नद्यः सप्तैव
प्रतिवर्षं स्मृताः शुभाः ॥ गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा ॥ ख्यातिश्च पुण्डरीका च गङ्गा सप्तविधा स्मृता ॥ ६८ ॥ तासां सहस्रशश्चा
न्या नद्यो यास्तु समीपगाः ॥ अनुगच्छन्ति ताः सर्व्वा विपुलाः सुबहूदकाः ॥६९॥ क्रौञ्चद्वीपः समुद्रेण दधिमण्डोदकेन तु ॥ आवृतः सर्व्वतः श्रीमान्
क्रौञ्चद्वीपसमेन तु ॥ ७० ॥ प्लक्षद्वीपादयो ह्येते समासेन प्रकीर्त्तिताः ॥ तेषां निसर्गो द्वीपानां आनुपूर्व्येण सर्व्वशः ॥ ७१ ॥ न शक्यं विस्तराद्वक्तु
मपि वर्षशतैरपि ॥ निसर्गोऽयं प्रजानान्तु संहारो यश्च तासु वै ॥ ७२ ॥ अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि शाकद्वीपस्य यो विधिः ॥ शाकद्वीपस्य कृत्स्नस्य
यथावदिह निश्चयात् ॥ शृणुध्वं वै यथातत्त्वं ब्रुवतो मे यथार्थवत् ॥ ७३ ॥ क्रौञ्चद्वीपस्य विस्ताराद्द्विगुणस्तस्य विस्तरः ॥ परिवार्य्य समुद्रं स
दधिमण्डोदकं स्थितः ॥ ७४ ॥ तत्र पुण्या जनपदाश्चिराच्च म्रियते जनः ॥ कुत एव तु दुर्भिक्षजराव्याधिभयं कुतः ॥ ७५ ॥ तत्रापि पर्व्वताः शुभ्राः
सप्तैव मणिभूषिताः ॥ रत्नाकरास्तथा नद्यस्तासां नामानि मे शृणु ॥ ७६ ॥ देवर्षिगन्धर्व्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते ॥ प्रागायतः स सौवर्ण उदयो नाम
पर्व्वतः ॥ ७७ ॥ तत्र मेघास्तु वृष्ट्यर्थं प्रभवन्ति च यान्ति च ॥ तस्यापरेण सुमहान् जलधारो महागिरिः ॥ ७८ ॥ तस्मान्नित्यमुपादत्ते वासवः
परमं जलम् ॥ ततो वर्षं प्रभवति वर्षाकाले प्रजास्विह ॥ ७९ ॥ तस्यापरे रैवतको यत्र नित्यं प्रतिष्ठिता ॥ रेवती दिवि नक्षत्रं पितामहकृतो
गिरिः ॥ ८० ॥ तस्यापरेण सुमहान् श्यामो नाम महागिरिः॥ तस्माच्छ्यामत्वमापन्नाः प्रजाः पूर्व्वमिमाः किल ॥८१॥ तस्यापरेण रजतो महानस्तो
गिरिः स्मृतः ॥ तस्यापरेणाम्बिकेयो दुर्गः शैलो हिमाचितः ॥ ८२ ॥ आम्बिकेयात्परो रम्यः सर्वौषधिसमन्वितः ॥ स चैव केशरीत्युक्तो यतो वायुः
प्रवायति ॥ ८३ ॥ शृणुध्वं नामतस्तानि यथावदनुपूर्व्वशः ॥ उदयस्योदयं वर्षं जलदं नाम विश्रुतम् ॥ ८४ ॥ द्वितीयं जलधारस्य सुकुमारमिति
स्मृतम् ॥ रैवतस्य तु कौमारं श्यामस्य तु मणीचकम् ॥ ८५ ॥ अस्तस्यापि शुभं वर्षं विज्ञेयं कुसुमोत्तरम् ॥ आम्बिकेयस्य मोदाकं केसरेषु महाद्रु
मम् ॥ ८६ ॥ द्वीपस्य परिमाणञ्च ह्रस्वदीर्घत्वमेव च ॥ शाकद्वीपेन विख्यातस्तस्य मध्ये वनस्पतिः ॥ शाको नाम महावृक्षस्तस्य पूजां प्रयु

ञते ॥ ८७ ॥ एतेन देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः ॥ विहरन्ति रमन्ते च दृश्यमानाश्च तैः सह ॥ ८८ ॥ तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यसमन्विताः ॥
तेषु नद्यश्च सप्तैव प्रतिवर्षं समुद्रगाः ॥ विद्धि नाम्नश्च ताः सर्वा गङ्गास्ताः सप्तधा स्मृताः ॥ ८९ ॥ प्रथमा सुकुमारीति गङ्गा शिवजला तथा ॥ अनु
तप्ता च नाम्नैव नदी सम्परिकीर्त्तिता ॥ ९० ॥ कुमारी नामतः सिद्धा द्वितीया सा पुनः सती ॥ नन्दा च पार्वती चैव तृतीया परिकीर्त्तिता ॥९१ ॥
शिवेतिका चतुर्थी स्यात् त्रिदिवा च पुनः स्मृता ॥ इक्षुश्च पञ्चमी ज्ञेया तथैव च पुनः क्रतुः ॥ ९२ ॥ धेनुका च स्मृता चैव षष्ठी संपरिकीर्त्तिता ॥
एताः सप्त महागङ्गाः प्रतिवर्षं शिवोदकाः ॥ भावयन्ति जनं सर्व्वं शाकद्वीपनिवासिनम्॥९३॥ अनुगच्छन्ति तास्त्वन्या नदीर्नद्यः सहस्रशः ॥ बहूदक
परिस्रावा यतो वर्षति वासवः॥९४॥तासान्तु नामधेयानि परिमाणं तथैव च ॥ न शक्यं परिसंख्यातुं पुण्यास्ताः सरिदुत्तमाः ॥ ताः पिबन्ति सदा हृष्टा
नदीर्जनपदास्तु ते ॥ ९५ ॥ शंशपायन विस्तीर्णो द्वीपोऽसौ चक्रसंस्थितः ॥ नदीजलैः प्रतिच्छन्नः पर्व्वतैश्चाभ्रसन्निभैः ॥ ९६ ॥ सर्व्वधातुविचित्रैश्च म
णिविद्रुमभूषितैः ॥ पुरैश्च विविधाकारैः स्फीतैर्जनपदैरपि ॥ ९७ ॥ वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः समन्ताद्धनधान्यवान् ॥ क्षीरोदेन समुद्रेण सर्व्वतः
परिवारितः ॥ शाकद्वीपस्तु विस्तारात् समेन तु समन्ततः ॥ ९८ ॥ तस्मिन् जनपदाः पुण्याः पर्व्वतान्तरिते शुभाः ॥ वर्णाश्रमस
माकीर्णा देशास्ते सप्त वै स्मृताः ॥ ९९ ॥ न सङ्करश्च तेष्वस्ति वर्णाश्रमकृतः क्वचित् ॥ धर्म्मस्य चाव्यभीचारादेकान्तसुखिताः प्रजाः ॥ १०० ॥ न
तेषु लोभो माया वा ईर्ष्या सूयाऽधृतिः कुतः॥विपर्य्ययो न तेष्वस्ति एतत् स्वाभाविकं स्मृतम्॥१०१॥करोत्पत्तिर्न तेष्वस्ति न दण्डो न च दण्डकाः॥
स्वधर्मेणैव धर्म्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम् ॥१०२॥ एतावदेव शक्यं वै तस्मिन् द्वीपे निवासिनाम् ॥ पुष्करं सप्तमं द्वीपं प्रवक्ष्यामि निबोधत ॥१०३॥
पुष्करेण तु द्वीपेन वृतः क्षीरोदको बहिः ॥ शाकद्वीपस्य विस्ताराद्द्विगुणेन समन्ततः ॥ १०४ ॥ पुष्करे पर्व्वतः श्रीमान् एक एव महाशिलः ॥ चि
त्रैर्मणिमयैः शैलैः शिखरैस्तु समुच्छ्रितैः ॥ १०५ ॥ द्वीपस्य तस्य पूर्व्वार्द्धे चित्रसानुः स्थितो महान् ॥ परिमण्डलसहस्राणि विस्तीर्णः पञ्चविंशतिः
॥ १०६॥ ऊर्द्धञ्चैव चतुस्त्रिंशत्सहस्राणि समाचितः ॥ द्वीपार्द्धस्य परिस्तोमः पर्व्वतो मानसोत्तमः ॥१०७॥ स्थितो वेलासमीपे तु नवचन्द्र इवोदितः॥
योजनानां सहस्राणि ऊर्द्धं पञ्चाशदुच्छ्रितः ॥ १०८ ॥ तावदेव स विस्तीर्णः सर्व्वतः परिमण्डलः ॥ स एवं द्वीपपश्चार्द्धे मानसः पृथिवीधरः ॥ १०९ ॥
एक एव महासानुः सन्निवेशाद्द्विधा कृतः ॥ स्वादूदकेनोदधिना सर्व्वतः परिवारितः ॥ ११० ॥ पुष्करद्वीपविस्ताराद्विस्तीर्णोऽसौ समन्ततः ॥ तस्मि
न् द्वीपे स्मृतौ द्वौ तु पुण्यौ जनपदौ शुभौ ॥ अभितो मानसस्याथ पर्व्वतस्यानुमण्डलौ ॥ १११ ॥ महावीतन्तु यद्वर्षं बाह्यतो मानसस्य तत् ॥ त

स्यैवाभ्यन्तरे यत्तु धातकीखण्डमुच्यते ॥११२॥ दशवर्षसहस्राणि तत्र जीवन्ति मानवाः ॥ आरोग्यसुखभूयिष्ठा मानसीं सिद्धिमास्थिताः ॥ ११३ ॥
सममायुश्च रूपञ्च तस्मिन् वर्षद्वये स्थितम् ॥अधमोत्तमौ न तेष्वास्तां तुल्यास्ते रूपशीलतः ॥११४॥ न तत्र वञ्चको नेर्ष्या न स्तेना न भयं तथा ॥
निग्रहो न च दण्डोऽस्ति न लोभो न परिग्रहः ॥११५॥ सत्यानृतं न तत्रास्ति धर्माधर्मौ तथैव च ॥ वर्णाश्रमाणां वार्त्ता वा पाशुपाल्यं वणिक्क्रिया
॥ ११६ ॥ त्रयी विद्या दण्डनीतिः शुश्रूषा शल्यमेव च ॥ वर्षद्वये सर्व्वमेतत् पुष्करस्य न विद्यते ॥ ११७ ॥ न तत्र नद्यो वर्षञ्च शीतोष्णं वा न वि
द्यते ॥ उद्भिज्जान्युदकान्यत्र गिरिप्रस्रवणानि च ॥ ११८ ॥ उत्तराणां कुरूणाञ्च तुल्यकालो जनः सदा ॥ सर्व्वत्र सुसुखस्तत्र जराक्लमविवर्जितः ॥ ११९ ॥
इत्येष धातकीखण्डो महावीते तथैव च ॥ आनुपूर्व्याद्द्विधिः कृत्स्नः पुष्करस्य प्रकीर्त्तितः ॥१२०॥स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवारितः ॥ विस्तारान्म
ण्डलाच्चैव पुष्करस्य तथैव च ॥ १२१ ॥ एवं द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः ॥ द्वीपस्यानन्तरो यस्तु समुद्रस्तु समन्ततः ॥१२२॥ एवं द्वीपसमुद्राणां
वृद्धिर्ज्ञेया परस्परात्॥ अपाञ्चैव समुद्रेकात् समुद्रा इति संज्ञिताः ॥१२३॥ऋषयो निवसन्त्यस्मिन् प्रजा यस्माच्चतुर्विधाः ॥ तस्माद्वर्षमिति प्रोक्तं प्रजानां
सुखदन्तु तत् ॥ १२४ ॥ ऋष इत्येव ऋषयः वृषः शक्तिप्रबन्धने ॥ इति प्रबन्धनात् सिद्धं वर्षत्वं तेन तेषु तत् ॥ १२५ ॥ शुक्लपक्षे चन्द्रवृद्धौ
समुद्रः पूर्य्यते तदा ॥ प्रक्षीयमाणे बहुले क्षीयतेऽस्तमिते खगे ॥ १२६ ॥ आपूर्य्यमाणे उदधिः स्वत एवाभिपूर्य्यते ॥ ततोऽपक्षीयमा
णेऽपि स्वात्मनैवापकृष्यते ॥ १२७ ॥ उखास्थमग्निसंयोगात् जलमुद्रिच्यते यथा ॥ तथा महोदधिगतं तोयमुद्रिच्यते ततः ॥ १२८ ॥
अन्यूना ह्यतिरिक्ताश्च वर्द्धन्त्यापो ह्रसन्ति च ॥ उदयास्तमितेश्चेन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥ क्षयवृद्धिरेवमुदधेः सोमवृद्धिक्षयात्पुनः ॥१२९॥ दशो
त्तराणि पञ्चैव अङ्गुलीनां शतानि तु ॥ अपां वृद्धिः क्षयो दृष्टः समुद्राणान्तु पर्वसु॥१३०॥द्विरापत्वात् स्मृता द्वीपाः सर्व्वतश्चोदकावृताः ॥ उदकस्या
धानं यस्माच्च तस्मादुदधिरुच्यते ॥१३१॥ अपर्वाणस्तु गिरयः पर्वभिः पर्व्वताः स्मृताः ॥ प्लक्षद्वीपे तु गोमेदः पर्व्वतस्तेन चोच्यते ॥ १३२ ॥ शाल्म
लिः शाल्मलद्वीपे पूज्यते च महाद्रुमः ॥ कुशद्वीपे कुशस्तम्बस्तस्य नाम्ना स उच्यते ॥१३३॥ क्रौञ्चद्वीपे गिरिः क्रौञ्चो मध्ये जनपदस्य ह ॥ शाकद्वी
पे द्रुमः शाकस्तस्य नाम्ना स उच्यते ॥१३४॥ न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे तत्र तैः स नमस्कृतः ॥ महादेवः पुष्करे तु ब्रह्मा त्रिभुवनेश्वरः॥१३५॥ तस्मिन्निव
सति ब्रह्मा साध्यैः सार्द्धं प्रजापतिः ॥ उपासते तत्र देवास्त्रयस्त्रिंशन्महर्षिभिः ॥ स तत्र पूज्यते चैव देवैर्देवोत्तमोत्तमः ॥१३६॥जम्बूद्वीपात्प्रवर्त्तन्ते रत्ना
नि विविधानि च ॥ द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां हि क्रमास्त्विह ॥१३७॥ सर्व्वशो ब्रह्मचर्येण सत्येन च दमेन च ॥ आरोग्यायुःप्रमाणादि द्विगुणञ्च

समन्ततः ॥ १३८ ॥ एतस्मिन् पुष्करद्वीपे यदुक्तं वर्षकद्वयम् ॥ गोपायति प्रजास्तत्र स्वयं सज्जनमण्डिताः ॥१३९॥ ईश्वरो दण्डमुद्यम्य ब्रह्मा त्रिभु
वनेश्वरः ॥ सविष्णुः सशिवो देवः सपिता सपितामहः ॥१४० ॥ भोजनञ्चाप्ययत्नेन तत्र स्वयमुपस्थितम् ॥ षड्रसं सुमहावीर्यं भुञ्जते च प्रजाः सदा
॥ १४१ ॥ परेण पुष्करस्याथ आवृत्या यः स्थितो महान् ॥ स्वादूदकः समुद्रस्तु समन्तात्परिवेष्टितः ॥ १४२ ॥ परेण तस्य महती दृश्यते लोक
संस्थितिः ॥ काञ्चनी द्विगुणा भूमिः सर्वा चैकशिलोपमा ॥१४३॥ तस्मात्परेण शैलस्तु मर्यादान्ते तु मण्डलम् ॥ प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोकः स
उच्यते॥१४४॥आलोकस्तस्य चार्वाक्तु निरालोकस्ततः परम् ॥योजनानां सहस्राणि दश तस्योच्छ्रयः स्मृतः ॥१४५॥ तावांश्च विस्तरस्तस्य पृथिव्यां
कामगश्च सः ॥ आलोके लोकशब्दस्तु निरालोके सलोकता ॥ लोकार्थं सम्मतो लोको निरालोकस्तु बाह्यतः॥१४६॥ लोकविस्तारमात्रन्तु आलोकः
सर्व्वतो बहिः ॥ परिच्छिन्नः समन्ताच्च उदकेनावृतश्च सः ॥ निरालोकात्परश्चापि अण्डमावृत्य तिष्ठति ॥१४७॥ अण्डस्यान्तस्त्विमे लोकाः सप्तद्वीपा
च मेदिनी ॥ भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथ महस्तथा ॥१४८॥ जनस्तपस्तथा सत्य एतावान् लोकसङ्ग्रहः ॥ एतावानेव विज्ञेयो लोकान्तश्चैव
तत्परः ॥१४९॥ कुम्भस्थायी भवेद्यादृक् प्रतीच्यान्दिशि चन्द्रमाः ॥ आदितः शुक्लपक्षस्य वपुरण्डस्य तद्विधम् ॥ १५० ॥ अण्डानामीदृशानान्तु को
व्यो ज्ञेयाः सहस्रशः॥ तिर्य्यगूर्ध्वमधस्ताच्च कारणस्याव्ययात्मनः॥ कारणैः प्राकृतैस्तत्र ह्यावृतं प्रतिसप्तभिः ॥१५१॥ दशाधिक्येन चान्योन्यं धारयन्ति
परस्परम् ॥ परस्परावृताः सर्व्वे उत्पन्नाश्च परस्परात्॥१५२॥ अण्डस्यास्य समन्तात्तु सन्निविष्टो घनोदधिः समन्ताद्येन तोयेन धार्य्यमाणः स तिष्ठति ॥
॥१५३॥ बाह्यतो घनतोयस्य तिर्य्यगूर्द्धन्तुमण्डलम् ॥ धार्य्यमाणं समन्तात्तु तिष्ठते घनतेजसा ॥१५४॥ अयोगुडनिभो वह्निः समन्तान्मण्डलाकृतिः॥
समन्ताद्घनवातेन धार्य्यमाणः स तिष्ठति ॥ घनवातस्तथाकाशन्धारयाणस्तु तिष्ठति ॥ १५५ ॥ भूतादिश्च तथाकाशं भूतादिश्चाप्यसौ महान् ॥ महान्
व्याप्तो ह्यनन्तेन अव्यक्तेन तु धार्य्यते॥१५६॥ अनन्तमपरिव्यक्तन्दशधा सूक्ष्म एव च॥ अनन्तमकृतात्मानमनादिनिधनञ्च तत् ॥१५७॥ अतीत्य पर
तो घोरमनालम्बमनामयम् ॥ नैकयोजनसाहस्रं विप्रकृष्टं तमोवृतम् ॥१५८॥ तम एव निरालोकममर्य्यादमदेशिकम् ॥ देवानामप्यविदितं व्यवहारविव
र्ज्जितम् ॥१५९॥ तमसोऽन्ते च विख्यातमाकाशान्ते च भास्वरम् ॥ मर्य्यादायामतस्तस्य शिवस्यायतनं महत् ॥१६०॥ त्रिदशानामगम्यन्तु स्थानं
दिव्यमिति श्रुतिः ॥महतो देवदेवस्य मर्य्यादायां व्यवस्थितम् ॥१६१॥चन्द्रादित्यावततास्तु ये लोकाः प्रथिता बुधैः ॥ ते लोका इत्यभिहिता जगतश्च
न संशयः॥१६२॥ रसातलतलात् सप्त सप्तैवोर्द्धतलाः क्षितौ ॥ सप्तस्कन्धास्तथा वायोः सब्रह्मसदना द्विजाः॥१६३॥आपातालादिवं यावदत्र पञ्चविधा ग

तिः ॥ प्रमाणमेतज्जगत एष संसारसागरः ॥१६४॥ अनाद्यन्ता प्रयात्येवं नैकजातिसमुद्भवाः ॥ विचित्रा जगतः सा वै प्रवृत्तिरनवस्थिता ॥ १६५ ॥
यथैतद्भौतिकं नाम निसर्गबहुविस्तरम् ॥ अतीन्द्रियैर्महाभागैः सिद्धैरपि न लक्ष्यते ॥ १६६ ॥ पृथिव्याश्चाग्निवायूनां महतस्तमसस्तथा ॥
ईश्वरस्य तु देवस्य अनन्तस्य द्विजोत्तमाः ॥ १६७ ॥ क्षयो वा परिमाणं वा अन्तो वापि न विद्यते ॥ अनन्त एष सर्व्वत्र सर्व्वस्थानेषु पठ्यते ॥
तस्य चोक्तं मया पूर्व्वं तस्मिन्नामानुकीर्त्तने ॥ १६८ ॥ य एष शिवनाम्ना हि नद्धः कात्स्न्येंन कीर्तितम् ॥ स एष सर्व्वत्र गतः सर्व्वस्थानेषु पू
ज्यते ॥ १६९ ॥ भूमौ रसातले चैव आकाशे पवनेऽनले ॥ अर्णवेषु च सर्वेषु दिवि चैव न संशयः ॥ १७० ॥ तथा तपसि विज्ञेय एष एव महा
द्युतिः ॥ अनेकधा विभक्ताङ्गो महायोगी महेश्वरः ॥ सर्वलोकेषु लोकेश इज्यते बहुधा प्रभुः ॥ १७१ ॥ एवं परस्परोत्पन्ना धार्य्यन्ते च परस्परान् ॥
आधाराधेयभावेन विकारास्ते विकारिणः ॥१७२॥ पृथ्व्यादयो विकारास्ते परिच्छिन्नाः परस्परम् ॥ परस्पराधिकाश्चैव प्रविष्टाश्च परस्परम्॥१७३॥
यस्माद्विष्टाश्च तेऽन्योन्यं तस्मात् स्थैर्य्यमुपागताः ॥ प्रागासन् ह्यविशेषास्तु विशेषान्योन्यवेशनात् ॥ पृथिव्याद्याश्च वाय्वन्ताः परिच्छिन्नास्त्रयस्तु ते
॥ १७४ ॥ गुणापचयसारेण परिच्छेदो विशेषतः ॥ शेषाणान्तु परिच्छेदः सौक्ष्म्यान्नेह विभाव्यते ॥ १७५ ॥ भूतेभ्यः परतस्तेभ्यो ह्यालोकः परतः
स्मृतः ॥ भूतान्यालोक आकाशे परिच्छिन्नानि सर्व्वशः ॥ १७६ ॥ पात्रे महति पात्राणि यथैवान्तर्गतानि तु ॥ भवन्त्यन्योन्यहीनानि परस्परसमाश्र
यात् ॥ तथा ह्यालोक आकाशे भेदास्त्वन्तर्गता मताः ॥ १७७ ॥ कृत्स्नान्येतानि चत्वारि अन्योन्यस्याधिकानि तु ॥ यावदेतानि भूतानि तावदुत्प
त्तिरुच्यते ॥ १७८ ॥ जन्तूनामिह संस्कारो भूतेष्वन्तर्गतो मतः ॥ प्रत्याख्याय च भूतानि कार्य्योत्पत्तिर्न विद्यते ॥ १७९ ॥ तस्मात्परिमिता भेदाः
स्मृताः कार्य्यात्मकास्तु ते ॥ कारणात्मकास्तथैव स्युर्भेदा ये महदादयः ॥ १८० ॥ इत्येष सन्निवेशो वो मया प्रोक्तो विभागशः ॥ सप्तद्वीपसमु
द्राया याथातथ्येन वै द्विजाः ॥ १८१ ॥ विस्तारान्मण्डलाच्चैव प्रसंख्यातेन चैव हि ॥ वैश्वरूपं प्रधानस्य परिमाणैकदेशिकम् ॥ १८२ ॥ अधिष्ठानं
भगवतो यस्य सर्व्वमिदं जगत् ॥ एवं भूतगणाः सप्त सन्निविष्टाः परस्परम् ॥ १८३ ॥ एतावान् सन्निवेशस्तु मयाशक्यः प्रभाषितुम् ॥ एतावदेव श्रोत
व्यं सन्निवेशे तु पार्थिव ॥१८४॥ सप्त प्रकृतयस्त्वेता धारयन्ति परस्परम् ॥ तास्वल्पपरिमाणेन प्रसङ्ख्यातुमिहोच्यते ॥ असङ्ख्येयाः प्रकृतयस्तिर्य्य
गूर्द्ध्वमधश्च याः ॥ १८५ ॥ तारकासन्निवेशश्च यावद्दिव्यं तु मण्डलम् ॥ मर्य्यादासन्निवेशस्तु भूमेस्तदनुमण्डलम् ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि पृथिव्यां वै
द्विजोत्तमाः ॥ १८६ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते भुवनविन्यासो नामैकोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ छ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ अथ प्रमाणमू

र्द्धश्च वर्ण्यमानं निबोधत ॥ पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥ अनन्तधातवो ह्येते व्यापकास्तु प्रकीर्त्तिताः ॥ १ ॥ जननी सर्व्वभूतानां स र्व्वभूतधरा धरा ॥ नानाजनपदाकीर्णा नानाधिष्ठानपत्तना ॥ २ ॥ नानानदनदीशैला नैकजातिसमाकुला ॥ अनन्ता गीयते देवी पृथिवी बहुविस्तरा ॥३॥ नदीनदसमुद्रस्थास्तथा क्षुद्राश्रयाः स्थिताः ॥ पर्व्वताकाशसंस्थाश्च अन्तर्भूमिगताश्च याः ॥४॥ आपोऽनन्ताश्च विज्ञेयास्तथाग्निः सर्व्वलौकिकः ॥ अनन्तः पठ्यते चैव व्यापकः सर्व्वसम्भवः॥५॥तथाकाशमनालम्बं रम्यं नानाश्रयं स्मृतम्॥अनन्तं प्रथितं सर्वं वायुश्चाकाशसम्भवः ॥६॥ आपः पृथिव्यामुदके पृथिवी चोपरि स्थिता॥आकाशञ्चापरमधः पुनर्भूमिः पुनर्ज्जलम् ॥७॥ एवमन्तमनन्तस्य भौतिकस्य न विद्यते॥पुरा सुरैरभिहितं निश्चितन्तु निबोधत ॥८॥ भूमिर्जलमथाकाशमिति ज्ञेया परम्परा ॥ स्थितिरेषा तु विज्ञेया सप्तमेऽस्मिन् रसातले॥९॥ दशयोजनसाहस्रमेकभौमं रसातलम् ॥ साधुभिः परिविख्यातमेकैकं बहुविस्तरम् ॥ १० ॥ प्रथममतलञ्चैव सुतलन्तु ततः परम् ॥ ततः परतरं विद्याद्वितलं बहुविस्तरम् ॥ ११ ॥ ततो गभस्तलं नाम परतश्च महातलम् ॥ श्रीतलञ्च ततः प्राहुः पातालं सप्तमं स्मृतम् ॥ १२ ॥ कृष्णभौमञ्च प्रथमं भूमिभागञ्च कीर्त्तितम् ॥ पाण्डुभौमं द्वितीयन्तु तृतीयं रक्तमृत्तिकम् ॥ १३ ॥ पीतभौमञ्चतुर्थन्तु पञ्चमं शर्कंरातलम् ॥ षष्ठं शिलामयञ्चैव सौवर्णं सप्तमन्तलम् ॥ १४ ॥ प्रथमे तु तले ख्यातमसुरेन्द्रस्य मन्दिरम् ॥ नमुचेरिन्द्रशत्रोर्हि महानादस्य चालयम् ॥१५॥ पुरञ्च शङ्कुकर्णस्य कबन्धस्य च मन्दिरम् ॥ निष्कुलादस्य च पुरं प्रहृष्टजनसङ्कुलम्॥१६॥ राक्षसस्य च भीमस्य शूलदन्तस्य चालयम् ॥ लोहिताक्षकलिङ्गानां नगरं श्वापदस्य तु ॥१७॥ धनञ्जयस्य च पुरं माहेन्द्रस्य महात्मनः ॥ कालियस्य च नागस्य नगरं कलसस्य च ॥ १८ ॥ एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ॥ तले ज्ञेयानि प्रथमे कृष्णभौमे न संशयः ॥ १९ ॥ द्वितीयेऽपि तले विप्रा दैत्येन्द्रस्य सुरक्षसः ॥ महाजम्भस्य च तथा नगरं प्रथमस्य तु ॥ २० ॥ हयग्रीवस्य कृष्णस्य निकुम्भस्य च मन्दिरम् ॥ शङ्खाख्येयस्य च पुरं नगरं गोमुखस्य च ॥ २१ ॥ राक्षसस्य च नीलस्य मेघस्य क्रथनस्य च ॥ पुरञ्च कुरुपादस्य महोष्णीषस्य चालयम् ॥ २२ ॥ कम्बलस्य च नागस्य पुरमश्वतरस्य च ॥ कद्रुपुत्रस्य च पुरं तक्षकस्य महात्मनः ॥ २३ ॥ एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ॥ द्वितीयेऽस्मिन् तले विप्राः पाण्डुभौमे न संशयः ॥ २४ ॥ तृतीये तु तले ख्यातं प्रह्लादस्य महात्मनः ॥ अनुह्रादस्य च पुरं दैत्येन्द्रस्य महात्मनः ॥ २५ ॥ तारकाख्यस्य च पुरं पुरन्त्रिशिरसस्तथा ॥ शिशुमारस्य च पुरं हृष्टपुष्टजनाकुलम् ॥२६॥ च्यवनस्य च विज्ञेयं राक्षसस्य च मन्दिरम्॥राक्षसेन्द्रस्य च पुरं कुम्भिलस्य खरस्य च ॥२७॥ विराधस्य च क्रूरस्य पुरमुल्कामुखस्य च ॥ हेमकस्य च नागस्य तथा पाण्डुरकस्य च ॥ २८॥ मणिमन्त्रस्य च पुरं कपिलस्य च मन्दिरम् ॥

नन्दस्य चोरगपतेर्विशालस्य च मन्दिरम् ॥ २९ ॥ एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ॥ तृतीयेऽस्मिंस्तले विप्राः पीतभौमे न संशयः ॥ ३० ॥
चतुर्थे दैत्यसिंहस्य कालनेमेर्महात्मनः ॥ गजकर्णस्य च पुरं नगरं कुञ्जरस्य च ॥ ३१ ॥ राक्षसेन्द्रस्य च पुरं सुमालेर्बहुविस्तरम् ॥ मुञ्जस्य
लोकनाथस्य वृकवक्त्रस्य चालयम् ॥ ३२ ॥ बहुयोजनसाहस्रं बहु पक्षिसमाकुलम् ॥ नगरं वैनतेयस्य चतुर्थेऽस्मिन् रसातले ॥ ३३ ॥ पञ्चमे
शर्कराभौमे बहुयोजनविस्तृते ॥ विरोचनस्य नगरं दैत्यसिंहस्य धीमतः ॥ ३४ ॥ वैदूर्य्यस्याग्निजिह्वस्य हिरण्याक्षस्य चालयम् ॥ पुरञ्च
विद्युज्जिह्वस्य राक्षसस्य च धीमतः ॥ ३५ ॥ महामेघस्य च पुरं राक्षसेन्द्रस्य शालिनः ॥ कर्म्मारस्य च नागस्य स्वस्तिकस्य जयस्य च ॥ ३६ ॥
एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ॥ पञ्चमेपि तथा ज्ञेयं शर्करानिलये सदा ॥ ३७॥ षष्ठे तले दैत्यपतेः केसरेर्नगरोत्तमम् ॥ सुपर्व्वणः सुलो
म्नश्च नगरं महिषस्य च ॥ राक्षसेन्द्रस्य च पुरमुत्क्रोशस्य महात्मनः ॥ ३८ ॥ तत्रास्ते सुरसापुत्रः शतशीर्षो मुदा युतः ॥ कश्यपस्य सुतः श्रीमान्
वासुकिर्नाम नागराट् ॥ ३९ ॥ एवं पुरसहस्राणि नागदानवरक्षसाम् ॥ षष्ठे तलेऽस्मिन् विख्याते शिलाभौमे रसातले ॥ ४० ॥ सप्तमे तु तले ज्ञेयं
पाताले सर्व्वपश्चिमे ॥ पुरं बलेः प्रमुदितं नरनारीसमाकुलम् ॥ ४१ ॥ असुराशीविषैः पूर्णमुद्धृतैर्देवशत्रुभिः ॥ मुचुकुन्दस्य दैत्यस्य तत्र वै
नगरं महत् ॥ ४२ ॥ अनेकैर्दितिपुत्राणां समुदीर्णैर्महापुरैः ॥ तथैव नागनगरैरृद्धिमद्भिः सहस्रशः ॥ ४३ ॥ दैत्यानां दानवानाञ्च समुदीर्णैर्म
हापुरैः ॥ उदीर्णै राक्षसावासैरनेकैश्च समाकुलम् ॥ ४४ ॥ पातालान्ते च विप्रेन्द्रा विस्तीर्णे बहुयोजने ॥ आस्ते रक्तारविन्दाक्षो महात्मा
ह्यजरामरः ॥ ४५ ॥ धौतशङ्खोदरवपुर्नीलवासा महाभुजः ॥ विशालभोगो द्युतिमांश्चित्रमालाधरो बली ॥ ४६ ॥ रुक्मशृङ्गावदातेन दीप्तास्ये
न विराजता ॥ प्रभुर्मुखसहस्रेण शोभते वै स कुण्डली ॥ ४७॥ स जिह्वामालया देवो लोलज्वालानलार्चिषा ॥ ज्वालामालापरिक्षिप्तः कैलास इव लक्ष्य
ते ॥४८॥ स तु नेत्रसहस्रेण द्विगुणेन विराजता॥बालसूर्य्याभिताम्रेण शोभते स्निग्धमण्डलः॥४९॥तस्य कुन्देन्दुवर्णस्य अक्षमाला विराजते॥ तरुणादि
त्यमालेव श्वेतपर्व्वतमूर्द्धनि ॥५०॥ जटाकरालो द्युतिमान् लक्ष्यते शयनासने ॥ विस्तीर्ण इव मेदिन्यां सहस्रशिखरो गिरिः ॥५१॥ महाभोगैर्महाभागैर्म्म
हानागैर्महाबलैः ॥ उपास्यते महातेजा महानागपतिः स्वयम् ॥ ५२ ॥ स राजा सर्व्वनागानां शेषो नाम महाद्युतिः ॥ सा वैष्णवी ह्यहितनुर्मर्य्यादायां व्यव
स्थिता ॥५३॥ सप्तैवमेते कथिता व्यवहार्य्या रसातलाः ॥ देवासुरमहानागराक्षसाध्युषिताः सदा ॥५४॥ अतः परमनालोक्यमगम्यं सिद्धसाधुभिः ॥ देवा
नामप्यविदितं व्यवहारविवर्ज्जितम् ॥५५॥ पृथिव्यग्न्यम्बुवायूनां नभसश्च द्विजोत्तमाः ॥ महत्त्वमेवमृषिभिर्वर्ण्यते नात्र संशयः ॥५६॥अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि

सूर्य्याचन्द्रमसोर्गतिम्॥ सूर्य्याचन्द्रमसावेतौ भ्रमन्तौ यावदेव तु ॥ प्रकाशतः स्वभाभिस्तौ मण्डलाभ्यां समास्थितौ ॥ ५७ ॥ सप्तानाञ्च समुद्राणां द्वीपानान्तु स विस्तरः ॥ विस्तरार्द्धं पृथिव्यास्तु भवेदन्यत्र वाह्यतः ॥ ५८ ॥ पर्य्यासपारिमाण्यन्तु चन्द्रादित्यौ प्रकाशतः ॥ पर्य्यासपारिमाण्येन भूमेस्तुल्यं दिवं स्मृतम् ॥ ५९ ॥ अवति त्रीनिमान् लोकान् यस्मात् सूर्यः परिभ्रमन् ॥ अवधातुः प्रकाशाख्यो ह्यवनात्स रविः स्मृतः ॥ ६० ॥ अतःपरं प्रवक्ष्यामि प्रमाणं चन्द्रसूर्ययोः ॥ महितत्वान्महीशब्दो ह्यस्मिन् वर्षे निपात्यते ॥ ६१ ॥ अस्य भारतवर्षस्य विष्कम्भन्तु सुविस्तरम् ॥ मण्डलं भास्करस्याथ योजनानां निबोधत ॥ ६२ ॥ नवयोजनसाहस्रो विस्तारो भास्करस्य तु ॥ विस्ताराात्त्रिगुणश्चास्य परिणाहोऽथ मण्डलम् ॥ विष्कम्भो मण्डलस्यैव भास्कराद्द्विगुणः शशी ॥ ६३ ॥ अतः पृथिव्यां वक्ष्यामि प्रमाणं योजनैः सह ॥ सप्तद्वीपसमुद्राया विस्तारो मण्डलञ्च यत् ॥ ६४ ॥ इत्येतदिह सङ्ख्यातं पुराणं परिमाणतः ॥ तद्वक्ष्यामि प्रसङ्ख्याय साम्प्रतैरभिमानिभिः ॥६५॥ अभिमानिव्यतीता ये तुल्यास्ते साम्प्रतैरिह ॥ देवा ये वै ह्यतीतास्ते रूपैर्नामभिरेव च ॥ ६६ ॥ तस्मात्तु साम्प्रतैर्देवैर्वक्ष्यामि वसुधातलम् ॥ दिवस्तु सन्निवेशो वै साम्प्रतैरेव कृत्स्नशः ॥ ६७ ॥ शतार्द्धकोटिविस्तारा पृथिवी कृत्स्नतः स्मृता ॥ तस्या वाधप्रमाणेन मेरोर्वै चातुरन्तरम् ॥६८॥ पृथिव्या वाधविस्तारो योजनाग्रात्प्रकीर्त्तितः ॥ मेरुमध्यात् प्रतिदिशं कोटिरेकादश स्मृताः ॥ ६९ ॥ तथा शतसहस्राणि एकोननवतिः पुनः ॥ पञ्चाशच्च सहस्राणि पृथिव्या वाधविस्तरः ॥ ७० ॥ पृथिव्या विस्तरं कृत्स्नं योजनैस्तान्निबोधत ॥ तिस्रः कोट्यस्तु विस्तारः सङ्ख्यातः स चतुर्दिशम् ॥७१॥ तथा शतसहस्राणमेकोनाशीतिरुच्यते ॥ सप्तद्वीपसमुद्रायाः पृथिव्यास्त्वेष विस्तरः॥७२॥विस्ताराात् त्रिगुणश्चैव पृथिव्यन्तस्य मण्डलम् ॥गणितं योजनाग्रन्तु कोट्यस्त्वेकादश स्मृताः॥७३॥तथा शतसहस्रन्तु सप्तत्रिंशाधिकानि तु॥इत्येतद्वै प्रसङ्ख्यातं पृथिव्यन्तस्यमण्डलम्॥७४॥तारकासन्निवेशस्य दिवि यावद्धि मण्डलम्॥पर्य्यासः सन्निवेशस्य भूमेस्तावत्तु मण्डलम्॥७५॥ पर्य्यासपारिमाण्येन भूमेस्तुल्यं दिवं स्मृतम्॥सप्तानामपि लोकानामेतन्मानं प्रकीर्तितम् ॥७६॥ पर्य्यासपारिमाण्येन मण्डलानुगतेन च ॥ उपर्युपरि लोकानां छत्रवत्परिमण्डलम् ॥ ७७ ॥ संस्थितिर्विहिता सर्व्वा येषु तिष्ठन्ति जन्तवः ॥ एतदण्डकटाहस्य प्रमाणं परिकीर्त्तितम् ॥ ७८ ॥ अण्डस्यान्तस्त्विमे लोकाः सप्तद्वीपा च मेदिनी ॥ भूर्लोकश्च भुवश्चैव तृतीयः स्वरिति स्मृतः ॥ महर्लोको जनश्चैव तपः सत्यश्च सप्तमः ॥ ७९ ॥ एते सप्त कृता लोकाश्छत्राकारा व्यवस्थिताः ॥ स्वकैरावरणैः सूक्ष्मैर्धार्य्यमाणाः पृथक् पृथक् ॥ ८० ॥ दशभागाधिकाभिश्च ताभिः प्रकृतिभिर्वहिः ॥ धार्य्यमाणा विशेषैश्च समुत्पन्नैः परस्परम् ॥ ८१ ॥ अस्याण्डस्य समन्ताच्च सन्निविष्टो घनोदधिः ॥ पृथिवीमण्डलं कृत्स्नं घनतोयेन धार्य्यते ॥ ८२ ॥

घनोदधिपरेणाथ धार्य्यते घनतेजसा ॥ बाह्यतो घनतेजस्तु तिर्य्यगूर्द्धन्तु मण्डलम् ॥ ८३ ॥ समन्ताद्घनवातेन धार्य्यमाणं प्रतिष्ठितम् ॥ घनवातात्त
थाकाशमाकाशञ्च महात्मना ॥ ८४ ॥ भूतादिना वृतं सर्व्वं भूतादिर्महता वृतः ॥ वृतो महाननन्तेन प्रधानेनाव्ययात्मना ॥ ८५ ॥ पुराणि लोकपा
लानां प्रवक्ष्यामि यथाक्रमम् ॥ ज्योतिर्गणप्रचारस्य प्रमाणं परिवक्ष्यते ॥८६॥ मेरोः प्राच्यां दिशि तथा मानसस्यैव मूर्द्धनि ॥ वस्वोकसारा माहेन्द्री
पुण्या हेमपरिष्कृता ॥८७॥ दक्षिणेन पुनर्मेरोर्मानसस्यैव मूर्द्धनि ॥ वैवस्वतो निवसति यमः संयमने पुरे ॥८८॥ प्रतीच्यान्तु पुनर्मेरोर्मानसस्यैव मूर्द्ध
नि ॥ सुखा नाम पुरी रम्या वरुणस्याथ धीमतः ॥ ८९ ॥ दिश्युत्तरस्यां मेरोस्तु मानसस्यैव मूर्द्धनि ॥ तुल्या माहेन्द्रपुर्य्या तु सोमस्यापि विभावरी
॥९०॥ मानसोत्तरपृष्ठे तु लोकपालाश्चतुर्दिशम् ॥ स्थिता धर्म्मव्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च ॥ ९१ ॥ लोकपालोपरिष्टात्तु सर्व्वतो दक्षिणायने ॥
काष्ठागतस्य सूर्य्यस्य गतिर्या तां निबोधत ॥ ९२ ॥ दक्षिणे प्रक्रमे सूर्य्यः क्षिप्तेषुरिव सर्पति ॥ ज्योतिषाञ्चक्रमादाय सततं परिगच्छति ॥ ९३ ॥
मध्यगश्चामरावत्यां यदा भवति भास्करः ॥ वैवस्वते संयमने उदयस्तत्र उच्यते ॥ ९४ ॥ सुखायामर्द्धरात्रश्च मध्यगः स्याद्रविर्यदा ॥ सुखायाम
थ वारुण्यामुत्तिष्ठन् स तु दृश्यते ॥ ९५ ॥ विभायामर्द्धरात्रं स्यान्माहेन्द्र्यामस्तमेति च ॥ तदा दक्षिणपूर्व्वेषामपराह्णो विधीयते ॥ ९६ ॥
दक्षिणापरदेश्यानां पूर्व्वाह्णः परिकीर्त्त्यते ॥ तेषामपररात्रश्च ये जना उत्तरापथे ॥ ९७ ॥ देशा उत्तरपूर्व्वा ये पूर्व्वरात्रन्तु तान् प्रति ॥ एवमेवोत्तरे
ष्वर्को भवनेषु विराजते ॥ ९८ ॥ सुखायामथ वारुण्यां मध्याह्ने चार्य्यमा यदा ॥ विभावर्य्यां सोमपुर्य्यामुत्तिष्ठति विभावसुः ॥ ९९ ॥ रात्र्यर्द्धं
चामरावत्यामस्तमेति यमस्य च ॥ सोमपुर्य्यां विभायान्तु मध्याह्ने स्याद्दिवाकरः ॥ १०० ॥ महेन्द्रस्यामरावत्यामुत्तिष्ठति यदा रविः ॥ अर्द्धरात्रं
संयमने वारुण्यामस्तमेति च ॥ १०१ ॥ स शीघ्रमेति पर्य्येति भास्करोऽलातचक्रवत् ॥ भ्रमन् वै भ्रममाणानि ऋक्षाणि गगने रविः ॥ १०२ ॥ एव
ञ्चतुर्षु द्वीपेषु दक्षिणान्तेन सर्पति॥उदयास्तमनेनासावुत्तिष्ठति पुनः पुनः॥१०३॥पूर्व्वाह्णे चापराह्णे तु द्वौ द्वौ देवालयौ तु सः ॥ तपत्येकन्तु मध्याह्ने तै
रेव तु सरश्मिभिः ॥ १०४ ॥ उदितो वर्द्धमानाभिरामध्याह्नं तपन् रविः ॥ अतः परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं स गच्छति ॥१०५॥ उदयास्तमयाभ्यां
हि स्मृते पूर्व्वापरे दिशौ ॥ यावत्पुरस्तात्तपति तावत् पृष्ठे तु पार्श्वयोः ॥ १०६ ॥ यत्रोद्यन् दृश्यते सूर्य्यस्तेषां स उदयः स्मृतः ॥ यत्र प्रणाश
मायाति तेषामस्तः स उच्यते॥१०७॥ सर्व्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकस्तु दक्षिणे ॥ विदूरभावादर्कस्य भूमेर्लेखावृतस्य च ॥ ह्रियन्ते रश्मयो यस्मात्तेन
रात्रौ न दृश्यते ॥ १०८ ॥ ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं भास्करस्य च ॥ उच्छ्रायस्य प्रमाणेन ज्ञेयमस्तमनोदयम् ॥ १०९ ॥ शुक्लच्छायोऽग्निरापश्च

कृष्णच्छाया च मेदिनी ॥ विदूरभावादर्कस्य उद्यतस्य विरश्मिता ॥ रक्ताभावो विरश्मित्वाद्रक्तत्वाच्चाप्यनुष्णता ॥ ११० ॥ लेखयाव
स्थितः सूर्य्यो यत्र यत्र तु दृश्यते ॥ ऊर्द्ध्वं गतः सहस्रन्तु योजनानां स दृश्यते ॥ १११ ॥ प्रभा हि सौरी पादेन अस्तङ्गच्छति भास्करे ॥
अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद्दूरात् प्रकाशते॥११२॥ उदितस्तु पुनः सूर्य्यः अस्तमाग्नेयमाविशत्॥संयुक्तो वह्निना सूर्य्यस्ततः स तपते दिवा॥११३॥
प्राकाश्यञ्च तथौष्ण्यञ्च सूर्य्याग्नेयी च तेजसी ॥ परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ॥ ११४ ॥ उत्तरे चैव भूम्यर्द्धे तथा तस्मिंश्च दक्षिणे ॥
उत्तिष्ठति तथा सूर्य्ये रात्रिराविशते त्वपः ॥ तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ॥ ११५ ॥ अस्तं याति पुनः सूर्य्ये दिनं वै प्रविशत्यपः ॥
तस्माच्छुक्ला भवन्त्यापो नक्तमह्नः प्रवेशनात् ॥ ११६ ॥ एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्द्धे दक्षिणोत्तरे ॥ उदयास्तमनेऽर्कस्य अहोरात्रं विशत्यपः ॥ ११७॥
दिनं सूर्य्यप्रकाशाख्यं तामसी रात्रिरुच्यते ॥ तस्माद्व्यवस्थिता रात्रिः सूर्य्यापेक्षमहः स्मृतम्॥ ११८ ॥ एवं पुष्करमध्येन यदा सर्पति भास्करः ॥
त्रिंशांशकन्तु मेदिन्या मुहूर्त्तेनैव गच्छति ॥ ११९ ॥ योजनाग्रान्मुहूर्त्तस्य इमां सङ्ख्यां निबोधत ॥ पूर्णं शतसहस्राणामेकत्रिंशत्तु सा स्मृता ॥१२०॥
पञ्चाशत्तु तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ॥ मौहूर्त्तिकी गतिर्ह्येषा सूर्य्यस्य तु विधीयते ॥ १२१ ॥ एतेन गतियोगेन यदा काष्ठान्तु दक्षिणाम् ॥
पर्य्यागच्छेत्तदादित्यो माघे काष्ठान्तमेव हि॥१२२॥ सर्पते दक्षिणायान्तु काष्ठायां तन्निबोधत ॥ नवकोट्यः प्रसङ्ख्याता योजनैः परिमण्डलम्॥१२३॥
तथा शतसहस्राणि चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ अहोरात्रात्पतङ्गस्य गतिरेषा विधीयते ॥ १२४ ॥ दक्षिणाद्विनिवृत्तोऽसौ विषुवस्थो यदा रविः ॥ क्षीरोद
स्य समुद्रस्य उत्तरान्ता दिशश्चरन् ॥ १२५ ॥ मण्डलं विषुवच्चापि योजनैस्तन्निबोधत ॥ तिस्रः कोट्यस्तु विस्तीर्णा विषुवच्चापि सा स्मृता ॥१२६॥
तथा शतसहस्राणामशीत्येकाधिका पुनः॥श्रवणे चोत्तरां काष्ठां चित्रभानुर्य्यदा भवेत् ॥ शाकद्वीपस्य षष्ठस्य उत्तरान्ता दिशश्चरन्॥१२७॥उत्तरायाञ्च
काष्ठायां प्रमाणं मण्डलस्य च ॥ योजनाग्रात्प्रसङ्ख्याता कोटिरेका तु सा द्विजैः ॥१२८॥ अशीतिर्नियुतानीह योजनानां तथैव च ॥ अष्टपञ्चाशतञ्चैव
योजनान्यधिकानि तु॥१२९॥नागवीथ्युत्तरावीथी अजवीथी च दक्षिणा॥मूलञ्चैव तथाषाढे ह्यजवीथ्युदयास्त्रयः ॥ अभिजित्पूर्वतः स्वातिर्नागवीथ्युदया
स्त्रयः ॥ १३० ॥ काष्ठयोरन्तरं यच्च तद्वक्ष्ये योजनैः पुनः ॥ एतच्छतसहस्राणामेकत्रिंशोत्तरं शतम् ॥ १३१ ॥ त्रयस्त्रिंशाधिकाश्चान्ये त्रयस्त्रिंशच्च
योजनैः ॥ काष्ठयोरन्तरं ह्येतद्योजनाग्रात् प्रतिष्ठितम् ॥ १३२ ॥ काष्ठयोर्लेखयोश्चैव अन्तरे दक्षिणोत्तरे ॥ ते तु वक्ष्यामि सङ्ख्याय योजनैस्तन्निबो
धत ॥१३३॥ एकैकमन्तरन्तस्या नियुतान्येकसप्ततिः ॥ सहस्राण्यतिरिक्ताश्च ततोऽन्या पञ्चसप्ततिः॥१३४॥ लेखयोःकाष्ठयोश्चैव बाह्याभ्यन्तरयोः स्मृ

तम् ॥ अभ्यन्तरन्तु पर्य्यैति मण्डलान्युत्तरायणे ॥ १३५ ॥ बाह्यतो दक्षिणे चैव सततन्तु यथाक्रमम् ॥ मण्डलानां शतं पूर्णमशीत्यधिकमुत्तरम् ॥ १३६ ॥ चरते दक्षिणे चापि तावदेव विभावसुः ॥ प्रमाणं मण्डलस्याथ योजनाग्रान्निबोधत ॥ १३७ ॥ एकविंशद्योजनानां सहस्राणि समासतः ॥ शते द्वे पुनरप्यन्ये योजनानां प्रकीर्त्तिते ॥ १३८ ॥ एकविंशतिभिश्चैव योजनैरधिकैर्हि ते ॥ एतत्प्रमाणमाख्यातं योजनैर्मण्डलं हि तत् ॥ १३९ ॥ विष्कम्भो मण्डलस्यैष तिर्य्यक् स तु विधीयते ॥ प्रत्यहञ्चरते तानि सूर्य्यो वै मण्डलक्रमम् ॥१४०॥ कुलालचक्रपर्य्यन्तो यथा शीघ्रं निवर्त्तते ॥ दक्षिणे प्रक्रमे सूर्य्यस्तथा शीघ्रं निवर्त्तते ॥१४१॥ तस्मात् प्रकृष्टां भूमिञ्च कालेनाल्पेन गच्छति ॥ सूर्य्यो द्वादशभिः शीघ्रं मुहूर्त्तैर्दक्षिणोत्तरे ॥ १४२ ॥ त्रयोदशार्द्धमृक्षाणामह्नानुचरते रविः ॥ मुहूर्त्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ॥ १४३ ॥ कुलालचक्रमध्यस्तु यथा मन्दं प्रसर्पति ॥ तथोदगयने सूर्य्यः सर्पते मन्दविक्रमः ॥ १४४ ॥ त्रयोदशार्द्धमर्द्धेन ऋक्षाणां चरते रविः ॥ तस्माद्दीर्घेण कालेन भूमिमल्पां निगच्छति ॥ १४५ ॥ अष्टादशमुहूर्त्तैस्तु उत्तरायणपश्चिमम् ॥ अहर्भवति तच्चापि चरते मन्दविक्रमः ॥ १४६ ॥ त्रयोदशार्द्धमर्धेन ऋक्षाणाञ्चरते रविः ॥ मुहूर्त्तैस्तावदृक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन् ॥ १४७ ॥ ततो मन्दतरं ताभ्याञ्चक्रं भ्रमति वै यथा ॥ मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो ध्रुवो भ्रमति वै यथा ॥ १४८ ॥ त्रिंशन्मुहूर्त्तानेवाहुरहोरात्रं ध्रुवो भ्रमन् ॥ उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मण्डलानि सः ॥१४९॥ कुलालचक्रनाभिस्तु यथा तत्रैव वर्त्तते ॥ ध्रुवस्तथा हि विज्ञेयस्तत्रैव परिवर्त्तते ॥ १५० ॥ उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमतो मण्डलानि तु ॥ दिवा नक्तञ्च सूर्य्यस्य मन्दा शीघ्रा च वै गतिः ॥ १५१ ॥ उत्तरे प्रक्रमे त्विन्दोर्दिवा मन्दा गतिः स्मृता ॥ तथैव च पुनर्नक्तं शीघ्रा सूर्य्यस्य वै गतिः ॥ १५२ ॥ दक्षिणे प्रक्रमे चैव दिवा शीघ्रं विधीयते ॥ गतिः सूर्य्यस्य नक्तं वै मन्दा चापि तथा स्मृता ॥ १५३ ॥ एवं गतिविशेषेण विभजन् रात्र्यहानि तु ॥ तथा विचरते मार्गे समेन विषमेण च ॥१५४॥ लोकालोके स्थिता ये ते लोकपालाश्चदुर्दिशम् ॥ अगस्त्यश्चरते तेषामुपरिष्टाज्जवेन तु ॥ भजन्नसावहोरात्रमेवङ्गतिविशेषणैः ॥१५५॥ दक्षिणे नागवीथ्यायां लोकालोकस्य चोत्तरम् ॥ लोकसन्तारको ह्येष वैश्वानरपथाद्बहिः ॥१५६॥ पृष्ठे यावत् प्रभा सौरी पुरस्तात् सम्प्रकाशते ॥ पार्श्वयोः पृष्ठतस्तावल्लोकालोकस्य सर्व्वतः ॥ १५७ ॥ योजनानां सहस्राणि दशोर्द्धन्तूच्छ्रितो गिरिः ॥ प्रकाशश्चाप्रकाशश्च सर्व्वतः परिमण्डलः ॥१५८॥ नक्षत्रचन्द्रसूर्य्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह ॥ अभ्यन्तरं प्रकाशन्ते लोकालोकस्य वै गिरेः ॥ १५९ ॥ एतावानेव लोकस्तु निरालोकस्त्वतः परम् ॥ लोकालोक एकधा तु निरालोकस्त्वनेकधा ॥१६०॥ लोकालोकन्तु सन्धत्ते यस्मात् सूर्य्यः परिग्रहम् ॥ तस्मात्सन्ध्येति तामाहुरुषाव्युष्टयोर्यदन्तरम् ॥ उषा रात्रिः स्मृता विप्रैर्व्युष्टिश्चापि त्वहः स्मृतम् ॥

॥१६१॥ सूर्य्यं हि ग्रसमानानां सन्ध्याकाले हि रक्षसाम्॥प्रजापतिनियोगेन शापस्तेषां दुरात्मनाम् ॥ अक्षयत्वञ्च देहस्य प्रापिता मरणं तथा॥१६२॥
तिस्रः कोट्यस्तु विख्याता मन्देहा नाम राक्षसाः ॥ प्रार्थयन्ति सहस्रांशुमुदयन्ति दिने दिने ॥ तापयन्तो दुरात्मानः सूर्य्यमिच्छन्ति खादितुम्॥१६३॥
अथ सूर्य्यस्य तेषाञ्च युद्धमासीत् सुदारुणम् ॥ ततो ब्रह्मा च देवाश्च ब्राह्मणाश्चैव सत्तमाः ॥ सन्ध्येति समुपासन्तः क्षेपयन्ति महाजलम् ॥ १६४ ॥ ओ
ङ्कारब्रह्मसंयुक्तं गायत्र्या चाभिमन्त्रितम् ॥ तेन दह्यन्ति ते दैत्या वज्रभूतेन वारिणा ॥ १६५ ॥ ततः पुनर्महातेजा महाद्युतिपराक्रमः ॥ योजनानां स
हस्राणि ऊर्द्धमुत्तिष्ठते शतम् ॥१६६॥ ततः प्रयाति भगवान् ब्राह्मणैः परिवारितः ॥ वालखिल्यैश्च मुनिभिः कृतार्थैः समरीचिभिः ॥१६७॥ काष्ठा नि
मेषा दश पञ्च चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत् कलान्तम् ॥ त्रिंशत् कलाश्चैव भवेन्मुहूर्त्तस्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते ॥ १६८ ॥ ह्रासवृद्धी त्वह
र्भागैर्दिवसानां यथाक्रमम् ॥ सन्ध्या मुहूर्तमानन्तु ह्रासे वृद्धौ समा स्मृता ॥ १६९ ॥ लेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्त्तागते तु वै ॥ प्रातस्तनः स्मृतः का
लो भागस्त्वह्नः स पञ्चमः ॥ १७० ॥ तस्मात् प्रातस्तनात्कालात् त्रिमुहूर्त्तस्तु सङ्गवः ॥ मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्तस्तु तस्मात्कालाच्च सङ्गवात् ॥ १७१ ॥
तस्मान्मध्यन्दिनात् कालादपराह्ण इति स्मृतः ॥ त्रय एव मुहूर्त्तास्तु तस्मात् कालाच्च मध्यमात् ॥ १७२ ॥ अपराह्णे व्यतीपाते कालः सायाह्न
उच्यते ॥ दशपञ्चमुहूर्त्ताद्दै मुहूर्त्तास्त्रय एव च ॥१७३॥ दशपञ्चमुहूर्त्तं वै अहर्विषुवति स्मृतम् ॥ दशपञ्चमुहूर्त्ताद्दै रात्रिन्दिवमिति स्मृतम् ॥१७४॥
वर्द्धते ह्रसते चैव अयने दक्षिणोत्तरे ॥ अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिस्तु ग्रसते त्वहः ॥ १७५ ॥ शरद्वसन्तयोर्मध्ये विषुवन्तद्विभाव्यते ॥ अहोरात्रं
कलाश्चैव सप्त सोमः समश्नुते ॥ १७६ ॥ तथा पञ्चदशाहानि पक्ष इत्यभिधीयते ॥ द्वौ पक्षौ च भवेन्मासो द्वौ मासावन्तरावृतुः ॥
ऋतुत्रयमयनं स्याद्द्वेयने वर्षमुच्यते ॥ १७७ ॥ निमेषादिकृतः कालः काष्ठाया दश पञ्च च ॥ कलायास्त्रिंशतः काष्ठा मात्राशीतिद्वया
त्मिका ॥ १७८ ॥ शतञ्चैकोनकास्त्रिंशन्मात्रात्रिंशत् षडुत्तरा ॥ द्विषष्टिभाक् त्रयोविंशन्मात्रायाञ्च चला भवेत् ॥ १७९ ॥ चत्वारिंशत्
सहस्राणि शतान्यष्टौ च विद्युतिः ॥ सप्ततिश्चापि तत्रैव नवतिं विद्धि निश्चये ॥ १८० ॥ चत्वार्य्येव शतान्याहुर्विद्युतौ वैधसंयुगे ॥ चरांशो ह्येष
विज्ञेयो नालिका चात्र कारणम् ॥१८१॥ संवत्सरादयः पञ्च चतुर्मानविकल्पिताः ॥ निश्चयः सर्व्वकालस्य युग इत्यभिधीयते ॥ १८२ ॥ संवत्सरस्तु
प्रथमो द्वितीयः परिवत्सरः ॥ इद्वत्सरस्तृतीयस्तु चतुर्थश्चानुवत्सरः ॥ पञ्चमो वत्सरस्तेषां कालस्तु परिसंज्ञितः ॥ १८३ ॥ विंशशतं भवेत्पूर्णं पर्व्वणां तु
रवेर्युगम् ॥ एतान्यष्टादशास्त्रिंशदुदयो भास्करस्य च ॥१८४॥ ऋतवस्त्रिंशतः सौरा अयनानि दशैव तु ॥ पञ्चत्रिंशत् शतं चापि षष्टिर्मासाश्च भास्करः॥

॥ १८५ ॥ त्रिंशदेव त्वहोरात्रं स तु मासश्च भास्करः ॥ एकषष्टिस्त्वहोरात्रा दनुरेको विभाव्यते ॥१८६॥ अह्नान्तु त्र्यधिकाशीतिः शतं चाप्यधिकं भवे
त् ॥ मानन्तच्चित्रभानोस्तु विज्ञेयं भुवनस्य तु ॥ १८७ ॥ सौरसौम्यं तु विज्ञेयं नक्षत्रं सावनं तथा ॥ नामान्येतानि चत्वारि यैः पुराणं विभाव्यते ॥१८८॥
स्वेतस्योत्तरतश्चैव शृङ्गवान्नाम पर्वतः ॥ त्रीणि तस्य तु शृङ्गाणि स्पृशन्तीव नभस्तलम् ॥ १८९ ॥ तैश्चापि शृङ्गवान्नाम सर्व्वतश्चैव
विश्रुतः ॥ एकमार्गश्च विस्तारो विष्कम्भश्चापि कीर्त्तितः ॥ १९० ॥ तस्य वै सर्व्वतः शृङ्गं मध्यमन्तद्धिरण्मयम् ॥ दक्षिणं राजतश्चैव शृङ्गं तु
स्फटिकप्रभम् ॥ १९१ ॥ सर्व्वरत्नमयं चैकं शृङ्गमुत्तरमुत्तमम् ॥ एवं कूटैस्त्रिभिः शैलैः शृङ्गवानिति विश्रुतः ॥ १९२ ॥ यत्तद्विषुवतं शृङ्गन्तद
र्कः प्रतिपद्यते ॥ शरद्वसन्तयोर्मध्ये मध्यमां गतिमास्थितः ॥ अहस्तुल्यामथो रात्रिं करोति तिमिरापहः ॥ १९३ ॥ हरिताश्च हया दिव्यास्ते नियु
क्ता महारथे ॥ अनुलिप्ता इवाभान्ति पद्मरक्तैर्गभस्तिभिः १९४ ॥ मेषान्ते च तुलान्ते च भास्करोदयतः स्मृताः ॥ मुहूर्त्ता दश पञ्चैव अहोरात्रिश्च
तावती ॥ १९५ ॥ कृत्तिकानां यदा सूर्य्यः प्रथमांशगतो भवेत् ॥ विशाखानां तथा ज्ञेयश्चतुर्थांशे निशाकरः ॥ १९६ ॥ विशाखायां यदा सूर्य्य
श्चरतेंऽशं तृतीयकम् ॥ तदा चन्द्रं विजानीयात् कृत्तिकाशिरसि स्थितम् ॥ १९७ ॥ विषुवन्तं तदा विद्यादेवमाहुर्महर्षयः ॥ सूर्य्येण विषुवं विद्यात्
कालं सोमेन लक्षयेत् ॥ १९८ ॥ समा रात्रिरहश्चैव यदा तद्विषुवद्भवेत् ॥ तदा दानानि देयानि पितृभ्यो विषुवत्यपि ॥ ब्राह्मणेभ्यो विशेषेण मुख
मेतत्तु दैवतम् ॥१९९॥ ऊनरात्राधिमासौ च कलाकाष्ठामुहूर्त्तकाः ॥ पौर्णमासी तथा ज्ञेया अमावास्या तथैव च ॥ सिनीवाली कुहूश्चैव राका चानुमति
स्तथा ॥२००॥ तपस्तपस्यौ मधुमाधवौ च शुक्रः शुचिश्चायनमुत्तरं स्यात् ॥ नभो नभस्योऽथ इषुः सहोर्जः सहःसहस्याविति दक्षिणं स्यात् ॥२०१॥
संवत्सरास्ततो ज्ञेयाः पञ्चाब्दा ब्रह्मणः सुताः ॥ तस्मात्तु ऋतवो ज्ञेया ऋतवो ह्यन्तराः स्मृताः ॥ २०२ ॥ तस्मादनुमुखा ज्ञेया अमावास्यास्य पर्व्व
णः ॥ तस्मात्तु विषुवं ज्ञेयं पितृदैवहितं सदा ॥२०३॥ एवं ज्ञात्वा न मुह्येत दैवे पित्र्ये च मानवः ॥ तस्मात् स्मृतं प्रजानां वै विषुवत्सर्व्वगं सदा ॥२०४॥
आलोकान्तः स्मृतो लोको लोकान्तो लोक उच्यते ॥ लोकपालाः स्थितास्तत्र लोकालोकस्य मध्यतः ॥ २०५ ॥ चत्वारस्ते महात्मानस्ति
ष्ठन्त्याभूतसम्प्लवात् ॥ सुधामा चैव वैराजः कर्दमः शङ्खपस्तथा ॥ हिरण्यलोमा पर्ज्जन्यः केतुमान् जातनिश्चयः ॥ २०६ ॥ निर्द्वन्द्वा निरभीमाना नि
स्तन्द्रा निष्परिग्रहाः ॥ लोकपालाः स्थिता ह्येते लोकालोके चतुर्दिशम् ॥ २०७ ॥ उत्तरं यदगस्त्यस्य अजवीथ्याश्च दक्षिणम् ॥ पितृयाणः स वै
पन्था वैश्वानरपथाद्बहिः ॥ २०८ ॥ तत्रासते प्रजावन्तो मुनयो ह्यग्निहोत्रिणः ॥ लोकस्य सन्तानकराः पितृयाणे पथि स्थिताः ॥ २०९ ॥ भूतारम्भ

कृतं कर्म्म आशिषा ऋत्विगुच्यते ॥ प्रारभन्ते लोककामास्तेषां पन्थाः स दक्षिणः ॥ २१० ॥ चलितन्ते पुनर्द्धर्म्मं स्थापयन्ति युगे युगे ॥ सन्त
त्या तपसा चैव मर्य्यादाभिः श्रुतेन च ॥ २११ ॥ जायमानास्तु पूर्वे वै पश्चिमानां गृहेषु च ॥ पश्चिमाश्चैव जायन्ते पूर्वेषां निधनेष्वपि ॥ एव
मावर्त्तमानास्ते तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवात् ॥ २१२ ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीनां गृहमेधिनाम् ॥ सवितुर्दक्षिणं मार्गं श्रिता ह्याचन्द्रतारकम् ॥ क्रियाव
तां प्रसङ्ख्येया ये श्मशानानि भेजिरे ॥ २१३ ॥ लोकसंव्यवहारेण भूतारम्भकृतेन च ॥ इच्छाद्वेषप्रवृत्त्या च मैथुनोपगमेन च ॥ २१४ ॥ तथा
कायकृतेनेह सेवनाद्विषयस्य च ॥ एतैस्तैः कारणैः सिद्धाः श्मशानानि हि भेजिरे ॥ प्रजैषिणस्ते मुनयो द्वापरेष्विह जज्ञिरे ॥ २१५ ॥ नागवी
थ्युत्तरे यच्च सप्तर्षिभ्यश्च दक्षिणम् ॥ उत्तरः सवितुः पन्था देवयानस्तु स स्मृतः ॥ २१६ ॥ यत्र ते वासिनः सिद्धा विमला ब्रह्मचारिणः ॥
सततन्ते जुगुप्सन्ते तस्मान्मृत्युर्ज्जितस्तु तैः ॥२१७॥ अष्टाशीतिसहस्राणि तेषामप्यूर्द्धरेतसाम्॥उदक्पन्थानमर्य्यम्णः श्रिता ह्याभूतसम्प्लवात्॥२१८॥
इत्येतैः कारणैः शुद्धैस्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे ॥ आभूतसम्प्लवस्थानाममृतत्वं विभाव्यते ॥ २१९ ॥ त्रैलोक्यस्थितिकालोऽयमपुनर्मार्गगामिनः ॥ ब्रह्मह
त्याश्वमेधाभ्यां पुण्यपापकृतोऽपरम् ॥ आभूतसम्प्लवान्ते तु क्षीयन्ते ह्यूर्द्धरेतसः ॥२२०॥ ऊर्द्धोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्रास्ति वै स्मृतम् ॥ एतद्विष्णुप
दं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भास्वरम् ॥ २२१ ॥ तत्र गत्वा न शोचन्ति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ धर्म्मध्रुवाद्यास्तिष्ठन्ति यत्र ते लोकसाधकाः ॥ २२२ ॥
॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते ज्योतिष्प्रचारो नाम पञ्चाशोऽध्यायः ॥५० ॥ छ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ स्वायम्भुवे निसर्गे तु व्याख्यातान्युत्तराणि
तु ॥ भविष्याणि च सर्व्वाणि तेषां वक्ष्याम्यनुक्रमम् ॥१॥ एतच्छ्रुत्वा तु मुनयः पप्रच्छुर्लोमहर्षणम् ॥ सूर्य्याचन्द्रमसोश्चारं ग्रहाणाञ्चैव सर्व्वशः ॥२॥
॥ ॥ ऋषय ऊचुः॥भ्रमन्ते कथमेतानि ज्योतींषि दिवि मण्डलम्॥ तिर्य्यग्व्यूहेन सर्व्वाणि तथैवासङ्करेण च ॥ कश्च भ्रामयते तानि भ्रमन्ति यदि वा
स्वयम् ॥ ३ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम ॥ भूतसम्मोहनन्त्वेतच्छ्रोतुमिच्छा प्रवर्त्तते ॥ ४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ भूतसम्मोहनं ह्येतद्
ब्रुवतो मे निबोधत ॥ प्रत्यक्षमपि दृश्यं यत्तत् सम्मोहयते प्रजाः ॥ ५ ॥ योऽसौ चतुर्द्दिशं पुच्छे शिशुमारे व्यवस्थितः ॥ उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभू
तो ध्रुवो दिवि ॥ ६ ॥ स हि भ्रमन् भ्रामयते चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह ॥ भ्रमन्तमनुगच्छन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत् ॥ ७ ॥ ध्रुवस्य मनसा चासौ सर्पते
भगणः स्वयम् ॥ सूर्य्याचन्द्रमसौ तारा नक्षत्राणि ग्रहैः सह ॥ ८ ॥ वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धानि तानि वै ॥ तेषां योगश्च भेदाश्च कालचारस्तथैव
च ॥ ९ ॥ अस्तोदयौ तथोत्पाता अयने दक्षिणोत्तरे ॥ विषुवद्ग्रहवर्णाश्च ध्रुवात्सर्व्वं प्रवर्त्तते ॥ १० ॥ वर्षा घर्मो हिमं रात्रिः सन्ध्या चैव दिनं तथा ॥

शुभाशुभं प्रजानाञ्च ध्रुवात्सर्व्वं प्रवर्त्तते ॥ ११ ॥ ध्रुवेणाधिकृतांश्चैव सूर्य्योऽपावृत्त्य तिष्ठति ॥ तदेष दीप्तकिरणः स कालाग्निर्दिवाकरः ॥ १२ ॥ परिव
र्त्तक्रमाद्विप्रा भाभिरालोकयन् दिशः ॥ सूर्य्यः किरणजालेन वायुयुक्तेन सर्व्वशः ॥ जगतो जलमादत्ते कृत्स्नस्य द्विजसत्तमाः ॥ १३ ॥ आदित्यपी
तं सूर्य्याग्नेः सोमं संक्रमते जलम् ॥ नाडीभिर्वायुयुक्ताभिर्लोकाधानं प्रवर्त्तते ॥ १४ ॥ यत्सोमात् स्रवते सूर्य्यस्तदभ्रेष्ववतिष्ठते ॥ मेघा वायुनिघा
तेन विसृजन्ति जलम्भुवि ॥ १५ ॥ एवमुत्क्षिप्यते चैव पतते च पुनर्ज्जलम् ॥ नानाप्रकारमुदकन्तदेव परिवर्त्तते ॥ १६ ॥ सन्धारणार्थं भूतानां मायै
षा विश्वनिर्म्मिता ॥ अनया मायया व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १७ ॥ विश्वेशो लोककृद्देवः सहस्रांशुः प्रजापतिः ॥ धाता कृत्स्नस्य लोकस्य प्रभु
र्विष्णुर्दिवाकरः ॥ १८ ॥ सर्व्वलौकिकमम्भो वै यत्सोमान्नभसः स्रुतम् ॥ सोमाधारं जगत्सर्व्वमेतत्तथ्यं प्रकीर्त्तितम् ॥ १९ ॥ सूर्य्यादुष्णं निस्रवते
सोमाच्छीतं प्रवर्त्तते ॥ शीतोष्णवीर्य्यौ द्वावेतौ युक्तौ धारयतो जगत् ॥ २० ॥ सोमाधारा नदी गङ्गा पवित्रा विमलोदका ॥ सोमपुत्रपुरोगाश्च महा
नद्यो द्विजोत्तमाः ॥२१॥ सर्व्वभूतशरीरेषु आपो ह्यनुगताश्च याः ॥ तेषु सन्दह्यमानेषु जङ्गमस्थावरेषु च ॥ धूमभूतास्तु ता आपो निष्क्रामन्तीह स
र्व्वशः ॥२२॥ तेन चाभ्राणि जायन्ते स्थानमत्राम्भसां स्मृतम् ॥ अर्कस्तेजो हि भूतेभ्यो ह्यादत्ते रश्मिभिर्जलम् ॥२३॥ समुद्राद्वायुसंयोगाद्वहन्त्यापो
गभस्तयः॥ यतस्त्वृतुवशात् काले परिवर्त्तो दिवाकरः ॥ यच्छत्यपो हि मेघेभ्यः शुक्लाः शुक्लगभस्तिभिः॥२४॥अभ्रस्था प्रपतन्त्यापो वायुना समुदी
रिताः ॥ सर्व्वभूतहितार्थाय वायुभिश्च समन्ततः॥२५॥ततो वर्षति षण्मासान् सर्व्वभूतविवृद्धये॥वायव्यं स्तनितञ्चैव वैद्युतञ्चाग्निसंभवम्॥२६॥मेहनाच्च
मिहेर्द्धातोर्मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च॥न भ्रश्यन्ति यतस्त्वापस्तदभ्रं कवयो विदुः॥२७॥मेघानां पुनरुत्पत्तिस्त्रिविधा योनिरुच्यते॥आग्नेया ब्रह्मजाश्चैव पक्षजाश्च
पृथग्विधाः ॥ त्रिधा घनाः समाख्यातास्तेषां वक्ष्यामि सम्भवम्॥२८॥आग्नेयास्त्वर्णजाः प्रोक्तास्तेषां तस्मात् प्रवर्त्तनम्॥शीतदुर्द्दिनवाता ये स्वगुणास्ते
व्यवस्थिताः॥२९॥महिषाश्च वराहाश्च मत्तमातङ्गगामिनः॥भूत्वा धरणिमभ्येत्य विचरन्ति रमन्ति च॥३०॥जीमूता नाम ते मेघा एतेभ्यो जीवसम्भवाः॥
विद्युद्गुणविहीनाश्च जलधाराविलम्बिनः ॥ ३१ ॥ मूका घना महाकाया प्रवाहस्य वशानुगाः ॥ क्रोशमात्राच्च वर्षन्ति क्रोशार्द्धादपि वा पुनः ॥ ३२ ॥
पर्व्वताग्रनितम्बेषु वर्षन्ति च रमन्ति च ॥ बलाकागर्भदाश्चैव बलाकागर्भधारिणः ॥ ३३ ॥ ब्रह्मजा नाम ते मेघा ब्रह्मनिःश्वाससम्भवाः ॥ ते हि विद्यु
द्गुणोपेताः स्तनयन्ति स्वनप्रियाः ॥ ३४ ॥ तेषां शब्दप्रणादेन भूमिः स्वाङ्कुरुहोद्गमा ॥ राज्ञी राज्ञाभिषिक्तेव पुनर्य्यौवनमश्नुते ॥ तेष्वियं प्रीतिमा
सक्ता भूतानां जीवितोद्भवा ॥ ३५ ॥ जीमूता नाम ते मेघा तेभ्यो जीवस्य सम्भवः ॥ द्वितीयं प्रवहं वायुं मेघास्ते तु समाश्रिताः ॥ ३६ ॥

एते योजनमात्राश्च सार्द्धार्द्धान्निष्कृतादपि ॥ वृष्टिसर्गस्तथा तेषां धारासाराः प्रकीर्त्तिताः ॥ पुष्करावर्त्तका नाम ये मेघाः पक्षसम्भवाः ॥ ३७ ॥
शक्रेण पक्षाश्छिन्ना ये पर्व्वतानां महौजसाम् ॥ कामगानां प्रवृद्धानां भूतानां शिवमिच्छताम् ॥ ३८ ॥ पुष्करा नाम ते मेघा बृहन्तस्तोयम
त्सराः ॥ पुष्करावर्त्तकास्तेन कारणेनेह शब्दिताः ॥ ३९ ॥ नानारूपधराश्चैव महाघोरतराश्च ते ॥ कल्पान्तवृष्टेः स्रष्टारः संवर्त्ताग्नेर्नियामकाः
॥ ४० ॥ वर्षन्त्येते युगान्तेषु तृतीयास्ते प्रकीर्त्तिताः ॥ अनेकरूपसंस्थानाः पूरयन्तो महीतलम् ॥ वायुं परं वहन्तः स्युराश्रिताः कल्पसाधकाः ॥४१॥
यान्यस्याण्डकपालस्य प्राकृतस्याभवंस्तदा ॥ तस्माद्ब्रह्मा समुत्पन्नश्चतुर्व्वक्त्रः स्वयम्भुवः ॥ तान्येवाण्डकपालस्य सर्व्वे मेघाः प्रकीर्त्तिताः ॥४२॥
तेषामाप्यायनं धूमः सर्व्वेषामविशेषतः ॥ तेषां श्रेष्ठस्तु पर्ज्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः ॥ ४३ ॥ गजानां पर्व्वतानाञ्च मेघानां भोगिभिः सह ॥
कुलमेकं पृथग्भूतं योनिरेका जलं स्मृतम् ॥ ४४ ॥ पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसम्भवाः ॥ तुषारवृष्टिं वर्षन्ति सर्व्वसस्यविवृद्धये ॥ ४५ ॥
श्रेष्ठः परिवहो नाम तेषां वायुरपाश्रयः ॥ योऽसौ बिभर्त्ति भगवान् गङ्गामाकाशगोचराम् ॥ दिव्याममृतजलां पुण्यां त्रिधा स्वर्गपथि स्थिताम्॥ ४६ ॥
तस्या विष्पन्दजन्तोयं दिग्गजाः पृथुभिः करैः ॥ शीकरं सम्प्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृतः ॥ ४७ ॥ दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः ॥
उदग् हिमवतः शैलादुत्तरस्य च दक्षिणे ॥ पुण्ड्रं नाम समाख्यातं नगरं तत्र वै स्मृतम् ॥ ४८ ॥ तस्मिन्निपतितं वर्षं यत्तुषारसमुद्भवम् ॥ ततस्त
दावहो वायुर्हिमशैलात् समुद्वहन् ॥ आनयत्यात्मयोगेन सिञ्चमानो महागिरिम् ॥ ४९ ॥ हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेषं ततः परम् ॥ इहाभ्येति
ततः पश्चादपरान्तविवृद्धये ॥ ५० ॥ मेघावाप्यायतश्चैव सर्व्वमेतत् प्रकीर्त्तितम् ॥ सूर्य्य एव तु वृष्टीनां स्रष्टा समुपदिश्यते ॥ ५१ ॥ ध्रुवेणा
वेष्टितः सूर्य्यस्ताभ्यां वृष्टिः प्रवर्त्तते ॥ ध्रुवेणावेष्टितो वायुर्वृष्टिं संहरते पुनः ॥ ५२ ॥ ग्रहान्निःसृत्य सूर्य्यात्तु कृत्स्ने नक्षत्रमण्डले ॥ चारस्या
न्ते विशत्यर्कं ध्रुवेण परिवेष्टितम् ॥ ५३ ॥ अतः सूर्य्यरथस्याथ सन्निवेशं निबोधत ॥ संस्थितेनैकचक्रेण पञ्चारेण त्रिनाभिना ॥ ५४ ॥ हिर
ण्मयेन भगवान् पर्वणा तु महौजसा ॥ नष्टवर्त्मान्धकारेण षट्प्रकारैकनेमिना ॥ चक्रेण भास्वता सूर्य्यः स्यन्दनेन प्रसर्प्पति ॥ ५५ ॥ दश
योजनसाहस्रो विस्तारायामतः स्मृतः ॥ द्विगुणोऽस्य रथोपस्थादीषादण्डप्रमाणतः ॥ ५६ ॥ स तस्य ब्रह्मणा सृष्टो रथो ह्यर्थवशेन तु ॥ असङ्गः
काञ्चनो दिव्यो युक्तः परमगैर्हयैः ॥ ५७ ॥ छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तु यतः शुक्रस्ततः स्थितः ॥ वरुणस्यन्दनस्येह लक्षणैः सदृशस्तु सः ॥ ते
नाऽसौ सर्पति व्योम्नि भास्वता तु दिवाकरः ॥ ५८ ॥ अथेमानि तु सूर्य्यस्य प्रत्यङ्गानि रथस्य तु ॥ संवत्सरस्यावयवैः कल्पितानि यथाक

मम् ॥५९॥ अहस्तु नाभिः सूर्य्यस्य एकचक्रः स वै स्मृतः ॥ आराः पञ्चर्त्तवस्तस्य नेमिः षट्टतवः स्मृताः ॥६०॥ रथनीडः स्मृतो ह्यब्दस्त्वयने कूबरा वुभौ ॥ मुहूर्ता बन्धुरास्तस्य शम्या तस्य कलाः स्मृताः ॥ ६१ ॥ तस्य काष्ठाः स्मृता घोणा ईषादण्डः क्षणास्तु वै ॥ निमेषाश्चानुकर्षोऽस्य ईषा चास्य लवाः स्मृताः ॥ ६२ ॥ रात्रिर्वरूथो धर्म्मोऽस्य ध्वज ऊर्द्ध्वसमुच्छ्रितः ॥ युगाक्षकोटी ते तस्य अर्थकामावुभौ स्मृतौ ॥ ६३ ॥ सप्ताश्वरूपा श्छन्दांसि वहन्ते वामतो धुराम् ॥ गायत्री चैव त्रिष्टुप् च अनुष्टुब् जगती तथा ॥ ६४ ॥ पङ्क्तिश्च बृहती चैव उष्णिक् चैव तु सप्तमम् ॥ अक्षे चक्रं निबद्धन्तु ध्रुवे त्वक्षः समर्पितः ॥ ६५ ॥ सहचक्रो भ्रमत्यक्षः सहाक्षो भ्रमति ध्रुवः ॥ अक्षः सहैव चक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरितः ॥ ६६ ॥ एवमर्थवशात्तस्य सन्निवेशो रथस्य तु ॥ तथा संयोगभागेन संसिद्धो भास्वरो रथः ॥६७॥ तेनाऽसौ तरणिर्देवस्तरसा सर्पते दिवि ॥ युगाक्षकोटिस्तस्य द्वौ रश्मी द्वौ स्यन्दनस्य हि ॥ ६८॥ ध्रुवेण भ्रमतो रश्मी विचक्रयुगयोस्तु वै ॥ भ्रमतो मण्डलानि स्युः खेचरस्य रथस्य तु ॥ ६९ ॥ युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु ॥ ध्रुवेण संगृहीते वै द्विचक्रश्चेतरज्जुवत् ॥ ७० ॥ भ्रमन्तमनुगच्छेतां ध्रुवं रश्मी तु तावुभौ ॥ युगाक्षकोटी ते तस्य वातोर्मी स्यन्दनस्य तु ॥ ७१ ॥ कीलासक्तो यथा रज्जुर्भ्रमते सर्व्वतो दिशम् ॥ ह्रसतस्तस्य रश्मी तौ मण्डलेषूत्तरायणे ॥ ७२ ॥ वर्द्धेते दक्षिणे चैव भ्रमतो मण्डलानि तु ॥ ध्रुवेण संगृहीतौ तु रश्मी वै नयतो रविम् ॥ ७३ ॥ आकृष्येते यदा तौ वै ध्रुवेण समधिष्ठितौ ॥ तदा सोऽभ्यन्तरं सूर्य्यो भ्रमते मण्डलानि तु ॥ ७४ ॥ अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरुभयोश्चरन् ॥ ध्रुवेण मुच्यमानाभ्यां रश्मिभ्यां पुनरेव तु ॥ ७५ ॥ तथैव बाह्यतः सूर्य्यो भ्रमते मण्डलानि तु ॥ उद्वेष्टयन् स वेगेन मण्डलानि तु गच्छति ॥ ७६ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते ज्योतिष्प्रचारो नामैकपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५१ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ स रथोऽधिष्ठितो देवैरादित्यैर्ऋषिभिस्तथा ॥ गन्धर्व्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः ॥ १ ॥ एते वसन्ति वै सूर्य्ये द्वौ द्वौ मासौ क्रमेण तु ॥ धातार्य्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः ॥ २ ॥ उरगो वासुकिश्चैव सङ्कीर्णारश्च तावुभौ ॥ तुम्बुरुर्नारदश्चैव गन्धर्व्वौ गायतां वरौ ॥ ३ ॥ क्रतुस्थलप्सराश्चैव तथा वै पुञ्जिकस्थली ॥ ग्रामणी रथकृच्छ्रश्च तपोर्य्यश्चैव तावुभौ ॥ ४ ॥ रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च यातुधानावुदाहृतौ ॥ मधुमाधवयोरेष गणो वसति भास्करे ॥ ५ ॥ वासन्तौ ग्रैष्मिकौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च ह ॥ ऋषिरत्रिर्वसिष्ठश्च तक्षको रम्भ एव च ॥ ६ ॥ मेनका सहजन्या च गन्धर्व्वौ च हहा हुहूः ॥ रथस्वनश्च ग्रामण्यो रथचित्रश्च तावुभौ ॥ ७ ॥ पौरुषेयो वधश्चैव यातुधानावुदाहृतौ ॥ एते वसन्ति वै सूर्य्ये मासयोः शुचिशुक्रयोः ॥ ८ ॥ ततः सूर्य्ये पुनस्त्वन्या निवसन्तीह देवताः ॥ इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च आङ्गिरा भृगुरेव च ॥ ९ ॥

एलापर्णस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च तावुभौ ॥ विश्वावसूग्रसेनौ च प्रातश्चैवारुणश्च ह ॥ १० ॥ प्रम्लोचेति च विख्याता निम्लोचेति च ते उभे ॥ यातुधानस्तथा सर्पो व्याघ्रः श्वेतश्च तावुभौ ॥ नभोनभस्ययोरेष गणो वसति भास्करे ॥ ११ ॥ शरद्वतो पुरः शुभ्रा वसन्ति शुचि देवताः ॥ पर्ज्जन्यश्चाथ पूषा च भरद्वाजः सगौतमः ॥ १२ ॥ विश्वावसुश्च गन्धर्व्वास्तथैव सुरभिश्च यः ॥ विश्वाची च घृताची च उभे ते शुभलक्षणे ॥ १३ ॥ नाग ऐरावतश्चैव विश्रुतश्च धनञ्जयः ॥ सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ ॥ १४ ॥ आपो वातश्च तावेतौ यातुधानावुभौ स्मृतौ ॥ वसन्त्येते तु वै सूर्य्ये मासयोश्च इषोर्जयोः ॥ १५ ॥ हैमन्तिकौ तु द्वौ मासौ वसन्ति तु दिवाकरे ॥ अंशो भगश्च द्वावेतौ कश्यपश्च ऋतुश्च ह ॥ १६ ॥ भुजङ्गश्च महापद्मः सर्पः कर्कोटकस्तथा ॥ चित्रसेनश्च गन्धर्व्व ऊर्णायुश्चैव तावुभौ ॥ १७ ॥ उर्व्वशी विप्रचित्तिश्च तथैवाप्सरसौ शुभे ॥ तार्क्ष्यश्चारिष्टनेमिश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ ॥ १८ ॥ विद्युतस्फूर्जश्च तावुग्रौ यातुधानावुदाहृतौ ॥ सहे चैव सहस्ये च वसन्त्येते दिवाकरे ॥ १९ ॥ ततः शैशिरयोश्चापि मासयोर्निवसन्ति वै ॥ त्वष्टा विष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैव च ॥ २० ॥ काद्रवेयौ तथा नागौ कम्बलाश्वतरावुभौ ॥ गन्धर्व्वौ धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्च्चास्तथैव च ॥ २१ ॥ तिलोत्तमाप्सराश्चैव देवी रम्भा मनोरमा ॥ ऋतजित्सत्यजिच्चैव ग्रामण्यौ लोकविश्रुतौ ॥ २२ ॥ ब्रह्मोपेतस्तथा दक्षो यज्ञोपेतश्च स स्मृतः ॥ एते देवा वसन्त्यर्के द्वौ मासौ तु क्रमेण तु ॥ २३ ॥ स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तकाः ॥ सूर्य्यमाप्याययन्त्येते तेजसा तेज उत्तमम् ॥ २४ ॥ ग्रथितैस्तैर्व्वचोभिस्तु स्तुवन्ति मुनयो रविम् ॥ गन्धर्व्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यैरुपासते ॥ २५ ॥ ग्रामणीयक्षभूतास्तु कुर्व्वते भीमसंग्रहम् ॥ सर्पा वहन्ति सूर्य्यञ्च यातुधानानुयान्ति च ॥ वालखिल्या नयन्त्यस्तं परिचार्य्योदयाद्रविम् ॥ २६ ॥ एतेषामेव देवानां यथावीर्य्यं यथातपः ॥ यथायोगं यथासत्यं यथाधर्म्मं यथाबलम् ॥ २७ ॥ यथा तपत्यसौ सूर्य्यस्तेषां सिद्धस्तु तेजसा ॥ इत्येते वै वसन्तीह द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे ॥ २८ ॥ ऋषयो देवगन्धर्व्वाः पन्नगाप्सरसाङ्गणाः ॥ ग्रामण्यश्च तथा यक्षा यातुधानाश्च भूरिशः ॥ २९ ॥ एते तपन्ति वर्षन्ति भान्ति वान्ति सृजन्ति च ॥ भूतानामशुभङ्कर्म्म व्यपोहन्तीह कीर्तिताः ॥ ३० ॥ मानवानां शुभं ह्येते हरन्ति दुरितात्मनाम् ॥ दुरितं हि प्रचाराणां व्यपोहन्ति क्वचित् क्वचित् ॥ ३१ ॥ विमानेऽवस्थिता दिव्ये कामगा वातरंहसः ॥ एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति दिवसानुगाः ॥ ३२ ॥ वर्षन्तश्च तपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै प्रजाः ॥ गोपायन्ति तु भूतानि सर्व्वाणीहामनुक्षयात् ॥ ३३ ॥ स्थानाभिमानिनामेतत् स्थानं मन्वन्तरेषु वै ॥ अतीतानागतानां वै वर्त्तन्ते साम्प्रतन्तु ये ॥ ३४ ॥ एवं वसन्ति वै सूर्य्ये सप्तकास्ते चतुर्द्दश ॥ चतु

देशसु सर्गेषु गणा मन्वन्तरेषु च ॥ ३५ ॥ ग्रीष्मे हिमे च वर्षासु मुञ्चमाना घर्मं हिमञ्च वर्षञ्च दिनं निशाञ्च ॥ कालेन गच्छत्यृतुवशात् परिवृत्तर
श्मिर्देवान् पितॄंश्च मनुजांश्च तर्पयन् वै ॥ ३६ ॥ प्रीणाति देवानमृतेन सूर्य्यः सोमं सुषुम्नेन विवर्द्धयित्वा ॥ शुक्ले तु पूर्णं दिवसक्रमेण तं कृष्णपक्षे
विबुधाः पिबन्ति ॥ ३७ ॥ पीतन्तु सोमं द्विकलावशिष्टं कृष्णक्षये रश्मिभिस्तं क्षरन्तम् ॥ सुधामृतं तत्पितरः पिबन्ति देवाश्च सौम्याश्च तथैव कव्य
म् ॥ ३८ ॥ सूर्येण गोभिस्तु समुद्धृताभिरद्भिः पुनश्चैव समुद्धृताभिः ॥ वृष्ट्यातिवृद्धाभिरथौषधीभिर्मर्त्याः क्षुधन्त्वन्नपानैर्जयन्ति ॥ ३९ ॥ अमृतेन
तृप्तिस्त्वर्द्धमासं सुराणां मासार्द्धतृप्तिः स्वधया पितॄणाम् ॥ अन्नेन शश्वत्तु दधाति मर्त्यान् सूर्य्यः स्वयं तच्च बिभर्ति गोभिः ॥ ४० ॥ अयं हरिस्तैर्हरि
भिस्तुरङ्गैरयन् हि चापो हरतीति रश्मिभिः ॥ विसर्गकाले विसृजंश्च ताः पुनर्बिभर्ति शश्वत् सविता चराचरम् ॥ ४१ ॥ हरिर्हरिद्भिर्ह्रियते तुरङ्ग
मैः पिबत्यथापो हरिभिः सहस्रधा ॥ ततः प्रमुञ्चत्यपि तास्त्वसौ हरिः स मुह्यमानो हरिभिस्तुरङ्गमैः ॥ ४२ ॥ इत्येष एकचक्रेण सूर्यस्तूर्णं रथेन तु ॥
भद्रैस्तैरक्षतैरश्वैः सर्पतेऽसौ दिवि क्षये ॥ ४३ ॥ अहोरात्राद्रथेनाऽसौ एकचक्रेण तु भ्रमन् ॥ सप्तद्वीपसमुद्रान्तं सप्तभिः सप्तभिर्हयैः ॥ ४४ ॥
छन्दोभिरश्वरूपैस्तैर्यतश्चक्रन्ततः स्थितैः ॥ कामरूपैः सकृद्युक्तैरमितैस्तैर्मनोजवैः ॥ ४५ ॥ हरितैरव्ययैः पिङ्गैरीश्वरैर्ब्रह्मवादिभिः ॥
अशीतिमण्डलशतं भ्रमन्त्यब्देन ते हयाः ॥४६॥ बाह्यमभ्यन्तरञ्चैव मण्डलं दिवसक्रमात् ॥ कल्पादौ सम्प्रयुक्तास्ते वहन्त्याभूतसम्प्लवात् ॥ आवृता
वालखिल्यैस्ते भ्रमन्ते रात्र्यहानि तु ॥ ४७ ॥ ग्रथितैर्व्वचोभिरग्र्यैः स्तूयमानो महर्षिभिः ॥ सेव्यते गीतनृत्यैश्च गन्धर्व्वैरप्सरोगणैः ॥ पतङ्गः पत
गैरश्वैर्भ्रममाणो दिवस्पतिः ॥ ४८ ॥ वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि तथा शशी ॥ ह्रासवृद्धी तथैवास्य रश्मीनां सूर्य्यवत् स्मृते ॥ ४९ ॥
त्रिचक्रोभयपार्श्वस्थो विज्ञेयः शशिनो रथः ॥ अपाङ्गर्भसमुत्पन्नो रथः साश्वःससारथिः ॥ शतारैश्च त्रिभिश्चक्रैर्युक्तः शुक्लैर्हयोत्तमैः ॥ ५० ॥ दश
भिस्तु कृशैर्दिव्यैरसङ्गैस्तैर्मनोजवैः ॥ सकृद्युक्ते रथे तस्मिन् वहन्ते चायुगक्षयात् ॥ ५१ ॥ संगृहीते रथे तस्मिन् श्वेतश्चक्षुःश्रवास्तु वै ॥ अश्वा
स्तमेकवर्णास्ते वहन्ते शङ्खवर्चसम् ॥ ५२ ॥ ययुश्च त्रिमनाश्चैव वृषो राजी बलो हयः ॥ अश्वो वामस्तुरण्यश्च हंसो व्योमी मृगस्तथा ॥ ५३ ॥ इत्येते
नामभिः सर्व्वे दश चन्द्रमसो हयाः ॥ एते चन्द्रमसन्देवं वहन्ति दिवसक्षयात् ॥ ५४ ॥ देवैः परिवृतः सौम्यः पितृभिश्चैव गच्छति ॥ सोमस्य शुक्लप
क्षादौ भास्करे पुरतः स्थिते ॥ आपूर्य्यते पुरस्यान्तः सततं दिवसक्रमात् ॥ ५५ ॥ देवैः पीतं क्षये सोममाप्याययति नित्यदा ॥ पीतं पञ्चदशाहन्तु
रश्मिनैकेन भास्करः ॥५६॥ आपूरयन् सुषुम्नेन भागं भागमहःक्रमात् ॥ सुषुम्नाप्याय्यमानस्य शुक्ले वर्द्धन्ति वै कलाः ॥५७॥ तस्माद्ध्रसन्ति वै कृष्णे शुक्ले

आप्याययन्ति च ॥ इत्येवं सूर्य्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनुः ॥ ५८ ॥ पौर्णमास्यां स दृश्येत शुक्लः सम्पूर्णमण्डलः ॥ एवमाप्यायितः सोमः शुक्लपक्षे
दिनक्रमात् ॥ ५९ ॥ ततो द्वितीयाप्रभृति बहुलस्य चतुर्दशी ॥ अपां सारमयस्येन्दो रसमात्रात्मकस्य च ॥ पिबन्त्यम्बुमयं देवा मधु सौम्यं सुधाम
यम् ॥ ६० ॥ सम्भृतश्चार्द्धमासेन अमृतं सूर्य्यतेजसा ॥ भक्षार्थममृतं सौम्यं पौर्णमास्यामुपासते ॥ ६१ ॥ एकरात्रं सुरैः सर्व्वैः पितृभिश्च महर्षिभिः ॥
सोमस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य च ॥ ६२ ॥ प्रक्षीयते परस्यान्तः पीयमानाः कलाः क्रमात् ॥ क्षीयन्ते तस्मात् कृष्णे याः शुक्ले ह्याप्यायय
न्ति ताः ॥६३॥ एवं दिनक्रमातीते विबुधास्तु निशाकरम् ॥ पीत्वाऽर्द्धमासङ्गच्छन्ति अमावास्यां सुरोत्तमाः ॥ पितरश्चोपतिष्ठन्ति अमावास्यां निशाक
रम् ॥६४॥ ततः पञ्चदशे भागे किञ्चिच्छिष्टे कलात्मके ॥ अपराह्ने पितृगणैर्जघन्यः पर्य्युपास्यते ॥६५॥ पिबन्ति द्विकलाकालं शिष्टा तस्य तु या कला ॥
निःसृतं तदमावास्याङ्गभस्तिभ्यः स्वधामृतम् ॥ तां स्वधां मासतृप्त्यै तु पीत्वा गच्छन्ति तेऽमृतम् ॥६६॥ सौम्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्तास्तथैव च ॥
कव्याश्चैव तु ये प्रोक्ताः पितरः सर्व्व एव ते ॥ ६७ ॥ संवत्सरास्तु वै कव्याः पञ्चाब्दा ये द्विजैः स्मृताः ॥ सौम्यास्तु ऋतवो ज्ञेया मासा बर्हिषदः
स्मृताः ॥ अग्निष्वात्तार्तवश्चैव पितृसर्गा हि वै द्विजाः ॥ ६८ ॥ पितृभिः पीयमानस्य पञ्चदश्यां कला तु वै ॥ यावन्न क्षीयते तस्य भागः पञ्चदश
स्तु सः ॥ ६९ ॥ अमावस्यान्तदा तस्य अन्तमापूर्य्यते परम् ॥ वृद्धिक्षयौ वै पक्षादौ षोडश्यां शशिनः स्मृतौ ॥ ७० ॥ एवं सूर्य्यनिमित्तैषा क्षयवृद्धि
र्निशाकरे ॥ ताराग्रहाणां वक्ष्यामि स्वर्भानोश्च रथं पुनः ॥ ७१ ॥ तोयतेजोमयः शुभ्रः सोमपुत्रस्य वै रथः ॥ युक्तो हयैः पिशङ्गैस्तु अष्टाभिर्वातरंहसैः
॥ ७२ ॥ सवरूथः सानुकर्षः सूतो दिव्यो रथे महान् ॥ सोपासङ्गपताकस्तु सध्वजो मेघसन्निभः ॥७३॥ भार्गवस्य रथः श्रीमांस्तेजसा सूर्य्यसन्निभः
पृथिवीसम्भवैर्युक्तो नानावर्णैर्हयोत्तमैः ॥ ७४ ॥ श्वेतः पिशङ्गः सारङ्गो नीलः पीतो विलोहितः ॥ कृष्णश्च हरितश्चैव पृषतः पृष्णिरेव च ॥ दशभि
स्तैर्महाभागैरकृशैर्वातवेगितैः ॥ ७५ ॥ अष्टाश्वः काञ्चनः श्रीमान् सोमस्यापि रथोऽभवत् ॥ असङ्गैर्लोहितैरश्वैः सर्व्वगैरग्निसम्भवैः ॥ सर्पतेऽसौ कुमा
रो वै ऋजुवक्रानुचक्रगः ॥ ७६ ॥ ततस्त्वाङ्गिरसो विद्वान् देवाचार्य्यो बृहस्पतिः ॥ शोणैरश्वैः काञ्चनेन स्यन्दनेन प्रसर्पति ॥ ७७ ॥ युक्तस्तु वाजि
भिर्दिव्यैरष्टाभिर्वातसम्मितैः ॥ नक्षत्रेऽब्दान्निवसति सर्वगस्तेन गच्छति ॥ ७८ ॥ ततः शनैश्चरोऽप्यश्वैः शबलैर्व्योमसम्भवैः ॥ कार्ष्णायसं समारुह्य स्य ॥ ७९ ॥
न्दनं याति वै शनैः ॥ ७९ ॥ स्वर्भानोस्तु तथैवाश्वाः कृष्णा ह्यष्टौ मनोजवाः ॥ रथन्तमोमयन्तस्य सकृद्युक्ता वहन्त्युत ॥ ८० ॥ आदित्यान्निःसृतो
राहुः सोमं गच्छति पर्व्वसु ॥ आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्व्वसु ॥ ८१ ॥ अथ केतुरथस्याश्वा अष्टाष्टौ वातरंहसः ॥ पलालधूमसङ्काशाः शबला

रासभारुणाः॥८२॥एते वाहा ग्रहाणां वै मया प्रोक्ता रथैः सह ॥ सर्व्वे ध्रुवनिबद्धास्ते प्रबद्धा वातरश्मिभिः॥८३॥एते वै भ्राम्यमाणास्तु यथायोगं भ्रमन्ति वै ॥ वायव्याभिरदृश्याभिः प्रबद्धा वातरश्मिभिः॥८४॥परिभ्रमन्ति तद्बद्धाश्चन्द्रसूर्य्यग्रहा दिवि ॥ भ्रमन्तमनुगच्छन्ति ध्रुवन्ते ज्योतिषां गणाः ॥ ८५ ॥ यथा नद्युदके नौस्तु सलिलेन सहोह्यते ॥ तथा देवालया ह्येते उह्यन्ते वातरश्मिभिः ॥ तस्मात्सर्व्वेण दृश्यन्ते व्योम्नि देवगणास्तु ते ॥ ८६ ॥ यावन्त्यश्चैव तारास्तु तावन्तो वातरश्मयः ॥ सर्व्वा ध्रुवनिबद्धास्ता भ्रमन्त्यो भ्रामयन्ति तम्॥८७॥तैलपीडाकरं चक्रं भ्रमद्भ्रामयते यथा ॥ तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वातबद्धानि सर्व्वशः ॥ ८८ ॥ अलातचक्रवद्यान्ति वातचक्रेरितानि तु ॥ तस्माज्ज्योतींषि वहते प्रवहस्तेन स स्मृतः ॥ ८९ ॥ एवं ध्रुवनिबद्धोऽसौ सर्पते ज्योतिषां गणः ॥ सैष तारामयो ज्ञेयः शिशुमारो ध्रुवो दिवि ॥ यदह्ना कुरुते पापं दृष्ट्वा तं निशि मुच्यते ॥ ९० ॥ यावन्त्यश्चैव तारास्ताः शिशुमाराश्रिता दिवि ॥ तावन्त्येव तु वर्षाणि जीवन्त्यभ्यधिकानि तु ॥ ९१ ॥ शाश्वतः शिशुमारोऽसौ विज्ञेयः प्रविभागशः ॥ उत्तानपादस्तस्याथ विज्ञेयो ह्युत्तरो हनुः ॥ ९२ ॥ यज्ञोऽधरस्तु विज्ञेयो धर्म्मो मूर्द्धानमाश्रितः ॥ हृदि नारायणः साध्यः अश्विनौ पूर्वपादयोः ॥ ९३ ॥ वरुणश्चार्य्यमा चैव पश्चिमे तस्य सक्थिनि ॥ शिश्नः संवत्सरस्तस्य मित्रोऽपाने समाश्रितः ॥ ९४ ॥ पुच्छेऽग्निश्च महेन्द्रश्च मरीचिः कश्यपो ध्रुवः ॥ तारकाः शिशुमारश्च नास्तमेति चतुष्टयम् ॥ ९५ ॥ नक्षत्रचन्द्रसूर्य्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह ॥ उन्मुखाभिमुखाः सर्वे चक्रीभूताश्रिता दिवि ॥ ९६ ॥ ध्रुवेणाधिष्ठिताः सर्वे ध्रुवमेव प्रदक्षिणम् ॥ प्रयान्तीह वरं श्रेष्ठमेधीभूतं ध्रुवन्दिवि ॥ ९७ ॥ ध्रुवाग्निकश्यपानान्तु वरश्चासौ ध्रुवः स्मृतः ॥ एक एव भ्रमत्येष मेरुपर्वतमूर्द्धनि ॥ ९८ ॥ ज्योतिषाञ्चक्रमेतद्धि सदा कर्षत्यवाङ्मुखः ॥ मेरुमालोकयत्येष प्रयातीह प्रदक्षिणम् ॥ ९९ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते ध्रुवचर्य्या नाम द्विपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ ॥ छ ॥ ॥ शांशपायन उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वा तु मुनयः पुनस्ते संशयान्विताः ॥ पप्रच्छुरुत्तरं भूयस्तदा ते लोमहर्षणम् ॥ १ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ यदेतदुक्तम्भवता गृहाण्येतानि विश्रुतम् ॥ कथं देवगृहाणि स्युः कथं ज्योतींषि वर्णय ॥ २ ॥ एतत्सर्वं समाचक्ष्व ज्योतिषाञ्चैव निश्चयम् ॥ श्रुत्वा तु वचनं तेषां तदा सूतः समाहितः ॥ ३ ॥ अस्मिन्नर्थे महाप्राज्ञैर्यदुक्तं ज्ञानबुद्धिभिः ॥ तद्वोऽहं सम्प्रवक्ष्यामि सूर्य्याचन्द्रमसोर्भवम् ॥ यथा देवगृहाणीह सूर्य्याचन्द्रमसोर्गृहम् ॥ ४ ॥ अतःपरं त्रिविधाग्नेर्वक्ष्येऽहन्तु समुद्भवम् ॥ दिव्यस्य भौतिकस्याग्नेरथाग्नेः पार्थिवस्य च ॥ ५ ॥ व्युष्टायान्तु रजन्यां वै ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ अव्याकृतमिदन्त्वासीन्नैशेन तमसावृतम् ॥ ६ ॥ चतुर्भूतावशिष्टेऽस्मिन् पार्थिवः सोऽग्निरुच्यते ॥ यश्चादौ तपते सूर्य्ये

शुचिरग्निस्तु स स्मृतः ॥ ७ ॥ वैद्युताख्यस्तु विज्ञेयस्तेषां वक्ष्येऽथ लक्षणम् ॥ वैद्युतो जाठरः सौरो ह्यपाङ्गर्भास्त्रयोऽग्नयः ॥ तस्मादपः पिबन् सूर्य्यो
गोभिर्दीप्यत्यसौ दिवि ॥ ८ ॥ वैद्युतेन समाविष्टो वार्क्षो नाद्भिः प्रशाम्यति ॥ मानवानाञ्च कुक्षिस्थो नाद्भिः शाम्यति पावकः ॥ ९ ॥ अर्चिष्मान्
परमः सोऽग्निः प्रभवो जाठरः स्मृतः ॥ यश्चायं मण्डली शुक्लो निरूष्मा संप्रकाशते ॥ १० ॥ प्रभा हि सौरी पादेन ह्यस्तं याति दिवाकरे ॥ अग्निमाविशते रात्रौ तस्माद्दूरात् प्रकाशते ॥ ११ ॥ उद्यन्तञ्च पुनः सूर्य्यमौष्ण्यमाग्नेयमाविशत् ॥ पादेन पार्थिवस्याग्नेस्तस्मादग्निस्तपत्यसौ ॥ १२ ॥
प्रकाशश्च तथौष्ण्यञ्च सौराग्नेये तु तेजसी ॥ परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम् ॥ १३ ॥ उत्तरे चैव भूम्यर्द्धे तस्मादस्मिंश्च दक्षिणे ॥ उत्तिष्ठति
पुनः सूर्य्ये रात्रिराविशते त्वपः ॥ तस्मात्ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात् ॥ १४ ॥ अस्तं याति पुनः सूर्य्ये अहर्वै प्रविशत्यपः ॥ तस्मान्नक्तं
पुनः शुक्ला आपो विशन्ति भास्करे ॥ १५ ॥ एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्द्धे दक्षिणोत्तरे ॥ उदयास्तमये नित्यमहोरात्रं विशत्यपः ॥ १६ ॥
यश्चासौ तपते सूर्य्यं पिबन्नम्भो गभस्तिभिः ॥ पार्थिवो हि विमिश्रोऽसौ दिव्यः शुचिरिति स्मृतः ॥ १७ ॥ सहस्रपादः सोऽग्निस्तु वृत्तः कुम्भनिभः शुचिः ॥
आदत्ते तत्तु रश्मीनां सहस्रेण समन्ततः ॥ १८ ॥ नादेयीश्चैव सामुद्रीः कौप्याश्चैव तथान्वनीः ॥ स्थावरा जङ्गमाश्चैव यश्च सूर्य्यो हिरण्मयः ॥
तस्य रश्मिसहस्रन्तु वर्षशीतोष्णनिःस्रवम् ॥ १९ ॥ तासाञ्चतुःशता नाड्यो वर्षन्ति चित्रमूर्त्तयः ॥ चन्दनाश्चैव वन्द्याश्च ऋतना नूतनास्तथा ॥
अमृता नामतः सर्व्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः ॥ २० ॥ हिमवाहाश्च ताभ्योऽन्या रश्मयस्त्रिशताः पुनः ॥ दृश्या मेध्याश्च वाह्याश्च ह्लादिन्यो
हिमसर्जनाः ॥ २१ ॥ चन्द्रास्ता नामतः सर्व्वाः पीताभास्तु गभस्तयः ॥ शुक्लाश्च ककुभश्चैव गावो विश्वभृतस्तथा ॥ २२ ॥ शुक्लास्ता नामतः
सर्व्वास्त्रिशता घर्म्मसर्जनाः ॥ समं बिभर्ति ताभिस्तु मनुष्यपितृदेवताः ॥ २३ ॥ मनुष्यानौषधेनेह स्वधया च पितॄनपि ॥ अमृतेन सुरान् सर्व्वां
स्त्रींस्त्रिभिस्तर्पयत्यसौ ॥ २४ ॥ वसन्ते चैव ग्रीष्मे च स तैः सुतपते त्रिभिः ॥ वर्षास्वथो शरदि च चतुर्भिः सम्प्रकर्षति ॥ २५ ॥ हेमन्ते शिशिरे
चैव हिमं स सृजते त्रिभिः ॥ ओषधीषु बलन्धत्ते स्वधया च पितॄनपि ॥ सूर्य्योऽमरत्वममृतन्त्रयन्त्रिषु नियच्छति ॥ २६ ॥ एवं रश्मिसहस्रन्तत् सौरं
लोकार्थसाधकम् ॥ भिद्यते ऋतुमासाद्य जलशीतोष्णनिःस्रवम् ॥ २७ ॥ इत्येतन्मण्डलं शुक्लं भास्वरं सूर्य्यसंज्ञितम् ॥ नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठायोनिरेव
च ॥ ऋक्षचन्द्रग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्य्यसम्भवाः ॥ २८ ॥ नक्षत्राधिपतिः सोमो ग्रहराजो दिवाकरः ॥ शेषाः पञ्चग्रहा ज्ञेया ईश्वराः का
मरूपिणः ॥ २९ ॥ पठ्यते चाग्निरादित्य औदकश्चन्द्रमाः स्मृतः ॥ शेषाणां प्रकृतिं सम्यग्वर्ण्यमानां निबोधत ॥ ३० ॥ सुरसेनापतिः

स्कन्दः पठ्यतेऽङ्गारको ग्रहः ॥ नारायणं बुधं प्राहुर्देवं ज्ञानविदो विदुः ॥ ३१ ॥ रुद्रो वैवस्वतः साक्षाद्धर्म्मो लोके प्रभुः स्वयम् ॥
महाग्रहो द्विजश्रेष्ठो मन्दगामी शनैश्चरः ॥ ३२ ॥ देवासुरगुरू द्वौ तु भानुमन्तौ महाग्रहौ ॥ प्रजापतिसुतावेतावुभौ शुक्रबृहस्पती ॥ दैत्यो
महेन्द्रश्च तयोराधिपत्ये विनिर्मितौ ॥ ३३ ॥ आदित्यमूलमखिलं त्रिलोकं नात्र संशयः ॥ भवत्यस्य जगत्कृत्स्नं सदेवासुरमानुषम् ॥ ३४ ॥
रुद्रेन्द्रोपेन्द्रचन्द्राणां विप्रेन्द्रास्त्रिदिवौकसाम् ॥ द्युतिर्द्युतिमतां कृत्स्ना यत्तेजः सार्वलौकिकम् ॥ ३५ ॥ सर्व्वात्मा सर्वलोकेशो मूलं परमदैवतम् ॥
ततः संजायते सर्व्वं तत्र चैव प्रलीयते ॥ ३६ ॥ भावाभावौ हि लोकानामादित्यान्निःसृतौ पुरा ॥ जगज्ज्ञेयो ग्रहो विप्रा दीप्तिमान् सुग्रहो रविः ॥ ३७ ॥
यत्र गच्छन्ति निधनं जायन्ते च पुनः पुनः ॥ क्षणा मुहूर्त्ता दिवसा निशाः पक्षाश्च कृत्स्नशः ॥ मासा संवत्सराश्चैव ऋतवोऽब्दयुगानि च ॥ ३८ ॥
तदादित्यादृते तेषां कालसंख्या न विद्यते ॥ कालादृते न नियमो न दीक्षा नाह्निकक्रमः ॥ ३९ ॥ ऋतूनामविभागश्च पुष्पमूलफलं कुतः ॥
कुतः सस्याभिनिष्पत्तिर्गुणौषधिगणादि वा ॥ ४० ॥ अभावो व्यवहाराणां देवानां दिवि चेह च ॥ जगत्प्रतापनमृते भास्करं वारितस्करम् ॥ ४१ ॥
स एव कालश्चाग्निश्च द्वादशात्मा प्रजापतिः ॥ तपत्येष द्विजश्रेष्ठास्त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ४२ ॥ स एष तेजसां राशिः समस्तः सार्वलौकिकः ॥
उत्तमं मार्गमास्थाय वायोर्भाभिरिदञ्जगत् ॥ पार्श्वमूर्द्धमधश्चैव तापयत्येष सर्वशः ॥ ४३ ॥ रवेरश्मिसहस्रं यत् प्राङ्मया समुदाहृतम् ॥ तेषां श्रे
ष्ठाः पुनः सप्त रश्मयो ग्रहयोनयः ॥ ४४ ॥ सुषुम्नो हरिकेशश्च विश्वकर्म्मा तथैव च ॥ विश्वश्रवाः पुनश्चान्यः सम्पद्वसुरतः परम् ॥ अर्व्वावसुः
पुनश्चान्यो मया चात्र प्रकीर्त्तितः ॥ ४५ ॥ सुषुम्नः सूर्य्यरश्मिस्तु क्षीणं शशिनमेधयन् ॥ तिर्य्यगूर्द्ध्वप्रभावोऽसौ सुषुम्नः परिकीर्त्यते ॥ ४६ ॥
हरिकेशः पुरस्त्वाद्या ऋक्षयोनिः प्रकीर्त्यते ॥ दक्षिणे विश्वकर्म्मा तु रश्मिर्वर्द्धयते बुधम् ॥ ४७ ॥ विश्वश्रवास्तु यः पश्चात् शुक्रयोनिः स्मृता
बुधैः ॥ सम्पद्वसुश्च यो रश्मिः सा योनिर्लोहितस्य च ॥ ४८ ॥ षष्ठस्त्वर्व्वावसू रश्मिर्योनिस्तु स बृहस्पतेः ॥ शनैश्चरं पुनश्चापि रश्मिराप्यायते स्व
राट् ॥ ४९ ॥ एवं सूर्य्यप्रभावेण ग्रहनक्षत्रतारकाः ॥ वर्द्धन्ते विदिताः सर्व्वा विश्वञ्चेदं पुनर्जगत् ॥ न क्षीयन्ते पुनस्तानि तस्मान्नक्षत्रता स्मृता ॥ ५० ॥
क्षेत्राण्येतानि वै पूर्व्वमापतन्ति गभस्तिभिः ॥ तेषां क्षेत्राण्यथादत्ते सूर्य्यो नक्षत्रताङ्गतः ॥ ५१ ॥ तीर्णानां सुकृतेनेह सुकृतान्ते ग्रहाश्रयात् ॥ तारा
णां तारका ह्येताः शुक्लत्वाच्चैव तारकाः ॥ ५२ ॥ दिव्यानां पार्थिवानाञ्च नैशानाञ्चैव सर्वशः ॥ आदानान्नित्यमादित्यस्तमसां तेजसां महान् ॥ ५३ ॥
सुवति स्पन्दनार्थे च धातुरेष विभाव्यते ॥ सवनात्तेजसोऽपाञ्च तेनासौ सविता मतः ॥ ५४ ॥ बह्वर्थश्चन्द्र इत्येष ह्लादने धातुरिष्यते ॥ शुक्ल

त्वे चामृतत्वे च शीतत्वे च विभाव्यते ॥ ५५ ॥ सूर्य्याचन्द्रमसोर्दिव्ये मण्डले भास्वरे खगे ॥ ज्वलत्तेजोमये शुक्ले वृत्तकुम्भनिभे शुभे ॥
॥ ५६ ॥ घनतोयात्मकं तत्र मण्डलं शशिनः स्मृतम् ॥ घनतेजोमयं शुक्लं मण्डलं भास्करस्य तु ॥ ५७ ॥ विशन्ति सर्वदेवास्तु
स्थानान्येतानि सर्वशः ॥ मन्वन्तरेषु सर्वेषु ऋक्षसूर्य्यग्रहाश्रयाः ॥५८॥ तानि देवगृहाण्येव तदाख्यास्ते भवन्ति च ॥ सौरं सूर्य्यो विशस्थानं सौम्यं
सोमस्तथैव च ॥ ५९ ॥ शौक्रं शुक्रो विशस्थानं षोडशार्चिः प्रतापवान् ॥ बृहद्बृहस्पतिश्चैव लोहितश्चैव लौहितः ॥ शनैश्चरं तथा स्थानं देव
श्चैव शनैश्चरः ॥ ६० ॥ आदित्यरश्मिसंयोगात् संप्रकाशात्मिकाः स्मृताः ॥ नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः ॥ ६१ ॥ त्रिगुणस्तस्य
विस्तारो मण्डलस्य प्रमाणतः ॥ द्विगुणः सूर्य्यविस्ताराद्विस्तारः शशिनः स्मृतः ॥ ६२ ॥ तुल्यस्तयोस्तु स्वर्भानुर्भूत्वाधस्तात् प्रसर्पति ॥ उद्धृत्य
पार्थिवच्छायां निर्म्मितो मण्डलाकृतिः ॥ ६३ ॥ स्वर्भानोस्तु बृहत् स्थानं निर्मितं यत्तमोमयम् ॥ आदित्यात्तच्च निष्क्रम्य सोमङ्गच्छति पर्व्वसु॥६४॥
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सोमञ्च पर्व्वसु॥ वर्भासा नुदते यस्मात्ततः स्वर्भानुरुच्यते ॥ ६५ ॥ चन्द्रस्य षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते ॥ विष्क
म्भान्मण्डलाच्चैव योजनाग्रात् प्रमाणतः ॥ ६६ ॥ भार्गवात्पादहीनस्तु विज्ञेयो वै बृहस्पतिः ॥ बृहस्पतेः पादहीनौ कुजसौरावुभौ स्मृतौ ॥ विस्तारा
न्मण्डलाच्चैव पादहीनस्तयोर्बुधः ॥६७॥ तारानक्षत्ररूपाणि स्वपुष्यन्तीह यानि वै ॥ बुधेन समतुल्यानि विस्तारान्मण्डलादथ ॥६८॥ प्रायशश्चन्द्रयो
गानि विद्यादृक्षाणि तत्त्ववित् ॥ तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम् ॥ ६९ ॥ शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैव योजने ॥ पूर्व्वापरनिकृष्टानि
तारकामण्डलानि तु ॥ योजनान्यर्द्धमात्राणि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते ॥ ७० ॥ उपरिष्टात्रयस्तेषां ग्रहा ये दूरसर्पिणः ॥ सौरोऽङ्गि
राश्च वक्रश्च ज्ञेया मन्दविचारिणः ॥ ७१ ॥ तेभ्योऽधस्तात्तु चत्वारः पुनरन्ये महाग्रहाः ॥ सूर्य्यः सोमो बुधश्चैव भार्गवश्चैव शीघ्रगाः ॥ ७२ ॥ याव
न्त्यस्तारकाः कोट्यस्तावदृक्षाणि सर्व्वशः ॥वीथीनां नियमाच्चैवमृक्षमार्गो व्यवस्थितः ॥ ७३ ॥ गतिस्तास्त्वेव सूर्य्यस्य नीचोच्चत्वेऽयनक्रमात् ॥
उत्तरायणमार्गस्थो यदा पर्व्वसु चन्द्रमाः ॥ बोधं बोधोऽथ स्वर्भानुः स्वर्भानोः स्थानमास्थितः ॥७४॥ नक्षत्राणि च सर्व्वाणि नक्षत्राणि विशन्त्युत ॥
गृहाण्येतानि सर्व्वाणि ज्योतींषि सुकृतात्मनाम् ॥ ७५ ॥ कल्पादौ संप्रवृत्तानि निर्मितानि स्वयम्भुवा ॥ स्थानान्येतानि तिष्ठन्ति यावदाभूतसंप्लु
वम् ॥ ७६ ॥ मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवतायतनानि वै ॥ अभिमानिनोऽवतिष्ठन्ति यावदाभूतसंप्लवम्॥७७॥अतीतैस्तु सहातीता भाव्याभाव्यैः सुरासुरैः ॥
वर्त्तन्ते वर्त्तमानैश्च स्थानानि स्वैः सुरैः सह ॥७८॥ अस्मिन् मन्वन्तरे चैव ग्रहा वैमानिकाः स्मृताः॥ विवस्वानदितेः पुत्रः सूर्य्यो वैवस्वतेऽन्तरे॥७९॥

त्विषिमान्धर्म्मपुत्रस्तु सोमदेवो वसुः स्मृतः ॥ शुक्रो देवस्तु विज्ञेयो भार्गवोऽसुरराजकः ॥ ८० ॥ बृहत्तेजाः स्मृतो देवो देवाचार्य्योऽङ्गिरःसुतः ॥
बुधो मनोहरश्चैव त्विषिपुत्रस्तु स स्मृतः ॥ ८१ ॥ अग्निर्विकल्पात् संजज्ञे युवाऽसौ लोहिताधिपः ॥ नक्षत्रऋक्षगामिन्यो दाक्षायण्यः स्मृतास्तु
ताः ॥८२॥ स्वर्भानुः सिंहिकापुत्रो भूतसन्तापनोऽसुरः ॥ सोमर्क्षग्रहसूर्य्येषु कीर्तितास्त्वभिमानिनः ॥८३॥ स्थानान्येतान्यथोक्तानि स्थानिन्यश्चैव दे
वताः॥ शुक्लमग्निमयं स्थानं सहस्रांशोर्विवस्वतः ॥८४॥ सहस्रांशोस्त्विषः स्थानमम्मयं शुक्लमेव च॥ अथ श्यामं मनोज्ञस्य पञ्चरश्मेर्गृहं स्मृतम्॥८५॥
शुक्रस्याप्यम्मयं स्थानं सद्म षोडशरश्मिवत् ॥ नवरश्मेस्तु यूनो हि लोहितस्थानमम्मयम् ॥ ८६ ॥ हरिश्चाप्यं बृहच्चापि द्वादशांशोर्बृहस्पतेः ॥
अष्टरश्मेर्गृहं प्रोक्तं कृष्णं बुद्धस्य अम्मयम् ॥ ८७ ॥ स्वर्भानोस्तामसं स्थानं भूतसन्तापनालयम् ॥ विज्ञेयास्तारकाः सर्व्वास्त्वम्मयास्त्वेकरश्म
यः ॥ ८८ ॥ आश्रयाः पुण्यकीर्त्तीनां सुशुक्लाश्चैव वर्णतः ॥ घनतोयात्मिका ज्ञेयाः कल्पादौ वेदनिर्म्मिताः ॥ ८९ ॥ उच्चत्वाद्दृश्यते शीघ्रमभिव्यक्तैर्गभ
स्तिभिः ॥ तथा दक्षिणमार्गस्थो नीचवीथीसमाश्रितः ॥९० ॥ भूमिलेखावृतः सूर्य्यः पूर्णमावास्ययोस्तथा ॥ न दृश्यते यथाकालं शीघ्रतोऽस्तमुपैति
च ॥९१ ॥ तस्मादुत्तरमार्गस्थो ह्यमावास्यां निशाकरः॥दृश्यते दक्षिणे मार्गे नियमाद्दृश्यते न च ॥ ९२ ॥ ज्योतिषां गतियोगेन सूर्य्याचन्द्रमसावुभौ ॥
समानकालास्तमयौ विषुवत्सु समोदयौ ॥ ९३ ॥ उत्तरासु च वीथीषु व्यन्तरास्तमयोदयौ ॥ पूर्णमावास्ययोर्ज्ञेयौ ज्योतिश्चक्रानुवर्त्तिनौ ॥ ९४ ॥
दक्षिणायनमार्गस्थो यदा भवति रश्मिवान् ॥ तदा सर्व्वग्रहाणां स सूर्य्योऽधस्तात् प्रसर्पति ॥ ९५ ॥ विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योर्द्धं चरते शशी ॥
नक्षत्रमण्डलं कृत्स्नं सोमादूर्द्ध्वं प्रसर्पति ॥ ९६ ॥ नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्द्ध्वं बुधादूर्द्ध्वं बृहस्पतिः ॥ तस्माच्छनैश्चरश्चोर्द्ध्वं तस्मात्सप्तर्षिमण्डलम् ॥ ऋषी
णाञ्चैव सप्तानां ध्रुव ऊर्द्ध्वं व्यवस्थितः ॥ ९७ ॥ द्विगुणेषु सहस्रेषु योजनानां शतेषु च ॥ ताराग्रहान्तराणि स्युरुपरिष्टाद्यथाक्रमम् ॥ ९८ ॥
ग्रहाश्च चन्द्रसूर्य्यौ तु दिवि दिव्येन तेजसा ॥ नित्यमृक्षेषु युज्यन्ति गच्छन्ति नियमक्रमात् ॥ ९९ ॥ ग्रहनक्षत्रसूर्य्यास्तु नीचोच्चमृद्वस्थिताः ॥
समागमे च भेदे च पश्यन्ति युगपत् प्रजाः ॥ १०० ॥ परस्परास्थिता ह्येते युज्यन्ते च परस्परम् ॥ असङ्करेण विज्ञेयस्तेषां योगस्तु वै बुधैः ॥
॥१०१॥ इत्येष सन्निवेशो वः पृथिव्यां ज्यौतिषस्य च ॥ द्वीपानामुदधीनां च पर्व्वतानां तथैव च ॥ १०२ ॥ वर्षाणां च नदीनाञ्च येषु तेषु वस
न्ति वै ॥ एते चैव ग्रहाः पूर्व्वं नक्षत्रेषु समुत्थिताः ॥ १०३ ॥ विवस्वानादितेः पुत्रः सूर्य्यो वै चाक्षुषेऽन्तरे ॥ विशाखासु समुत्पन्नो ग्रहाणां प्रथमो
ग्रहः ॥ १०४ ॥ त्विषिमान् धर्म्मपुत्रस्तु सोमो विश्वावसुस्तथा ॥ शीतरश्मिः समुत्पन्नः कृत्तिकासु निशाकरः ॥ १०५ ॥ षोडशार्चिर्भृगोः पुत्रः शु

क्रः सूर्य्यादनन्तरम् ॥ ताराग्रहाणां प्रवरस्तिष्यक्षेत्रे समुत्थितः ॥ १०६ ॥ ग्रहश्चाङ्गिरसः पुत्रो द्वादशार्च्चिर्बृहस्पतिः ॥ फाल्गुनीषु समुत्पन्नः सर्व्वा
सु च जगद्गुरुः ॥ १०७ ॥ नवार्च्चिर्लोहिताङ्गस्तु प्रजापतिसुतो ग्रहः ॥ आषाढास्विह पूर्व्वासु समुत्पन्न इति श्रुतिः ॥ १०८ ॥ रेवतीष्वेव सप्तार्चि
स्तथा सौरश्शनैश्वरः ॥ रोहिणीषु समुत्पन्नौ ग्रहौ चन्द्रार्कमर्दनौ ॥ १०९ ॥ एते ताराग्रहाश्चैव बोद्धव्या भार्गवादयः ॥ जन्मनक्षत्रपीडासु यान्ति वै
गुण्यतां यतः ॥ स्पृशन्ते तेन दोषेण ततस्ता ग्रहभक्तिषु ॥ ११० ॥ सर्वग्रहाणामेतेषामादिरादित्य उच्यते ॥ ताराग्रहाणां शुक्रस्तु केतूनाञ्चैव धू
मवान् ॥ १११ ॥ ध्रुवः कालो ग्रहाणां तु विभक्तानां चतुर्दिशम् ॥ नक्षत्राणां श्रविष्ठा स्यादयनानां तथोत्तरम् ॥ ११२ ॥ वर्षाणाञ्चापि पञ्चानामाद्यः
संवत्सरः स्मृतः ॥ ऋतूनां शिशिरश्चापि मासानां माघ एव च ॥ ११३ ॥ पक्षाणां शुक्लपक्षस्तु तिथीनां प्रतिपत्तथा ॥ अहोरात्रविभागानामहश्चा
पि प्रकीर्तितम् ॥ ११४ ॥ मुहूर्त्तानां तथैवादिर्मुहूर्त्तो रुद्रदैवतः ॥ अक्ष्णोश्चापि निमेषादिः कालः कालविदो मतः ॥ ११५ ॥ श्रवणान्तं श्रविष्ठादि
युगं स्यात् पञ्चवार्षिकम् ॥ भानोर्गतिविशेषेण चक्रवत् परिवर्त्तते ॥ ११६ ॥ दिवाकरः स्मृतस्तस्मात्कालस्तं विद्धि चेश्वरम् ॥ चतुर्विधा
नां भूतानां प्रवर्त्तकनिवर्त्तकः ॥ ११७ ॥ इत्येष ज्योतिषामेव सन्निवेशोऽर्थनिश्चयात् ॥ लोकसंव्यवहारार्थमीश्वरेण विनिर्म्मितः ॥ ११८ ॥ उत्प
न्नः श्रवणेनासौ संक्षिप्तश्च ध्रुवे तथा ॥ सर्व्वतोऽन्तेषु विस्तीर्णो वृक्षाकार इति स्थितिः ॥ ११९ ॥ बुद्धिपूर्व्वम्भगवता कल्पादौ संप्रकीर्तितः ॥
साश्रयः सोऽभिमानी च सर्वस्य ज्योतिरात्मकः ॥ विश्वरूपः प्रधानस्य परिणामोऽयमद्भुतः ॥ १२० ॥ नैव शक्यं प्रसंख्यातुं याथातथ्येन केनचित् ॥
गतागतं मनुष्येषु ज्योतिषां मांसचक्षुषा ॥ १२१ ॥ आगमादनुमानाच्च प्रत्यक्षादुपपत्तितः ॥ परीक्ष्य निपुणं भक्त्या श्रद्धातव्यं विपश्चिता ॥ १२२ ॥
चक्षुः शास्त्रं जलं लेख्यं गणितं बुद्धिसत्तमाः ॥ पञ्चैते हेतवो ज्ञेया ज्योतिर्गणविचिन्तने ॥ १२३ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते ज्योतिःसन्नि
वेशो नाम त्रिपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कस्मिन् देशे महापुण्यमेतदाख्यानमुत्तमम् ॥ वृत्तं ब्रह्मपुरोगाणां कस्मिन् काले महा
द्युते ॥ एतदाख्याहि नः सम्यग् यथा वृत्तं तपोधन ॥ १ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ यथा श्रुतं मया पूर्व्वं वायुना जगदायुना ॥ कथ्यमानं द्विजश्रेष्ठाः सर्वे
वर्षसहस्रके ॥ २ ॥ नीलता येन कण्ठस्य देवदेवस्य शूलिनः ॥ तदहं कीर्त्तयिष्यामि शृणुध्वं शंसितव्रताः ॥ ३ ॥ उत्तरे शैलराजस्य सरांसि सरितो
ह्रदाः ॥ पुण्योद्यानेषु तीर्थेषु देवतायतनेषु च ॥ गिरिशृङ्गेषु तुङ्गेषु गह्वरोपवनेषु च ॥ ४ ॥ देवभक्ता महात्मानो मुनयः शंसितव्रताः ॥ स्तुवन्ति च म
हादेवं यत्र यत्र यथाविधि ॥ ५ ॥ ऋग्यजुः सामवेदैश्च नृत्यगीतार्च्चनादिभिः ॥ ओङ्कारेण नमस्कारैरर्च्चयन्ति सदा शिवम् ॥ ६ ॥ प्रवृत्ते ज्योतिषां

चक्रे मध्यव्याप्ते दिवाकरे ॥ देवता नियतात्मानः सर्वे तिष्ठन्ति तां कथाम् ॥ अथ नियमप्रवृत्ताश्च प्राणशेषव्यवस्थिताः ॥ ७ ॥ नमस्ते नीलकण्ठाय इत्युवाच सदागतिः ॥ तच्छ्रुत्वा भावितात्मानो मुनयः शंसितव्रताः ॥ वालखिल्येति विख्याताः पतङ्गसहचारिणः ॥ ८ ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि मुनीना मूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ तस्मात् पृच्छन्ति वै वायुं वायुपर्णाम्बुभोजनाः ॥ ९ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ नीलकण्ठेति यत् प्रोक्तं त्वया पवनसत्तम ॥ एतद्गुह्यं पवित्राणां पुण्यं पुण्यकृतां वरः ॥ १० ॥ तदृयं श्रोतुमिच्छामस्त्वत्प्रसादात्प्रभञ्जन ॥ नीलता येन कण्ठस्य कारणेनाम्बिकापतेः ॥ ११ ॥ श्रोतुमिच्छामहे सम्यक् तव वक्त्राद्विशेषतः ॥ यावद्वाचः प्रवर्त्तन्ते सार्थास्ताश्च त्वयेरिताः ॥ १२ ॥ वर्णस्थानगते वायौ वाग्विधिः संप्रवर्तते ॥ ज्ञानं पूर्वमथोत्साहस्त्वत्तो वायो प्रवर्तते ॥ १३ ॥ त्वयि निष्पन्दमाने तु शेषा वर्णप्रवृत्तयः ॥ यत्र वाचो निवर्तन्ते देहबन्धाश्च दुर्लभाः ॥ १४ ॥ तत्रापि तेऽस्ति सद्भावः सर्व्वगस्त्वं सदानिल ॥ नान्यः सर्व्वगतो देवस्त्वदृतेऽस्ति समीरण ॥ १५ ॥ एष वै जीवलोकस्ते प्रत्यक्षः सर्व्वतोऽनिल ॥ वेत्थ वाचस्पतिं देवं मनोनायकमीश्वरम् ॥ १६ ॥ ब्रूहि तत्कण्ठदेशस्य किं कृता रूपविक्रिया ॥ श्रुत्वा वाक्यन्ततस्तेषामृषीणां भावितात्मनाम् ॥ प्रत्युवाच महातेजा वायुर्लोकनमस्कृतः ॥ १७ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ पुरा कृतयुगे विप्रो वेदनिर्णयतत्परः ॥ वसिष्ठो नाम धर्म्मात्मा मानसो वै प्रजापतेः ॥ १८ ॥ पप्रच्छ कार्त्तिकेयं वै मयूरवरवाहनम् ॥ महिषासुरनारीणां नयनाञ्जनतस्करम् ॥ १९ ॥ महासेनं महात्मानं मेघस्तनितनिःस्वनम् ॥ उमामनःप्रहर्षेण बालकं छद्मरूपिणम्॥२०॥क्रौञ्चजीवितहर्त्तारं पार्वतीह्लादि नन्दनम्॥वसिष्ठः पृच्छते भक्त्या कार्त्तिकेयं महाबलम्॥२१॥ वसिष्ठ उवाच ॥ नमस्ते हरनन्दाय उमागर्भ नमोऽस्तु ते॥नमस्ते अग्निगर्भाय गङ्गागर्भ नमोऽस्तु ते॥२२॥नमस्ते शरगर्भाय नमस्ते कृत्तिकासुत॥नमो द्वादशनेत्राय षण्मुखाय नमोऽस्तु ते॥२३॥ नमस्ते शक्तिहस्ताय दिव्यघण्टापताकिने ॥ एवं स्तुत्वा महासेनं पप्रच्छ शिखिवाहनम् ॥ २४ ॥ यदेतद्दृश्यते वर्णं शुभं शुभ्राञ्जनप्रभम् ॥ तत्किमर्थं समुत्पन्नं कण्ठे कुन्देन्दुसंप्रभे॥२५॥एतदाताय भक्ताय दान्ताय ब्रूहि पृच्छते॥कथां मङ्गलसंयुक्तां पवित्रां पापनाशिनीम्॥मत्प्रियार्थं महाभाग वक्तुमर्हस्यशेषतः॥२६॥ श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्य वसिष्ठस्य महात्मनः॥प्रत्युवाच महातेजाः सुरारिबलसूदनः ॥२७॥ शृणुष्व वदतां श्रेष्ठ कथ्यमानं वचो मम ॥ उमोत्सङ्गनिविष्टेन मया पूर्वं यथा श्रुतम् ॥ २८ ॥ पार्वत्या सह संवादः शर्वस्य च महात्मनः ॥ तदहङ्कीर्त्तयिष्यामि त्वत्प्रियार्थं महामुने ॥ २९ ॥ कैलासशिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते ॥ नानाद्रुमलताकीर्णे चक्रवाकोपशोभिते ॥ ३० ॥ षट्पदोद्गीतबहुले धारासम्पातनादिते ॥ मत्तक्रौञ्चमयूराणां नादैरुद्घुष्टकन्दरे ॥ ३१ ॥ अप्सरोगणसङ्कीर्णे किन्नरैश्चोपशोभिते ॥ जीवञ्जीव जातीनां वीरुद्भिरुपशोभिते ॥ ३२ ॥ कोकिलारावमधुरे सिद्ध

चारणसेविते ॥ सौरभेयीनिनादाढ्ये अधस्तानितनिःस्वने ॥३३॥ विनायकभयोद्विग्ने कुञ्जरैर्युक्तकन्दरे ॥ वीणावादित्रनिर्घोषैः श्रोत्रेन्द्रियमनोरमैः॥३४॥
दोलालम्बितसम्पाते वनितासङ्घसेविते ॥ ध्वजैर्लम्बितदोलानां घण्ठानां निनदाकुले ॥ ३५ ॥ मुखमर्दलवादित्रैर्बलिनां स्फोटितैस्तथा ॥ क्रीडारवावि
चाराणां निर्घोषैः पूर्णमन्दिरे ॥ ३६ ॥ हासैः सन्त्रासजननैर्विकरालमुखैस्तथा ॥ देहगन्धैर्विचित्रैश्च प्रक्रीडितगणेश्वरैः ॥ ३७ ॥ ॥ वज्रस्फटिकसोपान
चित्रपट्टिशिलातलैः ॥ व्याघ्रसिंहमुखैश्चान्यैर्गजवाजिमुखैस्तथा ॥ ३८ ॥ बिडालवदनैश्चोग्रैः क्रोष्टुकाकारमूर्त्तिभिः ॥ ह्रस्वैर्दीर्घैः कृशैः स्थूलैर्लम्बोदरम
होदरैः ॥ ३९ ॥ ह्रस्वजङ्घैश्च लम्बोष्ठैस्तालजङ्घैस्तथापरैः ॥ गोकर्णैरेककर्णैश्च महाकर्णैरकर्णकैः ॥ ४० ॥ बहुपादैर्महापादैरेकपादैरपादकैः ॥ बहुशी
र्षैर्महाशीर्षैरेकशीर्षैरशीर्षकैः ॥ ४१ ॥ बहुनेत्रैर्महानेत्रैरेकनेत्रैरनेत्रकैः ॥ एवंविधैर्महायोगिभूतैर्भूतपतिर्वृतः ॥ ४२ ॥ विशुद्धमुक्तामणिरत्नभूषिते शिलातले
हेममये मनोरमे ॥ सुखोपविष्टं मदनाङ्गनाशनं प्रोवाच वाक्यं गिरिराजपुत्री ॥ ४३ ॥ ॥ देव्युवाच ॥ ॥ भगवन् भूतभव्येश गोवृषाङ्कित शास
न ॥ तव कण्ठे महादेव भ्राजतेऽम्बुदसन्निभम् ॥ ४४ ॥ नात्युल्वणं नातिशुभ्रं नीलाञ्जनचयोपमम् ॥ किमिदन्दीप्यते देव कण्ठे कामाङ्ग
नाशन ॥ ४५ ॥ को हेतुः कारणं किञ्च कण्ठे नीलत्वमीश्वर ॥ एतत्सर्वं यथान्यायं ब्रूहि कौतूहलं हि मे ॥ ४६ ॥ श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्याः पार्वत्याः
पार्वतीप्रियः ॥ कथां मङ्गलसंयुक्तां कथयामास शङ्करः ॥ ४७ ॥ मथ्यमानेऽमृते पूर्वं क्षीरोदे सुरदानवैः ॥ अग्रे समुत्थितं तस्मिन् विषङ्का
लानलप्रभम् ॥ ४८ ॥ तं दृष्ट्वा सुरसङ्घाश्च दैत्याश्चैव वरानने ॥ विषण्णवदनाः सर्वे गतास्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥ ४९ ॥ दृष्ट्वा सुरगणान् भीतान् ब्रह्मोवाच
महाद्युतिः ॥ किमर्थं भो महाभागा भीता उद्विग्नचेतसः ॥ ५० ॥ मयाष्टगुणमैश्वर्यं भवतां सम्प्रकल्पितम् ॥ केन व्यावर्त्तितैश्वर्य्या यूयं वै सुरसत्तमाः
॥ ५१ ॥ त्रैलोक्यस्येश्वरा यूयं सर्व्वे वै विगतज्वराः ॥ प्रजासर्गे न सोऽस्तीह आज्ञां यो मे निवर्त्तयेत् ॥ ५२ ॥ विमानगामिनः सर्व्वे सर्व्वे स्वच्छन्दगा
मिनः ॥ अध्यात्मे चाधिभूते च अधिदैवे च नित्यशः ॥ प्रजाः कर्म्मविपाकेन शक्ता यूयं प्रवर्त्तितुम् ॥ ५३ ॥ तत्किमर्थं भयोद्विग्ना मृगाः सिंहार्दिता
इव ॥ किं दुःखं केन सन्तापः कुतो वा भयमागतम् ॥ एतत्सर्वं यथान्यायं शीघ्रमाख्यातुमर्हथ ॥ ५४ ॥ श्रुत्वा वाक्यं ततस्तस्य ब्रह्मणो वै महात्म
नः ॥ ऊचुस्ते ऋषिभिः सार्द्धं सुरदैत्येन्द्रदानवाः ॥ ५५ ॥ सुरासुरैर्मथ्यमाने पाथोधौ च महात्मभिः ॥ भुजङ्गभृङ्गसङ्काशं नीलजीमूतसन्निभम् ॥
प्रादुर्भूतं विषं घोरं संवर्ताग्निसमप्रभम् ॥ ५६ ॥ कालमृत्युरिवोद्भूतं युगान्तादित्यवर्चसम् ॥ त्रैलोक्योत्सादि सूर्य्याभं प्रस्फुरन्तं समन्ततः ॥ ५७ ॥
विषेणोत्तिष्ठमानेन कालानलसमत्विषा ॥ निर्दग्धो रक्तगौराङ्गः कृतकृष्णो जनार्दनः ॥ ५८ ॥ दृष्ट्वा तं रक्तगौराङ्गं कृतकृष्णं जनार्दनम् ॥ भीताः

सर्व्वे वयं देवास्त्वामेव शरणङ्गताः ॥ ५९ ॥ सुराणामसुराणाञ्च श्रुत्वा वाक्यं पितामहः ॥ प्रत्युवाच महातेजा लोकानां हितकाम्यया ॥ ६० ॥
शृणुध्वं देवताः सर्व्वे ऋषयश्च तपोधनाः ॥ यत्तदग्रे समुत्पन्नं मथ्यमाने महोदधौ ॥ ६१ ॥ विषं कालानलप्रख्यं कालकूटेति विश्रुतम् ॥
येन प्रोद्भूतमात्रेण कृतकृष्णो जनार्दनः ॥ ६२ ॥ तस्य विष्णुरहञ्चापि सर्व्वे ते सुरपुङ्गवाः ॥ न शक्नुवन्ति वै सोढुं वेगमन्ये तु शङ्करात् ॥ ६३ ॥
इत्युक्त्वा पद्मगर्भाभः पद्मयोनिरयोनिजः ॥ ततः स्तोतुं समारब्धो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ६४ ॥ नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष नमस्तेऽनेकचक्षुषे ॥
नमः पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय वै नमः ॥ ६५ ॥ नमस्त्रैलोक्यनाथाय भूतानाम्पतये नमः ॥ नमः सुरारिसंहर्त्रे तापसाय त्रिचक्षुषे ॥ ६६ ॥
ब्रह्मणे चैव रुद्राय विष्णवे चैव ते नमः ॥ साङ्ख्याय चैव योगाय भूतग्रामाय वै नमः ॥ ६७ ॥ मन्मथाङ्गविनाशाय कालकालाय वै नमः ॥
रुद्राय च सुरेशाय देवदेवाय ते नमः ॥ ६८ ॥ कपर्दिने करालाय शङ्कराय कपालिने ॥ विरूपायैकरूपाय शिवाय वरदाय च ॥ ६९ ॥
त्रिपुरघ्नाय वन्द्याय मातॄणाम्पतये नमः ॥ बुद्धाय चैव शुद्धाय मुक्ताय केवलाय च ॥ ७० ॥ नमः कमलहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने ॥ लोकत्र
यविधात्रे च चन्द्राय वरुणाय च ॥ ७१ ॥ अग्राय चैव चोग्राय विप्रायानेकचक्षुषे ॥ रजसे चैव सत्वाय तमसेऽव्यक्तयोनये ॥ ७२ ॥ नित्यायानि
त्यरूपाय नित्यानित्याय वै नमः ॥ व्यक्ताय चैवाव्यक्ताय व्यक्ताव्यक्ताय वै नमः ॥ ७३ ॥ चिन्त्याय चैवाचिन्त्याय चिन्त्याचिन्त्याय वै नमः ॥
भक्तानामार्त्तिनाशाय नरनारायणाय च ॥ ७४ ॥ उमाप्रियाय शर्वाय नन्दिचक्राङ्किताय च ॥ पक्षमासार्द्धमासाय नमः संवत्सराय च ॥ ७५ ॥
बहुरूपाय मुण्डाय दण्डिनेऽथ वरूथिने ॥ नमः कपालहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने ॥ ७६ ॥ ध्वजिने रथिने चैव यमिने ब्रह्मचारिणे ॥ ऋग्यजुः
सामवेदाय पुरुषायेश्वराय च ॥ इत्येवमादिचरितैस्तुभ्यं देव नमोऽस्तु ते ॥ ७७ ॥ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ ॥ एवं स्तुतस्ततो देवैः प्रणिप
त्य वरानने ॥ ७८ ॥ ज्ञात्वा तु भक्तिं मम देवदेवो गङ्गाजलाप्लावितकेशदेशः ॥ सूक्ष्मोऽतियोगातिशयादचिन्त्यो न हि स्तुतो व्यक्तमुपैति चन्द्रः
॥ ७९ ॥ एवं भगवता पूर्व्वं ब्रह्मणा लोककर्तृणा ॥ स्तुतोऽहं विविधैः स्तोत्रैर्वेदवेदाङ्गसम्भवैः ॥ ८० ॥ ततः प्रीतोह्यहन्तस्मै ब्रह्मणे सुमहात्मने ॥
ततोऽहं सूक्ष्मया वाचा पितामहमथाब्रुवम् ॥ ८१ ॥ भगवन् भूतभव्येश लोकनाथ जगत्पते ॥ किं कार्य्यं ते मया ब्रह्मन् कर्त्तव्यं वद सुव्रत ॥८२॥
श्रुत्वा वाक्यं ततो ब्रह्मा प्रत्युवाचाम्बुजेक्षणः ॥ भूतभव्यभवन्नाथ श्रूयतां कारणेश्वर ॥ ८३ ॥ सुरासुरैर्मथ्यमाने पयोधावम्बुजेक्षण ॥ भगवन्नेवस
ङ्काशं नीलजीमूतसन्निभम् ॥ ८४ ॥ प्रादुर्भूतं विषङ्घोरं संवर्त्ताग्निसमप्रभम् ॥ कालमृत्युरिवोद्भूतं युगान्तादित्यवर्च्चसम् ॥ ८५ ॥ त्रैलोक्योत्सा

दि सूर्य्याभं विस्फुरन्तं समन्ततः ॥ अग्रे समुत्थितं तस्मिन् विषज्वालानलप्रभम् ॥ ८६ ॥ तं दृष्ट्वा तु वयं सर्व्वे भीताः सम्भ्रान्तचेतसः ॥ तत्
पिबस्व महादेव लोकानां हितकाम्यया ॥ भवानग्र्यस्य भोक्ता वै भवांश्चैव वरः प्रभुः ॥ ८७ ॥ त्वामृतेऽन्यो महादेव विषं सोढुं न विद्यते ॥ नास्ति
कश्चित् पुमान् शक्तस्त्रैलोक्येषु च गीयते ॥ ८८ ॥ एवं तस्य वचः श्रुत्वा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ बाढमित्येव तद्वाक्यं प्रतिगृह्य वरानने ॥ ८९ ॥
ततोऽहं पातुमारब्धो विषमन्तकसन्निभम् ॥ पिबतो मे महाघोरं विषं सुरभयङ्करम् ॥ कण्ठः समभवत्तूर्णं कृष्णो मे वरवर्णिनि ॥ ९० ॥ तं दृष्ट्वो
त्पलपत्राभं कण्ठे सक्तमिवोरगम् ॥ तक्षकं नागराजानं लेलिहानमिव स्थितम् ॥ ९१ ॥ अथोवाच महातेजा ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ शोभसे त्वं महा
देव कण्ठेनानेन सुव्रत ॥ ९२ ॥ ततस्तस्य वचः श्रुत्वा मया गिरिवरात्मजे ॥ पश्यतां देवसङ्घानां दैत्यानाञ्च वरानने ॥ ९३ ॥ यक्षगन्धर्व्वभूतानां
पिशाचोरगरक्षसाम् ॥ धृतं कण्ठे विषं घोरं नीलकण्ठस्ततो ह्यहम् ॥ ९४ ॥ तत् कालकूटं विषमुग्रतेजः कण्ठे मया पर्व्वतराजपुत्रि ॥ निवेश्यमानं
सुरदैत्यसङ्घो दृष्ट्वा परं विस्मयमाजगाम ॥ ९५ ॥ ततः सुरगणाः सर्व्वे सदैत्योरगराक्षसाः ॥ ऊचुः प्राञ्जलयो भूत्वा मत्तमातङ्गगामिनि ॥ ९६ ॥ अहो
बलं वीर्य्यपराक्रमस्ते अहो पुनर्योगबलं तवैव ॥ अहो प्रभुत्वं तव देवदेव गङ्गाजलास्फालितमुक्तकेश ॥ ९७ ॥ त्वमेव विष्णुश्चतुराननस्त्वं त्वमेव मृ
त्युर्वरदस्त्वमेव ॥ त्वमेव सूर्य्यो रजनीकरश्च त्वमेव भूमिः सलिलं त्वमेव ॥९८॥ त्वमेव यज्ञो नियमस्त्वमेव त्वमेव भूतं भविता त्वमेव ॥ त्वमेव चादि
र्निधनं त्वमेव स्थूलश्च सूक्ष्मः पुरुषस्त्वमेव ॥ ९९ ॥ त्वमेव सूक्ष्मस्य परस्य सूक्ष्मस्त्वमेव वह्निः पवनस्त्वमेव॥त्वमेव सर्व्वस्य चराचरस्य लोकस्य
कर्त्ता प्रलये च गोप्ता॥१००॥ इतीदमुक्त्वा वचनं सुरेन्द्राः प्रगृह्य सोमं प्रणिपत्य मूर्ध्ना ॥ गता विमानैरनिगृह्य वेगैर्महात्मनो मेरुमुपेत्य सर्व्वे ॥१०१॥ इत्ये
तत्परमं गुह्यं पुण्यात्पुण्यमहत्तरम्॥नीलकण्ठेति यत् प्रोक्तं विख्यातं लोकविश्रुतम् ॥१०२॥स्वयं स्वयम्भुवा प्रोक्तां पुण्यां पापप्रणाशनीम्॥यस्तु धारयते
नित्यमेनां ब्रह्मोद्भवां कथाम्॥तस्याहं संप्रवक्ष्यामि फलं वै विपुलं महत्॥१०३॥विषं तस्य वरारोहे स्थावरं जङ्गमन्तथा॥गात्रं प्राप्य च सुश्रोणि क्षिप्रं तत् प्र
तिहन्यते॥१०४॥शमयत्यशुभं घोरं दुःस्वप्नञ्चापकर्षति ॥ स्त्रीषु वल्लभतां याति सभायां पार्थिवस्य च॥१०५॥विवादे जयमाप्नोति युद्धे शूरत्वमेव च॥ग
च्छतः क्षेममध्वानं गृहे च नित्यसम्पदः॥१०६॥शरीरभेदे वक्ष्यामि गतिं तस्य वरानने ॥ नीलकण्ठो हरिच्छ्मश्रुः शशाङ्काङ्कितमूर्द्धजः॥१०७॥ त्र्यक्ष
स्त्रिशूलपाणिश्च वृषयानः पिनाकधृक् ॥ नन्दितुल्यबलः श्रीमान् नन्दितुल्यपराक्रमः ॥ १०८ ॥ विचरत्यचिरात् सर्व्वान् सर्व्वलोकान्ममाज्ञया ॥ न
हन्यते गतिस्तस्य अनिलस्य यथाऽम्बरे ॥ मम तुल्यबलो भूत्वा तिष्ठत्याभूतसम्प्लवम्॥१०९॥ मम भक्ता वरारोहे ये च शृण्वन्ति मानवाः ॥ तेषां गतिं

प्रवक्ष्यामि इह लोके परत्र च ॥ ११० ॥ ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो जयते महीम् ॥ वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥ १११ ॥
व्याधितो मुच्यते रोगाद्बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥ गुर्विणी लभते पुत्रं कन्या विन्दति सत्पतिम् ॥ नष्टञ्च लभते सर्व्वं इहलोके परत्र च ॥११२॥
गवां शतसहस्रस्य सम्यग्दत्तस्य यत् फलम् ॥ तत् फलं भवति श्रुत्वा विभोर्दिव्यामिमां कथाम् ॥ ११३ ॥ पादं वा यदि वाप्यर्द्धं श्लोकं श्लो
कार्द्धमेव वा ॥ यस्तु धारयते नित्यं रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ११४ ॥ कथामिमां पुण्यफलादियुक्तां निवेद्य देव्याः शशिबद्धमूर्द्धजः ॥ वृषस्य पृष्ठेन
सहोमया प्रभुर्जगाम किष्किन्धगुहां गुहप्रियः ॥ ११५ ॥ क्रान्तं मया पापहरं महापदं निवेद्य तेभ्यः प्रददौ प्रभञ्जनः ॥ अधीत्य सर्व्वं
न्त्वखिलं सुलक्षणं जगाम आदित्यपथं द्विजोत्तमः ॥ ११६ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते नीलकण्ठस्तवो नाम चतुःपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५४ ॥
॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ गुणकर्म्मप्रभावैश्च कोऽधिको वदतां वरः ॥ श्रोतुमिच्छामहे सम्यगाश्चर्य्यं गुणविस्तरम् ॥ १ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ महादेवस्य माहात्म्यं विभूत्वञ्च महात्मनः ॥ २ ॥ पूर्व्वं त्रैलोक्यविजये विष्णुना समुदाहृतम् ॥ बलिं
बद्धा महौजास्तु त्रैलोक्याधिपतिः पुरा ॥ ३ ॥ प्रणष्टेषु च दैत्येषु प्रहृष्टे च शचीपतौ ॥ अथाजग्मुः प्रभुन्द्रष्टुं सर्व्वे देवाः सवासवाः ॥ ४ ॥ यत्रास्ते
विश्वरूपात्मा क्षीरोदस्य समीपतः ॥ सिद्धब्रह्मर्षयो यक्षा गन्धर्व्वाप्सरसाङ्गणाः ॥ ५ ॥ नागा देवर्षयश्चैव नद्यः सर्व्वे च पर्वताः ॥ अभिगम्य महात्मानं
स्तुवन्ति पुरुषं हरिम् ॥ ६॥ त्वं धाता त्वञ्च कर्त्ताऽस्य त्वं लोकान्सृजसि प्रभो ॥ त्वत्प्रसादाच्च कल्याणं प्राप्तं त्रैलोक्यमव्ययम् ॥ असुराश्च जिताः
सर्व्वे बलिर्बद्धश्च वै त्वया ॥७॥ एवमुक्तः सुरैर्विष्णुः सिद्धैश्च परमर्षिभिः ॥प्रत्युवाच ततो देवान् सर्व्वांस्तान् पुरुषोत्तमः ॥ ८॥ श्रूयतामभिधास्यामि
कारणं सुरसत्तमाः ॥ यः स्रष्टा सर्व्वभूतानां कालः कालकरः प्रभुः ॥९॥ येन हि ब्रह्मणा सार्द्धं सृष्टा लोकाश्च मायया ॥ तस्यैव च प्रसादेन आदौ सि
द्धत्वमागतम् ॥१०॥ पुरा तमसि चाव्यक्ते त्रैलोक्ये ग्रासिते मया ॥ उदरस्थेषु भूतेषु लोकेऽहं शयितस्तदा ॥११॥ सहस्रशीर्षा भूत्वा च सहस्राक्षः सहस्रपा
त् ॥ शङ्खचक्रगदापाणिः शयितो विमलेऽम्भसि ॥१२॥ एतस्मिन्नन्तरे दूरात् पश्यामि ह्यमितप्रभम् ॥ शतसूर्य्यप्रतीकाशं ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ॥ १३ ॥
चतुर्वक्त्रं महायोगं पुरुषं काञ्चनप्रभम् ॥ कृष्णाजिनधरं देवं कमण्डलुविभूषितम् ॥ निमेषान्तरमात्रेण प्राप्तोऽसौ पुरुषोत्तमः ॥ १४ ॥ ततो मामब्रवीद्ब्रह्मा
सर्व्वलोकनमस्कृतः ॥ कस्त्वं कुतो वा किञ्चेह तिष्ठसे वद मे विभो ॥१५॥अहं कर्त्ताऽस्मि लोकानां स्वयम्भूर्विश्वतोमुखः ॥ एवमुक्तस्तदा तेन ब्रह्मणाहमुवा
च तम्॥१६॥अहं कर्त्ता च लोकानां संहर्त्ता च पुनः पुनः॥एवं सम्भाषमाणाभ्यां परस्परजयैषिणाम्॥उत्तरां दिशमास्थाय ज्वाला दृष्टाप्यधिष्ठिता ॥ १७॥

ज्वालान्ततस्तामालोक्य विस्मितौ च तदानयोः ॥ तेजसा चैव तेनाथ सर्व्वं ज्योतिः कृतञ्जलम् ॥ १८ ॥ वर्द्धमाने तदा वह्नावत्यन्तपरमाद्भुते ॥ अतिदुद्राव तां ज्वालां ब्रह्मा चाहञ्च सत्वरः ॥ १९ ॥ दिवं भूमिञ्च विष्टभ्य तिष्ठन्तं ज्वालमण्डलम् ॥ तस्य ज्वालस्य मध्ये तु पश्यावो विपुलप्रभम् ॥ ॥ २० ॥ प्रादेशमात्रमव्यक्तं लिङ्गं परमदीपितम् ॥ न च तत्काञ्चनं मध्ये न शैलं न च राजतम् ॥२१॥ अनिर्द्देश्यमचिन्त्यञ्च लक्ष्यालक्ष्यं पुनः पुनः ॥ महौजसं महाघोरं वर्द्धमानं भृशं तदा ॥ ज्वालामालायतं न्यस्तं सर्व्वभूतभयङ्करम् ॥ २२ ॥ अस्य लिङ्गस्य योऽन्तं वै गच्छते मन्त्रकारणम् ॥ घोररूपिणमत्यर्थं भिन्दन्तमिव रोदसी ॥ २३ ॥ ततो मामब्रवीद्ब्रह्मा अधो गच्छत्वतन्द्रितः ॥ अन्तमस्य विजानीमो लिङ्गस्य तु महात्मनः ॥ २४ ॥ अहमूर्द्ध्वं गमिष्यामि यावदन्तोऽस्य दृश्यते ॥ तदा तौ समयं कृत्वा गतावूर्द्ध्वमधश्च ह ॥ २५ ॥ ततो वर्षसहस्रन्तु अहं पुनरधो गतः ॥ न च पश्यामि तस्यान्तं भीतश्चाहं न संशयः ॥ २६ ॥ तथा ब्रह्मा च श्रान्तश्च न चान्तन्तस्य पश्यति ॥ समागतो मया सार्द्धं तत्रैव च महाम्भसि ॥ २७ ॥ ततो विस्मयमापन्नावुभौ तस्य महात्मनः ॥ २७ ॥ मायया मोहितौ तेन नष्टसंज्ञौ व्यवस्थितौ ॥ २८ ॥ ततो ध्यानगतन्तत्र ईश्वरं सर्व्वतोमुखम् ॥ प्रभवं निधनञ्चैव लोकानां प्रभुमव्ययम् ॥ २९ ॥ ब्रह्माञ्जलिपुटो भूत्वा तस्मै शर्वाय शूलिने ॥ महाभैरवनादाय भीमरूपाय दंष्ट्रिणे ॥ अव्यक्ताय महान्ताय नमस्कारं प्रकुर्महे ॥ ३० ॥ नमोऽस्तु ते लोकसुरेश देव नमोऽस्तु ते भूतपते महाश्च ॥ नमोऽस्तु ते शाश्वत सिद्धयोने नमोऽस्तु ते सर्व्वजगत्प्रतिष्ठ ॥ ३१ ॥ परमेष्ठी परं ब्रह्म अक्षरं परमं पदम् ॥ श्रेष्ठस्त्वं वामदेवश्च रुद्रः स्कन्दः शिवः प्रभुः ॥ ३२ ॥ त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः परं पदम् ॥ स्वाहाकारो नमस्कारः संस्कारः सर्व्वकर्म्मणाम् ॥ ३३ ॥ स्वधाकारश्च जाप्यश्च व्रतानि नियमास्तथा ॥ वेदा लोकाश्च देवाश्च भगवानेव सर्वशः ॥ ३४ ॥ आकाशस्य च शब्दस्त्वं भूतानां प्रभवाव्ययम् ॥ भूमेर्गन्धो रसश्चापां तेजोरूपं महेश्वर ॥३५॥ वायोः स्पर्शश्च देवश्च वपुश्चन्द्रमसस्तथा ॥ बुधो ज्ञानञ्च देवेश प्रकृतौ बीजमेव च ॥३६॥ त्वं कर्त्ता सर्व्वभूतानां कालो मृत्युर्यमोऽन्तकः ॥ त्वन्धारयसि लोकांस्त्रींस्त्वमेव सृजसि प्रभो ॥३७॥ पूर्वेण वदनेन त्वमिन्द्रत्वञ्च प्रकाशसे ॥ दक्षिणेन च वक्त्रेण लोकान् संक्षीयसे प्रभो ॥ ३८ ॥ पश्चिमेन तु वक्त्रेण वरुणत्वं करोषि वै ॥ उत्तरेण तु वक्त्रेण सौम्यत्वञ्च व्यवस्थितम् ॥ ३९ ॥ राजसे बहुधा देव लोकानां प्रभवाव्ययः ॥ आदित्या वसवो रुद्रा मरुतश्चाश्विनौ सुतौ ॥ ४० ॥ साध्या विद्याधरा नागाश्चारणाश्च तपोधनाः ॥ वालखिल्या महात्मानस्तपःसिद्धाश्च सुव्रताः ॥ ४१ ॥ त्वत्तः प्रसूता देवेश ये चान्ये नियतव्रताः ॥ उमा सीता सिनीवाली कुहूर्गायत्रिरेव च ॥ ४२ ॥ लक्ष्मीः कीर्त्तिर्धृतिर्मेधा लज्जा क्षान्तिर्वपुः स्वधा ॥ तुष्टिः पुष्टिः क्रिया चैव वाचां देवी सरस्वती ॥ त्वत्तः प्रसूता

देवेश सन्ध्या रात्रिस्तथैव च ॥४३॥सूर्य्यायुतानामयुतप्रभाच नमोऽस्तु ते चन्द्रसहस्रगोचर ॥ नमोऽस्तु ते पर्वतरूपधारिणे नमोऽस्तु ते सर्वगुणाकरा
य ॥ ४४ ॥ नमोऽस्तु ते पट्टिशरूपधारिणे नमोऽस्तु ते चर्म्मविभूतिधारिणे ॥ नमोऽस्तु ते रुद्रपिनाकपाणये नमोऽस्तु ते सायकचक्रधारिणे ॥ ४५ ॥
नमोऽस्तु ते भस्मविभूषिताङ्ग नमोऽस्तु ते कामशरीरनाशन ॥ नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवाससे नमोऽस्तु ते देव हिरण्यबाहवे ॥ ४६ ॥ नमो
ऽस्तु ते देव हिरण्यरूप नमोऽस्तु ते देव हिरण्यनाभ ॥ नमोऽस्तु ते नेत्रसहस्रचित्र नमोऽस्तु ते देव हिरण्यरेतः ॥ ४७ ॥ नमोऽस्तु ते देव हिरण्य
वर्ण नमोऽस्तु ते देव हिरण्यगर्भ ॥ नमोऽस्तु ते देव हिरण्यचीर नमोऽस्तु ते देव हिरण्यदायिने ॥ ४८ ॥ नमोऽस्तु ते देव हिरण्यमालिने नमोऽस्तु
ते देव हिरण्यवाहिने ॥ नमोऽस्तु ते देव हिरण्यवर्म्मने नमोऽस्तु ते भैरवनादनादिने ॥ ४९ ॥ नमोऽस्तु ते भैरववेगवेग नमोऽस्तु ते शङ्कर नीलक
ण्ठ ॥ नमोऽस्तु ते दिव्यसहस्रबाहो ॥ नमोऽस्तु ते नर्त्तनवादनप्रिय ॥ ५० ॥ एवं संस्तूयमानस्तु व्यक्तो भूत्वा महामतिः ॥ भाति देवो महा
योगी सूर्य्यकोटिसमप्रभः ॥ ५१ ॥ अभिभाष्यस्तदा हरो महादेवो महेश्वरः ॥ वक्त्रकोटिसहस्रेण ग्रसमान इवापरम् ॥ ५२ ॥ एकग्री
वस्त्वेकजटो नानाभूषणभूषितः ॥ नानाचित्रविचित्राङ्गः नानामाल्यानुलेपनः ॥ ५३ ॥ पिनाकपाणिर्भगवान् वृषभासनशूलधृक् ॥ दण्डकृ
ष्णाजिनधरः कपाली घोररूपधृक् ॥ ५४ ॥ व्यालयज्ञोपवीती च सुराणामभयङ्करः ॥ दुन्दुभिस्वननिर्घोषपर्जन्यनिनदोपमः ॥ मुक्तो हासस्तदा
तेन नभः सर्व्वमपूरयत् ॥ ५५ ॥ तेन शब्देन महता वयं भीता महात्मनः ॥ तदोवाच महायोगी प्रीतोऽहं सुरसत्तमौ ॥ ५६ ॥ पश्येताञ्च महामायां
भयं सर्व्वं प्रमुच्यताम्॥ युवां प्रसूतौ गात्रेषु मम पूर्व्वसनातनौ ॥५७॥ अयं मे दक्षिणो बाहुर्ब्रह्मा लोकपितामहः॥ वामो बाहुश्च मे विष्णुर्नित्यं युद्धेषु ति
ष्ठति ॥ प्रीतोऽहं युवयोः सम्यग्वरं दद्मि यथेप्सितम् ॥५८॥ ततः प्रहृष्टमनसौ प्रणतौ पादयोः पुनः ॥ ऊचतुश्च महात्मानौ पुनरेव तदाऽनघौ ॥५९॥
यदि प्रीतिः समुत्पन्ना यदि देयो वरश्च नौ ॥ भक्तिर्भवतु नौ नित्यं त्वयि देव सुरेश्वर ॥ ६० ॥ ॥ भगवानुवाच ॥ ॥ एवमस्तु महाभागौ सृजतां
विविधाः प्रजाः॥एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ६१ ॥ एवमेष मयोक्तो वः प्रभावस्तस्य योगिनः ॥ तेन सर्व्वमिदं सृष्टं हेतुमात्रा वयन्त्विह ॥
॥६२॥ एतद्धि रूपमज्ञातमव्यक्तं शिवसंज्ञितम् ॥ अचिन्त्यं तदहश्यञ्च पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥ ६३ ॥ तस्मै देवाधिपत्याय नमस्कारं प्रयुङ्क्त ह ॥
येन सूक्ष्ममचिन्त्यञ्च पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥ ६४ ॥ महादेव नमस्तेऽस्तु महेश्वर नमोऽस्तु ते ॥ सुरासुरवर श्रेष्ठ मनोहंस नमोऽस्तु ते ॥ ६५ ॥
॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ एतच्छ्रुत्वा गताः सर्व्वे सुराः स्वं स्वं निवेशनम् ॥ नमस्कारं प्रयुञ्जानाः शङ्कराय महात्मने ॥ ६६ ॥ इमंस्तवं पठेद्यस्तु

ईश्वरस्य महात्मनः ॥कामांश्च लभते सर्व्वान् पापेभ्यस्तु विमुच्यते ॥ ६७ ॥ एतत्सर्व्वं सदा तेन विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ महादेवप्रसादेन उक्तं
ब्रह्म सनातनम् ॥ एतद्वः सर्व्वमाख्यातं मया माहेश्वरं बलम् ॥ ६८ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते लिङ्गोद्भवस्तवो नाम पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५५ ॥
॥ ॥ शांशपायन उवाच ॥ ॥ अगात्कथममावास्यां मासि मासि दिवं नृपः ॥ ऐलः पुरूरवाः सूत कथं वाऽतर्पयत् पितॄन् ॥ १ ॥ ॥ सूत
उवाच ॥ ॥ तस्य चाहं प्रवक्ष्यामि प्रभावं शांशपायन ॥ ऐलस्यादित्यसंयोगं सोमस्य च महात्मनः ॥२॥ अपांसारमयस्येन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः॥
ह्रासवृद्धी पितृमतः पक्षस्य च विनिर्णयः॥३॥सोमाच्चैवामृतप्राप्तिः पितॄणान्तर्पणं तथा ॥कव्याग्नेश्चात्तसोमानां पितॄणाञ्चैव दर्शनम् ॥४॥ यथा पुरूरवा
श्चैलस्तर्पयामास वै पितॄन् ॥ एतत्सर्व्वं प्रवक्ष्याणि पर्व्वाणि च यथाक्रमम् ॥५॥यदा तु चन्द्रसूर्य्यौ तौ नक्षत्रेण समागतौ॥ अमावास्यान्निवसत एकरात्रे कम
ण्डले॥६॥स गच्छति तदा द्रष्टुं दिवाकरनिशाकरौ ॥अमावस्याममा वास्यां मातामहपितामहौ ॥ अभिवाद्य तदा तत्र कालापेक्षः प्रतीक्ष्यते॥७॥प्रसीदमा
नात् सोमाच्च पित्रर्थं तत्परिस्रवात् ॥ ऐलः पुरूरवा विद्वान् मासि मासि प्रयत्नतः॥ उपास्ते पितृमन्तं तं ससोमं स दिवास्थितः ॥८॥ द्विलवं कुहुमात्रन्तु
ते उभे तु विचार्य्य सः ॥ सिनीवालीप्रमाणेन सिनीवालीमुपासकः ॥ ९ ॥ कुहूमात्रां कलाञ्चैव ज्ञात्वोपास्ते कुहुं पुनः॥ स तदा भानुमत्येककालावेक्षी
प्रपश्यति ॥ १० ॥ सुधामृतं कुतः सोमात् प्रस्रवेन्मासतृप्तये ॥ दशभिः पञ्चभिश्चैव सुधामृतपरिस्रवैः ॥ ११ ॥ कृष्णपक्षे तदा पीत्वा दुह्यमानं तथां
शुभिः ॥ सद्यः पक्षरता तेन सौम्येन मधुना च सः ॥ १२ ॥ निर्व्वापणार्थं दत्तेन पित्रेण विधिना नृपः ॥ सुधामृतेन राजेन्द्रस्तर्पयामास वै पितॄन् ॥
सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च ॥ १३ ॥ ऋतुरग्निस्तु यः प्रोक्तः स तु संवत्सरो मतः ॥ जज्ञिरे ह्यृतवस्तस्मादृतुभ्यश्चार्त्तवाश्च ये ॥१४॥
आर्त्तवा ह्यर्द्धमासाख्याः पितरो ह्यब्दसूनवः ॥ ऋतुः पितामहा मासा ऋतुश्चैवाब्दसूनवः॥१५॥प्रपितामहास्तु वै देवाः पञ्चाब्दा ब्रह्मणः सुताः॥ सौम्यास्तु
सौम्यजा ज्ञेयाः काव्या ज्ञेयाः कवेः सुताः॥१६॥उपहूताः स्मृता देवाः सोमजाः सोमपास्तथा॥आज्यपास्तु स्मृताः काव्यास्तृप्यन्ति पितृजातयः॥१७॥
काव्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ते त्रिधा ॥ गृहस्था ये च यज्वाना ऋतुर्व्बर्हिषदो ध्रुवम् ॥ १८ ॥ गृहस्थाश्चापि यज्वाना अग्निष्वात्तास्तथा
र्त्तवाः ॥ अष्टकापतयः काव्याः पञ्चाब्दास्तान्निबोधत ॥ १९ ॥ एषां संवत्सरो ह्यग्निः सूर्य्यस्तु परिवत्सरः ॥ सोम इद्वत्सरः प्रोक्तो वायुश्चैवानुव
त्सरः ॥ २० ॥ रुद्रस्तु वत्सरस्तेषां पञ्चाब्दा ये युगात्मकाः ॥ लेखाश्चैवोष्मपाश्चैव दिवाकीर्त्याश्च ते स्मृताः ॥ २१ ॥ एते पिबन्त्यमावास्यां मा
सि मासि सुधां दिवि ॥ तांस्तेन तर्पयामास यावदासीत् पुरूरवाः ॥ २२ ॥ यस्मात् प्रस्रवते सोमान्मासि मासि निबोधत ॥ तस्मात् सुधामृतं त

द्वे पितॄणां सोमपायिनाम् ॥२३॥एवं तदमृतं सौम्यं सुधा च मधु चैव ह ॥ कृष्णपक्षे यथा चेन्दोः कलाः पंचदश क्रमात् ॥२४॥ पिबन्त्यम्बुमयींदेवास्त्रयस्त्रिशत्तु छन्दजाः॥पीत्वा च मासं गच्छन्ति चतुर्दश्यां सुधामृतम्॥२५॥इत्येवं पीयमानस्तु दैवतैश्च निशाकरः॥ समागच्छदमा वास्यां भागे पञ्चदशे स्थितः ॥२६॥सुषुम्नाप्यायितश्चैव अमावास्यां यथाक्रमम्॥पिबन्ति द्विकलं कालं पितरस्ते सुधामृतम्॥२७॥ततः पीतक्षये सोमे सूर्य्योऽसावेकरश्मिना॥आप्यायत्सुषुम्नेन पितॄणां सोमपायिनाम् ॥२८॥ निःशेषायां कलायान्तु सोममाप्याययत् पुनः॥ सुषुम्नाप्यायमानस्य भागं भागमहःक्रमात् ॥ कलाः क्षीयन्ति ताः कृष्णाः शुक्लाश्चाप्याययन्ति च ॥२९॥ एवं सूर्य्यस्य वीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनुः॥ दृश्यते पौर्णमास्यां वै शुक्लः सम्पूर्णमण्डलः॥ संसिद्धिरेवं सोमस्य पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः ॥ ३० ॥ इत्येष पितृमान् सोमः स्मृत इद्वत्सरः क्रमात् ॥ क्रान्तः पंचदशैः सार्द्धं सुधामृतपरिस्रवैः ॥ ३१ ॥ अतः पर्व्वाणि वक्ष्यामि पर्व्वणां सन्धयस्तथा ॥ ग्रन्थिमन्ति यथा पर्व्वाणीक्षुवेण्वोर्भवन्त्युत ॥ ३२ ॥ तथार्द्धमासपर्व्वाणि शुक्लकृष्णानि वै विदुः ॥ पूर्णामावास्ययोर्भेदैर्ग्रन्थियों सन्धयश्च वै ॥ अर्द्धमासास्तु पर्वाणि तृतीयाप्रभृतीनि तु ॥ ३३ ॥ अग्न्याधानक्रिया यस्मात् क्रियते पर्व्वसन्धिषु ॥ सायाह्ने प्रतिपच्चैव स कालः पौर्णमासिकः ॥ ३४ ॥ व्यतीपाते स्थिते सूर्य्ये लेखोर्द्धन्तु युगान्तरे ॥ युगान्तरोदिते चैव लेखोर्द्धे शशिनः क्रमात् ॥ ॥ ३५ ॥ पौर्णमासे व्यतीपाते यदीक्षेते परस्परम् ॥ यस्मिन्काले स सीमान्ते स व्यतीपात एव तु ॥ ३६ ॥ कालं सूर्य्यस्य निर्देशं दृष्ट्वा सङ्ख्यातु सर्पति ॥ स वै पर्थं क्रियाकालः कालात्सद्यो विधीयते ॥३७॥ पूर्णेन्दोः पूर्णपक्षे तु रात्रिसन्धिषु पूर्णिमा ॥ यस्मात्तामनुपश्यन्ति पितरो दैवतैः सह॥ तस्मादनुमतिर्नाम पूर्णिमा प्रथमा स्मृता ॥ ३८ ॥ अत्यर्थं भ्राजते यस्मात् पौर्णमास्यान्निशाकरः ॥ रञ्जनाच्चैव चन्द्रस्य राकेति कवयो विदुः ॥३९॥ अमा वसेतामृक्षे तु यदा चन्द्रदिवाकरौ ॥ एकां पञ्चदशीं रात्रिममावास्या ततः स्मृता ॥ ४० ॥ ततोऽपरस्य तैर्व्यक्तः पौर्णमास्यां निशाकरः ॥ यदीक्षते व्यतीपाते दिवा पूर्णे परस्परम् ॥ चन्द्रार्कावपराह्णे तु पूर्णात्मानौ तु पूर्णिमा ॥ ४१ ॥ विच्छिन्नांताममावास्यां पश्यतश्च समागतौ ॥ अन्योन्यं चन्द्रसूर्य्यौ तौ यदा तद्दर्श उच्यते ॥ ४२ ॥ द्वौ द्वौ लवावमावास्यां यः कालः पर्व्वसन्धिषु ॥ द्व्यक्षरं कुहुमात्रन्तु एवं कालस्तु स स्मृतः ॥ नष्टचन्द्राप्यमावास्या मध्यसूर्य्येण सङ्गता ॥ ४३ ॥ दिवसार्द्धेन रात्र्यर्द्धं सूर्य्यं प्राप्य तु चन्द्रमाः ॥ सूर्य्येण सहसा मुक्तिं गत्वा प्रातस्तनोत्सवौ ॥ द्वौ कालौ सङ्गमश्चैव मध्याह्ने निष्पतेद्रविः ॥ ४४ ॥ प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य चन्द्रमाः सूर्य्यमण्डलात् ॥ निर्मुच्यमानयोर्मध्ये तयोर्मण्डलयोस्तु वै ॥ ४५ ॥ स तदा ह्याहुतेः कालो दर्शस्य च वषट्क्रिया ॥ एतदृतुमुखं ज्ञेयममावास्यास्य पर्व्वणः ॥ ४६ ॥ दिवा पर्व्वण्यमावास्यां क्षीणेन्दौ बहुले तु वै ॥ तस्माद्दिवा

ह्यमावास्यां गृह्यतेऽसौ दिवाकरः ॥ गृह्यते वै दिवा ह्यस्मादमावास्यां दिविक्षयैः ॥ ४७ ॥ कलानामपि वै तासां बहुमान्याजडात्मकैः ॥ तिथीनां नाम
धेयानि विद्वद्भिः संज्ञितानि वै ॥ ४८ ॥ दर्शयेतामथान्योन्यं सूर्य्याचन्द्रमसावुभौ ॥ निष्क्रामत्यथ तेनैव क्रमशः सूर्य्यमण्डलात् ॥४९॥ द्विलवेन ह्य
होरात्रं भास्करं स्पृशते शशी ॥ स तदा ह्याहुतेः कालो दर्शस्य च वषट्क्रिया ॥ ५० ॥ कुहेति कोकिलेनोक्तो यः कालः परिचिह्नितः ॥ तत्कालसं
ज्ञिता यस्मादमावास्या कुहुः स्मृता ॥ ५१ ॥ सिनीवालीप्रमाणेन क्षीणशेषो निशाकरः ॥ अमावास्यां विशत्यर्कं सिनीवाली ततः स्मृता ॥ ५२ ॥
पर्व्वणः पर्व्वकालस्तु तुल्यो वै तु वषट्क्रिया ॥ चन्द्रसूर्य्यव्यतीपाते उभे ते पूर्णिमे स्मृते ॥ ५३ ॥ प्रतिपत्पञ्चदश्योश्च पर्व्वकालो द्विमात्रकः॥कालः
कुहुसिनीवाल्योः समुद्रो द्विलवः स्मृतः ॥ ५४ ॥ अर्काग्निमण्डले सोमे पर्व्वकालः कलाश्रयः ॥ एवं स शुक्लपक्षो वै रजन्याः पर्व्वसन्धिषु ॥ ५५ ॥
सम्पूर्णमण्डलः श्रीमांश्चन्द्रमा उपरज्यते ॥ यस्मादाप्यायते सोमः पञ्चदश्यान्तु पूर्णिमा ॥ ५६ ॥ दशभिः पञ्चभिश्चैव कलाभिर्दिवसक्रमात् ॥ त
स्मात्कला पञ्चदशी सोमे नास्ति तु षोडशी ॥ तस्मात्सोमस्य भवति पञ्चदश्यां महाक्षयः ॥ ५७ ॥ इत्येते पितरो देवाः सोमपाः सोमवर्द्धनाः ॥
आर्त्तवा ऋतवो यस्मात्ते देवा भावयन्ति च ॥५८॥ अतः पितॄन् प्रवक्ष्यामि मासश्राद्धभुजस्तु ये ॥ तेषां गतिश्च सत्त्वञ्च गतिं श्राद्धस्य चैव हि॥५९॥
न मृतानाङ्गतिः शक्या विज्ञातुं पुनरागतिः ॥ तपसापि प्रसिद्धेन किं पुनर्मांसचक्षुषा ॥६०॥ श्राद्धदेवान् पितॄनेतान् पितरो लौकिकाः स्मृताः ॥ देवाः
सौम्याश्च यज्वानः सर्वे चैव ह्ययोनिजाः ॥ ६१॥ देवास्ते पितरः सर्व्वे देवास्तान् भावयन्त्युत॥मनुष्याः पितरश्चैव तेभ्योन्ये लौकिकाः स्मृताः॥६२॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः॥यज्वानो ये तु सोमेन सोमवन्तस्तु ते स्मृताः ॥ ६३ ॥ ये यज्वानः स्मृतास्तेषां ते वै बर्हिषदः स्मृताः॥कर्म्मस्त्वेतेषु
युक्तास्ते तृप्यन्त्यादेहसम्भवात्॥६४॥अग्निष्वात्ताः स्मृतास्तेषां होमिनो याज्ययाजिनः॥ ये वाप्याश्रमधर्म्मेण प्रस्थानेषु व्यवस्थिताः॥६५॥अन्ते चनैव
सीदन्ति श्रद्धायुक्तेन कर्म्मणा ॥ ब्रह्मचर्य्येण तपसा यज्ञेन प्रजया च वै ॥ ६६ ॥ श्रद्धया विद्यया चैव प्रदानेन च सप्तधा ॥ कर्म्मस्वेतेषु ये युक्ता भव
न्त्यादेहपातनात् ॥ ६७ ॥ देवैस्तैः पितृभिः सार्द्धं सूक्ष्मकैः सोमपायकैः ॥ स्वर्गता दिवि मोदन्ते पितृमन्तमुपासते ॥६८॥ प्रजावतां प्रशंसैव स्मृता
सिद्धा क्रियावताम् ॥ तेषां निवापदत्तान्नं तत्कुलीनैश्च बान्धवैः॥ ६९ ॥ मासं श्राद्धभुजस्तृप्तिं लभन्ते सोमलौकिकाः॥ एते मनुष्याः पितरो मासि श्राद्ध
भुजस्तु ते॥७०॥ तेभ्योऽपरे तु ये चान्ये सङ्कीर्णाः कर्म्मयोनिषु ॥ भ्रष्टाश्चाश्रमधर्म्मेभ्यः स्वधास्वाहाविवर्जिताः ॥७१॥ भिन्नदेहा दुरात्मानः प्रेतभूता य
मक्षये॥स्वकर्म्माण्येव शोचन्ति यातनास्थानमागताः॥७२॥दीर्घायुषोऽतिशुष्काश्च विवर्णाश्च विवाससः॥क्षुत्पिपासापरीताश्च विद्रवन्ति इतस्ततः॥७३॥

सरित्सरस्तडागानि वापीश्चैव जलेप्सवः ॥ परान्नानि च लिप्सन्ते कम्पमानास्ततस्ततः ॥ ७४ ॥ स्थानेषु पाच्यमानाश्च यातायातेषु तेषु वै ॥
शाल्मलौ वैतरण्याञ्च कुम्भीपाकेषु तेषु च ॥ ७५ ॥ करम्भवालुकायाञ्च असिपत्रवने तथा ॥ शिलासम्पेषणे चैव पात्यमानाः स्वकर्म्मभिः ॥ ७६ ॥
तत्र स्थानानि तेषां वै दुःखानामप्यनाकवत् ॥ तेषां लोकान्तरस्थानां विविधैर्नामगोत्रतः ॥ ७७ ॥ भूम्यापसव्यदर्भेषु दत्त्वा पिण्डत्रयन्तु वै ॥ पति
तांस्तर्पयन्ते च प्रेतस्थानेष्वधिष्ठिताः ॥ ७८ ॥ अप्राप्ता यातनास्थानं सृष्टा ये भुवि पञ्चधा ॥ पश्चादिस्थावरान्तेषु भूतानां तेषु कर्म्मसु ॥ ७९ ॥
नानारूपासु जातीषु तिर्य्यग्योनिषु जातिषु ॥ यदाहारा भवन्त्येते तासु तास्विह योनिषु ॥ तस्मिंस्तस्मिंस्तदाहारं श्राद्धदत्तोपतिष्ठति ॥ ८० ॥ काले
न्यायागतं पात्रं विधिना प्रतिपादितम् ॥ प्राप्नोत्यन्नं यथादत्तं बन्धुर्यत्रावतिष्ठते ॥ ८१ ॥ यथा गोषु प्रनष्टासु वत्सो विन्दति मातरम् ॥ तथा श्राद्धे त
दिष्टानां मन्त्रः प्रापयते पितॄन् ॥ ८२॥ एवं ह्यविकलं श्राद्धं श्राद्धदत्तन्तु मन्त्रतः ॥ सनत्कुमारः प्रोवाच पश्यन् दिव्येन चक्षुषा ॥ गतागतिज्ञः प्रे
तानां प्राप्तश्राद्धस्य चैव हि ॥ ८३ ॥ बह्नीकाश्चोष्मपाश्चैव दिवाकीर्त्याश्च ते स्मृताः ॥ कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्व्वरी ॥ ८४ ॥ इत्ये
ते पितरो देवा देवाश्च पितरश्च वै ॥ ऋतार्त्तवा अनेके तु अन्योन्यपितरः स्मृताः ॥ ८५ ॥ एते तु पितरो देवा मानुषाः पितरश्च ये ॥ प्रीतेषु तेषु प्री
यन्ते श्रद्धायुक्तेन कर्म्मणा ॥ ८६ ॥ इत्येवं पितरः प्रोक्ताः पितॄणां सोमपायिनाम् ॥ एतत् पितृमतत्त्वं हि पुराणे निश्चयो मतः ॥ ८७ ॥ इत्यर्कपितृ
सोमानामैलस्य च समागमः ॥ सुधामृतस्य चावाप्तिः पितॄणाञ्चैव तर्पणम् ॥ ८८ ॥ पूर्णिमावास्ययोः कालः पितॄणां स्थानमेव च ॥ समासात्कीर्त्तित
स्तुभ्यमेष सर्गः सनातनः ॥ ८९ ॥ वैश्वरूप्यन्तु सर्व्वस्य कथितश्चैकदेशिकम् ॥ न शक्यं परिसङ्ख्यातुं श्रद्धेयं भूतिमिच्छता॥९०॥स्वायम्भुवस्य
हीत्येष सर्गः क्रान्तो मयात्र वै ॥ विस्तरेणानुपूर्व्या च भूयः किं वर्णयाम्यहम्॥९१॥इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते पितृवर्णनं नाम षट्पञ्चाशोऽध्यायः॥
॥५६॥ ऋषय ऊचुः ॥ चतुर्युगानि यान्यासन् पूर्व्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ तेषां निसर्गं तत्त्वञ्च श्रोतुमिच्छामि विस्तरात् ॥१॥ सूत उवाच ॥ पृथिव्या
दिप्रसङ्गेन यन्मया प्रागुदाहृतम् ॥ तेषाञ्चतुर्युगं ह्येतत् प्रवक्ष्यामि निबोधत ॥ २ ॥ सङ्ख्ययेह प्रसङ्ख्याय विस्ताराच्चैव सर्व्वशः ॥ युगञ्च युगभेदञ्च
युगधर्म्मन्तथैव च ॥ ३ ॥ युगसन्ध्यंशकञ्चैव युगसन्धानमेव च ॥ षट्प्रकारयुगाख्यानां प्रवक्ष्यामीह तत्त्वतः ॥ ४ ॥ लौकिकेन प्रमाणेन विबुद्धोऽब्द
स्तु मानुषः ॥ तेनाब्देन प्रसङ्ख्याय वक्ष्यामीह चतुर्युगम् ॥ ५॥ निमेषकालः काष्ठा च कलाश्चापि मुहूर्त्तकाः ॥ निमेषकालतुल्यं हि विद्याल्लघ्वक्षरञ्च
यत् ॥ ६ ॥ काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशच्च काष्ठा गणयेत् कलास्ताः ॥ त्रिंशत् कलाश्चैव भवेन्मुहूर्त्तास्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते ॥ ७ ॥

अहोरात्रे विभजते सूर्य्यो मानुषदैविके ॥ तत्राहः कर्म्मचेष्टायां रात्रिः स्वप्नाय कल्प्यते ॥ ८ ॥ पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः ॥ कृ
ष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्व्वरी ॥९॥ त्रिंशच्च मानुषा मासाः पित्र्यो मासश्च स स्मृतः ॥ शतानि त्रीणि मासानां षष्ट्या चाप्यधिकानि वै ॥
पित्र्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते ॥ १० ॥ मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत् ॥ पितॄणां त्रीणि वर्षाणि सङ्ख्यातानीह तानि वै ॥ चत्वा
रश्चाधिका मासाः पित्र्ये चैवेह कीर्त्तिताः ॥ ११ ॥ लौकिकेनैव मानेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः ॥ एतद्दिव्यमहोरात्रं शास्त्रेऽस्मिन् निश्चयो मतः॥१२॥
दिव्ये रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः ॥ अहस्तत्रोदगयनं रात्रिः स्याद्दक्षिणायनम् ॥ १३ ॥ ये ते रात्र्यहनी दिव्ये प्रसङ्ख्याते तयोः पुनः ॥ त्रिंश
च्च तानि वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः ॥ १४ ॥ मानुषञ्च शतं विद्धि दिव्यमासास्त्रयस्तु ते ॥ दश चैव तथाहानि दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ॥
॥ १५ ॥ त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि च ॥ दिव्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्त्तितः ॥ १६ ॥ त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः ॥
त्रिंशद्यानि तु वर्षाणि मतः सप्तर्षिवत्सरः ॥ १७ ॥ नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु ॥ अन्यानि नवतिश्चैव क्रौञ्चः संवत्सरः स्मृतः ॥ १८ ॥
षट्त्रिंशत्तु सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु ॥ वर्षाणान्तु शतं ज्ञेयं दिव्यो ह्येष विधिः स्मृतः ॥ १९ ॥ त्रीण्येव नियुतान्येव वर्षाणां मानुषाणि च ॥
षष्टिश्चैव सहस्राणि सङ्ख्यातानि तु सङ्ख्यया ॥ दिव्यवर्षसहस्रन्तु प्राहुः सङ्ख्याविदो जनाः ॥ २० ॥ इत्येवमृषिभिर्गीतं दिव्यया सङ्ख्ययान्वितम् ॥
दिव्येनैव प्रमाणेन युगसङ्ख्याप्रकल्पनम् ॥ २१ ॥ चत्वारि भारते वर्षे युगानि कवयो विदुः ॥ पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेता विधीयते ॥ द्वापरश्च
कलिश्चैव युगान्येतानि कल्पयेत् ॥ २२ ॥ चत्वार्य्याहुः सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् ॥ तत्र तावच्छती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥ २३ ॥
इतरासु च सन्ध्यासु सन्ध्यांशेषु च वै त्रिषु ॥ एकापायेन वर्त्तन्ते सहस्राणि शतानि च ॥ २४ ॥ त्रेता त्रीणि सहस्राणि सङ्ख्यैव परिकीर्त्यते ॥ तस्या
स्तु त्रिशती सन्ध्या सन्ध्यांशश्च तथाविधः ॥ २५ ॥ द्वापरं द्वे सहस्रे तु युगमाहुर्मनीषिणः ॥ तस्यापि द्विशती सन्ध्या सन्ध्यांशः सन्धया समः ॥
॥ २६ ॥ कलिं वर्षसहस्रन्तु युगमाहुर्मनीषिणः ॥ तस्याप्येकशती सन्ध्या सन्ध्यांशः सन्ध्यया समः ॥ २७ ॥ एषा द्वादशसाहस्री युगाख्या परिकी ॥ ८८॥
र्त्तिता ॥ कृतन्त्रेता द्वापरञ्च कलिश्चैव चतुष्टयम् ॥ २८ ॥ अत्र संवत्सराः सृष्टा मानुषेण प्रमाणतः ॥ कृतस्य तावद्वक्ष्यामि वर्षाणां तत्प्रमाणतः ॥
॥ २९ ॥ सहस्राणां शतान्यत्र चतुर्दश तु सङ्ख्यया ॥ चत्वारिंशत् सहस्राणि कलिकालयुगस्य तु ॥ ३० ॥ एवं सङ्ख्यातकालश्च कालेष्विह विशेषतः ॥
॥ ३१ ॥ चत्वारिंशत्त्रीणि चैव नियुतानि च सङ्ख्यया ॥ विंशतिश्च सहस्राणि ससन्ध्यांशश्चतुर्युगः ॥
एवं चतुर्युगः कालो विना सन्ध्यांशकैः स्मृतः ॥ ३१ ॥ चत्वारिंशत्त्रीणि चैव नियुतानि च सङ्ख्यया ॥ विंशतिश्च सहस्राणि ससन्ध्यांशश्चतुर्युगः ॥

॥ ३२ ॥ एवं चतुर्युगाख्या तु साधिका ह्येकसप्ततिः ॥ कृतत्रेतादियुक्ता सा मनोरन्तरमुच्यते ॥ ३३ ॥ मन्वन्तरस्य सङ्ख्या तु वर्षाग्रेण निबोधत ॥
त्रिंशत्कोट्यस्तु वर्षाणां मानुषेण प्रकीर्त्तिताः॥३४॥सप्तषष्टिस्तथान्यानि नियुतान्यधिकानि तु॥विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयं साधिकां विना ॥ ३५ ॥
मन्वन्तरस्य सङ्ख्यैषा सङ्ख्याविद्भिर्द्विजैः स्मृता॥मन्वन्तरस्य कालोऽयं युगैः सार्द्धं प्रकीर्त्तितः॥३६॥चतुःसहस्त्रयुक्तं वै प्रथमन्तत् कृतं युगम्॥ त्रेतावशिष्टं
वक्ष्यामि द्वापरं कलिमेव च॥३७॥युगपत्समवेतार्थौ द्विधा वक्तुं न शक्यते॥क्रमागतं मया ह्येतत्तुभ्यं प्रोक्तं युगद्वयम् ॥ ऋषिवंशप्रसङ्गेन व्याकुलत्वा
त्तथैव च ॥३८॥ तत्र त्रेतायुगस्यादौ मनुः सप्तर्षयश्च ते ॥ श्रौतं स्मार्त्तञ्च धर्म्मञ्च ब्रह्मणा च प्रचोदितम्॥३९॥ दाराग्निहोत्रसंयोगमृग्यजुःसामसंज्ञितम् ॥
इत्यादिलक्षणं श्रौतं धर्म्मं सप्तर्षयोऽब्रुवन् ॥ ४० ॥ परस्परागतं धर्म्मं स्मार्त्तञ्चाचारलक्षणम् ॥ वर्णाश्रमाचारयुतं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥ ४१ ॥
सत्येन ब्रह्मचर्य्येण श्रुतेन तपसा च वै ॥ तेषां सुतप्ततपसामार्षेयेण क्रमेण तु ॥ ४२ ॥ सप्तर्षीणां मनोश्चैव आद्ये त्रेतायुगस्य तु ॥ अबुद्धिपूर्व्वकं
तेषामक्रियापूर्व्वमेव च ॥ ४३ ॥ अभिव्यक्तास्तु ते मन्त्रास्तारकाद्यैर्निदर्शनैः ॥ आदिकल्पे तु देवानां प्रादुर्भूतास्तु ते स्वयम् ॥ ४४ ॥ प्रणाशे त्वथ
सिद्धीनामप्यासाञ्च प्रवर्तनम् ॥ आसन् मन्त्रा व्यतीतेषु ये कल्पेषु सहस्रशः ॥ ते मन्त्रा वै पुनस्तेषां प्रतिभाससमुत्थिताः ॥ ४५ ॥ ऋचो
यजूंषि सामानि मन्त्राश्चाथर्व्वणानि च ॥ सप्तर्षिभिस्तु ते प्रोक्ताः स्मार्तं धर्म्मं मनुर्जगौ ॥ ४६ ॥ त्रेतादौ संहिता वेदाः केवला धर्म्मशेषतः ॥ संरो
धादायुषश्चैव व्यस्यन्ते द्वापरेषु ते ॥ ४७ ॥ ऋषयस्तपसा देवाः कलौ च द्वापरेषु वै ॥ अनादिनिधना दिव्याः पूर्व्वं सृष्टाः स्वयम्भुवा ॥ ४८ ॥ स
धर्म्माः सप्रजाः साङ्गा यथाधर्म्मं युगे युगे ॥ विक्रीडन्ते समानार्था वेदवादा यथायुगम् ॥ ४९ ॥ आरम्भयज्ञा क्षत्रस्य हविर्यज्ञा विशाम्पतेः ॥ परि
चारयज्ञाः शूद्रास्तु जपयज्ञा द्विजोत्तमाः ॥ ५० ॥ तथा प्रमुदिता वर्णास्त्रेतायां धर्म्मपालिताः ॥ क्रियावन्तः प्रजावन्तः समृद्धाः सुखिनस्तथा ॥५१॥
ब्राह्मणाननुवर्त्तन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियान् विशः ॥ वैश्यानुवर्तिनः शूद्राः परस्परमनुव्रताः ॥ ५२ ॥ शुभाः प्रवृत्तयस्तेषां धर्म्मा वर्णाश्रमास्तथा ॥
सङ्कल्पितेन मनसा वाचोक्तेन स्वकर्म्मणा ॥ त्रेतायुगे त्वविकलः कर्म्मारम्भः प्रसिद्ध्यति ॥ ५३ ॥ आयुर्म्मेधा बलं रूपमारोग्यं धर्म्मशीलता ॥
सर्व्वसाधारणा ह्येते त्रेतायां वै भवन्त्युत ॥५४॥ वर्णाश्रमव्यवस्थानं तेषां ब्रह्मा तथाऽकरोत्॥पुनः प्रजास्तु ता मोहात्तान् धर्म्मान्न ह्यपालयन्॥५५॥
परस्परविरोधेन मनुन्ताः पुनरन्वयुः ॥ मनुः स्वायम्भुवो दृष्ट्वा याथातथ्यं प्रजापतिः ॥ ५६ ॥ धाता तु शतरूपायाः पुमान् स उदपादयत् ॥ प्रिय
व्रतोत्तानपादौ प्रथमन्तौ महीपती ॥ ५७ ॥ ततः प्रभृति राजान उत्पन्ना दण्डधारिणः ॥ प्रजानां रञ्जनाच्चैव राजानस्त्वभवन्नृपाः ॥ ५८ ॥

प्रच्छन्नपापा ये जेतुमशक्या मनुजा भुवि ॥ धर्म्मसंस्थापनार्थाय तेषां शास्त्रे तपो मया ॥५९॥ वर्णानां प्रविभागाश्च त्रेतायां संप्रकीर्त्तिताः ॥ संहिताश्च
ततो मन्त्रा ऋषिभिर्ब्राह्मणैस्तु ते ॥ ६० ॥ यज्ञः प्रवर्त्तितश्चैव तदा ह्येवन्तु दैवतैः ॥ यामैः शुक्रैर्जयैश्चैव सर्व्वसम्भारसंवृतैः ॥ ६१ ॥
सार्द्धं विश्वसृजा चैव देवेन्द्रेण महौजसा ॥ स्वायम्भुवेऽन्तरे देवैर्यज्ञास्ते प्राक् प्रवर्त्तिताः ॥ ६२ ॥ सत्यं जपस्तपो दानं त्रेतायां धर्म्म उच्यते ॥
क्रिया धर्म्मश्च ह्रसते सत्यधर्म्मः प्रवर्त्तते ॥ ६३ ॥ प्रजायन्ते ततः शूरा आयुष्मन्तो महाबलाः ॥ न्यस्तदण्डमहाभागा यज्वानो ब्रह्मवादिनः ॥६४॥
पद्मपत्रायताक्षाश्च पृथूरस्काः सुसंहिताः ॥ सिंहान्तका महासत्वा मत्तमातङ्गगामिनः ॥ ६५ ॥ महाधनुर्द्धराश्चैव त्रेतायां चक्रवर्त्तिनः ॥ सर्व्वलक्षण
सम्पन्ना न्यग्रोधपरिमण्डलाः ॥ ६६ ॥ न्यग्रोधौ तौ स्मृतौ बाहू व्यामो न्यग्रोध उच्यते ॥ व्यामेनैवोच्छ्रयो यस्य सम ऊर्द्धन्तु देहिनः ॥ समुच्छ्रय
परिणाहो ज्ञेयो न्यग्रोधमण्डलः ॥ ६७ ॥ चक्रं रथो मणिर्भार्य्या निधिरश्वो गजास्तथा ॥ सप्तातिशयरत्नानि सर्व्वेषाञ्चक्रवर्त्तिनाम् ॥ ६८ ॥ चक्रं रथो
मणिः खड्गं धनूरत्नञ्च पञ्चमम् ॥ केतुर्निधिश्च सप्तैते प्राणहीनाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ६९ ॥ भार्य्या पुरोहितश्चैव सेनानी रथकृच्च यः ॥ मन्त्र्यश्वः क
लभश्चैव प्राणिनः सम्प्रकीर्त्तिताः ॥ ७० ॥ रत्नान्येतानि दिव्यानि संसिद्धानि महात्मनाम् ॥ चतुर्दश विधेयानि सर्व्वेषां चक्रवर्त्तिनाम् ॥ ७१ ॥
विष्णोरंशेन जायन्ते पृथिव्याञ्चक्रवर्त्तिनः ॥ मन्वन्तरेषु सर्व्वेषु अतीतानागतेषु वै ॥७२॥ भूतभव्यानि यानीह वर्त्तमानानि यानि च ॥ त्रेतायुगादिकेष्वत
जायन्ते चक्रवर्त्तिनः ॥ ७३ ॥ भद्राणीमानि तेषां वै भवन्तीह महीक्षिताम् ॥ अद्भुतानि च चत्वारि बलं धर्म्मः सुखन्धनम् ॥ ७४ ॥ अन्योन्यस्याविरोधेन
प्राप्यन्ते वै नृपैः समम् ॥ अर्थो धर्म्मश्च कामश्च यशो विजय एव च ॥७५॥ ऐश्वर्य्येणाणिमाद्येन प्रभुशक्त्या तथैव च ॥ अन्येन तपसा चैव ऋषीनभिभवन्ति
च ॥ बलेन तपसा चैव देवदानवमानुषान् ॥७६॥ लक्षणैश्चापि जायन्ते शरीरस्थैरमानुषैः ॥ केशस्थिता ललाटोर्णा जिह्वा चास्यप्रमार्जनी ॥ ताम्रप्रभोष्ठदन्तो
ष्ठाः श्रीवत्साश्चोर्द्धरोमशाः ॥ ७७ ॥ आजानुबाहवश्चैव जालहस्ता वृषाङ्किताः ॥ न्यग्रोधपरिणाहाश्च सिंहस्कन्धाः सुमेहनाः ॥ गजेन्द्रगतयश्चैव महाहनव
एव च ॥ ७८ ॥ पादयोश्चक्रमत्स्यौ तु शङ्खपद्मौ तु हस्तयोः ॥ पञ्चाशीतिसहस्राणि ते भवन्त्यजरा नृपाः ॥ ७९ ॥ असङ्गा गतयस्तेषाञ्चतस्रश्चक्रव
र्त्तिनाम् ॥ अन्तरिक्षे समुद्रे च पाताले पर्व्वतेषु च ॥८०॥ इज्या दानं तपः सत्यं त्रेतायां धर्म्म उच्यते ॥ तदा प्रवर्त्तते धर्म्मो वर्णाश्रमविभागशः ॥८१॥
मर्य्यादास्थापनार्थं च दण्डनीतिः प्रवर्त्तते ॥ हृष्टपुष्टाः प्रजाः सर्व्वा ह्यरोगाः पूर्णमानसाः ॥ ८२ ॥ एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायुगविधौ स्मृतः ॥ त्रीणि
वर्षसहस्राणि तदा जीवन्ति मानवाः ॥ ८३ ॥ पुत्रपौत्रसमाकीर्णा म्रियन्ते च क्रमेण तु ॥ एष त्रेतायुगे धर्म्मस्त्रेतासन्ध्यौ निबोधत ॥ ८४ ॥ त्रेतायु

॥ ८९ ॥

गस्वभावस्तु सन्ध्यापादेन वर्त्तते ॥ सन्ध्यायां वै स्वभावस्तु युगपादेन तिष्ठति ॥ ८५ ॥ ॥ शांशपायन उवाच ॥ ॥ कथं त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत्प्रव
र्तनम् ॥ पूर्वे स्वायम्भुवे सर्गे यथावत्तद्ब्रवीहि मे ॥ ८६ ॥ अन्तर्हितायां सन्ध्यायां सार्द्धं कृतयुगेन वै ॥ कलाख्यायां प्रवृत्तायां प्राते त्रेतायुगे तदा ॥
वर्णाश्रमव्यवस्थानं कृतवन्तश्च वै पुनः ॥ ८७ ॥ सम्भारांस्तांश्च सम्भृत्य कथं यज्ञः प्रवर्तितः ॥ एतच्छ्रुत्वाऽब्रवीत्सूतः श्रूयतां शांशपायन ॥ ८८ ॥
यथा त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत्प्रवर्तनम् ॥ ओषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने ॥ प्रतिष्ठितायां वार्त्तायां गृहाश्रमपुरेषु च ॥ ८९ ॥ वर्णाश्रम
व्यवस्थानं कृत्वा मन्त्रांश्च संहिताम् ॥ मन्त्रान् संयोजयित्वाथ इहामुत्रेषु कर्म्मसु ॥ ९० ॥ तथा विश्वभुगिन्द्रस्तु यज्ञं प्रावर्तयत्तदा ॥ दैवतैः सहि
तः सर्व्वैः सर्व्वसम्भारसम्भृतम् ॥ ९१ ॥ अथाश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः ॥ यजन्ते पशुभिर्मेध्यैः हुत्वा सर्व्वे समागताः ॥ ९२ ॥ कर्म्मव्यग्रेषु
ऋत्विक्षु सतते यज्ञकर्म्मणि ॥ सम्प्रणीतेषु तेष्वेवमागमेष्वथ सत्वरम् ॥ ९३ ॥ परिक्रान्तेषु लघुषु अध्वर्य्युवृषभेषु च ॥ आलब्धेषु च मेध्येषु
तथा पशुगणेषु वै ॥ ९४ ॥ हविष्यग्नौ हूयमाने देवानां देवहोतृभिः ॥ आहूतेषु च देवेषु यज्ञभाक्षु महात्मसु ॥ ९५ ॥ य इन्द्रियात्मका देवा यज्ञभाजस्त
था तु ये ॥ तान् यजन्ते तदा देवाः कल्पादिषु भवन्ति ये ॥ ९६ ॥ अध्वर्य्यवः प्रैषकाले व्युत्थिता ये महर्षयः ॥ महर्षयस्तु तान् दृष्ट्वा दीनान् पशुगणान् स्थि
तान् ॥ पप्रच्छुरिन्द्रं सम्भूय कोऽयं यज्ञविधिस्तव ॥ ९७ ॥ अधर्म्मो बलवानेष हिंसाधर्म्मेप्सया तव ॥ नेष्टः पशुवधस्त्वेष तव यज्ञे सुरोत्तम ॥ ९८ ॥ अधर्म्मो
धर्म्मघाताय प्रारब्धः पशुभिस्त्वया ॥ नायं धर्मो ह्यधर्मोऽयं न हिंसा धर्म्म उच्यते ॥ ९९ ॥ आगमेन भवान् यज्ञं करोतु यदिहेच्छसि ॥ विधिदृष्टेन यज्ञेन ध
र्म्मेणाव्ययहेतुना ॥ यज्ञबीजैः सुरश्रेष्ठ येषु हिंसा न विद्यते ॥ १०० ॥ त्रिवर्षपरमं कालमुषितैरप्ररोहिभिः ॥ एष धर्मो महानिन्द्र स्वयम्भुविहितः पुरा ॥ १०१ ॥
एवं विश्वभुगिन्द्रस्तु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ जङ्गमैः स्थावरैर्वेति कैर्यष्टव्यमिहोच्यते ॥ १०२ ॥ ते तु खिन्ना विवादेन तत्त्वयुक्ता महर्षयः ॥ सन्धाय
वाक्यमिन्द्रेण प्रपच्छुश्चेश्वरं वसुम् ॥ १०३ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ महाप्राज्ञ कथं दृष्टस्त्वया यज्ञविधिर्नृप ॥ उत्तानपादे प्रब्रूहि संशयं छिन्धि नः
प्रभो ॥ १०४ ॥ श्रुत्वा वाक्यं ततस्तेषामविचार्य्य बलाबलम् ॥ वेदशास्त्रमनुस्मृत्य यज्ञतत्त्वमुवाच ह ॥ यथोपदिष्टैर्यष्टव्यमितिहोवाच पार्थिवः ॥
॥ १०५ ॥ यष्टव्यं पशुभिर्मेध्यैरथ बीजैः फलैस्तथा ॥ हिंसास्वभावो यज्ञस्य इति मे दर्शयत्यसौ ॥ १०६ ॥ यथेह संहितामन्त्रा हिंसालिङ्गा महर्षिभिः ॥
दीर्घेण तपसा युक्तैर्दर्शनैस्तारकादिभिः ॥ तत्प्रामाण्यान्मया चोक्तं तस्मान्मा मन्तुमर्हथ ॥ १०७ ॥ यदि प्रमाणं तान्येव मन्त्रवाक्यानि वै द्विजाः ॥
तदा प्रवर्त्ततां यज्ञो ह्यन्यथा नोऽनृतं वचः ॥ एवं हृतोत्तरास्ते वै युक्तात्मानस्तपोधनाः ॥ १०८ ॥ अधश्च भवनं दृष्ट्वा तमर्थं वाग्यतो भव ॥ मि

थ्यावादी नृपो यस्मात् प्रविवेश रसातलम् ॥ १०९ ॥ इत्युक्तमात्रे नृपतिः प्रविवेश रसातलम् ॥ ऊर्द्ध्वचारी वसुर्भूत्वा रसातलचरोऽभवत् ॥ ११० ॥ वसुधातलवासी तु तेन वाक्येन सोऽभवत् ॥ धर्म्माणां संशयच्छेत्ता राजा वसुरधोगतः ॥ १११ ॥ तस्मान्न वाच्यमेकेन बहुज्ञेनापि संशयः ॥ बहुद्वारस्य धर्म्मस्य सूक्ष्माद्दूरमुपागतिः ॥ ११२ ॥ तस्मान्न निश्चयाद्वक्तुं धर्म्मः शक्यस्तु केनचित् ॥ देवानृषीनुपादाय स्वायम्भुवमृते मनुम् ॥ ११३ ॥ तस्मान्न हिंसाधर्म्मस्य द्वारमुक्तं महर्षिभिः ॥ ऋषिकोटिसहस्राणि कर्म्मभिः स्वैर्दिवं ययुः ॥ ११४ ॥ तस्मान्न दानं यज्ञं वा प्रशंसन्ति महर्षयः ॥ तुच्छं मूलं फलं शाकमुदपात्रं तपोधनाः ॥ एवं दत्त्वा विभवतः स्वर्गलोके प्रतिष्ठिताः ॥ ११५ ॥ अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया तपः ॥ ब्रह्मचर्य्यं तथा सत्यमनुक्रोशः क्षमा धृतिः ॥ सनातनस्य धर्म्मस्य मूलमेतद्दुरासदम् ॥ ११६ ॥ धर्म्ममन्त्रात्मको यज्ञस्तपश्चानशनात्मकम् ॥ यज्ञेन देवानाप्नोति वैराग्यं तपसा पुनः ॥ ११७ ॥ ब्राह्मण्यं कर्म्मसंन्यासाद्वैराग्यात् प्रेक्षते लयम् ॥ ज्ञानात् प्राप्नोति कैवल्यं पञ्चैता गतयः स्मृताः ॥ ११८ ॥ एवं विवादः सुमहान् यज्ञस्यासीत् प्रवर्त्तने ॥ ऋषीणां देवतानाञ्च पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ ११९ ॥ ततस्ते ऋषयो दृष्ट्वाऽद्भुतं वर्त्म बलेन तु ॥ वसोर्वाक्यमनादृत्य जग्मुस्ते वै यथागताः ॥ १२० ॥ गतेषु देवसङ्घेषु देवा यज्ञमवाप्नुयुः ॥ श्रूयन्ते हि तपःसिद्धा ब्रह्मक्षत्रमया नृपाः ॥ १२१ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ ध्रुवो मेधातिथिर्वसुः ॥ सुमेधा विरजाश्चैव शङ्खपाद्रज एव च ॥ प्राचीनबर्हिः पर्जन्यो हविर्द्धानादयो नृपाः ॥ १२२ ॥ एते चान्ये च बहवो नृपाः सिद्धा दिवङ्गताः ॥ राजर्षयो महासत्त्वा येषां कीर्त्तिः प्रतिष्ठिता ॥ १२३ ॥ तस्माद्विशिष्यते यज्ञात्तपः सर्वेषु कारणैः ॥ ब्रह्मणा तपसा सृष्टं जगद्विश्वमिदं पुरा ॥ १२४ ॥ तस्मान्नात्येति तद्यज्ञं तपोमूलमिदं स्मृतम् ॥ यज्ञप्रवर्त्तनं ह्येवमतः स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ ततः प्रभृति यज्ञोऽयं युगैः सह व्यवर्त्तत ॥ १२५ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते यज्ञप्रवर्त्तनं नाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विधिं पुनः ॥ तत्र त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरं प्रतिपद्यते ॥ १ ॥ द्वापरादौ प्रजानान्तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या ॥ परिवृत्ते युगे तस्मिंस्ततः सा संप्रणश्यति ॥२॥ ततः प्रवर्त्तते तासां प्रजानां द्वापरे पुनः ॥ लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः ॥३॥ सम्भेदश्चैव वर्णानां कार्य्याणाञ्चाविनिर्णयः ॥ यज्ञौषधेः पशोर्दण्डो मदो दम्भोऽक्षमा बलम् ॥ एषां रजस्तमोयुक्ता प्रवृत्तिर्द्वापरे स्मृता ॥४॥ आद्ये कृते च धर्मोऽस्ति त्रेतायां सम्प्रपद्यते ॥ द्वापरे व्याकुलीभूत्वा प्रणश्यति कलौ युगे ॥५॥ वर्णानां विपरिध्वंसः संकीर्त्यते तथाश्रमः ॥ द्वैधमुत्पद्यते चैव युगे तस्मिन् श्रुतौ स्मृतौ ॥६॥ द्वैधात् श्रुतेः स्मृतेश्चैव निश्चयो नाधिगम्यते ॥ अनिश्चयाधिगमनाद्धर्म्मतत्त्वं निगद्यते ॥ धर्म्मतत्त्वे तु भिन्नानां मतिभेदो भवेन्नृणाम् ॥७॥

परस्परविभिन्नैस्तैर्दृष्टीनां विभ्रमेण च ॥ अयं धर्मो ह्ययं नेति निश्चयो नाभिगम्यते ॥८॥ कारणानाञ्च वैकल्यात् कारणस्याप्यनिश्चयात् ॥ मतिभेदे च तेषां वै दृष्टीनां विभ्रमो भवेत् ॥ ९ ॥ ततो दृष्टिविभिन्नैस्तैः कृतं शास्त्रकुलन्त्विदम् ॥ एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतास्विह विधीयते ॥ १० ॥ संरोधादायुषश्चैव दृश्यते द्वापरेषु च ॥ वेदव्यासैश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु ॥ ११ ॥ ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः ॥ मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरवर्णविपर्य्ययैः ॥ १२ ॥ संहिता ऋग्यजुःसाम्नां संहन्यन्ते श्रुतर्षिभिः ॥ सामान्याद्वैकृताच्चैव दृष्टिभिन्नैः क्वचित्क्वचित् ॥ १३ ॥ ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि मन्त्रप्रवचनानि च ॥ अन्ये तु प्रहितास्तीर्थैः केचित्तान् प्रत्यवस्थिताः ॥ १४ ॥ द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते भिन्नवृत्ताश्रमा द्विजाः ॥ एकमाध्वर्य्यवं पूर्व्वमासीद्द्वैधं पुनस्ततः ॥ १५ ॥ सामान्यविपरीतार्थैः कृतं शास्त्रकुलन्त्विदम् ॥ आध्वर्य्यवस्य प्रस्तावैर्बहुधा व्याकुलं कृतम् ॥ १६ ॥ तथैवाथर्वऋक्सान्नां विकल्पैश्चाप्यसंक्षयैः ॥ व्याकुलं द्वापरे भिन्नं क्रियते भिन्नदर्शनैः ॥ १७ ॥ तेषां भेदाः प्रभेदाश्च विकल्पैश्चाप्यसंक्षयाः ॥ द्वापरे सम्प्रवर्तन्ते विनश्यन्ति पुनः कलौ ॥ १८ ॥ तेषां विपर्य्ययाश्चैव भवन्ति द्वापरे पुनः ॥ अवृष्टिर्मरणञ्चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः ॥ १९ ॥ वाङ्मनःकर्म्मजैर्दुःखैर्निर्वेदो जायते पुनः ॥ निर्व्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा ॥ २० ॥ विचारणाच्च वैराग्यं वैराग्याद्दोषदर्शनम् ॥ दोषाणां दर्शनाच्चैव द्वापरे ज्ञानसम्भवः ॥ २१ ॥ तेषाञ्च मानिनां पूर्वमाद्ये स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ उत्पद्यन्ते हि शास्त्राणां द्वापरे परिपन्थिनः ॥ २२ ॥ आयुर्वेदविकल्पाश्च अङ्गानां ज्योतिषस्य च ॥ अर्थशास्त्रविकल्पश्च हेतुशास्त्रविकल्पनम् ॥ २३ ॥ स्मृतिशास्त्रप्रभेदाश्च प्रस्थानानि पृथक् पृथक् ॥ द्वापरेष्वभिवर्त्तन्ते मतिभेदास्तथा नृणाम् ॥ २४ ॥ मनसा कर्म्मणा वाचा कृच्छ्राद्वार्त्ता प्रसिद्ध्यति ॥ द्वापरे सर्व्वभूतानां कायक्लेशपुरस्कृता ॥ २५ ॥ लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः ॥ वेदशास्त्रप्रणयनं धर्म्माणां सङ्करस्तथा ॥ २६ ॥ द्वापरेषु प्रवर्त्तन्ते रोगो लोभो वधस्तथा ॥ वर्णाश्रमपरिध्वंसाः कामद्वेषौ तथैव च ॥ २७ ॥ पूर्णे वर्षसहस्रे द्वे परमायुस्तथा नृणाम् ॥ निःशेषे द्वापरे तस्मिन् तस्य सन्ध्या तु पादतः ॥ २८ ॥ प्रतिष्ठते गुणैर्हीनो धर्मोऽसौ द्वापरस्य तु ॥ तथैव सन्ध्यापादेन अंशस्तस्यावतिष्ठते ॥ २९ ॥ द्वापरस्य च वर्षे या तिष्यस्य तु निबोधत ॥ द्वापरस्यांशशेषे तु प्रतिपत्तिः कलेरतः ॥ ३० ॥ हिंसासूयानृतं माया वधश्चैव तपस्विनाम् ॥ एते स्वभावास्तिष्यस्य साधयन्ति च वै प्रजाः ॥ ३१ ॥ एष धर्म्मः कृतः कृत्स्नो धर्म्मश्च परिहीयते ॥ मनसा कर्म्मणा स्तुत्या वार्त्ता सिद्ध्यति वा न वा ॥ ३२ ॥ कलौ प्रमारको रोगः सततं क्षुद्भयानि वै ॥ अनावृष्टिभयं घोरं दर्शनञ्च विपर्य्ययम् ॥ ३३ ॥ न प्रमाणं स्मृतेरस्ति तिष्ये लोके युगे युगे ॥ गर्भस्थो म्रियते कश्चिद्यौवनस्थस्तथापरः ॥ स्थाविरे मध्यकौमारे म्रियन्ते वै कलौ प्रजाः ॥ ३४ ॥ अधार्म्मिकास्त्वनाचारास्तीक्ष्ण

कोपाल्पतेजसः ॥ अनृतब्रुवश्च सततन्तिष्ये जायन्ति वै प्रजाः ॥ ३५ ॥ दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः ॥ विप्राणां कर्म्मदोषैस्तैः प्रजानां जायते भयम् ॥ ३६ ॥ हिंसा माया तथेर्ष्या च क्रोधोऽसूयाऽक्षमाऽनृतम् ॥ तिष्ये भवन्ति जन्तूनां रागो लोभश्च सर्व्वशः ॥ ३७ ॥ संक्षोभो जायतेऽत्यर्थं कलिमासाद्य वै युगम् ॥ नाधीयन्ते तदा वेदा न यजन्ते द्विजातयः ॥ उत्सीदन्ति नराश्चैव क्षत्रियाः सविशः क्रमात् ॥ ३८ ॥ शूद्राणामन्त्ययोनेस्तु सम्बन्धा ब्राह्मणैः सह ॥ भवन्तीह कलौ तस्मिन् शयनासनभोजनैः ॥ ३९ ॥ राजानः शूद्रभूयिष्ठा पाषण्डानां प्रवर्तकाः ॥ भ्रूणहत्याः प्रजास्तत्र प्रजा एवं प्रवर्त्तते ॥ ४० ॥ आयुर्मेधा बलं रूपं कुलञ्चैव प्रहीयते ॥ शूद्राश्च ब्राह्मणाचाराः शूद्राचाराश्च ब्राह्मणाः ॥ ४१ ॥ राजवृत्ते स्थिताश्चौराश्चौरवृत्ताश्च पार्थिवाः ॥ भृत्याश्च नष्टसुहृदो युगान्ते पर्य्युपस्थिते ॥ ४२ ॥ अशीलिन्योऽव्रताश्चापि स्त्रियो मद्यामिषप्रियाः ॥ मायामात्रा भविष्यन्ति युगान्ते प्रत्युपस्थिते ॥ ४३ ॥ श्वापदप्रबलत्वञ्च गवाञ्चैवाप्युपक्षयः ॥ साधूनां विनिवृत्तिश्च विद्यात्तस्मिन् कलौ युगे ॥ ४४ ॥ तदा सूक्ष्मे महोदर्को दुर्लभो भोगिनान्तथा ॥ चतुराश्रमशैथिल्याद्धर्मः प्रविचलिष्यति ॥४५॥तदा ह्यल्पफला देवी भवेद्भूमिर्महीयसी॥शूद्रास्तपश्चरिष्यन्ति युगान्ते प्रत्युपस्थिते॥४६॥ तदा ह्यैकाहिको धर्मो द्वापरे यश्च मासिकः ॥ त्रेतायां वत्सरस्थश्च एकाहादतिरिच्यते ॥४७॥ अरक्षितारो हर्त्तारो बलिभागस्य पार्थिवाः ॥ युगान्तेषु भविष्यन्ति स्वरक्षणपरायणाः ॥ ४८ ॥ अक्षत्रियाश्च राजानो विशः शूद्रोपजीविनः ॥ शूद्राभिवादिनः सर्व्वे युगान्ते द्विजसत्तमाः ॥ ४९ ॥ पतगश्च भविष्यन्ति बहवोऽस्मिन् कलौ युगे ॥ चित्रवर्षी तदा देवो यदा स्यात्तु युगक्षयः ॥ ५० ॥ सर्व्वे वाणिजकाश्चापि भविष्यन्त्यधमे युगे ॥ भूयिष्ठं कूटमानैश्च पण्यविक्रीततेजनैः ॥ ५१ ॥ कुशीलचर्य्याः पाषण्डैर्वृथारूपैः समावृतम् ॥ पुरुपाल्पं बहुस्त्रीकं युगान्ते पर्युपस्थिते ॥ ५२ ॥ बहुयाचनको लोको भविष्यति परस्परम् ॥ क्रव्यादनः क्रूरवाक्यो नार्जवो नानसूयकः ॥ ५३ ॥ न कृते प्रतिकर्ता च क्षीणो लोको भविष्यति ॥ अशङ्का चैव पतिते तद्युगान्तस्य लक्षणम् ॥ ५४ ॥ नरशून्या वसुमती शून्या चैव भविष्यति ॥ मण्डलानि भवन्त्यत्र देशेषु नगरेषु च ॥ ५५ ॥ अल्पोदका चाल्पफला भविष्यति वसुन्धरा ॥ गोप्तारश्चाप्यगोप्तारः प्रभविष्यन्त्यशासनाः ॥ ५६ ॥ हर्त्तारः पररत्नानां परदारप्रधर्षकाः ॥ कामात्मानो दुरात्मानो ह्यधर्म्मात्साहसप्रियाः ॥ ५७ ॥ अनष्टचेतनाः पुंसो मुक्तकेशास्तु चूलिकाः ॥ ऊनषोडशवर्षाश्च प्रजायन्ते युगक्षये ॥ ५८ ॥ शुल्कदन्ता जिताक्षाश्च मुण्डाः काषायवाससः ॥ शूद्रा धर्म्मञ्चरिष्यन्ति युगान्ते पर्युपस्थिते ॥ ५९ ॥ सस्यचौरा भविष्यन्ति तथा चैलाभिमर्शनाः ॥ चौराश्चौरस्य हर्त्तारो हन्तुर्हर्त्तार एव च ॥६०॥ ज्ञानकर्म्मण्युपरते लोके निष्क्रियताङ्गते ॥ कीटमूषिकसर्पाश्च धर्षयिष्यन्ति मानवान्॥६१॥सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सामर्थ्यं दुर्लभं भवेत्॥

कौशिकाः प्रतिवत्स्यन्ति देशान् क्षुद्भयपीडितान् ॥६२॥दुःखेनाभिप्लुतानाञ्च परमायुः शतं भवेत्॥दृश्यन्ते न च दृश्यन्ते वेदाः कलियुगेऽखिलाः॥६३॥
उत्सीदन्ति तथा यज्ञाः केवला धर्म्मपीडिताः ॥ कषायिणश्च निर्ग्रन्थास्तथा कापालिनश्च ह ॥ ६४॥ वेदविक्रयिणश्चान्ये तीर्थविक्रयिणोऽपरे ॥ वर्णाश्र
माणां ये चान्ये पाषण्डाः परिपन्थिनः ॥६५॥ उत्पद्यन्ते तथा ते वै संप्राप्ते तु कलौ युगे ॥ नाधीयन्ते तदा वेदाः शूद्रा धर्म्मार्थकोविदाः ॥६६॥ यजन्ते ना
श्वमेधेन राजानः शूद्रयोनयः ॥ स्त्रीवधं गोवधं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम्॥ उपहन्युस्तदाऽन्योन्यं साधयन्ति तथा प्रजाः ॥६७॥ दुःखप्रचारतोऽल्पायुर्देशो
त्सादः सरोगता ॥ मोहो ग्लानिस्तथा सौख्यं तमोवृत्तं कलौ स्मृतम्॥६८॥प्रजा तु भ्रूणहत्यायामथ वै सम्प्रवर्त्तते॥तस्मादायुर्बलं रूपं कलिं प्राप्य प्रहीयते॥
दुःखेनाभिप्लुतानां वै परमायुः शतं नृणाम् ॥६९॥ दृश्यन्ते नाभिदृश्यन्ते वेदाः कलियुगेऽखिलाः ॥ उत्सीदन्ते तदा यज्ञाः केवला धर्म्मपीडिताः॥७०॥
तदा त्वल्पेन कालेन सिद्धिं यास्यन्ति मानवाः ॥ धन्या धर्म्मञ्चरिष्यन्ति युगान्ते द्विजसत्तमाः ॥ ७१ ॥ श्रुतिस्मृत्युदितं धर्म्मं ये चरन्त्यनसूयकाः ॥
त्रेतायां वार्षिको धर्म्मो द्वापरे मासिकः स्मृतः ॥ यथाशक्ति चरन् प्राज्ञस्तदह्ना प्राप्नुयात् कलौ ॥ ७२ ॥ एषा कलियुगेऽवस्था सन्ध्यांशन्तु निबोध
मे ॥ युगे युगे तु हीयन्ते त्रींस्त्रीन् पादांश्च सिद्धयः ॥ ७३ ॥ युगस्वभावात्सन्ध्यास्तु तिष्ठन्तीमास्तु पादशः ॥ सन्ध्यास्वभावाच्चांशेषु पादशस्ते
प्रतिष्ठिताः ॥ ७४ ॥ एवं सन्ध्यांशके काले सम्प्राप्ते तु युगान्तिके ॥ तेषां शास्ता ह्यसाधूनां भृगूणां निधनोत्थितः ॥ ७५ ॥ गोत्रेण वै चन्द्रमसो नाम्ना
प्रमितिरुच्यते ॥ माधवस्य तु सोंऽशेन पूर्व्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ ७६ ॥ समाः स विंशतिं पूर्णाः पर्य्यटन् वै वसुन्धराम् ॥ आचकर्ष स वै सेनां सवाजि
रथकुञ्जराम् ॥ ७७ ॥ प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ स तदा तैः परिवृतो म्लेच्छान् हन्ति सहस्रशः ॥ ७८ ॥ स हत्वा सर्व्वशश्चैव राज्ञ
स्तान् शूद्रयोनिजान् ॥ पाषण्डान् स ततः सर्व्वान्निःशेषान् कृतवान् प्रभुः ॥ ७९ ॥ नात्यर्थं धार्म्मिका ये च तान् सर्व्वान् हन्ति सर्व्वशः ॥ वर्ण
व्यत्यासजातांश्च ये च तानुपजीविनः ॥ ८० ॥ उदीच्यान्मध्यदेशांश्च पार्व्वतीयांस्तथैव च ॥ प्राच्यान् प्रतीच्यांश्च तथा विन्ध्यपृष्ठापरान्तिकान् ॥
॥८१ ॥तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान् सिंहलैः सह ॥ गान्धारान् पारदांश्चैव पह्लवान् यवनांस्तथा ॥ ८२ ॥ तुषारान् वर्बरांश्चीनान् शूलिकान् दरदान्
खसान् ॥ लम्पाकानथ केतांश्च किरातानाञ्च जातयः ॥ ८३ ॥ प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृद्विभुः ॥ अधृष्यः सर्व्वभूतानां चचाराथ वसु
न्धराम् ॥ ८४ ॥ माधवस्य तु सोंऽशेन देवस्य हि विजज्ञिवान् ॥ पूर्व्वजन्मविधिज्ञश्च प्रमितिर्नाम वीर्य्यवान् ॥ ८५ ॥ गोत्रेण वै चन्द्रमसः पूर्व्वं
कलियुगे प्रभुः ॥ द्वात्रिंशेऽभ्युदिते वर्षे प्रक्रान्ते विंशतिं समाः ॥ ८६ ॥ विनिघ्नन् सर्व्वभूतानि मानवानि सहस्रशः ॥ कृत्वा वीर्य्यावशेषान्तु पृथ्वीं

रूढेन कर्म्मणा ॥ परस्परनिमित्तेन कोपेनाकस्मिकेन तु ॥ ८७ ॥ स साधयित्वा वृषलान् प्रायशस्तानधार्म्मिकान् ॥ गङ्गायमुनयोर्म्मध्ये निष्ठां प्राप्तः सहानुगः ॥ ८८ ॥ ततो व्यतीते तस्मिंस्तु अमात्ये सत्यसैनिके ॥ उत्साद्य पार्थिवान् सर्व्वान् म्लेच्छांश्चैव सहस्रशः ॥ ८९ ॥ तत्र स न्ध्यांशके काले सम्प्राप्ते तु युगान्तिके ॥ स्थितास्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित् क्वचित् ॥ ९० ॥ अप्रग्रहास्ततस्ता वै लोकचेष्टास्तु वृन्दशः ॥ उपहिंसन्ति चान्योन्यं प्रपद्यन्ते परस्परम् ॥९१॥ अराजके युगवशात् संशये समुपस्थिते ॥ प्रजास्ता वै ततः सर्व्वाः परस्परभयार्दिताः ॥ ९२ ॥ व्याकुलाश्च परिश्रान्तास्त्यक्त्वा दारान् गृहाणि च ॥ स्वान् प्राणान् समवेक्षन्तो निष्ठां प्राप्ताः सुदुःखिताः ॥९३॥ नष्टे श्रौते स्मृते धर्म्मे परस्परहतास्तदा ॥ निर्मर्य्यादा निराकन्दा निःस्नेहा निरपत्रपाः ॥ ९४ ॥ नष्टे वर्षे प्रतिहता ह्रस्वकाः पञ्चविंशकाः ॥ हित्वा दारांश्च पुत्रांश्च विषादव्याकुलेन्द्रियाः ॥ ९५ ॥ अनावृष्टिहताश्चैव वार्त्तामुत्सृज्य दुःखिताः ॥ प्रत्यन्तांस्तान्निषेवन्ते हित्वा जनपदान् स्वकान् ॥ ९६ ॥ सरितः सागरान् कूपान् सेवन्ते पर्व्वतां स्तदा ॥ मधुमांसैर्मूलफलैर्वर्त्तयन्ति सुदुःखिताः ॥ ९७॥ चीरवस्त्राजिनधरा निष्पत्रा निष्परिग्रहाः ॥ वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः सङ्करं घोरमास्थिताः ॥ ९८ ॥ एता काष्ठामनुप्राप्ता अल्पशेषास्तथा प्रजाः ॥ जराव्याधिक्षुधाविष्टा दुःखान्निर्वेदमागमन् ॥ ९९ ॥ विचारणन्तु निर्वेदात् साम्यावस्था विचारणात् ॥ साम्यावस्थासु सम्बोधः सम्बोधाद्धर्म्मशीलता ॥१००॥ तासूपशमयुक्तासु कलिशिष्टासु वै स्वयम् ॥ अहोरात्रं तदा तासां युगन्तु परिवर्त्तते ॥ १०१ ॥ चित्तसम्मोहनं कृत्वा तासान्तैः सततन्तु तत् ॥ भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्तत ॥ १०२ ॥ प्रवृत्ते तु पुनस्तस्मिंस्ततः कृतयुगे तु वै ॥ उत्पन्नाः कलिशिष्टास्तु कार्तयुग्यः प्रजास्तदा ॥ १०३ ॥ तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धाः सुदृष्टा विचरन्ति च ॥ सदा सप्तर्षयश्चैव तत्र ते च व्यवस्थिताः ॥१०४॥ ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थं ये स्मृता इह ॥ कलिजैः सह ते सर्वे निर्विशेषास्तदाऽभवन् ॥ १०५ ॥ तेषां सप्तर्षयो धर्म्मं कथयन्तीतरेषु च ॥ वर्णाश्रमाचारयुक्तः श्रौतः स्मार्तो द्विधा तु सः ॥ १०६ ॥ ततस्तेषु क्रियावत्सु वर्त्तन्ते वै प्रजाः कृते ॥ श्रौतः स्मार्त्तः कृतानान्तु धर्म्मः सप्तर्षिदर्शितः ॥ ॥ १०७ ॥ तासु धर्म्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीहायुगक्षयात् ॥ मन्वन्तराधिकारेषु तिष्ठन्ति मुनयस्तु वै ॥ १०८ ॥ यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्विह तपे ऋतौ ॥ नवानां प्रथमं दृष्टस्तेषां मूले तु सम्भवः ॥ १०९ ॥ एवं युगाद्युगस्येह सन्तानस्तु परस्परम् ॥ वर्त्तते ह्यव्यवच्छेदाद्यावन्मन्वन्तरक्षयः ॥ ११० ॥ सुखमायुर्बलं रूपं धर्म्मार्थौ काम एव च ॥ युगेष्वेतानि हीयन्ते त्रीणि पादक्रमेण तु ॥ १११ ॥ ससन्ध्यंशेषु हीयन्ते युगानां धर्म्मसिद्धयः ॥ इत्येष प्रतिसन्धिर्वः कीर्त्तितस्तु मया द्विजाः ॥ ११२ ॥ चतुर्युगानां सर्वेषामेतेनैव प्रसाधनम् ॥ एषा चतुर्युगावृत्तिरासहस्रात् प्रवर्त्तते ॥ ११३ ॥

ब्रह्मणस्तदहः प्रोक्तं रात्रिश्च तावती स्मृता ॥ अत्रार्जवं जडीभावो भूतानामायुषक्षयात् ॥ ११४ ॥ एतदेव तु सर्वेषां युगानां लक्षणं स्मृतम् ॥
एषा चतुर्युगानान्तु गणना ह्येकसप्ततिः ॥ क्रमेण परिवृत्ता तु मनोरन्तरमुच्यते ॥ ११५ ॥ चतुर्युगे तथैकस्मिन् भवतीह यथाश्रुतम् ॥ तथा चान्येषु
भवति पुनस्तद्वै यथाक्रमम् ॥११६॥ सर्गे सर्गे यथा भेदा उत्पद्यन्ते तथैव तु ॥ पञ्चविंशत्परिमिता न न्यूना नाधिकास्तथा ॥ ११७॥ तथा कल्पयुगैः
सार्द्धं भवन्ति समलक्षणाः ॥ मन्वन्तराणां सर्वेषामेतदेव तु लक्षणम् ॥ ११८ ॥ तथा युगानां परिवर्त्तनानि चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात् ॥
तथा न सन्तिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवर्त्तमानः ॥ ११९ ॥ इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै समासतः ॥ अतीतानागतानां वै सर्वमन्वन्तरे
ष्विह ॥ १२० ॥ अनागतेषु तद्वच्च तर्कः कार्य्यो विजानता ॥ मन्वन्तरेषु सर्वेषु अतीतानागतेष्विह ॥ १२१ ॥ मन्वन्तरेण चैकेन सर्व्वाण्येवान्तरा
णि वै ॥ व्याख्यातानि विजानीध्वं कल्पे कल्पेन चैव हि ॥ १२२ ॥ अस्याभिमानिनः सर्व्वे नामरूपैर्भवन्त्युत ॥ देवा ह्यष्टविधा ये च इह मन्वन्तरे
श्वराः ॥ १२३ ॥ ऋषयो मनवश्चैव सर्व्वे तुल्याः प्रयोजनैः ॥ एवं वर्णाश्रमाणान्तु प्रविभागो युगे युगे ॥ १२४ ॥ युगस्वभावाच्च तथा विधत्ते वै
सदा प्रभुः ॥ वर्णाश्रमविभागश्च युगानि युगसिद्धये ॥ १२५ ॥ अनुषङ्गः समाख्यातः सृष्टिसर्गान्निबोधत ॥ विस्तरेणानुपूर्व्व्या च स्थितिं वक्ष्ये युगे
ष्विह ॥ १२६ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते चतुर्युगाख्यानं नामाष्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ ॥ छ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥युगेषु यास्तु जायन्ते
प्रजास्ता वै निबोधत ॥ आसुरी सर्पगोपक्षिपैशाची यक्षराक्षसी ॥ यस्मिन् युगे च सम्भूतिस्तासां यावत्तु जीवितम् ॥ १ ॥ पिशाचासुरगन्धर्व्वा
यक्षराक्षसपन्नगाः ॥ युगमात्रन्तु जीवन्ति ऋते मृत्युंवधेन ते ॥ २ ॥ मानुषाणां पशूनाञ्च पक्षिणां स्थावरैः सह ॥ तेषामायुः परिक्रान्तं युगधर्म्मेषु
सर्वशः ॥ ३ ॥ अस्थितिस्तु कलौ दृष्टा भूतानामायुषस्तु वै ॥ परमायुः शतन्त्वेतन्मनुष्याणां कलौ स्मृतम् ॥ ४ ॥ देवासुरप्रमाणात्तु सप्तसप्ताङ्गुलं
ह्रसत् ॥ अङ्गुलानां शतं पूर्णमष्टपञ्चाशदुत्तरम् ॥५॥ देवासुरप्रमाणन्तदुच्छ्रायं कालिजैः स्मृतम् ॥ चत्वारश्चाप्यशीतिश्च कालिजैरङ्गुलैः स्मृतम् ॥ ६ ॥
स्वेनाङ्गुलप्रमाणेन ऊर्द्धमापादमस्तकम् ॥ इत्येष मानुषोत्सेधो ह्रसतीह युगान्तिके ॥७॥ सर्वेषु युगकालेषु अतीतानागतेष्विह ॥ स्वेनाङ्गुलप्रमाणेन
अष्टतालः स्मृतो नरः ॥ ८ ॥ आपादतोमस्तकन्तु नवतालो भवेत्तु यः ॥ संहताजानुबाहुस्तु स सुरैरपि पूज्यते ॥ ९ ॥ गवाश्वहस्तिनाञ्चैव महिष
स्थावरात्मनाम् ॥ क्रमेणैतेन योगेन ह्रासवृद्धी युगे युगे ॥ १० ॥ षट्सप्तत्यङ्गुलोत्सेधः पशूनां ककुदस्तु वै ॥ अङ्गुलाष्टशतं पूर्णमुत्सेधः करिणां
स्मृतः ॥ ११ ॥ अङ्गुलानां सहस्रन्तु चत्वारिंशाङ्गुलं विना ॥ पञ्चाशतं हयानाञ्च उत्सेधः शाखिनां स्मृतः ॥ १२ ॥ मानुषस्य शरीरस्य सन्निवेशस्तु

याद्दशः ॥ तल्लक्षणस्तु देवानां दृश्यते तत्त्वदर्शनात् ॥ १३ ॥ बुद्धयातिशययुक्तश्च देवानां कायमुच्यते ॥ देवानतिशयश्चैव मानुषं कायमुच्यते ॥ १४ ॥
इत्येते वै परिक्रान्ता भावा ये दिव्यमानुषाः ॥ पशूनां पक्षिणाश्चैव स्थावराणां निबोधत ॥ १५ ॥ गावो ह्यजा महिष्योऽश्वा हस्तिनः पक्षिणो नगाः ॥
उपयुक्ताः क्रियास्वेते यज्ञियास्विह सर्वशः ॥ १६ ॥ देवस्थानेषु जायन्ते तद्रूपा एव ते पुनः ॥ यथाशयोपभोगास्तु देवानां शुभमूर्त्तयः ॥ १७ ॥
तेषां रूपानुरूपैस्तैः प्रमाणैः स्थाणुजङ्गमैः ॥ मनोज्ञैस्तत्त्वभावज्ञैः सुखिनो ह्युपपेदिरे ॥ १८ ॥ अतः शिष्टान् प्रवक्ष्यामि सतः साधूंस्तथैव च ॥
सदिति ब्रह्मणः शब्दस्तद्वन्तो ये भवन्त्युत ॥ सायुज्यं ब्रह्मणोऽत्यन्तं तेन सन्तः प्रचक्ष्यते ॥ १९ ॥ दशात्मके ये विषये कारणे चाष्टलक्षणे ॥ न क्रु
ध्यन्ति न हृष्यन्ति जितात्मानस्तु ते स्मृताः ॥ २० ॥ सामान्येषु च धर्म्मेषु तथा वैशेषिकेषु च ॥ ब्रह्मक्षत्रविशो युक्ता यस्मात्तस्माद्द्विजातयः ॥ २१ ॥
वर्णाश्रमेषु युक्तस्य स्वर्गगोसुखचारिणः ॥ श्रौतस्मार्त्तस्य धर्मस्य ज्ञानाद्धर्म्मः स उच्यते ॥ २२ ॥ विद्यायाः साधनात्साधुर्ब्रह्मचारी गुरोर्हितः ॥
क्रियाणां साधनाच्चैव गृहस्थः साधुरुच्यते ॥ २३ ॥ साधनात्तपसोऽरण्ये साधुर्वैखानसः स्मृतः ॥ यतमानो यतिः साधुः स्मृतो योगस्य
साधनात् ॥ २४ ॥ एवमाश्रमधर्म्माणां साधनात् साधवः स्मृताः ॥ गृहस्थो ब्रह्मचारी च वानप्रस्थोऽथ भिक्षुकः ॥ २५ ॥ न च देवा न पितरो मुन
यो न च मानवाः ॥ अयन्धर्मो ह्ययं नेति ब्रुवन्तोऽभिन्नदर्शनाः ॥ २६ ॥ धर्म्माधर्म्माविह प्रोक्तौ शब्दावेतौ क्रियात्मकौ ॥ कुशलाकुशलं कर्म्म धर्म्मा
धर्म्माविति स्मृतौ ॥ २७ ॥ धारणा धृतिरित्यर्थाद्धातोर्धर्म्मः प्रकीर्त्तितः ॥ अधारणेऽमहत्त्वे च अधर्म्म इति चोच्यते ॥ २८ ॥ अत्रेष्टप्रापका धर्म्मा
आचार्य्यैरुपदिश्यते ॥ वृद्धा ह्यलोलुपाश्चैव आत्मवन्तो ह्यदम्भकाः ॥ सम्यग्विनीता ऋजवस्तानाचार्य्यान् प्रचक्षते ॥ २९ ॥ स्वयमाचरते यस्मादा
चारं स्थापयत्यपि ॥ आचिनोति च शास्त्रार्थान्यमैः सन्नियमैर्युतः ॥ ३० ॥ पूर्व्वेभ्यो वेदयित्वेह श्रौतं सप्तर्षयोऽब्रुवन् ॥ ऋचो यजूंषि सामानि ब्रह्म
णोऽङ्गानि च श्रुतिः ॥ ३१ ॥ मन्वन्तरस्यातीतस्य स्मृत्वाचारं पुनर्जगौ ॥ तस्मात्स्मार्त्तः स्मृतो धर्म्मो वर्णाश्रमविभागजः ॥ ३२ ॥ स एष द्विविधो
धर्म्मः शिष्टाचार इहोच्यते ॥ शेषशब्दात् शिष्ट इति शिष्टाचारः प्रचक्ष्यते ॥ ३३ ॥ मन्वन्तरेषु ये शिष्टा इह तिष्ठन्ति धार्म्मिकाः ॥ मनुः सप्तर्षयश्चैव
लोकसन्तानकारणात् ॥ धर्म्मार्थं ये च शिष्टा वै याथातथ्यं प्रचक्ष्यते ॥ ३४ ॥ मन्वादयश्च ये शिष्टा ये मया प्रागुदीरिताः ॥ तैः शिष्टैश्चरितो धर्म्मः
सम्यगेव युगे युगे ॥ ३५ ॥ त्रयी वार्ता दण्डनीतिरिज्या वर्णाश्रमास्तथा ॥ शिष्टैराचर्य्यते यस्मान्मनुना च पुनः पुनः ॥ पूर्व्वैः पूर्व्वगतत्वाच्च शिष्टा
चारः स शाश्वतः ॥ ३६ ॥ दानं सत्यन्तपोऽलोभो विद्येज्याप्रजनो दया ॥ अष्टौ तानि चरित्राणि शिष्टाचारस्य लक्षणम् ॥ ३७ ॥ शिष्टा यस्माच्चर

न्त्येनं मनुः सप्तर्षयश्च वै ॥ मन्वन्तरेषु सर्व्वेषु शिष्टाचारस्ततः स्मृतः ॥ ३८ ॥ विज्ञेयः श्रवणात् श्रौतः स्मरणात् स्मार्त्त उच्यते ॥
इज्यावेदात्मकः श्रौतः स्मार्तो वर्णाश्रमात्मकः ॥ प्रत्यङ्गानि च वक्ष्यामि धर्म्मस्येह तु लक्षणम् ॥ ३९ ॥ दृष्ट्वा प्रभूतमर्थं यः पृष्टो
वै न निगूहति ॥ यथा भूतप्रवादस्तु इत्येतत्सत्यलक्षणम् ॥ ४० ॥ ब्रह्मचर्य्यं जपो मौनं निराहारत्वमेव च ॥ इत्येतत् तपसो मूलं
सुघोरं तद्दुरासदम् ॥ ४१ ॥ पशूनां द्रव्यहविषामृक्सामयजुषां तथा ॥ ऋत्विजां दक्षिणानाञ्च संयोगो योग उच्यते ॥ ४२ ॥ आत्मवत्सर्व
भूतेषु यो हितायाहिताय च ॥ समा प्रवर्त्तते दृष्टिः कृत्स्ना ह्येषा दया स्मृता ॥ ४३ ॥ आकुष्टोऽभिहतो वापि नाक्रोशेद्यो न हन्ति वा ॥ वाङ्
मनःकर्म्मभिः क्षान्तिस्तितिक्षैषा क्षमा स्मृता ॥ ४४ ॥ स्वामिनाऽरक्ष्यमाणानामुत्सृष्टानाञ्च मृतसु च ॥ परस्वानामनादानमलोभ इह कीर्त्यते ॥
॥ ४५ ॥ मैथुनस्यासमाचारो ह्यचिन्तनमकल्पनम् ॥ निवृत्तिर्ब्रह्मचर्य्यं तदच्छिद्रं दम उच्यते ॥ ४६ ॥ आत्मार्थे वा परार्थे वा इन्द्रियाणीह यस्य वै ॥
न मिथ्या सम्प्रवर्तन्ते शमस्यैतत्तु लक्षणम् ॥ ४७॥ दशात्मके यो विषये कारणे चाष्टलक्षणे ॥ न क्रुध्येत्तु प्रतिहतः स जितात्मा विभाव्यते ॥४८॥
यद्यदिष्टतमं द्रव्यं न्यायेनोपागतञ्च यत् ॥ तत्तद्गुणवते देयमित्येतद्दानलक्षणम् ॥ ४९ ॥ दानं त्रिविधमित्येतत् कनिष्ठज्येष्ठमध्यमम् ॥ तत्र नैःश्रेय
सं ज्येष्ठं कनिष्ठं स्वार्थसिद्धये ॥ कारुण्यात्सर्व्वभूतेभ्यः सुविभागस्तु बन्धुषु ॥ ५० ॥ श्रुतिस्मृतिभ्यां विहितो धर्मो वर्णाश्रमात्मकः ॥ शिष्टाचा
राविरुद्धश्च धर्म्मः सत्साधुसङ्गतः ॥ ५१ ॥ अप्रद्वेषो ह्यनिष्टेषु तथेष्टानाभिनन्दनम् ॥ प्रीतितापविषादेभ्यो विनिवृत्तिर्विरक्तता ॥ ५२ ॥ संन्यासः
कर्म्मणो न्यासः कृतानामकृतैः सह ॥ कुशलाकुशलानाञ्च प्रहाणं त्याग उच्यते ॥ ५३ ॥ अव्यक्ताद्योऽविशेषाच्च विकारोऽस्मिन्नचेतने ॥ चेतनाऽचे
तनान्यत्वविज्ञानं ज्ञानमुच्यते ॥ ५४ ॥ प्रत्यङ्गानान्तु धर्म्मस्य इत्येतल्लक्षणं स्मृतम् ॥ ऋषिभिर्धर्म्मतत्त्वज्ञैः पूर्वं स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ ५५ ॥ अत्र
वो वर्त्तयिष्यामि विधिम्मन्वन्तरस्य यः ॥ इतरेतरवर्णस्य चातुर्वर्णस्य चैव हि ॥ प्रतिमन्वन्तरञ्चैव श्रुतिरन्या विधीयते ॥ ५६ ॥ ऋचो यजूंषि
सामानि यथावत् प्रतिदैवतम् ॥ आभूतसंप्लवस्यापि वर्ज्यैकं शतरुद्रियम् ॥५७॥ विधिर्होत्रं तथा स्तोत्रं पूर्ववत्सम्प्रवर्तते ॥ द्रव्यस्तोत्रं गुणस्तोत्रं कर्म्म
स्तोत्रं तथैव च ॥ चतुर्थमाभिजनिकं स्तोत्रमेतच्चतुर्विधम् ॥ ५८॥ मन्वन्तरेषु सर्व्वेषु यथा देवा भवन्ति ये ॥ प्रवर्त्तयन्ति तेषां वै ब्रह्मस्तोत्रं चतुर्व्विधम् ॥
एवं मन्त्रगुणानाञ्च समुत्पत्तिश्चतुर्विधा ॥ ५९ ॥ अथर्व्वयजुषां साम्नां वेदेष्विह पृथक् पृथक् ॥ ऋषीणान्तप्यतामुग्रन्तपः परमदुश्चरम् ॥ ६० ॥
मन्त्राः प्रादुर्बभूवुर्हि पूर्व्वमन्वन्तरेष्विह ॥ परितोषाद्भयाद्दुःखात्सुखाच्छोकाच्च पञ्चधा ॥ ६१ ॥ ऋषीणान्तपःकार्त्स्न्येन दर्शनेन यदृच्छया ॥ ऋ

षीणां यदृषित्वं हि तद्वक्ष्यामीह लक्षणैः ॥ ६२ ॥ अतीतानागतानान्तु पञ्चधा ऋषिरुच्यते ॥ अतस्त्वृषीणां वक्ष्यामि ह्यार्षस्य च समुद्भवम् ॥
॥६३ ॥ गुणसाम्ये वर्त्तमाने सर्वसम्प्रलये तदा ॥ अतिचारे तु देवानामतिदेशे तयोर्य्यथा ॥ ६४ ॥ अबुद्धिपूर्व्वकं तद्वै चेतनार्थं प्रवर्त्तते ॥ तेन ह्यबु
द्धिपूर्वं तच्चेतनेन ह्यधिष्ठितम् ॥ ६५ ॥ वर्त्तेते च यथा तौ तु यथा मत्स्योदके उभे ॥ चेतनाधिष्ठितन्तत्त्वं प्रवर्त्तेते गुणात्मना ॥ ६६ ॥ करणत्वात्त
था कार्य्यं तदा तस्य प्रवर्त्तते ॥ विषये विषयित्वाच्च ह्यर्थेऽर्थित्वात्तथैव च ॥ ६७ ॥ कालेन प्रापणीयेन भेदास्तु कारणात्मकाः ॥ संसिध्यन्ति
तदा व्यक्ताः क्रमेण महदादयः ॥ ६८ ॥ महतश्चाप्यहङ्कारस्तस्माद्भूतेन्द्रियाणि च ॥ भूतभेदास्तु भेदेभ्यो जज्ञिरे ते परस्परम् ॥ संसिद्धिकारणं कार्य्यं
सद्य एव विवर्त्तते ॥ ६९ ॥ यथोल्मुकस्तुटन्नूर्द्ध्वमेककालं प्रवर्त्तते ॥ तथा विवृत्तः क्षेत्रज्ञः कालेनैकेन कर्म्मणा ॥ ७० ॥ यथान्धकारे खद्योतः सहसा
सम्प्रदृश्यते ॥ तथा विवृत्तो ह्यव्यक्तात् खद्योत इव चोल्बणः ॥ ७१ ॥ स महान् सशरीरस्तु यत्रैवाग्रे व्यवस्थितः ॥ तत्रैव संस्थितो विद्वान् द्वारशा
लामुखे स्थितः ॥ ७२ ॥ महांस्तु तमसः पारे वैलक्षण्याद्विभाव्यते ॥ तत्रैव संस्थितो विद्वांस्तमसोऽन्त इति श्रुतिः ॥ ७३ ॥ बुद्धिर्विवर्त्तमानस्य
प्रादुर्भूता चतुर्विधा ॥ ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्य्यं धर्म्मश्चेति चतुष्टयम् ॥ ७४ ॥ सांसिद्धिकान्यथैतानि सुप्रतीकानि तस्य वै ॥ महतः सशरीरस्य वैवर्त्त्या
त् सिद्धिरुच्यते ॥ ७५ ॥ अत्र शेते च यत्पुर्य्यां क्षेत्रज्ञानमथापि वा ॥ पुरीशयत्वात्पुरुषः क्षेत्रज्ञानात् समुच्यते ॥ ७६ ॥ क्षेत्रज्ञः क्षेत्रविज्ञानात् भगवान्
मतिरुच्यते ॥ यस्माद्बुद्ध्या तु शेते ह तस्माद्बोधात्मकः स वै ॥ संसिद्ध्ये परिगतं व्यक्ताव्यक्तमचेतनम् ॥ ७७ ॥ एवं निवृत्तिः क्षेत्रज्ञा क्षेत्रज्ञेनाभिसंहि
ता ॥ क्षेत्रज्ञेन परिज्ञातो भोग्योऽयं विषयस्त्विति ॥ ७८ ॥ ऋषीत्येष गतौ धातुः श्रुतौ सत्ये तपस्यथ ॥ एतत्सन्नियते तस्मिन् ब्रह्मणा स ऋषिः स्मृतः ॥
॥ ७९ ॥ निवृत्तिसमकालं तु बुद्ध्याऽव्यक्तमृषिः स्वयम् ॥ परं हि ऋषते यस्मात्परमर्षिस्ततः स्मृतः ॥ ८० ॥ गत्यर्थादृषतेर्द्धातोर्नामनिर्वृत्तिरादितः ॥
यस्मादेष स्वयम्भूतस्तस्माच्चात्मर्षिता स्मृता ॥ ईश्वराः स्वयमुद्भूता मानसा ब्रह्मणः सुताः ॥ ८१ ॥ यस्मान्न हन्यते मानैर्महान् परिगतः पुरः ॥ य
स्मादृषन्ति ये धीरा महान्तं सर्व्वतो गुणैः ॥ तस्मान्महर्षयः प्रोक्ता बुद्धेः परमदर्शिनः ॥ ८२ ॥ ईश्वराणां शुभास्तेषां मानसान्तरसाश्च ते ॥ अहङ्कारं
तमश्चैव त्यक्त्वा च ऋषिताङ्गताः ॥ ८३ ॥ तस्मात्तु ऋषयस्ते वै भूतादौ तत्त्वदर्शनाः ॥ ऋषिपुत्रा ऋषीकास्तु मैथुनाद्गर्भसम्भवाः ॥ ८४ ॥ तन्मात्रा
णि च सत्यञ्च ऋषन्ते ते महौजसः ॥ सत्यर्षयस्ततस्ते वै परमाः सत्यदर्शनाः ॥ ८५ ॥ ऋषीणाञ्च सुतास्ते तु विज्ञेया ऋषिपुत्रकाः ॥ ऋषन्ति वै श्रु
तं यस्माद्विशेषांश्चैव तत्त्वतः ॥ तस्मात् श्रुतर्षयस्तेपि श्रुतस्य परिदर्शनाः ॥ ८६ ॥ अव्यक्तात्मा महात्मा चाहङ्कारात्मा तथैव च ॥ भूतात्मा चे

न्द्रियात्मा च तेषां तज्ज्ञानमुच्यते॥इत्येता ऋषिजातीस्तु नामभिः पञ्च वै शृणु ॥८७॥ भृगुर्मरीचिरत्रिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः ॥ मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च पुलस्त्यश्चेति ते दश॥ब्रह्मणो मानसा ह्येते उद्भूताः स्वयमीश्वराः॥८८॥ प्रवर्त्तन्ते ऋषेर्य्यस्मान्महांस्तस्मान्महर्षयः ॥ ईश्वराणां सुतास्त्वेते ऋषयस्ता न्निबोधत ॥ ८९ ॥ काव्यो बृहस्पतिश्चैव कश्यपश्चोशनास्तथा ॥ उतथ्यो वामदेवश्च अपोज्यश्चौशिजस्तथा ॥ ९० ॥ कर्द्दमो विश्रवाः शक्तिर्वालखि ल्यस्तथा धराः ॥ इत्येते ऋषयः प्रोक्ता ज्ञानतो ऋषिताङ्गताः ॥ ९१ ॥ ऋषिपुत्रानृषिकांस्तु गर्भोत्पन्नान्निबोधत ॥ वत्सरो नग्रहूश्चैव भारद्वाजस्त थैव च ॥ ९२ ॥ बृहदुत्थः शरद्वांश्च अगस्त्यश्चौशिजस्तथा ॥ ऋषिर्दीर्घतमाश्चैव बृहदुक्थः शरद्वतः ॥ ९३ ॥ वाजश्रवाः सुवित्तश्च सुवाग्वेषपरा यणः ॥ दधीचः शङ्खमांश्चैव राजा वैश्रवणस्तथा ॥ इत्येते ऋषिकाः प्रोक्तास्ते सत्याहृषिताङ्गताः ॥ ९४ ॥ ईश्वरा ऋषिकाश्चैव ये चान्ये वै तथा स्मृताः॥ एते मन्त्रकृतः सर्वे कृत्स्नशस्तान्निबोधत ॥ ९५ ॥ भृगुः काव्यः प्रचेतास्तु दधीचो ह्यात्मवानपि ॥ और्वोऽथ जमदग्निश्च विदः सारस्वत स्तथा ॥ ९६ ॥ आर्ष्टिषेण ह्यरूपश्च वीतहव्यः सुमेधसः ॥ वैन्यः पृथुर्दिवोदासः प्रश्वारो गृत्समान्नभः ॥ एकोनविंशदित्येते ऋषयो मन्त्रवादिनः ॥९७॥ अङ्गिरा वेधसश्चैव भारद्वाजोऽथ वाष्कलिः ॥ तथाऽमृतस्तथा गार्ग्यः शैनी संह्रतिरेव च ॥ ९८ ॥ पुरुकुत्सोऽथ मान्धाता अम्बरीषस्तथैव च ॥ आहार्य्योऽथाजमीढश्च ऋषभो बलिरेव च ॥ ९९ ॥ पृषदश्वो विरूपश्च कण्वश्चैवाथ मुद्गलः ॥ युवनाश्वः पौरुकुत्सस्त्रसदस्युः सदस्युमान् ॥ १०० ॥ उतथ्यश्च भरद्वाजस्तथा वाजश्रवा अपि ॥ आयाप्यश्च सुवित्तिश्च वामदेवस्तथैव च ॥ १०१ ॥ औगजो बृहदुक्थश्च ऋषिर्दीर्घतपास्तथा ॥ कक्षी वांश्च त्रयस्त्रिंशत् स्मृता अङ्गिरसो वराः ॥ एते मन्त्रकृतः सर्वे काश्यपांस्तु निबोधत ॥ १०२ ॥ काश्यपश्चैव वत्सारो विभ्रमो रैभ्य एव च ॥ अ सितो देवलश्चैव षडेते ब्रह्मवादिनः ॥ १०३ ॥ अत्रिरर्चिसनश्चैव श्यामावांश्चाथ निष्ठुरः ॥ वल्गूतको मुनिर्द्धीमांस्तथा पूर्वातिथिश्च यः ॥ इत्येते चात्रयः प्रोक्ता मन्त्रकारा महर्षयः ॥ १०४ ॥ वसिष्ठश्चैव शक्तिश्च तथैव च पराशरः ॥ चतुर्थ इन्द्रप्रमतिः पञ्चमस्तु भरद्वसुः ॥ १०५ ॥ षष्ठस्तु मैत्रावरुणः कुण्डिनः सप्तमस्तथा ॥ सुद्युम्नश्चाष्टमश्चैव नवमोऽथ बृहस्पतिः ॥ दशमस्तु भरद्वाजो मन्त्रब्राह्मणकारकाः ॥ १०६ ॥ एते चैव हि कर्त्तारो विधर्म्मध्वंसकारिणः ॥ लक्षणं ब्रह्मणश्चैतद्विहितं सर्व्वशाखिनाम् ॥ १०७ ॥ हेतुर्हिंतेः स्मृतो धातोर्य्यन्निहन्त्युदितम्परैः ॥ अथ वार्थपरिप्राप्तेर्हिनोतेर्गतिकर्मणः ॥ १०८ ॥ तथा निर्वचनं ब्रूयाद्वाक्यार्थस्यावधारणम् ॥ निन्दान्तामाहुराचार्य्या यद्दोषान्निन्द्यते वचः ॥ १०९ ॥ प्रपूर्वाच्छंसतेर्धातोः प्रशंसा गुणवत्तया ॥ इदन्त्विदमिदन्नेदमित्यनिश्चित्य संशयः ॥ ११० ॥ इदमेव विधातव्यमित्ययं विधिरुच्यते ॥ अन्यस्या

न्यस्य चोक्तत्वाद्बुधैः परकृतिः स्मृता ॥१११॥ यो ह्यत्यन्ततरोक्तश्च पुराकल्पः स उच्यते ॥ पुराविक्रान्तवाचित्वात् पुराकल्पस्य कल्पना॥११२॥ मन्त्रब्राह्मणकल्पैस्तु निगमैः शुद्धविस्तरैः ॥ अनिश्चित्य कृतामाहुर्व्यवधारणकल्पनाम् ॥ ११३ ॥ यथा हीदन्तथा तद्वै इदं वापि तथैव तत् ॥ इत्येष ह्युपदेशोऽयं दशमो ब्राह्मणस्य तु ॥ ११४ ॥ इत्येतद्ब्राह्मणस्यादौ विहितं लक्षणम्बुधैः ॥ तस्य तद्वृत्तिरुद्दिष्टा व्याख्याप्यनुपदं द्विजैः ॥११५॥ मन्त्राणां कल्पनञ्चैव विधिदृष्टेषु कर्मसु ॥ मन्त्रो मन्त्रयतेर्धातोर्ब्राह्मणो ब्रह्मणोऽवनात् ॥ ११६ ॥ अल्पाक्षरमसन्दिग्धं सारवद्विश्वतो मुखम् ॥ अस्तोभमनवद्यञ्च सूत्रं सूत्रविदो विदुः ॥ ११७ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते ऋषिलक्षणं नामोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ ऋषयस्तद्वचः श्रुत्वा सूतमाहुः सुदुस्तरम् ॥ कथं वेदाः पुरा व्यस्तास्तन्नो ब्रूहि महामते ॥ १ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ ॥ द्वापरे तु परावृत्ते मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ ब्रह्मा मनुमुवाचेदन्तद्वादिष्ये महामते ॥ २ ॥ परिवृत्ते युगे तात स्वल्पवीर्य्या द्विजातयः ॥ संवृत्ता युग दोषेण सर्व्वं चैव यथाक्रमम् ॥ ३ ॥ भ्रश्यमानं युगवशादल्पशिष्टं हि दृश्यते ॥ दशसाहस्रभागेन ह्यवशिष्टं कृतादिदम् ॥४॥ वीर्य्यं तेजो बलं वाक्यं सर्वञ्चैव प्रणश्यति ॥ वेदवेदा हि कार्य्याः स्युर्माभूद्वेदविनाशनम् ॥ ५ ॥ वेदे नाशमनुप्राप्ते यज्ञो नाशं गमिष्यति ॥ यज्ञे नष्टे देवनाशस्ततः सर्वं प्रणश्यति ॥ ६ ॥ आद्यो वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसंज्ञितः ॥ पुनर्दशगुणः कृत्स्नो यज्ञो वै सर्वकामधुक् ॥ ७ ॥ एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा मनुर्लोकहिते रतः ॥ वेदमेकं चतुष्पादं चतुर्धा व्यभजत्प्रभुः॥८॥ब्रह्मणो वचनात्तात लोकानां हितकाम्यया॥तदिदं वर्त्तमानेन युष्माकं वेदकल्पनम्॥९॥ मन्वन्तरेण वक्ष्यामि व्यतीतानां प्रकल्पनम् ॥ प्रत्यक्षेण परोक्षं वै तन्निबोधत सत्तमाः॥१०॥अस्मिन् युगे कृतो व्यासः पाराशर्य्यः परन्तपः॥ द्वैपायन इति ख्यातो विष्णोरंशः प्रकीर्तितः ॥११॥ ब्रह्मणा चोदितः सोऽस्मिन् वेदं व्यस्तुं प्रचक्रमे ॥ अथ शिष्यान् स जग्राह चतुरो वेदकारणात् ॥ १२ ॥ जैमिनिञ्च सुमन्तु ञ्च वैशम्पायनमेव च ॥ पैलन्तेषां चतुर्थन्तु पञ्चमं लोमहर्षणम् ॥ १३ ॥ ऋग्वेदश्रावकं पैलञ्जग्राह विधिवद्द्विजम् ॥ यजुर्वेदप्रवक्तारं वैशम्पायनमेव च ॥ १४ ॥ जैमिनिं सामवेदार्थश्रावकं सोऽन्वपद्यत ॥ तथैवाथर्ववेदस्य सुमन्तुमृषिसत्तमम् ॥ १५ ॥ इतिहासपुराणस्य वक्तारं सम्यगेव हि ॥ माञ्चैव प्रतिजग्राह भगवानीश्वरः प्रभुः ॥१६॥ एक आसीद्यजुर्वेदस्तञ्चतुर्द्धा व्यकल्पयत् ॥ चातुर्होत्रमभूत्तस्मिंस्तेन यज्ञमकल्पयत् ॥ १७ ॥ आध्वर्य्यवं यजु र्भिस्तु ऋग्भिर्होत्रं तथैव च ॥ उद्गात्रं सामभिश्चक्रे ब्रह्मत्वञ्चाप्यथर्वभिः ॥ ब्रह्मत्वमकरोद्यज्ञे वेदेनाथर्वणेन तु ॥ १८ ॥ ततः स ऋचमुद्धृत्य ऋग्वेदं समकल्प यत् ॥ होतृकं कल्प्यते तेन यज्ञवाहं जगद्धितम्॥१९॥सामभिः सामवेदञ्च तेनोद्गात्रमरोचयत्॥राज्ञस्त्वथर्ववेदेन सर्वकर्माण्यकारयत् ॥२०॥आख्यानै

श्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कुलकर्म्मभिः ॥ पुराणसंहिताश्चक्रे पुराणार्थविशारदः ॥ २१ ॥ यच्छिष्टन्तु यजुर्वेदे तेन यज्ञमथायुनत् ॥ युञ्जानः स यजुर्वेदे इति शास्त्रविनिश्चयः ॥२२॥ पदानामुद्धृतत्वाच्च यजूंषि विषमाणि वै ॥ स तेनोद्धृतवीर्यस्तु ऋत्विग्भिर्वेदपारगैः ॥ प्रयुज्यते ह्यश्वमेधस्तेन वा युज्यते तु सः ॥ २३ ॥ ऋचो गृहीत्वा पैलस्तु व्यभजत्तद्द्विधा पुनः ॥ द्विष्कृत्वा संयुगे चैव शिष्याभ्यामददत्प्रभुः ॥ २४ ॥ इन्द्रप्रमतये चैकां द्वितीयां बाष्कलाय च ॥ चतस्रः संहिताः कृत्वा बाष्कलिर्द्विजसत्तमः ॥ शिष्यानध्यापयामास शुश्रूषाभिरतान् हितान् ॥ २५ ॥ बोधन्तु प्रथमां शाखां द्वितीयामग्निमाठरम् ॥ पाराशरं तृतीयान्तु याज्ञवल्क्यामथापराम् ॥ २६ ॥ इन्द्रप्रमतिरेकान्तु संहितां द्विजसत्तमः ॥ अध्यापयन्महाभागं मार्कण्डेयं यशस्विनम् ॥ २७ ॥ सत्यश्रवसमग्र्यन्तु पुत्रं स तु महायशाः ॥ सत्यश्रवाः सत्यहितं पुनरध्यापयद्द्विजः ॥ २८ ॥ सोऽपि सत्यतरं पुत्रं पुनरध्यापयद्विभुः ॥ सत्याश्रियं महात्मानं सत्यधर्मपरायणम् ॥ २९ ॥ अभवंस्तस्य शिष्या वै त्रयस्तु सुमहौजसः ॥ सत्याश्रियस्तु विद्वांसः शास्त्रग्रहणतत्पराः ॥ ३० ॥ शाकल्यः प्रथमस्तेषां तस्मादन्यो रथान्तरः ॥ बाष्कलिश्च भरद्वाज इति शाखाप्रवर्तकाः ॥३१॥ देवमित्रस्तु शाकल्यो ज्ञानाहङ्कारगर्वितः ॥ जनकस्य स यज्ञे वै विनाशमगमाद्द्विजः ॥ ३२ ॥ ॥ शांशपायन उवाच ॥ कथं विनाशमगमत्स मुनिर्ज्ञानगर्वितः ॥ जनकस्याश्वमेधेन कथं वादो बभूव ह ॥ ॥३३॥ किमर्थश्चाभवद्वादः केन सार्द्धमथापि वा॥ सर्वमेतद्यथावृत्तमाचक्ष्व विदितन्तव॥ऋषीणान्तु वचः श्रुत्वा तदुत्तरमथाब्रवीत्॥३४॥ सूत उवाच ॥ जनकस्याश्वमेधे तु महानासीत्समागमः॥ऋषीणान्तु सहस्राणि तत्राजग्मुरनेकशः ॥ राजर्षेर्जनकस्याथ तं यज्ञं हि दिदृक्षवः॥३५॥ आगतान्ब्राह्मणान् दृष्ट्वा जिज्ञासास्यभवत्ततः॥को न्वेषां ब्राह्मणः श्रेष्ठः कथं मे निश्चयो भवेत् ॥ इति निश्चित्य मनसा बुद्धिं चक्रे जनाधिपः ॥३६॥ गवां सहस्रमादाय सुवर्णमधिकं ततः ॥ ग्रामान् रत्नानि दासांश्च मुनीन् प्राह नराधिपः ॥ सर्वानहं प्रपन्नोऽस्मि शिरसा श्रेष्ठभागिनः ॥३७॥ यदेतदाहृतं वित्तं यो वः श्रेष्ठतमो भवेत् ॥ तस्मै तदुपनीतं हि विद्यावित्तं द्विजोत्तमाः ॥ ३८ ॥ जनकस्य वचः श्रुत्वा मुनयस्ते श्रुतिक्षमाः ॥ दृष्ट्वा धनं महासारं धनवृद्ध्या जिघृक्षवः ॥ श्रद्धयाश्चक्रुरन्योन्यं वेदज्ञानमदोल्बणाः ॥ ३९ ॥ मनसा गतवित्तास्ते ममेदं धनमित्युत ॥ ममैवैतन्न वेत्यन्यो ब्रूहि किं वा विकल्प्यते ॥ इत्येवं धनदोषेण वादांश्चक्रुरनेकशः ॥ ४० ॥ तथाऽन्यस्तत्र वै विद्वान् ब्रह्मवाहसुतः कविः ॥ याज्ञवल्क्यो महातेजास्तपस्वी ब्रह्मवित्तमः ॥ ४१ ॥ ब्रह्मणोऽङ्गात् समुत्पन्नो वाक्यं प्रोवाच सुस्वरम् ॥ शिष्यं ब्रह्मविदां श्रेष्ठो धनमेतद्गृहाण भो ॥ ४२ ॥ नयस्व च गृहं वत्स ममैतन्नात्र संशयः ॥ सर्ववेदेष्वहं वक्ता नान्यः कश्चित्तु मत्समः ॥ यो वा न प्रीयते विप्रः स मे ह्वयतु माऽचिरम् ॥ ४३ ॥ ततो ब्रह्मार्णवः क्षुब्धः समुद्र इव सम्प्लवे ॥

तानुवाच ततः स्वस्थो याज्ञवल्क्यो हसन्निव ॥ ४४ ॥ क्रोधं माकार्षुर्विद्वांसो भवन्तः सत्यवादिनः ॥ वदामहे यथायुक्तं जिज्ञासन्तः परस्परम् ॥ ४५ ॥
ततोऽभ्युपागमंस्तेषां वादा जग्मुरनेकशः ॥ सहस्रधा शुभैरर्थैः सूक्ष्मदर्शनसम्भवैः ॥ ४६ ॥ लोके वेदे तथाध्यात्मे विद्यास्थानैरलङ्कृताः ॥
शापोत्तमगुणैर्युक्ता नृपौघपरिवर्जनाः ॥ वादाः समभवंस्तत्र धनहेतोर्महात्मनाम् ॥ ४७ ॥ ऋषयस्त्वेकतः सर्वे याज्ञवल्क्यस्तथैकतः ॥
सर्वे ते मुनयस्तेन याज्ञवल्क्येन धीमता ॥ एकैकशस्ततः पृष्टा नैवोत्तरमथाब्रुवन् ॥ ४८ ॥ तान्विजित्य मुनीन् सर्वान् ब्रह्मराशिर्महाद्युतिः ॥
शाकल्यमिति होवाच वादकर्त्तारमञ्जसा ॥ ४९ ॥ शाकल्य वद वक्तव्यं किं ध्यायन्नवतिष्ठसे ॥ पूर्णस्त्वं जडमानेन वाताध्मातो यथा दृतिः ॥ ५० ॥
एवं स धर्षितस्तेन रोषात्ताम्रास्यलोचनः ॥ प्रोवाच याज्ञवल्क्यं तं परुषं मुनिसन्निधौ ॥ ५१ ॥ त्वमस्मांस्तृणवत्त्यक्त्वा तथैवेमान् द्विजोत्तमान् ॥
विद्याधनं महासारं स्वयंग्राहं जिघृक्षसि ॥ ५२ ॥ शाकल्येनैवमुक्तः स्याद्याज्ञवल्क्यः समब्रवीत् ॥ ब्रह्मिष्ठानां बलं विद्धि विद्यातत्त्वार्थदर्शनम् ॥ ५३ ॥
कामश्चार्थेन सम्बद्धस्तेनार्थं कामयामहे ॥ कामप्रश्नधना विप्राः कामप्रश्नान्वदामहे ॥ ५४ ॥ पणश्चैषोऽस्य राजर्षेस्तस्मान्नीतं धनं मया ॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य शाकल्यः क्रोधमूर्च्छितः ॥ याज्ञवल्क्यमथोवाच कामप्रश्नार्थमद्वचः ॥ ५५ ॥ ब्रूहीदानीं मयोद्दिष्टान् कामप्रश्नान् यथार्थतः ॥
ततः समभवद्वादस्तयोर्ब्रह्मविदोर्महान् ॥ ५६ ॥ साग्रं प्रश्नसहस्रन्तु शाकल्यस्तमचूचुदत् ॥ याज्ञवक्योऽब्रवीत्सर्वान् ऋषीणां शृण्वतां तदा ॥ ५७ ॥
शाकल्ये चापि निर्व्वादे याज्ञवल्क्यस्तमब्रवीत् ॥ प्रश्नमेकं ममापि त्वं वद शाकल्य कामिकम् ॥ शापः पणोऽस्य वादस्य अब्रुवन् मृत्युमाव्रजेत् ॥ ५८ ॥
अथ सन्नोदितं प्रश्नं याज्ञवल्क्येन धीमता ॥ शाकल्यस्तमविज्ञाय सद्यो मृत्युमवाप्नुयात् ॥ ५९ ॥ एवं मृतः स शाकल्यः प्रश्नव्याख्यानपीडितः ॥
एवं वादश्च सुमहानासीत्तेषां धनार्थिभिः ॥ ऋषीणां मुनिभिः सार्द्धं याज्ञवल्क्यस्य चैव हि ॥ ६० ॥ सर्वैः पृष्टांस्तु सम्प्रश्नान् शतशोऽथ सहस्रशः ॥
व्याख्याय वै मुने तेषां प्रश्नसारं महागतिः ॥ ६१ ॥ याज्ञवल्क्यो धनं गृह्य यशो विख्याप्य चात्मनः ॥ जगाम वै गृहं स्वस्थः शिष्यैः परिवृतो वशी ॥
॥ ६२ ॥ देवमित्रस्तु शाकल्यो महात्मा द्विजसत्तमः ॥ चकार संहिताः पञ्च बुद्धिमान् पदवित्तमः ॥ ६३ ॥ तच्छिष्या अभवन् पञ्च मुद्गलो गोलकस्त
था ॥ खालीयश्च तथा मत्स्यः शैशिरेयस्तु पञ्चमः ॥ ६४ ॥ प्रोवाच संहितास्तिस्रः शाकपूर्णरथीतरः ॥ निरुक्तञ्च पुनश्चक्रे चतुर्थं द्विजसत्तमः ॥ ६५ ॥
तस्य शिष्यास्तु चत्वारः केतवो दालकिस्तथा ॥ धर्म्मशर्म्मा देवशर्म्मा सर्व्वे व्रतधरा द्विजाः ॥ ६६ ॥ शाकल्ये तु मृते सर्व्वे ब्रह्मघ्नास्ते बभूविरे ॥
तदा चिन्तां परां प्राप्य गतास्ते ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥ ६७ ॥ तान् ज्ञात्वा चेतसा ब्रह्मा प्रेषितः पवने पुरे ॥ तत्र गच्छत यूयं वः सद्यः पापं प्रणश्यति ॥ ६८ ॥

द्वादशार्कं नमस्कृत्य तथा वै वालुकेश्वरम् ॥ एकादश तथा रुद्रान् वायुपुत्रं विशेषतः ॥ कुण्डे चतुष्टये स्नात्वा ब्रह्महत्यां तरिष्यथ ॥ ६९ ॥
सर्व्वे शीघ्रतरा भूत्वा तत्पुरं समुपागताः ॥ स्नानं कृतं विधानेन देवानां दर्शनं कृतम् ॥ ७० ॥ उत्तरेश्वरं नमस्कृत्य वाडवानां प्रसादतः ॥
सर्व्वे पापविनिर्मुक्ता गतास्ते सूर्य्यमण्डलम् ॥ ७१ ॥ तदा प्रभृति तत्तीर्थं जातं पातकनाशनम् ॥ वायोः पुरं पवित्रञ्च वायुना निर्म्मितं पुरा ॥७२॥
अञ्जनागर्भसम्भूतहनुमान्पवनात्मजः ॥ यदा जातो महादेवहनुमान्सत्यविक्रमः ॥ तदेवं निर्म्मितं तीर्थं वायुना ब्रह्मयोनिना ॥ ७३ ॥ ऊर्व्यां जातास्तु ये
शूद्रा ब्राह्मणानां निवेदिताः ॥ वृत्त्यर्थं ब्रह्मयज्ञार्थं करस्तेषु कृतो महान् ॥७४॥ अनेन विधिना जातं विप्राणां शासनं महत् ॥ गोघ्नो वापि कृतघ्नोवा
सुरापी गुरुतल्पगः ॥ वाडादित्यं नमस्कृत्य सर्व्वपापैः प्रमुच्यते॥७५॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते महास्थानतीर्थवर्णनं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥
॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ भारद्वाजो याज्ञवल्क्यो गालकिः सालकिस्तथा ॥ धीमान् शतबलाकश्च नैगमश्च द्विजोत्तमः ॥ १ ॥ बाष्कलिश्च भरद्वाज
स्तिस्रः प्रोवाच संहिताः ॥ रथीतरो निरुक्तश्च पुनश्चक्रे चतुर्थकम् ॥ २ ॥ त्रयस्तस्याभवञ्छिष्या महात्मानो गुणान्विताः ॥ धीमान्नन्दायनीयश्च पन्न
गारिश्च बुद्धिमान् ॥ तृतीयश्चार्यवस्ते च तपसा शंसितव्रताः ॥ ३॥ वीतरागा महातेजाःसंहिताज्ञानपारगाः ॥इत्येते बह्वृचाः प्रोक्ताः संहिता यैः प्रवर्त्तिताः
॥ ४ ॥ वैशम्पायनगोत्रोऽसौ यजुर्वेदं व्यकल्पयत् ॥ षडशीतिस्तु येनोक्ताः संहिता यजुषां शुभाः ॥ ५ ॥ शिष्येभ्यः प्रददौ ताश्च जगृहुस्ते विधानतः॥
एकस्तत्र परित्यक्तो याज्ञवल्क्यो महातपाः ॥ षडशीतिश्च तस्यापि संहितानां विकल्पकाः ॥ ६ ॥ सर्वेषामेव तेषां वै त्रिधा भेदाः प्रकीर्त्तिताः ॥ त्रिधा
भेदास्तु ते प्रोक्ता भेदेऽस्मिन्नवमे शुभे ॥ ७ ॥ उदीच्या मध्यदेशाश्च प्राच्याश्चैव पृथग्विधाः ॥ श्यामायनिरुदीच्यानां प्रधानः सम्बभूव ह ॥ ८ ॥ मध्य
देशप्रतिष्ठानामारुणिः प्रथमः स्तुतः ॥ आलम्बिरादिः प्राच्यानान्त्रयोदश्यादयस्तु ते ॥ ९ ॥ इत्येते चरकाः प्रोक्ताः संहितावादिनो द्विजाः ॥ ऋष
यस्तद्वचः श्रुत्वा सूतं जिज्ञासवोऽब्रुवन् ॥ १० ॥ चरकाध्वर्य्यवः केन कारणं ब्रूहि तत्त्वतः ॥ किञ्चीर्णं कस्य हेतोश्च वाचकत्वञ्च भेजिरे ॥ इत्युक्तः
प्राह तेषां स चरकत्वमभूद्यथा ॥ ११ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ कार्य्यमासीदृषीणाञ्च किञ्चिद्ब्राह्मणसत्तमाः ॥ मेरुपृष्ठं समासाद्य तैस्तदा त्विति
मन्त्रितम् ॥ १२ ॥ यो नोऽत्र सप्तरात्रेण नागच्छेद्द्विजसत्तमाः ॥ स कुर्य्याद्ब्रह्मवध्यां वै समयो नः प्रकीर्त्तितः ॥ १३ ॥ ततस्ते सगणाः सर्व्वे वैशम्पाय
नवर्जिताः ॥ प्रययुः सप्तरात्रेण यत्र सन्धिः कृतोऽभवत् ॥ १४ ॥ ब्राह्मणानान्तु वचनाद्ब्रह्मवध्याञ्चकार सः ॥ शिष्यानथ समानीय स वैशम्पायनोऽब्रवी
त् ॥१५॥ब्रह्मवध्याञ्चरध्वं वै मत्कृते द्विजसत्तमाः ॥ सर्वे यूयं समागम्य ब्रूत मे तद्धितं वचः ॥ १६ ॥ ॥ याज्ञवल्क्य उवाच ॥ अहमेव चरिष्यामि तिष्ठन्तु

मुनयस्त्वमे ॥ बलश्चोत्थापयिष्यामि तपसा स्वेन भावितः ॥ १७ ॥ एवमुक्तस्ततः क्रुद्धो याज्ञवल्क्यमथाब्रवीत् ॥ उवाच यत्त्वयाऽधीतं सर्वं प्रत्यर्पयस्व मे ॥१८॥ एवमुक्तः स रूपाणि यजूंषि प्रददौ गुरोः॥ रुधिरेण तथाक्तानि छर्दित्वा ब्रह्मवित्तमः ॥ १९ ॥ ततः स ध्यानमास्थाय सूर्य्यमाराधयद्द्विजाः॥ सूर्यब्रह्म यदुच्छिन्नं खङ्गत्वा प्रतितिष्ठति ॥ २० ॥ ततो यानि गतान्यूर्द्ध्वं यजूंष्यादित्यमण्डलम् ॥ तानि तस्मै ददौ तुष्टः सूर्य्यो वै ब्रह्मरातये ॥ अश्वरूपाय मार्तण्डो याज्ञवल्क्याय धीमते ॥ २१ ॥ यजूंष्यधीयन्ते यानि ब्राह्मणा येन केन च ॥ अश्वरूपाय दत्तानि ततस्ते वाजिनोऽभवन्॥२२॥ ब्रह्महत्या तु यैश्चीर्णा चरणाच्चरकाः स्मृताः ॥ वैशम्पायनशिष्यास्ते चरकाः समुदाहृताः ॥ २३ ॥ इत्येते चरकाः प्रोक्ता वाजिनस्तान्निबोधत ॥ याज्ञवल्क्यस्य शिष्यास्ते कण्ववैधेयशालिनः ॥ २४ ॥ मध्यन्दिनश्च शापेयी विदिग्धश्चाप्य उद्दलः ॥ ताम्रायणश्च वात्स्यश्च तथा गालवशैशिरी ॥ आटवी च तथा पर्णी वीरणी सपरायणः ॥ २५ ॥ इत्येते वाजिनः प्रोक्ता दश पञ्च च संस्मृताः ॥ शतमेकाधिकं कृत्स्नं यजुषां वै विकल्पकाः ॥२६॥ पुत्रमध्यापयामास सुमन्तुमथ जैमिनिः ॥ सुमन्तुश्चापि सुत्वानं पुत्रमध्यापयत्प्रभुः ॥ सुकर्माणं सुतं सुत्वा पुत्रमध्यापयत्प्रभुः ॥ २७ ॥ स सहस्रमधीत्याशु सुकर्माप्यथ संहिताः ॥ प्रोवाचाथ सहस्रस्य सुकर्मा सूर्यवर्चसः ॥ २८ ॥ अनध्यायेष्वधीयानांस्ताञ्जघान शतक्रतुः ॥ प्रायोपवेशमकरोत्ततोऽसौ शिष्यकारणात् ॥ २९ ॥ क्रुद्धं दृष्ट्वा ततः शक्रो वरमस्मै ददौ पुनः ॥ भाविनौ ते महावीर्य्यौ शिष्यावनलवर्चसौ ॥ ३० ॥ अधीयानौ महाप्राज्ञौ सहस्रं संहितावुभौ ॥ एतौ सुरौ महाभागौ मा क्रुध्य द्विजसत्तम ॥ ३१ ॥ इत्युक्त्वा वासवः श्रीमान्सुकर्माणं यशस्विनम् ॥ शान्तक्रोधं द्विजं दृष्ट्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥३२॥ तस्य शिष्यो भवेद्धीमान्पौष्यञ्जी द्विजसत्तमाः ॥ हिरण्यनाभः कौशिक्यो द्वितीयोऽभून्नराधिपः ॥ ३३ ॥ अध्यापयत्तु पौष्यञ्जी सहस्रार्द्धन्तु संहिताः ॥ तेनान्योदीच्यसामान्याः शिष्याः पौष्यञ्जिनः शुभाः॥३४॥ शतानि पञ्च कौशिक्यः संहितानाञ्च वीर्य्यवान्॥ शिष्या हिरण्यनाभस्य स्मृतास्ते प्राच्यसामगाः ॥३५॥ लोकाक्षी कुथुमिश्चैव कुशीती लाङ्गलिस्तथा ॥ पौष्यञ्जिशिष्याश्चत्वारस्तेषां भेदान्निबोधत॥३६॥राणायनीयः संहितण्डिपुत्रस्तस्मादन्यो मूलचारी सुविद्वान्॥ सकतिपुत्रः सहसात्यपुत्र एतान् भेदान् वित्त लोकाक्षिणस्तु ॥३७॥ त्रयस्तु कुथुमेः पुत्रा औरसो रसपासरः॥भागवित्तिश्च तेजस्वी त्रिविधाः कौथुमाः स्मृताः ॥३८॥ शौरिद्युः शृङ्गिपुत्रश्च द्वावेतौ चरितव्रतौ॥राणायनीयः सौमित्रिः सामवेदविशारदौ॥३९॥ प्रोवाच संहितास्तिस्रः शृङ्गिपुत्रो महातपाः ॥ चैलः प्राचीनयोगश्च सुरालश्च द्विजोत्तमाः ॥ ४० ॥ प्रोवाच संहिताः षट् तु पाराशर्य्यस्तु कौथुमः ॥ आसुरायणवैशाख्यौ वेदवृद्धपरायणौ ॥४१ ॥ प्राचीनयोगपुत्रश्च बुद्धिमांश्च पतञ्जलिः ॥ कौथुमस्य तु भेदास्ते पाराशर्य्यस्य षट् स्मृताः ॥ लाङ्गलिः

शालिहोत्रश्च षट् षट् प्रोवाच संहिताः ॥ ४२ ॥ भालुकिः कामहानिश्च जैमिनिर्लौमगायिनः ॥ कण्डश्च कोलहश्चैव षडेते लाङ्गलाः स्मृताः ॥ एते लाङ्गलिनः शिष्याः संहिता यैः प्रसाविताः ॥ ४३ ॥ ततो हिरण्यनाभस्य कृतशिष्यो नृपात्मजः ॥ सोऽकरोच्च चतुर्विंशत्संहिता द्विपदां वरः ॥ प्रोवाच चैव शिष्येभ्यो येभ्यस्तांश्च निबोधत ॥ ४४ ॥ राडश्च महवीर्य्यश्च पञ्चमो वाहनस्तथा ॥ तालकः पाण्डकश्चैव कालिको राजिकस्तथा ॥ गौतमश्चाजवस्तश्च सोमराजाऽपतत्ततः॥४५॥पृष्ठघ्नःपरिकृष्टश्च उलूखलक एव च॥यवीयसश्च वैशालो अंगुलीयश्च कौशिकः ॥४६॥सालिमञ्जरिसत्यश्च कापीयः कानिकश्च यः॥पराशरश्च धर्मात्मा इति क्रान्तास्तु सामगाः॥४७॥सामगानान्तु सर्वेषां श्रेष्ठौ द्वौ तु प्रकीर्त्तितौ॥पौष्याञ्जिश्च कृतिश्चैव संहितानां विकल्पकौ॥४८॥ अथर्वाणं द्विधा कृत्वा सुमन्तुरददद्द्विजाः ॥ कबन्धाय पुनः कृत्स्नं स च विद्याद्यथाक्रमम् ॥ ४९ ॥ कबन्धस्तु द्विधा कृत्वा पथ्यायैकम्पुनर्ददौ ॥ द्वितीयं वेदस्पर्शाय स चतुर्द्धाऽकरोत् पुनः ॥५०॥मोदो ब्रह्मबलश्चैव पिप्पलादस्तथैव च ॥ शौक्कायनिश्च धर्मज्ञश्चतुर्थस्तपनः स्मृतः ॥ वेदस्पर्शस्य चत्वारः शिष्यास्त्वेते दृढव्रताः॥५१॥ पुनश्च त्रिविधं विद्धि पथ्यानां भेदमुत्तमम् ॥ जाजलिः कुमदादिश्च तृतीयः शौनकः स्मृतः॥५२॥ शौनकस्तु द्विधा कृत्वा ददावेकन्तु बभ्रवे ॥ द्वितीयां संहितां धीमान्सैन्धवायनसंज्ञिते ॥ ५३ ॥ सैन्धवो मुञ्जकेशाय भिन्ना सा च द्विधा पुनः ॥ नक्षत्रकल्पो वैतानस्तृतीयः संहिताविधिः ॥ चतुर्थोऽङ्गिरसः कल्पो शान्तिकल्पश्च पञ्चमः ॥ ५४ ॥ श्रेष्ठस्त्वथर्वणो ह्येते संहितानां विकल्पनाः ॥ षट्शः कृत्वा मयाप्युक्तं पुराणमृषिसत्तमाः ॥ ५५ ॥ आत्रेयः सुमतिर्धीमान्काश्यपो ह्यकृतव्रणः ॥ भारद्वाजोऽग्निवर्चाश्च वसिष्ठो मित्रयुश्च यः ॥ सावर्णिः सोमदत्तिस्तु सुशर्म्मा शांशपायनः ॥ ५६ ॥ एते शिष्या मम ब्रह्मन् पुराणेषु दृढव्रताः ॥ त्रिभिस्तिस्रः कृतास्तिस्रः संहिताः पुनरेव हि ॥ ५७ ॥ काश्यपः संहिताकर्त्ता सावर्णिः शांशपायनः॥ सामिका च चतुर्थी स्यात्सा चैषा पूर्वसंहिता ॥ ५८ ॥ सर्वास्ता हि चतुष्पादाः सर्वाश्चैकार्थवाचिकाः ॥ पाठान्तरे पृथग्भूता वेदशाखा यथा तथा ॥ चतुःसाहस्रिका सर्व्वाः शांशपायनिकामृते ॥ ५९ ॥ लोमहर्षणिका मूलास्ततः काश्यपिकाः पराः ॥ सावर्णिकास्तृतीयास्ता यजुर्वाक्यार्थपण्डिताः॥६०॥शांशपायनिकाश्चान्या नोदनार्थविभूषिताः ॥ सहस्राणि ऋचामष्टौ षट्शतानि तथैव च ॥ ६१ ॥ एताः पञ्चदशान्याश्च दशान्या दशभिस्तथा ॥ वालखिल्याः सप्रैवाः ससावर्णाः प्रकीर्तिताः ॥ ६२ ॥ अष्टौ सामसहस्राणि सामानि च चतुर्दश ॥ आरण्यकं सहोमञ्च एतद्गायन्ति सामगाः ॥६३॥ द्वादशैव सहस्राणि छन्द आध्वर्यवं स्मृतम् ॥ यजुषां ब्राह्मणानाञ्च यथा व्यासो व्यकल्पयत् ॥ ६४ ॥ सग्राम्यारण्यकन्तस्यात्समन्त्रकरणं तथा ॥ अतः परङ्कथानान्तु पूर्वा इति विशेषणम् ॥ ६५ ॥ ग्राम्यारण्यं समन्त्रञ्च ऋग्ब्राह्मणयजुः स्मृतम् ॥

तथा हारिद्रवीयाणां खिलान्युपखिलानि च ॥ तथैव तैत्तिरीयाणां परक्षुद्रा इति स्मृतम् ॥ ६६ ॥ द्वे सहस्रे शतन्यूने वेदे वाजसनेयके ॥ ऋग्गणः
परिसंख्यातो ब्राह्मणन्तु चतुर्गुणम् ॥ ६७ ॥ अष्टौ सहस्राणि शतानि चाष्टौ अशीतिरन्यान्यधिकश्च पादः ॥ एतत्प्रमाणं यजुषामृचाञ्च सशुक्रियं
साखिलयाज्ञवल्क्यम् ॥ ६८ ॥ तथा चरणविद्यानां प्रमाणं संहितां शृणु ॥ षट्साहस्रमृचामुक्तमृचः षड्विंशतिः पुनः ॥ एतावदधिकं तेषां यजुः कामं
विवक्षति॥६९॥एकादश सहस्राणि दश चान्या दशोत्तराः॥ ऋचान्दश सहस्राणि अशीतिस्त्रिशतानि च॥७०॥सहस्रमेकं मन्त्राणामृचामुक्तं प्रमाणतः ॥
एतावदृग्गुविस्तारमन्यच्चाथर्विकं बहु ॥ ७१ ॥ ऋचामथर्वणां पञ्च सहस्राणि विनिश्चयः ॥ सहस्रमन्यद्विज्ञेयमृषिभिर्विंशतिं विना ॥ ७२ ॥
एतदङ्गिरसा प्रोक्तन्तेषामारण्यकम्पुनः ॥ इति संख्या प्रसंख्याता शाखाभेदास्तथैव च ॥ ७३ ॥ कर्त्तारश्चैव शाखानां भेदे हेतुस्तथैव च ॥
सर्वमन्वन्तरेष्वेवं शाखाभेदाः समाः स्मृताः ॥ ७४ ॥ प्राजापत्या श्रुतिर्नित्या तद्विकल्पास्त्विमे स्मृताः ॥ अनित्यभावाद्देवानां मन्त्रोत्पत्तिः पुनः
पुनः ॥ ७५ ॥ मन्वन्तराणां क्रियते सुराणां नामनिश्चयः ॥ द्वापरेषु पुनर्भेदाः श्रुतानां परिकीर्त्तिताः ॥ ७६ ॥ एवं वेदन्तदान्यस्य भगवानृषिसत्तमः ॥
शिष्येभ्यश्च पुनर्दत्त्वा तपस्तप्तुं गतो वनम् ॥ तस्य शिष्यप्रशिष्यैस्तु शाखाभेदास्त्विमे कृताः ॥ ७७ ॥ अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्त
रः ॥ धर्म्मशास्त्रं पुराणञ्च विद्यास्त्वेताश्चतुर्दश ॥ ७८ ॥ आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चैव ते त्रयः ॥ अर्थशास्त्रं चतुर्थन्तु विद्यास्त्वष्टादशैव तु ॥
॥ ७९ ॥ ज्ञेया ब्रह्मर्षयः पूर्वन्तेभ्यो देवर्षयः पुनः ॥ राजर्षयः पुनस्तेभ्य ऋषिप्रकृतयस्त्रयः ॥ तेभ्य ऋषिप्रकृतयो मुनिभिः शंसितव्रतैः ॥ ८० ॥
कश्यपेषु वसिष्ठेषु तथा भृग्वङ्गिरोऽत्रिषु ॥ पञ्चस्वेतेषु जायन्ते गोत्रेषु ब्रह्मवादिनः ॥ यस्मादृषन्ति ब्रह्माणन्तेन ब्रह्मर्षयः स्मृताः ॥ ८१ ॥
धर्म्मस्याथ पुलस्त्यस्य क्रतोश्च पुलहस्य च ॥ प्रत्यूषस्य प्रभासस्य कश्यपस्य तथा पुनः ॥ ८२ ॥ देवर्षयः सुतास्तेषां नामतस्तान्निबोधत ॥
देवर्षी धर्म्मपुत्रौ तु नरनारायणावुभौ ॥ ८३ ॥ वालखिल्याः क्रतोः पुत्राः कर्दमः पुलहस्य तु ॥ कुबेरश्चैव पौलस्त्यः प्रत्यूषस्या
चलः स्मृतः ॥ ८४ ॥ पर्वतो नारदश्चैव कश्यपस्यात्मजावुभौ ॥ ऋषन्ति देवान् यस्मात्ते तस्माद्देवर्षयः स्मृताः ॥ ८५ ॥ मानवे वैषये
वंशे ऐलवंशे च ये नृपाः ॥ ऐला ऐक्ष्वाकनाभागा ज्ञेया राजर्षयस्तु ते ॥ ८६ ॥ ऋषन्ति रञ्जनाद्यस्मात्प्रजा राजर्षयस्ततः ॥ ब्रह्मलोकप्रतिष्ठास्तु स्मृता ब्रह्मर्ष
यो मताः ॥ ८७ ॥ देवलोकप्रतिष्ठाश्च ज्ञेया देवर्षयः शुभाः ॥ इन्द्रलोकप्रतिष्ठास्तु सर्वे राजर्षयो मताः ॥ ८८ ॥ अभिजात्या च तपसा मन्त्रव्याहरणै
स्तथा ॥ एवं ब्रह्मर्षयः प्रोक्ता दिव्या राजर्षयस्तु ये ॥ ८९ ॥ देवर्षयस्तथाऽन्ये च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ भूतभव्यभवज्ञानं सत्याभिव्याहृतं तथा
॥ ९० ॥ सम्बुद्धास्तु स्वयं ये तु सम्बुद्धा ये च वै स्वयम् ॥ तपसेह प्रसिद्धा ये गर्भे यैश्च प्रणोदितम् ॥ ९१ ॥ मन्त्रव्याहारिणो ये च ऐश्वर्यात्सर्वगा

श्च ये ॥ इत्येते ऋषिभिर्युक्ता देवाद्विजनृपास्तु ये ॥ ९२ ॥ एतान् भावानधीयाना ये चैत ऋषयो मताः ॥ सप्तैते सप्तभिश्चैव गुणैः सप्तर्षयः स्मृताः ॥
॥ ९३ ॥ दीर्घायुषो मन्त्रकृत ईश्वरा दिव्यचक्षुषः ॥ बुद्धाः प्रत्यक्षधर्माणो गोत्रप्रवर्तकाश्च ये ॥ ९४ ॥ षट्कर्माभिरता नित्यं शालिनो गृहमेधिनः ॥
तुल्यैर्व्यवहरन्ति स्म अदृष्टैः कर्महेतुभिः ॥ ९५ ॥ अग्राम्यैर्वर्त्तयन्ति स्म रसैश्चैव स्वयंकृतैः ॥ कुटुम्बिन ऋद्धिमन्तो बाह्यान्तरनिवासिनः ॥ ९६ ॥
कृतादिषु युगाख्येषु सर्व्वेष्वेव पुनः पुनः ॥ वर्णाश्रमव्यवस्थानं क्रियन्ते प्रथमन्तु वै॥९७॥प्राप्ते त्रेतायुगमुखे पुनः सप्तर्षयस्त्विह ॥ प्रवर्त्तयन्ति ये वर्णाना
श्रमांश्चैव सर्वशः ॥ तेषामेवान्वये वीरा उत्पद्यन्ते पुनः पुनः॥९८॥जायमाने पिता पुत्रे पुत्रः पितरि चैव हि ॥ एवं समेत्याविच्छेदाद्वर्त्तयन्त्यायुगक्षयात् ॥
अष्टाशीतिसहस्राणि प्रोक्तानि गृहमेधिनाम्॥९९॥ अर्य्यम्णो दक्षिणा ये तु पितृयाणं समाश्रिताः ॥ दाराग्निहोत्रिणस्ते वै ये प्रजाहेतवः स्मृताः ॥१००॥
गृहमेधिनाञ्च संख्येयाः श्मशानान्याश्रयन्ति ते ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि निहिता उत्तरायणे ॥ १०१ ॥ ये श्रूयन्ते दिवं प्राप्ता ऋषयो ह्यूर्द्धरेतसः ॥ म
न्त्रब्राह्मणकर्त्तारो जायन्ते ह युगक्षये ॥ १०२ ॥ एवमावर्त्तमानास्ते द्वापरेषु पुनः पुनः ॥ कल्पानां भाष्यविद्यानां नानाशास्त्रकृतः क्षये ॥ १०३ ॥ भ
विष्ये द्वापरे चैव द्रौणिर्द्वैपायनः पुनः ॥ वेदव्यासो ह्यतीतेऽस्मिन् भविता सुमहातपाः ॥ १०४ ॥ भविष्यन्ति भविश्येषु शाखाप्रणयनानि तु ॥ तस्मै
तद्ब्रह्मणा ब्रह्म तपसा प्राप्तमव्ययम् ॥ १०५ ॥ तपसा कर्म्म सम्प्राप्तं कर्म्मणा हि ततो यशः ॥ यशसा प्राप्य सत्यं हि सत्येनाप्तो हि चाव्ययः॥१०६॥
अव्ययादमृतं शुक्रममृतात् सर्व्वमेव हि ॥ ध्रुवमेकाक्षरमिदं स्वात्मन्येव व्यवस्थितम् ॥ बृहत्त्वाद्बृंहणाच्चैव तद्ब्रह्मेत्यभिधीयते ॥ १०७॥ प्रणवाव
स्थितं भूयो भूर्भुवःस्वरिति स्मृतम् ॥ ऋग्यजुःसामाथर्वरूपिणे ब्रह्मणे नमः ॥ १०८ ॥ जगतः प्रलयोत्पत्तौ यत्तत्कारणसंज्ञितम् ॥ महतः परमं गुह्यं
तस्मै सुब्रह्मणे नमः ॥ १०९ ॥ अगाधापरमक्षय्यं जगत्सम्मोहनालयम् ॥ सप्रकाशप्रवृत्तिभ्यां पुरुषार्थप्रयोजनम् ॥ ११० ॥ साङ्ख्यज्ञानवतां निष्ठा ग
तिः सङ्गदमात्मनः ॥ यत्तदव्यक्तममृतं प्रकृतिब्रह्म शाश्वतम् ॥ १११ ॥ प्रधानमात्मयोनिश्च गुह्यं सत्त्वञ्च शब्द्यते ॥ अविभागस्तथा शुक्रमक्षरं बहु
वाचकम् ॥ परमब्रह्मणे तस्मै नित्यमेव नमो नमः ॥ ११२ ॥ कृते पुनः क्रिया नास्ति कुत एवाकृतक्रिया ॥ सकृदेव कृतं सर्व्वं यद्वै लोके कृताकृतम्
॥ ११३ ॥ श्रोतव्यं वै श्रुतं वापि तथैवासाधुसाधुता ॥ ज्ञातव्यश्चाथ मन्तव्यं स्प्रष्टव्यं भोज्यमेव च ॥ द्रष्टव्यश्चाथ श्रोतव्यं ज्ञातव्यं वाथ किञ्चन
॥ ११४ ॥ दर्शितं यदनेनैव ज्ञानं तद्वै सुरर्षिणाम् ॥ यद्वै दर्शितवानेष कस्तदन्वेष्टुमर्हति ॥ सर्वाणि सर्व्वान्सर्वांश्च भगवानेव सोऽब्रवीत् ॥ ११५ ॥
यदा यत्क्रियते येन तदा तत्सोऽभिमन्यते ॥ येनेदं क्रियते पूर्व्वं तदन्येन विभावितम् ॥ ११६ ॥ यदा तु क्रियते किञ्चित्केनाचिद्वाङ्मयं क्वचित् ॥
तेनैव तत्कृतं पूर्वं कर्त्तॄणां प्रतिभाति वै ॥ ११७ ॥ विरक्तश्चातिरिक्तश्च ज्ञानाज्ञाने प्रियाप्रिये ॥ धर्म्माधर्म्मौ सुखं दुःखं मृत्युश्चामृतमेव च ॥

ऊर्द्धन्तिर्य्यगधोभागस्तस्यैवाहष्टकारणम् ॥ ११८ ॥ स्वायम्भुवोऽथ ज्येष्ठस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ प्रत्येकविद्यम्भवति त्रेतास्विह पुनः पुनः ॥११९॥
व्यस्यते ह्येकविद्यन्तद्द्वापरेषु पुनः पुनः ॥ ब्रह्मा चैतदुवाचादौ तस्मिन् वैवस्वतेऽन्तरे ॥ १२० ॥ आवर्त्तमाना ऋषयो युगाख्यासु पुनः पुनः ॥
कुर्व्वन्ति संहिता ह्येते जायमानाः परस्परम् ॥१२१॥ अष्टाशीतिसहस्राणि श्रुतर्षीणां स्मृतानि वै ॥ ता एव संहिता ह्येते आवर्त्तन्ते पुनः पुनः ॥१२२॥
श्रिता दक्षिणपन्थानं ये श्मशानानि भेजिरे ॥ युगे युगे तु ताः शाखा व्यस्यन्ते तैः पुनः पुनः ॥ १२३ ॥ द्वापरेष्विव सर्वेषु संहिताश्च श्रुतर्षिभिः ॥
तेषां गोत्रेष्विमाः शाखा भवन्तीह पुनः पुनः ॥ ताः शाखास्तत्र कर्त्तारो भवन्तीह युगक्षयात् ॥ १२४ ॥ एवमेव तु विज्ञेयं व्यतीतानागतेष्विह ॥
मन्वन्तरेषु सर्वेषु शाखाप्रणयनानि वै ॥ १२५ ॥ अतीतेषु अतीतानि वर्त्तन्ते साम्प्रतेषु च ॥ भविष्याणि च यानि स्युर्वर्ण्यन्तेऽनागतेष्वपि ॥ १२६ ॥
पूर्वेण पश्चिमं ज्ञेयं वर्त्तमानेन चोभयम् ॥ एतेन क्रमयोगेन मन्वन्तरविनिश्चयः ॥ १२७ ॥ एवं देवाश्च पितर ऋषयो मनवश्च ये ॥ मन्त्रैः सहोर्द्धङ्ग
च्छन्ति ह्यावर्त्तन्ते च तैः सह ॥ १२८ ॥ जनलोकात्सुराः सर्वे पशुकल्पात्पुनः पुनः ॥ पर्य्याप्तकाले सम्प्राप्ते सम्भूता नैव नस्य तु ॥ १२९ ॥
अवश्यम्भाविनार्थेन सम्बध्यन्ते तदा तु ते ॥ ततस्ते दोषवज्जन्म पश्यन्ते रागपूर्व्वकम् ॥ १३० ॥ निवर्त्तते तदा वृत्तिस्तेषामादोषदर्शनात् ॥ एवं देव
युगानीह दश कृत्वा निवर्त्तते ॥ १३१ ॥ जनलोकात्तपोलोकं गच्छन्तीहानिवर्त्तनम् ॥ एवं देवयुगानीह व्यतीतानि सहस्रशः ॥ निधनं ब्रह्मलोके
वै गतानि मुनिभिस्सह ॥ १३२ ॥ न शक्यमानुपूर्व्येण तेषां वक्तुं सविस्तरान् ॥ अनादित्वाच्च कालस्य असङ्ख्यानाच्च सर्व्वशः ॥ मन्वन्तराण्यती
तानि यानि कल्पैः पुरा सह ॥ १३३ ॥ पितृभिर्मुनिभिर्देवैः सार्द्धं सप्तर्षिभिश्च वै ॥ कालेन प्रतिसृष्टानां युगानाञ्च निवर्तनम् ॥ १३४ ॥ एतेन क्रमयो
गेन कल्पमन्वन्तराणि तु ॥ सप्रजानि व्यतीतानि शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १३५ ॥ मन्वन्तरान्ते संहारः संहारान्ते च सम्भवः ॥ देवतानामृषीणाञ्च म
नोः पितृगणस्य च ॥ १३६ ॥ न शक्यमानुपूर्व्येण वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ विस्तरस्तु निसर्गस्य संहारस्य च सर्वशः ॥ मन्वन्तरस्य संख्यां तु मानु
षेण निबोधत ॥ १३७ ॥ देवतानामृषीणाञ्च सङ्ख्यानार्थविशारदैः ॥ त्रिंशत्कोट्यस्तु संपूर्णाः सङ्ख्याताः सङ्ख्यया द्विजैः ॥ १३८ ॥ सप्तषष्टिस्त
थान्यानि नियुतानि च सङ्ख्यया ॥ विंशतिश्च सहस्राणि कालोऽयं सोधिकान् विना ॥ १३९ ॥ मन्वन्तरस्य सङ्ख्यैषा मानुषेण प्रकीर्त्तिता ॥ वत्स
रेणैव दिव्येन प्रवक्ष्याम्यन्तरम्मनोः ॥ १४० ॥ अष्टौ शतसहस्राणि दिव्यया सङ्ख्यया स्मृतम् ॥ द्विपञ्चाशत्तथान्यानि सहस्राण्यधिकानि तु ॥१४१॥
चतुर्दशगुणो ह्येष काल आहूतसंप्लवः ॥ पूर्णं युगसहस्रं स्यात्तदहर्ब्रह्मणः स्मृतम् ॥ १४२ ॥ तत्र सर्व्वाणि भूतानि दग्धान्यादित्यरश्मिभिः ॥ ब्रह्मा
णमग्रतः कृत्वा सह देवर्षिदानवैः ॥ प्रविशन्ति सुरश्रेष्ठं देवदेवं महेश्वरम् ॥ १४३ ॥ स स्रष्टा सर्व्वभूतानि कल्पादिषु पुनः पुनः ॥ इत्येष स्थितिकता

ततस्तेषु व्यतीतेषु सर्व्वेष्वेतेषु सर्वदा ॥ शून्येषु देवस्थानेषु त्रैलोक्ये तेषु सर्वशः ॥ उपस्थिता इहैवान्ये देवा ये स्वर्गवासिनः ॥ १७१ ॥ ततस्ते
तपसा युक्ता स्थानान्यापूरयन्ति वै ॥ सत्येन ब्रह्मचर्य्येण श्रुतेन च समन्विताः ॥ १७२ ॥ सप्तर्षीणां मनोश्चैव देवानां पितृभिः सह ॥ निधनानीह
पूर्व्वेषामादिना च भविष्यता ॥ १७३ ॥ तेषामत्यन्तविच्छेद इह मन्वन्तरक्षयात् ॥ एवं पूर्वानुपूर्व्येण स्थितिरेषाऽनवस्थिता ॥ मन्वन्तरेषु सर्वेषु या
वदाभूतसंप्लवम् ॥ १७४ ॥ एवं मन्वन्तराणान्तु प्रतिसन्धानलक्षणम् ॥ अतीतानागतानान्तु प्रोक्तं स्वायम्भुवेन तु ॥ १७५ ॥ मन्वन्तरेष्वतीतेषु भवि
ष्याणांतु साधनम् ॥ एवमत्यन्तविच्छिन्नं भवत्याभूतसंप्लवात् ॥ १७६ ॥ मन्वन्तराणां परिवर्त्तनानि एकान्ततस्तानि महर्गतानि ॥ महर्जनश्चैव जन
न्तपश्च एकान्तगानि स्म भवन्ति सत्ये ॥ १७७ ॥ तद्भाविनां तत्र तु दर्शनेन नानात्वदृष्टेन च प्रत्ययेन ॥ सत्ये स्थितानीह तदा तु तानि प्राप्ते
विकारे प्रतिसर्गकाले ॥ १७८ ॥ मन्वन्तराणां परिवर्त्तनानि मुञ्चन्ति सत्यन्तु ततोऽपरान्ते ॥ ततोऽभियोगाद्विपमप्रमाणं विशन्ति नारायणमेव देवम्
॥ १७९ ॥ मन्वन्तराणां परिवर्त्तनेषु चिरप्रवृत्तेषु विधिस्वभावात् ॥ क्षणं रसं तिष्ठति जीवलोकः क्षयोदयाभ्यां परिवन्द्यमानः ॥ १८० ॥ इत्युत्तराण्ये
वमृषिस्तुतानां धर्म्मात्मनां दिव्यदृशां मनूनाम् ॥ वायुप्रणीतान्युपलभ्य हृद्यं दिव्यौजसा व्याससमासयोगैः ॥ १८१ ॥ सर्व्वाणि राजर्षिसुरर्षिमन्ति
ब्रह्मर्षिदेवोरगवन्ति चैव ॥ सुरेशसप्तर्षिपितृप्रजेशैर्युक्तानि सम्यक् परिवर्त्तनानि ॥ १८२ ॥ उदारवंशाभिजनद्युतीनां प्रकृष्टमेधाभिसमेधितानाम् ॥ की
र्तिद्युतिख्यातिभिरन्वितानां पुण्यं हि विख्यापनमीश्वराणाम्॥१८३॥स्वर्गीयमेतत् परमं पवित्रं पुत्रीयमेतच्च परं रहस्यम् ॥ जप्यं महत्पर्वसु चैतदग्र्यं दुः
स्वप्रशान्तिः परमायुषेयम्॥१८४॥प्रजेशदेवर्षिमनुप्रधानां पुण्यप्रसूतिं प्रथितामजस्य ॥ ममापि विख्यापनसंयमाय सिद्धिं जुषध्वं सुमहेशतत्त्वम्॥१८५॥
इत्येतदन्तरं प्रोक्तं मनोः स्वायम्भुवस्य तु ॥ विस्तरेणानुपूर्व्या च भूयः किं वर्णयाम्यहम् ॥ १८६॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते प्रजापतिवंशानुकीर्त्त
नं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ ॥ छ ॥ ॥ समाप्तमिदं प्रथमं खण्डम् ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥ ॥ छ ॥

इदं पुस्तकं श्रीकृष्णदासात्मजेन खेमराजश्रेष्ठिना मुम्बय्यां स्वकीये
"श्रीवेङ्कटेश्वराख्य"मुद्रणयन्त्रालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।
शकाब्दाः १८१७, संवदब्दाः १९५२, सन्संज्ञकाब्दाः १८९५.

सहस्रधारो विश्वात्मा शमितारो बृहद्वसुः ॥ विश्वधा विश्वकर्मा च मनस्वन्तो विराड्यशाः ॥ २६ ॥ ज्योतिश्चैव विभाव्यश्च कीर्त्तिमान् वंशकारिणः॥
अन्यानाराधितो देवो वसुधिष्णो विवस्वसुः ॥ २७ ॥ दिनक्रतुः सुधर्मा च धृतवर्मा यशस्विनः ॥ केतुमांश्चैव इत्येते कीर्त्तितास्तु प्रमर्दनाः ॥२८॥
हंसस्वरोऽहिहा चैव प्रतर्दनयशस्करौ॥ सुदानो वसुदानश्च सुमञ्जसविषावुभौ ॥२९॥ जन्तुवाहयतिश्चैव सुवित्तसुनयस्तथा॥ शिवा ह्येते तु विज्ञेया यज्ञिया
द्वादशापराः ॥३०॥ सत्यानामपि नामानि निबोधत यथामतम् ॥ दिक्पतिर्वाक्पतिश्चैव विश्वः शम्भुस्तथैव च॥३१॥ स्वमृडीकोऽधिपश्चैव वर्चोधा सुशस
व्वंशः॥वासवश्च सदाश्वश्च क्षेमानन्दौ तथैव च ॥३२॥ सत्या ह्येते परिक्रान्ता यज्ञिया द्वादशापराः॥इत्येता देवता ह्यासन्नौत्तमस्यान्तरे मनोः॥३३॥ अ
जश्च परशुश्चैव दिव्यो दिव्यौषधिर्नयः ॥ देवानुजश्चाप्रतिमो महोत्साहौशिजस्तथा ॥ ३४ ॥ विनीतश्च सुकेतुश्च सुमित्रः सुबलः शुचिः ॥ औत्तमस्य
मनोः पुत्रास्त्रयोदश महात्मनः ॥ एते क्षत्रप्रणेतारस्तृतीयश्चैतदन्तरम् ॥३५॥ औत्तमे परिसङ्ख्यातः सर्गः स्वारोचिषेण तु ॥ विस्तरेणानुपूर्व्या च ता
मसांस्तान्निबोधत ॥ ३६॥ चतुर्थे त्वथ पर्याये तामसस्यान्तरे मनोः ॥ सत्याः स्वरूपाः सुधियो हरयश्चतुरो गणाः ॥ ३७ ॥ पुलस्त्यपुत्रस्य सुतास्ता
मसस्यान्तरे मनोः ॥ गणस्तु तेषां देवानामेकैकः पञ्चविंशकः ॥३८॥ इन्द्रियाणां शतं यद्धि मुनयः प्रतिजानते ॥ सत्यप्राणास्तु शीर्षण्यास्तमश्चैरा
ष्टमस्तथा ॥ इन्द्रियाणि तदा देवा मनोस्तस्यान्तरे स्मृताः ॥३९॥ तेषां च प्रभुदेवानां शिबिरिन्द्रः प्रतापवान् ॥ सप्तर्षयोऽन्तरे चैव तान्निबोधत सत्तमाः
॥ ४० ॥ काव्यो हर्षस्तथा चैव काश्यपः पृथुरेव च ॥ आत्रेयश्चाग्निरित्येव ज्योतिर्धामा च भार्गवः ॥४१॥ पौलहो वनपीठश्च गोत्रे वासिष्ठ एव च ॥
चैत्रस्तथापि पौलस्त्य ऋषयस्तामसेऽन्तरे ॥ ४२ ॥ जनुवण्डस्तथा शान्तिर्नरः ख्यातिर्भयस्तथा ॥ प्रियभृत्यो ह्यवक्षिश्च पृष्टलोढो दृढोव्रतः ॥ ऋत
श्च ऋतबन्धुश्च तामसस्य मनोः सुताः ॥ ४३ ॥ पञ्चमे त्वथ पर्याये मनोश्चारिष्णवेऽन्तरे ॥ गणास्तु सुसमाख्याता देवतानां निबोधत ॥ ४४ ॥ अ
मृताभाभूतरजोविकुण्ठाः ससुमेधसः ॥ चरिष्णोस्तु शुभाः पुत्रा वसिष्ठस्य प्रजापतेः ॥ चतुर्दश च चत्वारो गणास्तेषान्तु भास्वराः ॥४५॥ स्वत्रविप्रो
ग्निभासश्च प्रत्येतिष्ठामृतस्तथा ॥ सुमतिर्वाविरावश्च वाचिनोदः स्वसास्तथा ॥ ४६ ॥ प्रविराशो च वादश्च प्राशश्चेति चतुर्दश ॥ अमृताभाः स्मृता
ह्येते देवाश्चारिष्णवेऽन्तरे ॥ ४७ ॥ मतिश्च सुमतिश्चैव ऋतसत्यौ तथैव च ॥ आवृतिर्विवृतिश्चैव मदो विनय एव च ॥ ४८ ॥ जेता
जिष्णुः सहश्चैव द्युतिमान् स्रवसस्तथा ॥ इत्येतानीह नामानि आभूतरजसां विदुः ॥ ४९ ॥ वृषभेत्ता जयो भीमः शुचिर्दान्तो यशो
दमः ॥ नाथो विद्वानजेयश्च कृशो गौरो ध्रुवस्तथा ॥ कीर्त्तितास्तु विकुण्ठा वै सुमेधास्तु निबोधत ॥ ५० ॥ मेधा मेधातिथिश्चैव

यम्भुवेन मनुना दत्तोऽत्रेः कारणं प्रति ॥ ७३ ॥ मन्वन्तरमथासाद्य भविष्यं चाक्षुषस्य ह ॥ षष्ठं तदनुवक्ष्यामि उपोद्घातेन वै द्विजाः ॥ ७४ ॥ उत्ता
नपादाच्चतुरा सूनृता वित्तभाविनी ॥ उत्पन्ना चाधिधर्म्मेण ध्रुवस्य जननी शुभा ॥ धर्म्मस्य पत्न्यां लक्ष्म्यां वै उत्पन्ना सा शुचिस्मिता ॥ ७५ ॥
ध्रुवञ्च कीर्त्तिमन्तञ्च अयस्मन्तं वसुं तथा ॥ उत्तानपादोऽजनयत् कन्ये द्वे च शुचिस्मिते ॥ मनस्विनीं स्वराञ्चैव तयोः पुत्राः प्रकीर्त्तिताः ॥ ७६ ॥
ध्रुवो वर्षसहस्राणि दश दिव्यानि वीर्य्यवान् ॥ तपस्तेपे निराहारः प्रार्थयन् विपुलं यशः ॥ ७७ ॥ त्रेतायुगे तु प्रथमे पौत्रः स्वायम्भुवस्य सः ॥
आत्मानं धारयन् योगात् प्रार्थयन् सुमहद्यशः ॥ ७८ ॥ तस्मै ब्रह्मा ददौ प्रीतो ज्योतिषां स्थानमुत्तमम् ॥ आभूतसंप्लवं ह्यमस्तोदयविवर्जि
तम् ॥ ७९ ॥ तस्यातिमात्रामृद्धिञ्च महिमानं निरीक्ष्य ह ॥ दैत्यासुराणामाचार्यः श्लोकमप्युशना जगौ ॥ ८० ॥ अहोऽस्य तपसो वीर्य्यमहो
श्रुतमहो हुतम् ॥ स्थिताः सप्तर्षयः कृत्वा यदेनमुपरि ध्रुवम् ॥ ध्रुवे दिवं समासक्तमीश्वरः स दिवस्पतिः ॥ ८१ ॥ ध्रुवात्पुष्टिञ्च भव्यञ्च
भूमिः सा सुषुवे नृपौ ॥ स्वां छायामाह वै पुष्टिर्भव नारी तु तां विभुः ॥ ८२ ॥ सत्याभिव्याहृते तस्य सद्यः स्त्री साऽभवत्तदा ॥ दिव्यसंहन
नाच्छाया दिव्याभरणभूषिता ॥ ८३ ॥ छायायां पुष्टिराधत्त पञ्च पुत्रानकल्मषान् ॥ प्राचीनगर्भं वृषकं वृकञ्च वृकलं धृतिम् ॥ ८४ ॥
पत्नी प्राचीनगर्भस्य सुवर्चा सुषुवे नृपम् ॥ नाम्नोदारधियं पुत्रमिन्द्रो यः पूर्वजन्मनि ॥ ८५ ॥ संवत्सरसहस्रान्ते सकृदाहारमाहरत् ॥ एवं मन्वन्तरं
युक्तमिन्द्रत्वं प्राप्तवान्विभुः ॥ ८६ ॥ उदारधेः सुतं भद्राऽजनयत्सा दिवञ्जयम् ॥ रिपुं रिपुञ्जयं जज्ञे वराङ्गी सा दिवञ्जयात् ॥ ८७ ॥ रिपोराधत्त
बृहती चाक्षुषं सर्वतेजसम् ॥ व्यजीजनत् पुष्करिण्यां वारुण्यां चाक्षुषो मनुम् ॥ प्रजापतेरात्मजायामरण्यस्य महात्मनः ॥ ८८ ॥ मनोरजायन्त दश
नड्वलायां शुभाः सुताः ॥ कन्यायां वै महाभाग वैराजस्य प्रजापतेः ॥ ८९ ॥ ऊरुः पूरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाक् कविः ॥ अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चेति ते
नव ॥ अभिमन्युश्च दशमो नड्वलायां मनोः सुताः ॥ ९० ॥ ऊरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी महाप्रभान् ॥ अङ्गं सुमनसं स्वातिं क्रतुमङ्गिरसं शिवम् ॥ ९१ ॥ अङ्गात्
सुनीथाऽपत्यं वै वेनमेकं व्यजायत ॥ अपचारेण वेनस्य प्रकोपः सुमहानभूत् ॥ ९२ ॥ प्रजार्थमृषयस्तस्य ममन्थुर्दक्षिणं करम् ॥ वेनस्य पाणौ मथिते सम्ब
भूव महान्नृपः ॥ वैन्यो नाम महीपालो यः पृथुः परिकीर्त्तितः ॥ ९३ ॥ स धन्वी कवची जातस्तेजसा प्रज्वलन्निव ॥ पृथुर्वैन्यः सर्वलोकान् ररक्ष
क्षत्रपूर्वजः ॥ ९४ ॥ राजसूयाभिषिक्तानामाद्यः स वसुधाधिपः ॥ तस्य स्तवार्थमुत्पन्नौ निपुणौ सूतमागधौ ॥ ९५ ॥ तेनेयं गौर्महाराज्ञा दुग्धा स
स्यानि धीमता ॥ प्रजानां वृत्तिकामानां देवैर्ऋषिगणैः सह ॥ ९६ ॥ पितृभिर्दानवैश्चैव गन्धर्वैरप्सरोगणैः ॥ सर्वैः पुण्यजनैश्चैव वीरुद्भिः पर्वतैस्तथा ॥ ९७ ॥

तमार्त्तं विह्वलं दृष्ट्वा निषीदेत्यब्रुवन् किल ॥ १२२ ॥ निषादवंशकर्त्ताऽसौ बभूवानन्तविक्रमः ॥ धीवरानसृजत्सोऽपि वेनकल्मषसम्भवान् ॥ १२३ ॥
ये चान्ये विन्ध्यनिलयास्तुम्बुराः तुवराः खसाः ॥ अधर्मरुचयश्चापि सम्भूता वेनकल्मषात् ॥ १२४ ॥ पुनर्महर्षयस्तस्य पाणिं वेनस्य दक्षिणम् ॥
अरणीमिव संरम्भान्ममन्थुर्जातमन्यवः ॥ १२५ ॥ पृथुस्तस्मात् समुत्पन्नः करास्फालनतेजसः ॥ पृथोः करतलाद्वापि यस्माज्जातः पृथुस्ततः ॥
दीप्यमानः स्ववपुषा साक्षादग्निरिवोज्ज्वलन् ॥ १२६ ॥ आद्यमाजगवं नाम धनुर्गृह्य महारवम् ॥ शरांश्च बिभ्रद्रक्षार्थं कवचञ्च महाप्रभम् ॥ १२७ ॥
तस्मिञ्जातेऽथ भूतानि संप्रहृष्टानि सर्वशः ॥ समुत्पन्ने महाराज्ञि वेनश्च त्रिदिवङ्गतः ॥ १२८ ॥ समुत्पन्नेन राजर्षिः स सत्पुत्रेण धीमता ॥ पुरुष
व्याघ्रः पुन्नाम्नो नरकात्त्रायते ततः ॥ १२९ ॥ तं नद्यश्च समुद्राश्च रत्नान्यादाय सर्व्वशः ॥ समागम्य तदा वैन्यमभ्यषिञ्चन्नराधिपम् ॥ महता राजराज्ये
न महाराजं महाद्युतिम् ॥ १३० ॥ सोऽभिषिक्तो महाराजा देवैरङ्गिरसः सुतैः ॥ आदिराजो महाराजः पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥ १३१ ॥ पित्राऽपरञ्जितास्त
स्य प्रजास्तेनानुरञ्जिताः ॥ ततो राजेति नामास्य अनुरागादजायत ॥ १३२ ॥ आपस्तस्तम्भिरे चास्य समुद्रमभियास्यतः ॥ पर्वताश्च विशीर्यन्ते
ध्वजभङ्गश्च नाभवत् ॥ १३३ ॥ अकृष्टपच्या पृथिवी सिद्ध्यन्त्यन्नानि चिन्तया ॥ सर्वकामदुघा गावः पुटके पुटके मधु ॥ १३४ ॥ एतस्मिन्नेव काले
च यज्ञे पैतामहे शुभे ॥ सूतः सुत्यां समुत्पन्नः सौत्येऽहनि महामतिः ॥ तस्मिन्नेव महायज्ञे जज्ञे प्राज्ञोऽथ मागधः ॥ १३५ ॥ ऐन्द्रेण हविषा चापि ह
विः पृक्तं बृहस्पतेः ॥ जुहावेन्द्राय देवेन ततः सूतो व्यजायत ॥ १३६ ॥ प्रमादस्तत्र सञ्जज्ञे प्रायश्चित्तञ्च कर्म्मसु ॥ शिष्यहव्येन यत्पृक्तं अभिभू
तं गुरोर्हविः ॥ अधरोत्तरचारेण जज्ञे तद्वर्णवैकृतम् ॥ १३७ ॥ यच्च क्षत्रात्समभवद्ब्राह्मण्यां हीनयोनितः ॥ सूतः पूर्वेण साधर्म्यतुल्यधर्म्मः प्र
कीर्त्तितः ॥ १३८ ॥ मध्यमो ह्येष सूतस्य धर्म्मः क्षत्रोपजीवनम् ॥ रथनागाश्च चरितं जघन्यञ्च चिकित्सितम् ॥ १३९ ॥ पृथोः स्तवार्थं तौ तत्र समाहू
तौ सुरर्षिभिः ॥ तामूचुर्मुनयः सर्वे स्तूयतामेष पार्थिवः ॥ कर्म्मैतदनुरूपं वां पात्रं स्तोत्रस्य चाप्ययम् ॥ १४० ॥ तावूचतुस्तदा सर्वांस्तानृषीन्सूतमागधौ ॥
आवां देवानृषींश्चैव प्रीणयावः स्वकर्मभिः ॥ १४१ ॥ न चास्य कर्म्म वै विद्मो न तथालक्षणं यशः ॥ स्तोत्रं येनास्य कुर्यावो राज्ञस्तेजस्विनो द्विजाः ॥ १४२ ॥
ऋषिभिस्तौ नियुक्तौ तु भविष्यैः स्तूयतामिति ॥ दानधर्म्मरतो नित्यं सत्यवान् स जितेन्द्रियः ॥ ज्ञानशीलो वदान्यस्तु संग्रामेष्वपराजितः ॥ १४३ ॥
यानि कर्म्माणि कृतवान् पृथुश्चापि महाबलः ॥ तानि शीलेन बद्धानि स्तुवद्भिः सूतमागधैः ॥ १४४ ॥ ततः स्तवान्ते सुप्रीतः पृथुः प्रादात् प्रजेश्वरः ॥
अनूपदेशं सूताय मगधं मागधाय च ॥ १४५ ॥ तदा वै पृथिवीपालाः स्तूयन्ते सूतमागधैः ॥ आशीर्वादैः प्रबोध्यन्ते सूतमागधवन्दिभिः ॥ १४६ ॥

फलमूलन्तु प्रजानामभवात्किल ॥ वैन्यात्प्रभृति लोकेऽस्मिन्सर्वस्यैतस्य सम्भवः ॥ १७२ ॥ कृच्छ्रेण महता सोऽपि प्रनष्टास्वोषधीषु वै ॥
स कल्पयित्वा वत्सन्तु चाक्षुषं मनुमीश्वरः ॥ पृथुर्दुदोह सस्यानि स्वतले पृथिवीं ततः ॥ १७३ ॥ सस्यानि तेन दुग्धानि वैन्येन तु वसुन्धराम् ॥
मनुञ्च चाक्षुषं कृत्वा वत्सम्पात्रे च भूमये ॥ तेनान्नेन तदा ता वै वर्त्तयन्ते प्रजाः सदा ॥ १७४ ॥ ऋषिभिः स्तूयते चापि पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ॥
वत्सः सोमस्त्वभूत्तेषां दोग्धा चापि बृहस्पतिः ॥ १७५ ॥ पात्रमासीत्तु छन्दांसि गायत्र्यादीनि सर्व्वशः ॥ क्षीरमासीत्तदा तेषां तपो ब्रह्म च
शाश्वतम् ॥ १७६ ॥ पुनः स्तुत्वा देवगणैः पुरन्दरपुरोगमैः ॥ सौवर्णं पात्रमादाय अमृतं दुदुहे तदा ॥ तेनैव वर्त्तयन्ते च देवा इन्द्रपुरोगमाः ॥१७७॥
नागैश्च स्तूयते दुग्धा विषं क्षीरं तदा मही ॥ तेषाञ्च वासुकिर्दोग्धा काद्रवेया महौजसः ॥ १७८ ॥ नागानां वै द्विजश्रेष्ठ सर्पाणाञ्चैव सर्व्वशः ॥
तेनैव वर्त्तयन्त्युग्रा महाकाया महाबलाः ॥ तदाहारास्तदाचारास्तद्वीर्य्यास्तु सदाश्रयाः ॥ १७९ ॥ आमपात्रे पुनर्दुग्धा त्वन्तर्द्धानमियं मही ॥
वत्सं वैश्रवणं कृत्वा यक्षैः पुण्यजनैस्तथा ॥ १८० ॥ दोग्धा च जतुनाभस्तु पिता मणिवरस्य सः ॥ यक्षात्मजो महातेजा वशी स सुमहाबलः ॥
तेन ते वर्त्तयन्तीति परमर्षिरुवाच ह ॥ १८१ ॥ राक्षसैश्च पिशाचैश्च पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ॥ ब्रह्मोपेतस्तु दोग्धा वै तेषामासीत्कुबेरकः ॥ १८२ ॥
रक्षः सुमाली बलवान्क्षीरं रुधिरमेव च ॥ कपालपात्रे निर्दुग्धा अन्तर्द्धानञ्च राक्षसैः ॥ तेन क्षीरेण रक्षांसि वर्त्तयन्तीह सर्वशः ॥ १८३ ॥ पद्मपा
त्रे पुनर्दुग्धा गन्धर्व्वैरप्सरोगणैः ॥ वत्सं चित्ररथं कृत्वा शुचीन् गन्धांस्तथैव च ॥ १८४ ॥ तेषां विश्वावसुस्त्वासीद्दोग्धा पुत्रो मुनेः शुचिः ॥
गन्धर्व्वराजोऽतिबलो महात्मा सूर्यसन्निभः ॥ १८५ ॥ शैलैश्च स्तूयते दुग्धा पुनर्देवी वसुन्धरा ॥ तत्रौषधीर्मूर्त्तिमती रत्नानि विविधानि च ॥१८६॥
वत्सस्तु हिमवांस्तेषां मेरुर्दोग्धा महागिरिः ॥ पात्रन्तु शैलमेवासीत्तेन शैलः प्रतिष्ठितः ॥ १८७ ॥ स्तूयते वृक्षवीरुद्भिः पुनर्दुग्धा वसुन्धरा ॥
पलाशपात्रमादाय दुग्धं छिन्नप्ररोहणम् ॥ १८८ ॥ कामधुक्पुष्पितः शैलः प्लक्षो वत्सो यशस्विनी ॥ सर्व्वकामदुघा दोग्ध्री पृथिवी भूतभाविनी ॥
॥१८९॥ सैषा धात्री विधात्री च धारणी च वसुन्धरा॥ दुग्धा हितार्थं लोकानां पृथुना इति नः श्रुतम्॥चराचरस्य लोकस्य प्रतिष्ठा योनिरेव च॥१९०॥
इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते पृथिवीदोहनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ ॥ छ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ आसीदियं समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रुता ॥ वसु
धारयते यस्माद्वसुधा तेन चोच्यते ॥ १ ॥ मधुकैटभयोः पूर्वं मेदसा संपरिप्लुता ॥ ततोऽभ्युपगमाद्राज्ञः पृथोर्वैन्यस्य धीमतः ॥ २ ॥ इयञ्चा
सीत् समुद्रान्ता मेदिनीति परिश्रुता ॥ दुहितृत्वमनुप्राप्ता पृथिवीत्युच्यते ततः ॥ ३ ॥ प्रथिता प्रविभक्ता च शोभिता च वसुन्धरा ॥ सस्याकरवती

ससृजुर्जातमन्यवः ॥ २९ ॥ उन्मूलानथ तान् वृक्षान् कृत्वा वायुरशोषयत् ॥ तानग्निरदहद्घोर एवमासीद्द्रुमक्षयः ॥ ३० ॥ द्रुमक्षयमथो बुद्ध्वा
किञ्चिच्छेषेषु शाखिषु ॥ उपगम्याब्रवीदेतान् राजा सोमः प्रचेतसः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वा प्रयोजनं सर्व्वं लोकसन्तानकारणात् ॥ कोपन्त्यजत राजानः
सर्व्वे प्राचीनबर्हिषः ॥ ३२ ॥ वृक्षाः क्षित्यां जनिष्यन्ति शाम्येतामग्निमारुतौ ॥ रत्नभूता तु कन्येयं वृक्षाणां वरवर्णिनी ॥ ३३ ॥ भविष्यं जानता
ह्येषा मया गोभिर्विवर्द्धिता ॥ मारिषा नाम नाम्नैषा वृक्षैरेव विनिर्मिता ॥ भार्य्या भवतु वो ह्येषा सोमगर्भविवर्द्धिता ॥ ३४ ॥ युष्माकं तेजसोऽर्द्धेन मम
चार्द्धेन तेजसः ॥ अस्यामुत्पत्स्यते विद्वान् दक्षो नाम प्रजापतिः ॥ ३५ ॥ स इमां दग्धभूयिष्ठां युष्मत्तेजोमयेन वै ॥ अग्निनाग्निसमो भूयः प्रजाः
संवर्द्धयिष्यसि ॥ ३६ ॥ ततः सोमस्य वचनाज्जगृहुस्ते प्रचेतसः ॥ संहृत्य कोपं वृक्षेभ्यः पत्नीं धर्मेण मारिषाम् ॥ ३७ ॥ मारिषायां ततस्ते वै मन
सा गर्भमादधुः ॥ दशभ्यस्तु प्रचेतोभ्यो मारिषायां प्रजापतिः ॥ ३८ ॥ दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन वीर्यवान् ॥ असृजन्मानसानादौ प्रजा द
क्षोऽथ मैथुनात् ॥ ३९ ॥ अचरांश्च चरांश्चैव द्विपदोऽथ चतुष्पदान् ॥ विसृज्य मनसा दक्षः पश्चादसृजत स्त्रियः ॥ ४० ॥ ददौ स दश
धर्माय कश्यपाय त्रयोदश ॥ कालस्य नयने युक्ताः सप्तविंशतिमिन्दवे ॥ ४१ ॥ एभ्यो दत्त्वा ततोऽन्या वै चतस्रोऽरिष्टनेमिने ॥ द्वे चैव
बाहुपुत्राय द्वे चैवाङ्गिरसे तथा ॥ कन्यामेकां कृशाश्वाय तेभ्योऽपत्यं निबोधत ॥ ४२ ॥ अन्तरं चाक्षुषस्यात्र मनोः षष्ठन्तु हीयते ॥
मनोर्वैवस्वतस्यापि सप्तमस्य प्रजापतेः ॥ ४३ ॥ तासु देवाः खगा गावो नागा दितिजदानवाः ॥ गन्धर्व्वाप्सरसश्चैव जज्ञिरेऽन्याश्च जातयः ॥ ४४ ॥
ततः प्रभृति लोकेऽस्मिन् प्रजा मैथुनसम्भवाः ॥ सङ्कल्पाद्दर्शनात्स्पर्शात्पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते ॥ ४५ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ देवानां दानवा
नाञ्च देवर्षीणाञ्च ते शुभः ॥ सम्भवः कथितः पूर्वं दक्षस्य च महात्मनः ॥ ४६ ॥ प्राणात्प्रजापतेर्जन्म दक्षस्य कथितं त्वया ॥ कथं प्राचेतसत्वञ्च
पुनर्लेभे महातपाः ॥ ४७ ॥ एतन्नः संशयं सूत व्याख्यातं त्वमिहार्हसि ॥ स दौहित्रश्च सोमस्य कथं श्वशुरताङ्गतः ॥ ४८ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥
उत्पत्तिश्च निरोधश्च नित्यं भूतेषु सत्तमाः ॥ ऋषयोऽत्र न मुह्यन्ति विद्यावन्तश्च ये नराः ॥ ४९ ॥ युगे युगे भवन्त्येते सर्वे दक्षादयो द्विजाः ॥
पुनश्चैव निरुध्यन्ते विद्वांस्तत्र न मुह्यति ॥ ५० ॥ ज्यैष्ठ्यं कानिष्ठ्यमप्येषां पूर्वं नासीद्द्विजोत्तमाः ॥ तप एव गरीयोऽभूत् प्रभावश्चैव कार
णम् ॥ ५१ ॥ इमां विसृष्टिं यो वेद चाक्षुषस्य चराचरम् ॥ प्रजानामायुरुत्तीर्णः स्वर्गलोके महीयते ॥ ५२ ॥ एष सर्गः समाख्यातश्चाक्षुषस्य समा
सतः ॥ इत्येते षड्विसर्गा हि क्रान्ता मन्वन्तरात्मकाः ॥ स्वायम्भुवाद्याः संक्षेपाच्चाक्षुषान्ता यथाक्रमम् ॥ ५३ ॥ एते सर्गा यथाप्रज्ञं

भूतास्तथैव च ॥ मन्वन्तरेषु ये देवा यज्ञभाजो भवन्ति हि ॥ २१ ॥ यक्षगन्धर्व्वरक्षांसि पिशाचोरगदानवाः ॥ महिमानः स्मृता ह्येते देवेन्द्राणान्तु
सर्व्वशः ॥ २२ ॥ देवेन्द्रा गुरवो नाथा राजानः पितरो हि ते ॥ रक्षन्तीमाः प्रजाः सर्व्वा धर्म्मेणेह सुरोत्तमाः ॥ २३ ॥ इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं देवेन्द्राणां
समासतः ॥ सप्तर्षीन् सम्प्रवक्ष्यामि साम्प्रतं ये दिवि स्थिताः ॥ २४ ॥ गाधिजः कौशिको धीमान् विश्वामित्रो महातपाः ॥ भार्गवो जमदग्निश्च ऊरु
पुत्रः प्रतापवान् ॥ २५ ॥ बृहस्पतिसुतश्चापि भारद्वाजो महातपाः ॥ औतथ्यो गौतमो विद्वाञ्छरद्वान्नाम धार्मिकः ॥ २६ ॥ स्वायम्भुवोऽत्रिर्भगवा
न्ब्रह्मकोशस्तु पञ्चमः ॥ षष्ठो वासिष्ठपुत्रस्तु वसुमान् लोकविश्रुतः ॥ २७ ॥ वत्सारः काश्यपश्चैव सप्तैते साधुसम्मताः ॥ एते सप्तर्षयः सिद्धा वर्त्तन्ते
साम्प्रतेऽन्तरे ॥ २८ ॥ इक्ष्वाकुश्चैव नाभागो धृष्टः शर्यातिरेव च ॥ नरिष्यन्तश्च विख्यातो नाभ उदिष्ट एव च ॥ २९ ॥ करुषश्च पृषध्रश्च
वसुमान्नवमः स्मृतः ॥ मनोर्वैवस्वतस्यैते नव पुत्राः प्रकीर्त्तिताः ॥ कीर्त्तिता वै मया ह्येते सप्तमश्चैतदन्तरम् ॥ ३० ॥ इत्येष वै मया पादो
द्वितीयः कथितो द्विजाः ॥ विस्तरेणानुपूर्व्या च भूयः किं वर्णयाम्यहम् ॥३१॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते वैवस्वतसर्गवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥
॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ श्रुत्वा पादं द्वितीयन्तु क्रान्तं सूतेन धीमता ॥ अतस्तृतीयं पप्रच्छ पादं वै शांशपायनः ॥ १ ॥ पादः क्रान्तो द्वितीयोऽयमनु
षङ्गेण यस्त्वया ॥ तृतीयं विस्तरात्पादं सोपोद्धातं प्रकीर्त्तय ॥ एवमुक्तोऽब्रवीत्सूतः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥२॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ कीर्त्तयिष्ये तृ
तीयञ्च सोपोद्धातं सविस्तरम् ॥ पादं समुदयाद्विप्रा गदतो मे निबोधत ॥ ३ ॥ मनोर्वैवस्वतस्येमं साम्प्रतस्य महात्मनः ॥ विस्तरेणानुपूर्व्या च निसर्गं
शृणुत द्विजाः ॥ ४ ॥ चतुर्युगैकसप्तत्या सङ्ख्यातः पूर्वमेव तु ॥ सह देवगणैश्चैव ऋषिभिर्दानवैः सह ॥ ५ ॥ पितृगन्धर्व्वयक्षैश्च रक्षोभूतगणैस्तथा ॥
मानुषैः पशुभिश्चैव पक्षिभिः स्थावरैः सह ॥ ६ ॥ मन्वादिकं भविष्यान्तमाख्यानैर्बहुविस्तरम् ॥ वक्ष्ये वैवस्वतं सर्गं नमस्कृत्य विवस्वते ॥ ७ ॥
आद्ये मन्वन्तरेऽतीताः सर्गाः प्रावर्त्तकाश्च ये ॥ स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वं सप्तासन् ये महर्षयः ॥ चाक्षुषस्यान्तरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वते पुनः ॥ ८ ॥ दक्षस्य
च ऋषीणाञ्च भृग्वादीनां महौजसाम् ॥ शापान्महेश्वरस्यासीत् प्रादुर्भावो महात्मनाम् ॥ ९ ॥ भूयः सप्तर्षयस्ते च उत्पन्नाः सप्त मानसाः ॥ पुत्रत्वे
कल्पिताश्चैव स्वयमेव स्वयम्भुवा ॥ १० ॥ प्रजासन्तानकृद्भिस्तैरुत्पद्यद्भिर्महात्मभिः ॥ पुनः प्रवर्त्तितः सर्गो यथापूर्वं यथाक्रमम् ॥११॥ तेषां प्रसूतिं ॥ १०६ ॥
वक्ष्यामि विशुद्धज्ञानकर्म्मणाम् ॥ समासव्यासयोगाभ्यां यथावदनुपूर्वशः ॥ १२ ॥ येषामन्वयसम्भूतैर्लोकोऽयं सचराचरः ॥ पुनः स पूरितः सर्गो ग्रह
नक्षत्रमण्डितः ॥ १३ ॥ एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य मुनीनां संशयोऽभवत् ॥ ततस्तं संशयाविष्टाः सूतं संशयनिश्चये ॥ सत्कृत्य परिपप्रच्छुर्मुनयः

स्तस्मात्तदपत्यञ्च स प्रभुः ॥ ३९ ॥ द्वितीयन्तु ततः शुक्रमङ्गारेष्वपतत्प्रभुः ॥ अङ्गारेष्वङ्गिरोऽङ्गानि संहितानि ततोऽङ्गिराः ॥ ४० ॥ सम्भूतिं
तस्य तां दृष्ट्वा वह्निर्ब्रह्माणमब्रवीत् ॥ रेतोधास्तुभ्यमेवाहं द्वितीयोऽयं ममास्त्विति ॥ ४१ ॥ एवमस्त्विति सोऽप्युक्तो ब्रह्मणा सदसस्पतिः ॥ तस्मादङ्गि
रसश्चापि आग्नेया इति नः श्रुतम् ॥ ४२ ॥ षट्कृत्यस्तु पुनः शुक्रे ब्रह्मणा लोककारिणा ॥ हुते समभवंस्तत्र षड्ब्रह्माण इति श्रुतिः ॥ ४३ ॥
मरीचिः प्रथमस्तत्र मरीचिभ्यः समुत्थितः ॥ क्रतौ तस्मिन् सुतो जज्ञे यतस्तस्मात्स वै क्रतुः ॥ ४४ ॥ अहं तृतीय इत्यर्थस्तस्मादत्रिः स कीर्त्यते ॥
केशैश्च निशितैर्भूतः पुलस्त्यस्तेन स स्मृतः ॥४५॥ केशैर्लम्बैः समुद्भूतस्तस्मात्तु पुलहः स्मृतः ॥ वसुमध्यात्समुत्पन्नो वसुमान् वसुधाश्रयः ॥ ४६ ॥
वसिष्ठ इति तत्त्वज्ञैः प्रोच्यते ब्रह्मवादिभिः ॥ इत्येते ब्रह्मणः पुत्रा मानसा षण्महर्षयः ॥ ४७ ॥ लोकस्य सन्तानकरास्तैरिमा वर्द्धिताः प्रजाः ॥
प्रजापतय इत्येवं पठ्यन्ते ब्रह्मणः सुताः ॥ ४८ ॥ अपरे पितरो नाम एतैरेव महर्षिभिः ॥ उत्पादिता ऋषिगणाः सप्त लोकेषु विश्रुताः ॥ ४९ ॥
मारीचा भार्गवाश्चैव तथैवाङ्गिरसोऽपरे ॥ पौलस्त्याः पौलहाश्चैव वासिष्ठाश्चैव विश्रुताः ॥ आत्रेयाश्च गणाः प्रोक्ताः पितॄणां लोकविश्रुताः ॥ ५० ॥
एते समासतस्तात पुरैव तु गुणास्त्रयः ॥ अपूर्वाश्च प्रकाशाश्च ज्योतिष्मन्तश्च विश्रुताः ॥ ५१ ॥ तेषां राजा यमो देवो यमैर्विहितकल्मषाः ॥
अपरे प्रजानां पतयस्ताञ्छृणुध्वमतन्द्रिताः ॥ ५२ ॥ कर्दमः कश्यपः शेषो विक्रान्तः सुश्रवास्तथा ॥ बहुपुत्रः कुमारश्च विवस्वान् स शुचिश्रवाः ॥
॥ ५३ ॥ प्रचेतसोऽरिष्टनेमिर्बहुलश्च प्रजापतिः ॥ इत्येवमादयोऽन्येऽपि बहवश्च प्रजेश्वराः ॥ ५४ ॥ कुशोच्चया वालखिल्याः सम्भूताः परमर्षयः ॥
मनोजवाः सर्व्वगताः सार्व्वभौमाश्च तेऽभवन् ॥ ५५ ॥ जाता भस्मव्यपोहिन्यां ब्रह्मर्षिगणसम्मताः ॥ वैखानसा मुनिगणास्तपःश्रुतपरायणाः ॥ ५६ ॥
स्रोतोभ्यस्तस्य चोत्पन्नावश्विनौ रूपसम्मितौ ॥ विदुर्जन्माक्षरजसो विमला नेत्रसम्भवाः ॥ ५७ ॥ ज्येष्ठाः प्रजानां पतयः स्रोतोभ्यस्तस्य जज्ञिरे ॥
ऋषयो रोमकूपेभ्यस्तथा स्वेदमलोद्भवाः ॥ ५८ ॥ दारुणा हि रुते मासा निर्यासाः पक्षसन्धयः ॥ वत्सरा ये त्वहोरात्राः पित्रं ज्योतिश्च दारुणम् ॥ ५९ ॥
रौद्रं लोहितमित्याहुर्लोहितं कनकं स्मृतम् ॥ तन्मैत्रमिति विज्ञेयं धूमश्च पशवः स्मृताः ॥ ६० ॥ येऽर्चिषस्तस्य ते रुद्रास्तथादित्याः समुद्भवाः ॥
अङ्गारेभ्यः समुत्पन्ना ज्योतिषो दिव्यमानुषाः ॥ ६१ ॥ आदिमानस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मसमुद्भवः ॥ सर्वकामदमित्याहुस्तत्र कन्यामुदाहरन् ॥ ६२ ॥
ब्रह्मा सुरगुरुस्तत्र त्रिदशैः संप्रसीदति ॥ इमे वै जनयिष्यन्ति प्रजाः सर्वाः प्रजेश्वराः ॥ ६३ ॥ सर्वे प्रजानां पतयः सर्वे चापि तपस्विनः ॥ तत्प्रसादा
दिमाँल्लोकान्धारयेयुरिमाः क्रियाः ॥ ६४ ॥ द्वन्द्वं संवर्द्धयामास तव तेजोविवर्द्धनम् ॥ देवेषु वेदविद्वांसः सर्वे राजर्षयस्तथा ॥ ६५ ॥ वेदमन्त्र

यामास पुत्रौ द्वौ सुकन्यायाञ्च भार्गवः ॥ आत्मवानं दधीचश्च तावुभौ साधुसम्मतौ ॥ ९० ॥ सारस्वतः सरस्वत्यां दधीचाच्चोपपद्यते ॥ रुची पत्नी
महाभागा आत्मवानस्य नाहुषी ॥ ९१ ॥ तस्य ऊर्वोऽर्क्षिर्जज्ञे ऊरू भित्त्वा महायशाः ॥ और्वश्चासीदृचीकस्तु दीप्ताग्निसदृशप्रभः ॥ ९२ ॥ जमद
ग्निर्ऋचीकस्य सत्यवत्यां व्यजायत ॥ भृगोश्च रुचिपर्य्याये रौद्रवैष्णवयोस्तथा ॥ ९३ ॥ जमनाद्वैष्णवस्याग्नेर्जमदग्निरजायत ॥ रेणुका जमदग्नेस्तु श
क्रतुल्यपराक्रमम् ॥ ब्रह्मक्षत्रमयं रामं सुषुवेऽमिततेजसम् ॥ ९४ ॥ और्वस्यासीत्पुत्रशतं जमदग्निपुरोगमम् ॥ तेषां पुत्रसहस्राणि भार्गवाणां परस्परात्
॥ ९५ ॥ ऋष्यन्तरेषु वै बाह्या बहवो भार्गवाः स्मृताः ॥ वत्सो विश्वोऽश्विषेणश्च पाण्डः पथ्यः सशौनकः ॥ गोत्रेण सप्तमा ह्येते पक्षा ज्ञे
यास्तु भार्गवाः ॥ ९६ ॥ शृणुताङ्गिरसो वंशमग्नेः पुत्रस्य धीमतः ॥ यस्यान्ववाये सम्भूता भारद्वाजाः सगौतमाः ॥ देवाश्चाङ्गिरसो मुख्यास्त्विषुमन्तो
महौजसः ॥ ९७ ॥ सुरूपा चैव मारीची कार्दमी च तथा स्वराट् ॥ पथ्या च मानवी कन्या तिस्रो भार्य्यास्त्वथर्व्वणः ॥ इत्येताङ्गिरसः पत्न्यस्ता
सु वक्ष्यामि सन्ततिम् ॥ ९८ ॥ अथर्व्वणस्तु दायादास्तासु जाताः कुलोद्वहाः ॥ उत्पन्ना महता चैव तपसा भावितात्मनाम् ॥ ९९ ॥ बृहस्प
तिः सुरूपायां गौतमः सुषुवे स्वराट् ॥ अवन्ध्यं वामदेवञ्च उतथ्यमुशिजन्तथा ॥ १०० ॥ धिष्णुः पुत्रस्तु पथ्यायां संवर्त्तश्चैव मानसः ॥
विचित्तश्च तथायस्यः शरद्वांश्चाप्युतथ्यजः ॥ १०१ ॥ अशिजो दीर्घतमा बृहदुत्थो वामदेवजः ॥ धिष्णोः पुत्रः सुधन्वान ऋषभश्च सुध
न्वनः ॥ १०२ ॥ रथकाराः स्मृता देवा ऋषयो ये परिश्रुताः ॥ बृहस्पतेर्भरद्वाजो विश्रुतः सुमहायशाः ॥ १०३ ॥ अङ्गिरसस्तु संवर्त्तो
देवानाङ्गिरसः शृणु ॥ बृहस्पतेर्यवीयांसो देवा ह्याङ्गिरसः स्मृताः ॥ १०४ ॥ औरसाङ्गिरसः पुत्राः सुरूपायां विजज्ञिरे ॥ औदार्यायुर्द
नुर्दक्षो दर्भः प्राणस्तथैव च ॥ हविष्मांश्च हविष्णुश्च क्रतुः सत्यश्च ते दश ॥ १०५ ॥ अयस्यस्तु उतथ्यश्च वामदेवस्तथोशिजः ॥
भारद्वाजः शाङ्कृतिका गार्ग्यकान्वरथीतराः ॥ १०६ ॥ मुद्गला विष्णुवृद्धाश्च हरिता वायवस्तथा ॥ तथा भाक्षा भरद्वाजा आर्षभाः किम्भया
स्तथा ॥ १०७ ॥ एते ह्याङ्गिरसः पक्षा विज्ञेया दश पञ्च च ॥ ऋष्यन्तरेषु वै बाह्या बहवोऽङ्गिरसः स्मृताः ॥ १०८ ॥ मारीचं परिवक्ष्यामि वं
शमुत्तमपूरुषम् ॥ यस्यान्ववाये सम्भूतं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ १०९ ॥ मरीचिरापश्चक्रमे ताभिध्यायन्प्रजेप्सया ॥ पुत्रः सर्व्वगुणोपेतः प्रजा
वान् सुरुचिर्दितिः ॥ संपूज्यते प्रशस्तायां मनसा भाविता प्रभुः ॥ ११० ॥ आहूताश्च ततः सर्वा आपः समवसत्प्रभुः ॥ तासु प्रणिहितात्मान
मेकः सोऽजनयत्प्रभुः ॥ १११ ॥ पुत्रमप्रतिमन्नाम्नाऽरिष्टनेमिः प्रजापतिः ॥ पुत्रं मरीचं सूर्याभं वधौवेशो व्यजीजनत् ॥ ११२ ॥ प्रध्यायन् हि

यः कश्यपसुतस्याथ परमेष्ठी व्यजायत ॥ मानसः कश्यपस्येह दक्षशापभयात् पुनः ॥ १३७ ॥ तस्मात् स कश्यपस्याथ द्वितीयं मानसोऽभवत् ॥
स हि पूर्वसमुत्पन्नो नारदः परमेष्ठिनः ॥ १३८ ॥ येन दक्षस्य पुत्रास्ते हर्य्यश्वा इति विश्रुताः ॥ निन्दार्थं नाशिताः सर्व्वे विनष्टाश्च न संशयः ॥ १३९ ॥
तस्योद्यतस्तदा दक्षः क्रुद्धो नाशाय वै प्रभुः ॥ ब्रह्मर्षीन् वै पुरस्कृत्य याचितः परमेष्ठिना ॥ १४० ॥ ततोऽभिसन्धितं चक्रे दक्षस्तु परमेष्ठिना ॥
कन्यायां नारदो मह्यं तव पुत्रो भवत्विति ॥ १४१ ॥ ततो दक्षः सुतां प्रादात् प्रियां वै परमेष्ठिने ॥ तस्मात् स नारदो जज्ञे भूयः शान्तो भयादृषिः ॥ १४२ ॥
तदुपश्रुत्य विप्रास्ते जातकौतूहलाः पुनः ॥ अपृच्छन् वदतां श्रेष्ठं सूतं तत्त्वार्थदर्शिनम् ॥ १४३ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथं विनाशिताः पुत्रा नार
देन महात्मना ॥ प्रजापतिसुतास्ते वै प्रजाः प्राचेतसात्मजाः ॥ १४४ ॥ स तथ्यं वचनं श्रुत्वा जिज्ञासासम्भवं शुभम् ॥ प्रोवाच मधुरं वाक्यं
तेषां सर्वगुणान्वितम् ॥ १४५ ॥ दक्षपुत्राश्च हर्य्यश्वा विवर्द्धयिषवः प्रजाः ॥ समागता महावीर्या नारदस्तानुवाच ह ॥ १४६ ॥ बालिशा बत यूयं वै
न प्रजानीथ भूतलम् ॥ अन्तमूर्द्ध्वमधश्चैव कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजाः ॥ १४७ ॥ किं प्रमाणन्तु मेदिन्याः स्रष्टव्यानि तथैव च ॥ अविज्ञायेह स्रष्टव्य
मन्यथा किं नु स्रक्ष्यथ ॥ अल्पं वापि बहुर्वापि तत्र दोषस्तु दृश्यते ॥ १४८ ॥ ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्व्वतोदिशम् ॥ वायुन्तु समनुप्राप्य
गतास्ते वै पराभवम् ॥ १४९ ॥ अद्यापि न निवर्त्तन्ते भ्रमन्तो वायुमाश्रिताः ॥ एवं वायुपथं प्राप्य भ्रमन्ते ते महर्षयः ॥ १५० ॥ स्वेषु पुत्रेषु नष्टेषु दक्षः
प्राचेतसः पुनः ॥ वैरिण्यामेव पुत्राणां सहस्रमसृजत् प्रभुः ॥ १५१ ॥ प्रजा विवर्द्धयिषवः शबलाश्वाः पुनस्तु ते ॥ पूर्वमुक्तं वचस्तत्र श्राविता नारदेन ह ॥
॥ १५२ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं सर्व्वे कुमारास्ते महौजसः ॥ अन्योऽन्यमूचुस्ते सर्व्वे सम्यगाह महानृषिः ॥ भ्रातॄणां पदवी चैव गन्तव्या नात्र संशयः ॥
॥ १५३ ॥ ज्ञात्वा प्रमाणं पृथ्व्याश्च सुखं स्रक्ष्यामहे प्रजाः ॥ तेऽपि तेनैव मार्गेण प्रयाताः सर्व्वतोदिशम् ॥ अद्यापि न निवर्त्तन्ते समुद्रेभ्य इवापगाः ॥
॥ १५४ ॥ ततः प्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे रतः ॥ प्रयातो नश्यति तथा तन्न कार्य्यं विजानता ॥ १५५ ॥ नष्टेषु शबलाश्वेषु दक्षः क्रुद्धोऽ
भवद्विभुः ॥ नारदं नाशमेहीति गर्भवासं वसेति च ॥ १५६ ॥ तथा तेष्वपि नष्टेषु महात्मसु पुरा किल ॥ षष्टिकन्याऽसृजद्दक्षो वैरिण्यामेव विश्रुताः
॥ १५७ ॥ तास्तदा प्रतिजग्राह पत्न्यर्थं कश्यपः प्रभुः ॥ धर्म्मः सोमस्तु भगवांस्तथैवान्ये महर्षयः ॥ १५८ ॥ इमां विसृष्टिं दक्षस्य कृत्स्नां यो ॥ १०९
वेद तत्त्वतः ॥ आयुष्मान् कीर्त्तिमान् धन्यः प्रजावांश्च भवत्युत ॥ १५९ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते प्रजापतिवंशानुकीर्त्तनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥
॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ देवानां दानवानाञ्च दैत्यानाञ्चैव सर्व्वशः ॥ उत्पत्तिं विस्तरेणेह ब्रूहि वैवस्वतेऽन्तरे ॥ १ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥

पुत्रौ देवलस्यापि क्षमावन्तौ मनीषिणौ ॥ २६ ॥ बृहस्पतेस्तु भगिनी वरस्त्री ब्रह्मचारिणी ॥ योगसिद्धा जगत्कृत्स्नमसक्ता विचरत्युत ॥ २७ ॥ प्रभासस्य तु या भार्य्या वसूनामष्टमस्य ह ॥ विश्वकर्मा सुतस्तस्या जातः शिल्पप्रजापतिः ॥ २८ ॥ स कर्त्ता सर्वशिल्पानां त्रिदशानाञ्च वर्द्धकिः ॥ भूषणानाञ्च सर्वेषां कर्त्ता कारयिता च सः ॥२९ ॥ सर्वेषाञ्च विमानानि दैवतानां करोति सः ॥ मानुषाश्चोपजीवन्ति यस्य शिल्पानि शिल्पिनः ॥३०॥ विश्वेदेवास्तु विश्वाया जज्ञिरे दश विश्रुताः ॥ क्रतुर्दक्षः श्रवः सत्यः कालः कामो धुनिस्तथा ॥ ३१ ॥ कुरुवान् प्रभवांश्चैव रोचमानश्च ते दश ॥ धर्मपुत्राः स्मृता ह्येते विश्वायां जज्ञिरे शुभाः ॥ ३२ ॥ मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो भानवो भानुजाः स्मृताः ॥ मुहूर्त्तांश्च मुहूर्त्तायां घोषं लम्बा व्यजायत ॥ ३३ ॥ सङ्कल्पायान्तु संजज्ञे विद्वान् सङ्कल्प एव च ॥ नागवीथ्यस्तु जाम्याश्च पथत्रयसमाश्रिताः ॥ ३४ ॥ पृथिवीविषयं सर्व्वमरुन्धत्यां व्यजायत ॥ एष सर्गः समाख्यातो विद्वान् धर्मस्य शाश्वतः ॥ ३५ ॥ मुहूर्त्तांश्चैव तिथ्यश्च पतिभिः सह सुव्रताः ॥ नामतः संप्रवक्ष्यामि ब्रुवतो मे निबोधत ॥ ३६ ॥ अहोरात्रविभागश्च नक्षत्राणि समासतः ॥ मुहूर्त्ताः सर्वनक्षत्रा अहोरात्रविदस्तथा ॥ ३७ ॥ अहोरात्रकलानान्तु षट्शतीत्यधिका स्मृता ॥ रवेर्गतिविशेषेण सर्वेषु ऋतुमिच्छतः ॥३८॥ ततो वेदविदश्चैतां तिथिमिच्छन्ति पर्वसु ॥ अविशेषेषु कालेषु योज्यः स पितृदानतः ॥३९॥ रौद्रः सार्वस्तथा मैत्रः पिण्डयवासव एव च ॥ आप्योऽथ वैश्वदेवश्च ब्राह्मो मध्याह्नसंश्रितः ॥४०॥ प्राजापत्यस्तथा ऐन्द्रस्तथेन्द्रो निर्ऋतिस्तथा ॥ वारुणश्च तथार्यम्णो भागाश्चापि दिनाश्रिताः ॥ ४१ ॥ एते दिनमुहूर्त्ताश्च दिवाकरविनिर्मिताः ॥ शङ्कुच्छायाविशेषेण वेदितव्याः प्रमाणतः ॥ ४२ ॥ अजास्तथाहिर्बुध्न्यश्च पूषा हि यमदेवताः ॥ आग्नेयश्चापि विज्ञेयः प्राजापत्यस्तथैव च ॥४३॥ ब्रह्म सौम्यस्तथादित्यो बार्हस्पत्योऽथ वैष्णवः ॥ सावित्रोऽथ तथा त्वाष्ट्रो वायव्यश्चेति संग्रहः ॥ ४४ ॥ एकरात्रिमुहूर्त्ताः स्युः क्रमोक्ता दश पञ्च च ॥ इन्दोर्गत्युदया ज्ञेया नालिकाः पादिकास्तथा ॥ कालावस्थास्विमास्त्वेते मुहूर्ता देवताः स्मृताः ॥ ४५ ॥ सर्वग्रहाणां त्रीण्येव स्थानानि विहितानि च ॥ दक्षिणोत्तरमध्यानि तानि विद्याद्यथाक्रमम् ॥ ४६ ॥ स्थानं जारद्गवं मध्ये तथैरावतमुत्तरम् ॥ वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिह तत्त्वतः ॥४७॥ आश्विनी कृत्तिका याम्या नागवीथीरिति स्मृता ॥ पुष्योऽश्लेषा पुनर्व्वसू वीथिरैरावती मता ॥ तिस्रस्तु वीथयो ह्येता उत्तरे मार्ग उच्यते ॥४८॥ पूर्वोत्तरे फाल्गुन्यौ च मघा चैवार्य्यर्षी स्मृता ॥ हस्तचित्रे तथा स्वाती गोवीथीत्यभिशब्दिता ॥४९॥ ज्येष्ठा विशाखानुराधा वीथी जारद्गवी स्मृता ॥ एतास्तु वीथयस्तिस्रो मध्यमे मार्ग उच्यते ॥५०॥ मूलश्चाषाढे द्वे चापि अजवीथ्यभिशब्दिता ॥ श्रवणश्च धनिष्ठा च गार्गी शतभिषक्तथा ॥५१॥ वैश्वानरी भाद्रपदे रेवती चैव कीर्त्तिता ॥ स्मृता वीथ्यस्तु तिस्रस्ता मार्गे वै दक्षिणे बुधैः ॥ ५२ ॥ सप्तविंशत्तु याः क

स्मृताः साध्या विश्वे च वसवस्तथा ॥ ७६ ॥ अरिष्टनेमिपत्नीनामपत्यानीह षोडश ॥ बहुपुत्रस्य विदुषश्चतस्रो विद्युतः स्मृताः ॥ प्रत्यङ्गिरसजाः श्रेष्ठा ऋचो ब्रह्मर्षिसत्कृताः ॥ ७७ ॥ कृशाश्वस्य तु देवर्षेर्देवप्रहरणाः स्मृताः ॥ एते युगसहस्रान्ते जायन्ते पुनरेव हि ॥ ७८ ॥ सर्वे देवगणा वि प्रास्त्रयस्त्रिंशत्तु छन्दजाः ॥ एतेषामपि देवानां निरोधोत्पत्तिरुच्यते ॥ ७९ ॥ यथा सूर्यस्य लोकेऽस्मिन् उदयास्तमयावुभौ ॥ एते देवनिकायास्ते सम्भवन्ति युगे युगे ॥ ८० ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ साध्याश्च वसवो विश्वे रुद्रादित्यास्तथैव च ॥ अभिजात्या प्रभावैश्च कर्मभिश्चैव विश्रुताः ॥८१॥ प्रजापतेश्च विष्णोश्च भवस्य च महात्मनः ॥ अन्तरं ज्ञातुमिच्छामो यश्च यस्माद्विशिष्यते ॥ ८२ ॥ यश्च यस्मात् प्रभवति यश्च यस्मिन् प्रतिष्ठितः ॥ ज्यायान्यो मध्यमश्चैव कनीयान् यश्च तेषु वै ॥ ८३ ॥ प्रधानभूतो यस्तेषां गुणभूतश्च तेषु यः ॥ कर्मभिश्चाभिजात्या च प्रभावेण च यो महान् ॥ एतत् प्रब्रूहि नः सर्वं त्वं हि वेत्थ यथायथम् ॥ ८४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ अत्र वो वर्णयिष्येहमन्तरन्तेषु यत् स्मृतम् ॥ यद्ब्रह्मविष्णुरुद्राणां शृणुध्वं मे विवक्षतः ॥८५॥ राजसी तामसी चैव सात्त्विकी चैव ताः स्मृताः ॥ तन्वः स्वयम्भुवः प्रोक्ताः काले काले भवन्ति याः ॥८६॥ एतासामन्तरं वक्तुं नैव शक्यं द्विजोत्तमाः ॥ गुणवृद्धिनिबन्धत्वाद्द्वियानुग्रहबन्धतः ॥ ८७ ॥ प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च गुणवृद्धिमिह द्विजाः ॥ यथाशक्ति प्रवक्ष्यामि तनूनां तन्निबोधत ॥८८॥ एका तु कुरुते तासां राजसी सर्वतः प्रजाः ॥ एका चैवार्णवस्था तु सानुगृह्णाति सात्त्विकी ॥ एका सा क्षिपते काले तामसी ग्रसते प्रजाः ॥ ॥ ८९ ॥ रजसा तु समुद्रिक्तो ब्रह्मा सम्भवते यदा ॥ पुरुषाख्या तदा तस्य सात्त्विकी विनिवर्त्तते ॥९०॥ यदा भवति कालात्मा उद्रेकात्तमसस्तु सः ॥ ब्रह्माख्या सा तदा त्वस्य राजसी विनिवर्त्तते ॥९१॥ सत्त्वोद्रेकात्तु पुरुषो यदा भवति स प्रभुः ॥ कालाख्या सा तदा तस्य पुनर्न भवतीति वै ॥ ९२ ॥ क्रमात्तस्य निवर्त्तन्ते रूपं नाम च कर्म च ॥ त्रैलोक्ये वर्तमानस्य सर्वानुग्रहनिग्रहैः ॥ ९३ ॥ यदा भवति ब्रह्मा च तदा चान्तरमुच्यते ॥ यदा च पुरुषो ब्रह्मा न चैव पुरुषस्तु सः ॥ ९४ ॥ मणिर्विभजते वर्णान् विचित्रान् स्फटिके यथा ॥ वैमल्यादाश्रयवशात्तद्वर्णः स्यात्तदञ्जनः ॥ ९५ ॥ तदा गुणवशात्तस्य स्वयम्भोरनुरञ्जनम् ॥ एकत्वे च पृथक्त्वे च प्रोक्तमेतन्निदर्शनम् ॥ ९६ ॥ एको भूत्वा यथा मेघः पृथक्त्वेनावतिष्ठते ॥ रूपतो वर्णतश्चैव तथा गुणवशात्तु सः ॥ ९७ ॥ भवत्येको द्विधा चैव त्रिधा मूर्तिविनाशनात् ॥ एको ब्रह्मान्तकश्चैव पुरुषश्चेति ते त्रयः ॥ ९८ ॥ एकस्यैताः स्मृतास्तिस्रस्तनवस्तु स्वयम्भुवः ॥ ब्राह्मी च पौरुषी चैव अन्तकारी च ते त्रयः ॥ ९९ ॥ तत्र या राजसी तस्य तनुः सा वै प्रजाकरी ॥ या तामसी तु कालाख्या प्रजाक्षयकरी तु सा ॥ सात्त्विकी पौरुषी या तु सानुग्रहकरी स्मृता ॥ १०० ॥ राजस्या ब्रह्मणोंऽशेन मरीचिः कश्य

सत्त्वोद्रिक्ता तु या प्रोक्ता ब्रह्मणः पौरुषी तनुः ॥ तस्यांशेन विजज्ञे स इह स्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ आकूत्यां मनसो देव उत्पन्नः प्रथमे विभुः ॥ १२५ ॥
ततः पुनः स वै देवो प्राप्ते स्वारोचिषेऽन्तरे ॥ तुषितायां समुत्पन्नो ह्यजीतस्तुषितैः सह ॥ १२६ ॥ औत्तमे चान्तरे चैव तुषितस्तु विदुः स
वै ॥ वशवर्त्तिभिरुत्पन्नो वशवर्त्ती हरिः पुनः ॥ १२७ ॥ सत्यायामभवत्सत्यः सत्यैः सह सुरोत्तमैः ॥ तामसस्यान्तरे चापि सम्प्राप्ते पुनरेव
हि ॥ भार्य्यायां हरिभिः सार्द्धं हरिरेव बभूव ह ॥ १२८ ॥ चारिष्णवेऽन्तरे चापि हरिर्देवः पुनस्तु सः ॥ वैकुण्ठायामसौ जज्ञे ह्याभूतर
जसैः सह ॥ वैकुण्ठः स पुनर्देवः सम्प्राप्ते चाक्षुषेऽन्तरे ॥ १२९ ॥ धर्म्मो नारायणः साध्यः साध्यैः सह सुरैरभूत् ॥ स तु नारायणः
साध्यः प्राप्ते वैवस्वतेऽन्तरे ॥ १३० ॥ मारीचात् कश्यपाद्विष्णुरदित्यां सम्बभूव ह ॥ त्रिभिः क्रमैरिमान् लोकान् जित्वा विष्णुरुरुक्रमम् ॥१३१॥
प्रत्यपादयदिन्द्राय देवेभ्यश्चैव स प्रभुः ॥ इत्येतास्तनवस्तस्य व्यतीताः सप्त सप्तसु ॥ मन्वतरेष्वतीतेषु याभिः संरक्षिताः प्रजाः ॥ १३२ ॥ तस्माद्दिष्ट
मिदं सर्वं वामनेनेह जायता ॥ तस्मात्स वै स्मृतो विष्णुर्विशेर्धातोः प्रवेशनात् ॥ १३३ ॥ इत्येते ब्रह्मणश्चैव वामनस्य महात्मनः ॥ एकत्वञ्च पृथक
त्वञ्च विशिष्टत्वञ्च कीर्त्तितम् ॥ १३४ ॥ देवतानामिहांशेन जायन्ते यास्तु देवताः ॥ तासान्तास्तेजसा बुद्ध्या श्रुतेन च बलेन च ॥ जायन्ते तत्समाश्चै
व ता वै तेषामनुग्रहात् ॥ १३५ ॥ यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ॥ तत्तदेवावगच्छध्वं विष्णोस्तेजोंऽशसम्भवम् ॥ १३६ ॥ स एवं जायतें
शेन केचिदिच्छन्ति मानवाः ॥ ततोऽपरे ब्रुवन्तीममन्योन्यांऽशेन जायते ॥ १३७ ॥ एवं विवदमानास्ते दृष्ट्वा तान्वै ब्रुवन्ति ह ॥ यस्मान्न विद्यते भेदो
मनसश्चेतसश्च ह ॥ तस्मादनुग्रहास्तेषां क्षेत्रज्ञास्ते भवन्त्युत ॥ १३८ ॥ एकस्तु प्रभुशक्त्या वै बहुधा भवतीश्वरः ॥ भूत्वा यस्माच्च बहुधा भवत्ये
कः पुनस्तु सः ॥ १३९ ॥ तस्मात्सुमनसो भेदाज्जायन्ते तेजसश्च ह ॥ मन्वन्तरेषु सर्वेषु प्रजाः स्थावरजङ्गमाः ॥ सर्गादौ सकृदुत्पन्नास्तिष्ठन्तीह प्रशं
सया ॥ १४० ॥ प्राप्ते प्राप्ते तु कल्पान्ते रुद्रः संहरति प्रजाः ॥ जायन्ते मोहयन्तोऽन्यानीश्वरा योगमायया ॥ १४१ ॥ ऐश्वर्येण चरन्तस्ते मोहयन्ति
ह्यनीश्वराः ॥ तस्माद्दोषप्रचारेषु युक्तायुक्तं न विद्यते ॥ १४२ ॥ भूतापवादिनो दुष्टा मध्यस्था भूतभाविनः ॥ भूतापवादिनः शक्तास्त्रयो वेदाः प्रवादिनाम्
॥ १४३ ॥ दृढपूर्वश्रुतत्वाच्च प्रवादाच्चैव लौकिकात् ॥ चतुर्भिः कारणैरेभिर्यथातत्त्वं न विन्दति ॥ १४४ ॥ पूर्वमर्थान्तरे न्यस्ताः कालान्तरगता अपि ॥
तेनान्यात् सन्तमप्यर्थं द्वेषन्न प्रतिपद्यते ॥ १४५ ॥ दर्शनां द्रव्यभूतो यो गुणभूतस्तु तेषु यः ॥ कर्म्मणां मनसां कर्त्ता अभिजात्या च यो महान् ॥
श्रुतज्ञैः कारणैरेतैश्चतुर्भिः परिकीर्त्त्यते ॥ १४६ ॥ अशक्तरुष्टो जानाति देवताः प्रविभागशः ॥ इमौ चोदाहरन्त्यत्र श्लोकौ योगेश्वरं प्रति ॥१४७॥

प्रजापतिः ॥ २४ ॥ यस्मान्ममाभिसन्धाय सन्न्यासो वः कृतः पुरा ॥ यस्मात्स विफलोऽयन्नो ह्यपारस्त्वेष यः कृतः ॥ भविताऽतः सुखोदर्को देवा भावेषु जायताम् ॥ २५ ॥ आत्मच्छन्देन वो जन्म भविष्यति सुरोत्तमाः ॥ मन्वन्तरेषु संमूढाः षट्सु सर्वे गमिष्यथ ॥२६॥ वैवस्वतान्तेषु सुरास्तथा स्वायम्भुवादिषु ॥ तान् ज्ञात्वा ब्रह्मणा तत्र श्लोको गीतः पुरातनः ॥ २७ ॥ त्रयीं विद्यां ब्रह्मचर्य्यं प्रसूतिं श्राद्धमेव च ॥ यज्ञश्चैव तु दानञ्च एषामेव तु कुर्वताम् ॥ स हि स्म विरजा भूत्वा वसतेऽन्यप्रशंसया ॥ २८ ॥ स एवं श्लोकं दृष्ट्वा तु जया देवानथाब्रवीत् ॥ वैवस्वतेऽन्तरेऽतीते मत्समीपमिहै ष्यथ ॥ २९ ॥ ततो यूयं मया सार्द्धं सिद्धिं प्राप्स्यथ शाश्वतीम् ॥ एवमुक्त्वा तु तान् ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३० ॥ ततो देवास्तिरोभूते ईश्वरे ह्य कुतोभयम् ॥ प्रपन्ना अणिमाद्यैश्च युक्ता योगबलान्विताः ॥ ३१ ॥ ततस्तेषान्तु यास्तन्वस्ताऽभवन् द्वादश ह्रदाः ॥ जया इति समाख्याता जाता श्चोदधिसन्निभाः ॥ ३२ ॥ ततः स्वायम्भुवे तस्मिन् सर्गे ते जज्ञिरे सुराः ॥ अजितायां रुचेः पुत्रा अजिता द्वादशात्मकः ॥ ३३ ॥ विधिश्च मुनयश्चैव क्षेमो नन्दोऽव्ययस्तथा ॥ प्राणोऽपानः सुधामा च क्रतुशक्तिव्यवस्थिताः ॥ इत्येते मानसाः सर्व्वे अजिता द्वादश स्मृताः ॥ ३४ ॥ ते च यज्ञे सुरैः सार्द्धं यज्ञभाजस्तदा स्मृताः ॥ स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वे ततः स्वारोचिषे पुनः ॥ तुषितायां समुत्पन्नाः पुनः पुत्राः स्वरोचिषः ॥ ३५ ॥ तुषिता नाम ते ह्यासन् प्राणाख्या याज्ञिकाः सुराः ॥ पुनस्ते तुषिता देवा उत्तमे त्वन्तरे स्वयम् ॥ ३६ ॥ उत्तमस्य तु ते पुत्राः सत्यायां जज्ञिरे शुभाः ॥ ततः सत्याः स्मृता देवा उत्तमे चान्तरे तदा ॥ ३७ ॥ अभजन् यज्ञभाजस्ते तृतीये द्वापरान्तरे ॥ ते तु सत्याः पुनर्देवाः सम्प्राप्ते तामसेऽन्तरे ॥ ३८ ॥ हर्या ये तमसः पुत्रा जज्ञिरे द्वादशैव तु ॥ हरयो नाम ते देवा यज्ञभाजस्तथाऽभवन् ॥ ३९ ॥ ततस्ते हरयो देवाः प्राप्ते चारिष्णवेऽन्तरे ॥ वैकुण्ठायां ततस्ते वै चरिष्णोर्जज्ञिरे सुराः ॥ वैकुण्ठा नाम ते देवाः पञ्चमस्यान्तरे मनोः ॥४०॥ ततस्ते वै पुनर्देवा वैकुण्ठाः प्राप्य चाक्षुषम् ॥ साध्यायां द्वादश सुता जज्ञिरे धर्म्मसूनवः ॥ ४१ ॥ ततस्ते वै पुनः साध्याः संक्षीणे चाक्षुषेऽन्तरे ॥ उपस्थिते मनोः सर्गे पुनर्वैवस्वतस्य ह ॥ ४२ ॥ आद्ये त्रेतायुगमुखे प्राप्ते वैवस्वतस्य तु ॥ अंशेन साध्यास्तेऽदित्यां मारीचात् कश्यपात् पुनः ॥ ४३ ॥ जज्ञिरे द्वादशादित्या वर्त्तमानेऽन्तरे पुनः ॥ यदा त्वेते समुत्पन्नाश्चाक्षुष स्याऽन्तरे मनोः ॥ ४४ ॥ ततः स्वायम्भुवे साध्या जज्ञिरे द्वादशामराः ॥ एवमाद्या जयास्ते वै शापात्सम्भवंस्तदा ॥ ४५ ॥ य इमां सप्तसम्भूतिं दे वानां देवशासनात् ॥ पठेद्यः श्रद्धया युक्तः प्रत्यवायं न गच्छति ॥ ४६ ॥ इत्येते भूतयः सप्त जयानां सप्तलक्षणाः ॥ परिक्रान्ता मया चाद्य किम्भू यः श्रोतुमिच्छथ ॥ ४७ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ दैत्यानां दानवानाञ्च गन्धर्व्वोरगरक्षसाम् ॥ सर्व्वभूतपिशाचानां पशूनां पक्षिवीरुधाम् ॥ उत्प

सा ॥ मूको विनिहतश्चापि किराते सव्यसाचिना ॥७३॥ उत्पन्ना सहसा चैव तपसा भाविताः स्वयम् ॥ तिस्रः कोव्यस्तु तेषां वै मणिवर्त्तनिवासिनाम् ॥
अवध्या देवतानां वै निहताः सव्यसाचिना ॥ ७४ ॥ अनुह्लादसुतो वायुः शिनीवाली तथैव च ॥ तेषान्तु शतसाहस्रो गणो हालाहलः स्मृतः ॥ ७५ ॥
वैरोचनस्तु प्राह्लादिः पञ्च तस्यात्मजाः स्मृताः ॥ गवेष्ठी कालनेमिश्च जम्भो बाष्कल एव च ॥ शम्भुस्तु अनुजस्तेषां स्मृताः प्राह्लादिसूनवः
॥ ७६ ॥ यथाप्रधानं वक्ष्यामि तेषां पुत्रान् दुरासदान् ॥ शुम्भश्चैव निशुम्भश्च विष्वक्सेनो महौजसः ॥ ७७ ॥ गवेष्ठिनः सुता ह्येते जम्भस्य शतदु
न्दुभिः ॥ तथा दक्षश्च खण्डश्च त्रयस्तु जम्भसूनवः ॥ ७८ ॥ विरोधश्च मनुश्चैव वृक्षायुः कुशलीमुखः ॥ बाष्कलस्य सुता ह्येते कालनेमिसुतान् शृणु
॥ ७९ ॥ ब्रह्मजित् क्षत्रजिच्चैव देवान्तकनरान्तकौ ॥ कालनेमिसुता ह्येते शम्भोस्तु शृणुत प्रजाः ॥ ८० ॥ धनुको ह्यसिलोमा च नावलश्च सगोमुखः॥
गवाक्षश्चैव गोमांश्च शम्भोः पुत्राः प्रकीर्त्तिताः ॥ ८१ ॥ विरोचनस्य पुत्रस्तु बलिरेकः प्रतापवान् ॥ बलेः पुत्रशतं जज्ञे राजानः सर्व्व एव ते ॥ ८२ ॥
तेषां प्रधानाश्चत्वारो विक्रान्ताः सुमहाबलाः ॥ सहस्रबाहुर्ज्येष्ठस्तु बाणो द्रविणसम्मतः ॥ कुम्भनाभो गर्दभाक्षः कुशिरित्येवमादयः ॥ ८३ ॥ शकुनी पू
तना चैव कन्ये द्वे तु बलेः सुते ॥ बलेः पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ८४ ॥ बलियों नामविख्यातो गणो विक्रान्तपौरुषः ॥ बाणस्य चन्द्रम
नसो लौहित्यमुपपद्यते ॥ ८५ ॥ दितिर्विनष्टपुत्रा वै तोषयामास कश्यपम् ॥ स कश्यपः प्रसन्नात्मा सम्यगाराधितस्तया ॥ वरेण च्छन्दयामास सा च
वव्रे वरन्ततः ॥ ८६ ॥ स तु तस्यै वरं प्रादात् प्रार्थितं भगवान् प्रभुः ॥ किमिच्छसि मयि शुभे मारीचस्तामभाषत ॥ ८७ ॥ मारीचं कश्यपं
तुष्टं भर्त्तारं प्राञ्जलिस्तथा ॥ हतपुत्रास्मि भगवन् आदित्यैस्तव सूनुभिः ॥ ८८ ॥ शक्रहन्तारमिच्छेयं पुत्रं दीर्घतपोऽन्वितम् ॥ अहं तप
श्चरिष्यामि गर्भमाधातुमर्हसि ॥ ८९ ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा मारीचः कश्यपस्तथा ॥ प्रत्युवाच महातेजा दितिं परमदुःखिताम् ॥ ९० ॥
एवं भवतु भद्रन्ते शुचिर्भव तपोधने ॥ जनयिष्यसि सत्पुत्रं शक्रहन्तारमाहवे ॥ ९१ ॥ पूर्णे वर्षशतं तावत् शुचिर्यदि
भविष्यसि ॥ पुत्रं त्रिलोकप्रचरमथ त्वं जनयिष्यसि ॥ ९२ ॥ एवमुक्त्वा महातेजास्तया समवसत् प्रभुः ॥ तामालिङ्ग्य त्रिभुवनं
जगाम भगवानृषिः ॥ ९३ ॥ गते भर्त्तरि सा देवी दितिः परमहर्षिता ॥ कुशलं वनमासाद्य तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ ९४ ॥ तपस्तस्या
न्तु कुर्वन्त्यां परिचर्याञ्चकार ह ॥ सहस्राक्षः सुरश्रेष्ठः परया गुणसम्पदा ॥ ९५ ॥ अग्निं समित्कुशं काष्ठं फलं मूलं तथैव च ॥ न्यवेदयत् सहस्राक्षो
यच्चान्यदपि किञ्चन ॥ ९६ ॥ गात्रसंवाहनैश्चैव श्रमापनयनैस्तथा ॥ शक्रः सर्व्वेषु लोकेषु दितिं परिचचार ह ॥ एवमाराधिता शक्रमुवाचाथ दितिस्त

ततस्तेषान्तु नामानि मातापुत्रौ प्रचक्रतुः ॥ तत्कृते कर्मभिश्चैव मरुतो वै पृथक् पृथक् ॥ १२२ ॥ सत्त्वज्योतिस्तथादित्यः सत्यज्योतिस्तथाऽपरः ॥ तिर्यग्ज्योतिश्च सज्योतिज्योतिष्मानपरस्तथ.॥१२३॥प्रथमस्तु गणः प्रोक्तो द्वितीयं मे निबोधत ॥ ऋतजित्सत्यजिच्चैव सुषेणः सेनजित्तथा ॥ १२४॥ सत्यमित्रोऽभिमित्रश्च हरिमित्रस्तथाऽपरः ॥ गण एष द्वितीयस्तु तृतीयं मे निबोधत ॥१२५॥ कृतः सत्यो ❀ ❀ ❀ ❀ ध्रुवो धर्त्ता विधारयः ॥ ध्वान्तश्चैव धुनिश्चैव ह्युग्रो भीमस्तथैव च॥ अभियुः साक्षिपश्चैवमाह्वयश्च गणः स्मृतः॥१२६॥ईदृक् चैव तथान्यादृक् यादृक् च प्रतिकृत्तथा॥सामितिश्चैव संरम्भश्च तथा गणः॥१२७॥ईदृक् च पुरुषश्चैव अन्यादृक्षाच्च चेतसः॥स.मितासमितदृक्षाच्च प्रतिदृक्षाच्च वै गुणाः॥१२८॥एते ह्येकोनपञ्चाशन्मरुतो नामतः स्मृताः॥ प्रसंख्यातास्तथा ताभ्यां दित्या चन्द्रेण चैव हि ॥ १२९ ॥ श्रुत्वा तेषान्तु नामानि दितिरिन्द्रमुवाच ह ॥ वातस्कन्धं चरन्त्वेते मम पुत्राश्च पुत्रक ॥ विचरन्तु च भद्रन्ते देवैः सह ममात्मजाः ॥ १३० ॥ तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा सहस्राक्षः पुरन्दरः ॥ उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा मातर्भवतु तत्तथा ॥ १३१ ॥ सर्व्वमेतद्यथोक्तन्ते भविष्यति न संशयः ॥ देवभूता महात्मानः कुमारा देवसम्मताः ॥ देवैः सह भविष्यन्ति यज्ञभाजस्तथात्मजाः ॥ १३२ ॥ तस्मात्ते मरुतो देवाः सर्व्वे चेन्द्रानुजामराः ॥ विज्ञेयाश्चामराः सर्व्वे दितिपुत्रास्तपस्विनः ॥ १३३ ॥ एवन्तौ निश्चयं ज्ञात्वा मातापुत्रौ तपोधनौ ॥ जग्मतुस्त्रिदिवं हृष्टौ शक्रोऽपि त्रिदिवं गतः ॥ १३४ ॥ मरुतां हि शुभं जन्म शृणुयाद्यः पठेत वा ॥ नावृष्टिभयमाप्नोति बह्वायुश्च भवेत्ततः ॥ १३५ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते कश्यपीयप्रजासर्गो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ छ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि दनुपुत्रान्निबोधत ॥ अभवन् दनुपुत्रास्तु वंशे ख्याता महासुराः ॥ १ ॥ विप्रचित्तिप्रधानास्ते शतं तीव्रपराक्रमाः ॥ सर्वे लब्धवराश्चैव सुततपसस्तथा ॥ २ ॥ सत्यसन्धाः पराक्रान्ताः क्रूरा मायाविनश्च ते ॥ महाबला अयज्वानो ह्यब्रह्मण्याश्च दानवाः ॥ कीर्त्यमानान्मया सर्वान् प्राधान्येन निबोधत ॥ ३ ॥ द्विमूर्द्धा शङ्कुवर्णश्च तथा शङ्कुनिरामयः ॥ शङ्कुकर्णो महाविश्वो गवेष्ठिर्दुन्दुभिस्तथा ॥ ४ ॥ अजामुखोऽथ भगवान् शिलो वामनसस्तथा ॥ मरीचिरक्षकश्चैव महागार्ग्योऽङ्गिरावृतः ॥ ५ ॥ विक्षोभ्यश्च सुकेतुश्च सुवीर्य्यः सुहृदस्तथा ॥ इन्द्राजिद्विश्वजिच्चैव तथा सुरविमर्द्दनः ॥ ६ ॥ एकचक्रः सुबाहुश्च तारकश्च महाबलः ॥ वैश्वानरः पुलोमा च प्रवीणोऽथ महाशिराः ॥ ७ ॥ स्वर्भानुर्वृषपर्वा च मुण्डकश्च महासुरः ॥ धृतराष्ट्रश्च सूर्य्यश्च चन्द्र इन्द्रश्च तापिनः ॥ ८ ॥ सूक्ष्मश्चैव निचन्द्रश्च ऊर्णनाभो महागिरिः ॥असिलोमा सुकेशश्च सदश्च बलको दश ॥ ९ ॥ तथा गगनमूर्द्धा च कुम्भनाभा महोदरः ॥ प्रमोदाहश्च कुपथो हयग्रीवश्च वीर्य्यवान् ॥ १० ॥ असुरश्च विरूपाक्षः सुपथोऽथ महासुरः ॥ अजो हिरण्मयश्चैव

पुत्रान् यज्ञे वै गायनोत्तमान् ॥ ३७ ॥ सत्त्वनः सत्वात्मकश्चैव कलापश्चैव वीर्य्यवान् ॥ कृतवीर्यो ब्रह्मचारी सुपाण्डुश्चैव सत्तमः ॥ ३८ ॥ पनश्चैव तरण्यश्च सुचन्द्रो दशमस्तथा॥इत्येते देवगन्धर्वा विज्ञेयाः परिकीर्तिताः॥३९॥इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते कश्यपीयप्रजासर्गो नाम सप्तमोऽध्यायः॥७॥

॥ ॥ सूतउवाच ॥ गन्धर्वाप्सरसः पुण्या मौनेयाः परिकीर्त्तिताः ॥ चित्रसेनोग्रसेनश्च ऊर्णायुरनघस्तथा ॥ १ ॥ धृतराष्ट्रः पुलोमा च सूर्य्यवर्चास्तथैव च॥ युगपत्तृणपत्कालिर्दितिश्चित्ररथस्तथा ॥२॥ त्रयोदशो भ्रमिशिराः पर्जन्यश्च चतुर्दशः ॥ कालिः पञ्चदशश्चैव नारदश्चैव षोडशः ॥ इत्येते देवगन्धर्वा मौनेयाः परिकीर्त्तिताः ॥ ३ ॥ चतुस्त्रिंशद्यवीयस्यस्तेषामप्सरसः शुभाः ॥ अन्तरा दारवत्या च प्रियमुख्या सुरोत्तमा ॥ ४ ॥ मिश्रकेशी तथा शाची पर्णिनी वाप्यलम्बुषा ॥ मारीची पुत्रिका चैव विद्युद्वर्णा तिलोत्तमा ॥ ५ ॥ अद्रिका लक्षणा चैव देवी रम्भा मनोरमा ॥ सुवरा च सुबाहुश्च पूर्णिता सुप्रतिष्ठिता ॥ ६ ॥ पुण्डरीका सुगन्धा च सुदन्ता सुरसा तथा ॥ हेमसारा सुती चैव सुवृत्ता कमला च या ॥ ७ ॥ सुभुजा हंसपादा च लौकिक्योऽप्सरसस्तथा ॥ गन्धर्वाप्सरसो ह्येता मौनेयाः परिकीर्त्तिताः ॥ ८ ॥ गन्धर्वाणां दुहितरो मया याः परिकीर्त्तिताः ॥ तासां नामानि सर्वासां कीर्त्त्यमानानि मे शृणु ॥ ९ ॥ सुयशा प्रथमा तासां गान्धर्वी तदनन्तरम् ॥ विद्यावती चारुमुखी सुमुखी च वरानना ॥ १० ॥ तत्रेमे सुयशापुत्रा महाबलपराक्रमाः॥ प्रचेतसः सुता यक्षास्तेषां नामानि मे शृणु॥११॥कम्बलो हरिकेशश्च कपिलः काञ्चनस्तथा ॥ मेघमाली तु यक्षाणां गण एष उदाहृतः ॥ १२ ॥ सुयशाया दुहितरश्चतस्रोऽप्सरसः स्मृताः॥ तासां नामानि वै सम्यग् ब्रुवतो मे निबोधत ॥ १३ ॥ लोहेयी त्वभवज्ज्येष्ठा भरता तदनन्तरम् ॥ कृशाङ्गी च विशाला च रूपेणाप्रतिमा तथा॥१४॥ताभ्योऽपरे यक्षगणाश्चत्वारः परिकीर्त्तिताः ॥ उत्पादिता विशालेन विक्रान्तेन महात्मना॥१५॥लोहेयो भरतेयश्च कृशाङ्गेयश्च विश्रुतः ॥ विशालेयश्च यक्षाणां पुराणे प्रथिता गणाः॥१६॥इत्येतैरसुरैर्वीरैर्महाबलपराक्रमैः ॥ लोकैर्यक्षगणैर्व्याप्ता लोकालोकविदां वराः ॥ १७ ॥ गन्धर्वाश्चाथ बालेया विक्रान्तेन महात्मना ॥ उत्पादिता महावीर्या महागन्धर्वनायकाः ॥ १८ ॥ विक्रमौदार्यसम्पन्ना महाबलपराक्रमाः ॥ तेषां नामानि वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥ १९ ॥ चित्राङ्गदो महावीर्य्यश्चित्रवर्म्मा तथैव च ॥ चित्रकेतुर्महाभागः सोमदत्तोऽथ वीर्य्यवान् ॥ तिस्रो दुहितरश्चैव तासां नामानि वक्ष्यते ॥ २० ॥ प्रथमा त्वग्निका नाम कम्बला तदनन्तरम् ॥ तथा वसुमती नाम रूपेणाप्रतिमौजसः ॥ २१ ॥ ताभ्यः परे कुमारेण गणा उत्पादितास्त्विमे ॥ त्रयो गन्धर्वमुख्यानां विक्रान्ता युद्धदुर्मदाः ॥ २२ ॥ आग्नेयाः काम्बलेयाश्च तथा वसुमतीसुताः ॥ तैर्गणैर्विविधैर्व्याप्तमिदं लोकचराचरम् ॥ २३ ॥ विद्यावन्तश्च तेनैव विक्रान्तेन महात्मना ॥ उत्पादिता महाभागा रूपविद्याधनेश्वराः ॥ २४ ॥ तेषामुदीर्णे

थ जज्ञे नारायणस्य या ॥ ऊरोः सर्वानवद्याङ्गी उर्वश्येकादशी स्मृता ॥ ५१ ॥ मेनस्य मेनका कन्या ब्रह्मणो हृष्टचेतसः ॥ सर्व्वाश्च ब्रह्म
वादिन्यो महायोगाश्च ताः स्मृताः ॥ ५२ ॥ गणा अप्सरसाङ्ख्याताः पुण्यास्ते वै चतुर्दश ॥ आहूताः शोभयन्तश्च गणा ह्येते चतुर्दश ॥ ५३ ॥
ब्रह्मणो मानसाः कन्याः शोभयन्त्यो मनोः सुताः॥वेगवन्त्यस्त्वरिष्टाया ऊर्ज्जायाश्चाग्निसम्भवाः॥५४॥आयुष्मन्त्यश्च सूर्यस्य रश्मिजाताः सुभास्वराः॥
वारिजा ह्यमृतोत्पन्ना अमृता नामतः स्मृताः ॥ ५५ ॥ वायूत्पन्ना मुदा नाम भूमिजाता भवास्तु वै ॥ विद्युतश्च रुचो नाम मृत्योः कन्याश्च भैरवाः ॥ ५६ ॥
शोभयन्त्यः कामगुणा गणाः प्रोक्ताश्चतुर्दश ॥ सेन्द्रोपेन्द्रैः सुरगणै रूपातिशयनिर्मिताः ॥ ५७ ॥ शुभरूपा महाभागा दिव्या नारी तिलोत्तमा ॥
ब्रह्मणश्चाग्निकुण्डाच्च देवनारी प्रभावती ॥ रूपयौवनसम्पन्ना उत्पन्ना लोकविश्रुता ॥५८॥ वेदीतलसमुत्पन्ना चतुर्वक्त्रस्य धीमतः ॥ नाम्ना वेदवती नाम
सुरनारी महाप्रभा ॥ ५९ ॥ तथा यमस्य दुहिता रूपयौवनशालिनी ॥ वरहेमविभा हेमा देवनारी सुलोचना ॥ ६० ॥ इत्येते बहुसाहस्रं भास्वरा
ह्यप्सरोगणाः ॥ देवतानामृषीणाञ्च पत्न्यस्ता मातरश्च ह ॥ ६१ ॥ सुगन्धाश्चम्पवर्णाश्च सर्वाश्चाप्सरसः समाः ॥ सम्प्रयोगे तु कान्तेन माद्यन्ति
मदिरां विना ॥ तासामाप्यायते स्पर्शादानन्दश्च विवर्द्धते ॥ ६२ ॥ विनतायास्तु पुत्रौ द्वावरुणो गरुडश्च ह ॥ षट्त्रिंशत्तु स्वसारश्च यवीयस्यस्तु
ताः स्मृताः ॥ ६३ ॥ गायत्र्यादीनि च्छन्दांसि सौपर्णेयाश्च पक्षिणः ॥ इत्येवाहानि सर्वाणि दिक्षु सन्निहितानि च ॥ ६४ ॥ कद्रूर्नागसहस्रं वै चरा
चरमजीजनत् ॥ अनेकशिरसां तेषां खेचराणां महात्मनाम् ॥ बहुधानामधेयानां प्रायशस्तु निबोधत ॥ ६५ ॥ तेषां प्रधाननागाश्च शेषवासुकितक्ष
काः ॥ सकर्णीरश्च जम्भश्च अञ्जनो वामनस्तथा ॥६६॥ ऐरावतमहापद्मौ कम्बलाश्वतरावुभौ ॥ ऐलपत्रश्च शङ्खश्च कर्कोटकधनञ्जयौ ॥६७॥ महाकर्णो
महानीलो धृतराष्ट्रबलाहकौ ॥ कुमारः पुष्पदन्तश्च सुमुखो दुर्मुखस्तथा ॥ ६८ ॥ शिलीमुखो दधिमुखः कालीयः शालिपिण्डकः ॥ बिन्दुपादः पुण्ड
रीको नागश्चापूरणस्तथा ॥ ६९ ॥ कपिलश्चाम्बरीषश्च धृतपादश्च कच्छपः ॥ प्रह्लादः पद्मचित्रश्च गन्धर्वोऽथ नमस्विकः ॥ ७० ॥ नहुषः खररोमा
च मणिरित्येवमादयः ॥ काद्रवेया मया ख्याताः खशायांस्तु निबोधत ॥ ७१ ॥ खशा विजज्ञे पुत्रौ द्वौ विश्रुतौ पुरुषादकौ ॥ ज्येष्ठं पश्चिमसङ्ख्या
यां पूर्वस्यां मनुजास्तथा ॥ ७२ ॥ विलोहितं विकर्णञ्च पूर्वं साऽजनयत् सुतम् ॥ चतुर्भुजं चतुष्पादं द्विमूर्द्धानं द्विधागतिम् ॥ ७३ ॥ सर्वाङ्गकेशं
स्थूलाङ्गं तुङ्गनासं महोदरम् ॥ स्थूलशीर्षं महाकर्णं मुञ्जाकेशं मनोरथम् ॥ ७४ ॥ हस्त्योष्ठं दीर्घजङ्घञ्च अश्वदंष्ट्रं महाहनुम् ॥ रक्तजिह्वं जटाक्षञ्च
स्थूलास्यं दीर्घनासिकम् ॥ ७५ ॥ गुह्यकं शितिकर्णञ्च महानन्दं महामुखम् ॥ एवंविधं खशापुत्रं विजज्ञे साऽतिभीषणम् ॥ ७६ ॥ तस्यानुजं

नक्तञ्चैव बलीयांसौ दिवा सुप्तावुभौ युवाम् ॥ १०१ ॥ मातरं रक्षतञ्चैव धर्म्मश्चैवानुशिष्यताम् ॥ इत्युक्त्वा कश्यपः पुत्रौ तत्रैवान्तरधीयत ॥१०२॥ गते पितरि तौ वीरौ निसर्गादेव दारुणौ ॥ विपर्य्ययेण वर्त्तन्तौ किम्भक्षौ प्राणिहिंसकौ ॥ १०३ ॥ महाबलौ महासत्त्वौ महाकायौ दुरासदौ ॥ मायाविनौ च दृश्यौ तावन्तर्द्धानगतावुभौ ॥ १०४ ॥ तौ कामरूपिणौ घोरौ विकृताङ्गौ स्वभावतः ॥ रूपानुरूपैराहारैः प्रभवेतामुभावपि ॥ १०५ ॥ देवासुरानृषींश्चैव गन्धर्वान् किन्नरानपि ॥ पिशाचांश्च मनुष्यांश्च पन्नगान् पक्षिणः पशून् ॥१०६॥ भक्षार्थमपि लिप्सन्तौ सर्वतस्तौ निशाचरौ ॥ इन्द्रेण तु वरौ चैव धृतौ दत्त्वा सुवध्यताम् ॥ १०७ ॥ यक्षस्तु न कदाचिद्वै निशीथे ह्येककश्चिरम् ॥ आहारं स परीप्सन् वै शब्देनानुचचार ह ॥ १०८ ॥ आससाद पिशाचौ द्वौ जन्तुचण्डौ च तावुभौ ॥ पिङ्गाक्षावूर्द्ध्वरोमाणौ वृत्ताक्षौ तु सुदारुणौ ॥ १०९ ॥ असृङ्मांसवसाहारौ पुरुषादौ महाबलौ ॥ कन्याभ्यां सहितौ तौ तु ताभ्यां प्रियचिकीर्षया ॥११०॥ द्वे कन्ये कामरूपिण्यौ तदाचारे च ते शुभे ॥ आहारार्थमटन्तौ तौ कन्याभ्यां सहितावुभौ ॥ ॥ १११ ॥ तेऽपश्यन् राक्षसं तत्र कामरूपं महाबलम् ॥ सहसा सन्निपाते तु दृष्ट्वा चैव परस्परम् ॥ ११२ ॥ रक्षमाणौ ततोऽन्योन्यं परस्परजिघृक्षवः ॥ पितरावूचतुः कन्ये युवामानयत द्रुतम् ॥ ११३ ॥ जीवग्राहं विगृह्यैनं विस्फुरन्तं पदे पदे ॥ ततः समभिसृत्यैनं कन्ये जगृहतुस्तदा ॥ गृहीत्वा हस्तयोस्ताभ्यामानीते पितृसंसदि ॥ ११४ ॥ ताभ्यां करे गृहीतं तं पिशाचमथ राक्षसम् ॥ पृच्छतां कोऽसि कस्य त्वं स च सर्वमभाषत ॥ ॥ ११५ ॥ तस्य कर्म्माभिविज्ञातं ज्ञात्वा तौ राक्षसर्षभौ ॥ अजञ्च खण्डं तस्यैते प्रत्यपादयतां सुते ॥ तौ तुष्टौ कर्म्मणा तस्य कन्ये द्वे ददतुः सुते ॥ ११६ ॥ पैशाचेन विवाहेन सुदत्या बुद्धवाहनः ॥ अजः खण्डश्च ताभ्यां तौ तदाश्रावयतां धनम् ॥ ११७ ॥ इयं ब्रह्मधना नाम मम कन्या ह्यलोमिका ॥ ब्रह्मसत्त्वधनाहारा इति खण्डोऽभ्यभाषत ॥ ११८ ॥ इयं जन्तुधना नाम कन्या सर्वाङ्गसुन्दरी ॥ जन्तवोऽस्या धनाहारास्तावश्राव यतां धनम् ॥ ११९ ॥ सर्वाङ्गकेशी नाम्ना च कन्या जन्तुधना तथा ॥ अकर्णान्ताप्यरोमा च कन्या ब्रह्मधना तु या ॥ १२० ॥ ब्रह्मधनं प्रसूता सा धनानाञ्चैव कन्यका ॥ एवं पिशाचकन्ये ते मिथुने द्वे प्रसूयताम् ॥ तयोः प्रजाविसर्गञ्च ब्रुवतो मे निबोधत ॥ १२१ ॥ हेतिः प्रहेतिरुग्रश्च पौरुषेयो वधस्तथा ॥ विस्फूर्जिश्चैव वातश्च आपो व्याघ्रस्तथैव च ॥ १२२ ॥ सर्पश्च राक्षसा ह्येते यातुधानात्मजा दश ॥ सूर्य्यस्यानुचरा ह्येते सह तेन भ्रमन्ति च ॥ १२३ ॥ हेतिपुत्रस्तथा लङ्कुर्लङ्कोद्वाविव चात्मजौ ॥ माल्यवांश्च सुमाली च प्रहेतितनयान् शृणु ॥ प्रहेतितनयः श्रीमान् पुलोमा नाम विश्रुतः ॥ १२४ ॥ वधपुत्रो निकुम्भश्च क्रूरो वै ब्रह्मराक्षसः ॥ वातपुत्रो विरागस्तु आपपुत्रस्तु जम्बुकः ॥ १२५ ॥ व्याघ्रपुत्रो निरानन्दो जन्तू

सुभद्रश्च प्रद्योतश्च महौजसम् ॥ द्युतिमत्केतुमन्तौ च मित्रं मौलिसुदर्शनौ ॥ १५१ ॥ चत्वारो विंशतिश्चैव पुत्राः पुण्यजनाः शुभाः ॥ जज्ञिरे मणिभद्रस्य ते सर्व्वे पुण्यलक्षणाः ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च यक्षाः पुण्यजनाः शुभाः ॥ १५२ ॥ विजज्ञे देवजननी पुत्रान् मणिवरात्मजात् ॥ पूर्णभद्रं हेमरथं मणिमन्नन्दिवर्द्धनौ ॥ १५३ ॥ कुस्तुम्बुरुं पिशङ्गाभं स्थूलकर्णं महाजयम् ॥ श्वेतञ्च विपुलञ्चैव पुष्पवन्तं भयावहम् ॥ १५४ ॥ पद्मवर्णं सुनेत्रञ्च यक्षं बालं बकं तथा ॥ कुमुदं क्षेमकञ्चैव वर्द्धमानं तथा दमम् ॥ १५५ ॥ पद्मनाभं वराङ्गञ्च सुवीरं विजयं कृतिम् ॥ पूर्णमासं हिरण्याक्षं सुरूपञ्चैवमादयः ॥ १५६ ॥ पुत्रा मणिवरस्यैते यक्षा वै गुह्यकाः स्मृताः ॥ सुरूपाश्च विरूपाश्च स्रग्विणः प्रियदर्शनाः ॥ तेषां पुत्राश्च पौत्राश्च शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १५७ ॥ खशायास्त्वपरे पुत्रा राक्षसाः कामरूपिणः ॥ तेषां यथा प्रधानान् वै वर्ण्यमानान्निबोधत ॥ १५८ ॥ लालाविः कुथनो भीमः सुमाली मधुरेव च ॥ विस्फूर्जितो विद्युज्जिह्वो मातङ्गो धूम्रितस्तथा ॥ १५९ ॥ चन्द्रार्कः सुकरो बुध्नः कपिलोमा प्रहासकः ॥ क्रीडः परशुनाभश्च चक्राक्षश्च निशाचरः ॥ १६० ॥ त्रिशिराः शतदंष्ट्रश्च तुण्डकेशश्च राक्षसः ॥ यक्षश्चाकम्पनश्चैव दुर्मुखश्च शिलीमुखः ॥ १६१ ॥ इत्येते राक्षसवरा विक्रान्ता गणरूपिणः ॥ सर्वलोकचरास्ते तु त्रिदशानां समक्रमाः ॥ १६२ ॥ सप्त चान्या दुहितरस्ताः शृणुध्वं यथाक्रमम् ॥ तासाञ्च यः प्रजासर्गो येन चोत्पादिता गणाः ॥ १६३ ॥ आलम्बा उत्कचा कृष्णा निर्ऋता कपिला शिवा ॥ केशिनी च महाभागा भगिन्यः सप्त याः स्मृताः ॥ १६४ ॥ ताभ्यो लोकामिषादश्च हन्तारो युद्धदुर्मदाः ॥ उदीर्णा राक्षसगणा इमे उत्पादिताः शुभाः ॥ १६५ ॥ आलम्बेयो गणः क्रूर उत्कचेयो गणस्तथा ॥ तथा कार्ष्णेयशैवेया राक्षसा ह्युत्तमा गणाः ॥ १६६ ॥ तथैव नैर्ऋतो नाम त्र्यम्बकानुचरेण ह ॥ उत्पादितः प्रजासर्गो गणेश्वरचरेण तु ॥ १६७ ॥ उत्पादिता बलवता उदीर्णा यक्षराक्षसाः ॥ विक्रान्ताः शौर्य्यसम्पन्ना नैर्ऋता देवराक्षसाः ॥ येषामधिपतिर्युक्तो नाम्ना ख्यातो विरूपकः ॥ १६८ ॥ तेषां गणशतानेका उद्धतानां महात्मनाम् ॥ प्रायेणानुचरन्त्येते शङ्करं जगतः प्रभुम् ॥ १६९ ॥ दैत्यराजेन कुम्भेन महाकाया महात्मना ॥ उत्पादिता महावीर्य्या महाबलपराक्रमाः ॥ १७० ॥ कपिलेया महावीर्य्या उदीर्णा दैत्यराक्षसाः ॥ कम्पनेन च यक्षेण केशिन्यास्ते परे जनाः ॥ १७१ ॥ उत्पादिता महावाता उदीर्णा यक्षराक्षसाः ॥ केशिनीदुहितुश्चैव नीलायाः क्षुद्रमानसाः ॥ १७२ ॥ आलम्बेयेन जनिता नैकाः सुरसिकेन हि ॥ नैला इति समाख्याता दुर्जया घोरविक्रमाः ॥ १७३ ॥ चरन्ति पृथिवीं कृत्स्नां तत्र ते देवलौकिकाः ॥ बहुत्वाच्चैव सर्गस्य तेषां वक्तुं न शक्यते ॥ १७४ ॥ तस्यास्त्वपि च नीलाया विकचा नाम राक्षसी ॥ दुहिता स्वभावविकचा मन्दसत्त्वपराक्रमा ॥ १७५ ॥ तस्या अपि विरूपेण नैर्ऋतेनेह च प्रजाः ॥

लतरक्षवः ॥ वानराः किन्नराश्चैव व्याघ्राः किम्पुरुषास्तथा ॥ इत्येवमादयोऽन्येऽपि इरावत्या निबोधत ॥ २०२ ॥ सूर्यस्याण्डकपाले द्वे समानीय तु भौवनः ॥ हस्ताभ्यां परिगृह्याथ रथन्तरमगायत ॥ २०३ ॥ साम्ना प्रसूयमानेन सद्य एव गजोऽभवत् ॥ स प्रायच्छ दिरावत्यै पुत्रार्थं स तु भौवनः ॥ २०४ ॥ इरावत्याः सुतो यस्मात्तस्मादैरावतः स्मृतः ॥ देवराजोपवाह्यत्वात् प्रथमः स मत ङ्गराट् ॥ शुभ्राभ्राभश्चतुर्दंष्ट्रः श्रीमानैरावतो गजः ॥ २०५ ॥ अप्सुजस्यैकमूलस्य सुवर्णाभस्य हस्तिनः ॥ षड्दन्तस्य हि भद्रस्य औपवाह्यश्च वै बलः ॥ २०६ ॥ तस्य पुत्रोऽञ्जनश्चैव सुप्रतीकोऽथ वामनः ॥ पद्मश्चैव चतुर्थोऽभूद्धास्तिनी चाभ्रमुस्तथा ॥ २०७ ॥ दिग्गजांस्तांश्च चत्वारः श्वेताऽजनयताशुगान् ॥ भद्रं मृगञ्च मन्दं च सङ्कीर्णं चतुरः सुतान् ॥२०८॥ सङ्कीर्णोऽप्यञ्जनो यस्तु उपवाह्यो यमस्य तु ॥ भद्रो यः सुप्रतीकस्तु हारितः स ह्यपाम्पतेः ॥ २०९ ॥ पद्मो मन्दस्तु यो गौरो द्विपो हैलविलस्य सः ॥ मृगः श्यामस्तु यो हस्ती उपवाह्यः स पावकेः ॥ २१० ॥ पद्मोत्तरस्तु यः पद्मो गजो वै वरुणो गणः ॥ उपलेपनमेषश्च तस्याष्टौ जज्ञिरे सुताः ॥ २११ ॥ उदग्रभावेनोपेता जायन्ते तस्य चान्वये ॥ श्वेतबालनखाः पिङ्गा वर्ष्मवन्तो मतङ्गजाः ॥ मतङ्गजान् प्रवक्ष्यामि नागानन्यानपि क्रमात् ॥ २१२ ॥ कपिलः पुण्डरीकश्च सुमनाभो रथान्तरः ॥ जातौ नाम्ना सुतौ ताभ्यां सुप्रतिष्ठप्रमर्दनौ ॥२१३॥ शूलाः स्थूलाः शिरोदान्ताः शुद्धबालनखास्तथा ॥ बलिनः शक्तिनश्चैव स्मृतास्त्वाकुलिका गजाः॥२१४॥ पुष्पदन्तो बृहत्सामा षड्दन्तो दन्तपुष्पवान् ॥ ताम्रवर्णौ च तत्पुत्रः सहचारिविषाणितः ॥ २१५ ॥ अन्वये चास्य जायन्ते लम्बोष्ठाश्चारुदर्शिनः ॥ श्यामाः सुदर्शनाश्चण्डा नानापीडायताननाः ॥ २१६ ॥ वामदेवोऽञ्जनश्यामः साम्नो जज्ञेऽथ वामनः ॥ भार्य्या चैवाङ्गदा तस्य नीलवल्लक्षणौ सुतौ ॥ २१७ ॥ चण्डाश्चारुशिरोग्रीवा व्यूढोरस्कास्तरास्विनः ॥ नरैर्बद्धाः कुले तेषां जायन्ते विकृता गजाः ॥२१८॥ सुप्रतीकस्तु रूपेण नास्त्यस्य सदृशो गजः ॥ तस्य प्रहारी सम्पाती पृथुश्चित्तिसुतास्त्रयः ॥ २१९ ॥ पशवो दीर्घतालवोष्ठाः सुविभक्तशिरोदराः ॥ जायन्ते मृदुसम्भूता वंशे तस्य मतङ्गजाः ॥२२०॥ अञ्जनादञ्जना साम्नो विजज्ञे चाञ्जनावती ॥ एवं माता तयोश्चापि प्रथितायुरजःसुतौ ॥२२१॥ महाविभक्तशिरसः स्निग्धजीमूतसन्निभाः ॥ सुदर्शनाः सुवर्ष्माणः पद्माभाः परिमण्डलाः ॥ शूनाः पीतायतमुखा गजास्तस्यान्वयेऽभवन् ॥ २२२ ॥ जज्ञे चन्द्रमसः साम्नः पिङ्गला कुमुदद्युतिः ॥ पिङ्गलायाः सुतौ तस्या महापद्मोर्मिमालिनौ ॥ २२३ ॥ समायवरदांश्चण्डान् प्रवृद्धबलिनोदरान् ॥ हस्तियुद्धे प्रियान्नागान् विद्धि तस्य कुलोद्भवान् ॥ २२४ ॥ एतान् देवासुरे युद्धे जयार्थं जगृहुः सुराः ॥ कृतार्थैश्च विसृष्टास्तैः पूर्वोक्ताः प्रययुर्दिशः ॥ २२५ ॥ एतेषामन्वये जातान् विनीतांस्त्रिद

मिथुनानि पिशाचानां वर्णेन कपिशेन च ॥ कपिशत्वात् पिशाचास्ते सर्वे च पिशिताशनाः ॥ २५१ ॥ युग्मानि षोडशान्यानि वर्त्तमानास्तदन्वयाः ॥ नामतस्तान्प्रवक्ष्यामि पुरुषादांस्तदन्वयान् ॥२५२॥ छगलश्छगली चैव वक्रो वक्रमुखी तथा ॥ षोडशानां गणाश्चैव सूची सूचीमुखस्तथा ॥ २५३ ॥ कुम्भपात्रश्च कुम्भी च वज्रदंष्ट्रश्च दुन्दुभिः ॥ उपचारोपचारश्च उलूखल उलूखली ॥ २५४ ॥ अनर्कश्च अनर्का च कुखण्डश्च कुखण्डिका ॥ पाणिपात्रः पाणिपात्री पांशुः पांशुमती तथा ॥ २५५ ॥ नितुण्डश्च नितुण्डी च निपुणा निपुणस्तथा ॥ छलादोच्छेषणा चैव प्रस्कन्दः स्कन्दिका तथा ॥ षोडशानां पिशाचानां गणाः प्रोक्तास्तु षोडश ॥२५६॥ अजामुखा वक्रमुखाः पूरिणः स्कन्दिनस्तथा ॥ विपादाङ्गारिकाश्चैव कुम्भपात्राः प्रकुन्दकाः ॥२५७॥ उपचारोलूखलिका ह्यनर्काश्च कुखण्डिकाः ॥ पाणिपात्राश्च नैतुण्डा ऊर्णाशा निपुणास्तथा ॥ २५८ ॥ सूचीमुखोच्छेषणादाः कुलान्येतानि षोडश ॥ इत्येता ह्यभिजातास्तु कूष्माण्डानां प्रकीर्त्तिताः ॥ २५९ ॥ पिशाचास्ते तु विज्ञेयाः सुकल्पा इति जज्ञिरे ॥ बीभत्सं विकृताचारं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥ अतस्तेषां पिशाचानां लक्षणञ्च निबोधत ॥ २६० ॥ सर्वाङ्गकेशा वृत्ताख्या दंष्ट्रिणो नखिनस्तथा ॥ तिर्यङ्गाः पुरुषादाश्च पिशाचास्ते ह्यधोमुखाः ॥ ॥ २६१ ॥ अकेशका ह्यरोमाणस्त्वग्वसाश्चर्मवाससः ॥ कूष्माण्डिकाः पिशाचास्ते तिलभक्षाः सदामिषाः ॥ २६२ ॥ वक्राङ्गहस्तपादाश्च वक्रशीलगतास्तथा ॥ ज्ञेया वक्रपिशाचास्ते वक्रगाः कामरूपिणः ॥ २६३ ॥ लम्बोदरास्तुण्डनाशा ह्रस्वकायशिरोभुजाः ॥ नितुन्दकाः पिशाचास्ते तिलतक्षाः प्रियश्रवाः ॥ २६४ ॥ वामनाकृतयश्चैव वाचालाः प्लुतगामिनः ॥ पिशाचानर्कमर्कास्ते वृक्षवासादनप्रियाः ॥ २६५ ॥ ऊर्द्धबाहूर्द्धरोमाण ऊर्द्धवृक्षास्तथालयाः ॥ मुञ्चन्ति पांशूनङ्गेभ्यः पिशाचाः पांशवश्च ते ॥ २६६ ॥ धमनीमतकाः शुष्काः श्मश्रुलाश्चीरवाससः ॥ उपवीराः पिशाचाश्च श्मशानायतनास्तथा ॥ २६७ ॥ विष्टब्धाक्षा महाजिह्वा लेलिहाना ह्युदूखलाः ॥ हस्त्युष्ट्रस्थूलशिरसो विरता बद्धपिण्डकाः ॥ २६८ ॥ पिशाचाः कुम्भपात्रास्ते अदृष्टान्नानि भुञ्जते ॥ सूक्ष्मास्तु रोमशाः पिङ्गा दृष्टादृष्टाश्चरन्ति वै ॥ २६९ ॥ अयुक्ताश्च विशन्तीह निपुणास्ते पिशाचकाः ॥ आकर्णदारितास्याश्च लम्बभ्रूस्थूलनासिकाः ॥ २७० ॥ हस्तपादाक्रान्तगणा ह्रस्वकाः क्षितिदृष्टयः ॥ बालादास्ते पिशाचा वै सूतिकागृहसेविनः ॥ २७१ ॥ पृष्ठतः पाणिपादाश्च ह्रस्वका वातरंहसः ॥ पिशितादाः पिशाचास्ते संग्रामे रुधिराशिनः ॥ २७२ ॥ नग्नका ह्यनिकेताश्च लम्बकेशाश्च पिण्डकाः ॥ पिशाचाः स्कन्दिनस्ते वै अन्या उच्छ्वसनाशिनः ॥ षोडश जातयस्तेषां पिशाचानां प्रकीर्त्तिताः ॥ २७३ ॥ एवंविधान्पिशाचांस्तु दीनान्दृष्ट्वानुकम्पया ॥ तेभ्यो ब्रह्मा वरं प्रादात्कारुण्यादल्पचेतसः ॥ अन्तर्द्धानं प्रजास्तेषां कामरूपत्वमेव च ॥२७४॥ उभयोः सन्ध्ययोश्चारं

मुद्रेभ्यः पनसेभ्यश्च तण्डुलेभ्यस्तथैव च ॥ तथा कोटरशुष्केभ्यो निहितेभ्यो भवन्ति हि ॥ ३०० ॥ अन्येभ्योऽपि च जायन्ते न हि तेभ्यश्चिरं सदा ॥ जन्तवस्तुरगादिभ्यो विषादिभ्यस्तथैव च ॥ ३०१ ॥ बहून्यहानि निःक्षिप्ते सम्भवन्ति च गोमये ॥ जायन्ते कृमयो विप्रा काष्ठेभ्यश्च घुणादयः॥३०२॥ क्रमाद्द्रुमाणां जायन्ते विविधा नीलमक्षिकाः ॥ तथा शुष्कविकारेभ्यः पुत्रिकाः प्रभवन्ति च ॥ ३०३ ॥ कालिका शतिकेभ्यश्च सर्पा जायन्ति सर्वशः॥ संस्वेदजाश्च जायन्ते वृश्चिकाः शुष्कगोमयात् ॥ ३०४ ॥ गोभ्यो हि महिषेभ्यश्च जायन्ते जन्तवः प्रभो ॥ मत्स्यादयश्च विविधा अण्डकुक्षौ विशेषतः ॥ ३०५॥ चैवीरिकाश्च जायन्ते तथा गोजाकुलानि च ॥ तथान्यानि च सूक्ष्माणि जलौकादीनि जातयः॥३०६॥ मक्षिकाणां विकाराणि जायन्ते जातयोऽपरे ॥ प्रायेण तु वसन्त्यस्मिन्नुच्छिष्टोदककर्दमे॥३०७॥मशकानां विकाराणि भ्रमराणां तथैव च ॥ तृणेभ्यश्चैव जायन्ते पुत्रिका पुत्र भासकाः ॥३०८॥ मणिच्छेदास्तथा व्यालाः पोतजाः परिकीर्त्तिताः॥ शतवेरिविकाराणि करीषेभ्यो भवन्ति ह॥३०९॥एवमादिरसङ्ख्यातो गणः संस्वेदजो मया ॥समासाभिहितो ह्येष प्राक्कर्म्मवशजः स्मृतः ॥३१०॥ तथाऽन्ये नैर्ऋताः सत्त्वास्ते स्मृता उपसर्गजाः ॥ पूतास्तु योनिजाः केचित्केचिदौत्पत्तिकाः स्मृताः ॥ ३११ ॥ प्रायेण देवाः सर्वे वै विज्ञेया ह्युपपत्तिजाः ॥ केचित्तु योनिजा देवाः केचिदेवानिमित्ततः ॥ ३१२ ॥ तूलालावश्च कोलश्च शिवा कन्या तथैव च ॥ अपत्यं सरमायास्तु गणा वै सरमादयः॥३१३॥श्यामश्च शवलश्चैव अर्जुनो हरितस्तथा ॥ कृष्णो धूम्रारुणश्चैव तूलालावश्च कद्रुकाः ॥३१४॥ सुरसाऽथ विजज्ञे तु शतमेकं शिरो मतम् ॥ सर्पाणान्तक्षको राजा नागानाञ्चापि वासुकिः ॥ तमोबहुल इत्येष गणः क्रोधवशात्मकः ॥ ३१५ ॥ पुलहस्यात्मजात्सर्गस्ताम्रायास्तन्निबोधत ॥ बह्वन्यास्त्वभिविख्यातास्ताम्रायाश्च विजज्ञिरे ॥ ३१६ ॥ श्येनी भासी तथा क्रौञ्ची धृतराष्ट्री शुकी तथा ॥ अरुणस्य भार्या श्येनी तु वीर्यवन्तौ महाबलौ ॥ सम्पातिश्च जटायुश्च प्रसूता पक्षिसत्तमौ॥३१७॥ सम्पातिरजनत् पुत्रं कन्यामेकान्तथैव च ॥ जटायुषश्च ये पुत्राः काकगृध्राश्वकर्णिनः ॥३१८॥ भार्य्या गरुत्मतश्चापि भासी क्रौञ्ची तथा शुकी ॥ धृतराष्ट्री च भद्रा च तास्वपत्यानि वक्ष्यते ॥ ३१९ ॥ शुकी गरुत्मतः पुत्रान् सुषुवे षट् परिश्रुतान् ॥ त्रिशिरं सुमुखश्चैव बलं पृष्ठं महाबलम् ॥३२०॥ त्रिशङ्कुनेत्रं सुमुखं सुरूपं सुरसं बलम् ॥ एषां पुत्राश्च पौत्राश्च गरुडानां महात्मनाम् ॥३२१॥ चतुर्दश सहस्राणि क्रूराणां पन्नगाशिनाम् ॥ पुत्रपौत्रविसर्गाच्च तेषां वै वंशविस्तरः ॥३२२॥ व्याप्तानि यानि देशानि तानि वक्ष्ये यथाक्रमम्॥ शाल्मलिद्वीपमखिलं देवकूटञ्च पर्वतम् ॥ ३२३ ॥ मणिमन्तञ्च शैलेन्द्रं सहस्रशिखरं तथा ॥ पर्णमालं सुकेशञ्च शतशृङ्गं तथाऽचलम् ॥ ३२४ ॥ कौरजं पञ्चशिखरं हेमकूटञ्च पर्व्वतम् ॥ प्रचण्डवायुप्रभवैर्दीपितैः पन्नगाशिभिः ॥ ३२५ ॥ शैलजालानि व्याप्तानि गारुडैस्तैर्महात्मभिः ॥ भासीपुत्राः

बृहस्पतिन्तु विश्वेषां ददावङ्गिरसां पतिम् ॥ भृगूणामधिपञ्चैव काव्यं राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ ४ ॥ आदित्यानां पुनर्विष्णुं वसूनामथ पावकम् ॥ प्रजाप
तीनां दक्षञ्च मरुतामथ वासवम् ॥ ५ ॥ दैत्यानामथ राजानं प्रह्लादं दितिनन्दनम् ॥ नारायणन्तु साध्यानां रुद्राणां वृषभध्वजम् ॥ ६ ॥ विप्रचित्तिञ्च
राजानं दानवानामथादिशत् ॥ अपान्तु वरुणं राज्ये राज्ञां वैश्रवणं पतिम् ॥ यक्षाणां राक्षसानाञ्च पार्थिवानां धनस्य च ॥ ७ ॥ वैवस्वतं पितॄणाञ्च यमं
राज्येऽभ्यषेचयत् ॥ सर्वभूतपिशाचानां गिरिशं शूलपाणिनम् ॥ ८ ॥ शैलानां हिमवन्तञ्च नदीनामथ सागरम् ॥ गन्धर्वाणामधिपतिं चक्रे चित्ररथं तदा
॥ ९ ॥ उच्चैःश्रवसमश्वानां राजानञ्चाभ्यषेचयत् ॥ मृगाणामथ शार्दूलं गोवृषञ्च चतुष्पदाम् ॥ १० ॥ पक्षिणामथ सर्वेषां गरुडं पततां वरम् ॥ गन्धानां
मातुलञ्चैव भूतानामशरीरिणाम् ॥ ११ ॥ शब्दाकाशबलानाञ्च वायुं बलवतां वरम् ॥ सर्वेषां दंष्ट्रिणां शेषं नागानामथ वासुकिम् ॥ १२ ॥ सरीसृपाणां सर्पा
णां नागानाञ्चैव तक्षकम् ॥ सागराणां नदीनाञ्च मेघानां वर्षितस्य च ॥ आदित्यानामन्यतमं पर्जन्यमभिषिक्तवान् ॥ १३ ॥ सर्वाप्सरोगणानाञ्च
कामदेवं तथैव च ॥ ऋतूनामथ मासानामार्त्तवानां तथैव च ॥ १४ ॥ पक्षाणाञ्च विपक्षाणां मुहूर्त्तानाञ्च पर्वणाम् ॥ कलाकाष्ठाप्रमाणानां गतेर
यनयोस्तथा ॥ गणितस्याथ योगस्य चक्रे संवत्सरं प्रभुम् ॥ १५ ॥ प्रजापतिर्वै रजसः पूर्वस्यान्दिशि विश्रुतम् ॥ पुत्रं नाम्ना सुधामानं
राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥ १६ ॥ पश्चिमायां दिशि तथा रजसः पुत्रमच्युतम् ॥ केतुमन्तं महात्मानं राजानं सोऽभ्यषेचयत् ॥ १७ ॥ मनु
ष्याणामधिपतिं चक्रे चैव सुतं मनुम् ॥ तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ॥ यथाप्रदेशमद्यापि धर्मेण परिपाल्यते ॥ १८ ॥ स्वायम्भुवेऽन्तरे
पूर्वं ब्रह्मणा तेऽभिषेचिताः ॥ नृपा ह्येतेऽभिषिच्यन्ते मनवो ये भवन्ति वै ॥ १९ ॥ मन्वन्तरेष्वतीतेषु गता ह्येतेषु पार्थिवाः ॥ एवमन्येऽभिषिच्यन्ते
प्राप्ते मन्वन्तरे पुनः ॥ अतीतानागताः सर्वे स्मृता मन्वन्तरेश्वराः ॥ २० ॥ राजसूयेऽभिषिक्तश्च पृथुरेभिर्नरोत्तमैः ॥ वेददृष्टेन विधिना कृतो राजा
प्रतापवान् ॥ २१ ॥ एतानुत्पाद्य पुत्रांस्तु प्रजासन्तानकारणात् ॥ पुनरेव महाभागः प्रजानां पतिरीश्वरः ॥ २२ ॥ कश्यपो गोत्रकामस्तु चचार पर
मन्तपः ॥ पुत्रौ गोत्रकरौ मह्यं भवेतामित्यचिन्तयत् ॥ २३ ॥ तस्य प्रध्यायमानस्य कश्यपस्य महात्मनः ॥ ब्रह्मणोंऽशौ सुतौ पश्चात् प्रादुर्भूतौ
महौजसौ ॥ २४ ॥ वत्सारश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ ॥ वत्साराद्निध्रुवो जज्ञे रैभ्यश्च स महायशाः ॥ २५ ॥ रैभ्यस्य रैभ्या विज्ञेया निध्रुवस्य
निबोधत ॥ च्यवनस्य सुकन्यायां सुमेधाः समपद्यत ॥ २६ ॥ निध्रुवस्य तु या पत्नी माता वै कुण्डपायिनाम् ॥ असितस्यैकपर्णायां ब्रह्मिष्ठः समपद्यत ॥
॥ २७ ॥ शाण्डिल्यानां वचः श्रुत्वा देवलः सुमहायशाः ॥ निध्रुवाः शाण्डिल्या रैभ्यास्त्रयः पश्चात्तु कश्यपाः ॥ २८ ॥ वरप्रभृतयो देवा देवलस्य

धाना ब्रह्मधाना वार्त्ताश्चैव दिवाचराः ॥ निशाचरगणास्तेषां चत्वारः कविभिः स्मृताः ॥ ५५ ॥ पौलस्त्या नैर्ऋताश्चैव आगस्त्याः कौशिकास्तथा ॥ इत्येताः सप्त तेषां वै जातयो राक्षसाः स्मृताः ॥५६॥ तेषां रूपं प्रवक्ष्यामि स्वभावेन व्यवस्थितम् ॥ वृत्ताक्षाः पिङ्गलाश्चैव महाकाया महोदराः॥५७॥ अष्टदंष्ट्राः शङ्कुकर्णा ऊर्द्धरोमाण एव च ॥ आकर्णदारितास्याश्च मुञ्जधूम्रोर्द्धमूर्द्धजाः ॥५८॥ स्थूलशीर्षाः सिताभाश्च ह्रस्वकाश्च प्रवाहुकाः ॥ ताम्रास्या लम्बजिह्वौष्ठा लम्बभ्रूस्थूलनासिकाः ॥ ५९ ॥ नीलाङ्गा लोहितग्रीवा गम्भीराक्षा विभीषणाः ॥ महाघोरस्वराश्चैव विकटा बद्धपिण्डिकाः ॥ ६० ॥ स्थूलाश्च तुङ्गनासाश्च शिलासंहनना दृढाः ॥ दारुणाभिजनाः क्रूराः प्रायशः क्लिष्टकर्मिणः ॥ ६१॥ सकुण्डलाङ्गदापीडा मुकुटोष्णीषधारिणः ॥ विचित्रवस्त्राभरणाश्चित्रस्रगनुलेपनाः॥६२॥अन्नादाः पिशितादाश्च पुरुषादाश्च ते स्मृताः ॥ इत्येतद्रूपसाधर्म्यं राक्षसानां बुधैः स्मृतम् ॥ न समस्तबलं बुद्धं यतो मायाकृतं हि तत् ॥६३॥ पुलहस्य मृगाः पुत्राः सर्वे व्यालाश्च दंष्ट्रिणः ॥ भूताः पिशाचाः सर्पाश्च भ्रमरा हस्तिनस्तथा॥ ६४॥ वानराः किन्नराश्चैव यमकिम्पुरुषास्तथा ॥ येऽन्ये चैव परिक्रान्ता मायाक्रोधवशानुगाः ॥ ६५ ॥ अनपत्यः क्रतुस्तस्मिन् स्मृतो वैवस्वतेऽन्तरे ॥ न तस्य पुत्रः पौत्रो वा तेजः सङ्क्षिप्य वा स्थितः ॥ ६६ ॥ अत्रेर्वंशं प्रवक्ष्यामि तृतीयस्य प्रजापतेः ॥ तस्य पत्न्यश्च सुन्दर्य्यो दशैवासन्पतिव्रताः ॥ ६७ ॥ भद्राश्वस्य घृताच्यां वै दशाप्सरसि सूनवः ॥ भद्रा शूद्रा च मद्रा च शलदा मलदा तथा ॥ ६८ ॥ वेला खला च सतैता या च गोचपला स्मृता ॥ तथा मानरसा चैव रत्नकूटा च ता दश ॥ ६९ ॥ आत्रेयवंशकृत्तासां भर्त्ता नाम्ना प्रभाकरः ॥ भद्रायां जनयामास सोमं पुत्रं यशस्विनम् ॥ ७० ॥ स्वर्भानुना हते सूर्य्ये पतमानो दिवो महीम् ॥ तमोऽभिभूते लोकेऽस्मिन् प्रभा येन प्रवर्त्तिता ॥ ७१ ॥ स्वस्ति तेऽस्त्विति चोक्तः स पतन्निह दिवाकरः ॥ ब्रह्मर्षेर्वचनात्तस्य न पपात दिवो महीम् ॥ ७२ ॥ अत्रिश्रेष्ठानि गोत्राणि यश्चकार महातपाः ॥ यज्ञेष्वत्रिवनश्चैव सुरैर्यश्च प्रवर्त्तितः ॥ ७३ ॥ सतास्वजनयत् पुत्रानात्मतुल्याननामकान् ॥ दश तास्वेव महता तपसा भावितप्रभाः ॥ ७४ ॥ स्वस्त्यात्रेया इति ख्याता ऋषयो वेदपारगाः ॥ तेषां विख्यातयशसौ ब्रह्मिष्ठौ सुमहौजसौ ॥ ७५ ॥ दत्तात्रेयस्तस्य ज्येष्ठो दुर्वासास्तस्य चानुजः ॥ यवीयसी सुता तस्यामबला ब्रह्मवादिनी ॥ अत्राप्युदाहरन्तीमं श्लोकं पौराणिकाः पुरा ॥ ७६ ॥ अत्रेः पुत्रं महात्मानं शान्तात्मानमकल्मषम् ॥ दत्तात्रेयं तनुं विष्णोः पुराणज्ञाः प्रचक्षते ॥ ७७ ॥ तस्य गोत्रान्वये जाताश्चत्वारः प्रथिता भुवि ॥ श्यामाश्च मुद्गलाश्चैव बलारकगविष्ठिराः ॥ एते नृणान्तु चत्वारः स्मृताः पक्षा महौजसाम् ॥ ७८ ॥ कश्यपान्नारदश्चैव पर्वतोऽरुन्धती तथा ॥ जज्ञिरे च त्वरुन्धत्यास्तान्निबोधत सत्तमाः ॥ ७९ ॥

के चेह पितरो नाम कान् यजामो वयं पुनः ॥ देवा अपि पितॄन् स्वर्गे यजन्तीति हि नः श्रुतम् ॥ १२ ॥ एतदिच्छामि वै श्रोतुं विस्तरेण बहुश्रुत ॥
स्पष्टाभिधानमर्थं वै तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १३ ॥ ऋषीणान्तु वचः श्रुत्वा सूतस्तत्त्वार्थदर्शिवान् ॥ आचचक्षे यथाप्रश्नं ऋषीणां मानसं ततः ॥ १४ ॥
॥ सूत उवाच ॥ ॥ अत्र वो वर्णयिष्यामि यथाप्रश्नं यथाश्रुतम् ॥ मन्वन्तरेषु जायन्ते पितरो देवसूनवः॥१५॥अतीतानागते ज्येष्ठाः कनिष्ठाः क्रमशस्तु
ते ॥ देवैः सार्द्धं पुरातीताः पितरो येऽन्तरेषु वै ॥ वर्त्तन्ते साम्प्रतं ये तु तान्वै वक्ष्यामि निश्चयात् ॥ १६ ॥ श्राद्धश्चैषां मनुष्याणां श्राद्धमेव प्रवर्त्तते ॥
देवानसृजत ब्रह्मा नायक्षन्निति वै पुनः ॥ तमुत्सृज्य तदात्मानमसृजंस्ते फलार्थिनः ॥ १७ ॥ ते शप्ता ब्रह्मणा मूढा नष्टसंज्ञा भविष्यथ ॥
न स्म किञ्चिद्विजानन्ति ततो लोको ह्यमुह्यत॥१८॥ ते भूयः प्रणताः सर्वे याचन्ति स्म पितामहम् ॥ अनुग्रहाय लोकानां पुनस्तानब्रवीत्प्रभुः ॥ १९ ॥
प्रायश्चित्तं चरध्वं वै व्यभिचारो हि यः कृतः ॥ पुत्रान्स्वान्परिपृच्छध्वं ततो ज्ञानमवाप्स्यथ ॥ २० ॥ ततस्ते स्वान्सुतांश्चैव प्रायश्चित्तजिघृक्षवः ॥
अपृच्छन् संयतात्मानो विधिवच्च मिथो मिथः ॥ २१ ॥ तेभ्यस्ते नियतात्मानः पुत्राः शंसुरनेकधा ॥ प्रायश्चित्तानि धर्मज्ञा वाङ्मनःकर्म्मजानि तु॥२२॥
ते पुत्रानब्रुवन्प्रीता लब्धसंज्ञा दिवौकसः ॥ यूयं वै पितरोऽस्माकं ये वयं प्रतिबोधिताः ॥ धर्मज्ञानञ्च कामश्च को वरो वः प्रदीयताम् ॥ २३ ॥
पुनस्तानब्रवीद्ब्रह्मा यूयं वै सत्यवादिनः ॥ तस्माद्यदुक्तं युष्माभिस्तत्तथा न तदन्यथा ॥ २४ ॥ उक्तञ्च पितरोऽस्माकमिति वै तनयाः स्वकाः ॥
पितरस्ते भविष्यन्ति तेभ्योऽयं दीयतां वरः ॥ २५ ॥ तेनैव वचसा पुत्रा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ पुत्राः पितृत्वमाजग्मुः पुत्रत्वं पितरः पुनः ॥ २६ ॥
तस्मात्ते पितरः पुत्राः पितृत्वे तेषु तत्स्मृतम् ॥ एवं स्मृत्वा पितॄन् पुत्रान्पुत्रांश्च पितरस्तथा ॥ व्याजहार पुनर्ब्रह्मा पितॄनात्मविवृद्धये ॥ २७ ॥
यो ह्यनिष्ट्वा पितॄञ्छ्राद्धे क्रियाङ्काश्चित्करिष्यति ॥ राक्षसा दानवाश्चैव फलं प्राप्स्यन्ति तस्य तत् ॥ २८ ॥ श्राद्धैराप्यायिताश्चैव पितरः सोममव्ययम् ॥
आप्याय्यमाना युष्माभिर्वर्द्धयिष्यन्ति नित्यशः ॥ २९ ॥ श्राद्धैराप्यायितः सोमो लोकानाप्याययिष्यति ॥ कृत्स्नं सपर्व्वतवनं जङ्गमाजङ्गमैर्वृतम्॥
॥ ३० ॥ श्राद्धानि पुष्टिकामाश्च ये करिष्यन्ति मानवाः ॥ तेभ्यः पुष्टिं प्रजाश्चैव दास्यन्ति पितरः सदा ॥ ३१ ॥ श्राद्धे येभ्यः प्रदास्यन्ति त्रीन् पिडा
न्नामगोत्रतः ॥ सर्वत्र वर्त्तमानास्ते पितरः प्रपितामहम् ॥ तेषामाप्याययिष्यन्ति श्राद्धदानेन वै प्रजाः ॥ ३२ ॥ एवमाज्ञा कृता पूर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठि
ना ॥ तेनैतत्सर्वथा सिद्धं दानमध्ययनन्तपः ॥ ३३ ॥ ते तु ज्ञानप्रदातारः पितरो वो न संशयः ॥ इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरः पुनः ॥
अन्योन्यं पितरो ह्येते देवाश्च पितरश्च ह ॥ ३४ ॥ एतद्ब्रह्मवचः श्रुत्वा सूतस्य विहितात्मनः ॥ पप्रच्छुर्मुनयो भूयः सूतं तस्मार्द्धुत्तरम् ॥ ३५ ॥

मूर्त्तयः॥६१॥व्यक्ताव्यक्तं परित्यज्य महायोगबलेन वा ॥ नश्यन्त्युल्केव गगने क्षीणविद्युत्प्रभेव च ॥६२॥ उत्सृज्य देहजातानि महायोगबलेन च ॥ निरा
ख्योपाख्यतां यान्ति सरितः सागरे यथा॥६३॥क्रियया गुरुपूजाभिर्यें च कुर्वन्ति नित्यशः ॥ ताभिराप्याययन्त्येते पितरो योगवर्द्धनाः॥६४॥श्राद्धे प्री
ताः पुनः सोमं पितरो योगमास्थिताः ॥ आप्याययन्ति योगेन त्रैलोक्यं येन जीवति ॥६५॥ तस्माच्छ्राद्धानि देयानि योगिभ्यो यत्नतः सदा ॥ पितॄणां
हि बलं योगो योगात्सोमः प्रवर्त्तते ॥ ६६ ॥ सहस्रशस्तु विप्रान्वै भोजयेद्यावदागतान् ॥ एकस्तु योगवित्प्रीतः सर्व्वानर्हति तच्छृणु ॥ ६७ ॥
कल्पितानां सहस्रेण स्नातकानां शतेन च ॥ योगाचार्य्येण यद्भुक्तं त्रायते महतो भयात् ॥ ६८ ॥ गृहस्थानां सहस्रेण वानप्रस्थशतेन च ॥
ब्रह्मचारिसहस्रेण योगी ह्येको विशिष्यते ॥ ६९ ॥ नास्तिको वा विकर्मा वा सङ्कीर्णस्तस्करोऽपि वा ॥ नान्यत्र कारणं दानं योगे
ष्वाह प्रजापतिः ॥ ७० ॥ पितरस्तस्य तुष्यन्ति सुवृष्टेनेव कर्षकाः ॥ पुत्रो वाप्यथ वा पौत्रो ध्यानिनं भोजयिष्यति ॥ ७१ ॥ अलाभे
ध्यानिभिक्षूणां भोजयेद्ब्रह्मचारिणौ ॥ तदलाभेप्युदासीनं गृहस्थमपि भोजयेत् ॥ ७२ ॥ यस्तिष्ठेदेकपादेन वायुभक्षः शतं समाः ॥ ध्यान
योगी परस्तस्मादिति ब्रह्मानुशासनम् ॥ ७३ ॥ सिद्धा हि विप्ररूपेण चरन्ति पृथिवीमिमाम् ॥ तस्मादतिथिमायान्तमभिगच्छेत्कृताञ्जलिः ॥ ७४ ॥
पूजयेच्चार्घ्यपात्रेण वेश्मना भोजनेन च ॥ ऊर्व्वीं सागरपर्य्यन्तां देवा योगेश्वराः सदा ॥ नानारूपैश्चरन्त्येते प्रजा धर्म्मेण पालयन् ॥ ७५ ॥
तस्माद्दद्याच्च वै दानं विप्रायातिथये नरः ॥ प्रदानानि प्रवक्ष्यामि फलञ्चैषां तथैव च ॥७६॥अश्वमेधसहस्रेण राजसूयशतेन च॥पुण्डरीकसहस्रेण योगि
ष्वावसथो वरम्॥७७॥आद्य एष गणः प्रोक्तः पितॄणाममितौजसाम् ॥ भावयन्सप्तकालान्वै स्थित एष गणस्तदा ॥ ७८ ॥ अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि सर्व्वान्
पितृगणान्पुनः ॥ सन्ततिं संस्थितिञ्चैव भावनाञ्च यथाक्रमम्॥७९॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धप्रक्रियारम्भो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १०॥छ॥
॥ सूत उवाच ॥ सप्त मेधावतां श्रेष्ठाः स्वर्गे पितृगणाः स्मृताः॥चत्वारो मूर्तिमन्तश्च त्रयस्तेषाममूर्त्तयः॥तेषां लोकविसर्गन्तु कीर्त्तयिष्ये निबोधत॥१॥
या वै दुहितरस्तेषां दौहित्राश्चैव ये स्मृताः ॥धर्म्ममूर्त्तिधरास्तेषां ये त्रयः परमा गणाः॥२॥नामानि लोकसर्गञ्च तेषां वक्ष्ये समासतः॥ लोका विरजसो
नाम्ना यत्र तिष्ठन्ति भास्वराः॥३॥अमूर्त्तयः पितृगणाः पुत्रास्ते वै प्रजापतेः ॥ विरजस्य द्विजाः श्रेष्ठा वैराजा इति विश्रुताः ॥ एष वै प्रथमः कल्पो वैरा
जानां प्रकीर्त्तितः॥४॥तेषान्तु मानसी कन्या मेना नाम महागिरेः॥पत्नी हिमवतः शुभ्रा यस्यां मैनाक उच्यते॥५॥जातः सर्व्वौषधिधरः सर्वरत्नाकरात्म
वान्॥पर्वतः प्रवरः पुण्यः क्रौञ्चस्तस्यात्मजोऽभवत्॥६॥ तिस्रः कन्यास्तु मेनायां जनयामास शैलराट् ॥ अपर्णामेकपर्णाञ्च तृतीयामेकपाटलाम् ॥७॥

तस्मिञ्जाते महाभागे कुमारे जाह्नवीसुते ॥ विमानयानैराकाशं पतत्रिभिरिवावृतम् ॥ ३४ ॥ देवदुन्दुभयो नेदुराकाशे मधुरस्वराः ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षञ्च खचराः सिद्धचारणाः ॥ ३५ ॥ जगुर्गन्धर्व्वमुख्याश्च सर्व्वशस्तत्र तत्र ह ॥ यक्षा विद्याधराः सिद्धाः किन्नराश्चैव सर्वशः ॥ ३६ ॥ महानाग सहस्राणि प्रवराश्च पतत्रिणः ॥ उपतस्थुर्महाभागमाग्नेयं शङ्करात्मजम् ॥ प्रभावेण तदा तेन दैत्यदानवराक्षसाः ॥ ३७ ॥ सह सप्तर्षिभार्य्याभिरादावेवाग्निसम्भवः ॥ अभिषेकप्रयाताभिर्दृष्टो वर्ज्यं त्वरुन्धतीम् ॥ ३८ ॥ ताभिः स बालार्कनिभो रौद्रः परिवृतः प्रभुः ॥ स्निह्यमानाभिरत्यर्थं स्वकाभिरिव मातृभिः ॥ ३९ ॥ युगपत्सर्वदेवीर्हि दिदृक्षुर्जाह्नवीसुतः ॥ षण्मुखो व्यसृजच्छ्रीमांस्तासां प्रीत्या महाद्युतिः ॥ ४० ॥ श्रीमान् कमलपत्राक्षस्तरुणादित्य सन्निभः ॥ येन जातेन लोकानामाक्षेपस्तेजसा कृतः ॥ ४१ ॥ तेन जातेन महता देवानामसहिष्णवः ॥ स्कन्दिता दानवगणास्तस्मात्स्कन्दः प्रतापवान् ॥ ४२ ॥ कृत्तिकाभिस्तु यस्मात् संवर्द्धितः स पुरातनः ॥ कार्त्तिकेय इति ख्यातस्तस्मादसुरसूदनः ॥ ४३ ॥ जृम्भतस्तस्य दैत्यारेर्ज्वालामालाकुलात्तदा ॥ मुखाद्विनिर्गता तस्य स्वशक्तिरपराजिता ॥ ४४ ॥ क्रीडार्थञ्चैव स्कन्दस्य विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ गरुडादिति सृष्टौ हि पक्षिणौ हि प्रभद्रकौ ॥ ४५ ॥ मयूरः कुक्कुटश्चैव पताका चैव वायुना ॥ यस्य दत्ता सरस्वत्या महावीणा महास्वना ॥ अजः स्वयम्भुवा दत्तो मेषो दत्तश्च शम्भुना ॥ ४६ ॥ मायाविहरणे विप्रा गिरौ क्रौञ्चे निपातिते ॥ तारके चासुरवरे समुदीर्णे निपातिते ॥ ४७ ॥ सेन्द्रोपेन्द्रैर्महाभागैर्देवैरग्निसुतः प्रभुः ॥ सेनापत्येन दैत्यारिरभिषिक्तः प्रतापवान् ॥ ४८ ॥ देवसेनापतिस्त्वेवं पठ्यते नरनायकः ॥ देवारिस्कन्दनः स्कन्दः सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ॥ ४९ ॥ प्रमथैर्विविधैर्देवैस्तथा भूतगणैरपि ॥ मातृभिर्विविधाभिश्च विनायकगणैस्तथा ॥ ५० ॥ सा त्वपश्यद्विमानानि पतन्ती सा दिवश्च्युता ॥ त्रसरेणुप्रमाणानि तेष्वपश्यच्च्युतानपि तॄन् ॥ ५१ ॥ सुसूक्ष्मानपरित्यक्तानग्नीनाग्निष्विवाहितान् ॥ त्रायध्वमित्युवाचाथ पतन्ती तानवाक्शिराः ॥ ५२ ॥ तैरुक्ता सा तु माभैषीरित्युक्ताधिष्ठिताभवत् ॥ ततः प्रासादयत्सा वै पितॄंस्तान् दीनया गिरा ॥ ५३ ॥ ऊचुस्ते पितरः कन्यां भ्रष्टैश्वर्य्यां व्यतिक्रमात् ॥ भ्रष्टैश्वर्य्या स्वदोषेण तपसि त्वं शुचिस्मिते ॥ ५४ ॥ यैः क्रियन्ते च कर्म्माणि शरीरैरिह दैवतैः ॥ तैरेव तत्कर्म्मफलं प्राप्नुवन्तीह देवताः ॥ ५५ ॥ सद्यः फलन्ति कर्म्माणि देवत्वे प्रेत्य मानुषे ॥ तस्मादमावस्वपत्यत्वं प्रेत्य प्राप्स्यसे फलम् ॥ ५६ ॥ इत्युक्तया वै पितरः पुनस्ते तु प्रसादिताः ॥ ध्यात्वा प्रसादं सञ्चक्रुस्तस्यास्तेत्वनुकम्पया ॥ ५७ ॥ अवश्यम्भाविनं दृष्ट्वा ह्यर्थमूचुस्ततः सुराः ॥ सोमपाः पितरः कन्यां राज्ञश्चैव ह्यमावसोः ॥ ५८ ॥ उत्पन्नस्य पृथिव्यान्तु मानुषत्वे महात्मनः ॥ कन्या भूत्वा त्विमांल्लोकान्पुनः प्राप्स्यसि स्वानिति ॥ ५९ ॥ अष्टाविंशे भवित्री त्वं द्वापरे मत्स्ययोनिजा ॥ अस्यैव राज्ञो दुहित।

न्नस्य पुलहादुत्पन्नास्तस्य वै पुनः ॥ ८६ ॥ लोकेष्वेतेषु वर्त्तन्ते कामगेषु विहङ्गमाः ॥ एतान्वैश्यगणाः श्राद्धे भावयन्ति फलार्थिनः ॥ ८७ ॥
एतेषां मानसी कन्या विरजा नाम विश्रुता ॥ ययातेर्जननी साध्वी पत्नी सा नहुषस्य तु ॥ ८८ ॥ सुकाला नाम पितरो वसिष्ठस्य प्रजापतेः ॥ हिर
ण्यगर्भस्य सुताः शूद्रास्तान्भावयन्त्युत ॥ ८९ ॥ मानसा नाम ते लोका वहन्ते यत्र ते दिवि ॥ एतेषां मानसी कन्या नर्मदा सरितां वरा ॥ ९० ॥
सा भावयति भूतानि दक्षिणापथगामिनी ॥ जननी त्रसदस्योर्हि पुरुकुत्सपरिग्रहः ॥ ९१ ॥ एतेषामभ्युपगमान्मातुर्मन्वन्तरेश्वरः ॥ मन्वन्त
रादौ श्राद्धानि प्रवर्त्तयति सर्वशः ॥ ९२ ॥ पितॄणामानुपूर्व्येण सर्वेषां द्विजसत्तमाः ॥ तस्मादिह स्वधर्मेण श्राद्धं देयन्तु श्रद्धया ॥ ९३ ॥ सर्वे
षां राजतैः पात्रैरपि वा रजतान्वितैः ॥ दत्तं स्वधां पुरोधाय तथा प्रीणाति वै पितॄन् ॥ ९४ ॥ सोमस्याप्यायनं कृत्वा ह्यग्नेर्वैवस्वतस्य च ॥ उद
गायनश्चाग्नौ च अश्वमेधन्तदाप्नुयात् ॥ ९५ ॥ पितॄन् प्रीणाति वै भक्त्या पितरः प्रीणयन्ति तम् ॥ पितरः पुष्टिकामस्य प्रजाकामस्य वा पुनः ॥
पुष्टिं प्रजाश्च स्वर्गञ्च प्रयच्छन्ति न संशयः ॥९६॥ देवकार्य्यादपि सदा पितृकार्य्यं विशिष्यते ॥ देवताभ्यः पितॄणां हि पूर्व्वमाप्यायनं स्मृतम् ॥९७॥
न हि योगगतिः सूक्ष्मा पितॄणामपि तृप्तयः ॥ तपसा हि प्रसिद्धेन दृश्यन्ते मांसचक्षुषा ॥ ९८ ॥ इत्येते पितरश्चैव लोका दुहितरश्च वै ॥ दौहि
त्रा यजमानाश्च प्रोक्ता ये भावयन्ति तान् ॥ ९९ ॥ चत्वारो मूर्त्तिमन्तश्च त्रयस्तेषाममूर्त्तयः ॥ तेभ्यः श्राद्धानि सत्कृत्य देवाः कुर्व्वन्ति यत्नतः ॥
॥ १०० ॥ भक्ताः प्राञ्जलयः सर्वे सेन्द्रास्तद्गतमानसाः ॥ विश्वे च सिकताश्चैव पृश्निजाः शृङ्गिणस्तथा ॥१०१॥ कृष्णाः श्वेतास्त्वजाश्चैव विधिवत्पूजय
न्त्युत ॥ प्रजास्ता वातरशना दिवाकीर्त्त्यास्तथैव च ॥१०२॥ लेखाश्च मरुतश्चैव ब्रह्माद्याश्च दिवौकसः ॥ अत्रिभृग्वङ्गिराद्याश्च ऋषयः सर्व्व एव च ॥
॥ १०३ ॥ यक्षा नागाः सुपर्णाश्च किन्नरा राक्षसैः सह ॥ पितॄंस्त्वपूजयन्सर्वे नित्यमेव फलार्थिनः ॥ १०४ ॥ एवमेते महात्मानः श्राद्धे सत्कृत्य पूजि
ताः ॥ सर्वान्कामान्प्रयच्छन्ति शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १०५ ॥ हित्वा त्रैलोक्यसंसारं जरामृत्युभयं तथा ॥ मोक्षं योगमथैश्वर्य्यं प्रयच्छन्ति पिता
महाः ॥ १०६ ॥ मोक्षोपायमथैश्वर्य्यं सूक्ष्मदेहाश्च देवताः ॥ कृत्स्नं वैराग्यमानन्त्यं प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥ १०७ ॥ ऐश्वर्य्यं विहितं योगमैश्वर्य्यं
वित्तमुत्तमम् ॥ योगैश्वर्य्यादृते मोक्षः कथञ्चिन्नोपपद्यते ॥ १०८ ॥ अपक्षस्यैव गमनं गगने पक्षिणो यथा ॥ वरिष्ठः सर्वधर्म्माणां मोक्षो धर्म्मः सनात
नः ॥ १०९ ॥ विमानानां सहस्राणि युक्तान्यप्सरसाङ्गणैः ॥ सर्वकामप्रसिद्धानि प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥११०॥ प्रज्ञा पुष्टिः स्मृतिर्मेधा राज्यमारोग्यमे
व च ॥ पितॄणां हि प्रसादेन प्राप्यते सुमहात्मना ॥ १११ ॥ मुक्तावैदूर्य्यवासांसि वाजिनागायुतानि च ॥ कोटिशश्चापि रत्नानि प्रयच्छन्ति पितामहाः॥

कामदान्॥२२॥मन्वादीनां सुरेशानां सूर्य्याचन्द्रमसोस्तथा॥तान्नमस्कृत्य सर्वान्वै पितॄन्कुशलदायकान्॥२३॥नक्षत्राणाञ्चरादीनां पितॄनथ पितामहान्॥ द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः॥२४॥देवर्षीणाञ्जनयितॄंश्च सर्वलोकनमस्कृतान् ॥ अभयस्य सदा दातॄन्नमस्येऽहं कृताञ्जलिः॥२५॥ प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च ॥ योगयोगेश्वरेभ्यश्च नमस्यामि कृताञ्जलिः॥२६॥ पितृगणेभ्यः सप्तभ्यो नमो लोकेषु सप्तसु ॥ स्वयम्भुवे नमश्चैव ब्रह्मणे योगचक्षुषे ॥ २७ ॥ एतदुक्तं सप्तार्चिब्रह्मर्षिगणपूजितम् ॥ पवित्रं परमं ह्येतच्छ्रीमद्रक्षोविनाशनम् ॥ २८ ॥ अनेन विधिना युक्तस्त्रीन्वरान् लभते नरः ॥ अन्नमायुः सुतांश्चैव ददते पितरो भुवि ॥ २९ ॥ भक्त्या परमया युक्तः श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ॥ सप्तार्चिषं जपेद्यस्तु नित्यमेव समाहितः ॥ सप्तद्वीपसमुद्रायां पृथिव्यामेकराड्भवेत् ॥ ३० ॥ यत्किंचित्पच्यते गेहे भक्ष्यं वा भोज्यमेव च ॥ अनिवेद्य न भोक्तव्यं तस्मिन्नायतने सदा ॥ ३१ ॥ क्रमशः कीर्त्तयिष्यामि बलिपात्राण्यतः परम् ॥ येषु यच्च फलं प्रोक्तं तन्मे निगदतः शृणु ॥ ३२ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ छ ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ पालाशं ब्रह्मवर्चस्यमश्वत्थे राज्यभावना ॥ सर्वभूताधिपत्यं च प्लक्षे नित्यमुदाहृतम्॥१॥ पुष्टिकामं च न्यग्रोधं बुद्धिं प्रज्ञां धृतिं स्मृतिम् ॥ रक्षोघ्नं च यशस्यं च काश्मर्य्यं पात्रमुच्यते ॥ २ ॥ सौभाग्यमुत्तमं लोके मधुके समुदाहृतम् ॥ फल्गुपात्रे च कुर्वाणः सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ३ ॥ परा द्युतिरथो कर्त्तुः प्राकाश्यं च विशेषतः ॥ बिल्वे लक्ष्मीस्तथा मेधा नित्यमायुष्यमेव च ॥ ॥ ४ ॥ क्षेत्रारामतडागेषु सर्वसस्येषु चैव हि ॥ वर्षेदजस्रं पर्जन्यो वेणुपात्रेषु कुर्वतः ॥ ५ ॥ एतेष्वेव सुपात्रेषु ये चैवाग्रयणं ददुः ॥ सकृदप्यत्र यज्ञानां सर्वेषां फलमुच्यते ॥ ६ ॥ पितृभ्यो यस्तु माल्यानि सुगन्धीनि च सर्वशः ॥ सदा दद्याच्छ्रिया युक्तः स विभाति दिवाकरः ॥ ७ ॥ गुग्गुलादींस्तथा धूपान् पितृभ्यो यः प्रयच्छति ॥ संयुक्तान्मधुसर्पिर्भ्यां सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ८ ॥ धूपं गन्धगुणोपेतं कान्तं पितृपरायणम् ॥ लभते स्त्रीष्वपत्यानि इह चामुत्र चोभयोः ॥ दद्यादेव पितृभ्यस्तु नित्यमेव ह्यतन्द्रितः ॥९॥ दीपं पितृभ्यः प्रयतः सदा यस्तु प्रयच्छति ॥ स लोकेऽप्रतिमं चक्षुः सदा च लभते शुभम् ॥ १० ॥ तेजसा यशसा चैव कान्त्या चैव बलेन च ॥ भुवि प्रकाशो भवति भ्राजते च त्रिविष्टपे ॥ अप्सरोभिः परिवृतो विमानाग्रे स मोदते ॥ ११ ॥ गन्धान्पुष्पाणि धूपांश्च दद्यादाज्याहुतीश्च वै ॥ फलमूलनमस्कारैः पितॄणां प्रयतः शुचिः ॥ पूर्वं कृत्वा द्विजान्पश्चात्पूजयेदन्नसम्पदा ॥ १२ ॥ श्राद्धकाले तु सततं वायुभूताः पितामहाः ॥ आविशन्ति द्विजान्दृष्ट्वा तस्मादेतद्ब्रवीमि ते ॥ १३ ॥ वस्त्रैरन्नैः प्रदानैस्तैर्भक्ष्यपेयैस्तथैव च ॥ गोभिरश्वैस्तथा ग्रामैः पूजयित्वा द्विजोत्तमान्॥१४॥ भवन्ति पितरः प्रीताः पूजितेषु द्विजातिषु ॥ तस्मादन्नेन

प्रजाकान्तिसमन्विता ॥ भवन्ति रुचिरा नित्यं विपाप्मानोऽघवर्जिताः ॥ ४२ ॥ सकृदेवास्तरेद्दर्भान् पिण्डार्थं दक्षिणामुखः ॥ प्राग्दक्षिणाग्रनियतो विधिश्चाप्यनुवक्ष्यति ॥ ४३ ॥ न दीनो वापि वा क्रुद्धो न चैवान्यमना नरः ॥ एकाग्रमाधाय मनः श्राद्धं कुर्य्यात्सदा बुधः ॥ ४४ ॥ निहन्मि सर्व्वं यदमेध्यवद्भवेद्धताश्च सर्व्वे सुरदानवा मया ॥ रक्षांसि यक्षाश्च पिशाचसङ्घा हता मया यातुधानाश्च सर्व्वे ॥ ४५ ॥ एवं पित्रे दृष्टमन्त्रं हि यस्य तस्यासुरा वर्जयन्तीह सर्व्वे ॥ यस्मिन्देशे पठ्यते एष मन्त्रस्तं वै देशं राक्षसा वर्जयन्ति ॥ ४६ ॥ अनेन विधिना नित्यं श्राद्धं कुर्य्याद्द्विजः सदा ॥ मनसा काङ्क्षितं यद्यत्तत्तद्दद्युः पितामहाः ॥ ४७ ॥ पितरो हृष्टमनसो रक्षांसि विमनांसि च ॥ भवन्त्येव कृते श्राद्धे नित्यमेव प्रयत्नतः ॥ ४८ ॥ शूद्राः श्राद्धे क्षीरचाशु बल्वजास्तरवस्तथा ॥ वारणाश्च लवाश्चैव लववर्षाश्च नित्यशः ॥ एवमादीन्यथान्यानि तृणानि परिवर्जयेत् ॥ ४९ ॥ अञ्जनाभ्यञ्जनागन्धामानुप्रलयनं तथा ॥ काशैः पुनर्भवैः कार्य्यं सर्व्वमेव फलं भवेत् ॥ ५० ॥ काशाः पुनर्भवा ये च बर्हणा उपबर्हणाः ॥ अथ ते पितरो देवा देवाश्च पितरः पुनः ॥ ५१ ॥ पुष्पगन्धादिधूपानामेष मन्त्र उदाहृतः ॥ आहृत्य दक्षिणायान्तु होमार्थं विप्रयत्नतः ॥ ५२ ॥ सोमाय वै पितृमते स्वधा अङ्गिरसे नमः ॥ अस्वर्ग्यं लौकिकं वापि जुहुयात्कर्म्मसिद्धये ॥ ५३ ॥ अन्तराधाय समिधं तथा होमो विधीयते ॥ समाहितेन मनसा प्रयताग्निः प्रयत्नतः ॥ ५४ ॥ अग्नये कव्यवाहाय स्वधा अङ्गिरसे नमः ॥ यमाय चैवाङ्गिरसे स्वधा नम इति ब्रुवन् ॥ ५५ ॥ इत्येते वै होममन्त्रा मन्त्राणामनुपूर्व्वशः ॥ दक्षिणातोऽग्नये नित्यं सोमायान्तरतस्तथा ॥ ५६ ॥ एतयोरन्तरं नित्यं जुहुयाद्वै विवस्वते ॥ उपचारं स्वधाकारं तथैवोल्लेखनञ्च यत् ॥ ५७ ॥ होमजप्ये नमस्कारः प्रोक्षणञ्च विशेषतः ॥ अञ्जनाभ्यञ्जने चैव पिण्डसंवपनं तथा ॥ ५८ ॥ अश्वमेधफलेनैव तत्स्मृतं मन्त्रपूर्व्वकम् ॥ क्रियाः सर्व्वा यथोद्दिष्टाः प्रयत्नेन समाचरेत् ॥ ५९ ॥ बहुहव्यत्वमेवाग्नौ सुसमिद्धे विशेषतः ॥ विधूमे लेलिहाने च होतव्यं कर्मसिद्धये ॥ ६० ॥ अप्रबुद्धे सधूमे च जुहुयाद्यो हुताशने ॥ यजमानो भवेदन्धः सोऽपुत्र इति नः श्रुतम् ॥ ६१ ॥ अल्पेन्धनो वा रूक्षो वा विस्फुलिङ्गश्च सर्व्वशः ॥ ज्वाला धूमोपसेव्यश्च स तु वह्निर्न सिद्धये ॥ ६२ ॥ दुर्गन्धश्चैव नीलश्च कृष्णश्चैव विशेषतः ॥ भूमिं विगाहते यत्र तत्र विद्यात्पराभवम् ॥ ६३ ॥ अर्चिष्मान् पिण्डितशिखः सर्पिःकाञ्चनसम्भवः ॥ स्निग्धः प्रदक्षिणश्चैव वह्निः स्यात्कार्य्यसिद्धये ॥ ६४ ॥ नरनारीगणेभ्यश्च पूजां प्राप्नोति शाश्वतीम् ॥ अक्षयाः पूजितास्तेन भवन्ति पितरोऽव्ययाः ॥ ६५ ॥ स्थाल्युदुम्बरपात्राणि फलानि समिधस्तथा ॥ श्राद्धे चातिपवित्राणि मेध्यानीति विशेषतः ॥ ६६ ॥ पवित्रं वा द्विजश्रेष्ठ शुद्धये जन्मकर्म्मसु ॥ पात्रेषु फलमुद्दिष्टं यन्मया श्राद्धकर्मणि ॥ ६७ ॥ तदेव कृत्स्नं विज्ञेयं समित्सु च यथाक्रमम् ॥ कृत्वा समाहितं चित्तमग्नये वै करोम्यहम् ॥ ६८ ॥

धत ॥ निर्भयं निरहङ्कारं निःशोकं निर्व्यथक्लमम् ॥ ब्रह्मस्थानमवाप्नोति सर्वकामपुरस्कृतम् ॥ १८ ॥ शूद्रेणापि प्रकर्त्तव्याः पञ्चैते मन्त्रवर्जिताः ॥
अतोऽन्यथा तु यो भुङ्क्ते स ऋणं नित्यमश्नुते ॥१९॥ ऋणञ्च भुङ्क्ते पापात्मा यः पचेदात्मकारणात् ॥ तस्मान्निर्वर्त्तयेत्पञ्च महायज्ञान्सदा बुधः ॥२०॥ नैवेद्यं
केचिदिच्छन्ति जीवत्यपि प्रयत्नतः ॥ उदकपूर्वं बलिं कुर्यादुदकुम्भं तथैव च ॥ २१ ॥ बलिं सुविदितं कुर्यादुच्चादुच्चतरं क्षिपेत् ॥ परशृङ्गगवां पूर्वं बलिं
सूक्ष्मं समुत्क्षिपेत् ॥ २२ ॥ न निवेद्यो भवेत् पिण्डः पितॄणां यस्तु जीवति ॥ इष्टेनान्नेन भक्ष्यैश्च भोजयेत यथाविधि ॥ विधानं वेदविहितमेतद्वक्ष्यामि यत्न
तः ॥२३॥ देवदेवा महात्मानो ह्येतेपि पितरो ह्युत ॥ इच्छन्ति किञ्चिदाचार्याः पश्चात् पिण्डनिवेदनम् ॥ २४ ॥ पूजनञ्चैव विप्राणां सर्वमेव हि नित्यशः ॥
तद्धि धर्मार्थकुशलानित्युवाच बृहस्पतिः ॥ २५ ॥ पूर्वं निवेदयेत्पिण्डं पश्चाद्विप्रांश्च भोजयेत् ॥ योगात्मानो महात्मानः पितरो योगसम्भवाः ॥ सोम
माप्याययन्त्येते पितरो योगमास्थिताः ॥ २६ ॥ तस्माद्दद्याच्छुचिः पिण्डान् योगिभ्यस्तत्परायणः ॥ पितॄणां हि भवेदेतत्साक्षादिव हुतं हविः ॥२७॥
ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यो योगी चाग्रासने यदि ॥ यजमानञ्च भोक्तॄंश्च नौरिवाम्भसि तारयेत् ॥ २८ ॥ असतां प्रग्रहो यत्र सताञ्चैव विमानना ॥ दण्डो देव
कृतस्तत्र सद्यः पतति दारुणः ॥ २९ ॥ हित्वागमं सधर्माणं बालिशं यत्र भोजयेत् ॥ आदिकर्म समुत्सृज्य दाता तत्र विनश्यति ॥ ३० ॥ पिण्डम
ग्नौ सदा दद्याद्भोगार्थी तु प्रयत्नतः ॥ प्रजार्थी पतये दद्यान्मध्यमं तत्र पूर्वकम् ॥ ३१ ॥ उत्तमां द्युतिमन्विच्छन्गोषु नित्यं प्रयच्छति ॥ प्रज्ञां पूजां
यशः कीर्त्तिं गोषु नित्यं प्रयच्छति ॥ ३२ ॥ प्रार्थयन्दीर्घमायुश्च वायसेभ्यः प्रयच्छति ॥ सौकुमार्यमथान्विच्छन् कुक्कुटेभ्यः प्रयच्छति ॥ ३३ ॥
एवमेतत्समुद्दिष्टं पिण्डनिर्वपणात् फलम् ॥ आकाशं शमयेद्वापि स्थितौ सुदक्षिणामुखः ॥ पितॄणां स्थानमाकाशं दक्षिणा चैव दिग्भवेत् ॥ ३४ ॥ एकं
विप्राः पुनः प्राहुः पिण्डोद्धरणमग्रतः ॥ अनुज्ञाते तु तैर्विप्रैर्वानमुद्धियतामिति ॥ ३५ ॥ पुष्पाणाञ्च फलानाञ्च भक्ष्याणामन्नतस्तथा ॥ अग्रमुद्धृत्य
सर्वेषां जुहुयाज्जातवेदसि ॥ ३६ ॥ भक्ष्यमन्नं तथा पेयमनुत्तमफलानि च ॥ हुत्वा चाग्नौ ततः पिण्डान्निर्वपेद्दक्षिणामुखः ॥ ३७ ॥ स्निग्धैर्भक्ष्यैः
सुगन्धैश्च तर्पयेत रसैस्तथा ॥ एकाग्रः पर्युपासीत प्रयतः प्राञ्जलिः स्थितः ॥ तत्परः श्रद्दधानश्च कामानाप्नोति मानवः ॥३८॥ अक्षुद्रत्वं कृतज्ञत्वं
दाक्षिण्यं सत्कृतञ्च यत् ॥ ततो यज्ञश्च दानञ्च प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥३९॥ अतः परं विधिं सौम्यं भुक्तवत्सु द्विजातिषु ॥ आनुपूर्व्येण विधिना तन्मे
निगदतः शृणु ॥४०॥ प्रोक्ष्य भूमिमथोद्धृत्य पूर्वं पितृपरायणः ॥ ततोऽत्र विकिरं कुर्यात् विधिदृष्टेन कर्मणा ॥४१॥ स्वधां वाच्य ततो विप्रा विधिवद्भूरि
दक्षिणान् ॥ अन्नशेषमनुज्ञाप्य सत्कृत्य द्विजसत्तमान् ॥ प्राञ्जलिः प्रयतश्चैव अनुगम्य विसर्जयेत् ॥ ४२ ॥ ॥इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पो नाम

स्था यत्र दृश्यन्ते वृक्षा द्यौशिरपर्व्वते ॥ पालाशाः खादिरा बिल्वा प्लक्षाश्वत्थविकङ्कताः ॥ २९ ॥ एतद्धि मण्डलं शिद्धं यज्ञीयं द्विजसत्तमाः ॥ अस्मि
न्मुक्ता जनोऽङ्गानि क्षिप्रं यात्यमरावतीम् ॥३०॥ कर्म्माणि स्वप्रयुक्तानि सिध्यन्ति प्रभवात्यये ॥ दुष्प्रसक्तानि पितृषु प्रयुक्तानि भवन्त्युत ॥ ३१ ॥
पितॄणां दुहिता पुण्या नर्मदा सरितां वरा ॥ तत्र श्राद्धानि दत्तानि अक्षयाणि भवन्त्युत ॥ ३२ ॥ माठरस्य वने पुण्ये सिद्धचारणसेविते ॥
अन्तर्द्धानं न गच्छन्ति सक्तास्तस्मिन्महागिरौ ॥ ३३ ॥ विन्ध्ये चैव गिरौ पुण्ये धर्माधर्मनिदर्शनम् ॥ पापधारां न पश्यन्ति धाराम्पश्यन्ति साध
वः ॥ ३४ ॥ तस्यां न दृश्यते पापं केषाञ्चित् पापकर्मणाम् ॥ स्पष्टा भवति सा धारा प्रायशः शुभकर्मणाम् ॥ ३५ ॥ कोशलायां
मतङ्गस्य वापी पापनिषूदनी ॥ स्नातास्तस्यां दिवं यान्ति कामचारविहङ्गमाः ॥ ३६ ॥ कुमारकोशलातीर्थं पर्व्वते पालपञ्जरे ॥
पाण्डुकूले समुद्रान्ते पण्डारकवने तथा ॥ ३७ ॥ विमले च विपापे च सत्कृत्य प्रभवेऽभये ॥ श्रीवृक्षे गृध्रकूटे च जम्बूमार्गे च नित्यशः ॥ ३८ ॥
असितस्य गुरोः पुण्ये योगाचार्यस्य धीमतः ॥ तत्रापि श्राद्धमानन्त्यमसितायाञ्च नित्यशः ॥ ३९ ॥ पुष्करेष्वक्षयं श्राद्धं तपश्चैव महाफलम् ॥
महोदधौ प्रभासे च तस्मादेवं विनिर्दिशेत् ॥ ४० ॥ देविकायां वृषो नाम कूपः सिद्धनिषेवितः ॥ समुत्पतन्ति तस्यापो गवां शब्देन नित्यशः ॥४१॥
योगेश्वरैः सदा जुष्टः सर्वपापबहिष्कृतैः ॥ दद्याच्छ्राद्धन्तु यस्तस्मिंस्तस्य वक्ष्यामि यत्फलम् ॥४२॥ अक्षयं सार्वकामीयं श्राद्धं प्रीणाति वै पितॄन् ॥
जातवेदःशिला तत्र साक्षादग्नेः सनातनी ॥ ४३ ॥ यस्त्वग्निं प्रविशेत्तत्र नाकपृष्ठे स मोदते ॥ अग्निः शान्तः पुनर्जातस्तस्मिन्दत्तं तदक्षयम् ॥
॥ ४४ ॥ दशाश्वमेधिके तीर्थे तीर्थे पञ्चाश्वमेधिके ॥ यथोद्दिष्टं फलं तेषां क्रतूनां नात्र संशयः ॥४५॥ ख्यातं हयशिरो नाम तीर्थं सद्यो वरप्रदम् ॥
श्राद्धं तत्र तदाक्षय्यं दत्त्वा स्वर्गे च मोदते ॥४६॥ श्राद्धं कुम्भे विमुच्यन्ति ज्ञेयं पापनिषूदनम् ॥ श्राद्धं तत्राक्षयं प्रोक्तं जप्यहोमतपांसि च ॥ ४७ ॥
अजतुङ्गे शुभे तीर्थे तर्पयेत्सततं पितॄन् ॥ दृश्यते पर्व्वसु च्छाया यत्र नित्यं दिवौकसाम् ॥ पृथिव्यामक्षयं दत्तं निरुजा यत्र पाण्डवाः ॥ ४८ ॥
योगेश्वरैः सदा जुष्टं सर्व्वपापबहिष्कृतैः ॥ दद्याच्छ्राद्धन्तु यस्तस्मिंस्तस्य वक्ष्यामि यत्फलम् ॥ ४९ ॥ अर्चितास्तेन वै साक्षाद्भवन्ति पितरः सदा ॥
अस्मिंल्लोके वशी यः स्यात्प्रेत्य स्वर्गे स मोदते ॥ ५० ॥ प्रायशः प्रवरः पुण्यः शिवो नाम ह्रदस्तथा ॥ तत्र व्याससरः पुण्यं दिव्यं ब्रह्मसर
स्तथा ॥५१॥ उज्जन्तः पर्व्वतः पुण्यो वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ ऋग्यजुःसामशिरसः कापोतः पुष्पसाह्वयः ॥ आख्यातो पञ्चमो वेदो सृष्ट्वा ह्येतेषु
ब्रह्मणा ॥ ५२ ॥ गत्वैतान्मुच्यते पापाद्द्विजो वह्निः सनातनः ॥ श्राद्धञ्चानन्त्यमेतेषु जप्य होमतपांसि च ॥ ५३ ॥ पुण्डरीके महातीर्थे

सिद्धैस्तु सेविता नित्यं दृश्यते नाकृतात्मभिः ॥ अनिवर्त्तनन्तु नन्दायां वेद्यां प्रागुत्तरे दिशि ॥ ७९ ॥ सिद्धक्षेत्रं तु वै जुष्टं यत्प्राप्य न निवर्त्तते ॥ महालये पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता ॥ ८० ॥ देव्यालये तपस्तप्त्वा एकपादेन ईश्वरः ॥ नीहारश्च युगन्दिव्यमुमातुंगे स्थितं जलम् ॥ ८१ ॥ उमातुङ्गे भृगोस्तुङ्गे ब्रह्मतुङ्गे महालये ॥ कादृवत्यां च शाण्डिल्यां गुहायां वामनस्य च ॥ ८२ ॥ गत्वा चैतानि पूतः स्याच्छ्राद्धमक्षयमेव च ॥ जपो होमस्तथा ध्यानं यत्किंचित्सुकृतं भवेत् ॥ ८३ ॥ ब्रह्मचर्य्यं यजन्ते वै गुरुभक्ताः शतं समाः ॥ एवमादीनि सद्यस्तां स्नात्वा प्राप्नोति सत्फलम् ॥ ८४ ॥ कुमारधारा तत्रैव दृष्टा पापप्रणाशनी ॥ यानासनं च तत्रैव सद्यः स्याद्यत् प्रदृश्यते ॥ ८५ ॥ शैलकीर्तिपुराभ्याशे कामानाप्नोति पुष्कलान् ॥ अदृश्यः सर्व्वभूतानां देववच्चरते महीम् ॥ ८६ ॥ काश्यपस्य महातीर्थं कालसर्पिरिति श्रुतम् ॥ तत्र श्राद्धानि देयानि नित्यमक्षयमिच्छिता ॥ ८७ ॥ अक्षयं तु भवेच्छ्राद्धं शालग्रामसमन्ततः ॥ दृष्ट्वा न दृश्यते तत्र प्रत्यक्षमकृतात्मना ॥ ८८ ॥ प्रत्यादेशो ह्यशिष्टानां शिष्टानाञ्च निवेशनम् ॥ तत्र चैव ह्रदे पुण्ये दिव्यो वै नागराडच्यतः ॥ ८९ ॥ पिण्डं गृह्णाति हि सतां न गृह्णात्यसतां हि सः ॥ अतिप्रदीप्तैर्भुजगैर्भोक्तुमन्नं न शक्यते ॥ ९० ॥ प्रत्यक्षं दृश्यते धर्म्मस्तीर्थयोरनयोर्द्वयोः ॥ देवदारुवने चापि चारयेस्तं निदर्शनम् ॥ ९१ ॥ विधूतानि तु पापानि दृश्यन्ते सुकृतात्मना ॥ भागीरथ्यां प्रयागे च नित्यमक्षय्यमुच्यते ॥ ९२ ॥ कालञ्जरे दशार्णायां नैमिषे कुरुजाङ्गले ॥ वाराणस्यां नगर्य्यान्तु देयं श्राद्धन्तु यत्नतः ॥ ९३ ॥ तस्यां योगेश्वरो नित्यं तत्तस्यां दत्तमक्षयम् ॥ दत्त्वा चैतेषु पूतः स्याच्छ्राद्धमानन्त्यमेव च ॥ ९४ ॥ तपो होमस्तथा ध्यानं यत् किञ्चित्सुकृतं भवेत् ॥ लौहित्ये वैतरण्यां वै स्वर्णवेद्यां तथैव च ॥ ९५ ॥ सकृदेव समुद्रान्ते दृश्यते पुण्यकर्मभिः ॥ गयायां धर्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मणस्तथा ॥ ९६ ॥ गयायां गृध्रकूटे च श्राद्धं दत्तं महाफलम् ॥ हिमञ्च पतते तत्र समन्तात् पञ्चयोजनम् ॥ ९७ ॥ भरतस्याश्रमे पुण्येऽरण्यं पुण्यतमं स्मृतम् ॥ मतङ्गस्य पदं तत्र दृश्यते मांसचक्षुषा ॥ ९८ ॥ ख्यापितं धर्म्मसर्व्वस्वं लोकस्यास्य निदर्शनम् ॥ एवं पञ्चवनं पुण्यं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम् ॥ यस्मिन्पाण्डुविशालेति तीर्थं सद्यो निदर्शनम् ॥ ९९ ॥ तुलामानैस्तथा चापैः शास्त्रैश्च विविधैस्तथा ॥ उन्मज्जन्ति तथा लग्ने ये वै पापकृतो जनाः ॥ १०० ॥ तृतीयायां तथा पादे निःस्वरे पावमण्डले ॥ महाह्रदे वै कौशिक्यां दत्तं श्राद्धं महाफलम् ॥ १०१ ॥ मुण्डपृष्ठे पदं न्यस्तं महादेवेन धीमता ॥ बहून्देवयुगांस्तप्त्वा तपस्तीव्रं सुदुश्चरम् ॥ १०२ ॥ अल्पेनाप्यत्र कालेन नरो धर्म्मपरायणः ॥ पाप्मानमुत्सृजत्याशु जीर्णत्वचमिवोरगः ॥ १०३ ॥ सिद्धानां प्रीतिजननैः पापानाञ्च भयङ्करैः ॥ लेलिहानैर्महाभोगै रक्षितन्तु दिवानिशम् ॥ १०४ ॥ नाम्ना कनकनन्दीति तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ उदीच्यां मुण्डपृष्ठस्य देवर्षिग

प्रत्याहारं पुनर्विद्धि मोक्षोपायमसंशयम् ॥ इन्द्रियाणां मनो घोरं बुद्ध्यादीनां प्रवर्त्तनम् ॥ १३१ ॥ अनाहारात्क्षयं याति विद्यादनशनं तपः ॥
निग्रहाद्बुद्धिमनसो रम्या बुद्धिस्तु जायते ॥ १३२ ॥ क्षीणेषु सर्व्वपापेषु क्षीणेष्वेवेंद्रियेषु च ॥ परिनिर्वाति शुद्धात्मा यथा वह्निर्निरिन्धनः ॥ १३३ ॥
कारणेभ्यो गुणेभ्योऽथ व्यक्ताव्यक्तस्य कृत्स्नशः ॥ वियोजयति क्षेत्रज्ञं तेभ्यो योगेन योगवित् ॥ १३४ ॥ तस्य नास्ति गतिस्थानं व्यक्ताव्यक्तं न
संशयः ॥ आसन्नः सदसन्नैव नैव किञ्चित् स्थित इति ॥ १३५ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पे तीर्थयात्रा नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥
॥१५॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि दानानि च फलानि च ॥ श्राद्धकर्म्माणि मेध्यानि वर्जनीयानि यानि च ॥१॥ हिमप्रपतने कुर्य्या
दाहरेद्वा हिमन्ततः ॥ अग्निहोत्रमतः पुण्यं परमं हि ततः स्मृतम् ॥ २ ॥ नक्तन्तु वर्जयेच्छ्राद्धं राहोरन्यत्र दर्शनात् ॥ सर्व्वस्वेनापि कर्त्तव्यं क्षिप्रं वै
राहुदर्शने ॥ ३ ॥ उपरागे न कुर्य्याद्यः पङ्के गौरिव सीदति ॥ कुर्वाणस्तूद्धरेत्पापान्मग्नान्नौरिव सागरे ॥ ४ ॥ विश्वदेवश्च सौम्यश्च बहुमांसपरं हविः ॥
विषाणं वर्जयेत्खाड्गमसूयानाशनाय वै ॥ ५ ॥ त्वष्टा वै वार्य्यमाणस्तु देवेशेन महात्मना ॥ पिबञ्छचीपतेः सोमं पृथिव्यामपतत्पुरा ॥ ६ ॥
श्यामाकास्तु तथोत्पन्नाः पित्रर्थमपि पूजिताः ॥ विप्रुषस्तस्य नासाभ्यामसक्ताभ्यां तथैव च ॥ ७ ॥ श्लेष्माणः शीतला हृद्या मधुराश्च तथेक्षवः ॥
श्यामाकैरिक्षुभिश्चैव पितॄणां सार्व्वकामिकम् ॥ कुर्य्यादाग्रयणं यस्तु स शीघ्रं सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ८ ॥ श्यामाका हस्तिनामा च पटोलं बृहतीफलम् ॥
अगस्त्यस्य शिखा तीव्रा कषायाः सर्व्व एव च ॥ ९ ॥ एवमादीनि चान्यानि स्वादूनि मधुराणि च ॥ नागरश्चात्र वै देयं दीर्घमूलकमेव च ॥ १० ॥ वं
शीकरीराः सुरसाः सर्ज्जकं भूस्तृणानि च ॥ वर्जनीयानि वक्ष्यामि श्राद्धकर्म्माणि नित्यशः ॥ ११ ॥ लशुनं गृञ्जनश्चैव पलाण्डुः पिण्डमूलकम् ॥ कर
म्भाद्यानि चान्यानि हीनानि रसगन्धतः ॥ १२ ॥ श्राद्धकर्म्माणि वर्ज्यानि कारणञ्चात्र वक्ष्यते ॥ पुरा देवासुरे युद्धे निर्जितस्य बलेः सुरैः ॥ १३ ॥ व्र
णेभ्यो विस्फुरन्तो वै पतिता रक्तबिन्दवः ॥ तत एतानि वर्ज्यानि श्राद्धकर्म्माणि नित्यशः ॥ १४ ॥ अथ वेदोक्तनिर्यासान् लवणान्यूषरणानि च ॥ श्राद्ध
कर्म्माणि वर्ज्यानि याश्च नार्यो रजस्वलाः ॥ १५ ॥ दुर्गन्धं फेनिलञ्चैव तथा वै पल्वलोदकम् ॥ न लभेद्यत्र गौस्तृप्तिं नक्तं यच्चैव गृह्यते ॥ १६ ॥ आ
विकं मार्गमौष्ट्रञ्च सर्व्वमेकशफञ्च यत् ॥ माहिषञ्चामरञ्चैव पयो वर्ज्यं विजानता ॥ १७ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि वर्ज्यान् देशान् प्रयत्नतः ॥ न द्रष्टव्य
श्च यैः श्राद्धं शौचाशौचञ्च कृत्स्नशः ॥ १८ ॥ वन्यमूलफलाहारैः श्राद्धं कुर्य्यात्तु श्रद्धया ॥ राष्ट्रमिष्टमवाप्नोति स्वर्गं मोक्षं यशस्करम् ॥ १९ ॥ अनिष्ट
शब्दसङ्कीर्णं जन्तुव्यातमथापि वा ॥ पूतिगन्धां तथा भूमिं श्राद्धकर्म्माणि वर्जयेत् ॥ २० ॥ नद्यः सागरपर्य्यन्ता द्वारं दक्षिणपूर्वतः ॥ त्रिशङ्कुं वर्जये

परमं ह्येतत् प्रत्यक्षमपि वर्त्तते ॥ अग्नौ निक्षिप्य बध्नीयाद्धस्तौ प्रक्षिप्य यत्नतः ॥ ४९ ॥ गमयेन्मस्तकं चैव ब्रह्मतीर्थं हि तत्स्मृतम् ॥ द्रव्याणां
प्रोक्षणं कार्य्यं तथैवावपनं पुनः ॥ ५० ॥ निधाय चाद्भिः सिञ्चेत तथैवाप्सु निवेशनम् ॥ अरिष्टतुमुले बिल्वं त्विङ्गुदश्वदनान्यपि ॥ ५१ ॥ विदलानाञ्च
सर्व्वेषां धर्मवच्छौचमिष्यते ॥ तथा दन्तास्थिदारूणां शृङ्गाणाञ्चावलेखनम् ॥ ५२ ॥ सर्वेषां मृन्मयानान्तु पुनर्दाह उदाहृतः ॥ मणिवज्रप्रवा
लानां मुक्ताशङ्खमणेस्तथा ॥ ५३ ॥ सिद्धार्थकानां कल्केन तिलकल्केन वा पुनः ॥ स्याच्छौचं सर्ववालानामाविकानाञ्च सर्वशः ॥ ५४ ॥ आवि
कानाञ्च सर्व्वेषां मृद्भिरद्भिर्विधीयते ॥ आद्यन्तयोस्तु शौचानामद्भिः प्रक्षालनं पुनः ॥ ५५ ॥ तथा कार्प्पासिकानाञ्च भस्मना समुदाहृतम् ॥ फलपुष्प
शलाकानां प्लावनञ्चाद्भिरिष्यते ॥ ५६ ॥ संमार्जनं प्रोक्षणञ्च भूमेश्चैवोपलेपनम् ॥ निष्क्रम्य बाह्यतो ग्रामाद्वायुपूता वसुन्धरा ॥ ५७ ॥ धनुष्मत्पक्षि
णाञ्चैव मृद्भिः शौचं विधीयते ॥ एवमेष समुद्दिष्टः शौचानां विधिरुत्तमः ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ ५८ ॥ प्रातर्गृहात्पश्चिमद
क्षिणेन इषुक्षेपश्चाक्षमात्रं पदञ्च ॥ कुर्य्यात्पुरीषं शिरोवगुण्ठ्य न च स्पृशेत्तत्र शिरः करेण ॥ ५९ ॥ शुष्कैस्तृणैर्वा काष्ठैर्वा पत्रैर्वेणुदलेन वा ॥ मृन्मयैर्भाज
नैर्वापि तिरोधाय वसुन्धराम् ॥ ६० ॥ उद्धृतोदकमादाय मृत्तिकाञ्चैव वाग्यतः ॥ दिवा उदङ्मुखः कुर्य्याद्रात्रौ वै दक्षिणामुखः ॥ ६१ ॥ दक्षिणेन च
हस्तेन गृह्णीयाद्वै कमण्डलुम् ॥ शौचञ्च वामहस्तेन गुदे तिस्रस्तु मृत्तिकाः ॥ ६२ ॥ दश चापि पुनर्दद्याद्वामहस्तक्रमेण तु ॥ द्वाभ्यां वापि पुनर्द
द्याद्धस्तानां पञ्च मृत्तिकाः ॥ ६३ ॥ मृदा प्रक्षाल्य पादौ च आचम्य च यथाविधि ॥ आपस्त्याज्यास्त्रयश्चैव सूर्य्याग्निपवनाम्भसाम् ॥ ६४ ॥ कुर्य्या
त्सान्निहितं नित्यं प्राज्ञस्तीर्थं कमण्डलुम् ॥ असत्कार्यं कार्यमेतैर्यथावत्पादधावनम् ॥ ६५ ॥ आचमनं द्वितीयेन देवकार्यं ततः परम् ॥ उपवास
स्त्रिरात्रन्तु दुष्टहस्ते ह्युदाहृतः ॥ ६६ ॥ विप्रकृष्टेन कृच्छ्रेण प्रायश्चित्तमुदाहृतम् ॥ स्पृष्ट्वा श्वानं श्वपाकं वा ततकृच्छ्रं समाचरेत् ॥ ६७ ॥ मानुषा
स्थीनि संस्पृश्य उपोष्यं शुद्धिकारणम् ॥ त्रिरात्रमुक्तं सस्नेहमेकरात्रमतोऽन्यथा ॥ ६८ ॥ कारस्कराः पुलिन्दाश्च तथान्ध्रशबरादयः ॥ पीत्वा चा
पोभूतिलये गत्वा चैव युगन्धराम् ॥ ६९ ॥ सिन्धोरुत्तरपर्य्यन्तं तथा दिव्यन्तरे शतम् ॥ पापदेशाश्च ये केचित्पापैरध्युषिता जनैः ॥ ७० ॥ शि
ष्टैश्च वर्जिता ये च ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥ गत्वा देशानपुण्यांस्तु कृत्स्नं पापं समश्नुते ॥ ७१ ॥ मनोव्यक्तिरथाग्निश्च काले चैवोपलेपनम् ॥ विख्यापन
ञ्च शौचानां नित्यमज्ञानमेव च ॥ ७२ ॥ अतोऽन्यथा तु यः कुर्य्यान्मोहाच्छौचस्य सङ्करम् ॥ पिशाचान् यातुधानांश्च फलं गच्छत्यसंशयम् ॥
॥ ७३ ॥ शौचमश्रद्दधानश्च म्लेच्छजातिषु जायते ॥ अयज्ञाश्चैव पापो वा तिर्य्यग्योनिगतोऽपि वा ॥ ७४ ॥ शौचेन मोक्षं कुर्वाणः स्वर्गवासी भवेन्नरः ॥

च्यते पापैः स्वर्गे नित्यं महीयते ॥ दशरात्रमशौचन्तु प्रोक्तं वै मृतसूतके ॥ २२ ॥ ब्राह्मणस्य विशेषेण क्षत्रिये द्वादश स्मृतम् ॥ अर्द्धं मासन्तु वैश्यस्य मासाच्छूद्रस्तु शुध्यति॥२३॥उदक्या सर्व्ववर्णानां त्रिरात्रेण तु शुद्ध्यति ॥ उदक्यां सूतिकाञ्चैव श्वानमन्त्यावसायिनम् ॥२४॥नग्नादीन् मृतहारांश्च स्पृष्ट्वाऽशौचं विधीयते ॥ स्नात्वा सचैलो मृद्भिस्तु द्वादशभिस्तु शुध्यति ॥ २५ ॥ एतदेव भवेच्छौचं मैथुने नवभिस्तथा ॥ मृदा प्रक्षाल्य हस्तौ तु कुर्य्याच्छौचविधिन्नरः ॥ २६ ॥ प्रक्षाल्य चाद्भिर्हस्तौ च स्नात्वा चैव मृदा पुनः ॥ मृदं गुह्ये ततो द्विस्तु पुनरेव मृदं बुधः ॥ २७ ॥ एवं शौचविधिर्दृष्टः सर्व्ववर्णेषु नित्यदा ॥ परिदद्यान्मृदस्तिस्रो हस्तपादावसेचनम् ॥ २८॥ आरण्यं शौचमेतत्तु ग्राम्यं वक्ष्याम्यतः परम् ॥ मृदस्तिस्रः पादयोस्तु हस्तयोस्तिस्र एव च ॥ २९ ॥ मृदः पञ्चदशामेध्ये हस्तादीनां विभागशः ॥ अनिर्णिक्ते मृदं दद्यान्मृदन्ते त्वद्भिरेव तु ॥३० ॥ कण्ठं शिरो वा प्रावृत्य रथ्यापादगतस्तु वा ॥ अकृत्वा पादयोः शौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥३१॥ प्रक्षाल्य पात्रं निःक्षिप्य आचम्याभ्युक्षणं पुनः॥ द्रव्यस्यान्यस्य तु तथा कुर्य्यादभ्युक्षणं पुनः ॥ ३२ ॥ पुष्पादीनां तृणानाञ्च प्रोक्षणं हविषान्तथा ॥ पराहृतानां द्रव्याणां निधायाभ्युक्षणं तथा ॥ ३३ ॥ प्रोक्षितन्तु हरेत् किञ्चिच्छ्राद्धे दैवे तथा पुनः ॥ उत्तरेण हरेद्देयां दक्षिणेन विसर्जयेत् ॥३४॥ विच्छिन्नं स्याद्विपर्यासे दैवे पित्र्ये तथैव च ॥ दक्षिणेन तु हस्तेन दक्षिणां वेदमालिखेत् ॥३५॥ कराभ्यामेव देवानां पितॄणां विकरं शुभम् ॥ क्षुभितस्वप्नयोश्चैव तथा मूत्रपुरीषयोः ॥ ३६ ॥ निष्ठीविते यथा व्यक्ते भुक्त्वा विपरिधाय च ॥ उच्छिष्टस्य च संस्पर्शे तथा पादावसेचने ॥३७॥ उत्सृष्टस्य सुसम्भाषे ह्यशुचिं प्रयतस्य च ॥ सन्देहेषु च सर्व्वेषु शिखां मुक्त्वा तथैव च ॥३८॥ विना यज्ञोपवीतेन मोहात्तु यद्युपस्पृशेत्॥ओष्ठस्य दन्तसंस्पर्शे दर्शने चान्त्यवासिनाम्॥३९॥जिह्वया चैव संस्पृश्य दन्तासक्तं तथैव च॥सशब्दमङ्गुलीभिश्च प्रणतश्चावलोकयन् ॥ ॥४०॥यश्चाधर्मे स्थितो मोहादाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत्॥उपविश्य शुचौ देशे प्रणतः प्रागुदङ्मुखः॥४१॥पादौ प्रक्षाल्य हस्तौ तु अन्तर्जानुरुपस्पृशेत्॥ प्रसन्नास्त्रिः पिबेच्चापः प्रयतः सुसमाहितः ॥ ४२ ॥ द्विरेव मार्जनं कुर्य्यात्सकृदभ्युक्षणं ततः ॥ खानि मूर्द्धानमात्मानं हस्तौ पादौ तथैव च ॥ ४३ ॥ अभ्युक्षणं तथा तस्य यच्चमीमांसितं भवेत् ॥ एवमाचमनं तस्य वेदा यज्ञास्तपांसि च ॥ ४४ ॥ दानानि ब्रह्मचर्य्यञ्च भवन्ति सफलास्तथा ॥ क्रियां यः कुरुते मोहादनाचम्यैव नास्तिकः ॥४५॥ भवन्ति च वृथा तस्य क्रिया ह्येता न संशयः॥ वाग्भावशुद्धनिर्णिक्तमदुष्टं वाप्यनिन्दितम् ॥४६॥ मेध्यान्येतानि ज्ञेयानि दुष्टमेभ्योविपर्य्ययः ॥ न वक्तव्यः सदा विप्रः क्षुधितो नास्ति किञ्चन ॥ ४७ ॥ तस्मै सत्कृत्य यो दद्यादयूपो यज्ञ उच्यते ॥ अस्पृष्टान्नं शृतान्नन्तु कृशवृत्तिमयाचकम् ॥४८॥ एकान्तशीलं ह्रीमन्तं सदा श्राद्धेषु भोजयेत् ॥ यो ददात्यन्तिमेभ्यश्च स ब्रह्मघ्नो दुरात्मवान् ॥४९॥

क्रयविक्रयिणौ चैव जीवितार्थं विगर्हितौ ॥ वृत्तिरेषा तु वैश्यस्य ब्राह्मणस्य तु पातकम् ॥ ७७ ॥ प्राहुर्वेदान् वेदविदो वेदान् यश्चोपजीवति ॥
उभौ तौ नार्हतः श्राद्धं पुत्रिकापतिरेव च ॥ ७८ ॥ वृथा दारांश्च योगच्छेद्यो यजेत वृथाध्वरे ॥ नार्हतस्तावपि श्राद्धं द्विजो यश्चैव नास्तिकः ॥ ७९ ॥
आत्मार्थं यः पचेदन्नं न देवातिथिकारकः ॥ नार्हतस्तावपि श्राद्धं पतितौ ब्रह्मराक्षसौ ॥ ८० ॥ स्त्रियो नक्तंपरा येषां परदाररताश्च ये ॥ अर्थकाम
रताश्चैव न ताञ्छ्राद्धेषु भोजयेत् ॥ ८१ ॥ वर्णाश्रमाणां धर्म्मेषु विरुद्धाः श्राद्धकर्म्मणि ॥ स्तेनश्च सर्वयाजी च सर्वे ते पङ्क्तिदूषकाः ॥ ८२ ॥
यश्च सूकरवद्भुङ्क्ते यश्च पाणितले द्विजः ॥ न तदश्नन्ति पितरो यश्च वामं समश्नुते ॥ ८३ ॥ स्त्रीशूद्रायानुपेताय श्राद्धोच्छिष्टं न दापयेत् ॥ यो दद्या
द्रागमोहात्तु न तद्गच्छेत्पितॄन्सदा ॥ ८४ ॥ तस्मान्न देयमुच्छिष्टं अन्नाद्यं श्राद्धकर्म्मणि ॥ अन्यत्र दधिसर्पिर्भ्यां शिष्ये पुत्राय नान्यथा ॥ ८५ ॥
अनुच्छिष्टन्तु दातव्यं अन्नाद्यं वै विशेषतः ॥ पुष्पमूलफलैर्वापि तुष्टिं गच्छन्ति चान्नतः ॥ ८६ ॥ यावन्त्यन्नानि पूतानि यावदुष्णं न मुञ्चति ॥
तावदश्नन्ति पितरो यावदश्नन्ति वाग्यताः ॥ ८७ ॥ दानं प्रतिग्रहो होमो भोजनं बलिरेव च ॥ साङ्गुष्ठेन तथा कार्य्यं नासुरेभ्यो यथा भवेत् ॥ ८८ ॥
एतान्येव च सर्व्वाणि दानादीनि विशेषतः ॥ अन्तर्जान्वविशेषेण तद्वदाचमनं भवेत् ॥ ८९ ॥ मुण्डाञ्जटिलकाषायान् श्राद्धकालेऽपि वर्ज्जयेत् ॥
शिखिभ्यो वा त्रिदण्डिभ्यः श्राद्धं यत्नात् प्रदापयेत् ॥ ९० ॥ ये तु व्रते स्थिता नित्यं ज्ञानिनो ध्यानिनस्तथा ॥ देवभक्ता महात्मानः पुनीयुर्दर्शना
दपि ॥ ९१ ॥ सर्व्वं योगेश्वरैर्व्याप्तं त्रैलोक्यं वै निरन्तरम् ॥ तस्मात् पश्यन्ति ते सर्वं यत्किञ्चिज्जगतीगतम् ॥ ९२ ॥ व्यक्ताव्यक्तं वशीकृत्य
सर्व्वस्यापि च यत्परम् ॥ ९३ ॥ सदसच्चेति यैर्दृष्टं सदसच्च महात्मनाम् ॥ ९३ ॥ सर्व्वज्ञानानि दृष्टानि मोक्षादीनि महात्मनाम् ॥ तस्मात्तेषु
सदासक्तः प्राप्नोत्यनुत्तमं शुभम् ॥ ९४ ॥ ऋचो हि यो वेद स वेद वेदान् यजूंषि यो वेद स वेद यज्ञम् ॥ सामानि यो वेद स वेद ब्रह्म यो मा
नसं वेद स वेद सर्व्वम् ॥ ९५ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पे ब्राह्मणपरीक्षा नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ छ ॥
॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि दानानि च फलानि च ॥ तारणं सर्व्वभूतानां स्वर्गमार्गं सुखावहम् ॥ १ ॥ लोके श्रेष्ठतमं स्वर्ग्यमात्मनश्चा
पि यत् प्रियम् ॥ सर्व्वं पितॄणां दातव्यं तेषामेवाक्षयार्थिना ॥ २ ॥ जाम्बूनदमयं दिव्यं विमानं सूर्य्यसन्निभम् ॥ दिव्याप्सरोभिः सङ्कीर्णमन्नदो लभते फ
लम् ॥ ३ ॥ आच्छादनन्तु यो दद्यादाहतं श्राद्धकर्म्मणि ॥ आयुः प्रकाममैश्वर्य्यं रूपञ्च लभते सुतम् ॥ ४ ॥ उपवीतन्तु यो दद्याच्छ्राद्धकालेषु धर्म
वित् ॥ पानञ्च सर्वविप्राणां ब्रह्मदानस्य यत् फलम् ॥ ५ ॥ कृतं विप्रेषु यो दद्याच्छ्राद्धकाले कमण्डलुम् ॥ मधुक्षीरस्रवा धेनुर्दातारमुपतिष्ठति ॥ ६ ॥

प्रवेणी मृगलोमकम् ॥ ३४ ॥ दानान्येतानि विप्रेभ्यो भोजयित्वा यथाविधि ॥ प्राप्नोति श्रद्धयावन्तु वाजपेयशतं फलम् ॥ ३५ ॥ बह्व्यो नार्य्यः सुरूपास्तु पुत्रा भृत्याश्च किङ्कराः ॥ वशे तिष्ठन्ति भूतानि अस्मिँल्लोके त्वनामयम् ॥ ३६ ॥ कौशेयं क्षौमकार्पासं दुकूलसहितं तथा ॥ श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यात् कामानाप्नोति पुष्कलान् ॥ ३७ ॥ अलक्ष्मीं विनुदत्याशु तमः सूर्य्योदये यथा ॥ भ्राजते स विमानाग्रे नक्षत्रेष्विव चन्द्रमाः ॥ ३८ ॥ वासो हि सर्वदैवत्यं सर्वदेवैस्त्वभिष्टुतम् ॥ वस्त्राभावे क्रिया नास्ति यज्ञा वेदास्तपांसि च ॥ ३९ ॥ तस्माद्वस्त्राणि देयानि श्राद्धकाले विशेषतः ॥ तानि सर्वाण्यवाप्नोति यज्ञवेदतपांसि च ॥ ४० ॥ नित्यं श्राद्धेषु यो दद्यात् प्रयतस्तत्परायणः ॥ सर्वान् कामानवाप्नोति सर्वं राज्यं तथैव च ॥ ४१ ॥ सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते ॥ भक्ष्यान् धानाः करम्भांश्च पिष्टकान् घृतशर्कराः ॥ ४२ ॥ कृशरान्मधुपर्कञ्च पयः पायसमेव च ॥ स्निग्धांश्च पूपान् यो दद्यादग्निष्टोमस्य यत् फलम् ॥ ४३ ॥ दधि गव्यमसंसृष्टं भक्ष्या नानाविधास्तथा ॥ तदन्नं शोचति श्राद्धे वर्षासु च मघासु च ॥ ४४ ॥ घृतेन भोजयेद्विप्रान् घृतं भूमौ समुत्सृजेत् ॥ गयायां हस्तिनश्चैव दत्त्वा श्राद्धे न शोचति ॥ ४५ ॥ ओदनं पायसं सर्पिर्मधुमूलफलानि च ॥ भक्ष्यांश्च विविधान्दत्त्वा प्रेत्य चेह च मोदते ॥ ४६ ॥ शर्कराक्षीरसंयुक्तं पृथुकं नित्यमक्षयम् ॥ यश्च संवत्सरं प्रीत्या कृसरैर्मसुरेण च ॥ ४७ ॥ सक्तुलाजास्तथा पूपाः कुल्माषव्यञ्जनैस्तथा ॥ सर्पिःस्निग्धानि हृद्यानि दध्ना सक्तूंस्तु भोजयेत् ॥ श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यात् पद्मानि लभते निधिम् ॥ ४८ ॥ नवसस्यानि यो दद्याच्छ्राद्धे सत्कृत्य यत्नतः ॥ सर्वभोगानवाप्नोति पूज्यते च दिवं गतः ॥ ४९ ॥ भक्ष्यभोज्यानि चोष्याणि पेयलेह्यवराणि च ॥ सर्वश्रेष्ठानि यो दद्यात् सर्वश्रेष्ठो भवेन्नरः ॥ ५० ॥ वैश्वदेवं च सौम्यं च खाड्गमांसं परं हविः ॥ विषाणं वर्जयेत् खाड्गमसूयां नाशयामहे ॥ ५१ ॥ भोजनेऽथासनं दद्यादतिथिभ्यः कृताञ्जलिः ॥ सर्वयज्ञक्रियाणां स फलं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ५२ ॥ क्षिप्रमत्युष्णमक्लिष्टं दद्याच्चान्नं बुभुक्षते ॥ व्यञ्जनं च तथा स्निग्धं भक्त्या सत्कृत्य यत्नतः ॥ ५३ ॥ तरुणादित्यसङ्काशं विमानं हंसवाहनम् ॥ अन्नदो लभते तिस्रः कल्पकोटीस्तथैव च ॥ ५४ ॥ अन्नदानात्परं दानं विद्यते नेह किञ्चन ॥ अन्नाद्भूतानि जायन्ते जीवन्ति च न संशयः ॥ ५५ ॥ जीवदानात् परं दानं न किञ्चिदिह विद्यते ॥ अन्नैर्जीवति त्रैलोक्यमन्नस्यैव हि तत्फलम् ॥ ५६ ॥ अन्ने लोकाः प्रतिष्ठन्ति लोकदानस्य तत्फलम् ॥ अन्नं प्रजापतिः साक्षात्तेन सर्वमिदं ततम् ॥ तस्मादन्नसमं दानं न भूतं न भविष्यति ॥ ५७ ॥ यानि रत्नानि मेदिन्यां वाहनानि स्त्रियस्तथा ॥ क्षिप्रं प्राप्नोति तत् सर्वं पितृभक्तो हि मानवः ॥ ५८ ॥ प्रतिश्रयं सदा दद्यादतिथिभ्यः कृताञ्जलिः ॥ देवास्ते संप्रतीक्षन्ते दिव्यातिथ्यैः सहस्रशः ॥ ५९ ॥

वादित्रगीतैश्च ह्यप्सरोभिः सहस्रशः ॥ २२ ॥ उपक्रीडैर्विमानैस्तु पितृभक्तं दृढव्रतम् ॥ स्तुवन्ति देवगन्धर्वाः सिद्धसङ्घाश्च तं सदा ॥ २३ ॥
पितृभक्तस्त्वमावस्यां सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥ प्रत्यक्षमर्चितास्तेन भवन्ति पितरः सदा ॥ २४ ॥ पितृदेवा मघा यस्मात् तस्मात्तास्वक्षयं स्मृतम् ॥
पित्र्यं कुर्व्वन्ति तस्यान्तु विशेषेण विचक्षणः ॥ २५ ॥ तस्मान्मघां वै वाञ्छन्ति पितरो नित्यमेव हि ॥ पितृदैवतभक्ता ये तेऽपि यान्ति परां गति
म् ॥ २६ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पे तिथिविशेषे श्राद्धफलवर्णनं नामोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ छ ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥
यमस्तु यानि श्राद्धानि प्रोवाच शिवबिन्दवे ॥ तानि मे शृणु कात्स्न्यें न नक्षत्रेषु पृथक् पृथक् ॥ १ ॥ श्राद्धं यः कृत्तिकायोगे करोति सततं नरः ॥
अग्नीनाधाय सापत्यो जायते स गतज्वरः ॥ २ ॥ अपत्यकामो रोहिण्यां सौम्येनौजस्विता भवेत् ॥ प्रायशः क्रूरकर्म्मा तु चार्द्रायां श्राद्धमाचरेत् ॥३॥
क्षेत्रभागी भवेत् पुत्री श्राद्धं कुर्व्वन् पुनर्व्वसौ ॥ धनधान्यसमाकीर्णः पुत्रपौत्रसमाकुलः ॥ ४ ॥ तुष्टिकामः पुनस्तिष्ये श्राद्धं कुर्वीत मानवः ॥ आ
श्लेषासु पितॄनार्च्य वीरान् पुत्रानवाप्नुयात् ॥ ५ ॥ श्रेष्ठो भवति ज्ञातीनां मघासु श्राद्धमाचरन् ॥ फल्गुनीषु पितॄनार्च्य सौभाग्यं लभते नरः ॥ ६ ॥
प्रधानशीलः सापत्य उत्तरासु करोति यः ॥ स सत्सु मुख्यो भवति हस्ते यस्तर्पयेत्पितॄन् ॥ ७ ॥ चित्रायां चैव यः कुर्यात् पश्येद्रूपवतः सुतान् ॥
स्वातिना चैव यः कुर्याद्विद्वाँल्लाभमवाप्नुयात् ॥ ८ ॥ पुत्रार्थन्तु विशाखासु श्राद्धमीहेत मानवः ॥ अनुराधासु कुर्व्वाणो नरश्चक्रं प्रवर्त्तयेत् ॥ ९ ॥
आधिमत्यं लभेच्छ्रैष्ठ्यं ज्येष्ठायां सततं तु यः ॥ मूलेनारोग्यमिच्छन्ति आषाढासु महद्यशः ॥ १० ॥ आषाढाभिश्चोत्तराभिर्वीतशोको भवेन्नरः ॥ श्र
वणायां सुलोकेषु प्राप्नुयात् परमां गतिम् ॥ ११ ॥ राज्यभाग्वै धनिष्ठासु प्राप्नुयाद्विपुलं धनम् ॥ श्राद्धं त्वभिजिता कुर्वन् विन्दतेऽजाविकं फलम् ॥
॥ १२ ॥ नक्षत्रे वारुणे कुर्व्वन् भिषक् सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ पूर्व्वे प्रोष्ठपदे कुर्व्वन् विन्दतेऽजाविकं फलम् ॥ १३ ॥ उत्तरास्वनतिक्रम्य विन्देद्गावै सहस्र
शः ॥ बहुरूपकृतं द्रव्यं विन्देत् कुर्व्वंस्तु रेवतीम् ॥ अश्वांश्चैवाश्विनीयुक्तो भरण्यामायुरुत्तमम् ॥ १४ ॥ इमं श्राद्धविधिं कुर्व्वञ्छशबिन्दुर्महीमिमाम् ॥
कृत्स्नान्तु लेभे स कृत्स्नां लब्ध्वा च प्रशशंस तम् ॥ १५ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते नक्षत्रविशेषे श्राद्धफलवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥२०॥ ॥
॥ ॥ शंयुरुवाच ॥ ॥ किञ्चिद्दत्तं पितॄणां तु धिनोति वदतां वर ॥ किं हि स्विच्चिररात्राय किञ्चानन्त्याय कल्पते ॥ १ ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥
हवींषि श्राद्धकाले तु यानि श्राद्धविदो विदुः ॥ तानि मे शृणु सर्वाणि फलं चैषां यथाबलम् ॥ २ ॥ तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन च ॥ दत्तेन मासं प्रीय
न्ते श्राद्धेन तु पितामहाः ॥ ३ ॥ मत्स्यैः प्रीणन्ति द्वौ मासौ त्रीन्मासान्हारिणेन तु ॥ शाशन्तु चतुरो मासान् पञ्च प्रीणाति शाकुनम् ॥ ४ ॥ वाराहेण

अपाङ्क्तेयांस्तु वक्ष्यामि गदतो मे निबोधत ॥३१॥ कितवो मद्यपो यक्ष्मी पशुपालो निराकृतिः ॥ ग्रामप्रेष्यो वार्द्धुषिको गायनो वणिजस्तथा ॥ ३२ ॥ अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी ॥ समुद्रयायी दुश्चर्मा तैलिकः कूटकारकः ॥ ३३ ॥ पित्रा विवदमानश्च यस्य चोपपतिर्गृहे ॥ अभिशस्तस्तथा स्तेनः शिल्पैर्यश्चोपजीवति ॥ ३४ ॥ सूचकः पर्वकारी च यस्तु मित्रेषु द्रुह्यति ॥ गणयाचनकश्चैव नास्तिको वेदवर्जितः ॥ ३५ ॥ उन्मत्तः षण्डकशठौ भ्रूणहा गुरुतल्पगः ॥ भिषक्जीवः प्रैषणिकः परस्त्रीं यश्च गच्छति ॥ ३६ ॥ विक्रीणाति च यो ब्रह्म व्रतानि च तपांसि च ॥ नष्टं स्यान्नास्तिके दत्तं कृतघ्ने चैव शंसके ॥ ३७ ॥ यच्च वाणिजके चैव नेह नामुत्र तद्भवेत् ॥ निक्षेपहारिणे चैव कितवे वेदनिन्दके ॥ ३८ ॥ तथा वाणिजके चैव कारुके धर्म्मवर्जिते ॥ निन्दन् क्रीणाति पण्यानि विक्रीणंश्च प्रशंसति ॥ ३९ ॥ अनृतस्य समावासो न वणिक् श्राद्धमर्हति ॥ भस्म नीव हुतं हव्यं दत्तं पौनर्भवे द्विजे ॥४०॥ षष्टिं काणः शतं षण्डः श्वित्री यावत् प्रपश्यति ॥ पापरोगी सहस्रस्य दातुर्नाशयते फलम् ॥ ४१॥ अश्यते सत्फलात्तस्माद्दाता यस्य तु बालिशः ॥ यो वेष्टितशिरा भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते दक्षिणामुखः ॥ ४२ ॥ सोपानत्कश्च यो भुङ्क्ते यच्च दद्यात्तिरस्कृतम् ॥ सर्वं तद् सुरेन्द्राणां ब्रह्मा भागमकल्पयत् ॥ ४३ ॥ श्वानश्च यातुधानाश्च नावेक्षेरन् कथञ्चन ॥ तस्मात्परिवृतिं दद्यात्तिलैश्चान्ववकीरयन् ॥ ४४ ॥ राक्षसानां तिलाः प्रोक्ताः शुनां परिवृतिस्तथा ॥ दर्शनात्सूकरो हन्ति पक्षपातेन कुक्कुटः ॥ ४५ ॥ रजस्वलानुस्पर्शेन क्रुद्धो यश्च प्रयच्छति ॥ यस्य मित्रप्रदे यानि श्राद्धानि च हवींषि च ॥ न प्रीणाति पितॄन् देवान् स्वर्गं न च स गच्छति ॥४६॥ नदीतीरेषु रम्येषु सरित्सु च सरस्सु च ॥ विविक्तेषु च प्रीयन्ते दत्तेनेह पितामहाः ॥ ४७ ॥ न चाश्रु पातयेज्जातु न युक्तो वाचमीरयेत् ॥ न च कुर्वीत भुञ्जानो ह्यन्योऽन्यं मत्सरस्तदा ॥ ४८ ॥ अपसव्ये कृते तेन विधिवद्दर्भपाणिना ॥ पित्र्यमानिधनं कार्य्यमेवं प्रीणाति वै पितॄन् ॥ ४९ ॥ अनुमत्यादितो विप्रानग्नौ कुर्याद्यथाविधि ॥ पितॄणां निर्व्वपेद्भूमौ शूर्पे वा दर्भसंस्तरे ॥ ५० ॥ शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे श्राद्धं कुर्याद्विचक्षणः ॥ कृष्णपक्षेऽपराह्णे तु रौहिणं न विलङ्घयेत् ॥ ५१ ॥ एवमेते महात्मानो महा योगा महौजसः ॥ सदा वै पितरः पूज्या द्रष्टारो देशकालयोः ॥५२॥ पितृभक्तिरतो नित्यं योगं प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ ध्यानेन मोक्षं गच्छन्ति हित्वा कर्म्म शुभाशुभम् ॥ ५३ ॥ यज्ञहेतोर्यदुद्धृत्य मोहयित्वा जगत्तदा ॥ गुहायां निहतं योगं कश्यपेन महात्मना ॥ ५४ ॥ अमृतं गुह्यमुद्धृत्य योगं योगविदां वर ॥ प्रोक्तं सनत्कुमारेण महत्तद्धर्म्मशाश्वतम् ॥ ५५ ॥ देवानां परमं गुह्यं ऋषीणां च परायणम् ॥ पितृभक्त्या प्रयत्नेन पितृभक्तैश्च नित्यशः ॥५६॥ तच्च योगं समासेन पितृभक्तस्तु कृत्स्नशः ॥ प्रयत्नात्प्राप्नुयात्तत्र सर्वमेव न संशयः ॥ ५७ ॥ यस्मै श्राद्धानि देयानि यच्च दत्तं महाफलम् ॥ येषु

स नित्यो योगवर्द्धनः ॥ ८० ॥ द्वितीयो देवतानान्तु तृतीयो देवताऽरिणाम् ॥ शेषास्तु वर्णिनां ज्ञेया इति सर्वे प्रकीर्तिताः ॥ ८१ ॥ देवास्त्वेतान् यजन्ते वै सर्वेष्वेतेष्ववस्थिताः ॥ आश्रमास्तु यजन्त्येतांश्चत्वारस्तु यथाक्रमम् ॥ ८२ ॥ वर्णाश्चापि यजन्त्येतांश्चत्वारस्तु यथाविधि ॥ तथा सङ्करजाताश्च म्लेच्छाश्चैव यजन्ति वै ॥ ८३ ॥ पितॄंश्च यो यजेद्भक्त्या पितरः पूजयन्ति तम् ॥ पितरः पुष्टिकामस्य प्रजाकामस्य वा पुनः ॥ पुष्टिं प्रजाश्च स्वर्गञ्च प्रयच्छन्ति पितामहाः ॥ ८४ ॥ देवकार्यादपि सूनोः पितृकार्यं विशिष्यते ॥ देवतानां हि पितरः पूर्वमाप्यायनं स्वयम् ॥ ८५ ॥ न हि योगगतिः सूक्ष्मा पितॄणाञ्च परा गतिः ॥ तपसा विप्रकृष्टेन दृश्यते मांसचक्षुषा ॥ ८६ ॥ सर्वेषां राजतं पात्रमथवा रजतान्वितम् ॥ पावनं ह्युत्तमं प्रोक्तं देवानां पितृभिः सह ॥८७॥ येषां दास्यन्ति पिण्डांस्त्रीन् बान्धवा नामगोत्रतः ॥ भूमौ कुशोत्तरायाञ्च अपसव्यविधानतः ॥८८॥ सर्वत्र वर्त्तमानास्ते पिण्डाः प्रीणन्ति वै पितॄन्॥यदाहारो भवेज्जन्तुराहारः सोऽस्य जायते॥८९॥यथा गोष्ठे प्रनष्टां वै वत्सो विन्दति मातरम्॥तथा तं नयते मन्त्रो जन्तुर्यत्रावतिष्ठते॥९०॥ नाम गोत्रञ्च मन्त्रश्च दत्तमन्नं नयन्ति तम् ॥ अपि योनिशतं प्राप्तांस्तृप्तिस्ताननु गच्छति ॥ ९१ ॥ एवमेषा स्थिता संस्था ब्रह्मणा परमेष्ठिना॥पितॄणामादिसर्गस्तु लोकानामक्षयार्थिनाम् ॥९२॥ इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरः पुनः॥ दौहित्रा यजमानाश्च प्रोक्ताश्चैव मयाऽनघाः ॥ ९३ ॥ लोका दुहितरश्चैव दौहित्राश्च सुतास्तथा ॥ दानानि सह शौचेन तीर्थानि च फलानि च ॥९४॥ अक्षयत्वं द्विजाश्चैव याथावरविधिस्तथा ॥ प्रोक्तं सर्वं यथान्यायं यथा ब्रह्माऽब्रवीत्पुरा ॥ ९५ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ इत्येतदङ्गिराः प्राह ऋषीणां शृण्वतां तदा ॥ पृष्टस्तु संशयं सर्वं पितॄणां प्राह संसदि ॥ ९६ ॥ सत्रे वै वितते पूर्वं तदा वर्षसहस्रिके ॥ यस्मिन् गृहपतिर्ह्यासीद्ब्रह्मा वै देवता प्रभुः॥ ९७ ॥ संवत्सरशतान्यत्र तत्रोपेता इति श्रुतिः ॥ श्लोकाश्चात्र पुरा गीता ऋषिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ ॥ ९८ ॥ दीक्षितस्य तदा सत्रे ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ तत्रैव जातमत्युग्रं पितॄणामक्षयार्थिना ॥ लोकानाञ्च हितार्थाय ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ ९९ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ एवं बृहस्पतिः पूर्वं पृष्टः पुत्रेण धीमता॥प्रोवाच पितृवंशन्तु यत्तद्वै समुदाहृतम् ॥अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि वरुणस्य निबोधत ॥ १०० ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पे भिन्नकालिकतृप्तिसाधनद्रव्यविशेषगयाश्राद्धादिफलब्राह्मणपरीक्षादिकथनं नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ छ ॥

ऋषयश्चैवमुक्तास्तु परं हर्षमुपागताः ॥ परं शुश्रूषवो भूयः पप्रच्छुस्तदनन्तरम् ॥ १ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ वंशानामानुपूर्व्येण राज्ञाञ्चामिततेजसाम् ॥ स्थितिश्चैषां प्रभावश्च ब्रूहि नः परिपृच्छताम् ॥ २ ॥ एवमुक्तस्ततः सूतस्तथाऽसौ लोमहर्षणः ॥ शुश्रूषामुत्तराख्याने ऋषीणां वाक्यकोविदः ॥ ३ ॥ आख्यानकुशलो भूयः परं वाक्यमुवाच ह ॥ ब्रुवतो मे निबोधस्व ऋषिराह यथा मम ॥ ४ ॥ वंशानामानुपूर्व्येण राज्ञाञ्चामिततेजसाम् ॥ स्थि

पुरा ॥ ३० ॥ मनुर्यवीयान् सावर्णिः संज्ञायाश्च तथाश्विनौ ॥ शनैश्चरश्च सप्तैते मार्त्तण्डस्यात्मजाः स्मृताः ॥ ३१ ॥ विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यां महायशाः ॥ तस्य भार्य्याऽभवत्त्वाष्ट्री महादेवी विवस्वतः ॥ सुरेणुरिति विख्याता पुनः संज्ञेति विश्रुता ॥ ३२ ॥ सा तु भार्य्या भगवतो मार्त्तण्डस्यातितेजसः ॥ नातुष्यद्भर्तृरूपेण रूपयौवनशालिनी ॥ ३३ ॥ आदित्यस्य हि तद्रूपं मार्त्तण्डस्य हि तेजसा ॥ गोत्रेषु प्रतिरुद्धं वै नातिकान्तमिवाभवत् ॥ ३४ ॥ न खल्वयं मृतो ह्यण्डे इति स्नेहात्तमब्रवीत् ॥ अज्ञानः कश्यपः स्नेहान्मार्त्तण्ड इति चोच्यते ॥ ३५ ॥ तेजस्त्वभ्यधिकं तस्य नित्यमेव विवस्वतः ॥ येनापि तापयामास त्रींल्लोकान् कश्यपात्मजः ॥ ३६ ॥ त्रीण्यपत्यानि संज्ञायां जनयामास वै रविः ॥ द्वौ सुतौ तु महावीर्यौ कन्यां कालिन्दिमेव च ३७ ॥ मनुर्विवस्वतो ज्येष्ठः श्राद्धदेवः प्रजापतिः ॥ ततो यमो यमी चैव यमजौ संबभूवतुः ॥ ३८ ॥ शान्तवर्णन्तु तद्रूपं दृष्ट्वा संज्ञा विवस्वतः ॥ असहन्ती स्वकां छायां सवर्णां निर्ममे पुनः ॥ ३९ ॥ महीमयी तु सा नारी तस्याश्छायासमुद्गता ॥ प्राञ्जलिः प्रयता भूत्वा पुनः संज्ञामभाषत ॥ ४० ॥ वदस्व किं मया कार्यं सा संज्ञा तामथाब्रवीत् ॥ अहं यास्यामि भद्रन्ते स्वमेव भवनं पितुः ॥ ४१ ॥ त्वयेह भवने मह्यं वस्तव्यं निर्विशङ्कया ॥ इमौ च बालकौ मह्यं कन्या च वरवर्णिनी ॥ ४२ ॥ भर्त्रे वै नैवमाख्येयमिदं भगवते त्वया ॥ एवमुक्ताब्रवीत्संज्ञां संज्ञायाः पार्थिवी तु सा ॥४३॥आकाशग्रहणाद्देवि आशयं नैव कर्हिचित् ॥ आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गच्छ देवि स्वमालयम् ॥४४॥ समावाय च तां संज्ञा तथेत्युक्ता तया च सा ॥ त्वष्टुः समीपमगमद्व्रीडितेव तपस्विनी ॥४५॥ पिता तामागतां दृष्ट्वा क्रुद्धः संज्ञामथाब्रवीत् ॥ भर्तुः समीपङ्गच्छ त्वं मा जुगुप्स दिवाकरम् ॥४६॥ सैवमुक्ता तदा पित्रा नियुक्ता च पुनः पुनः ॥ वर्षाणान्तु सहस्रं वै वसति स्म पितुर्गृहे ॥ ४७ ॥ भर्तुः समीपं गच्छ त्वं नियुक्ता च पुनः पुनः ॥ अगमद्वडवा भूत्वाच्छाद्य रूपमनिन्दिता ॥उत्तरान् सा कुरून् गत्वा तृणान्यथ चचार सा॥४८॥द्वितीयायान्तु संज्ञायां संज्ञेयमिति चिन्त्य ताम् ॥ आदित्यो जनयामास पुत्रावादित्यवर्चसौ ॥ ४९ ॥ पूर्वजस्य मनोस्तुल्यौ सादृश्येन तु तौ प्रभू ॥ श्रुतश्रवन्तु धर्म्मज्ञं श्रुतकर्म्माणमेव च ॥ ५० ॥ श्रुतश्रवा मनुः सोऽपि सावर्णिर्वै भविष्यति ॥ श्रुतकर्म्मा तु विज्ञेयो ग्रहो वै यः शनैश्चरः ॥५१॥ मनुरेवाभवत्सो वै सावर्ण्य इति बुध्यते ॥ संज्ञा तु पार्थिवी सा वै स्वस्य पुत्रस्य वै तदा ॥ ५२ ॥ चकाराभ्यधिकं स्नेहं न तथा पूर्वजेषु वै ॥ मनुस्तत्चाक्षमत्सर्वं यमस्तद्वै न चाक्षमत् ॥ ५३ ॥ बहुशो यस्यमानस्तु सापत्न्यादतिदुःखितः ॥ तां वै रोषाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ॥ ५४ ॥ पदा सन्तर्जयामास संज्ञाञ्चैव स्वतो यमः ॥ सा शशाप ततः क्रोधात् सवर्णा जननी यमम् ॥ ५५ ॥ पदा तर्जयसे यस्मात् पितृभार्यां यशस्विनीम् ॥ तस्मात्तवैष चरणः पतिष्यति न संशयः ॥

प्रभुः ॥ ८३ ॥ भ्राता शनैश्चरस्तत्र ग्रहत्वं स तु लब्धवान् ॥ त्वष्टाऽनु तेन रूपेण विष्णोश्चक्रमकल्पयत् ॥ महाऽप्रतिहतं युद्धे दानवप्र
तिवारणे ॥ ८४ ॥ यवीयसी तयोर्या तु यमुना च यशस्विनी ॥ अभवत् सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकभाविनी ॥ ८५ ॥ यस्तु ज्येष्ठो
महातेजाः सर्गो यस्य तु साम्प्रतम् ॥ विस्तरं तस्य वक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ह ॥ ८६ ॥ इदन्तु जन्म देवानां शृणुयाद्वा पठेत वा ॥ वैवस्वतस्य
पुत्राणां सप्तानान्तु महौजसाम् ॥ आपदं प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महद्यशः ॥ ८७ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते श्राद्धकल्पे वरुणवंशवर्णनं नाम
द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥ ७ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ततो मन्वन्तरेऽतीते चाक्षुषे दैवतैः सह ॥ वैवस्वताय महते पृथिवीराज्यमादिशत् ॥१ ॥ तस्य वैव
स्वतो वक्ष्ये साम्प्रतस्य महात्मनः ॥ आनुपूर्व्येण वै विप्राः कीर्त्त्यमानं निबोधत ॥ २ ॥ मनोर्वैवस्वतस्येह सर्गमादाय साम्प्रतम् ॥ मनोः प्रथमजस्यास
न् नवपुत्रास्तु तत्समाः ॥ ३ ॥ इक्ष्वाकुर्नहुषश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च ॥ नरिष्यन्तस्तथा प्रांशुर्नाभागोरिष्ट एव च ॥ करूषश्च पृषध्रश्च नवैते मान
वाः स्मृताः ॥ ४ ॥ ब्रह्मणा तु मनुः पूर्वं चोदितस्तु निबोधत ॥ स्रष्टुं प्रचक्रमे कामं निष्फलं समवर्त्तत ॥ ५ ॥ अथाकरोत्पुत्रकामः परामिष्टिं
प्रजापतिः ॥ मित्रावरुणयोरंशे मनुराहुतिमावपत् ॥ ६ ॥ तत्र दिव्याम्बरधरा दिव्याभरणभूषिता ॥ दिव्यसन्नहना चैव इडा जज्ञे इति श्रुतिः ॥ ७ ॥
तामिलेत्यथ होवाच मनुर्दण्डधरः स्मृतः ॥ अनुगच्छामि भद्रन्ते तमिला प्रत्युवाच ह ॥ ८ ॥ धर्म्मयुक्तमिदं वाच्यं पुत्रकामं प्रजापतिम् ॥ मित्रावरु
णयोरंशे जातास्मि वदतां वर ॥ ९ ॥ तयोः सकाशं यास्यामि मा नो धर्मो हतोवधीत् ॥ सैवमुक्त्वा पुनर्देवी तयोरन्तिकमागमत् ॥ १० ॥ गत्वान्तिकं
वरारोहा प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ अंशेऽस्मिन्युवयोर्जाता देवौ किं करवाणि च ॥ ११ ॥ मनुनैवाहमुक्तास्मि अनुगच्छस्व मामिति ॥ तथा तु वदतीं
साध्वीमिडामाश्रित्य तावुभौ ॥ १२ ॥ देवौ च मित्रावरुणाविदं वचनमूचतुः ॥ अनेन तव धर्मज्ञे प्रश्रयेण दमेन च ॥ १३ ॥ सत्येन चैव सुश्रोणि प्रीतौ
स्वो वरवर्णिनि ॥ आवयोस्त्वं महाभागे ख्यातिं कन्या प्रयास्यसि ॥ १४ ॥ सुद्युम्न इति विख्यातस्त्रिषु लोकेषु पूजितः ॥ जगत्प्रियो धर्म्मशीलो मनोर्वंश
विवर्द्धनः ॥१५॥ मानवः स तु सुद्युम्नः स्त्रीभावमगमत् प्रभुः ॥ सा तु देवी वरं लब्ध्वा निवृत्ता पितरं प्रति ॥१६॥ बुधेनान्तरमासाद्य मैथुनायोपमन्त्रिता ॥
सोमपुत्राद्बुधाच्चास्या ऐलो जज्ञे पुरूरवाः ॥ १७ ॥ बुधात् सा जनयित्वा तु सुद्युम्नं पुनरागता ॥ सुद्युम्नस्य च दायादास्त्रयः परमधार्म्मिकाः ॥ १८ ॥
उत्कलश्च गयश्चैव विनताश्वस्तथैव च ॥ उत्कलस्योत्कलं राष्ट्रं विनताश्वस्य पश्चिमम् ॥ दिक्षु वातस्य राजर्षेर्गयस्य तु गयापुरी ॥ १९ ॥
प्रविसृष्टे मनौ तस्मिन् प्रजाः सृष्ट्वा दिवाकरः ॥ दशधा तद्धत् क्षेत्रमकरोत् पृथिवीमिमाम् ॥ २० ॥ इक्ष्वाकुरेव दायादानन्यान् दश समाप्नुयात् ॥

सुचन्द्र इति विख्यातो हेमचन्द्रादनन्तरम् ॥ सुचन्द्रतनयो राजा धूम्राश्व इति विश्रुतः ॥ १८ ॥ धूम्राश्वतनयो विद्वान् सृञ्जयः समपद्यत ॥ सृञ्जयस्य सुतः श्रीमान् सहदेवः प्रतापवान् ॥ १९ ॥ कृशाश्वः सहदेवस्य पुत्रः परमधार्म्मिकः ॥ कृशाश्वस्य महातेजाः सोमदत्तः प्रतापवान् ॥ २० ॥ सोमदत्तस्य राजर्षेः सुतोभूज्जनमेजयः ॥ जनमेजयात्मजश्चैव प्रमतिर्नाम विश्रुतः ॥ २१ ॥ तृणबिन्दुप्रसादेन सर्व्वे वैशालका नृपाः ॥ दीर्घायुषो महात्मानो वीर्य्यवन्तः सुधार्म्मिकाः ॥ २२ ॥ शर्य्यातेर्मिथुनं त्वासीदानर्त्तो नाम विश्रुतः ॥ पुत्रः सुकन्या कन्या च भार्या या च्यवनस्य तु ॥ २३ ॥ आनर्त्तस्य तु दायादो रेवो नाम्ना तु वीर्य्यवान् ॥ आनर्त्तो विषयो यस्य पुरी चापि कुशस्थली ॥ २४ ॥ रेवस्य रैवतः पुत्रः ककुद्मी नाम धार्म्मिकः ॥ ज्येष्ठो भ्रातृशतस्यासीद्राजा प्राप्य कुशस्थलीम् ॥ २५ ॥ कन्यया सह श्रुत्वा च गान्धर्वं ब्रह्मणोऽन्तिके ॥ मुहूर्त्तं देवदेवस्य मार्त्यं बहुयुगं विभोः ॥ २६ ॥ आजगाम युवा चैव स्वां पुरीं यादवैर्वृताम् ॥ कृतां द्वारवतीं नाम बहुद्वारां मनोरमाम् ॥ २७ ॥ भोजवृष्ण्यन्धकैर्गुप्तां वसुदेवपुरोगमैः ॥ ताङ्कथां रैवतः श्रुत्वा यथातत्त्वमरिन्दमः ॥ २८ ॥ कन्यान्तु बलदेवाय सुव्रतां नाम रेवतीम् ॥ दत्त्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः ॥ २९ ॥ रेमे रामश्च धर्मात्मा रेवत्या सहितः किल ॥ तां कथां ऋषयः श्रुत्वा पप्रच्छुस्तदनन्तरम् ॥ ३० ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ कथं बहुयुगे काले व्यतीते सूतनन्दन ॥ न जरां रेवती प्राप्ता पलितञ्च कुतः प्रभो ॥ ३१ ॥ मेरुं गतस्य वा तस्य शर्य्यातेः सन्ततिः कथम् ॥ स्थिता पृथिव्यामद्यापि श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ३२ ॥ कियन्तो वा सुरगणा गन्धर्व्वास्तत्र कीदृशाः ॥ यच्छ्रुत्वा रैवतः कालान् मुहूर्त्तमिवमन्यते ॥ ३३ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ न जरा क्षुत्पिपासा वा न च मृत्युभयं ततः ॥ न च रोगः प्रभवति ब्रह्मलोकगतस्य हि ॥ ३४ ॥ गान्धर्व्वं प्रति यच्चापि पृष्टस्तु मुनिसत्तमाः ॥ ततोऽहं संप्रवक्ष्यामि याथातथ्येन सुव्रताः ॥ ३५ ॥ सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः ॥ तालाश्चैकोनपञ्चाशदित्येतत् स्वरमण्डलम् ॥ ३६ ॥ षड्जर्षभौ च गान्धारो मध्यमः पञ्चमस्तथा ॥ धैवतश्चापि विज्ञेयस्तथा चापि निषादवान् ॥ ३७ ॥ सौवीरी मध्यमग्रामो हरिणास्या तथैव च ॥ स्यात्कलोपवलोपेता चतुर्थी शुद्धमध्यमा ॥ ३८ ॥ शार्ङ्गी च पावनी चैव दृष्टाका च यथाक्रमम् ॥ मध्यमग्रामिकाः ख्याताः षड्जग्रामं निबोधत ॥ ३९ ॥ उत्तरमन्द्रा रजनी तथा या चोत्तरायता ॥ शुद्धषड्जा तथा चैव जानीयात् सप्तमां च ताम् ॥ ४० ॥ गान्धारग्रामिकांश्चान्यान् कीर्त्यमानान् निबोधत ॥ आग्निष्टोमिकमाद्यन्तु द्वितीयं वाजपेयिकम् ॥ ४१ ॥ तृतीयं पौण्ड्रकं प्रोक्तं चतुर्थं चाश्वमेधिकम् ॥ पञ्चमं राजसूयं च षष्ठं चक्रसुवर्णकम् ॥ ४२ ॥ सप्तमं गोसवं नाम महावृष्टिकमष्टमम् ॥ ब्रह्मदानञ्च नवमं प्राजापत्यमनन्तरम् ॥ ४३ ॥ नागपक्षाश्र

पूरणम् ॥ पदानि गीतकस्याहुः पुरस्तात् पृष्ठतोऽथवा ॥ ३ ॥ स्थानानि त्रीणि जानीयादुरःकण्ठशिरस्तथा ॥ एतेषु त्रिषु स्थानेषु प्रवृत्तो विधिरुत्त
मः ॥ ४ ॥ चत्वारः प्रकृतौ वर्णाः प्रविचारश्चतुर्विधः ॥ विकल्पमष्टधा चैव देवाः षोडशधा विदुः ॥ ५ ॥ स्थायी वर्णः प्रसंचारी तृतीयमवरोहणम् ॥
आरोहणं चतुर्थन्तु वर्णं वर्णविदो विदुः ॥ ६ ॥ तत्रैकः संचरस्थायी सचरास्तचरीभवन् ॥ अथ रोहणवर्णानामवरोहं विनिर्दिशेत् ॥ ७ ॥ आरोहणेन
चारोहवर्णं वर्णविदो विदुः ॥ एतेषामेव वर्णानामलङ्कारान्निबोधत ॥ ८ ॥ अलङ्कारास्तु चत्वारः स्थापनी क्रमरेजिनः ॥ प्रमादश्चाप्रमादश्च तेषां व
क्ष्यामि लक्षणम् ॥ ९ ॥ विस्वरोष्टकलाश्चैव स्थानादेकान्तरं गताः ॥ आवर्त्तस्याक्रमोत्पत्ती द्वे कार्य्ये परिमाणतः ॥ १० ॥ कुमारमपरं विद्याद्विस्तरं
वमनं गतम् ॥ एष वै चाप्यपाङ्गस्तु कुतारेकः कलाधिकः ॥ ११ ॥ श्येनस्त्वेकान्तरे जातः कलामात्रान्तरे स्थितः ॥ तस्मिंश्चैव स्वरे वृद्धिस्तिष्ठते
तद्विलक्षणा ॥१२॥ श्येनस्तु अपरोहस्तु उत्तरः परिकीर्त्तितः ॥ कलाकलप्रमाणाच्च स बिन्दुर्नाम जायते ॥१३॥ बिन्दुरेककला कार्य्या वर्णान्तस्थायिनी
भवेत् ॥ विपर्य्ययस्वरोपि स्याद्यस्य दुर्घटितोऽपि न ॥१४॥ एकान्तरा तु वाद्यन्तु षड्जतः परमः स्वरः ॥ आक्षेपास्कन्दनं कार्य्यं काकस्येवोच्चपुष्क
लम् ॥१५॥ सन्तारौ तौ तु सञ्चायौं कार्य्यं वा कारणं तथा ॥ आक्षितमवरोह्यापि प्रोक्षमद्यन्तथैव च ॥१६॥द्वादशञ्च कलास्थानमेकान्तरगतन्ततः ॥ प्रेङ्खो
लितमलङ्कारमेवं स्वरसमन्वितम्॥१७॥स्वरसंक्रामकाच्चैव ततः प्रोक्तन्तु पुष्कलम्॥प्रक्षिप्तमेव कलया पादानीतरयोर्भवेत्॥१८॥ द्विकलं वा यथा भूतं यत्त
द् ह्रासितमुच्यते ॥ उच्चाराद्विस्वरारूढा तथा चाष्टस्वरान्तरम् ॥ १९ ॥ यस्तु स्यादवरोहो वा तारतो मन्द्रतोऽपि वा ॥ एकान्तरहिता ह्येते तमेव स्वरमन्त
तः॥२०॥मक्षिप्रच्छेदनो नाम चतुष्कलगणः स्मृतः॥ अलङ्कारा भवन्त्येते त्रिंशद्वै वै प्रकीर्त्तिताः ॥ वर्णस्थानप्रयोगेण कलामात्राप्रमाणतः॥२१॥संस्था
नञ्च प्रमाणञ्च विकारो लक्षणन्तथा ॥ चतुर्विधमिदं ज्ञेयमलङ्कारप्रयोजनम् ॥ २२ ॥ यथात्मनोह्यलङ्कारो विपर्यस्तोऽतिगर्हितः ॥ वर्णमेवाप्यलंक
र्त्तुं विषमं ह्यात्मसम्भवात् ॥ २३ ॥ नानाभरणसंयोगाद्यथा नार्या विभूषणम् ॥ वर्णस्य चैवालङ्कारो विपर्यस्तोऽतिगर्हितः ॥ २४ ॥ न पादे कु
ण्डले दृष्टे न कण्ठे रसना यथा ॥ एवमेव ह्यलङ्कारो विपर्यस्तो विगर्हितः ॥ २५ ॥ क्रियमाणोऽप्यलङ्कारो रागं यश्चैव दर्शयेत् ॥ यथोद्दिष्टस्य मा
र्गस्य कर्त्तव्यस्य विधीयते ॥ २६ ॥ लक्षणं पर्य्यवस्थापि वर्णिकाभिः प्रवर्त्तनम् ॥ याथातथ्येन वक्ष्यामि मासोद्भवसुखोद्भवे ॥ २७ ॥ त्रयोविंशत्य
शीतिस्तु तेषामेतद्विपर्ययः ॥ षड्जपक्षोऽपि तत्त्वादौ मध्यो हीनस्वरो भवेत् ॥ २८ ॥ षड्जमध्यमयोश्चैव ग्रामयोः पर्य्ययस्तथा ॥ मानोयोत्तरमन्द्र
स्य षडेवात्राविकस्य च ॥ २९ ॥ स्वरालंप्रत्ययश्चैव सर्व्वेषां प्रत्ययः स्मृतः ॥ अनुगम्य बहिर्गीतं विज्ञातं पञ्चदैवतम् ॥ ३० ॥ गोरूपाणां पुरस्ता

रिंशत्तथाष्टौ च दक्षिणास्याञ्च ते दिशि ॥ १० ॥ विंशतिप्रमुखास्ते तु दक्षिणापथरक्षिणः ॥ इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिं वै अष्टकायामथादिशेत् ॥ ११ ॥
राजोवाच ॥ मांसमानय श्राद्धेयं मृगान् हत्वा महाबल ॥ श्राद्धमद्य तु कर्तव्यमष्टकायां न संशयः ॥ १२ ॥ स गतस्तु मृगव्यां वै वचनात्तस्य
धीमतः ॥ मृगान् सहस्रशो हत्वा परिश्रान्तश्च वीर्य्यवान् ॥ भक्षयच्छशकन्तत्र विकुक्षिर्मृगयाक्लृतः ॥ १३ ॥ आगते स विकुक्षौ तु समांसे सहसैनिके ॥
वसिष्ठश्चोदयामास मांसं प्रोक्षयतामिति ॥ १४ ॥ तथेति चोदितो राज्ञा विधिवत्समुपस्थितः ॥ स दृष्ट्वोपहतं मांसं क्रुद्धो राजानमब्रवीत् ॥ १५ ॥ शू
द्रेणोपहतं मांसं पुत्रेण तव पार्थिव ॥ शशभक्षादभोज्यं वै तव मांसं महाद्युते ॥ १६ ॥ शशो दुरात्मना पूर्वमरण्ये भक्षितोऽनघ ॥ तेन मांसमिदं दुष्टं
पितॄणां नृपसत्तम ॥ १७ ॥ इक्ष्वाकुस्तु ततः क्रुद्धो विकुक्षिमिदमब्रवीत् ॥ पितृकर्म्मणि निर्दिष्टो मया त्वं मृगयाक्लृतः ॥ शशं भक्षयसेऽरण्ये निर्घृणः
पूर्व्वमद्य नु ॥ १८ ॥ तस्मात्परित्यजामि त्वां गच्छ त्वं स्वेन कर्म्मणा ॥ एवमिक्ष्वाकुना त्यक्तो वसिष्ठवचनात् सुतः ॥ १९ ॥ इक्ष्वाकौ संस्थिते त
स्मिञ्छशी स पृथिवीमिमाम् ॥ प्राप्तः परमधर्म्मात्मा स चायोध्याधिपोऽभवत् ॥ २० ॥ तदाकरोत्स राज्यं वै वसिष्ठपरिनोदितः ॥ ततः स्तेनेन सा पूर्णा
राज्यावस्था महीपतेः ॥ २१ ॥ कालेन गतवांस्तत्र स च न्यूनतराक्लृतिम् ॥ ज्ञात्वैवमेतदाख्यानं ना विधिर्भक्षयेत्तु वै ॥ २२ ॥ मां स भक्षयितामुत्र य
स्य मांसमिहाद्म्यहम् ॥ एतन्मांसस्य मांसत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ॥ २३ ॥ शशादस्य तु दायादः ककुत्स्थो नाम वीर्य्यवान् ॥ इन्द्रस्य वृषभूतस्य क
कुत्स्थो जायते पुरा ॥ २४ ॥ पूर्व्वमाडीबके युद्धे ककुत्स्थस्तेन स स्मृतः ॥ अनेनास्तु ककुत्स्थस्य पृथुरोमा च स स्मृतः ॥ २५ ॥ वृषदश्वः पृथोः
पुत्रस्तस्मादन्ध्रस्तु वीर्य्यवान् ॥ आंध्रस्तु यवनाश्वस्तु श्रावस्तस्तस्य चात्मजः ॥ २६ ॥ जज्ञे श्रावस्तको राजा श्रावस्ती येन निर्मिता ॥ श्रावस्तस्य तु
दायादो बृहदश्वो महायशाः ॥ २७ ॥ बृहदश्वसुतश्चापि कुवलाश्व इति श्रुतिः ॥ यः स धुन्धुवधाद्राजा धुन्धुमारत्वमागतः ॥ २८ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥
धुन्धुवधं महाप्राज्ञ श्रोतुमिच्छामि विस्तरात् ॥ यदर्थं कुवलाश्वः स धुन्धुमारत्वमागतः ॥ २९ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ बृहदश्वस्य पुत्राणां सह
स्राण्येकविंशतिः ॥ सर्वे विद्यासु निष्णाता बलवन्तो दुरासदाः ॥ ३० ॥ बभूवुर्द्धार्मिकाः सर्वे यज्वानो भूरिदक्षिणाः ॥ कुवलाश्वं महावीर्यं शूरमुत्तमधार्मि
कम् ॥ ३१ ॥ बृहदश्वोऽभ्यषिञ्चत्तं तस्मिन् राष्ट्रे नराधिपः ॥ पुत्रसङ्क्रामितश्रीस्तु वनं राजा विवेश ह ॥ ३२ ॥ बृहदश्वं महाराजं शूरमुत्तमधार्म्मिकम् ॥
प्रयातं तमुत्तङ्कस्तु ब्रह्मर्षिः प्रत्यवारयत् ॥ ३३ ॥ उत्तङ्क उवाच ॥ भवतो रक्षणं कार्य्यं तत्तावत् कर्तुमर्हति ॥ निरुद्विग्नस्तपः कर्तुं न हि शक्नोमि पा
र्थिव ॥ ३४ ॥ ममाश्रमसमीपेषु समेषु मरुधन्वसु ॥ समुद्रो वालुकापूर्णस्तत्र तिष्ठति भूपते ॥ ३५ ॥ देवतानामवध्यस्तु महाकायो महाबलः ॥ अन्तर्भू

सुतावुभौ ॥ ६३ ॥ तस्य पत्नी हैमवती सतां मतिदृषद्वती ॥ विख्याता त्रिषु लोकेषु पुत्रस्तस्याः प्रसेनजित् ॥ ६४ ॥ युवनाश्वः सुतस्तस्य त्रिषु लोकेष्वतिद्युतिः ॥ अत्यन्तधार्मिको गौरी तस्य पत्नी पतिव्रता ॥ ६५ ॥ अभिशस्ता तु सा भर्त्रा नदी सा बाहुदा कृता ॥ तस्यास्तु गौरिकः पुत्र श्चक्रवर्त्ती बभूव ह ॥ ६६ ॥ मान्धाता यौवनाश्वो वै त्रैलोक्यविजयी नृपः ॥ अत्राप्युदाहरन्तीमौ श्लोकौ पौराणिका द्विजाः ॥ ६७ ॥ यावत्सूर्य उदयति यावच्च प्रतितिष्ठति ॥ सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मान्धातुः क्षेत्रमुच्यते ॥ ६८ ॥ अत्राप्युदाहरन्तीमं श्लोकं वंशविदो जनाः ॥ यौवनाश्वं महात्मानं यज्वानममितौजसम् ॥ मान्धाता तु तनुर्विष्णोः पुराणज्ञाः प्रचक्षते ॥ ६९ ॥ तस्य चैत्ररथी भार्य्या शशबिन्दोः सुताऽभवत् ॥ साध्वी बिन्दुमती नाम रूपेणाप्रतिमा भुवि ॥ ७० ॥ पतिव्रता च ज्येष्ठा च भ्रातॄणामयुतस्य सा ॥ तस्यामुत्पादयामास मान्धाता त्रीन् सुतान् प्रभुः ॥ ७१ ॥ पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दञ्च विश्रुतम् ॥ अम्बरीषस्य दायादो युवनाश्वोऽपरः स्मृतः ॥ ७२ ॥ हारितो युवनाश्वस्य हारिताः शूरयः स्मृताः ॥ एते ह्याङ्गिरसः पुत्राः क्षात्रोपेता द्विजातयः ॥ ७३ ॥ पुरुकुत्सस्य दायादस्त्रसदस्युर्महायशाः ॥ नर्मदायां समुत्पन्नः सम्भूतस्तस्य चात्मजः ॥७४॥ सम्भूतस्यात्मजः पुत्रो ह्यनरण्यः प्रतापवान् ॥ रावणो निहतो येन त्रिलोकीविजये पुरा ॥ ७५ ॥ त्रसदश्वोऽनरण्यस्य हर्य्यश्वस्तस्य चात्मजः ॥ हर्य्यश्वात्तु दृषद्वत्यां जज्ञे वसुमतो नृपः ॥ ७६ ॥ तस्य पुत्रोऽभवद्राजा त्रिधन्वा नाम धार्म्मिकः ॥ आसीत् त्रैधन्वनश्चापि विद्वांस्त्रय्यां रणप्रभुः ॥ ७७ ॥ तस्य सत्यव्रतो नाम कुमारोऽभून्महाबलः ॥ तेन भार्य्या विदर्भस्य हृता हत्वा दिवौकसः ॥ ७८ ॥ पाणिग्रहणमन्त्रेषु निष्ठां सम्प्रापितेष्विह ॥ विष्णुवृद्धः सुतस्तस्य विष्णुवृद्धोयतः स्मृतः ॥ एते ह्याङ्गिरसः पुत्राः क्षात्रोपेताः समाश्रिताः ॥७९॥ कामाद्बलाच्च मोहाच्च सङ्कर्षणबलेन च ॥ भाविनोऽर्थस्य च बलात् तत्कृतं तेन धीमता ॥ ८० ॥ तमधर्म्मेण संयुक्तं पिता त्रय्यारुणोऽत्यजत् ॥ अपध्वंसेति बहुशोऽवदत् क्रोधसमन्वितः ॥ ८१ ॥ पितरं सोऽब्रवीदेकः क्व गच्छामीति वै मुहुः ॥ पिता चैनमथोवाच स्वपाकैः सह वर्त्तय ॥ ८२ ॥ नाहं पुत्रेण पुत्रार्थी त्वयाद्य कुलपांसन ॥ इत्युक्तः स निराक्रामन्नगराद्वचनाद्विभो ॥८३॥ न चैनं धारयामास वसिष्ठो भगवानृषिः ॥ स तु सत्यव्रतो धीमाञ्छ्वपाकावसथान्तिकम् ॥ पित्रा मुक्तोऽवसद्वीरः पिता चास्य वनं ययौ ॥ ८४ ॥ तस्मिंस्तु विषये तस्य नावर्षत् पाकशासनः ॥ समा द्वादश संपूर्णास्तेनाधर्म्मेण वै तदा ॥ ८५ ॥ दारांस्तु तस्य विषये विश्वामित्रो महातपाः ॥ संन्यस्य सागरानूपे चचार विपुलं तपः ॥८६॥ तस्य पत्नी गले बद्ध्वा मध्यमं पुत्रमौरसम् ॥ शिखया भरणार्थाय व्यक्रीणाद्गोशतेन वै ॥८७॥ तं तु बद्धं गले दृष्ट्वा विक्रीतं तं नरोत्तमः ॥ महर्षिपुत्रं धर्म्मात्मा मोक्षयामास सुव्रतः ॥८८॥ सत्यव्रतो महाबुद्धिर्भरणं तस्य चाकरोत् ॥ विश्वामित्रस्य तुष्ट्यर्थमनुकम्पा

नाम भार्य्या केकयवंशजा ॥ कुमारं जनयामास हरिश्चन्द्रमकल्मषम् ॥ ११६ ॥ स तु राजा हरिश्चन्द्रस्त्रैशङ्कव इति श्रुतः ॥ आहर्त्ता राजसूयस्य सम्राडिति परिश्रुतः ॥ ११७ ॥ हरिश्चन्द्रस्य तु सुतो रोहितो नाम वीर्य्यवान् ॥ हरितो रोहितस्याथ चञ्चुर्हारीत उच्यते ॥ ११८ ॥ विजयश्च सुदेवश्च चञ्चुपुत्रौ बभूवतुः ॥ जेता सर्व्वस्य क्षत्रस्य विजयस्तेन स स्मृतः ॥ ११९ ॥ रुरुकस्तनयस्तत्र राजा धर्मार्थकोविदः ॥ रुरुकाद्धृतकः पुत्रस्तस्माद्बाहुश्च जज्ञिवान् ॥ १२० ॥ हैहयैस्तालजङ्घैश्च निरस्तो व्यसनी नृपः ॥ शकैर्यवनकाम्बोजैः पारदैः पह्लवैस्तथा ॥ १२१ ॥ नात्यर्थं धार्म्मिकोऽभूत् स धर्म्म्ये सत्ययुगे तथा ॥ सगरस्तु सुतो बाहोर्जज्ञे सह गरेण वै ॥ भृगोराश्रममासाद्य तुर्वेण परिरक्षितः ॥ १२२ ॥ आग्नेयं मन्त्रं लब्ध्वा तु भार्गवात् सगरो नृपः ॥ जघान पृथिवीङ्गत्वा तालजङ्घान् सहैहयान् ॥ १२३ ॥ शकानां पह्लवानाञ्च धर्म्मान्निरसदच्युतः ॥ क्षत्रियाणां तथा तेषां पारदानाञ्च धर्म्मवित् ॥ १२४ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ कथं स सागरो राजा गरेण सह जज्ञिवान् ॥ किमर्थञ्च शकादीनां क्षत्रियाणां महौजसाम् ॥ धर्म्मान् कुलोचितान् क्रुद्धो राजा निरसदच्युतः ॥ १२५ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ बाहोर्व्यसनिनस्तस्य हृतं राज्यं पुरा किल ॥ हैहयैस्तालजङ्घैश्च शकैः सार्द्धं समागतैः ॥ १२६ ॥ यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्लवास्तथा ॥ हैहयार्थं पराक्रान्ता एते पञ्चगणास्तदा ॥ ॥ १२७ ॥ हृतं राज्यं बलीयोभिरेभिः क्षत्रियपुङ्गवैः ॥ हृतराज्यस्तदा बाहुः संन्यस्य तु तदा नृपः ॥ वनं प्रविश्य धर्म्मात्मा सह पत्न्या तपोऽचरत् ॥ ॥ १२८ ॥ कस्यचित्त्वथ कालस्य तोयार्थं प्रस्थितो नृपः ॥ वृद्धत्वाद्दुर्बलत्वाच्च अन्तरा स ममार च ॥ १२९ ॥ पत्नी तु यादवी तस्य सगर्भा पृष्ठतोऽन्वगात् ॥ सपत्न्या तु गरस्तस्यै दत्तो गर्भजिघांसया ॥ १३० ॥ सा तु भर्तुश्चितां कृत्वा वह्नौ तं समरोहयत् ॥ और्वस्तां भार्गवो दृष्ट्वा कारुण्याद्विन्यवर्त्तयत् ॥ १३१ ॥ तस्याश्रमे तु तद्गर्भं सा गरेण तदा सह ॥ व्यजायत महाबाहुं सगरं नाम धार्मिकम् ॥ १३२ ॥ और्वस्तु जातकर्मादीन् कृत्वा तस्य महात्मनः ॥ अध्याप्य वेदशास्त्राणि ततोऽस्त्रं प्रत्यपादयत् ॥ १३३ ॥ जामदग्न्यात्तदाग्नेयममरैरपि दुःसहम् ॥ स तेनास्त्रबलेनैव बलेन च समन्वितः ॥ जघान हैहयान् क्रुद्धो रुद्रः पशुगणानिव ॥ १३४ ॥ ततः शकान् सयवनान् काम्बोजान् पारदांस्तथा ॥ पह्लवांश्चैव निःशेषान् कर्तुं व्यवसितो नृपः ॥ १३५ ॥ ते वध्यमाना वीरेण सगरेण महात्मना ॥ वसिष्ठं शरणं सर्व्वे प्रपन्नाः शरणैषिणः ॥ १३६ ॥ वसिष्ठस्तान् तथेत्युक्त्वा समयेन महामुनिः ॥ सगरं वारयामास तेषान्दत्त्वाऽभयन्तदा ॥ १३७ ॥ सगरः स्वां प्रतिज्ञाञ्च गुरोर्वाक्यं निशम्य च ॥ धर्म्मं जघान तेषां वै वेषान्यत्वं चकार ह ॥ १३८ ॥ अर्द्धं शकानां शिरसो मुण्डयित्वा व्यसर्जयत् ॥ यवनानां शिरः सर्वं काम्बोजानान्तथैव च ॥ १३९ ॥ पारदा मुक्तकेशाश्च पह्लवाः श्मश्रुधा

पुरा ॥ तस्य पुत्रोंऽशुमान्नाम असमञ्जस्य वीर्यवान् ॥ १६५ ॥ तस्य पुत्रस्तु धर्म्मात्मा दिलीप इति विश्रुतः ॥ दिलीपात्तु महातेजा वीरो जातो भगी
रथः ॥ १६६ ॥ येन गङ्गा सरिच्छ्रेष्ठा विमानैरुपशोभिता ॥ ईजाऽनेन समुद्राद्वै दुहितृत्वेन कल्पिता ॥ अत्राप्युदाहरन्तीमं श्लोकं पौराणिका
जनाः ॥१६७॥ भगीरथस्तु तां गङ्गामानयामास कर्म्मभिः ॥ तस्माद्भागीरथी गङ्गा कथ्यते वंशवित्तमैः ॥ १६८॥ भगीरथसुतश्चापि श्रुतो नाम बभूव
ह ॥ नाभागस्तस्य दायादो नित्यं धर्म्मपरायणः॥१६९॥अम्बरीषः सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत्॥एवं वंशपुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम्॥१७०॥
नाभागेरम्बरीषस्य भुजाभ्यां परिपालिता ॥ बभूव वसुधात्यर्थं तापत्रयविवर्जिता ॥ १७१ ॥ अयुतायुः सुतस्तस्य सिन्धुद्वीपस्य वीर्य्यवान् ॥ अयुता
योस्तु दायाद ऋतुपर्णो महायशाः ॥ १७२ ॥ दिव्याक्षहृदयज्ञोऽसौ राजा नलसखो बली ॥ नलौ द्वाविति विख्यातौ पुराणेषु दृढव्रतौ ॥ १७३ ॥
वीरसेनात्मजश्चैव यश्चेक्ष्वाकुकुलोद्वहः ॥ ऋतुपर्णस्य पुत्रोऽभूत् सर्व्वकामो जनेश्वरः ॥ १७४ ॥ सुदासस्तस्य तनयो राजा हंसमुखोऽभवत् ॥
सुदासस्य सुतः प्रोक्तः सौदासो नाम पार्थिवः ॥ १७५ ॥ ख्यातः कल्माषपादो वै नाम्ना मित्रसहश्च सः ॥ वसिष्ठस्तु महातेजाः क्षेत्रे कल्माषपादके ॥
अश्मकं जनयामास इक्ष्वाकुकुलवृद्धये ॥ १७६ ॥ अश्मकस्योरकामस्तु मूलकस्तत्सुतोऽभवत् ॥ अत्राप्युदाहरन्तीमं मूलकं वै नृपं प्रति ॥ १७७ ॥
स हि रामभयाद्राजा स्त्रीभिः परिवृतोऽवसत् ॥ विवस्त्रस्त्राणमिच्छन् वै नारीकवचमीश्वरः ॥ १७८ ॥ मूलकस्यापि धर्म्मात्मा राजा शतरथः स्मृतः ॥
तस्माच्छतरथाज्जज्ञे राजा चैडविडो बली ॥ १७९ ॥ आसीत्त्वैडविडः श्रीमान् कृतशर्म्मा प्रतापवान् ॥ पुत्रो विश्वमहत्तस्य पुत्रीकस्य व्यजायत
॥१८०॥ दिलीपस्तस्य पुत्रोऽभूत् खट्वाङ्ग इति विश्रुतः ॥ येन स्वर्गादिहागम्य मुहूर्त्तं प्राप्य जीवितम् ॥ त्रयोऽभिसंहिता लोका बुद्ध्या सत्येन चै
व हि ॥ १८१॥ दीर्घबाहुः सुतस्तस्य रघुस्तस्मादजायत ॥ अजः पुत्रो रघोश्चापि तस्माज्जज्ञे स वीर्य्यवान् ॥ राजा दशरथो नाम इक्ष्वाकुकुलनन्दनः ॥
॥१८२॥रामो दाशरथिर्वीरो धर्म्मज्ञो लोकविश्रुतः ॥भरतो लक्ष्मणश्चैव शत्रुघ्नश्च महाबलः॥१८३॥माधवं लवणं हत्वा गत्वा मधुवनञ्च तत् ॥शत्रुघ्नेन पुरी
तस्य मथुरा सन्निवेशिता॥१८४॥ सुबाहुः शूरसेनश्च शत्रुघ्नसहितावुभौ॥पालयामासतुः सूनू वैदेह्या मथुरां पुरीम् ॥१८५॥ अङ्गदश्चन्द्रकेतुश्च लक्ष्मणस्या
त्मजावुभौ ॥ हिमवत्पर्व्वताभ्याशे स्फीतौ जनपदौ तयोः ॥१८६॥ अङ्गदस्याङ्गदीया तु देशे कारपथे पुरी ॥ चन्द्रकेतोस्तु मल्लस्य चन्द्रवक्त्रा पुरी शु
भा ॥१८७॥ भरतस्यात्मजौ वीरौ तक्षः पुष्कर एव च ॥ गान्धारविषये सिद्धे तयोः पुर्यौ महात्मनोः ॥ १८८ ॥ तक्षस्य दिक्षु विख्याता रम्या तक्षशि
ला पुरी॥पुष्करस्यापि वीरस्य विख्याता पुष्करावती॥१८९॥ गाथां चैवात्र गायन्ति ये पुराणविदो जनाः ॥ रामे निबद्धास्तत्त्वार्था माहात्म्यात्तस्य धीमतः

॥ १४९ ॥

योऽसौ निवेशयामास पुरन्देवपुरोपमम् ॥ १ ॥ जयन्तमितिविख्यातं गौतमस्याश्रमाभितः ॥ यस्यान्ववाये यज्ञे वै जनकादपि सत्तमात् ॥ २ ॥
नेमिर्नाम सुधर्म्मात्मा सर्वसत्वनमस्कृतः ॥ आसीत् पुत्रोमहाप्राज्ञ इक्ष्वाकोर्भूरितेजसः ॥ ३ ॥ स शापेन वसिष्ठस्य विदेहः समपद्यत ॥
तस्य पुत्रो मिथिर्नाम जनितः पर्वभिस्त्रिभिः ॥ ४ ॥ अरण्यां मथ्यमानायां प्रादुर्भूतो महायशाः ॥ नाम्ना मिथिरिति ख्यातो जननाज्जनकोऽभवत् ॥ ५ ॥
मिथिर्नाम महावीर्य्यो येनासौ मिथिलाभवत् ॥ राजासौ जनको नाम जनकाच्चाप्युदावसुः ॥ ६ ॥ उदावसोः सुधर्म्मात्मा जनितो नन्दिवर्द्धनः ॥ न
न्दिवर्द्धनतः शूरः सुकेतुर्नाम धार्मिकः ॥ ७ ॥ सुकेतोरपि धर्म्मात्मा देवरातो महाबलः ॥ देवरातस्य धर्म्मात्मा बृहदुच्छ इति श्रुतिः ॥ ८ ॥
बृहदुच्छस्य तनयो महावीर्य्यः प्रतापवान् ॥ महावीर्य्यस्य धृतिमान् सुधृतिस्तस्य चात्मजः ॥ ९ ॥ सुधृतेरपि धर्मात्मा धृष्टकेतुः परन्तपः ॥
धृष्टकेतुसुतश्चापि हर्य्यश्वो नाम विश्रुतः ॥ १० ॥ हर्य्यश्वस्य मरुः पुत्रो मरोः पुत्रः प्रतित्वकः ॥ प्रतित्वकस्य धर्मात्मा राजा कीर्त्तिरथः सुतः ॥ ११ ॥
पुत्रः कीर्त्तिरथस्यापि देवमीढ इति श्रुतः ॥ देवमीढस्य विबुधो विबुधस्य सुतो धृतिः ॥ १२ ॥ महाधृतिसुतो राजा कीर्त्तिराजः प्रतापवान् ॥
कीर्त्तिराजात्मजो विद्वान् महारोमेति विश्रुतः ॥१३॥ महारोम्णस्तु विख्यातः स्वर्णरोमा व्यजायत ॥ स्वर्णरोमात्मजश्चापि ह्रस्वरोमाभवन्नृपः ॥ १४ ॥
ह्रस्वरोमात्मजो विद्वान् सीरध्वज इति श्रुतिः ॥ उद्भिन्ना कृषता येन सीता राज्ञा यशस्विनी ॥ रामस्य महिषी साध्वी सुव्रतातिपतिव्रता ॥ १५ ॥
॥ शांशपायन उवाच ॥ ॥ कथं सीता समुत्पन्ना कृष्यमाणा यशस्विनी ॥ किमर्थञ्चाकृषद्राजा क्षेत्रं यस्मिन् बभूव ह ॥ १६ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ अग्नि
क्षेत्रे कृष्यमाणे अश्वमेधे महात्मनः॥विधिना सुप्रयुक्तेन तस्मात्सातु समुत्थिता॥१७॥सीरध्वजात्तु जातस्तु भानुमान्नाम मैथिलः॥भ्राता कुशध्वजस्तस्य
स काश्यधिपतिर्नृपः॥१८॥तस्य भानुमतः पुत्रः प्रद्युम्नश्च प्रतापवान्॥मुनिस्तस्य सुतश्चापि तस्मादूर्जवहः स्मृतः॥१९॥ऊर्जवहात् सुतद्वाजः शकुनि
स्तस्य चात्मजः ॥ स्वागतः शकुनेः पुत्रः सुवर्च्चास्तत्सुतः स्मृतः ॥ २० ॥ श्रुतो यस्तस्य दायादः सुश्रुतस्तस्य चात्मजः ॥ सुश्रुतस्य जयः पुत्रो
जयस्य विजयः सुतः ॥ २१ ॥ विजयस्य ऋतः पुत्र ऋतस्य सुनयः स्मृतः ॥ सुनयाद्वीतहव्यस्तु वीतहव्यात्मजो धृतिः ॥ २२ ॥ धृतेस्तु बहुलाश्वोऽ
भूद्बहुलाश्वसुतः कृतिः॥तस्मिन् सन्तिष्ठते वंशो जनकानां महात्मनाम् ॥ इत्येते मैथिलाः प्रोक्ताः सोमस्यापि निबोधत ॥ २३ ॥ इति श्रीमहापुराणे
वायुप्रोक्ते वैवस्वतमनुवंशकीर्त्तनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ पिता सोमस्य वै विप्रा जज्ञेऽत्रिर्भगवानृषिः ॥ सोऽति
तस्थौ सर्वलोकान्भगवान्स्वेन तेजसा ॥ १ ॥ कर्म्मणा मनसा वाचा शुभान्येव समाचरन् ॥ काष्ठकुड्यशिलाभूत ऊर्द्ध्वबाहुर्महाद्युतिः ॥ २ ॥

तथा देवर्षिभिश्च ह ॥ नैव व्यसर्जयत्तारां तस्मायाङ्गिरसे तदा ॥ २९ ॥ उशनास्तस्य जग्राह पार्ष्णिमाङ्गिरसो द्विजाः ॥ स हि शिष्यो महातेजाः
पितुः पूर्वं बृहस्पतेः ॥ ३० ॥ तेन स्नेहेन भगवान् रुद्रस्तस्य बृहस्पतेः ॥ पार्ष्णिग्राहोऽभवद्देवः प्रगृह्याजगवन्धनुः ॥ ३१ ॥ तेन ब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः परमास्त्रं
महात्मना ॥ उद्दिश्य देवानुत्सृष्टं येनैषां नाशितं यशः॥३२॥तत्र तद्युद्धमभवत् प्रत्यक्षन्तारकामयम् ॥ देवानां दानवानाञ्च लोकक्षयकरं महत् ॥३३॥
तत्र शिष्टास्त्रयो देवास्तुषिताश्चैव ये स्मृताः ॥ ब्रह्माणं शरणं जग्मुरादिदेवं पितामहम् ॥ ३४ ॥ ततो निवार्योशनसं रुद्रं ज्येष्ठञ्च शङ्करम् ॥ ददावा
ङ्गिरसे तारां स्वयमेव पितामहः ॥ ३५ ॥ अन्तर्वर्त्नीं च तां दृष्ट्वा तारान्ताराधिपाननाम् ॥ गर्भमुत्सृजसे न त्वं विप्रः प्राह बृहस्पतिः ॥ ३६ ॥ मदीया
यां तनौ योनौ गर्भो धार्यः कथञ्चन ॥ अथो नावसृजत्तन्तु कुमारं दस्युहन्तमम् ॥ ३७ ॥ ईषिकास्तम्बमासाद्य ज्वलन्तमिव पावकम् ॥ जातमात्रोऽथ
भगवान् देवानामाक्षिपद्वपुः ॥ ३८ ॥ ततः संशयमापन्नास्तारामकथयन् सुराः ॥ सत्यं ब्रूहि सुतः कस्य सोमस्याथ बृहस्पतेः ॥ ३९ ॥ ह्रीयमाणा
यदा देवान्नाह सा साध्वसाधु वा ॥ तदा तां शप्तुमारब्धः कुमारो दस्युहन्तमः ॥ ४० ॥ सन्निवार्य तदा ब्रह्मा तारां चन्द्रस्य संशयः ॥ यदत्र तथ्यन्तद्ब्रू
हि तारे कस्य सुतस्त्वयम् ॥ ४१ ॥ सा प्राञ्जलिरुवाचेदं ब्रह्माणं वरदं प्रभुम् ॥ सोमस्येति महात्मानं कुमारन्दस्युहन्तमम् ॥ ४२ ॥ ततः स तमुपाघ्राय
सोमो दाता प्रजापतिः ॥ बुध इत्यकरोन्नाम तस्य पुत्रस्य धीमतः ॥ ४३ ॥ प्रतिपूर्व्वञ्च गगने समभ्युत्तिष्ठते बुधैः ॥ उत्पादयामास तदा पुत्रं वै राजपुत्रिका
॥ ४४ ॥ तस्य पुत्रो महातेजा बभूवैलः पुरूरवाः ॥ उर्वश्यां जज्ञिरे तस्य पुत्राः षट् सुमहौजसः ॥४५॥ प्रसह्य धर्षितस्तत्र विवशो राजयक्ष्मणा ॥ ततो यक्ष्मा
भिभूतस्तु सोमः प्रक्षीणमण्डलः ॥ जगाम शरणायाथ पितरं सो त्रिमेव तु ॥ ४६ ॥ तस्य तत्पापशमनं चकारात्रिर्महायशाः ॥ स राजयक्ष्मणा मुक्तः श्रिया
जज्वाल सर्व्वशः ॥ ४७ ॥ एतत्सोमस्य वै जन्म कीर्त्तितं द्विजसत्तमाः ॥ वंशन्तस्य द्विजश्रेष्ठाः कीर्त्यमानं निबोधत ॥ ४८ ॥ धन्यमारोग्यमायुष्यं पुण्यं
कल्मषशोधनम् ॥ सोमस्य जन्म श्रुत्वैव सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४९ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते उपोद्घातपादे सोमोत्पत्तिर्नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८॥
॥ ॥ सूत उवाच ॥ सोमस्य तु बुधः पुत्रो बुधस्य तु पुरूरवाः ॥ तेजस्वी दानशीलश्च यज्वा विपुलदक्षिणः ॥ १ ॥ ब्रह्मवादी पराक्रान्तः शत्रुभिर्यु
धि दुर्जयः॥ आहर्त्ता चाग्निहोत्रस्य यज्वनाञ्च ददौ महीम् ॥ २ ॥ सत्यवाक् कर्म्मबुद्धिश्च कान्तः संवृतमैथुनः ॥ अतीव पुत्रो लोकेषु रूपेणाप्रतिमोऽभव ॥ १५१ ॥
त् ॥ ३ ॥ तं ब्रह्मवादिनं दान्तं धर्मज्ञं सत्यवादिनम् ॥ उर्वशी वरयामास हित्वा मानं यशस्विनी ॥ ४ ॥ तया सहावसद्राजा दशवर्षाणि चाष्ट च ॥
सप्त षट् सप्त चाष्टौ च दश चाष्टौ च वीर्यवान् ॥ ५ ॥ वने चैत्ररथे रम्ये तथा मन्दाकिनीतटे ॥ अलकायां विशालायां नन्दने च वनोत्तमे ॥ ६ ॥

दृष्ट्वा तु राजा तां प्रीतः प्रलापान् कुरुते बहून् ॥ आयाहि तिष्ठ मनसा घोरे वचसि तिष्ठ हे ॥ ३३ ॥ एवमादीनि सूक्ष्माणि परस्परमभाषत ॥ उ
र्व्वशी त्वब्रवीच्चैलं सगर्भाहं त्वया प्रभो ॥ ३४ ॥ संवत्सरात् कुमारस्ते भविता नैव संशयः ॥ निशामेकान्तु वै राजा ह्यवसत्तु तया सह ॥ ३५ ॥
सम्प्रहृष्टो जगामाथ स्वपुरन्तु महायशाः ॥ गते संवत्सरे राजा उर्व्वशीं पुनरागमत् ॥ ३६ ॥ उषित्वा तु तया सार्द्धमेकरात्रं महामनाः ॥ कामा
र्त्तश्चाब्रवीद्दीनो भव नित्यं ममेति वै ॥ ३७ ॥ उर्व्वश्यथाब्रवीच्चैलं गन्धर्वास्ते वरन्ददुः ॥ तं वृणीष्व महाराज ब्रूहि चैतांस्त्वमेव हि ॥ ३८ ॥ वृणे
नित्यं हि सालोक्यं गन्धर्वाणां महात्मनाम् ॥ तथेत्युक्त्वा वरं वव्रे गन्धर्वाश्च तथास्त्विति ॥ ३९ ॥ स्थालीमग्नेः पूरयित्वा गन्धर्व्वाश्च तमब्रुवन् ॥
अनेन इष्ट्वा लोकन्त्वं प्राप्स्यसि त्वं नराधिप ॥ ४० ॥ तमादाय कुमारन्तु नगरायोपचक्रमे ॥ निःक्षिप्य तमरण्याञ्च स पुत्रन्तु गृहं ययौ ॥ ४१ ॥ पुनरा
दाय दृश्याग्निमश्वत्थं तत्र दृष्टवान् ॥ समीपतस्तु तं दृष्ट्वा ह्यश्वत्थं तत्र विस्मितः ॥ ४२ ॥ गन्धर्वेभ्यस्तथाख्याजुमग्निना गां गतस्तु सः ॥ श्रुत्वा त
मर्थमखिलमरणिं तु समादिशत् ॥ ४३ ॥ अश्वत्थादरणिं कृत्वा मथित्वाग्निं यथाविधि ॥ तेनेष्ट्वा तु सलोकं नः प्राप्स्यसि त्वं नराधिप ॥ मथित्वाग्निं
त्रिधा कृत्वा ह्ययजत्स नराधिपः ॥ ४४ ॥ इष्ट्वा यज्ञैर्बहुविधैर्गतस्तेषां सलोकताम् ॥ वासाय च स गन्धर्व्वस्त्रेता यां स महारथः ॥ एकोऽग्निः पूर्वमासीद्वै ऐलस्त्री
स्तानकल्पयत् ॥ ४५ ॥ एवं प्रभावो राजासीदैलस्तु द्विजसत्तमाः ॥ देशे पुण्यतमे चैव महर्षिभिरलङ्कृते ॥ ४६ ॥ राज्यं स कारयामास प्रयागे पृथिवी
पतिः ॥ उत्तरे यामुने तीरे प्रतिष्ठाने महायशाः ॥ ४७ ॥ तस्य पुत्रा बभूवुर्हि षडिन्द्रोपमतेजसः ॥ गन्धर्व्वलोके विदिता आयुर्द्धीमानमावसुः ॥ ४८ ॥
विश्वायुश्च शतायुश्च गतायुश्चोर्वशीसुताः ॥ अमावसोस्तु वै जातो भीमो राजाथ विश्वजित् ॥ ४९ ॥ श्रीमान् भीमस्य दायादो राजासीत्काञ्चनप्रभः ॥
विद्वांस्तु काञ्चनस्यापि सुहोत्रोभून्महाबलः ॥ ५० ॥ सुहोत्रस्याभवज्जह्नुः केशिकागर्भसम्भवः ॥ प्रतिगत्य ततो गङ्गा वितते यज्ञकर्म्मणि ॥ ५१ ॥
प्लावयामास तं देशं भाविनोर्थस्य दर्शनात् ॥ गङ्गया प्लावितं दृष्ट्वा यज्ञवाटं समन्ततः ॥ ५२ ॥ सौहोत्रिर्वरदः क्रुद्धो गङ्गां संरक्तलोचनः ॥ अस्य गङ्गेऽ
वलेपस्य सद्यः फलमवाप्नुहि ॥ ५३ ॥ एतत्ते विफलं सर्व्वं पीतमम्भः करोम्यहम् ॥ राजर्षिणा ततः पीतां गङ्गां दृष्ट्वा सुरर्षयः ॥ ५४ ॥ उपनिन्यु
र्महाभागा दुहितृत्वेन जाह्नवीम् ॥ यौवनाश्वस्य पौत्रीन्तु कावेरीञ्जह्नुरावहत् ॥ ५५ ॥ युवनाश्वस्य शापेन गङ्गा येन विनिर्ममे ॥ कावेरीं सरितां
श्रेष्ठां जह्नुभार्य्यामनिन्दिताम् ॥ ५६ ॥ जह्नुश्च दयितं पुत्रं सुहोत्रं नाम धार्मिकम् ॥ कावेर्य्यां जनयामास अजकस्तस्य चात्मजः ॥ ५७ ॥ अज
कस्य तु दायादो बलाकाश्वो महायशाः ॥ बभूवुश्च गयः शीलः कुशस्तस्यात्मजः स्मृतः ॥ ५८ ॥ कुशपुत्रा बभूवुश्च चत्वारो वेदवर्चसः ॥ कु

परिश्रुता महाभागा कौशिकी सरितां वरा ॥ इक्ष्वाकुवंशे त्वभवत्सुवेणुर्नाम पार्थिवः ॥ ८६ ॥ तस्य कन्या महाभागा कामली नाम रेणुका ॥ रेणुकायान्तु कामल्यां तपोधृतिसमन्वितः ॥ आर्चीको जनयामास जमदग्निः सुदारुणम् ॥ ८७ ॥ सर्वविद्यान्तगं श्रेष्ठं धनुर्वेदस्य पारगम् ॥ रामं क्षत्रियहन्तारं प्रदीप्तमिव पावकम् ॥ ८८ ॥ और्व्वस्यैवमृचीकस्य सत्यवत्यां महामनाः ॥ जमदग्निस्ततो वीर्य्याज्जज्ञे ब्रह्मविदां वरः ॥ मध्यमश्च शुनःशेफः शुनःपुच्छः कनिष्ठकः ॥ ८९ ॥ विश्वामित्रस्तु धर्मात्मा नाम्ना विश्वरथः स्मृतः ॥ जज्ञे भृगुप्रसादेन कौशिकाद्वंशवर्द्धनः ॥ ९० ॥ विश्वामित्रस्य पुत्रस्तु शुनःशेफोऽभवन्मुनिः ॥ हरिश्चन्द्रस्य यज्ञे तु पशुत्वे नियुतः स वै ॥ देवैर्दत्तः स वै यस्माद्देवरातस्ततोऽभवत् ॥९१ ॥ विश्वामित्रस्य पुत्राणां शुनःशेफोऽग्रजः स्मृतः ॥ मधुच्छन्दो नयश्चैव कृतदेवौ ध्रुवाष्टकौ ॥९२॥ कच्छपः पूरणश्चैव विश्वामित्रसुतास्तु वै ॥ तेषां गोत्राणि बहुधा कौशिकानां महात्मनाम् ॥ ९३ ॥ पार्थिवा देवराताश्च याज्ञवल्क्याः समर्षणाः ॥ उदुम्बरा उदुम्लानास्तारका यमसुश्रुताः ॥ ९४ ॥ लोहिण्यो रेणवश्चैव तथा कारीषवः स्मृताः ॥ बभ्रवः पाणिनश्चैव ध्यानजप्यास्तथैव च ॥९५॥ शालावत्या हिरण्याक्षाः स्यङ्कृता गालवाः स्मृताः ॥ देवला यामदूताश्च शालङ्कायनवास्कलाः ॥ ९६ ॥ ददातिवादराश्चान्ये विश्वामित्रस्य धीमतः ॥ ऋष्यन्तरविवाह्यास्ते बहवः कौशिकाः स्मृताः ॥ ९७ ॥ कौशिकासोश्रुमाश्चैव तथान्ये सैंधवायनाः ॥ पौरोरवस्य पुण्यस्य ब्रह्मर्षेः कौशिकस्य तु ॥९८॥ दृषद्वतीसुतश्चापि विश्वामित्रात्तथाष्टकः ॥ अष्टकस्य सुतो यो हि प्रोक्तो जह्नुगणो मया ॥ ९९ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ किं लक्षणेन धर्मेण तपसेह श्रुतेन वा ॥ ब्राह्मण्यं समनुप्राप्तं विश्वामित्रादिभिर्नृपैः ॥ १०० ॥ येन येनाभिधानेन ब्राह्मण्यं क्षत्रिया गताः ॥ विशेषं ज्ञातुमिच्छामि तपसा दानतस्तथा ॥ १०१ ॥ एवमुक्तस्ततो वाक्यमब्रवीदिदमर्थवत् ॥ अन्यायोपगतैर्द्रव्यैराहृत्य यजने धिया ॥ धर्माभिकाङ्क्षी यजते न धर्मफलमश्नुते ॥ १०२ ॥ धर्म्मं चैतं समाख्याय पापात्मा पुरुषाधमः ॥ ददाति दानं विप्रेभ्यो लोकानां दम्भकारणात् ॥ १०३ ॥ जपङ्कृत्वा तथा तीव्रं धनलोभान्निरङ्कुशः ॥ रागमोहान्वितो ह्यन्ते पावनार्थं ददाति यः ॥ १०४ ॥ तेन दत्तानि दानानि अफलानि भवन्त्युत ॥ तस्य धर्म्मप्रवृत्तस्य हिंसकस्य दुरात्मनः ॥१०५॥ एवं लब्ध्वा धनं मोहाद्ददतो यजतश्च ह ॥ संक्लिष्टकर्मणो दानं न तिष्ठति दुरात्मनः ॥ १०६ ॥ न्यायागतानां द्रव्याणां तीर्थे सम्प्रतिपादनम् ॥ कामाननभिसन्धाय यजते च ददाति च ॥ १०७ ॥ स दानफलमाप्नोति तच्च दानं सुखोदयम् ॥ दानेन भोगानाप्नोति स्वर्गं सत्येन गच्छति ॥ १०८ ॥ तपसा तु सुतप्तेन लोकान् विष्टभ्य तिष्ठति ॥ विष्टभ्य स तु तेजस्वी लोकेष्वानन्त्यमश्नुते ॥ १०९ ॥ दानाच्छ्रेयांस्तथा यज्ञो यज्ञाच्छ्रेयस्तथा तपः ॥ संन्यासस्तपसः श्रेयांस्तस्माज्ज्ञानं गुरुः स्मृतम् ॥११०॥ श्रूयन्ते

भगवन् यदि तुष्टस्त्वं पुत्रो मे धृतिमान् भव ॥ तथेति समनुज्ञाय तत्रैवान्तरधीयत ॥ २० ॥ तस्य गेहे समुत्पन्नो देवो धन्वन्तरिस्तदा ॥ काशिराजो महाराजः सर्व्वरोगप्रणाशनः ॥ २१ ॥ आयुर्वेदं भरद्वाजश्चकार सभिषक्क्रियम् ॥ तमष्टधा पुनर्व्यस्य शिष्येभ्यः प्रत्यपादयत् ॥ २२ ॥ धन्वन्तरिसुतश्चापि केतुमानिति विश्रुतः ॥ अथ केतुमतः पुत्रो विभो भीमरथो नृपः ॥ दिवोदास इति ख्यातो वाराणस्यधिपोभवत् ॥२३॥ एतस्मिन्नेव काले तु पुरीं वाराणसीं पुरा ॥ शून्यां विवेशयामास क्षेमको नाम राक्षसः ॥ २४ ॥ शप्ता हि सा पुरी पूर्व्वं निकुम्भेन महात्मना ॥ शून्या वर्षसहस्रं वै भविष्यतीति पुनः पुनः ॥ २५ ॥ तस्यान्तु शप्तमात्रायां दिवोदासः प्रजेश्वरः ॥ विषयान्ते पुरीं रम्यां गोमत्यां सन्न्यवेशयत् ॥ २६ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ वाराणसीं किमर्थन्तां निकुम्भः शप्तवान् पुरा ॥ निकुम्भश्चापि धर्म्मात्मा सिद्धक्षेत्रं शशाप यः ॥२७॥ सूत उवाच ॥ दिवोदासस्तु राजर्षिर्नगरीं प्राप्य पार्थिवः ॥ वसते स महातेजाः स्फीतायां वै नराधिपः ॥ २८ ॥ एतस्मिन्नेव काले तु कृतदारो महेश्वरः ॥ देव्याः स प्रियकामस्तु वसानश्च सुरान्तिके ॥ २९ ॥ देवाज्ञया पारिषदा विश्वरूपास्तपोधनाः ॥ पूर्वोक्तै रूपविशेषैस्तोषयन्ति महेश्वरीम् ॥३०॥ हृष्यति तैर्महादेवो मेना नैव तु हृष्यति ॥ जुगुप्सते सा नित्यञ्च देवं देवीं तथैव च ॥ ३१ ॥ मम पार्श्वे त्वनाचारस्तव भर्त्ता महेश्वरः ॥ दरिद्रः सर्व एवेह अक्लिष्टं लडतेनघे ॥ ३२ ॥ मात्रा तथोक्ता वचसा स्त्रीस्वभावान्न चाक्षमत् ॥ स्मितं कृत्वा तु वरदा हरपार्श्वमथागमत् ॥ ३३ ॥ विषण्णवदना देवी महादेवमभाषत ॥ नेह वत्स्याम्यहं देव नय मां स्वं निवेशनम् ॥ ३४ ॥ तथोक्तस्तु महादेवः सर्व्वाँल्लोकानवेक्ष्य ह ॥ वासार्थं रोचयामास पृथिव्यां तु द्विजोत्तमाः ॥ वाराणसीं महातेजाः सिद्धक्षेत्रं महेश्वरः ॥ ३५ ॥ दिवोदासेन तां ज्ञात्वा निविष्टान्नगरीं भवः ॥ पार्श्वस्थं स समाहूय गणेशं क्षेमकं ब्रवीत् ॥ ३६ ॥ गणेश्वर पुरीङ्गत्वा शून्यां वाराणसीं कुरु ॥ मृदुना चाभ्युपायेन अतिवीर्यः स पार्थिवः ॥ ३७ ॥ ततो गत्वा निकुम्भस्तु पुरीं वाराणसीं पुरा ॥ स्वप्ने सन्दर्शयामास मङ्कनं नाम नापितम् ॥ ३८ ॥ श्रेयस्तेहं करिष्यामि स्थानं मे रोचयानघ ॥ मद्रूपां प्रतिमां कृत्वा नगर्य्यन्ते निवेशय ॥ ३९ ॥ तथा स्वप्ने यथा दृष्टं सर्वं कारितवान् द्विजाः ॥ नगरीद्वार्यनुज्ञाप्य राजानन्तु यथाविधि ॥ ४० ॥ पूजा तु महती चैव नित्यमेव प्रयुज्यते ॥ गन्धैर्धूपैश्च माल्यैश्च प्रेक्षणीयैस्तथैव च ॥ ४१ ॥ अन्नप्रदानयुक्तैश्च अत्यद्भुतमिवाभवत् ॥ एवं सम्पूज्यते तत्र नित्यमेव गणेश्वरः ॥ ४२ ॥ ततो वरसहस्राणि नगराणां प्रयच्छति ॥ पुत्रान् हिरण्यमायूंषि सर्व्वकामांस्तथैव च ॥ ४३ ॥ राज्ञस्तु महिषी श्रेष्ठा सुयशा नाम विश्रुता ॥ पुत्रार्थमागता साध्वी राज्ञा देवी प्रचोदिता ॥ ४४ ॥ पूजान्तु विपुलां कृत्वा देवी पुत्रानयाचत ॥ पुनः पुनरथागम्य बहुशः पुत्रकारणात् ॥ ४५ ॥ न प्रयच्छति पुत्रांस्तु निकुम्भः कारणेन तु ॥ राजा यदि तत् कुप्येत ततः किञ्चित्

गर्गभूमिस्तु वात्स्यो वत्सस्य धीमतः ॥ ७४ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव तयोः पुत्राः सुधार्म्मिकाः ॥ विक्रान्ता बलवन्तश्च सिंहतुल्यपराक्रमाः ॥ ७५ ॥
इत्येते काश्यपाः प्रोक्ता रजेरपि निबोधत ॥ रजेः पुत्रशतान्यासन् पञ्च वीर्यवतो भुवि ॥ राजेयमिति विख्यातं क्षत्रमिन्द्रभयावहम् ॥ ७६ ॥ तदा दैवा
सुरे युद्धे समुत्पन्ने सुदारुणे ॥ देवाश्चैवासुराश्चैव पितामहमथाब्रुवन् ॥ ७७ ॥ आवयोर्भगवन् युद्धे विजेता को भविष्यति ॥ ब्रूहि नः सर्व्वलोकेश
श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ ७८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ योषामर्थाय संग्रामे रजिरात्तायुधः प्रभुः ॥ योत्स्यते ते विजेष्यन्ति त्रींल्लोकान्नात्र संशयः ॥ ७९ ॥
रजिर्यतस्ततो लक्ष्मीर्यतो लक्ष्मीस्ततो धृतिः ॥ यतो धृतिस्ततो धर्मो यतो धर्मस्ततो जयः ॥८०॥ तद्देवा दानवाः सर्वे ततः श्रुत्वा रजेर्जयम् ॥ अभ्ययु
र्जयमिच्छन्तः स्तुवन्तो राजसत्तमम् ॥ ८१ ॥ ते हृष्टमनसः सर्वे राजानं देवदानवाः ॥ ऊचुरस्मज्जयाय त्वं गृहाण वरकार्मुकम् ॥ ८२ ॥ ॥ रजिरु
वाच ॥ अहञ्जेष्यामि नो युद्धे देवान् शक्रपुरोगमान् ॥ इन्द्रो भवामि धर्मात्मा ततो योत्स्यामि संयुगे ॥ ८३ ॥ ॥ दानवा ऊचुः ॥ अस्माकमिन्द्रः
प्रह्लादस्तस्यार्थे विजयामहे ॥ अस्मिंस्तु समये राजंस्तिष्ठेथा देव नोऽदितेः ॥ ८४ ॥ स तथेति ब्रुवन्नेव देवैरप्यभिचोदितः ॥ भविष्यसीन्द्रो जित्वेति देवै
रपि निमन्त्रितः ॥ ८५ ॥ जघान दानवान् सर्व्वान् समक्षं वज्रपाणिनः ॥ स विप्रनष्टां देवानां परमश्रीः श्रियं वशी ॥ ८६ ॥ निहत्य दानवान् सर्व्वान्
व्याजहार रजिः प्रभुः ॥ तं तथा तु रजिं तत्र देवैस्सह शतक्रतुः ॥ ८७ ॥ रजिपुत्रोऽहमित्युक्त्वा पुनरेवाब्रवीद्वचः ॥ इन्द्रोऽसि राजन् देवानां सर्वेषान्नात्र
संशयः ॥ यस्याहमिन्द्रपुत्रस्ते ख्यातिं यास्यामि शत्रुहन् ॥८८॥ स तु शक्रवचः श्रुत्वा वञ्चितस्तेन मायया ॥ तथेत्येवाब्रवीद्राजा प्रीयमाणः शतक्रतुम्
॥ ८९ ॥ तस्मिंस्तु देवसदृशे दिवं प्राप्ते महीपतौ ॥ दायाद्यमिन्द्रादाजह्रुराचारं तनया रजेः ॥ ९० ॥ तानि पुत्रशतान्यस्य तच्च स्थानं शचीपतेः ॥
समक्रामन्त बहुधा स्वर्गलोकं त्रिविष्टपम् ॥ ९१ ॥ ततः काले बहुतिथे समतीते महाबलः ॥ हृतराज्योऽब्रवीच्छक्रो हृतभागो बृहस्पतिम् ॥ ९२ ॥
बदरीफलमात्रं वै पुरोडाशं विधत्स्व मे ॥ ब्रह्मर्षे येन तिष्ठेयं तेजसाप्यायितस्ततः ॥ ९३ ॥ ब्रह्मन् कृशोऽयं विमना हृतराज्यो हृताशनः ॥ हतौजा
दुर्बलो मूढो रजिपुत्रैः प्रसीद मे ॥ ९४ ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ यद्येवं चोदितः शक्र त्वया स्यां पूर्व्वमेव हि ॥ नाभविष्यत् त्वत्प्रियार्थं नाकर्त्तव्यं
ममानघ ॥ ९५ ॥ प्रयतिष्यामि देवेन्द्र तद्धितार्थं महाद्युते ॥ यथा भागञ्च राज्यञ्च अचिरात् प्रतिपत्स्यसे ॥ ९६ ॥ तथा शक्र गमिष्यामि मा
भूत्ते विक्लवं मनः ॥ ततः कर्म्म चकारास्य तेजः संवर्द्धनं महत् ॥ ९७॥ तेषाञ्च बुद्धिसंमोहमकरोद्बुद्धिसत्तमः ॥ ते यदा सस्सुता मूढा रागोत्पन्ना विध
र्म्मिणः ॥९८॥ ब्रह्मद्विषश्च संवृत्ता हतवीर्य्यपराक्रमाः ॥ ततो लेभे सुरैश्वर्य्यमैन्द्रस्थानं तथोत्तमम् ॥९९॥ हत्वा रजिसुतान् सर्वान्कामक्रोधपरायणान् ॥

त्तमः ॥ २५ ॥ स लोहगन्धो व्यनशत्तस्यावसथमेत्य ह ॥ स च दिव्यो रथस्तस्माद्वसोश्चेदिपतेस्तथा ॥ २६ ॥ ततः शक्रेण तुष्टेन लेभे तस्माद्बृह
द्रथः ॥ ततो हत्वा जरासन्धं भीमस्तं रथमुत्तमम् ॥ प्रददौ वासुदेवाय प्रीत्या कौरवनन्दनः ॥ २७ ॥ स जरां प्राप्य राजर्षिर्ययातिर्नहुषात्मजः ॥ पुत्रं
ज्येष्ठं वरिष्ठञ्च यदुमित्यब्रवीद्वचः ॥ २८ ॥ जरावली च मां तात पलितानि च पर्यगुः ॥ काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने ॥ २९ ॥ त्वं
यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ॥ जरां मे प्रतिगृह्णीष्व तं यदुः प्रत्युवाच ह ॥ ३० ॥ अनिर्दिष्टा मया भिक्षा ब्राह्मणस्य प्रतिश्रुता ॥ सा च व्यायामसाध्या
वै न ग्रहीष्यामि ते जराम् ॥ ३१ ॥ जराया बहवो दोषा यानभोजनकारिणः ॥ तस्माज्जरान्न ते राजन् ग्रहीतुमहमुत्सहे ॥ ३२ ॥ सितश्मश्रुधरो दीनो जरया शिथि
लीकृतः ॥ वली सन्नतगात्रश्च दुर्दशो दुर्बलाकृतिः ॥ ३३ ॥ अशक्तः कार्यकरणे परिभूतस्तु यौवने ॥ महोपभीतिभिश्चैव तां जरान्नाभिकामये ॥ ३४ ॥
सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप ॥ प्रतिगृह्णन्तु धर्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै ॥ ३५ ॥ स एवमुक्तो यदुना तीव्रकोपसमन्वितः ॥
उवाच वदतां श्रेष्ठो ज्येष्ठं तं गर्हयन् सुतम् ॥ ३६ ॥ आश्रमः कश्च वान्योऽस्ति को वा धर्मविधिस्तव ॥ मामनादृत्य दुर्बुद्धे यदात्थ नवदेशिक ॥ ३७ ॥
एवमुक्त्वा यदुं राजा शशापैनं स मन्युमान् ॥ यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि ॥ ३८ ॥ तस्मान्न राज्यभाग् मूढ प्रजा ते वै भविष्यति ॥
तुर्वसो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ॥ ३९ ॥ ॥ तुर्वसुरुवाच ॥ ॥ न कामये जरां तात कामभोगप्रणाशिनीम् ॥ जराया बहवो दोषाः
पानभोजनकारिणः ॥ तस्माज्जरां न ते राजन् ग्रहीतुमहमुत्सहे ॥ ४० ॥ ॥ ययातिरुवाच ॥ ॥ यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वन्न प्रयच्छसि ॥
तस्मात् प्रजा समुच्छेदं तुर्वसो तव यास्यति ॥ ४१ ॥ असङ्कीर्णा च धर्म्मेण प्रतिलोमवरेषु च ॥ पिशिताशिषु चान्येषु मूढ राजा भविष्यसि ॥ ४२ ॥
गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यग्योनिगतेषु वा ॥ पशुधर्म्मेषु म्लेच्छेषु भविष्यति न संशयः ॥ ४३ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ एवन्तु तुर्वसुं शप्त्वा ययातिः सुतमा
त्मनः ॥ शर्मिष्ठायाः सुतं द्रुह्युमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ४४ ॥ द्रुह्यो त्वं प्रतिपद्यस्व वर्णरूपविनाशिनीम् ॥ जरां वर्षसहस्रं वै यौवनं स्वन्ददस्व मे ॥ ४५ ॥
पूर्णे वर्षसहस्रे ते प्रतिदास्यामि यौवनम् ॥ स्वञ्चादास्यामि भूयोऽहं पाप्मानं जरया सह ॥ ४६ ॥ ॥ द्रुह्युरुवाच ॥ न गजं न रथं नाश्वं जीर्णो भुङ्क्ते
न च स्त्रियम् ॥ न सङ्गश्चास्य भवति न जरान्तेन कामये ॥ ४७ ॥ ॥ ययातिरुवाच ॥ यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वन्न प्रयच्छसि ॥ तस्माद्द्रुह्यो
प्रियः कामो न ते सम्पत्स्यते क्वचित् ॥ ४८ ॥ नौप्लवोत्तरसञ्चारस्तत्र नित्यं भविष्यति ॥ अराजभ्राजवंशस्त्वं तत्र नित्यं भविष्यसि ॥ ४९ ॥ अनो
त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह ॥ एवं वर्षसहस्रन्तु चरेयं यौवनेन ते ॥ ५० ॥ ॥ अनुरुवाच ॥ ॥ जीर्णः शिशुवरं दत्ते जरया ह्यशुचिः सदा ॥

धर्म्मं समनुपालय ॥ ७८ ॥ ॥ ययातिरुवाच ॥ ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः सर्वे शृण्वन्तु मे वचः ॥ ज्येष्ठं प्रति यथा राष्ट्रं न देयं मे कथञ्चन ॥ ७९ ॥ मातापित्रोर्वचनकृत्सहितपुत्रः प्रशस्यते ॥ मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालितः ॥ ८० ॥ प्रतिकूलं पितुर्यश्च न स पुत्रः सतां मतः ॥ स पुत्रः पुत्रवद्यश्च वर्त्तते पितृमातृषु ॥ ८१ ॥ यदुनाहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनापि च ॥ द्रुह्युणा चानुना चैवमप्यवज्ञा कृता भृशम् ॥ ८२ ॥ पूरुणा तु कृतं वाक्यं मानितश्च विशेषतः ॥ कनीयान् मम दायादो जरा येन धृता मम ॥ सर्वकामः सर्वकृतः पूरुणा पुत्रकारिणा ॥ ८३ ॥ शुक्रेण च वरो दत्तः काव्येनोशनसा स्वयम् ॥ पुत्रो यस्त्वानुवर्त्तेत स राजा ते महामते ॥८४॥ भवतोऽनुमतोप्येवं पूरू राष्ट्रेऽभिषिच्यताम् ॥ यः पुत्रो गुणसम्पन्नो मातापित्रोर्हितः सदा ॥ सर्वमर्हति कल्याणं कनीयानपि स प्रभुः ॥ ८५ ॥ अर्हः पूरुरिदं राष्ट्रं यः प्रियः प्रियकृत्तव ॥ वरदानेन शुक्रस्य न शक्यं वक्तुमुत्तरम् ॥ ८६ ॥ पौरजानपदैस्तुष्टैरित्युक्तो नाहुषस्तदा ॥ अभिषिच्य ततः पूरुं स्वराष्ट्रे सुतमात्मनः ॥ ८७ ॥ दिशि दक्षिणपूर्वस्यां तुर्वसुं तु न्यवेशयत् ॥ दक्षिणापरतो राजा यदुं श्रेष्ठं न्यवेशयत् ॥ ८८ ॥ प्रतीच्यामुत्तरस्यां च द्रुह्युञ्चानुञ्च तावुभौ ॥ सप्तद्वीपां ययातिस्तु जित्वा पृथ्वीं ससागराम् ॥ व्यभजत्पञ्चधा राजा पुत्रेभ्यो नाहुषस्तदा ॥ ८९ ॥ तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्तना ॥ यथा प्रदेशं धर्म्मज्ञैर्धर्म्मेण प्रतिपाल्यते ॥ ९० ॥ एवं विसृज्य पृथिवीं पुत्रेभ्यो नाहुषस्तदा ॥ पुत्रसंक्रामितश्रीस्तु प्रीतिमानभवन्नृपः ॥ ९१ ॥ धनुर्न्यस्य पृषत्कांश्च राज्यञ्चैव सुतेषु तु ॥ प्रीतिमानभवद्राजा भारमावेश्य बन्धुषु ॥ ९२ ॥ अत्र गाथा महाराज्ञा पुरा गीता ययातिना ॥ योऽभिप्रेत्याहरन् कामान् कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ॥ ९३ ॥ न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥ हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ ९४ ॥ यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ॥ नालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ॥ ९५ ॥ यदा तु कुरुते भावं सर्वभूतेषु पावकम् ॥ कर्म्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ ९६ ॥ यदा परान्न बिभेति यदा त्वस्मान्न बिभ्यति ॥ यदा नेच्छति न द्वेष्टि ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ ९७ ॥ या दुस्त्यजा दुर्म्मतिभिर्या न जीर्यति जीर्य्यतः ॥ दोषाप्राणान्तिको रागस्तां तृष्णान्त्यजतः सुखम् ॥९८॥ जीर्य्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः ॥ जीविताशा धनाशा च जीर्य्यतोपि न जीर्यति ॥९९॥ यच्चाकामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत् सुखम् ॥ तृष्णाक्षयसुखस्यैते कलां नार्हति षोडशीम् ॥१००॥ एवमुक्त्वा स राजर्षिः सदारः प्रस्थितो वनम् ॥ भृगुतुङ्गे तपस्तप्त्वा तत्रैव च महायशाः ॥ पालयित्वा व्रतशतं तत्रैव स्वर्गमाप्नुयात् ॥ १०१ ॥ तस्य वंशास्तु पञ्चैते पुण्या देवर्षिसत्कृताः ॥ यैर्व्याप्ता पृथिवी कृत्स्ना सूर्यस्येव गभस्तिभिः ॥१०२॥ धन्यः प्रजावानायुष्मान् कीर्तिमांश्च भवेन्नरः ॥ ययातेश्चरितं सर्वं पठञ्छृण्वन् द्विजोत्तमः ॥१०३॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते चन्द्र

भ्रूकुटिसन्नादा शङ्किताभ्येति नर्मदा ॥२८॥ पुरा स तामनुतरन्नवगाढो महार्णवम् ॥ चकारोद्वृत्य वेलान्तं स कालः प्रावृषोद्गमम् ॥ २९ ॥ तस्य बाहु
सहस्रेण क्षोभ्यमाणे महोदधौ ॥ भवन्ति लीना निश्चेष्टाः पातालस्था महासुराः ॥३०॥ चूर्णीकृतमहावीचिलीनमीनमहाविषाः ॥ पतिता विद्धफेनौघमाव
र्त्तक्षिप्तदुस्सहम् ॥ ३१ ॥ चकार क्षोभयन्राजा दोःसहस्रेण सागरम् ॥ देवासुरपरिक्षिप्तं क्षीरोदमिव सागरम् ॥३२॥ मन्दरक्षोभणकृता ह्यमृतोदकशङ्कि
ताः ॥ सहसोत्पादिता भीता भीमं दृष्ट्वा नृपोत्तमम् ॥३३॥ नतानिश्चलमूर्द्धानो बभूवुश्च महोरगाः ॥ सायाह्ने कदलीषण्डा निर्वातस्तिमिता इव ॥ ३४ ॥
स वै बद्ध्वा धनुर्ज्यांन उत्सिक्तः पञ्चभिः शतैः ॥ लङ्कायां मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात् ॥ निर्जित्य बद्ध्वा चानीय माहिष्मत्यां बबन्ध तम् ॥ ३५ ॥
ततो गत्वा पुलस्त्यस्तु अर्जुनं च प्रसादयत् ॥ मुमोच राजा पौलस्त्यं पुलस्त्येनानुपालितम् ॥ ३६ ॥ तस्य बाहुसहस्रस्य बभूव ज्यातलस्वनः ॥ युगा
न्तेम्बुदवृक्षस्य स्फुटितस्याशनेरिव ॥ ३७ ॥ अहो मृधे महावीर्यो भार्गवो यस्य सोऽच्छिनत् ॥ मृधे सहस्रं बाहूनां हेमतालवनं यथा ॥ ३८ ॥ तृषितेन
कदाचित्स भिक्षितश्चित्रभानुना ॥ स ददौ भिक्षां चित्रभानोः सप्तद्वीपां विशाम्पतिः ॥ ३९ ॥ पुराणि घोषान् ग्रामांश्च पत्तनानि च सर्वशः ॥ जज्वाल
तस्य बाणेषु चित्रभानुर्दिधक्षया ॥ ४० ॥ स तस्य पुरुषेन्द्रस्य प्रभावेण महायशाः ॥ ददाह कार्त्तवीर्यस्य शैलांश्चापि वनानि च ॥ ४१ ॥ स शून्य
माश्रमं सर्वं वरुणस्यात्मजस्य वै ॥ ददाह सवनद्वीपांश्चित्रभानुः सहैहयः ॥ ४२ ॥ संलेभे वरुणः पुत्रं पुरा भास्वन्तमुत्तमम् ॥ वसिष्ठनाम्ना स मुनिः
ख्यातश्चापः श्रितः श्रुतः ॥४३॥ तत्रापदस्तदा क्रोधादर्जुनं शप्तवान्विभुः ॥ यस्मान्न वर्जितमिदं वनं ते मम हैहय ॥४४॥ तस्मात् ते दुष्करं कर्म्म कृतमन्यो
हनिष्यति ॥ अर्जुनो नाम कौन्तेयो न च राजा भविष्यति ॥४५॥ अर्जुन त्वां महावीर्यो रामः प्रहरतां वरः ॥ छित्त्वा बाहुसहस्रं वै प्रमथ्य तरसा बली ॥४६॥ तप
स्वी ब्राह्मणश्चैव वधिष्यति महाबलः ॥ तस्य रामस्तदा ह्यासीन्मृत्युः शापेन धीमतः ॥४७॥ राज्ञा तेन वरश्चैव स्वयमेव वृतः पुरा ॥ तस्य पुत्रशतं ह्यासीत्
पञ्च तत्र महारथाः ॥४८॥ कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्म्मात्मानो यशस्विनः ॥ शूरश्च शूरसेनश्च धृष्टाद्यं वृष एव च ॥४९॥ जयध्वजश्च वै पुत्रा अवान्तेषु
विशांपतेः ॥ जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घः प्रतापवान् ॥ ५० ॥ तस्य पुत्रशतं ह्येव तालजङ्घा इति श्रुतम् ॥ तेषां पञ्च गणाः ख्याता हैहयानां महा
त्मनाम् ॥ ५१ ॥ वीरहोत्रा ह्यसङ्ख्याता भोजाश्चावर्तयस्तथा ॥ तुण्डिकेराश्च विक्रान्तास्तालजङ्घास्तथैव च ॥ ५२ ॥ वीरहोत्रसुतश्चापि अनन्तो नाम
पार्थिवः ॥ दुर्जयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामित्रदर्शनः ॥५३॥ अनष्टद्रव्यता चैव तस्य राज्ञो बभूव ह ॥ प्रभावेण महाराजः प्रजास्ताः पर्य्यपालयत् ॥५४॥
न तस्य वित्तनाशश्च नष्टं प्रतिलभेत सः ॥ कार्त्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमतः ॥५५॥ वित्तवान् भवत्यत्रैव धर्म्मश्चास्य विवर्द्धते ॥ यथा त्वष्टा यथा

तः ॥ २४ ॥ पुत्रस्तु रुक्मकवचो विद्वान् कम्बलबर्हिषः ॥ निहत्य रुक्मकवचः पुरा कवचिनो रणे ॥ २५ ॥ धन्विनो निशितैर्बाणैरवाप श्रियमुत्तमाम् ॥ ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तमश्वमेधमहायशाः ॥ २६ ॥ राज्ञस्तु रुक्मकवचादपरावृत्त्य वीरहाः ॥ जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महासत्त्वा महाबलाः ॥ २७ ॥ रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः परिघो हरिः ॥ परिघश्च हरिश्चैव विदेहेस्थापयत्पिता ॥ २८ ॥ रुक्मेषुरभवद्राजा पृथुरुक्मस्तदाश्रयः ॥ तेभ्यः प्रव्राजितो राज्याज्ज्यामघोऽभवदाश्रमे ॥ २९ ॥ प्रशान्तस्तु वने घोरे ब्राह्मणेनावबोधितः ॥ जगाम धनुरादाय देशमन्यं रथी ध्वजी ॥ ३० ॥ नर्म्मदानूप एकाकी मेकलावृत्तिका अपि ॥ ऋक्षवन्तं गिरिं गत्वा शुक्तिमन्यामथाविशत् ॥ ३१ ॥ ज्यामघस्याभवद्भार्या शैब्या बलवती भृशम् ॥ अपुत्रोऽपि स वै राजा भार्यामन्यां न विन्दति ॥३२॥ तस्यासीद्विजयो युद्धे ततः कन्यामवाप सः॥भार्यामुवाच राजा स स्नुषेति तु नरेश्वरः॥३३॥ एवमुक्ताब्रवीदेवं कस्येयं नृपते स्नुषेति सा॥यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्या भविष्यति॥३४॥तस्य सा तपसोग्रेण शैब्या वैशं प्रसूयत॥पुत्रं विदर्भं सुभगा शैब्या परिणता सती॥३५॥ राजपुत्रौ तु विद्वांसौ स्नुषायां क्रथुकौशिकौ ॥ पुत्रौ विदर्भोऽजनयच्छूरौ रणविशारदौ ॥ ३६ ॥ लोमपादं तृतीयन्तु पश्चाज्जज्ञे सुधार्मिकः ॥ लोमपादात्मजो बस्तुराहृतिस्तस्य चात्मजः ॥३७॥ कौशिकस्य चिदिः पुत्रस्तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः॥क्रथो विदर्भपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत् ॥३८॥ कुन्तेर्धृष्टसुतो जज्ञे पुरो धृष्टः प्रतापवान् ॥ धृष्टस्य पुत्रो धर्मात्मा निर्वृतिः परवीरहा ॥ ३९ ॥ तस्य पुत्रो दशार्हस्तु महाबलपराक्रमः ॥ दशार्हस्य सुतो व्योमा ततो जीमूत उच्यते ॥ ४० ॥ जीमूतपुत्रो विकृतिस्तस्य भीमरथः सुतः ॥ अथ भीमरथस्यासीत् पुत्रो रथवरः किल ॥ ४१ ॥ दाता धर्म्मरतो नित्यं शीलसत्यपरायणः ॥ तस्य पुत्रो नवरथस्ततो दशरथः स्मृतः ॥ ४२ ॥ तस्य चैकादशरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः ॥ तस्मात् करम्भको धन्वी देवरातोऽभवत्ततः ॥ ४३ ॥ देवक्षत्रोऽभवद्राजा देवरातिर्महायशाः ॥ देवक्षत्रसुतो जज्ञे देवनः क्षत्रनन्दनः ॥ ४४ ॥ देवनात् स मधुर्जज्ञे यस्य मेधार्थसम्भवः ॥ मधोश्चापि महातेजा मनुर्मनुवशस्तथा ॥ ४५ ॥ नन्दनश्च महातेजा महापुरुवशस्तथा ॥ आसीत् पुरुवशात् पुत्रः पुरुद्वान् पुरुषोत्तमः ॥ ४६ ॥ जज्ञे पुरुद्वतः पुत्रो भद्रवत्यां पुरूद्वहः ॥ ऐक्ष्वाकी त्वभवद्भार्या सत्त्वस्तस्यामजायत ॥ सत्त्वात् सत्त्वगुणोपेतः सात्त्वतः कीर्तिवर्द्धनः ॥ ४७ ॥ इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः ॥ प्रजावानेति सायुज्यं राज्ञः सोमस्य धीमतः ॥ ४८ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते ज्यामघवृत्तान्तकथनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ७ ॥

॥ सूत उवाच ॥

॥ सात्वती रूपसम्पन्नं कौशल्या सुषुवे सुतम् ॥ भाजिनं भजमानं च दिव्यं देवावृधं नृपम् ॥ १ ॥ अन्धकञ्च महाभोजं वृष्णिञ्च यदुनन्दनम् ॥ तेषां हि सर्गाश्चत्वारः शृणुध्वं विस्तरेण वै ॥ २ ॥ भज

सेनजिते दिव्यं मणिरत्नं स्यमन्तकम् ॥ ददौ भ्रात्रे नरपतिः प्रेम्णा शक्रजिदुत्तमम् ॥ ३० ॥ स्यमन्तको नाम मणिर्यस्य राष्ट्रे स्थितो भवेत् ॥ कालवर्षी च पर्जन्यो न च व्याधिभयं तदा ॥ ३१ ॥ लिप्सां चक्रे प्रसेनात्तु मणिरत्नं स्यमन्तकम् ॥ गोविन्दो न च तं लेभे शक्तोऽपि न जहार च ॥ ३२ ॥ कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः ॥ स्यमन्तककृते सिंहाद्वधं प्राप्तः सुदारुणम् ॥ ३३ ॥ जाम्बवानृक्षराजस्तु तं सिंहं निजघान वै ॥ आदाय च मणिं दिव्यं स्वं बिलं प्रविवेश ह ॥ ३४ ॥ तत्कर्म कृष्णस्य ततो वृष्ण्यन्धकमहत्तराः ॥ मणौ गृध्नुन्तु मन्वानास्तमेव विशशङ्किरे ॥ ३५ ॥ मिथ्याभिशस्ति तेभ्यस्तां बलवानरिसूदनः ॥ अमृष्यमाणो भगवान् वनं स विचचार ह ॥ ३६ ॥ स तु प्रसेनमृगयामचरत्तत्र चाप्यथ ॥ प्रसेनस्य पदं गृह्य पुरुषैराप्तकारिभिः ॥ ३७ ॥ ऋक्षवन्तं गिरिवरं विन्ध्यञ्च नगमुत्तमम् ॥ अन्वेषणपरिश्रान्तः स ददर्श महामनाः ॥ ३८ ॥ साश्वं हतं प्रसेनं तं नाविन्दत्तत्र वै मणिम् ॥ अथ सिंहः प्रसेनस्य शरीरस्याविदूरतः ॥ ३९ ॥ ऋक्षेण निहतो दृष्टः पादैर्ऋक्षस्य सूचिताम् ॥ पदैरन्वेषयामास गुहामृक्षस्य यादवः ॥ ४० ॥ महत्यतिबिले वाणीं शुश्राव प्रमदेरिताम् ॥ धात्र्या कुमारमादाय सुतं जाम्बवतो द्विजाः ॥ प्रीतिमत्याथ मणिना मा रोदीरित्युदीरिताम् ॥ ४१ ॥ ॥ धात्र्युवाच ॥ प्रसेनमवधीत् सिंहः सिंहो जाम्बवता हतः ॥ सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः ॥ ४२ ॥ व्यक्तीकृतश्च शब्दं तं तूर्णं सोऽपि ययौ बिलम् ॥ अपश्यच्च बिलाभ्याशे प्रसेनमवदारितम् ॥ ४३ ॥ प्रविश्य चापि भगवांस्तदृक्षबिलमञ्जसा ॥ ददर्श ऋक्षराजानं जाम्बवन्तमुदारधीः ॥ ४४ ॥ युयुधे वासुदेवस्तु बिले जाम्बवता सह ॥ बाहुभ्यामेव गोविन्दो दिवसानेकविंशतिम् ॥ ४५ ॥ प्रविष्टे च बिलं कृष्णे वासुदेवपुरःसराः ॥ पुनर्द्वारवतीमेत्य हतं कृष्णं न्यवेदयन् ॥ ४६ ॥ वासुदेवस्तु निर्जित्य जाम्बवन्तं महाबलम् ॥ लेभे जाम्बवतीं कन्यामृक्षराजस्य सम्मताम् ॥ ४७ ॥ भगवत्तेजसा ग्रस्तो जाम्बवान् प्रसभं मणिम् ॥ सुतां जाम्बवतीमाशु विष्वक्सेनाय दत्तवान् ॥ ४८ ॥ मणिं स्यमन्तकं चैव जग्राहात्मविशुद्धये ॥ अनुनीय ऋक्षराजं निर्ययौ च तदा बिलात् ॥ ४९ ॥ एवं स मणिमादाय विशोध्यात्मानमात्मना ॥ ददौ सत्राजिते तं वै मणिं सात्वतसन्निधौ ॥ ॥ ५० ॥ कन्यां पुनर्जाम्बवतीमुवाह मधुसूदनः ॥ तस्मान्मिथ्याभिशापात् स व्यमुच्यत जनार्दनः ॥ ५१ ॥ इमां मिथ्याभिशस्तिं यः कृष्णस्येह व्यपोहिताम् ॥ वेद मिथ्याभिशस्तिः स नाभिशस्यति कर्हिचित् ॥ ५२ ॥ दशास्त्वभ्यो भार्याभ्यः शत्रुजितः शतं सुताः ॥ ख्यातिमन्तस्त्रयस्तेषां भङ्गकारस्तु पूर्वजः ॥ वीरो व्रतपतिश्चैव ह्यपस्वान्तश्च सुप्रियः ॥ ५३ ॥ अथ द्वारवती नाम भङ्गकारस्य सुप्रजा ॥ सुषुवे सा कुमारीस्तु तिस्रो रूपगुणान्विताः ॥ ५४ ॥ सत्यभामोत्तमा स्त्रीणां व्रतिनीव दृढव्रता ॥ तथा तपस्विनी चैव पिता कृष्णस्य तां ददौ ॥ ५५ ॥ यत्तत् सत्राजिते कृष्णो मणिरत्नं स्यमन्तकम् ॥

प्रसाद्य तु ततो विप्रा वृष्ण्यन्धकमहारथैः ॥ आनीतो द्वारकामेव कृष्णेन च महात्मना ॥ ८४ ॥ अक्रूरमन्धकैः सार्द्धमुपायात् पुरुषर्षभः ॥ युद्धे ह
त्वा तु शत्रुघ्नं सह बन्धुमता बली ॥ ८५ ॥ श्वफल्कतनयायान्तु नरार्थां नरसत्तमौ ॥ भङ्गकारस्य तनयौ विश्रुतौ सुमहाबलौ ॥ ८६ ॥ ज
ज्ञातेऽन्धकमुख्यस्य शत्रुघ्नो बन्धुमांश्च तौ ॥ वधार्थं भङ्गकारस्य कृष्णो न प्रीतिमान् भवेत् ॥ ८७ ॥ ज्ञातिभेदभयाद्भीतः समुपेक्षितवांस्त
था ॥ अपयाते तथाक्रूरे नावर्षत्पाकशासनः ॥ ८८ ॥ अनावृष्ट्या हतं राष्ट्रमभवत्तद्बहुधोद्यतम् ॥ ततः प्रसादयामासुरक्रूरं कुकुरान्धकाः ॥८९॥
पुनर्द्वारवतीं प्राप्ते तदा दानपतौ तथा ॥ प्रववर्ष सहस्राक्षः कुक्षौ जलनिधेस्ततः ॥ ९० ॥ कन्याञ्च वासुदेवाय स्वसारं शीलसम्मताम् ॥
अक्रूरः प्रददौ श्रीमान् प्रीत्यर्थं यदुपुङ्गवः ॥ ९१ ॥ अथ विज्ञाय योगेन कृष्णो बभ्रुगतं मणिम् ॥ सभामध्ये तदा प्राह तमक्रूरं जनार्दनः
॥ ९२ ॥ यच्च रत्नं मणिवरं तव हस्तगतं प्रभो ॥ तत् प्रयच्छस्व मानार्ह विमतिञ्चात्र मा कृथाः ॥ ९३ ॥ षष्टिवर्षगते काले यद्रोषोऽभूत्तदा
मम ॥ सुसंरूढः सकृत् प्राप्तस्तत्कालाश्रित्य स महान् ॥ ९४ ॥ ततः कृष्णस्य वचनात् सर्वसात्वतसंसदि ॥ प्रददौ तं मणिं बभ्रुरक्लेशेन
महामतिः ॥ ९५ ॥ तत आर्जवसंप्राप्तबभ्रुहस्तादरिन्दमः ॥ ददौ प्रहृष्टमनसा तं मणिं बभ्रवे पुनः ॥ ९६ ॥ स कृष्णहस्तात् संप्राप्य
मणिरत्नं स्यमन्तकम् ॥ आबद्धय गान्दिनीपुत्रो विरराजांशुमानिव ॥ ९७ ॥ इमां मिथ्याभिशस्तिं यो विशुद्धामपि चोत्तमाम् ॥ वेद
मिथ्याभिशस्तिं स न व्रजेच्च कथञ्चन ॥ ९८ ॥ अनिमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद्वृष्णिनन्दनात् ॥ ९९ ॥ सत्यवाक् सत्यसम्पन्नः सत्यकस्तस्य चात्म
जः ॥ सात्यकिर्युयुधानस्य तस्य भूतिः सुतोऽभवत् ॥ १०० ॥ भूतेर्युगन्धरः पुत्र इति भौत्याः प्रकीर्त्तिताः ॥ जज्ञाते तनयौ पृश्नेः श्वफल्कश्चित्रकश्च
यः ॥ १०१ ॥ श्वफल्कस्तु महाराजो धर्मात्मा यत्र वर्त्तते ॥ नास्ति व्याधिभयं तत्र न चावृष्टिभयं तथा ॥१०२॥ कदाचित् काशिराजस्य विभोस्तु
द्विजसत्तमाः ॥ त्रीणि वर्षाणि विषये नावर्षत्पाकशासनः ॥ १०३ ॥ स तत्र वासयामास श्वफल्कं परमार्चितम् ॥ श्वफल्कपरिवासेन प्रावर्षत्पाकशा
सनः ॥ १०४ ॥ श्वफल्कः काशिराजस्य सुतां भार्यामनिन्दिताम् ॥ गान्दिनीं नाम गां सा हि ददौ विप्राय नित्यशः ॥ १०५ ॥ सा मातुरुदरस्था
वै बहुवर्षशतान् किल ॥ वसति स्म न वै जज्ञे गर्भस्थान्तां पिताब्रवीत् ॥ १०६ ॥ जायस्व शीघ्रं भद्रन्ते किमर्थं चापि तिष्ठसि ॥ प्रोवाच चैनं गर्भ
स्था सा कन्या गौर्दिने दिने ॥ १०७ ॥ यदि दत्ता तदा स्यां हि यदि स्यामीहतां पितः ॥ तथेत्युवाच तां तस्याः पिता काममपूपुरत् ॥ १०८ ॥
दाता यज्वा च शूरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः ॥ तस्याः पुत्रः स्मृतोऽक्रूरः श्वफल्को भूरिदक्षिणः ॥ १०९ ॥ उपमङ्गुस्तथा मङ्गुर्मृदुरश्चारिमेजयः ॥

शोणितः श्वेतवाहनः॥१३६॥ शमी च गदवर्मा च निदातः शक्रशक्रजित् ॥ शमिपुत्रः प्रतिक्षत्रः प्रतिक्षत्रस्य चात्मजः ॥१३७॥ स्वयम्भोजः [illegible]
हृदिकः सम्बभूव ह ॥ हृदिकस्य सुतास्त्वासन् दश भीमपराक्रमाः ॥ १३८ ॥ कृतवर्मा कृतस्तेषां शतधन्वा तु मध्यमः ॥ देवार्हश्च वनार्हश्च भिषग्
द्वैतरथश्च यः ॥ १३९ ॥ सुदान्तश्च धियान्तश्च नकवान् कनकोद्भवः ॥ देवार्हस्य सुतो विद्वान् जज्ञे कम्बलबर्हिषः ॥ १४० ॥ असमौजाः सुतस्तस्य
सुमहौजाश्च विश्रुतः ॥ अजातपुत्राय ततः प्रददावसमौजसे ॥ सुदंष्ट्रश्च सुरूपश्च कृष्ण इत्यन्धकाः स्मृताः ॥ १४१ ॥ अन्धकानामिमं वंशं कीर्त्तया
नस्तु नित्यशः ॥ आत्मानो विपुलं वंशं लभते नात्र संशयः ॥ १४२॥ अश्मक्यां जनयामास शूरो वै देवमातुषिम्॥माष्यान्तु जनयामास शूरो वै देव
मीढुषम् ॥१४३॥ भाष्यान्तु जज्ञिरे शूराद्भोजायां पुरुषा दश ॥ वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः॥१४४॥जज्ञे तस्य प्रसूतस्य दुन्दुभिःप्राणदद्दिवि॥
आनकानाञ्च संह्रादः सुमहानभवाद्दिवि ॥ १४५ ॥ पपात पुष्पवर्षञ्च शूरस्य भवने महत् ॥ मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपि रूपे नास्ति समो भुवि ॥१४६॥
यस्यासीत् पुरुषाग्र्यस्य कीर्त्तिश्चन्द्रमसो यथा॥देवभागस्ततो जज्ञे ततो देवश्रवाः पुनः ॥१४७॥ अनाधृष्टिकडश्चैव नन्दनश्चैव भृञ्जिनः ॥ श्यामः शमीको
गण्डूषः चतस्रस्तु वराङ्गनाः ॥१४८॥ पृथा च श्रुतदेवा च श्रुतकीर्त्तिः श्रुतश्रवाः॥राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः॥१४९॥पृथां दुहितरञ्चक्रे कुन्ति
स्तां पाण्डुरावहत्॥अनपत्याय वृद्धाय कुन्तिभोजाय तां ददौ॥१५०॥ तस्मात् कुन्तीति विख्याता कुन्तिभोजात्मजा पृथा॥कुरुवीरः पाण्डुमुख्यस्तस्मा
द्भार्य्यामविन्दत ॥ १५१ ॥ पृथा जज्ञे ततः पुत्रान् त्रीनग्निसमतेजसः ॥ लोके प्रतिरथान् वीरान् शक्रतुल्यपराक्रमान् ॥ १५२ ॥ धर्माद्युधिष्ठिरं पु
त्रं मारुताच्च वृकोदरम् ॥ इन्द्राद्धनञ्जयञ्चैव पृथा पुत्रानजीजनत् ॥ १५३ ॥ माद्रवत्यान्तु जनितावाश्विनाविति विश्रुतम् ॥ नकुलः सहदेवश्च रूपसत्त्व
गुणान्वितौ ॥ १५४ ॥ जज्ञे च श्रुतदेवायां तनयो वृद्धशर्मणः ॥ करूषाधिपतिर्वीरो न्तवक्रो महाबलः ॥१५५॥ कैकेय्यां श्रुतकीर्त्यान्तु जज्ञे सन्त
र्दनः पुनः ॥ चेकितानबृहत्क्षत्रौ तथैवान्यौ महाबलौ ॥ १५६ ॥ विन्दानुविन्दावावन्त्यौ भ्रातरौ सुमहाबलौ ॥ श्रुतश्रवायां चैद्यस्तु शिशुपालो बभूव
ह ॥ १५७ ॥ दमघोषस्य राजर्षेः पुत्रो विख्यातपौरुषः ॥ यः पुरासीद्दशग्रीवः संबभूवारिमर्दनः ॥ १५८ ॥ यदुश्रवानुजस्तस्य रुजकन्योनुजस्तथा ॥
पत्न्यस्तु वसुदेवस्य त्रयोदश वराङ्गनाः ॥ १५९ ॥ पौरवी रोहिणी चैव मदिरा चापरा तथा ॥ तथैव भद्रा वैशाखी देवकी सप्तमी तथा ॥ १६० ॥
सुगन्धिर्वनराजी च द्वे चान्ये परिचारिके ॥ रोहिणी पौरवी चैव वाल्मीकस्यात्मजाभवत् ॥ १६१ ॥ ज्येष्ठा पत्नी महाभागा दयितानकदुन्दुभेः ॥
ज्येष्ठं लेभे सुतं रामं सारणं निशठं तथा ॥ १६२ ॥ दुर्दमं दमनं शुभ्रं पिण्डारककुशीतकौ ॥ चित्रां नाम कुमारीश्च रौहिण्यष्टौ व्यजायत॥१६३॥

तपाश्च कोधनुश्चैव विरजाः श्यामसृञ्जिमौ ॥ अनपत्योऽभवच्छ्यामः श्यामकस्तु वनं ययौ ॥ जुगुप्समानो भोजत्वं राजर्षित्वमवाप्नुयात् ॥ १९० ॥
य इदं जन्म कृष्णस्य पठते नियतव्रतः ॥ श्रावयेद्ब्राह्मणश्चापि सुमहत्सुखमाप्नुयात् ॥ १९१ ॥ देवदेवो महातेजाः पूर्वं कृष्णः प्रजापतिः ॥ विहा
रार्थं मनुष्येषु जज्ञे नारायणः प्रभुः ॥ १९२ ॥ देवक्यां वसुदेवेन तपसा पुष्करेक्षणः ॥ चतुर्बाहुः स विज्ञेयो दिव्यरूपः श्रियान्वितः ॥ १९३ ॥
प्रकाशो भगवान् योगी कृष्णो मानुषमागतः ॥ अव्यक्तोऽव्यक्तलिङ्गस्थः स एव भगवान् प्रभुः ॥ १९४ ॥ नारायणो यतश्चक्रे प्रभवं चाव्ययो
हि सः ॥ देवो नारायणो भूत्वा हरिरासीत्सनातनः ॥ १९५ ॥ योऽसृजच्चादिपुरुषं पुरा चक्रे प्रजापतिम् ॥ अदितेरपि पुत्रत्वमेत्य यादवनन्दनः ॥
देवो विष्णुरिति ख्यातः शक्रादवरजोऽभवत् ॥ १९६ ॥ प्रसादजं यस्य विभोरदित्याः पुत्रकारणम् ॥ वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवरक्षसाम् ॥१९७॥
ययातिवंशजस्याथ वसुदेवस्य धीमतः ॥ कुलं पुण्यं यतः कर्म्म भेजे नारायणः प्रभुः ॥ १९८ ॥ सागराः समकम्पन्त चेलुश्च धरणीधराः ॥ जज्वलुश्चा
ग्निहोत्राणि जायमाने जनार्दने ॥ १९९ ॥ शिवाश्च प्रववुर्वाताः प्रशान्तिमभवद्रजः ॥ ज्योतींष्यभ्यधिकं रेजुर्जायमाने जनार्दने ॥ २०० ॥ अभिजिन्नाम
नक्षत्रं जयन्ती नाम शर्वरी ॥ मुहूर्तो विजयो नाम यत्र जातो जनार्दनः ॥२०१॥ अव्यक्तः शाश्वतः कृष्णो हरिर्नारायणः प्रभुः ॥ जायते स्मैव भगवान्न
यनैर्मोहयन् प्रजाः ॥ २०२ ॥ आकाशात् पुष्पवृष्टीश्च ववर्ष त्रिदशेश्वरः ॥ गीर्भिर्मङ्गलयुक्ताभिः स्तुवन्तो मधुसूदनम् ॥ महर्षयः सगन्धर्वा उपतस्थुः
सहस्रशः ॥ २०३ ॥ वसुदेवस्तु तं रात्रौ जातं पुत्रमधोक्षजम् ॥ श्रीवत्सलक्षणं दृष्ट्वा दिवि दिव्यैः सुलक्षणैः ॥ उवाच वसुदेवः स्वं रूपं संहर वै प्रभो
॥ २०४ ॥ भीतोऽहं कंसतस्तात एतदेव ब्रवीम्यहम् ॥ मम पुत्रा हतास्तेन ज्येष्ठास्तेऽद्भुतदर्शनाः ॥ २०५ ॥ वसुदेववचः श्रुत्वा रूपं स हृतवान् प्र
भुः ॥ अनुज्ञातः पिता त्वेनं नन्दगोपगृहं गतः ॥ उग्रसेनगृहे तिष्ठन् यशोदायै तदा ददौ ॥ २०६ ॥ तुल्यकालन्तु गर्भिण्यौ यशोदा देवकी तथा ॥
यशोदा नन्दगोपस्य पत्नी सा नन्दगोपतेः ॥ २०७ ॥ यामेव रजनीं कृष्णो जज्ञे वृष्णिकुलप्रभुः ॥ तामेव रजनीं कन्यां यशोदापि व्यजायत ॥२०८ ॥
तं जातं रक्षमाणस्तु वसुदेवो महायशाः ॥ प्रादात् पुत्रं यशोदायै कन्यान्तु जगृहे स्वयम् ॥ २०९॥ दत्त्वैनं नन्दगोपस्य रक्ष मामिति चाब्रवीत् ॥ सु
तस्ते सर्व्वकल्याणो यादवानां भविष्यति ॥ अयं स गर्भो देवक्या अस्मत् क्लेशान्हनिष्यति ॥ २१० ॥ उग्रसेनात्मजायाश्च कन्यामानकदुन्दुभिः ॥
निवेदयामास तदा कन्येति शुभलक्षणा ॥ २११ ॥ स्वसार्या तनयं कंसो जातं नैवावधारयत् ॥ अथ तामपि दुष्टात्मा ह्युत्ससर्ज मुदान्वितः ॥२१२॥
हता वै या यदा कन्या जपत्येष वृथामतिः ॥ कन्या सा ववृधे तत्र वृष्णिसद्मनि पूजिता ॥ २१३ ॥ पुत्रवत्परिपाल्यन्तो देवा देवान् यथा तदा ॥

था ॥ २३८ ॥ जरान्धकस्ताम्रवक्षा भौमरिश्च जरन्धमः ॥ चतस्रो जज्ञिरे तेषां स्वसारो गरुडध्वजात् ॥ २३९ ॥ भानुर्भौमरिका चैव ताम्रपर्णी जर
न्धमा ॥ सत्यभामासुतानेताञ्जाम्बवत्याः प्रजाः शृणु ॥ २४० ॥ भद्रश्च भद्रगुप्तश्च भद्रविन्दस्तथैव च ॥ सप्तबाहुश्च विख्यातः कन्याः भद्रावती
तथा ॥ सम्बोधनी च विख्याता ज्ञेया जाम्बवतीसुताः ॥ २४१ ॥ संग्रामजिच्च शतजित् तथैव च सहस्रजित् ॥ एते पुत्राः सुदेव्याश्च विष्वक्सेनस्य
कीर्त्तिताः ॥ २४२ ॥ वृको वृकाश्वो वृकजिद्वृजिनी च सुराङ्गना ॥ मित्रबाहुः सुनीथश्च नाग्नजित्याः प्रजास्त्विह ॥२४३॥ एवमादीनिपुत्राणां सहस्रा
णि निबोधत ॥ प्रयुतन्तु समाख्यातं वासुदेवस्य ये सुताः ॥ २४४ ॥ अयुतानि तथाष्टौ च शूरा रणविशारदाः ॥ जनार्दनस्य वंशो वः कीर्त्तितोऽयं
यथातथम् ॥ ॥ २४५ ॥ बृहती नर्तकोन्नेयी सुनये सङ्गता तथा ॥ कन्या सा बृहदुच्छस्य शौनेयस्य महात्मनः ॥ २४६ ॥ तस्याः पुत्रास्तु वि
ख्यातास्त्रयः समितिशोभनाः ॥ अङ्गदः कुमुदः श्वेतः कन्या श्वेता तथैव च ॥ २४७ ॥ अवगाहश्च चित्रश्च शूरश्चित्ररथश्च यः ॥ चित्रसेनः सुत
श्चास्य कन्या चित्रवती तथा ॥ २४८ ॥ तुम्बश्च तुम्बबाणश्च जनस्तम्बश्च तावुभौ ॥ उपाङ्गस्य स्मृतौ द्वौ तु वज्रारः क्षिप्र एव च ॥ २४९ ॥ भू
रींद्रसेनो भूरिश्च गवेषस्य सुतावुभौ ॥ युधिष्ठिरस्य कन्या तु सुतनुर्नाम विश्रुता ॥ २५० ॥ तस्यामश्वसुतो जज्ञे वज्रो नाम महायशाः ॥ वज्रस्य प्र
तिबाहुस्तु सुचारुस्तस्य चात्मजः ॥२५१॥ काश्मा सुपार्श्वं तनयं जज्ञे साम्बा तरस्विनम् ॥ तिस्रः कोट्यस्तु पुत्राणां यादवानां महात्मनाम् ॥२५२॥
षष्टिंशतसहस्राणि वीर्य्यवन्तो महाबलाः ॥ देवांशाः सर्व्व एवेह उत्पन्नास्ते महौजसः ॥ २५३ ॥ दैवासुरे हता ये च असुरा वै महातपाः ॥ इहोत्पन्ना
मनुष्येषु बाधन्ते सर्व्वमानवान् ॥ तेषामुत्सादनार्थन्तु उत्पन्ना यादवे कुले ॥ २५४ ॥ कुलानि दश चैकञ्च यादवानां महात्मनाम् ॥ सर्व्व
मेककुलं यद्वद्वर्त्तते वैष्णवे कुले ॥ २५५ ॥ विष्णुस्तेषां प्रमाणे च प्रभुत्वे च व्यवस्थितः ॥ निदेशस्थायिभिस्तस्य बद्ध्यन्ते सर्व मानुषाः ॥२५६॥
इति प्रसूतिर्वृष्णीनां समासव्यासयोगतः ॥ कीर्त्तिता कीर्त्तनाच्चैव कीर्त्तिसिद्धिमभीप्सिताम् ॥ २५७ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते विष्णुवंशा
नुकीर्त्तनं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥ छ ॥ मनुष्यप्रकृतीन् देवान् कीर्त्यमानान्निबोधत ॥ सङ्कर्षणो वासुदेवः प्रद्युम्नः साम्ब एव च ॥ १ ॥ अनि
रुद्धश्च पञ्चैते वंशवीराः प्रकीर्त्तिताः ॥ सप्तर्षयः कुवेरश्च यक्षो मणिवरस्तथा ॥ २ ॥ शालकी बदरश्चैव विद्वान् धन्वन्तरिस्तथा ॥ नन्दिन
श्च महादेवः शालङ्कायन उच्यते ॥ आदिदेवस्तदा जिष्णुरेभिश्च सह दैवतैः ॥ ३ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ विष्णुः किमर्थं सम्भूतः स्मृताः
सम्भूतयः कति ॥ भविष्याः कति वान्ये तु प्रादुर्भावा महात्मनः ॥ ४ ॥ ब्रह्मक्षेत्रे युगान्तेषु किमर्थमिह जायते ॥ पुनः पुनर्म्मनुष्येषु तन्नः प्रब्रूहि

॥ ३२ ॥ त्रयो वर्णास्त्रयो लोकास्त्रैविद्यं पावकास्त्रयः ॥ त्रैकाल्यं त्रीणि कर्म्माणि तिस्रो मायास्त्रयो गुणाः ॥ ३३ ॥ सृष्टा लोकाः सुराश्चैव येनात्यन्तेन कर्म्मणा ॥ सर्व्वभूतगणाः सृष्टाः सर्व्वभूतगणात्मना ॥ ३४ ॥ नृणामिन्द्रियपूर्व्वेण योगेन रमते च यः ॥ गतागतानां यो नेता सर्व्वत्र विविधेश्वरः ॥ ३५ ॥ यो गतिर्धर्म्मयुक्तानामगतिः पापकर्म्मणाम् ॥ चातुर्वर्ण्यस्य प्रभवश्चातुर्वर्ण्यस्य रक्षिता ॥ ३६ ॥ चातुर्विद्यस्य यो वेत्ता चतुराश्रमसंश्रयः ॥ दिगन्तरं नभो भूमिरापो वायुर्विभावसुः ॥ ३७ ॥ चन्द्रसूर्य्यद्वयं ज्योतिर्युगेशः क्षणदाचरः ॥ यः परः श्रूयते देवो यः परं श्रूयते तपः ॥ ३८ ॥ यः परन्तपः प्रादुर्यः परम्परमात्मवान् ॥ आदित्यादिस्तु यो देवो यश्च दैत्यान्तको विभुः ॥ ३९ ॥ युगान्तेष्वन्तको यश्च यश्च लोकान्तकान्तकः ॥ सेतुर्यो लोकसेतूनां मेध्यो यो मेध्यकर्म्मणाम् ॥ ४० ॥ वेद्यो यो वेदविदुषां प्रभुर्यः प्रभवात्मनाम् ॥ सोमभूतस्तु भूतानामग्निभूतोऽग्निवर्चसाम् ॥ ४१ ॥ मनुष्याणां मनोभूतस्तपोभूतस्तपस्विनाम् ॥ विनयो नयवृत्तानां तेजस्तेजस्विनामपि ॥ ४२ ॥ विग्रहो विग्रहाणां यो गतिर्गतिमतामपि ॥ आकाशप्रभवो वायुर्वायुप्राणो हुताशनः ॥ ४३ ॥ दिवा हुताशनप्राणाः प्राणोऽग्नेर्मधुसूदनः ॥ रसोऽभवच्छोणितं वै शोणितान्मांसमुच्यते ॥ ४४ ॥ मांसात्तु मेदसो जन्म मेदसोऽस्थि निरूप्यते ॥ अस्थ्नो मज्जा समभवन्मज्जातः शुक्रसम्भवः ॥ ४५ ॥ शुक्राद्गर्भः समभवद्रसमूलेन कर्म्मणा ॥ तत्रापि प्रथमश्चापस्ताः सौम्यराशिरुच्यते ॥ ४६ ॥ गर्भोष्मसम्भवो ज्ञेयो द्वितीयो राशिरुच्यते ॥ शुक्रं सोमात्मकं विद्यादार्त्तवं पावकात्मकम् ॥ ४७ ॥ भावौ रसानुगावेतौ वीर्य्यं च शशिपावकौ ॥ कफवर्गेऽभवच्छुक्रं पित्तवर्गे च शोणितम् ॥ ४८ ॥ कफस्य हृदयं स्थानं नाभ्यां पित्तं प्रतिष्ठितम् ॥ देहस्य मध्ये हृदयं स्थानन्तु मनसः स्मृतम् ॥ ४९ ॥ नाभिकोष्ठान्तरं यत्तु तत्र देवो हुताशनः ॥ मनः प्रजापतिर्ज्ञेयं कफः सोमो विभाव्यते ॥ ५० ॥ पित्तमग्निः स्मृतावेतावग्निसोमात्मकं जगत् ॥ एवं प्रवर्त्तितो गर्भो वर्त्ततेऽम्बुदसन्निभः ॥ ५१ ॥ वायुः प्रवेशनं चक्रे सङ्गतः परमात्मना ॥ स पञ्चधा शरीरस्थो विद्यते वर्द्धयेत् पुनः ॥ ५२ ॥ प्राणापानौ समानश्च उदानो व्यान एव च ॥ प्राणोऽस्य परमात्मानं वर्द्धयन् परिवर्त्तते ॥ ५३ ॥ अपानः पश्चिमं कायमुदानोर्द्ध्वशरीरगः ॥ व्यानो व्यानस्यते येन समानः सर्व्वसन्धिषु ॥ ५४ ॥ भूतावाप्तिस्ततस्तस्य जायतेन्द्रियगोचरा ॥ पृथिवी वायुराकाशमापो ज्योतिश्च पञ्चमम् ॥ ५५ ॥ सर्व्वेन्द्रिया निविष्टास्ते स्वं स्वं योगं प्रचक्रिरे ॥ पार्थिवं देहमाहुस्तं प्राणात्मानं च मारुतम् ॥ ५६ ॥ छिद्राण्याकाशयोनीनि जलास्रावं प्रवर्त्तते ॥ तेजश्चक्षुःष्विता ज्योत्स्ना तेषां यन्नामतः स्मृतम् ॥ सङ्ग्रामा विषयाश्चैव यस्य वीर्य्यात्प्रवर्त्तिताः ॥ ५७ ॥ इत्येतान् पुरुषः सर्व्वान् सृजँल्लोकान् सनातनः ॥ नैधनेऽस्मिन् कथं लोके नरत्वं विष्णुरागतः ॥ ५८ ॥ एष नः संशयो धीमन्नेष वै विस्मयो महान् ॥ कथं गतिर्गतिमतामापन्नो मानुषीं तनुम्

मृतेन विजितौ षण्डामार्कौ तु दैवतैः ॥ ८६ ॥ एते दैवासुरा वृत्ताः संग्रामा द्वादशैव तु ॥ देवासुरक्षयकराः प्रजानामशिवाय च ॥ ८७ ॥
हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुदं बभौ ॥ तथा शतसहस्राणि ह्यधिकानि द्विसप्ततिः ॥ अशीतिं च सहस्राणि त्रैलोक्यस्यैश्वरोऽभवत् ॥ ८८॥ पर्याये त
स्य राजाऽनु बलिर्वर्षार्बुदं पुनः ॥ षष्टिं चैव सहस्राणि त्रिंशतं नियुतानि च ॥ ८९ ॥ बलेराज्याधिकारस्तु यावत्कालं बभूव ह ॥ प्रह्लादेन गृहीतोऽभू
त्तावत्कालं तदासुरैः ॥ ९० ॥ इन्द्रास्त्रयस्ते विख्याता असुराणां महौजसः ॥ दैत्यसंस्थमिदं सर्वमासीद्दशयुगं किल ॥ ९१ ॥ असपत्नं ततः सर्वं राष्ट्रं
दशयुगं पुरा ॥ त्रैलोक्यमव्ययमिदं महेन्द्रेण तु पाल्यते ॥ ९२ ॥ प्रह्लादस्य ततश्चादस्त्रैलोक्यं कालपर्ययात् ॥ पर्यायेण च संप्राप्ते त्रैलोक्ये पाकशास
नः ॥ ९३ ॥ ततोऽसुरान् परित्यज्य यज्ञो देवा उपागमन् ॥ यज्ञे देवानथ गते काव्यं ते ह्यसुराब्रुवन् ॥ ९४ ॥ कृतं नो मिषतां राष्ट्रं त्यक्त्वा यज्ञं पुनर्ग
ताः ॥ स्थातुं न शक्नुमो ह्यद्य प्रविशामो रसातलम् ॥ ९५॥ एवमुक्तोऽब्रवीदेतान् विषण्णः सान्त्वयन् गिरा ॥ माभैष्ट धारयिष्यामि तेजसा स्वेन चासु
राः ॥ ९६ ॥ वृष्टिरोषधयश्चैव रसा वसु च यद्द्वयम् ॥ कृत्स्ना मयि च तिष्ठन्ति पादस्तेषां सुरेषु वै ॥ युष्मदर्थं प्रदास्यामि तत्सर्वं धार्यते मया ॥ ९७॥
ततो देवासुरान् दृष्ट्वा धृतान् काव्येन धीमता ॥ अमन्त्रयंस्तदा ते वै संविग्ना विजिगीषया ॥ ९८ ॥ एष काव्य इदं सर्वं व्यावर्त्तयति नो बलात् ॥
साधु गच्छामहे तूर्णं क्षीणान्नाप्याययस्व तान् ॥ प्रसह्य हत्वा शिष्टान् वै पातालं प्रापयामहे ॥ ९९ ॥ ततो देवाः सुसंरब्धा दानवानभिसृत्य वै ॥ ज
घ्नुस्तैर्वध्यमानास्ते काव्यमेवाभिदुद्रुवुः ॥ १०० ॥ ततः काव्यस्तु तान्दृष्ट्वा तूर्णं देवैरभिद्रुतान् ॥ समरेऽस्त्रक्षतार्त्तांस्तान् देवेभ्यस्तान् दितेः सुतान् ॥
॥ १०१ ॥ काव्यो दृष्ट्वा स्थितान् देवान् तत्र देवोऽभ्यचिन्तयत् ॥ तानुवाच ततो ध्यात्वा पूर्ववृत्तमनुस्मरन् ॥ १०२ ॥ त्रैलोक्यं विजितं सर्वं वामनेन
त्रिभिः क्रमैः॥ बलिर्बद्धो हतो जम्भो निहतश्च विरोचनः ॥ १०३ ॥ महासुरा द्वादशसु संग्रामेषु सुरैर्हताः ॥ तैस्तैरुपायैर्भूयिष्ठा निहता ये प्रधानतः ॥
॥१०४॥ किञ्चिच्छिष्टास्तु वै यूयं युद्धेष्वन्त्येषु वै स्वयम् ॥ नीतिं वो हि विधास्यामि कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ॥१०५॥ यास्याम्यहं महादेवं मन्त्रा
र्थे विजयाय वः ॥ अग्निमाप्याययेद्धोता मन्त्रैरेव बृहस्पतिः ॥ १०६ ॥ ततो यास्याम्यहं देवं मन्त्रार्थे नीललोहितम् ॥ युष्माननुग्रहीष्यामि पुनः पश्चा
दिहागतः ॥ १०७ ॥ यूयं तपश्चरध्वं वै संवृता वल्कलैर्वने ॥ न वै देवा वधिष्यन्ति यावदागमनं मम ॥ १०८ ॥ अप्रतीपांस्ततो मन्त्रान् देवात् प्राप्य
महेश्वरात् ॥ योत्स्यामहे पुनर्देवांस्ततः प्राप्स्यथ वै जयम् ॥ १०९ ॥ ततस्ते कृतसंवादा देवानूचुस्ततोऽसुराः ॥ न्यस्तवादा वयं सर्वे लोकान् यूयं
क्रमन्तु वै॥११०॥वयं तपश्चरिष्यामः संवृता वल्कलैर्वने ॥ प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा सत्यव्याहरणं तु तत् ॥१११॥ततो देवा निवृत्ता वै विज्वरा मुदिताश्च

॥ १६६ ॥

शीघ्रकारी सुरारिहा॥ स्त्रिया विष्णुस्ततो देव्या क्रूरं बुद्ध्वा चिकीर्षितम्॥क्रुद्धस्तदस्त्रमाविद्ध्य शिरश्चिच्छेद माधवः ॥१३९॥ तं दृष्ट्वा स्त्रीवधं घोरं चुक्रोध
भृगुरीश्वरः॥ततोऽभिशप्तो भृगुणा विष्णुर्भार्य्यावधे तदा॥१४०॥यस्मात्ते जानता धर्म्मानवध्या स्त्री निषूदिता ॥ तस्मात्त्वं सप्तकृत्वो वै मानुषेषु प्रजास्य
सि॥१४१॥ततस्तेनाभिशापेन नष्टे धर्मे पुनः पुनः॥ लोके सर्वहितार्थाय जायते मानुषेष्विह॥१४२॥अनुव्याहृत्य विष्णुं स तदादाय शिरः स्वयम् ॥
समानीय ततः काये अपो गृह्येदमब्रवीत् ॥ १४३ ॥ एष त्वां विष्णुना सत्ये हतां संजीवयाम्यहम् ॥ यदि कृत्स्नो मया धर्मश्चरितो ज्ञायतेऽपि वा ॥
तेन सत्येन जीवस्व यदि सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ १४४ ॥ सत्याभिव्याहृता तस्य देवी संजीविता तदा ॥ तदा तां प्रोक्ष्य शीताभिरद्भिर्जीवेति सोऽब्रवी
त् ॥ १४५ ॥ ततस्तां सर्वभूतानि दृष्ट्वा सुप्तोत्थितामिव ॥ साधु साध्विति सहसा वाचस्ताः सस्वरुर्दिशः ॥ १४६ ॥ दृष्ट्वा सञ्जीवितां देवीं
तां भृगुणा तदा ॥ मिषतां सर्वभूतानां तदद्भुतमिवाभवत् ॥ १४७॥ असंभ्रान्तेन भृगुणा पत्नीं सञ्जीवितां ततः ॥ दृष्ट्वा शक्रो न लेभेऽथ शर्म काव्यभ
यात्ततः ॥१४८॥ प्रजागरे ततश्चेन्द्रो जयन्तीमात्मनः सुताम् ॥ प्रोवाच मतिमान् वाक्यं स्वां कन्यां पाकशासनः॥१४९॥एष काव्यो ह्यनिन्द्राय घोरं
दारुणं तपः ॥ तेनाहं व्याकुलः पुत्रि कृतो धृतिमता दृढम् ॥१५०॥ गच्छ सम्भावयस्वैनं श्रमापनयनैः शुभैः ॥ तैस्तैर्मनोनुकूलैश्च ह्युपचारैस्तमृद्विजा
॥ १५१ ॥ देवी सा हीन्द्रदुहिता जयन्ती शुभचारिणी ॥ शुरुध्यानस्थ शान्त्यं तन्दुर्बलं धृतिमास्थितम् ॥ १५२ ॥ पित्रा यथोक्तं काव्यं सा कृतवे
कृतवती तदा ॥ गीर्भिश्चैवानुकूलाभिः स्तुवती वल्गुभाषिणी ॥ १५३ ॥ गात्रसंवाहनैः काले सेवमाना सुखावहैः ॥ शुश्रूषन्त्यनुकूला च उवास बहु
लाः समाः ॥ १५४ ॥ पूर्णे धूम्रव्रते चापि घोरे वर्षसहस्रिके ॥ वरेण च्छन्दयामास काव्यं प्रीतोऽभवत्तदा ॥ १५५ ॥ एवं व्रतं त्वयैकेन चीर्णं नान्ये
न केनचित् ॥ तस्मात्त्वं तपसा बुद्ध्या श्रुतेन च बलेन च ॥ १५६ ॥ तेजसा चापि विबुधान् सर्वानभिभविष्यसि ॥ यच्च किञ्चिन्मम
ब्रह्मन् विद्यते भृगुनन्दन ॥ १५७ ॥ साङ्गं सरहस्यञ्च यज्ञोपनिषदान्तथा ॥ प्रतिभास्यति ते सर्वं तच्चावन्तं न कस्यचित् ॥ १५८ ॥
सर्वाभिभावी तेन त्वं द्विजश्रेष्ठो भविष्यसि ॥ एवं दत्त्वा वरांस्तस्मै भार्गवाय पुनः पुनः ॥ १५९ ॥ अजेयत्वं धनेशत्वमवध्यत्वं च वै ददौ ॥ एतान्
लब्ध्वा वरान् काव्यः सम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥१६०॥ हर्षात् प्रादुर्बभौ तस्य देवस्तोत्रं महेश्वरम् ॥ तदा तिर्यक्स्थितस्त्वेवं तुष्टुवे नीललोहितम् ॥ १६१ ॥
नमोऽस्तु शितिकण्ठाय सुरापाय सुवर्चसे ॥ रिरिहाणाय लोपाय वत्सराय जगत्पते॥१६२॥ कपर्दिने ह्यूर्द्ध्वरोम्णे हयाग करणाय च ॥ संस्कृताय सुती
र्थाय देवदेवाय रंहसे ॥ १६३ ॥ उष्णीषिणे सुवक्राय सहस्राक्षाय मीढुषे ॥ वसुरेताय रुद्राय तपसे चीरवाससे ॥ १६४ ॥ ह्रस्वाय मुक्तकेशाय सेना

नांपतये चैव भूतानांपतये नमः ॥ प्रणवे ऋग्यजुःसाम्ने स्वधायै च सुधाय च ॥ १९३ ॥ वषट्कारतमायैव तुभ्यमन्तात्मने नमः ॥ स्रष्ट्रे धात्रे तथा होत्रे हंत्रे च क्षपणाय च ॥ १९४ ॥ भूतभव्यभवायैव तुभ्यङ्कालात्मने नमः ॥ वसवे चैव साध्याय रुद्रादित्याश्विनाय च ॥१९५॥ विश्वाय मरुते चैव तुभ्यन्देवात्मने नमः ॥ अग्निसोमर्त्विगिज्याय पशुमन्त्रौषधाय च ॥ १९६ ॥ दक्षिणावभृथायैव तुभ्यं यज्ञात्मने नमः ॥ तपसे चैव सत्याय त्यागाय च शमाय च ॥ १९७ ॥ अहिंसायाप्यलोभाय सुवेशायातिशाय च ॥ सर्वभूतात्मभूताय तुभ्यं योगात्मने नमः ॥ १९८ ॥ पृथिव्यै चान्तरिक्षाय दिवाय च महाय च ॥ जनस्तपाय सत्याय तुभ्यं लोकात्मने नमः ॥ १९९ ॥ अव्यक्तायाथ महते भूतायैवेन्द्रियाय च ॥ तन्मात्राय महान्ताय तुभ्यन्तत्त्वात्मने नमः॥२००॥नित्याय चार्थलिङ्गाय सूक्ष्माय चेतनाय च॥शुद्धाय विभवे चैव तुभ्यं नित्यात्मने नमः॥२०१॥नमस्ते त्रिषु लोकेषु स्वरान्तेषु भवादिषु॥सत्यान्तेषु महान्तेषु चतुर्षु च नमोऽस्तु ते॥२०२॥ नमः स्तोत्रे मया ह्यस्मिन् सदसद्व्याहृतं विभो ॥ मद्भक्त इति ब्रह्मण्य सर्वन्तत् क्षन्तुमर्हसि॥२०३॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते विष्णुमाहात्म्ये शम्भुस्तवकीर्त्तनं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५ ॥छ॥ सूत उवाच ॥ एवमाराध्य देवेशमीशानं नीललोहितम् ॥ ब्रह्मेति प्रणतस्तस्मै प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥ काव्यस्य गात्रं संस्पृश्य हस्तेन प्रीतिमान् भवः ॥ निकामं दर्शनं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत ॥ २ ॥ ततः सोऽन्तर्हिते तस्मिन् देवेशानुचरे तदा ॥ तिष्ठन्तीं प्राञ्जलिर्भूत्वा जयन्तीमिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ कस्य त्वं सुभगे का वा दुःखिते मयि दुःखिता॥महता तपसा युक्तं किमर्थं माञ्जुगोपसि ॥४॥ अनया सततं भक्त्या प्रश्रयेण दमेन च ॥ स्नेहेन चैव सुश्रोणि प्रीतोऽस्मि वरवर्णिनि ॥५॥ किमिच्छसि वरारोहे कस्ते कामः समृध्यताम् ॥ तं ते संपूरयाम्यद्य यद्यपि स्यात् सुदुर्लभम् ॥ ६ ॥ एवमुक्ताऽब्रवीदेनं तपसा ज्ञातुमर्हसि ॥ चिकीर्षितं मे ब्रह्मिष्ठ त्वं हि वेत्थ यथातथम् ॥ ७ ॥ एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा ॥ माहेन्द्री त्वं वरारोहे मद्धितार्थमिहागता ॥ ८ ॥ मया सह त्वं सुश्रोणि दश वर्षाणि भामिनि ॥ अदृश्यं सर्वभूतैस्तु संप्रयोगमिहेच्छसि ॥ ९ ॥ देवेन्द्रानलवर्णाभे वरारोहे सुलोचने ॥ इमं वृणीष्व कामं ते मत्तो वै वल्गुभाषिणि ॥ १० ॥ एवं भवतु गच्छामो गृहान् वै मत्तकाशिनि ॥ ततः स्वगृहमागम्य जयन्त्या सहितः प्रभुः ॥ ११ ॥ स तया संवसद्देव्या दश वर्षाणि भागशः ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां मायया संवृतस्तदा ॥ १२ ॥ कृतार्थमागतं दृष्ट्वा काव्यं सर्वे दितेः सुताः ॥ अभिजग्मुर्गृहं तस्य मुदितास्ते दिदृक्षवः ॥ १३ ॥ गता यदा न पश्यन्तो जयन्त्या संवृतं गुरुम् ॥ दाक्षिण्यं तस्य तद्बुद्ध्वा प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥ १४ ॥ बृहस्पतिस्तु संरुद्धं ज्ञात्वा काव्यं चकार ह ॥ पित्रर्थं दश वर्षाणि जयन्त्या हितकाम्यया ॥ १५ ॥ बुद्ध्वा तदन्तरं सोऽथ दैत्यानामिव चोदितः ॥ काव्यस्य

रवाङ्मुखाः ॥ तानागतान् पुनर्दृष्ट्वा काव्यो याज्यानुवाच ह ॥ ४२ ॥ मयापि बोधिताः काले यतो मां नाभिनन्दथ ॥ ततस्तेनावलेपेन गता यूयं पराभवम् ॥ ४३ ॥ प्रह्लादस्तमथोवाच मानं त्वं त्यज भार्गव ॥ स्वान् याज्यान् भजमानांश्च भक्तांश्चैव विशेषतः ॥ ४४ ॥ त्वया पृष्टा वयं तेन देवाचार्येण मोहिताः ॥ भक्तानर्हसि नस्त्रातुं ज्ञात्वा दीर्घेण चक्षुषा ॥ ४५ ॥ यदि नस्त्वं न कुरुषे प्रसादं भृगुनन्दन ॥ अपध्यातास्त्वया ह्यद्य प्रवेक्ष्यामो रसातलम् ॥ ४६ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ ज्ञात्वा काव्यो यथातत्त्वं कारुण्येनानुकम्पया ॥ एवमुक्तोऽनुनीतः स स्तुतः कोपं न्ययच्छत ॥४७॥ उवाचेदन्न भेतव्यं न गन्तव्यं रसातलम् ॥ अवश्यम्भावी ह्यर्थोऽयं प्राप्तो वो मयि जाग्रति ॥४८॥ न शक्यमन्यथा कर्त्तुं दृष्टं हि बलवत्तरम् ॥ संज्ञा प्रनष्टा या वोऽद्य कामं तां प्रतिलप्स्यथ ॥ ४९ ॥ प्राप्तः पर्य्यायकालो व इति ब्रह्माऽभ्यभाषत ॥ मत्प्रसादाच्च युष्माभिर्भुक्तं त्रैलोक्यमूर्जितम् ॥ ५० ॥ युगाख्यो दश संपूर्णो देवानाक्रम्य मूर्द्धनि ॥ तावन्तमेव कालं वै ब्रह्मा राज्यमभाषत ॥ ५१ ॥ सावर्णिके पुनस्तुभ्यं राज्यं किल भविष्यति ॥ लोकानामीश्वरो भावी पौत्रस्तव पुनर्बलिः ॥ ५२ ॥ एवं किलमहं प्रोक्तः पौत्रस्ते ब्रह्मणा स्वयम् ॥ तथाहृतेषु लोकेषु तपोऽस्य न किलाभवत् ॥ ५३ ॥ यस्मात् प्रवृत्तयश्चास्य न कामानभिसन्धिताः ॥ तस्मादजेन प्रीतेन दत्तं सावर्णिकेऽन्तरे ॥ ५४ ॥ देवराज्यं बलेर्भाव्यमिति मामीश्वरोऽब्रवीत् ॥ तस्माददृश्यो भूतानां कालाकाङ्क्षी स तिष्ठति ॥ ५५ ॥ प्रीतेन चामरत्वं वै दत्तं तुभ्यं स्वयम्भुवा ॥ तस्मान्निरुत्सुकस्त्वं वै पर्य्यायं सह माकुलः ॥ ५६ ॥ न च शक्यं मया तुभ्यं पुरस्ताद्वै विसर्पितुम् ॥ ब्रह्मणा प्रतिषिद्धोऽस्मि भविष्यं जानता प्रभो ॥ ५७ ॥ इमौ च शिष्यौ द्वौ मह्यं तुल्यावेतौ बृहस्पतेः ॥ दैवतैः सह संरब्धान् सर्व्वान् वो धारयिष्यतः ॥ ५८ ॥ एवमुक्तस्तु दैतेयाः काव्येनाक्लिष्टकर्म्मणा ॥ ततस्ताभ्यां ययुः सार्द्धं प्रह्लादप्रमुखास्तदा ॥५९॥ अवश्यम्भावमर्थत्वं श्रुत्वा शुक्राच्च दानवाः ॥ सकृदाशंसमानास्ते जयं काव्येन भाषितम् ॥ ६०॥ दंशिताः सायुधाः सर्वे ततो देवान् समाह्वयन् ॥ अथ देवासुरान् दृष्ट्वा संग्रामे समुपस्थितान् ॥ ६१ ॥ ततः संवृत्तसन्नाहा देवास्तान् समयोधयन् ॥ दैवासुरे ततस्तस्मिन् वर्त्तमाने शतं समाः ॥ अजयन्नसुरा देवान् भग्ना देवा अमन्त्रयन् ॥ ६२ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ ॥ षण्डामार्कप्रभावं न जानीमस्त्वसुरैर्वयम् ॥ तस्माद्यज्ञं समुद्दिश्य कार्य्यं चात्महितञ्च यत् ॥ ६३ ॥ तज्ज्ञानापहृतावेतौ कृत्वा जेष्यामहेऽसुरान् ॥ अथोपामन्त्रयन् देवाः षण्डामार्कौ तु तावुभौ॥६४॥ यज्ञे समाह्वयिष्यामस्त्यजतमसुरान् द्विजौ ॥ ग्रहं तं वा ग्रहीष्यामो ह्यनुजित्य तु दानवान्॥६५॥ एवं तत्यजतुस्तौ तु षण्डामार्कौ तदासुरान् ॥ ततो देवा जयं प्राप्ता दानवाश्च पराभवम् ॥ ६६ ॥ देवासुरान् पराभाव्य षण्डामार्कावुपागमन् ॥ काव्यशापाभिभूताश्च

विष्णुरदित्याः कश्यपात्मजः ॥ देवक्यां वसुदेवात्तु ब्रह्मगार्ग्यपुरःसरः ॥ ९३ ॥ अप्रमेयो नियोज्यश्च यत्र कामचरो वशी ॥ क्रीडते भगवा ल्लोके बालः क्रीडनकैरिव ॥ ९४ ॥ न प्रमातुं महाबाहुः शक्योऽसौ मधुसूदनः ॥ परं परमेतस्माद्विश्वरूपान्न विद्यते ॥ ९५ ॥ अष्टाविंश तिमे तद्वद्द्वापरस्यांशसङ्क्षये ॥ नष्टे धर्मे तदा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः ॥ ९६ ॥ कर्त्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम् ॥ मोहयन् सर्वभूता नि योगात्मा योगमायया ॥ ९७ ॥ प्रविष्टो मानुषीं योनिं प्रच्छन्नश्चरते महीम् ॥ विहारार्थं मनुष्येषु सान्दीपनिपुरःसरम् ॥ ९८ ॥ यत्र कंसश्च शाल्वश्च द्विविदश्च महासुरम् ॥ अरिष्टं वृषभञ्चैव पूतनां केशिनं हयम् ॥ ९९ ॥ नागं कुवलयापीडं मल्लराजगृहाधिपम् ॥ दैत्यान् मानुषदेहस्थान् सूदयामास वीर्यवान् ॥ १०० ॥ छिन्नं बाहुसहस्रञ्च बाणस्याद्भुतकर्मणः ॥ नरकश्च हतः सङ्ख्ये यवनश्च महाबलः ॥ १०१ ॥ हृतानि च महीपा नां सर्वरत्नानि तेजसा ॥ दुराचाराश्च निहताः पार्थिवा ये रसातले ॥ १०२ ॥ एते लोकहितार्थाय प्रादुर्भावा महात्मनः ॥ अस्मिन्नेव युगे क्षीणे सन्ध्या शिष्टे भविष्यति ॥१०३॥ कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्यः प्रतापवान् ॥ दशमो भाव्यसम्भूतो याज्ञवल्क्यपुरःसरः ॥ १०४ ॥ अनुकर्षन् सर्वसेनां हस्त्यश्वरथसङ्कुलाम् ॥ प्रगृहीतायुधैर्विप्रैर्वृतः शतसहस्रशः ॥ १०५ ॥ नात्यर्थं धार्मिका ये च ये च धर्मद्विषः क्वचित् ॥ उदीच्यान्मध्यदेशांश्च तथा विन्ध्यापरान्तिकान् ॥ १०६ ॥ तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान् सिंहलैः सह ॥ गान्धारान् पारदांश्चैव पह्लवान् यवनाञ्छकान् ॥ १०७ ॥ तुषारान् बर्बरांश्चैव पुलिन्दान् दरदान् खसान् ॥ लम्पाकानन्धकान् रुद्रान् किरातांश्चैव स प्रभुः ॥ १०८ ॥ प्रवृत्तचक्रो बलवान् म्लेच्छानामन्तकृद्बली ॥ अदृ श्यः सर्वभूतानां पृथिवीं विचरिष्यति ॥ १०९ ॥ मानवः स तु संजज्ञे देवस्यांशेन धीमतः ॥ पूर्वजन्मनि विष्णुर्यः प्रमितिर्नाम वीर्यवान् ॥ ११० ॥ गात्रेण वै चन्द्रसमः पूर्णे कलियुगेऽभवत् ॥ इत्येतास्तस्य देवस्य दश सम्भूतयः स्मृताः ॥ १११ ॥ तं तं कालञ्च कार्यञ्च तत्तदुद्दिश्य कारणम् ॥ अंशेन त्रिषु लोकेषु तास्ता योनीः प्रपत्स्यते ॥११२॥ पञ्चविंशोत्थिते कल्पे पञ्चविंशति वै समाः ॥ विनिघ्नन् सर्वभूतानि मानुषानेव सर्वशः ॥११३॥ कृत्वा बीजावशेषान्तु महीं क्रूरेण कर्म्मणा ॥ संशातयित्वा वृषलान् प्रायशस्तानधार्म्मिकान् ॥११४॥ ततः स वै तदा कल्किश्चरितार्थः ससैनिकः ॥ कर्मणा निहता ये तु सिद्धास्ते तु पुनः स्वयम् ॥११५॥ अकस्मात् कुपितान्योन्यं भविष्यन्ति च मोहिताः ॥ क्षपयित्वा तु तान् सर्वान् भाविनार्थेन नोदितान् ॥११६॥ गङ्गायमुनयोर्मध्ये निष्ठां प्राप्स्यति सानुगः ॥ ततो व्यतीते कल्कौ तु सामात्यैः सह सैनिकैः ॥११७॥ नृपेष्वथ विनष्टेषु तदा त्वप्रग्रहाः प्रजाः ॥ रक्षणे विनिवृत्ते तु हत्वा चान्योन्यमाहवे ॥११८॥ परस्परहताश्वासा निराक्रन्दाः सुदुःखिताः ॥ पुराणि हित्वा ग्रामांश्च तुल्यास्ता निष्परिग्रहाः

दृषद्वतीसुतश्चापि शिविरौशीनरो द्विजाः ॥ शिवेः शिवपुरं ख्यातं यौधेयन्तु मृगस्य तु ॥ २१ ॥ नवस्य नवराष्ट्रन्तु कृमेस्तु कृमिला पुरी ॥ सुव्रतस्य तथा वृष्टा शिविपुत्रान्निबोधत ॥ २२ ॥ शिवेस्तु शिवयः पुत्राश्चत्वारो लोकसम्मताः ॥ वृषदर्भः सुवीरस्तु केकयो मद्रकस्तथा ॥ २३ ॥ तेषाञ्जनपदाः स्फीताः केकया माद्रकास्तथा ॥ वृषदर्भाः सूचिदर्भास्तितिक्षोः शृणुत प्रजाः ॥ २४ ॥ तैतिक्षुरभवद्राजा पूर्वस्यान्दिशि विश्रुतः ॥ उशद्रथो महाबाहुस्तस्य हेमः सुतोऽभवत् ॥ २५ ॥ हेमस्य सुतपा जज्ञे सुतः सुतयशा बली ॥ जातो मनुष्ययोन्यां वै क्षीणे वंशे प्रजेप्सया ॥ २६ ॥ महायोगी स तु बलिर्बद्धो यः स महामनाः ॥ पुत्रानुत्पादयामास चातुर्वर्ण्यकरान् भुवि ॥ २७ ॥ अङ्गं स जनयामास वङ्गं सुह्मं तथैव च ॥ पुण्ड्रं कलिङ्गञ्च तथा बालेयं क्षत्रमुच्यते ॥ २८ ॥ बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकराः प्रभोः ॥ बलेस्तु ब्रह्मणा दत्ता वराः प्रीतेन धीमते ॥ २९ ॥ महायोगित्वमायुश्च कल्पायुःपरिमाणकम् ॥ संग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मे चैव प्रभावना ॥ ३० ॥ त्रैलोक्यदर्शनञ्चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा ॥ बले चाप्रतिमत्वं वै धर्मतत्त्वार्थदर्शनम् ॥ ३१ ॥ चतुरो नियतान् वर्णान् त्वं वै स्थापयितेति च ॥ इत्युक्तो विभुना राजा बलिः शान्तिम्परां ययौ ॥ ३२ ॥ कालेन महता विद्वान् स्वं वै स्थानमुपागतः ॥ तेषां जनपदाः स्फीता वङ्गाङ्गसुह्मकास्तथा ॥ ३३ ॥ पुण्ड्राः कलिङ्गाश्च तथा तेषां वंशं निबोधत ॥ तस्य ते तनयाः सर्वे क्षेत्रजा मुनिसम्भवाः ॥ सम्भूता दीर्घतमसः सुदेष्णायां महौजसः ॥ ३४ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ कथं बलेः सुताः पञ्च जनिताः क्षेत्रजाः प्रभो ॥ ऋषिणा दीर्घतमसा एतन्नो ब्रूहि पृच्छताम् ॥ ३५ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ औशिजो नाम विख्यात आसीद्धीमानृषिः पुरा ॥ भार्या वै ममता नाम बभूवास्य महात्मनः ॥ ॥ ३६ ॥ औशिजस्य कनीयांस्तु पुरोधायो दिवौकसाम् ॥ बृहस्पतिर्बृहत्तेजाः ममतां सोऽभ्यपद्यत ॥ ३७ ॥ उवाच ममता तन्तु बृहस्पतिमनिच्छती ॥ अन्तर्वत्न्यस्मि ते भ्रातुर्ज्येष्ठस्याष्टमिता इति ॥ ३८ ॥ अयं हि मे महागर्भो रोदतेऽति बृहस्पते ॥ औशिजं ब्रह्म चाभ्यस्य षडङ्गं वेदमुद्गिरन् ॥ ३९ ॥ अमोघरेतास्त्वञ्चापि न मां भजितुमर्हसि ॥ अस्मिन्नेव गते काले यथा वा मन्यसे प्रभो ॥ ४० ॥ एवमुक्तस्तया सम्यग् बृहत्तेजा बृहस्पतिः ॥ कामात्मानं महात्मा च नात्मानं सोऽभ्यधारयत् ॥ ४१ ॥ सम्बभूवैव धर्मात्मा तया सार्द्धं बृहस्पतिः ॥ उत्सृजन्तं तदा रेतो गर्भस्थः सोऽभ्यभाषत ॥ ४२ ॥ नो स्नातको न्यसेद्ध्यस्मिन् द्वयोर्नैहास्ति सम्भवः ॥ अमोघरेतास्त्वञ्चापि पूर्वञ्चाहमिहागतः ॥ ४३ ॥ शशाप तं तदा क्रुद्ध एवमुक्तो बृहस्पतिः ॥ औशिजन्तं सुतं भ्रातुर्गर्भस्थं भगवानृषिः ॥ ४४ ॥ यस्मात्त्वमीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सति ॥ मामेवमुक्तवान् मोहात्तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि ॥ ४५ ॥ ततो दीर्घतमा नाम शापादृषिरजायत ॥

विधिवत्सम्यगीश्वरौ ब्रह्मवादिनौ ॥ ७१ ॥ सिद्धौ प्रत्यक्षधर्माणौ बुद्धौ श्रेष्ठतमावपि ॥ ममैताविति होवाच बलिर्वैरोचनस्त्वृषिम् ॥ ७२ ॥ नेत्युवाच
ततस्तन्तु ममैताविति चाब्रवीत् ॥ उत्पन्नौ शूद्रयोनौ तु भवच्छन्ना सुरोत्तमौ ॥ ७३ ॥ अन्धं वृद्धं च मां मत्वा सुदेष्णा महिषी तव ॥ प्राहिणोदव
मानाय शूद्रां धात्रेयकीं मम ॥ ७४ ॥ ततः प्रसादयामास पुनस्तमृषिसत्तमम् ॥ बलिर्भार्यां सुदेष्णां च भर्त्सयामास वै प्रभुः ॥ ७५ ॥ पुनश्चैना
मलङ्कृत्य ऋषये प्रत्यपादयत् ॥ तां स दीर्घतमा देवीमब्रवीद्यदि मां शुभे ॥ ७६ ॥ दध्ना लवणमिश्रेण स्वभ्यक्तं नग्नकं तथा ॥ लिहिष्यस्यजुगु
प्सन्ती ह्यापादतलमस्तकम् ॥ ७७ ॥ ततस्त्वं प्राप्स्यसे देवि पुत्रांश्च मनसेप्सितान् ॥ तस्य सा तद्वचो देवी सर्वं कृतवती तथा ॥ ७८ ॥ अपान
ञ्च समासाद्य जुगुप्सन्ती न्यवर्जयत् ॥ तामुवाच ततः सर्षिर्यत्ते परिहृतं शुभे ॥ विनापानं कुमारं त्वं जनयिष्यसि पूर्वजम् ॥ ७९ ॥ ततस्तं दीर्घतम
सं सा देवी प्रत्युवाच ह ॥ नार्हसि त्वं महाभाग पुत्रं दातुं ममेदृशम् ॥ ८० ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ तवापराधो देव्येष नान्यथा भविता तु वै ॥
देवीदानीञ्च ते पुत्रमहन्दास्यामि सुव्रते ॥ ८१ ॥ तस्यापानं विना चैव योग्याभावो भविष्यति ॥ तां स दीर्घतमाश्चैव कुक्षौ स्पृष्ट्वेदमब्रवीत् ॥८२॥
प्राशितं दधि यत्तेऽद्य ममाङ्गाद्वै शुचिस्मिते ॥ तेन ते पूरितो गर्भः पौर्णमास्यामिवोदधिः ॥ ८३ ॥ भविष्यन्ति कुमारास्ते पञ्च देवसुतोपमाः ॥
तेजस्विनः पराक्रान्ता यज्वानो धार्मिकास्तथा॥८४॥ ततोऽङ्गस्तु सुदेष्णाया ज्येष्ठपुत्रो व्यजायत ॥ वङ्गस्तस्मात्कलिङ्गस्तु पुण्ड्रो ब्रह्मस्तथैव च॥८५॥
वंशभाजस्तु पञ्चैते बलेः क्षेत्रेऽभवंस्तदा ॥ इत्येते दीर्घतमसा बलेर्दत्ताः सुताः पुरा ॥ ८६ ॥ प्रजास्त्वपहतास्तस्य ब्रह्मणा कारणं प्रति ॥ अपत्या
मात्यदारेषु स्वेषु मा भून्महात्मनः ॥ ८७ ॥ ततो मनुष्ययोन्यां वै जनयामास स प्रजाः ॥ सुरभिर्दीर्घतमसमथ प्रीतो वचोऽब्रवीत् ॥ ८८ ॥ विचार्य
यस्माद्गोधर्म्मं त्वमेवं कृतवानसि ॥ तेन न्यायेन मुमुचे ह्यहं प्रीतोऽस्मि तेन ते ॥ ८९ ॥ तस्मात्तव तमो दीर्घं निस्तुदाम्यद्य पश्य वै ॥ बार्हस्पत्यञ्च
यत्तेऽन्यत्पापं सन्तिष्ठते तनौ ॥ ९० ॥ जरामृत्युभयञ्चैव आघ्राय प्रणुदामि ते ॥ ह्याघ्रातमात्रः सोऽपश्यत् सद्यस्तमसि नाशिते ॥ ९१॥ आयुष्मांश्च
युवा चैव चक्षुष्मांश्च ततोऽभवत् ॥ गवा दीर्घतमाः सोऽथ गौतमः समपद्यत॥९२॥कक्षीवांस्तु ततो गत्वा सह पित्रा गिरिव्रजाम् ॥ यथोद्दिष्टं हि पित्रर्थं
चचार विपुलं तपः ॥ ९३ ॥ ततः कालेन महता तमसा भावितः स वै ॥ विधूय मनुजो दोषान् ब्रह्मण्यं प्राप्तवान् प्रभुः ॥ ९४ ॥ ततोऽब्रवीत् पिता
चैनं पुत्रवानस्म्यहं प्रभो ॥ सत्पुत्रेण त्वया तात कृतार्थोऽस्मि यशस्विना ॥ ९५ ॥ युक्तात्मा हि ततः सोऽथ प्राप्तवान् ब्रह्मणा क्षयम् ॥ ब्रह्मण्यं प्राप्य
कक्षीवान् सहस्रमसृजत् सुतान् ॥ ९६ ॥ कृष्णाङ्गा गौतमास्ते वै स्मृताः कक्षीवतः सुताः ॥ इत्येष दीर्घतमसो बलेर्वैरोचनस्य वै ॥ ९७ ॥ समागमः

रन्तिनारः सरस्वत्यां पुत्रानजनयच्छुभान् ॥ त्रसुं तथा प्रतिरथं ध्रुवञ्चैवातिधार्मिकम् ॥ १२५ ॥ गौरी कन्या च विख्याता मान्धातुर्जननी शुभा ॥
धुर्य्यः प्रतिरथस्यापि कण्ठस्तस्याभवत् सुतः ॥ १२६ ॥ मेधातिथिः सुतस्तस्य यस्मात् काण्ठायना द्विजाः ॥ इतिनानुयमस्यासीत् कन्या साजनय
त्सुतान् ॥ १२७ ॥ त्रसुः सुदयितं पुत्रं मलिनं ब्रह्मवादिनम् ॥ उपदातं ततो लेभे चतुरस्त्विवति सात्मजान् ॥ १२८ ॥ सुष्मन्तमथ दुष्यन्तं प्रवीरमन
वन्तथा ॥ चक्रवर्त्ती ततो जज्ञे दौष्यन्तिर्नृपसत्तमः ॥ १२९ ॥ शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना तु भारतम् ॥ दुष्यन्तं प्रति राजानं वागुवाचाशरीरिणी ॥ १३० ॥
माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ॥ भरस्व पुत्रं दुष्यन्तं सत्यमाह शकुन्तला ॥ १३१ ॥ रेतोधाः पुत्रं नयति नरदेव यमक्षयात् ॥ त्वञ्चा
स्य धाता गर्भस्य मावमंस्थाः शकुन्तलाम् ॥ १३२ ॥ भरतात्त्रिसृषु स्त्रीषु नव पुत्रानजीजनत् ॥ नाभ्यनन्दच्च तान् राजा नानुरूपान्ममेत्युत ॥ १३३ ॥
ततस्ता मातरः क्रुद्धाः पुत्रान्निन्युर्यमक्षयम् ॥ ततस्तस्य नरेन्द्रस्य विततं पुत्रजन्म तत् ॥ १३४ ॥ ततो मरुद्भिरानीय पुत्रस्तु स बृहस्पतेः ॥ सङ्क्रा
मितो भरद्वाजो मरुद्भिः क्रतुभिर्विभुः ॥ १३५ ॥ तत्रैवोदाहरन्तीदं भरद्वाजस्य धीमतः ॥ जन्मसङ्क्रमणञ्चैव मरुद्भिर्भरताय वै ॥ १३६ ॥ पत्न्यामास
न्नगर्भायामशिजः संस्थितः किल ॥ भ्रातुर्भार्य्यां स दृष्ट्वाथ बृहस्पतिरुवाच ह ॥ अलङ्कृत्य तनुं स्वान्तु मैथुनं देहि मे शुभे ॥ १३७ ॥ एवमुक्ताऽब्रवी
देनमन्तर्वत्नी ह्यहं विभो ॥ गर्भः परिणतश्चायं ब्रह्म व्याहरते गिरा ॥ १३८ ॥ अमोघरेतास्त्वञ्चापि धर्मश्चैव विगर्हितः ॥ एवमुक्तोऽब्रवीदेनां स्वयमा
नो बृहस्पतिः ॥ १३९ ॥ विनयो नोपदेष्टव्यस्त्वया मम कथञ्चन ॥ हर्षमाणः प्रसह्यैनां मैथुनायोपचक्रमे ॥ १४० ॥ ततो बृहस्पतिं गर्भो हर्षमाणमु
वाच ह ॥ सन्निविष्टो ह्यहं पूर्वमिह तात बृहस्पते ॥ १४१ ॥ अमोघरेताश्च भवान्नावकाशोऽस्ति च द्वयोः ॥ एवमुक्तः स गर्भेण कुपितः प्रत्युवाच ह ॥
॥ १४२ ॥ यस्मान्मामीदृशे काले सर्वभूतेप्सिते सति ॥ प्रतिषेधसि तत्तस्मात् तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि ॥ १४३ ॥ पादाभ्यान्तेन तच्छिद्रं मातुर्द्वारं बृहस्पतेः ॥
तद्रेतस्तु तयोर्मध्ये निवार्य्यः शिशुकोऽभवत् ॥ १४४ ॥ सद्यो जातं कुमारन्तं दृष्ट्वाऽथ ममताऽब्रवीत् ॥ गमिष्यामि गृहं स्वं वै भरद्वाजं बृहस्पते ॥
॥ १४५ ॥ एवमुक्त्वा गतायां स पुत्रन्त्यजति तत्क्षणात् ॥ भरस्व बाढमित्युक्तो भरद्वाजस्ततोऽभवत् ॥ १४६ ॥ मातापितृभ्यां संत्यक्तं दृष्ट्वाथ
मरुतः शिशुम् ॥ गृहीत्वैनं भरद्वाजं जग्मुस्ते कृपया ततः ॥ १४७ ॥ तस्मिन् काले तु भरतो मरुद्भिः क्रतुभिः क्रमात् ॥ काम्यनैमित्तिकैर्यज्ञैर्य
जते पुत्रलिप्सया ॥ १४८ ॥ यदा स यजमानो वै पुत्रान्नासादयत् प्रभुः ॥ यज्ञं ततो मरुत्सोमं पुत्रार्थं पुनराहरत् ॥ १४९ ॥ तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सो
मेन तोषिताः ॥ भरद्वाजं ततः पुत्रं बार्हस्पत्यं मनीषिणम् ॥ १५० ॥ भरतस्तु भरद्वाजं पुत्रं प्राप्य तदाब्रवीत् ॥ प्रजायां संहृतायां वै कृतार्थोऽहं त्वया

प्रणाशिताः॥१७७॥ ऋषय ऊचुः॥ उग्रायुधः कस्य सुतः कस्मिन् वंशे च कीर्त्यते॥ किमर्थञ्चैव नीपास्ते तेन सर्वे प्रणाशिताः॥१७८॥ सूत उवाच॥ दृढने-
ढस्य तु दायादो विद्वान् जज्ञे यवीनरः॥धृतिमांस्तस्य पुत्रस्तु तस्य सत्यधृतिः सुतः॥१७९॥अथ सत्यधृतेः पुत्रो दृढनेमिः प्रतापवान्॥ दृढनेमिसुतश्चापि
सुवर्मा नाम पार्थिवः॥१८०॥ आसीत्सुवर्म्मणः पुत्रः सार्वभौमः प्रतापवान्॥ सार्वभौम इति ख्यातः पृथिव्यामेकराड्विभौ॥१८१॥ तस्यान्वये च महति
महत्पौरवनन्दनः॥महत्पौरवपुत्रस्तु राजा रुक्मरथः स्मृतः॥१८२॥ अथ रुक्मरथस्यापि सुपार्श्वो नाम पार्थिवः॥सुपार्श्वतनयश्चापि सुमतिर्नाम धार्मिकः
॥१८३॥सुमतेरपि धर्म्मात्मा राजा सन्नतिमान् प्रभुः॥तस्यासीत्सन्नतिर्नाम कृतस्तस्य सुतोऽभवत्॥१८४॥शिष्यो हिरण्यनाभेस्तु कौथुमस्य महात्मनः॥
चतुर्विंशतिधा तेन प्रोक्तास्ताः सामसंहिताः॥१८५॥स्मृतास्ते प्राच्यसामानः कार्त्ताः साम्नान्तु सामगः॥ कार्तिरुग्रायुधः सोऽथ वीरः पौरवनन्दनः१८६॥
बभूव येन विक्रम्य पृषतस्य पितामहः॥ नीलो नाम महाबाहुः पञ्चालाधिपतिर्हतः॥ १८७॥ उग्रायुधस्य दायादः क्षेमो नाम महायशाः॥ क्षेमात्तु
वीरः संजज्ञे सुवीरस्य नृपञ्जयः॥ नृपञ्जयाद्बीरस्थो इत्येते पौरवाः स्मृताः॥ १८८॥ अजमीढस्य नीलिन्यां नीलः समभवन्नृपः॥ नीलस्य तप
सोग्रेण सुशान्तिरभ्यजायत॥ १८९॥ पुरुजानुः सुशान्तेस्तु रिक्षस्तु पुरुजानुजः॥ ततस्तु रिक्षदायादा भेदाश्च तनयास्त्विमे॥ १९०॥ मुद्गलः
सृञ्जयश्चैव राजा बृहदिषुस्तथा॥ यवीयांश्चापि विक्रान्तः काम्पिल्यश्चैव पञ्चमः॥ १९१॥ पञ्चानां रक्षणार्थाय पितैतानभ्यभाषत॥ पञ्चानां विद्धि
पञ्चैतान् स्फीता जनपदा युताः॥ १९२॥ अलं संरक्षणे तेषां पञ्चाला इति विश्रुताः॥ मुद्गलस्यापि मौद्गल्याः क्षात्रोपेताद्द्विजातयः॥ १९३॥
एते ह्याङ्गिरसः पक्षे संश्रिताः कण्ठमुद्गलाः॥ मुद्गलस्य सुतो ज्येष्ठो ब्रह्मिष्ठः सुमहायशाः॥ १९४॥ इन्द्रसेना यतो गर्भं वध्यश्वं प्रत्यपद्यत॥
वध्यश्वान्मिथुनं जज्ञे मेनका इति नः श्रुतिः॥ १९५॥ दिवोदासश्च राजर्षिरहल्या च यशस्विनी॥ शारद्वतस्तु दायादमहल्या समसूयत॥१९६॥
शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्यापि सुमहायशाः॥ पुत्रः सत्यधृतिर्नाम धनुर्वेदस्य पारगः॥ १९७॥ अथ सत्यधृतेः शुक्रं दृष्ट्वाप्सरसमग्रतः॥ प्रच
स्कन्दे शरस्तम्बे मैथुनं समपद्यत॥ १९८॥ कृपया तच्च जग्राह शन्तनुर्मृगयां गतः॥ कृपः स्मृतः स वै तस्माद्गौतमी च कृपी तथा॥ १९९॥
एते शारद्वताः प्रोक्ताः ऋतथ्यो गौतमान्वयः॥ अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि दिवोदासस्य सन्ततिम्॥ २००॥ दिवोदासस्य दायादो ब्रह्मिष्ठो मित्रयुर्नृपः॥
मैत्रेयस्तु ततो जज्ञे स्मृता एतेऽपि संश्रिताः॥ २०१॥ एतेऽपि संश्रिताः पक्षं क्षात्रोपेतास्तु भार्गवाः॥ राजापि च्यवनो विद्वांस्ततः प्रतिरथोऽभवत्
॥ २०२॥ अथ वै च्यवनाद्धीमान् सुदासः समपद्यत॥ सौदासः सहदेवश्च सोमकस्तस्य चात्मजः॥ २०३॥ अजमीढः पुनर्जातः क्षीणे वंशे स

जज्ञिरे सोमदत्तात्तु भूरिर्भूरिश्रवाः शलः ॥ देवापिस्तु प्रवव्राज वनं धर्म्मपरीप्सया ॥ २३१ ॥ उपाध्यायस्तु देवानां देवापिरभवन्मुनिः ॥ च्यवनोऽस्य हि
पुत्रस्तु इष्टकश्च महात्मनः॥२३२॥शन्तनुस्त्वभवद्राजा विद्वान् वै स महाभिषः॥ इमं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं प्रति महाभिषम्॥२३३॥यं यं राजा स्पृशति
वै जीर्णं समय तो नरम् ॥ पुनर्युवा स भवति तस्मात्ते शन्तनुं विदुः॥२३४॥ततोऽस्य शन्तनुत्वं वै प्रजास्विह परिश्रुतम्॥ स उपयेमे धर्म्मात्मा शन्तनुर्जा
ह्नवीं नृपः ॥२३५॥ तस्यां देवव्रतं भीष्मं पुत्रं सोऽजनयत्प्रभुः ॥ स च भीष्म इति ख्यातः पाण्डवानां पितामहः ॥ २३६ ॥ काले विचित्रवीर्यन्तु शन्त
नुर्जनयत्सुतम् ॥ शन्तनोर्दयितं पुत्रं प्रजाहितकरम्प्रभुम् ॥ कृष्णद्वैपायनश्चैव क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके ॥२३७॥ धृतराष्ट्रञ्च पाण्डुञ्च विदुरञ्चाप्यजीजनत् ॥
धृतराष्ट्रात्तु गान्धारी पुत्राणां सुषुवे शतम् ॥२३८॥ तेषां दुर्योधनो ज्येष्ठः सर्व्वक्षत्रस्य स प्रभुः ॥ माद्री राज्ञी पृथा चैव पाण्डोर्भार्ये बभूवतुः ॥१३९॥
देवदत्ताः सुतास्ताभ्यां पाण्डोरर्थे विजज्ञिरे॥धर्म्माद्युधिष्ठिरो जज्ञे वायोर्जज्ञे वृकोदरः॥२४०॥ इन्द्राद्धनञ्जयो जज्ञे शक्रतुल्यपराक्रमः॥अश्विभ्यां सह
देवश्च नकुलश्चापि माद्रिजौ ॥२४१॥पञ्चैव पाण्डवेभ्यश्च द्रौपद्यां जज्ञिरे सुताः॥द्रौपद्यजनयज्ज्येष्ठं श्रुतिविद्धं युधिष्ठिरात् ॥२४२॥हिडम्बा भीमसेनात्तु
जज्ञे पुत्रं घटोत्कचम् ॥ काश्याः पुनर्भीमसेनाज्जज्ञे सर्व्ववृकं सुतम्॥२४३॥सुहोत्रं विजया माद्री सहदेवादजायत ॥ करेमत्यान्तु चैद्यायां निरमित्रस्तु
लाङ्गलिः॥२४४॥सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत॥उत्तरायान्तु वैराट्यां परिक्षिदभिमन्युजः॥२४५॥ परिक्षितस्तु दायादो राजासीज्जनमेजयः ॥
ब्राह्मणान् स्थापयामास स वै वाजसनेयिकान्॥२४६॥ असपत्नं तदामर्षाद्वैशम्पायन एव तु ॥ नस्थास्यतीह दुर्बुद्धे तवैतद्वचनं भुवि ॥२४७॥ यावत्स्था
स्याम्यहं लोके तावन्नैतत्प्रशस्यते ॥ अभितः संस्थितश्चापि ततः स जनमेजयः ॥ २४८ ॥ पौर्णमास्येन हविषा देवमिष्ट्वा प्रजापतिम् ॥ विज्ञाय सं
स्थितोऽपश्यत्तद्धीष्टां विभोर्मखे ॥ २४९ ॥ परिक्षित्तनयश्चापि पौरवो जनमेजयः ॥ द्विरश्वमेधमाहृत्य ततो वाजसनेयकम् ॥ प्रवर्त्तयित्वा तद्ब्रह्म त्रि
खर्व्वी जनमेजयः ॥ २५० ॥ खर्व्वमश्वकमुख्यानां खर्व्वमङ्गनिवासिनाम् ॥ खर्व्वञ्च मध्यदेशानां त्रिखर्व्वी जनमेजयः ॥ विषादाद्ब्राह्मणैः सार्द्धम
भिशस्तः क्षयं ययौ ॥ २५१ ॥ तस्य पुत्रः शतानीको बलवान् सत्यविक्रमः ॥ ततः सुतं शतानीकं विप्रास्तमभ्यषेचयत् ॥ २५२ ॥ पुत्रोऽश्वमेधद
त्तोऽभूच्छतानीकस्य वीर्य्यवान् ॥ पुत्रोऽश्वमेधदत्ताद्वै जातः परपुरंजयः ॥ २५३ ॥ अधिसामकृष्णो धर्मात्मा साम्प्रतोयं महायशाः ॥ यस्मिन्
प्रशासति महीं युष्माभिरिदमाहृतम् ॥ २५४ ॥ दुरापं दीर्घसत्रं वै त्रीणि वर्षाणि दुश्चरम् ॥ वर्षद्वयं कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्यां द्विजोत्तमाः ॥ २५५ ॥
॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ श्रोतुं भविष्यमिच्छामः प्रजानां वै महामते ॥ सूत सार्द्धं नृपैर्भाव्यं व्यतीतं कीर्त्तितं त्वया ॥ २५६ ॥ यत्तु

अन्तरिक्षात्सुपर्णस्तु सुपर्णाच्चाप्यमित्रजित् ॥ पुत्रस्तस्य भरद्वाजो धर्मी तस्य सुतः स्मृतः ॥ पुत्रः कृतञ्जयो नाम धार्मिणः स भविष्यति ॥ कृत
ञ्जयसुतो व्रातो तस्य पुत्रो रणञ्जयः ॥ २८३ ॥ भविता सञ्जयश्चापि वीरो राजा रणञ्जयात् ॥ सञ्जयस्य सुतः शाक्यः शाक्याच्छुद्धोदनोऽभ
वत् ॥ २८४ ॥ शुद्धोदनस्य भविता शाक्यार्थे राहुलः स्मृतः ॥ प्रसेनजित्ततो भाव्यः क्षुद्रको भविता ततः ॥ २८५ ॥ क्षुद्रकात्क्षुलिको भाव्यः
क्षुलिकात्सुरथः स्मृतः ॥ सुमित्रः सुरथस्यापि अन्त्यश्च भविता नृपः ॥ २८६ ॥ एते ऐक्ष्वाकवाः प्रोक्ता भवितारः कलौ युगे ॥ बृहद्बलान्वये जाता भवि
तारः कलौयुगे शूराश्च ॥ कृतविद्याश्च सत्यसन्धा जितेन्द्रियाः ॥ २८७ ॥ अत्रानुवंशश्लोकोऽयं भविष्यज्ञैरुदाहृतः ॥ इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो
भविष्यति ॥ सुमित्रं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ इत्येतन्मानवं क्षेत्रमैलञ्च समुदाहृतम् ॥ २८८ ॥ अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि माग
धेयान्बृहद्रथान् ॥ जरासन्धस्य ये वंशे सहदेवान्वये नृपाः ॥ २८९ ॥ अतीता वर्त्तमानाश्च भविष्याश्च तथा पुनः ॥ प्राधान्यतः प्रवक्ष्यामि गदतो मे निबो
धत ॥ २९० ॥ संग्रामे भारते तस्मिन् सहदेवो निपातितः ॥ सोमाधिस्तस्य तनयो राजर्षिः स गिरिव्रजे ॥ २९१ ॥ पञ्चाशतं तथाष्टौ च समा राज्यम
कारयत् ॥ श्रुतश्रवाः चतुःषष्टिसमास्तस्य सुतोऽभवत् ॥ अयुतायुस्तु षड्विंशं राज्यं वर्षाण्यकारयत् ॥ समाः शतं निरामित्रो महीं भुक्त्वा दिवङ्गतः ॥ २९२ ॥
पञ्चाशतं समाः षट् च सुकृत्तः प्राप्तवान्महीम् ॥ त्रयोविंशं बृहत्कर्मा राज्यं वर्षाण्यकारयत् ॥ २९३ ॥ सेनाजित्साम्प्रतं चापि एतां वै भुज्यते समाः ॥
श्रुतंजयस्तु वर्षाणि चत्वारिंशद्भविष्यति ॥ २९४ ॥ महाबाहुर्महाबुद्धिर्महाभीमपराक्रमः ॥ पञ्चत्रिंशत्तु वर्षाणि महीं पालयितानृपः ॥ २९५ ॥ अष्टपञ्चा
शतं चाब्दान् राज्ये स्थास्यति वै शुचिः ॥ अष्टाविंशत्समाः पूर्णाः क्षेमो राजा भविष्यति ॥ २९६ ॥ भुवतस्तु चतुःषष्टिराज्यं प्राप्स्यति वीर्य्यवान् ॥
पञ्चवर्षाणि पूर्णानि धर्मनेत्रो भविष्यति ॥ २९७ ॥ भोक्ष्यते नृपतिश्चैव ह्यष्टपञ्चाशतं समाः ॥ अष्टात्रिंशत्समा राज्यं सुव्रतस्य भविष्यति ॥ २९८ ॥
चत्वारिंशद्दशाष्टौ च दृढसेनो भविष्यति ॥ त्रयस्त्रिंशत्तु वर्षाणि सुमतिः प्राप्स्यते ततः ॥ २९९ ॥ द्वाविंशतिसमा राज्यं सुचलो भोक्ष्यते ततः ॥ चत्वा
रिंशत्समा राजा सुनेत्रो भोक्ष्यते ततः ॥ ३०० ॥ सत्यजित्पृथिवीराज्यं त्र्यशीतिं भोक्ष्यते समाः ॥ प्राप्येमां वीरजिच्चापि पञ्चत्रिंशद्भविष्यति ॥ ३०१ ॥
अरिञ्जयस्तु वर्षाणि पञ्चाशत्प्राप्स्यते महीम् ॥ द्वात्रिंशच्च नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथाः ॥ ३०२ ॥ पूर्णं वर्षसहस्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति ॥ बृहद्र
थेष्वतीतेषु वीतहोत्रेषु वर्तिषु ॥ ३०३ ॥ मुनिकः स्वामिनं हत्वा पुत्रं समभिषेक्ष्यति ॥ मिषतां क्षत्रियाणां हि प्रद्योतो मुनिको बलात् ॥ ३०४ ॥ स
वै प्रणतसामन्तो भविष्ये नयवर्ज्जितः ॥ त्रयोविंशत्समा राजा भविता स नरोत्तमः ॥ ३०५ ॥ चतुर्विंशत्समा राजा पालको भविता ततः ॥ वि

पुष्पमित्रसुताश्चाष्टौ भविष्यन्ति समा नृपाः ॥ भविता चापि तज्ज्येष्ठः सप्तवर्षाणि वै ततः ॥ ३३२ ॥ वसुमित्रः सुतो भाव्यो दशवर्षाणि पार्थिवः ॥
ततो धुकः समा द्वे तु भविष्यति सुतश्च वै ॥३३३॥ भविष्यन्ति समास्तस्मात्तिस्र एव पुलिन्दकाः ॥ राजा घोषसुतश्चापि वर्षाणि भविता त्रयः ॥३३४॥
ततो वै विक्रमित्रस्तु समा राजा ततः पुनः ॥ द्वात्रिंशद्भविता चापि समा भागवतो नृपः ॥ ३३५ ॥ भविष्यति सुतस्तस्य क्षेमभूमिः समा दश ॥
दशैते तुङ्गराजानो भोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम् ॥ ३३६ ॥ शतं पूर्णं दश द्वे च तेभ्यः किं वा गमिष्यति ॥ अपार्थिववसुदेवन्तु बाल्याद्व्यसनिनं नृपम् ॥
॥ ३३७ ॥ देवभूमिस्ततोऽन्यश्च शृङ्गेषु भविता नृपः ॥ भविष्यति समा राजा नव कण्ठायनस्तु सः ॥ ३३८ ॥ भूतिमित्रः सुतस्तस्य चतुर्विंशद्भ
विष्यति ॥ भविता द्वादश समास्तस्मान्नारायणो नृपः ॥ ३३९ ॥ सुशर्म्मा तत्सुतश्चापि भविष्यति समा दश ॥ चतुरस्तुङ्गकृत्यास्ते नृपाः कण्ठाय
ना द्विजाः ॥ ३४० ॥ भाव्याः प्रणतसामन्ताश्चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ तेषां पर्य्यायकाले तु तरन्धा तु भविष्यति ॥ ३४१ ॥ कण्ठायनमथोद्धृत्य
सुशर्म्माणं प्रसह्य तम् ॥ शृङ्गाणां चापि यच्छिष्टं क्षययित्वा बलं तदा ॥ सिन्धुको ह्यन्ध्रजातीयः प्राप्स्यतीमां वसुन्धराम् ॥ ३४२ ॥ त्रयोविंशत्समा
राजा सिन्धुको भविता त्वथ ॥ अष्टौ भातश्च वर्षाणि तस्माद्दश भविष्यति ॥ ३४३ ॥ श्रीसातकर्णिर्भविता तस्य पुत्रस्तु वै महान् ॥ पञ्चाशतं
समाः षट्च सातकर्णिर्भविष्यति ॥ ३४४ ॥ आपादबद्धो दश वै तस्य पुत्रो भविष्यति ॥ चतुर्विंशत्तु वर्षाणि षट् समा वै भविष्यति ॥ ३४५ ॥
भविता नेमिकृष्णस्तु वर्षाणां पञ्चविंशतिम् ॥ ततः संवत्सरं पूर्णं हालो राजा भविष्यति ॥ ३४६ ॥ पञ्च सप्तक राजानो भविष्यन्ति महाबलाः ॥
भाव्यः पुत्रिकषेणस्तु समाः सोऽप्येकविंशतिम् ॥ ३४७ ॥ सातकर्णिर्वर्षमेकं भविष्यति नराधिपः ॥ अष्टाविंशत्तु वर्षाणि शिवस्वामी भविष्यति ॥
॥ ३४८ ॥ राजा च गौतमीपुत्र एकविंशत्समा नृपु ॥ एकोनविंशतिं राजा यज्ञश्रीः सातकर्ण्यथ ॥ ३४९ ॥ षडेव भविता तस्माद्विजयस्तु समा नृपः ॥
दण्डश्रीः सातकर्णी च तस्य पुत्रः समास्त्रयः ॥ ३५० ॥ पुलोवापि समाः सप्त अन्येषाञ्च भविष्यति ॥ इत्येते वै नृपास्त्रिंशदन्ध्रा भोक्ष्यन्ति ये महीम्
॥ ३५१ ॥ समाः शतानि चत्वारि पञ्च षड्वै तथैव च ॥ अन्ध्राणां संस्थिताः पञ्च तेषां वंशाः समाः पुनः ॥ ३५२ ॥ सप्तैव तु भविष्यन्ति दशाभीरा
स्ततो नृपाः ॥ सप्त गर्दभिनश्चापि ततोऽथ दश वै शकाः ॥ ३५३ ॥ यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषारास्तु चतुर्दश ॥ त्रयोदश मरुण्डाश्च मौना ह्यष्टाद
शैव तु ॥ ३५४ ॥ अन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वसुधां शते द्वे च शतं च वै ॥ शतानि त्रीण्यशीतिश्च भोक्ष्यन्ति वसुधां शकाः ॥ ३५५ ॥ अशीतिश्चैव वर्षाणि
भोक्तारो यवना महीम् ॥ पञ्चवर्षशतानीह तुषाराणां मही स्मृता ॥ ३५६ ॥ शतान्यर्द्धचतुर्थानि भवितारस्त्रयोदश ॥ मरुण्डा वृषलैः सार्द्धं भाव्यान्या

भविष्यन्तीह यवना धर्मतः कामतोऽर्थतः ॥ ३८२ ॥ नैव मूर्द्धाभिषिक्तास्ते भविष्यन्ति नराधिपाः ॥ युगदोषदुराचारा भविष्यन्ति नृपास्तु ते ॥३८३॥
स्त्रीणां बलवधेनैव हत्वा चैव परस्परम् ॥ भोक्ष्यन्ति कलिशेषे तु वसुधां पार्थिवास्तथा ॥ ३८४ ॥ उदितोदितवंशास्ते उदितास्तमितास्तथा ॥ भवि
ष्यन्तीह पर्याये कालेन पृथिवीक्षितः ॥ ३८५ ॥ विहीनास्तु भविष्यन्ति धर्म्मतः कामतोऽर्थतः ॥ तैर्विमिश्रा जनपदा म्लेच्छाचाराश्च सर्वशः॥३८६॥
विपर्य्ययेन वर्त्तन्ते नाशयिष्यन्ति वै प्रजाः ॥ लुब्धानृतरताश्चैव भवितारस्तदा नृपाः ॥ ३८७ ॥ तेषां व्यतीते पर्याये बहुस्त्रीके युगे तदा ॥ लवाल
वं भ्रश्यमाना आयूरूपबलश्रुतैः ॥ ३८८ ॥ तथा गतास्तु वै काष्ठां प्रजासु जगतीश्वराः ॥ राजानः सम्प्रणश्यन्ति कालेनोपहतास्तदा ॥ ३८९ ॥
कल्किनोपहताः सर्वे म्लेच्छा यास्यन्ति सर्वशः ॥ अधार्मिकाश्च तेऽत्यर्थं पाषण्डाश्चैव सर्वशः ॥ ३९० ॥ प्रनष्टे नृपशब्दे च सन्ध्याश्लिष्टे कलौ युगे ॥
किञ्चिच्छिष्टाः प्रजास्ता वै धर्म्मे नष्टेऽपरिग्रहाः॥३९१ ॥ असाधना हताश्वासा व्याधिशोकेन पीडिताः ॥ अनावृष्टिहताश्चैव परस्परवधेन च ॥३९२॥
अनाथा हि परित्रस्ता वार्त्तामुत्सृज्य दुःखिताः॥ त्यक्त्वा पुराणि ग्रामांश्च भविष्यन्ति वनौकसः॥३९३॥ एवं नृपेषु नष्टेषु प्रजास्त्यक्त्वा गृहाणि तु ॥
नष्टे स्नेहे दुरापन्ना भ्रष्टस्नेहाः सुहृज्जनाः ॥ ३९४ ॥ वर्णाश्रमपरिभ्रष्टाः सङ्करं घोरमास्थिताः ॥ सरित्पर्वतसेविन्यो भविष्यन्ति प्रजास्तदा ॥ ३९५ ॥
सरितः सागरानूपान् सेवन्ते पर्वतानि च ॥ अङ्गान् कलिङ्गान् वङ्गांश्च काश्मीरान् काशिकोशलान् ॥ ३९६ ॥ ऋषिकान्तागिरिद्रोणीः संश्रयिष्यन्ति
मानवाः ॥ कृत्स्नं हिमवतः पृष्ठं कूलं च लवणाम्भसः ॥ ३९७॥ अरण्यान्यभिपत्स्यन्ति ह्यार्या म्लेच्छजनैः सह ॥ मृगैर्मीनैर्विहङ्गैश्च श्वापदैस्तक्षुभि
स्तथा ॥ मधुशाकफलैर्मूलैर्वर्त्तयिष्यन्ति मानवाः ॥ ३९८ ॥ चीरं पर्णञ्च विविधं वल्कलान्यजिनानि च ॥ स्वयं कृत्वा विवत्स्यन्ति यथा मुनिजना
स्तथा ॥ ३९९॥ बीजान्नानि तथा निम्नेस्वीहन्तः काष्ठशङ्कुभिः॥ अजैडकं खरोष्ट्रञ्च पालयिष्यन्ति यत्नतः ॥ ४०० ॥ नदीर्वत्स्यन्ति तोयार्थं कूलमाश्रि
त्य मानवाः॥ पार्थिवान् व्यवहारेण विबाधन्तः परस्परम्॥४०१॥बहुमन्याः प्रजाहीनाः शौचाचारविवर्जिताः॥एवं भविष्यन्ति नरास्तदाधर्म्मे व्यवस्थिताः
॥ ४०२ ॥ हीनाद्धीनांस्तथा धर्म्मान् प्रजाः समनुवर्त्तते ॥ आयुस्तदा त्रयोविंशं न कश्चिदतिवर्त्तते॥ ४०३ ॥ दुर्बला विषयग्लाना जरया संपरिप्लुताः ॥
पत्रमूलफलाहाराश्चीरकृष्णाजिनाम्बराः ॥ ४०४ ॥ वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्तश्चरिष्यन्ति वसुन्धराम् ॥ एतत्कालमनुप्राप्ताः प्रजाः कलियुगान्तके ॥ ४०५॥
क्षीणे कलियुगे तस्मिन् दिव्ये वर्षसहस्रके ॥ निःशेषास्तु भविष्यन्ति सार्द्धं कलियुगेन तु ॥ ससन्ध्यांशे तु निःशेषे कृतं वै प्रतिपत्स्यते ॥ ४०६ ॥
यदा चन्द्रश्च सूर्य्यश्च तथा तिष्यबृहस्पती ॥ एकरात्रे भविष्यन्ति तदा कृतयुगं भवेत् ॥ ४०७ ॥ एष वंशक्रमः कृत्स्नं कीर्तितो वो यथाक्रमम् ॥

नृपः ॥ ४३३ ॥ क्षत्रप्रावर्त्तकौ ह्येतौ भविष्येते चतुर्युगे ॥ एवं सर्वत्र विज्ञेयं सन्तानार्थं तु लक्षणम् ॥ ४३४ ॥ क्षीणे कलियुगे तस्मिन् भविष्ये तु कृते
युगे ॥ सप्तर्षिभिस्तु तैः सार्द्धमाद्ये त्रेतायुगे पुनः ॥ ४३५ ॥ गोत्राणां क्षत्रियाणाञ्च भविष्येते प्रवर्त्तकौ ॥ द्वापरांशे न तिष्ठन्ति क्षत्रिया ऋषिभिः सह ॥
॥ ४३६ ॥ काले कृतयुगे चैव क्षीणे त्रेतायुगे पुनः ॥ बीजार्थन्ते भविष्यन्ति ब्रह्मक्षत्रस्य वै पुनः ॥ ४३७ ॥ एवमेव तु सर्वेषु तिष्ठन्तीहान्तरेषु वै ॥
सप्तर्षयो नृपैः सार्द्धं सन्तानार्थं युगे युगे ॥४३८॥ क्षत्रस्यैव समुच्छेदः सम्बन्धो वै द्विजैः स्मृतः ॥ मन्वन्तराणां सप्तानां सन्तानाश्च श्रुताश्च ते ॥४३९॥
परम्परा युगानाञ्च ब्रह्मक्षत्रस्य चोद्भवः ॥ यथा प्रवृत्तिस्तेषां वै प्रवृत्तानां तथा क्षयः॥४४०॥ सप्तर्षयो विदुस्तेषां दीर्घायुष्ट्वाक्षयन्तु ते॥एतेन क्रमयोगेन
ऐलेक्ष्वाक्वन्वया द्विजाः ॥४४१॥ उत्पद्यमानास्त्रेतायां क्षीयमाणे कलौ पुनः॥ अनुयान्ति युगाख्यां तु यावन्मन्वन्तरक्षयः ॥ ४४२ ॥जामदग्न्येन रामेण क्षत्रे
निरवशेषिते ॥ कृते वंशकुलाः सर्वाः क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः ॥ द्विवंशकरणाश्चैव कीर्त्तयिष्ये निबोधत ॥ ४४३ ॥ ऐलस्येक्ष्वाकुनन्दस्य प्रकृतिः परिवर्त्तते ॥
राजानः श्रेणिबद्धास्तु तथान्ये क्षत्रिया नृपाः ॥ ४४४ ॥ ऐलवंशस्य ये ख्यातास्तथैवैक्ष्वाकवा नृपाः ॥ तेषामेकशतं पूर्णं कुलानामभिषेकिनाम् ॥
॥ ४४५ ॥ तावदेव तु भोजानां विस्तारो द्विगुणः स्मृतः ॥ भजते त्रिशकं क्षत्रं चतुर्था तद्यथादिशम् ॥ ४४६ ॥ तेष्वतीताः समाना ये ब्रुवतस्तान्नि
बोधत॥शतं वै प्रतिविन्ध्यानां शतं नागाः शतं हयाः॥४४७॥धृतराष्ट्राश्चैकशतमशीतिर्जनमेजयाः॥शतञ्च ब्रह्मदत्तानां शीरिणां वीरिणां शतम् ॥४४८॥
ततः शतं पुलोमानां श्वेतकाशकुशादयः ॥ ततोऽपरे सहस्रं वै येऽतीताः शतबिन्दवः ॥ ४४९ ॥ ईजिरे चाश्वमेधैस्ते सर्वे नियुतदक्षिणैः ॥ एवं राज
र्षयोऽतीताः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४५० ॥ मनोर्वैवस्वतस्यास्मिन् वर्त्तमानेऽन्तरे तु ये ॥ तेषां निबोधतोत्पन्ना लोके सन्ततयः स्मृताः ॥ ४५१ ॥
न शक्यं विस्तरं तेषां सन्तानानां परम्परा ॥ तत्पूर्वापरयोगेन वक्तुं वर्षशतैरपि ॥४५२॥ अष्टाविंशद्युगाख्यास्तु गता वैवस्वतेऽन्तरे ॥ एता राजर्षि
भिः सार्द्धं शिष्टा यास्ता निबोधत ॥४५३॥ चत्वारिंशच्च ये चैव भविष्याः सह राजभिः ॥ युगाख्यानां विशिष्टास्तु ततो वैवस्वतक्षये ॥ ४५४ ॥
एतद्वः कथितं सर्वं समासव्यासयोगतः ॥ पुनरुक्तं बहुत्वाच्च न शक्यन्तु युगैः सह ॥ ४५५ ॥ एते ययातिपुत्राणां पञ्चविंशा विशां
हिताः ॥ कीर्त्तिताश्चामिता ये ये लोकान् वै धारयन्त्युत ॥ ४५६ ॥ लभते च वरेण्यञ्च दुर्लभानिह लौकिकान् ॥ आयुः कीर्त्तिं धनं
पुत्रान् स्वर्गं चानन्त्यमश्नुते ॥ ४५७ ॥ धारणाच्छ्रवणाच्चैव ते लोकान् धारयन्त्युत ॥ इत्येष वो मया पादस्तृतीयः कथितो द्विजाः ॥ विस्त
रेणानुपूर्व्वीं च किम्भूयो वर्त्तयाम्यहम् ॥ ४५८ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

च महात्मनः ॥ २७ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ अतो भविष्यान् वक्ष्यामि सावर्णमनवस्तु ये ॥ तेषां जन्म प्रभावश्च नमस्कृत्य प्रचेतसे ॥ २८ ॥
वैवस्वते ह्युपस्पृष्टे किञ्चिच्छिष्टे च चाक्षुषे ॥ जज्ञिरे मनवस्ते हि भविष्यानागतान्तरे ॥ २९ ॥ प्राचेतसस्य दक्षस्य दौहित्रा मनवस्तु ये ॥ सावर्णा
नामतः पञ्च चत्वारः परमर्षिजाः ॥ ३० ॥ संज्ञापुत्रस्तु सावर्ण एको वैवस्वतस्तथा ॥ ज्येष्ठः संज्ञासुतो नाम मनुर्वैवस्वतः प्रभुः ॥ ३१ ॥
वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते समुत्पत्तिस्तयोः शुभा ॥ चतुर्दशैते मनवः कीर्तिताः कीर्त्तिवर्द्धनाः ॥ ३२ ॥ वेदे श्रुतौ पुराणे च सर्वे ते प्रभविष्णवः ॥
प्रजानां पतयः सर्वे भूतानां पतयः स्थिताः ॥ ३३ ॥ तैरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता ॥ पूर्णं युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरैः ॥ ३४ ॥
प्रजाभिस्तपसा चैव विस्तरं तेषु वक्ष्यते ॥ चतुर्दशैव ते ज्ञेयाः सर्गाः स्वायम्भुवादयः ॥ ३५ ॥ मन्वन्तराधिकारेषु वर्तन्ते च सकृत् सकृत् ॥
विनिवृत्ताधिकारास्ते महर्लोकं समाश्रिताः ॥३६॥ समतीतास्तु ये तेषामष्टौ षष्ठास्तथापरे ॥ पूर्वेषु साम्प्रतश्चायं शान्तिर्वैवस्वतः प्रभुः ॥ ३७ ॥
ये शिष्टास्तान् प्रवक्ष्यामि सह देवर्षिदानवैः ॥ सह प्रजानिसर्गेण सर्वांस्त्वनागतान् द्विजान् ॥ ३८ ॥ वैवस्वतनिसर्गेण तेषां ज्ञेयस्तु विस्तरः ॥
अन्यूना नातिरिक्तास्ते यस्मात् सर्वे विवस्वतः ॥३९॥ पुनरुक्ता बहुत्वात्तु वक्ष्ये न तेषु विस्तरम् ॥ मन्वन्तरेषु भाव्येषु भूतेष्वपि तथैव च ॥ ४० ॥
कुले कुले निसर्गास्तु तस्माद्भूयो विभागशः ॥ तेषामेव हि शिष्टार्थं विस्तरेण क्रमेण च ॥ ४१ ॥ दक्षस्य कन्या धर्मिष्ठा सुव्रता नाम विश्रुता ॥
सर्वकन्यावशिष्टा तु श्रेष्ठा धर्मपरा सुता ॥ गृहीत्वा तां पिता कन्यां जगाम ब्रह्मणोऽन्तिके ॥ ४२ ॥ वैराजस्तमुपासीनं धर्मेण च भवेन च ॥
भवधर्मसमीपस्थं दक्षं ब्रह्माभ्यभाषत ॥ ४३ ॥ दक्ष कन्या तवेयं वै जनयिष्यति सुव्रता ॥ चतुरो वै मनून् पुत्रांश्चातुर्वर्ण्यकराञ्छुभान् ॥ ४४ ॥
ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा दक्षो धर्मो भवस्तदा ॥ तां कन्यां मनसा जग्मुस्त्रयस्ते ब्रह्मणा सह ॥ ४५ ॥ सत्याभिध्यायिनां तेषां सद्यः कन्या व्यजायत ॥
सदृशानुरूपांस्तेषां चतुरो वै कुमारकान् ॥ ४६ ॥ संसिद्धाः कार्यकरणे सम्भूतास्ते श्रियान्विताः ॥ उपभोगसमर्थैश्च सद्योजातैः शरीरकैः ॥ ४७ ॥
ते दृष्ट्वा तान् स्वयम्बुद्धा ब्रह्मा व्याहारिणस्तदा ॥ संरब्धा वै व्यकर्षन्त मम पुत्रो ममेत्युत ॥ ४८ ॥ अभिध्यानान्मनोत्पन्नानूचुर्वै ते परस्परम् ॥
यो यस्य वपुषा तुल्यो भजतां स तु तं सुतम् ॥ ४९ ॥ यस्य यः सदृशश्चापि रूपे वीर्ये च नामतः ॥ तं गृह्णातु सुभद्रं वो वर्णतो यस्य यः समः ॥५०॥
ध्रुवं रूपं पितुः पुत्रः सोऽनुरुध्यति सर्वदा ॥ तस्मादात्मसमः पुत्रः पितुर्मातुश्च जायते ॥ ५१ ॥ एवं ते समयं कृत्वा सवर्णान् जगृहुः सुतान् ॥
यस्मात् सवर्णास्तेषां वै ब्रह्मादीनां कुमारकाः ॥ ५२ ॥ सवर्णा मनवस्तस्मात् सवर्णत्वं हि ते यतः ॥ मननान्माननाच्चैव तस्मात्ते मनवः स्मृताः ॥५३॥

हि ब्रह्मणः पुत्रा भविष्या मनवः स्मृताः ॥ ८० ॥ तेषामिन्द्रो वृषो नाम भविष्यः सुरराट् ततः ॥ तेषां सप्तर्षयश्चापि कीर्त्यमानान्निबोधत ॥ ८१ ॥
हविष्मान् काश्यपश्चापि वपुष्मान् यश्च भार्गवः ॥ वारुणिश्चैव चात्रेयो वासिष्ठो भग एव च ॥ ८२ ॥ पुष्टिश्चाङ्गिरसो ज्ञेयः पौलस्त्यो निश्चरस्तथा ॥
पौलहो ह्यग्नितेजाश्च देवा ह्येकादशेऽन्तरे ॥ ८३ ॥ सर्व्ववेगः सुधर्म्मा च देवानीकः पुरोवहः ॥ क्षेमधर्मा गृहेषुश्च ह्यादर्शः पौण्ड्रको मतः ॥ ८४ ॥
सावर्णस्य तु ते पुत्राः प्राजापत्यस्य वै मनोः ॥ द्वादशे त्वथ पर्याये रुद्रपुत्रस्य वै मनोः ॥ ८५ ॥ चतुर्थे ऋतुसावर्णे देवास्तस्यान्तरे शृणु ॥
पञ्चैव तु गणाः प्रोक्ता देवतानामनागताः ॥ ८६ ॥ हरिता रोहिताश्चैव देवाः सुमनसस्तथा ॥ सुकर्म्माणः सुपाराश्च पञ्च देवगणाः स्मृताः ॥ ८७ ॥
ब्रह्मणो मानसा ह्येते एकैको दशको गणः ॥ अरुन्तिजो हरिश्चैव विद्वान् यश्च सहस्रशः ॥ ८८ ॥ पर्वतानुचरश्चैव ह्यपांऽशुश्च मनोजवः ॥ उर्ज्जा
स्वाहा स्वधा तारा दशैते हरिताः स्मृताः ॥ ८९ ॥ तपोजानिर्भृतिश्चैव वाचा बन्धुश्च यः स्मृतः ॥ रजश्चैव तु राजश्च स्वर्णपादस्तथैव च ॥९० ॥
व्युष्टिर्विधिश्च वै देवो दशैते रोहिताः स्मृताः ॥ उपिताद्यास्तु ये देवास्त्रयस्त्रिंशत्प्रकीर्तिताः ॥ ९१ ॥ देवान् सुमनसो विद्धि सुकर्माणो निबोधत ॥
सुपर्वा वृषभः पृष्टः कपिद्युम्नौ विपश्चितः ॥ ९२ ॥ विक्रमश्च क्रमश्चैव निभृतः कान्त एव च ॥ एते सुकर्मणो देवाः सुतांश्चैषां निबोधत ॥ ९३ ॥
वर्य्योदितस्तथा जिष्णो वर्चस्वी द्युतिमान् हविः ॥ शुभो हविष्कृतात्प्राप्तिर्व्यापृथो दशमस्तथा ॥ ९४ ॥ सुपारा मानसास्त्वेते देवा वै सम्प्रकीर्ति
ताः ॥ तेषामिन्द्रस्तु विज्ञेय ऋतधामा महायशाः ॥ ९५ ॥ कृतिर्वासिष्ठपुत्रस्तु ह्यात्रेयः सुतपास्तथा ॥ तपोमूर्तिश्चांगिरसस्तपस्वी काश्यपस्तथा ॥
॥ ९६ ॥ तपोऽशयानः पौलस्त्यः पुलहश्च तपोरतिः ॥ भार्गवः सप्तमस्त्वेषां विज्ञेयस्तु तपोमतिः ॥ ९७ ॥ एते सप्तर्षयः सिद्धा अन्ये सावर्णिकेऽन्तरे ॥
देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः ॥ ९८ ॥ मित्रवान् मित्रबिन्दुश्च मित्रसेनो ह्यमित्रहा ॥ मित्रबाहुः सुवर्चाश्च द्वादशैते मनोः सुताः ॥ ९९ ॥ त्रयो
दशे तु पर्याये भाव्या रौच्यान्तरे पुनः ॥ त्रय एव गणाः प्रोक्ता देवानान्तु स्वयम्भुवा ॥ १०० ॥ ब्रह्मणो मानसाः पुत्रास्ते हि सर्वे महात्मनः ॥ सु
त्रामाणः सुधर्म्माणः सुकर्म्माणश्च ते त्रयः ॥ १०१ ॥ त्रिदशानां गणाः प्रोक्ता भविष्याः सोमपायिनः ॥ त्रयस्त्रिंशद्देवता याः प्राभविष्यन्त याज्ञिकैः ॥
॥ १०२ ॥ आज्येन पृषदाज्येन ग्रहश्रेष्ठेन चैव हि ॥ देवैर्देवास्त्रयस्त्रिंशत्पृथक्त्वेन निबोधत ॥ १०३ ॥ सुत्रामाणः प्रयाज्यास्तु ह्यायाज्यास्तु सा
म्प्रतम् ॥ सुकर्मणोऽनुयाज्यास्तु पृषदाज्याशिनस्तु ये ॥ १०४ ॥ उपयाज्याः सुधर्माण इति देवाः प्रकीर्तिताः ॥ दिवस्पतिर्महासत्वस्तेषामिन्द्रो
भविष्यति ॥ १०५ ॥ पुलहात्मजपुत्रास्ते विज्ञेयास्तु रुचेः सुताः ॥ आङ्गिराश्चैव धृतिमान् पौलस्त्यः पथ्यवांस्तु सः ॥ १०६ ॥ पौलहस्तत्त्वद

प्रतिसञ्चरः॥१३२॥ब्राह्मो नैमित्तिकस्तस्य कल्पदाहः प्रसंयमः ॥ प्रतिसर्गे तु भूतानां प्राकृतः करणक्षयः ॥१३३॥ ज्ञानाचात्यन्तिकः प्रोक्तः कारणानाम
सम्भवः ॥ ततः संहृत्य तान् ब्रह्मा देवांस्त्रैलोक्यवासिनः ॥ १३४ ॥ अहरन्ते प्रकुरुते सर्गस्य प्रलयं पुनः ॥ सुषुप्सुर्भगवान् ब्रह्मा प्रजाः संहरते
तदा ॥ १३५ ॥ ततो युगसहस्रान्ते संप्राप्ते च युगक्षये ॥ तत्रात्मस्थाः प्रजाः कर्त्तुं प्रपेदे स प्रजापतिः ॥ १३६ ॥ तदा भवत्यनावृष्टिस्तदा सा शतवा
र्षिकी ॥ तथा यान्यल्पसाराणि सत्वानि पृथिवीतले ॥ १३७ ॥ तान्येवात्र प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च ॥ सप्तरश्मिरथो भूत्वा ह्युदतिष्ठद्विभाव
सुः ॥ १३८॥ असह्यरश्मिर्भगवान् पिबन्नम्भो गभस्तिभिः ॥ हरिता रश्मयस्तस्य दीप्यमानास्तु सप्तभिः ॥ १३९ ॥ भूय एव विवर्तन्ते व्याप्नुवन्तो वनं
शनैः ॥ भौमं काष्ठं धनं तेजो भृशमद्भिस्तु दीप्यते ॥ १४० ॥ तस्मादुदकं सूर्य्यस्य तपतोऽति हि कथ्यते ॥ नावृष्ट्या तपते सूर्यो नावृष्ट्या
परिविष्यते ॥ १४१ ॥ नावृष्ट्या परिचिन्वन्ति वारिणा दीप्यते रविः ॥ तस्मादपः पिबन् या वै दीप्यते रविरम्बरे ॥ १४२ ॥ तस्य ते रश्मयः
सप्त पिबन्त्यम्भो महार्णवात् ॥ तेनाहारेण सन्दीप्तः सूर्य्यः सप्त भवत्युत ॥ १४३ ॥ ततस्ते रश्मयः सप्त सूर्य्यभूताश्चतुर्दशम् ॥ चतुर्लोकमिमं सर्वं
दहन्ति शिखिनस्तदा ॥ १४४ ॥ प्राप्नुवन्ति च भाभिस्तु ह्यूर्द्धं चाधश्च रश्मिभिः ॥ दीप्यन्ते भास्कराः सप्त युगान्ताग्निः प्रतापिनः ॥ १४५ ॥ ते वा
रिणा च संदीप्ता बहुसाहस्ररश्मयः॥ खं समावृत्य तिष्ठन्ति निर्दहन्तो वसुन्धराम् ॥ १४६ ॥ ततस्तेषां प्रतापेन दह्यमाना वसुन्धरा ॥ साद्रि
नद्यर्णवा पृथ्वी विस्नेहा समपद्यत ॥ १४७॥ दीप्ताभिः सन्तताभिश्च चित्राभिश्च समन्ततः ॥ अधश्चोर्ध्वंश्च तिर्यक् च संरुद्धं सूर्यरश्मिभिः ॥
॥१४८॥ सूर्य्याग्नीनां प्रवृद्धानां संसृष्टानां परस्परम् ॥ एकत्वमुपयातानामेकज्वालं भवत्युत ॥ १४९ ॥ सर्वलोकप्रणाशश्च सोऽग्निर्भूत्वा तु मण्डली ॥
चतुर्लोकमिदं सर्वं निर्दहत्याशु तेजसा ॥ १५० ॥ ततः प्रलीयते सर्वं जङ्गमं स्थावरं तदा ॥ निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिः कूर्मपृष्ठसमा भवेत् ॥ १५१ ॥
अम्बरीषमिवाभाति सर्वं मारिषितं जगत् ॥ सर्वमेव तदार्चिर्भिः पूर्णं जज्वाल्यते नभः ॥ १५२ ॥ पाताले यानि भूतानि महोदधिगतानि च ॥ तत
स्तानि प्रलीयन्ते भूमित्वमुपयान्ति च ॥ १५३ ॥ द्वीपाश्च पर्वताश्चैव वर्षाण्यथ महोदधिः ॥ सर्वं तद्भस्मसाच्चक्रे सर्वात्मा पावकस्तु सः ॥ १५४ ॥
समुद्रेभ्यो नदीभ्यश्च पातालेभ्यश्च सर्वतः ॥ पिबन्नपः समिद्धोऽग्निः पृथिवीमाश्रितो ज्वलन् ॥ १५५ ॥ ततः संवर्त्तकः शैलानतिक्रम्य महांस्तथा ॥
लोकान् संहरते दीप्तो घोरः संवर्त्तकोऽनलः ॥१५६॥ ततः स पृथिवीं भित्त्वा रसातलमशोषयत् ॥ निर्दह्य तांस्तु पातालान्नागलोकमथादहत् ॥१५७॥
अधस्तात्पृथिवीं दग्ध्वा ह्यूर्द्धं स दहते दिवम् ॥ योजनानां सहस्राणि ह्ययुतान्यर्बुदानि च ॥ १५८ ॥ उदतिष्ठञ्छिखास्तस्य वह्नयः संव

ब्रह्मणो गते ॥ तावन्तं कालमेवं तु भवत्येकार्णवं जगत् ॥ तदा तु सर्व्वव्यापारा निवर्त्तन्ते प्रजापतेः ॥ १८४ ॥ एवमेकार्णवे तस्मिन्नष्टे स्थावरे
जङ्गमे ॥ तदा स भवति ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ १८५ ॥ सहस्रशीर्षा सुमनाः सहस्रपात् सहस्रचक्षुर्वदनः सहस्रवाक् ॥ सहस्रबाहुः
प्रथमः प्रजापतिस्त्रयीपथे यः पुरुषो निरुच्यते ॥ १८६ ॥ आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता ह्यपूर्व्व एकः प्रथमस्तुराषाट् ॥ हिरण्यगर्भः पुरुषो
महान् वै संपद्यते वै तमसः परस्तात् ॥ १८७ ॥ चतुर्युगसहस्रान्ते सर्वतः सलिलप्लुते ॥ सुषुप्सुरप्रकाशां स्वां रात्रिं तु कुरुते प्रभुः ॥ १८८ ॥
चतुर्विधा यदा शेते प्रजाः सर्व्वाण्डमण्डिताः ॥ पश्यन्ते तं महात्मानं कालं सप्त महर्षयः ॥ १८९ ॥ जनलोकविवर्त्तन्तस्तपसा लब्धचक्षुषः ॥ भृग्वा
दयो महात्मानः पूर्वं व्याख्यातलक्षणाः॥१९०॥सत्यादीन् सप्तलोकान् वै ते हि पश्यन्ति चक्षुषा ॥ ब्रह्माणं ते तु पश्यन्ति महाब्राह्मीषु रात्रिषु॥ १९१॥
सप्तर्षयः प्रपश्यन्ति सुप्तकालं स्वरात्रिषु ॥ कल्पानां परमेष्ठित्वात्तस्मादाद्यः स पच्यते ॥१९२॥ स यष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः ॥ एवमाद्ये
शयित्वा तु स्वात्मन्येव प्रजापतिः ॥ १९३ ॥ अथात्मनि महातेजाः सर्वमादाय सर्वकृत् ॥ ततस्ते वसते रात्रिं तमस्येकार्णवे जले ॥ १९४ ॥ ततो
रात्रिक्षये प्राप्ते प्रतिबुद्धः प्रजापतिः ॥ मनः सिसृक्षया युक्तं सर्गाय निदधे पुनः ॥ १९५ ॥ एवं सलोके निर्वृत्ते उपशान्ते प्रजापतौ ॥ ब्रह्मनैमित्तिके
तस्मिन् कल्पिते वै प्रसंयमे ॥ १९६ ॥ देहैर्वियोगः सत्वानां तस्मिन् वै कृत्स्नशः स्मृतः ॥ ततो दग्धेषु भूतेषु सर्व्वेष्वादित्यरश्मिभिः ॥ देवर्षिम
नुवर्य्येषु तस्मिन् सङ्कलने तदा ॥ १९७ ॥ गन्धर्वादीनि सत्वानि पिशाचान्तानि सर्व्वशः ॥ कल्पादावप्रतप्तानि जनमेवाश्रयन्ति वै ॥ १९८ ॥
तिर्यग्योनीनि सत्वानि नारकेयानि यान्यपि ॥ तदा तान्यपि दग्धानि धुतपापानि सर्व्वशः ॥ जने तान्युपपद्यन्ते यावत्संप्लवते जगत् ॥ १९९ ॥
व्युष्टायान्तु रजन्यां तु ब्रह्मणेऽव्यक्तयोनये ॥ जायन्ते हि पुनस्तानि सर्व्वभूतानि कृत्स्नशः ॥ २०० ॥ ऋषयो मनवो देवाः प्रजाः सर्व्वाश्चतुर्विधाः ॥
तेषामपीह सिद्धानां निधनोत्पत्तिरुच्यते ॥ २०१॥ यथा सूर्यस्य लोकेऽस्मिन्नुदयास्तमनं स्मृतम् ॥ तथा जन्मनिरोधश्च भूतानामिह दृश्यते॥२०२॥
आभूतसंप्लवात्तस्माद्भवः संसार उच्यते ॥ यथा सर्व्वाणि भूतानि जायन्ते हि वर्षास्विह ॥ २०३ ॥ स्थावरादीनि सत्त्वानि कल्पे कल्पे तथा प्रजाः ॥
यथार्त्तावृतुलिङ्गानि नानारूपाणि पर्य्यये ॥ २०४ ॥ दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्रह्मात्तरात्रिषु ॥ प्रत्याहारे च सर्गे च गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥२०५॥
निष्क्रमन्ते विशन्ते च प्रजाकारं प्रजापतिम् ॥ ब्रह्माणं सर्वभूतानि महायोगं महेश्वरम् ॥ २०६ ॥ संस्रष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः ॥ व्यक्ता
व्यक्तो महादेवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥ २०७ ॥ येनैव सृष्टाः प्रथमं प्रयाता आपो हि मार्गेण महीतलेऽस्मिन् ॥ पूर्वप्रयातेन तथा ह्यपोऽन्यास्तेनैव

लेनाप्लुते लोके नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥२३४॥ विनिवृत्ते च संहारे उपशान्ते प्रजापतौ॥निरालोके प्रदग्धेतु नैशेन तु समावृते ॥ ईश्वराधिष्ठिते ह्यस्मिंस्तदा
ह्येकार्णवे तदा ॥ २३५ ॥ तावदेकार्णवो ज्ञेयो यावदासीदहः प्रभोः ॥ रात्रिस्तु सलिलावस्था निवृत्तौ चाप्यहः स्मृतम् ॥ २३६ ॥ अहोरात्रस्तथैवास्य
क्रमेण परिवर्त्तते ॥ आभूतसंप्लवो ह्येष अहोरात्रः स्मृतः प्रभोः ॥ २३७ ॥ त्रैलोक्ये यानि सत्वानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥ आभूतेभ्यः प्रलीयन्ते
तस्मादाभूतसंप्लवः ॥ २३८ ॥ अग्रे भूतः प्रजानान्तु तस्माद्भूतः प्रजापतिः ॥ आभूतः प्लवते चैव तस्मादाभूतसंप्लवः ॥ २३९ ॥ शाश्वते चामृतत्वे
च शब्दे चाभूतसंप्लवः ॥ अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागताः प्रजाः ॥ दिव्यसङ्ख्या प्रसङ्ख्याता ह्यपरार्धगुणीकृता ॥ २४० ॥ परार्धद्विगुणञ्चापि
परमायुः प्रकीर्त्तितम् ॥ एतावान् स्थितिकालस्तु ह्यजस्येह प्रजापतेः ॥ स्थित्यन्ते प्रतिसर्गस्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ २४१ ॥ यथा वायुप्रवेशेन दीपा
र्चिरुपशाम्यति ॥ तथैवं प्रतिसर्गेण ब्रह्मा समुपशाम्यति ॥ २४२ ॥ तथा ह्यप्रतिसंसृष्टे महदादौ महेश्वरे ॥ महत्प्रलीयतेऽव्यक्ते गुणसाम्यंततो भवेत्
॥ २४३ ॥ इत्येष च समाख्यातो मया ह्याभूतसंप्लवः ॥ ब्रह्मनैमित्तिको ह्येष संप्रक्षालनसंयमः ॥ २४४ ॥ समासेन समाख्यातः भूयः किं वर्त्तयामि वः ॥
य इदं धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभीक्ष्णशः ॥ कीर्त्तनाच्छ्रवणाच्चापि महतीं सिद्धिमाप्नुयात् ॥ २४५ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादो
नाम अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ॥ छ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ असाधारणवृत्तैस्तु हुतशेषादिभिर्द्विजैः ॥ धर्म्मवैशेषिकैश्चैव ह्याचूर्णसूक्ष्मदर्शिभिः ॥ १ ॥
ते देवैः सह तिष्ठन्ति महर्लोकनिवासिनः ॥ चतुर्दशैते मनवः कीर्त्तिताः कीर्त्तिवर्धनाः ॥ २ ॥ अतीता वर्त्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये ॥ ऋषिभि
र्दैवतैश्चैव सह गन्धर्वराक्षसैः ॥ ३ ॥ मन्वन्तराधिकारेषु जायन्तीह पुनः पुनः ॥ देवाः सप्तर्षयश्चैव मनवः पितरस्तथा ॥ ४ ॥ सर्व्वे ह्यपि क्रमाती
ता महर्लोकं समाश्रिताः ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्धार्मिकैः सहिताः सुराः ॥ ५ ॥ तैस्तथ्यकारिभिर्युक्तैः श्रद्धावद्भिरदर्पितैः ॥ वर्णाश्रमाणां धर्म्मेषु
श्रौतस्मार्त्तेषु संस्थितैः ॥ विनिवृत्ताधिकारास्ते यावन्मन्वन्तरक्षयः ॥ ६ ॥ ॥ ऋषयऊचुः ॥ ॥ महर्लोकेति यत्प्रोक्तं मातरिश्वंस्त्वया
विभो ॥ प्रतिलोके च कर्त्तव्यमनेकैः समधिष्ठिताः ॥ ७ ॥ यावन्तश्चैव ते लोका दृश्यन्ते ये न ते प्रभो ॥ एतन्नः कथय प्रीत्या त्वं हि
वेत्थ यथातथम् ॥ ८ ॥ एवमुक्तस्ततो वायुर्मुनिभिर्विनयात्मभिः ॥ प्रोवाच मधुरं वाक्यं यथातत्त्वेन तत्त्ववित् ॥ ९ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ॥ १८४
चतुर्दशैव स्थानानि वर्णितानि महर्षिभिः ॥ लोकाख्यानि तु यानि स्युर्येषु तिष्ठन्ति मानवाः ॥ १० ॥ सप्त तेषु कृतान्याहुरकृतानि
तु सप्त वै ॥ भूरादयस्तु सङ्ख्याताः सप्त लोकाः कृतास्त्विह॥११॥अकृतानि तु सप्तैव प्राकृतानि तु यानि वै ॥ स्थानानि स्थानिभिः सार्द्धं कृतानि तु

सर्वेषां पुनरावृत्तिहेतवः ॥ ३७ ॥ योगं तपश्च सत्यञ्च समाधाय तदात्मनि ॥ षष्ठे काले निवर्त्तन्ते तत्तदाहार्विपर्यये ॥ ३८ ॥ सत्यन्तु सप्तमो लोको ह्यपुनर्मार्गगामिनाम् ॥ ब्रह्मलोकः समाख्यातो ह्यप्रतीघातलक्षणः ॥ ३९ ॥ पर्यासपारिमाण्येन भूर्लोकः सामितिः स्मृतः ॥ भूम्यन्तरं यदादित्यादन्तरिक्षं भुवः स्मृतम् ॥ ४० ॥ सूर्य्यध्रुवान्तरं यच्च स्वर्गलोको दिवः स्मृतः ॥ ध्रुवाज्जनान्तरं यच्च महर्लोकस्तदुच्यते ॥ ४१ ॥ विख्याताः सप्तलोकास्तु तेषां वक्ष्यामि सिद्धयः ॥ भूर्लोकवासिनः सर्व्वे ह्यन्नादास्तु रसात्मकाः ॥ ४२ ॥ भुवे स्वर्गे च ये सर्व्वे सोमपा आज्यपाश्च ते ॥ चतुर्थे येऽपि वर्त्तन्ते महर्लोकं समाश्रिताः ॥४३॥ विज्ञेया मानसी तेषां सिद्धिर्वै पञ्चलक्षणा ॥ सद्यश्चोत्पद्यते तेषां मनसा सर्व्वमीप्सितम् ॥ ४४ ॥ एते देवा यजन्ते वै यज्ञैः सर्व्वैः परस्परम् ॥ अतीतान् वर्त्तमानांश्च वर्त्तमानाननागतान् ॥ ४५ ॥ प्रथमानन्तरैरिष्ट्वा ह्यन्तराः साम्प्रतैः पुनः ॥ निवर्त्ततीत्यासम्बन्धो ऽतीते देवगणे ततः ॥४६॥ विनिवृत्ताधिकाराणां सिद्धिस्तेषान्तु मानसी ॥ तेषान्तु मानसी ज्ञेया शुद्धा सिद्धिपरम्परा ॥४७॥ उक्ता लोकाश्च चत्वारो जनस्यानुविधिस्तथा ॥ समासेन मया विप्रा भूयस्तं वर्त्तयामि वः ॥ ४८ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ॥ मरीचिः कश्यपो दक्षो वसिष्ठश्चाङ्गिरा भृगुः ॥ पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुरित्येवमादयः ॥ ४९ ॥ पूर्व्वं ते संप्रसूयन्ते ब्रह्मणो मनसा इह ॥ ततः प्रजाः प्रतिष्ठाप्य जनमेवाश्रयन्ति ते ॥ ५० ॥ कल्पदाहप्रदीप्तेषु तदा कालेषु तेषु वै ॥ भूरादिषु महान्तेषु भृशं व्याप्तेष्वथाग्निना ॥ ५१ ॥ शिष्टा संवर्त्तका ज्ञेया प्राप्नुवन्ति सदा जनाः ॥ यामादयो गणाः सर्व्वे महर्लोकनिवासिनः ॥५२॥ महर्लोकेषु दीप्तेषु जनमेवाश्रयन्ति ते ॥ सर्व्वे सूक्ष्मशरीरास्ते तत्रस्थास्तु भवन्ति ते ॥५३॥ तेषां ते तुल्यसामर्थ्यास्तुल्यमूर्त्तिधरास्तथा ॥ जनलोके विवर्त्तन्ते यावत्संप्लवते जगत् ॥ ५४ ॥ व्युष्टायान्तु रजन्यां वै ब्रह्मणोऽव्यक्तयोनिनः ॥ अहरादौ प्रसूयन्ते पूर्ववत्क्रमशस्त्विह ॥ ५५ ॥ स्वायम्भुवादयः सर्वे मरीच्यन्तास्तु साधकाः ॥ देवास्ते वै पुनस्तेषां जायंते निधनेष्विह ॥ ५६ ॥ यामादयः क्रमेणैव कनिष्ठाद्याः प्रजापतेः ॥ पूर्वं पूर्वं प्रसूयन्ते पश्चिमे पश्चिमास्तथा ॥ देवान्वये देवता हि सप्त सम्भूतयः स्मृताः ॥ व्यतीताः कल्पजास्तेषां तिस्रः शिष्टास्तथा परे ॥ ५८ ॥ आवर्त्तमाना देवास्ते क्रमेणैते न सर्व्वशः ॥ गत्वा जवन्तदीभावन्दशकृत्वः पुनः पुनः ॥ ५९ ॥ ततस्ते वै गणाः सर्वे दृष्ट्वा भावेष्वनित्यताम् ॥ भाविनोऽर्थस्य च बलात् पुण्याख्यातिबलेन च ॥ ६० ॥ निवृत्तवृत्तयः सर्वे स्वस्थाः सुमनसस्तथा ॥ वैराजे तूपपद्यन्ते लोकमुत्सृज्यं तज्जनम् ॥ ६१ ॥ ततोऽन्येनैव कालेन नित्ययुक्तास्तपस्विनः ॥ कथनाच्चैव धर्मस्य तेषां ते जज्ञिरेऽन्वये ॥ ६२ ॥ इहोत्पन्नास्ततस्ते वै स्थाना आपूरयन्त्युत ॥ देवत्वे च ऋषित्वे च मनुष्यत्वे च सर्वशः ॥ ६३ ॥ एवं देवगणाः सर्वे दशकृत्वो निवर्त्य वै ॥

शान्ताः प्रणिहितात्मानो दयावन्तो जितेन्द्रियाः ॥ ८९ ॥ निःसङ्गाः शुचयश्चैव ब्रह्मसायुज्यगाः स्मृताः ॥ अकामयुक्तैर्ये वीरास्तपोभिर्दग्धकि
ल्बिषाः ॥ तेषामंशिनो लोका अप्रमेयसुखाः स्मृताः ॥ ९० ॥ एतद्ब्रह्मपदं दिव्यं परमं व्योम्नि भास्वरम् ॥ यत्र गत्वा न शोचन्ति ह्यमरा ब्र
ह्मणा सह ॥ ९१ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ कस्मादेष परार्द्धश्च कश्चैष पर उच्यते ॥ एतद्वेदितुमिच्छामस्तन्नो निगद सत्तम ॥ ९२ ॥ ॥ सूत
उवाच ॥ ॥ शृणुध्वं मे परार्द्धश्च परिसंख्यां परस्य च ॥ एकं दश शतञ्चैव सहस्रञ्चैव सङ्ख्यया ॥ ९३ ॥ विज्ञेयमासहस्रन्तु सहस्राणि दशायुतम् ॥
एकं शतसहस्रन्तु नियुतं प्रोच्यते बुधैः ॥ ९४ ॥ तथा शतसहस्राणामर्बुदं कोटिरुच्यते ॥ अर्बुदं दशकोट्यस्तु ह्यब्जं कोटिशतं विदुः ॥ ९५ ॥
सहस्रमपि कोटीनां खर्वमाहुर्मनीषिणः ॥ दशकोटिसहस्राणि निखर्वमिति तं विदुः ॥ ९६ ॥ शतं कोटिसहस्राणां शङ्कुरित्यभिधीयते ॥ सहस्रन्तु सह
स्राणां कोटीनां दशधा पुनः ॥ गुणितानि समुद्रं वै प्राहुः संख्याविदो जनाः ॥ ९७ ॥ कोटीनां सहस्रमयुतमित्ययं मध्य उच्यते ॥ कोटि
सहस्रनियुता स चान्त इति संज्ञितः॥९८॥कोटिकोटिसहस्राणि परार्द्ध इति कीर्त्यते ॥परार्द्धद्विगुणञ्चापि परमाहुर्मनीषिणः॥९९॥शतमाहुः परिदृढं सहस्रं
परिपद्मकम्॥विज्ञेयमयुतं तस्मान्नियुतं प्रयुतं ततः ॥१००॥ अर्बुदं निर्बुदञ्चैव खर्बुदञ्च ततः स्मृतम्॥खर्वञ्चैव निखर्वञ्च शङ्कुः पद्मं तथैव च ॥ १०१ ॥
समुद्रं मध्यमञ्चैव परार्द्धमपरं ततः॥एवमष्टादशैतानि स्थानानि गणनाविधौ॥ १०२ ॥शतानीति विजानीयात् संज्ञितानि महर्षिभिः॥कल्पसंख्या प्रवृत्त
स्य परार्द्धं ब्रह्मणः स्मृतम् ॥ १०३ ॥ तावच्छेषोऽपि कालोऽस्य तस्यान्ते प्रतिसृज्यते ॥ पर एष परार्द्धश्च संख्यातः संख्यया मया ॥१०४॥यस्मादस्य परं
वीर्यं परमायुः परन्तपः ॥ परा शक्तिः परो धर्म्मः परा विद्या परा धृतिः ॥ १०५ ॥ परं ब्रह्म परं ज्ञानं परमैश्वर्यमेव च ॥ तस्मात्परतरं भूतं ब्रह्मणोऽन्यन्न विद्य
ते॥१०६॥परे स्थितो ह्येष परः सर्वार्थेषु ततः परः ॥ संख्यातस्तु परो ब्रह्मा तस्यार्द्धं तु परार्द्धता ॥१०७॥ संख्येयं चाप्यसंख्येयं सततं चापि तं त्रिकम् ॥
संख्येयं संख्यया दृष्टमपारार्द्धाद्विभाष्यते॥१०८॥राशौ दृष्टे न संख्यास्ति तदसंख्यस्य लक्षणम्॥आनन्त्यं सिकताख्येषु दृष्टवान् पञ्चलक्षणम्॥१०९॥
ईश्वरैस्तत्प्रसंख्यातं शुद्धत्वाद्दिव्यदृष्टिभिः ॥ एवं ज्ञानप्रतिष्ठत्वात् सर्वं ब्रह्मानुपश्यति ॥ ११० ॥ एतच्छ्रुत्वा तु ते सर्वे नैमिषेयास्तपस्विनः ॥
बाष्पपर्य्याकुलाक्षास्तु प्रहर्षाद्गद्गदस्वराः ॥ १११ ॥ पप्रच्छुर्मातरिश्वानं सर्वे ते ब्रह्मवादिनः ॥ ब्रह्मलोकस्तु भगवन् यावन्मात्रान्तरः प्रभो॥११२॥
योजनाग्रेण संख्यातः साधनं योजनस्य तु ॥ क्रोशस्य च परीमाणं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ११३ ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा मातरिश्वा विनीतवाक्॥
उवाच मधुरं वाक्यं यथादृष्टं यथाक्रमम् ॥ ११४ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ॥ एतद्वोऽहं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मे विवक्षितम् ॥ अव्यक्ताद्व्यक्तभागो वै महा

एककोटियौजनानां पञ्चाशन्नियुतानि तु ॥ १४२ ॥ ऊर्द्ध्वभागस्ततोऽण्डस्य ब्रह्मलोकात्परः स्मृतः॥चतुरश्चैव कोट्यस्तु नियुताः पञ्चषष्टि च ॥१४३॥
एषोऽर्द्धांशप्रचारोऽस्य गत्यन्तश्चापरः स्मृतः॥ध्रुवाग्रमेतद्व्याख्यातं योजनाग्राद्यथाश्रुतम् ॥ १४४ ॥ अधोगतीनां वक्ष्यामि भूतानां स्थानकल्पनाम् ॥
गच्छन्ति घोरकर्म्माणः प्राणिनो यत्र कर्म्मभिः ॥ १४५ ॥ नरको रौरवो रोधः सूकरस्ताल एव च ॥ तप्तकुम्भो महाज्वालः शवलोऽथ विमोचनः ॥
॥ १४६ ॥ कृमी च कृमिभक्षश्च लालाभक्षो विशंसनः ॥ अधःशिराः पूयवहो रुधिरान्धस्तथैव च ॥ १४७ ॥ तथा वैतरणं कृष्णमसिपत्रवनं तथा ॥
अग्निज्वालो महाघोरः संदंशोऽथ श्वभोजनः ॥ १४८ ॥ तमश्च कृष्णसूत्रश्च लोहश्चाप्यसिजस्तथा ॥ अप्रतिष्ठोऽथ वीच्यश्च नरका ह्येवमादयः ॥१४९॥
तामसा नरकाः सर्वे यमस्य विषये स्थिताः ॥ येषु दुष्कृतकर्माणः पतन्तीह पृथक्पृथक् ॥ १५० ॥ भूमेरधस्तात्ते सर्वे रौरवाद्याः प्रकीर्त्तिताः ॥
रौरवे कूटसाक्षी तु मिथ्या यश्चाभिशंसति ॥ क्रूरग्रहे पक्षवादी ह्यसत्यः पतते नरः ॥ १५१ ॥ रोधे गोघ्नो भ्रूणहा च ह्यग्निदाता पुरस्य च ॥ सूकरे
ब्रह्महा मज्जेत्सुरापः स्वर्णतस्करः ॥ १५२ ॥ ताले पतेत्क्षत्रियहा हत्वा वैश्यञ्च दुर्गतिम् ॥ ब्रह्महत्याञ्च यः कुर्याद्यश्च स्याद्गुरुतल्पगः ॥ १५३ ॥
तप्तकुम्भी स्वसागामी तथा राजभटश्च यः ॥ तप्तलोहे चाश्ववणिक्तथा बन्धनरक्षिता ॥ १५४ ॥ साध्वीविक्रयकर्त्ता च यस्तु भक्तं परि
त्यजेत् ॥ महाज्वाले दुहितरं स्नुषां गच्छति यस्तु वै ॥ १५५ ॥ वेदो विक्रीयते येन वेदं दूषयते च यः ॥ गुरूंश्चैवावमन्यन्ते वाक्शैस्ता
डयन्ति च ॥ १५६ ॥ अगम्यगामी च नरो नरकं शवलं व्रजेत् ॥ विमोहे पतिते चौरे मर्यादां यो भिनत्ति वै ॥ १५७ ॥ दुरध्वं कुरुते यस्तु
कीटलोहं प्रपद्यते ॥ देवब्राह्मणविद्वेष्टा गुरूणाञ्चाप्यपूजकः ॥ रत्नं दूषयते यस्तु कृमिभक्ष्यं प्रपद्यते ॥ १५८ ॥ पर्य्यश्नाति य एकोऽन्यो
ब्राह्मणीं सुहृदः सुताम् ॥ लालाभक्षे स पतति दुर्गन्धे नरके गतः ॥ १५९ ॥ काण्डकर्त्ता कुलालश्च निष्कहर्त्ता चिकित्सकः ॥ आरा
मेष्वग्निदाता यः पतते स विशंसने ॥ १६० ॥ असत्प्रतिग्रही यश्च तथैवायाज्ययाजकः ॥ नक्षत्रैर्जीवितो यश्च नरो गच्छत्यधोमुखम् ॥ १६१ ॥
क्षीरं सुरां च मांसं च लाक्षां गन्धं रसन्तिलान् ॥ एवमादीनि विक्रीणन्घोरे पूयवहे पतेत् ॥ १६२ ॥ यः कुक्कुटानि बध्नाति मार्जारान्सूकरांश्च
तान् ॥ पक्षिणश्च मृगाञ्छागान्सोऽप्येनं नरकं व्रजेत् ॥ १६३ ॥ आजीविको माहिषकस्तथा चक्रध्वजी च यः ॥ रङ्गोपजीविको विप्रः शाकुनिग्रा
मयाजकः ॥ १६४ ॥ अगारदाही गरदः कुण्डाशी सोमविक्रयी ॥ सुरापो मांसभक्षश्च तथा च पशुघातकः ॥ १६५ ॥ विश्वस्ता माहिषादीनां मृगह
न्ता तथैव च ॥ पर्वकारश्च सूची च यश्च स्यान्मित्रघातकः ॥ रुधिरान्धे पतन्त्येते एवमाहुर्मनीषिणः ॥ १६६ ॥ उपविष्टमेकपङ्क्त्यां विषमं भोजयन्ति

सिनाम् ॥ संसारे संसरन्तीह यावन्तः प्राणिनश्च तान् ॥ १९३ ॥ सङ्ख्यया परिसङ्ख्याय ततः प्रब्रूहि कृत्स्नशः ॥ ऋषीणां तद्वचः श्रुत्वा मारुतो वाक्यमब्रवीत् ॥ १९४ ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ॥ न शक्या जन्तवः कृत्स्नाः प्रसंख्यातुं कथञ्चन ॥ अनाद्यन्ताश्च संकीर्णा ह्यप्यूहेन व्यवस्थिताः ॥ गणना विनिवृत्तैषामानन्त्येन प्रकीर्त्तिताः ॥ १९५ ॥ न दिव्यचक्षुषा ज्ञातुं शक्या ज्ञानेन वा पुनः ॥ चक्षुषा वै प्रसंख्यातुमतो ह्यन्ते नराधिपः ॥ १९६ ॥ अनाध्यानादवेद्यत्वान्नैव प्रश्नो विधीयते ॥ ब्रह्मणा संज्ञितं यत्तु संख्यया तन्निबोधत ॥ १९७ ॥ यः सहस्रतमो भागः स्थावराणां भवेदिह ॥ पार्थिवाः कृमयस्तावत्संसेकाद्येषु सम्भवाः ॥ १९८ ॥ संसेकजानाम्भागेन सहस्रेणैव सम्मिताः ॥ औदका जन्तवः सर्वे निश्चयात्ताद्विचारितम् ॥ १९९ ॥ सहस्रेणैव भागेन सत्वानां सलिलौकसाम् ॥ विहङ्गमास्तु विज्ञेया लौकिकास्ते च सर्वशः ॥ २०० ॥ यः सहस्रतमोभागस्तेषां वै पक्षिणां भवेत् ॥ पशवस्तत्समा ज्ञेया लौकिकास्तु चतुष्पदाः ॥ २०१ ॥ चतुष्पदानां सर्वेषां सहस्रेणैव संमताः ॥ भागेन द्विपदा ज्ञेया लौकिकेऽस्मिंस्तु सर्व्वशः ॥ २०२ ॥ यः सहस्रतमो भागो भागे तु द्विपदां पुनः ॥ धार्म्मिकास्तेन भागेन विज्ञेयाः सम्मिताः पुनः ॥ २०३ ॥ सहस्रेणैव भागेन धार्म्मिकेभ्यो दिवङ्गताः ॥ यः सहस्रतमो भागो धार्म्मिकाणां भवेद्दिवि ॥ संमितास्तेन भागेन मोक्षिणस्तावदेव हि ॥ २०४ ॥ स्वर्गोपपादकैस्तुल्या यातनास्थानवासिनः ॥ पतिताश्चूर्णमुदेशाद्दुरात्मानो म्रियन्ति ये ॥ रौरवे तामसे ह्येते शीतोष्णं प्राप्नुवन्ति ते ॥ २०५ ॥ वेदनाकटुकास्तब्धा यातनास्थानमागताः ॥ उष्णस्तु रौरवो ज्ञेयस्तेजो घोररसात्मकः ॥ २०६ ॥ ततो घनात्मिकश्चापि शीतात्मा सततं तपः ॥ एवं सुदुर्लभाः सन्तः स्वर्गे च धार्म्मिका नराः ॥ २०७ ॥ एषा संख्या कृता संख्या ईश्वरेण स्वयम्भुवा ॥ गणना विनिवृत्तैषा सङ्ख्या ब्राह्मी च मानुषी ॥ २०८ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ महो जनस्तपः सत्यं भूतो भाव्यो भवस्तथा ॥ उक्ता ह्येते त्वया लोका लोकानामन्तरेण च ॥ लोकान्तरञ्च यादृग्वै तन्नो ब्रूहि यथातथम् ॥ २०९ ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा ऋषीणामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ स वायुर्दृष्टतत्त्वार्थ इदन्तत्त्वमुवाच ह ॥ २१० ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ॥ व्यक्तं तर्केण पश्यन्ति योगात्प्रत्यक्षदर्शिनः ॥ प्रत्याहारेण ध्यानेन तपसा च क्रियात्मनः ॥ २११ ॥ ऋभुः सनत्कुमाराद्याः सम्बुद्धाः शुद्धबुद्धयः ॥ व्यपेतशोका विरजाः सन्तो ब्रह्मसत्तमाः ॥ २१२ ॥ अक्षयाः प्रीतिसंयुक्ता ब्रह्म तिष्ठन्ति योगिनः ॥ ऋषीणां वालखिल्यानां तैर्यथाहृतमीश्वरैः ॥ २१३ ॥ यथा चैव मया दृष्टं सान्निध्यन्तत्र कुर्वता ॥ अनह्यसत्कृतार्थानामालयं चेश्वरस्य यत् ॥ २१४ ॥ ईश्वरः परमाणुत्वाद्ध्यानग्राह्यो मनीषिणाम् ॥ ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यन्तपः सत्यं क्षमा धृतिः ॥ २१५ ॥ द्रष्टृत्वमात्मसम्बन्धमधिष्ठानत्वमेव च ॥ अव्ययानि दशैतानि तस्मिंस्तिष्ठति शङ्करे ॥ २१६ ॥ विभुत्वात्खलु योगाग्रे ब्रह्मणोऽनुग्रहे

रम्यास्तस्मिन्पुरोत्तमे ॥ २४३ ॥ पद्मोत्पलदलोन्मिश्रं फेनाद्यावर्त्तविग्रहम् ॥ जलं मणिदलप्रख्यमावहन्ति सरिद्वराः ॥ २४४ ॥ न तु ब्रह्मर्षयो देवा नासुराः पितरस्तथा ॥ न खल्वन्येऽप्रमेयस्य विदुरीशस्य तत्पुरम् ॥ २४५ ॥ तत्र ये ध्यानमव्यग्राः सुयुक्ता विजितेन्द्रियाः ॥ पश्यन्तीह महात्मानः पुरन्तद्वृषात्मनः ॥ २४६ ॥ मध्ये पुरवरेन्द्रस्य तस्याप्रतिमतेजसः ॥ सुमहान्मेरुसङ्काशो दिव्यो भद्रश्रिया वृतः ॥ २४७ ॥ सहस्रपादः प्रासादस्तपनीयमयः शुभः ॥ अनुपमेयै रत्नैश्च सर्वतः स विभूषितः ॥ २४८ ॥ स्फटिकैश्चन्द्रसङ्काशैर्वैदूर्यैः सोमसंप्रभैः ॥ बालसूर्य्यप्रभैश्चैव सौवर्णैश्चाग्निसंप्रभैः ॥ २४९ ॥ राजतैश्चापि शुशुभे इन्द्रनीलमयैः शुभैः ॥ दृढैर्वज्रमयैश्चैव इत्येवं सुमहाहितैः ॥ २५० ॥ जलैश्च विविधाकारैर्दीप्याद्भिरधिवासितम् ॥ चन्द्ररश्मिप्रकाशाभिः पताकाभिरलंकृतम् ॥ २५१ ॥ रुक्मघण्टानिनादैश्च नित्यप्रमुदितोत्सवः ॥ किन्नराणामधीवासैः सन्ध्याभ्राकारराजितैः ॥ २५२ ॥ परिवारसमन्तात्तु हेमपुष्पोदकप्रभैः ॥ यथा हि मेरुशैलेन्द्रो हेमशृङ्गैर्विराजते ॥ २५३ ॥ चामीकरमयीभिस्तु पताकाभिस्तथा पुरम् ॥ एवं प्रासादराजोऽसौ भूमिकाभिर्विराजते ॥ २५४ ॥ वसन्तप्रतिमा यत्र त्र्यम्बकस्य निवेशने ॥ लक्ष्मीः श्रीश्च वपुर्म्मायाकीर्त्तिः शोभा सरस्वती ॥ २५५ ॥ देव्या वै सहिता ह्येता रूपगन्धसमन्विताः ॥ नित्या ह्यपरिसङ्ख्याताः परस्परगुणाश्रयाः ॥ भूषणं सर्वरत्नानां योन्यः कान्तिविलासयोः ॥ २५६ ॥ कोटीशतं महाभागा विभज्यात्मानमात्मना ॥ भगवन्तं महात्मानं प्रतिमोदन्त्यतन्द्रिताः ॥ २५७ ॥ तासां सहस्रशश्चान्याः पृष्ठतः परिचारिकाः ॥ रूपिण्यश्च श्रिया युक्ताः सर्वाः कमललोचनाः ॥ २५८ ॥ लीलाविलाससंयुक्तैर्भावैरतिमनोहरैः ॥ गणैस्ताः सह मोदन्ते शैलाभैः पावकोपमैः ॥ २५९ ॥ कुब्जा कामनिकामैश्च वरगात्रा हयाननाः ॥ पुण्ड्राश्च विकटाश्चैव करालाश्चिपिटाननाः ॥ २६० ॥ लम्बोदरा ह्रस्वभुजा विनेत्रा ह्रस्वपादिकाः ॥ मृगेन्द्रवदनाश्चान्या गजवक्त्रोदरास्तथा ॥ २६१ ॥ गजाननास्तथैवान्याः सिंहव्याघ्राननास्तथा ॥ लोहिताक्षा महास्तन्यः सुभगाश्चारुलोचनाः ॥ २६२ ॥ ह्रस्वकुञ्चितकेशाश्च सुन्दर्य्यश्चारुलोचनाः ॥ अन्याश्च कामरूपिण्यो नानावेशधराः स्त्रियः ॥ २६३ ॥ अभ्यन्तरपरिस्कन्धा देवावासगृहोचिताः ॥ रराम भगवांस्तत्र दशबाहुर्महेश्वरः ॥ २६४ ॥ नन्दिना च गणैः सार्द्धं विश्वरूपैर्महात्मभिः ॥ तथा रुद्रगणैश्चापि तुल्यौदार्य्यपराक्रमैः ॥ २६५ ॥ पावकात्मजसङ्काशैर्यूपदंष्ट्रोत्कटाननैः ॥ वन्द्यमानो विमानश्च पूज्यमानश्च तत्परैः॥२६६॥ सर्वर्तुकुसुमां मालां जिघ्रमाणोरसि स्थिताम्॥ नीलोत्पलदलश्यामं पृथुताम्रायतेक्षणम्॥२६७॥ईषत्कराललम्बोष्ठं तीक्ष्णदंष्ट्रागणाञ्चितम् ॥ षडूर्द्ध्वनेत्रं दुष्प्रेक्ष्यं रुचिरञ्चीरवाससम् ॥ २६८ ॥ आहवेष्वपरिक्लिष्टं देवानामरिनाशनम् ॥ बाहुना बाहुमावेश्य पार्श्वे सव्येऽन्तरे

भूतानां प्रभविष्णुना ॥ वैश्वानरमयैः पाशैः संरुद्धास्तु पृथक्पृथक् ॥ २९४ ॥ तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वायुर्वाक्यं जगाद ह ॥ यद्वै सहस्रं सिंहानामीश्वरेण महात्मना ॥ व्यपनीय स्वकाद्देहात्क्रोधास्ते सिंहविग्रहाः ॥ २९५ ॥ भूतानामभयं दत्त्वा पुरा बद्धाग्निबन्धने ॥ यज्ञभागनिमित्तं च ईश्वरस्याज्ञया तदा ॥२९६॥ तेषां विधानमुक्तेन सिंहेनैकेन लीलया ॥ देव्या मन्युं कृतं ज्ञात्वा हतो दक्षस्य स क्रतुः ॥२९७॥ निःसृता च महादेव्या महाकाली महेश्वरी ॥ आत्मनः कर्म्मसाक्षिण्या भूतैः सार्द्धं तदानुगैः ॥ २९८ ॥ स एष भगवान्क्रोधो रुद्रावासकृतालयः ॥ वीरभद्रोऽप्रमेयात्मा देव्या मन्युप्रमार्ज्जनः ॥ २९९ ॥ तस्य वेश्म सुरेन्द्रस्य सर्वगुह्यतमस्य वै ॥ सन्निवेशस्त्वनौपम्यो मया वः परिकीर्त्तितः ॥ ३०० ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि ये तत्र प्रतिवासिनः ॥ रम्ये पुरवरश्रेष्ठे तस्मिन्वैहायभूमिषु ॥ ३०१ ॥ नानारत्नविचित्रेषु पताकाबहुलेषु च ॥ सर्वकामसमृद्धेषु वनोपवनशोभिषु ॥ ३०२ ॥ राजतेषु महान्तेषु शातकौम्भमयेषु च ॥ सन्ध्याभ्रसन्निकाशेषु कैलासप्रतिमेषु च ॥ ३०३ ॥ इष्टैः शब्दादिभिर्भोगैर्यै भवस्यानुसारिणः ॥ प्रासादवरपुष्पेषु तेषु मोदन्ति सुव्रताः ॥ ३०४ ॥ ब्रह्मघोषैरविरताः कथाश्च विविधाः शुभाः ॥ गीतवादित्रघोषाश्च संस्तवाश्च समन्ततः ॥ ३०५ ॥ संहताश्चैवमतुला नानाश्रयकृतास्तथा ॥ एवमादीनि वर्त्तन्ते तेषां प्रासादमूर्द्धनि ॥ ३०६ ॥ सहस्रपादः प्रासादस्तपनीयमयः शुभः ॥ अनौपम्यैर्वररत्नैः सर्वतः परिभूषितः ॥ ३०७ ॥ स्फटिकैश्चन्द्रसङ्काशैर्वैदूर्यमणिसम्प्रभैः ॥ बालसूर्य्यमयैश्चापि सौवर्णैश्चाग्निसम्प्रभैः ॥ ३०८ ॥ चुक्रुशुर्ऋषयः श्रुत्वा नैमिषेयास्तपस्विनः ॥ आपन्नसंशयाश्चेमं वाक्यमूचुः समीरणम् ॥ ३०९ ॥ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ ॥ के तु तत्र महात्मानो ये भवस्यानुसारिणः ॥ अनुग्राह्यतमाः सम्यक्प्रमोदन्ते पुरोत्तमे ॥ ऋषीणां वचनं श्रुत्वा वायुर्वाक्यमथाब्रवीत् ॥ ३१० ॥ ॥ वायुरुवाच ॥ ॥ श्रूयतां देवदेवस्य भक्तियैरनुकल्पिता ॥ ह्रीमन्तः सूर्जिता दान्ताः शौर्ययुक्ता ह्यलोलुपाः ॥ ३११ ॥ मध्याहाराश्च मात्राश्च ज्ञात्मारामा जितेन्द्रियाः ॥ जितद्वन्द्वा महोत्साहाः सौम्या विगतमत्सराः ॥ ३१२ ॥ भावस्थाः सर्व्वभूतानामव्यापारा अनाकुलाः ॥ कर्मणा मनसा वाचा विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ अनन्यमनसो भूत्वा प्रपन्ना ये महेश्वरम् ॥ ३१३ ॥ तैर्लब्धं रुद्रसालोक्यं शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ भवस्य रूपसादृश्यं नीताश्चैव ह्यनुत्तमम् ॥ ३१४ ॥ वैश्वानरमुखाः सर्वे विश्वरूपाः कपर्दिनः ॥ नीलकण्ठाः सितग्रीवास्तीक्ष्णदंष्ट्रास्त्रिलोचनाः ॥ ३१५ ॥ अर्द्धचन्द्रकृतोष्णीषा जटामुकुटधारिणः ॥ सर्वे दशभुजा वीराः पद्मान्तरसुगन्धिनः ॥ ३१६ ॥ तरुणादित्यसङ्काशाः सर्वे ते पीतवाससः ॥ पिनाकपाणयः सर्व्वे श्वेतगोवृषवाहनाः ॥ ३१७ ॥ श्रियान्विताः कुण्डलिनो मुक्ताहारविभूषिताः ॥ तेजसोऽभ्यधिका देवैः सर्वज्ञाः सर्वदर्शिनः ॥ ३१८ ॥ विभज्य बहुधात्मानं जरामृत्युविवर्जिताः ॥ क्रीडन्ते विविधैर्भावैर्भोगा

आवेश्यात्मनि तान्सर्वान्संख्यायोपद्रवांस्तथा ॥ लोकान्सप्त इमान्सर्व्वान्महाभूतानि पञ्च च ॥ ३४५ ॥ विष्णुना सह संयुक्तं करोति विकरोति च ॥ स रुद्रो यः साममयस्तथैव च यजुर्मयः ॥ ३४६ ॥ स एष ओतः प्रोतश्च बहिरन्तश्च निश्चयात् ॥ एको हि भगवान्नाथ अभावी श्रान्तकृद्विजाः ॥ ३४७ ॥ ततस्ते ऋषयः सर्वे दिवाकरसमप्रभाः ॥ स्वंस्वमाश्रमसंवासमारोप्याग्निं तथात्मनि ॥ ३४८ ॥ कर्मणा मनसा वाचा विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ अनन्यमनसो भूत्वा प्रपद्यन्ते महेश्वरम् ॥ ३४९ ॥ व्रतोपवासनिरताः सर्वभूतदयापराः ॥ योगं ह्यनुपमान्दिव्यं प्राप्तं तैश्छिन्नसंशयैः ॥ ३५० ॥ प्रपद्य परया भक्त्या ज्ञानयुक्तेन चेतसा ॥ तैर्लब्धं रुद्रसालोक्यं शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ३५१ ॥ यः पठेत्तपसा युक्तो वायुप्रोक्तामिमां स्तुतिम् ॥ ब्राह्मणः क्षत्रियो वापि वैश्यो वा स्वक्रियापरः ॥ ३५२ ॥ लभते रुद्रसालोक्यं भक्तिमान्विगतज्वरः ॥ अपद्यपश्च यः शूद्रो भवभक्तो जितेन्द्रियः ॥ ३५३ ॥ आभूतसंप्लवस्थायी ह्यप्रतीघातलक्षणः ॥ गाणपत्यं स लभते स्थानं वा सर्वकामिकम् ॥ ३५४ ॥ मद्यपो मद्यपैः सार्द्धं भूतसङ्घैश्च मोदते ॥ सोऽर्च्यमानो महीपृष्ठे मर्त्यानां वरदो भवेत् ॥ इति होवाच भगवान्वायुर्वाक्यमिदं वरः ॥ ३५५ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्तेऽनुषङ्गपादे शिवपुरवर्णनं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ प्रत्याहारं प्रवक्ष्यामि परस्यान्ते स्वयम्भुवः ॥ ब्रह्मणः स्थितिकाले तु क्षीणे तस्मिंस्तदा प्रभोः ॥ १ ॥ यथेदं कुरुतेऽध्यात्मं सुसूक्ष्मं विश्वमीश्वरः ॥ अव्यक्तान्ग्रसते व्यक्तं प्रत्याहारे च कृत्स्नशः ॥ २ ॥ परं तदनुकल्पानामपूर्णे कल्पसङ्क्षये ॥ उपस्थिते महाघोरे ह्यप्रत्यक्षे तु कस्यचित् ॥ ३ ॥ अन्ते द्रुमस्य सम्प्राप्ते पश्चिमस्य मनोस्तदा ॥ अन्ते कलियुगे तस्मिन्क्षीणे संहार उच्यते ॥ ४ ॥ सम्प्रक्षाले तदा वृत्ते प्रत्याहारे ह्युपस्थिते ॥ प्रत्याहारे तदा तस्मिन्भूततन्मात्रसंक्षये ॥ ५ ॥ महदादेर्विकारस्य विशेषान्तस्य संक्षये ॥ स्वभावकारिते तस्मिन्प्रवृत्ते प्रतिसञ्चरे ॥ ६ ॥ आपो ग्रसन्ति वै पूर्वं भूमेर्गन्धात्मकं गुणम् ॥ आत्तगन्धा ततो भूमिः प्रलयत्वाय कल्पते ॥ प्रविष्टे गन्धतन्मात्रे तोयावस्था धरा भवेत् ॥ ७ ॥ आपस्तदा प्रनष्टा वै वेगवत्यो महास्वनाः ॥ सर्वमापूरयित्वेदं तिष्ठन्ति विचरन्ति च ॥ ८ ॥ अपामपि गुणो यस्तु ज्योतिषे लीयते रसः ॥ नश्यन्त्यापस्तदान्ते च रसतन्मात्रसङ्क्षयात् ॥ ९ ॥ तेजसा संहृतरसा ज्योतिष्ट्वं प्राप्नुवन्त्युत ॥ ग्रस्ते च सलिले तेजः सर्वतोमुखमीक्ष्यते ॥ १० ॥ अथाग्निः सर्वतो व्याप्त आदत्ते तज्जलन्तदा ॥ सर्वमापूर्यतेऽर्चिर्भिस्तदा जगदिदं शनैः ॥ ११ ॥ अर्चिर्भिः सन्तते तस्मिंस्तिर्यगूर्द्ध्वमधस्ततः ॥ ज्योतिषोऽपि गुणं रूपं वायुरत्ति प्रकाशकम् ॥ प्रलीयते तदा तस्मिन्दीपार्चिरिव मारुते ॥ १२ ॥ प्रनष्टे रूपतन्मात्रे हृतरूपो विभावसुः ॥ उपशाम्यति तेजो हि वायुना धूयते महत् ॥ १३ ॥ निरालोके तदा लोके वायुभूते च तेजसि ॥

ह्मलोकनिवासिभिः ॥४०॥ विनिवृत्ते तदा सर्गे स्थितावात्मनिवासिनाम् ॥ तत्कालवासिनां तेषां तदा तद्दोषदर्शिनाम् ॥४१॥ उत्पद्यतेऽथ वैराग्यमात्मवा
दप्रणाशनम् ॥ भोज्यभोक्तृत्वनानात्वे तेषां तद्भवदर्शिनाम्॥४२॥पृथग्ज्ञानेन क्षेत्रज्ञास्ततस्ते ब्रह्मलौकिकाः ॥ प्रकृतौ करणा नीताः सर्वे नानात्वदर्शिनः
॥ ४३ ॥ स्वात्मन्येवावतिष्ठन्ते प्रशान्ता दर्शनात्मकाः॥ शुद्धा निरञ्जनाः सर्वे चेतनाचेतनास्तथा ॥४४॥ तत्रैव परिनिर्वाणाः स्मृता नाशामिनस्तु ते ॥
निर्गुणत्वान्निरात्मानः प्रकृत्यन्ते व्यतिक्रमात् ॥४५॥ इत्येवं प्राकृतः प्रोक्तः प्रतिसर्गः स्वयम्भुवः ॥ भिद्यन्ते सर्वभूतानां करणानि प्रसंयमे ॥ ४६ ॥
इत्येष संयमश्चैव तत्त्वानां करणैः सह ॥ तत्त्वप्रसंयमो ह्येष स्मृतो ह्यावर्त्तको द्विजाः ॥ ४७ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ धर्माधर्मौ तपो ज्ञानं शुभे सत्यानृ
ते तथा॥ऊर्द्ध्वभावो ह्यधोभावो सुखदुःखे प्रियाप्रिये ॥४८॥ सर्वमेतत्प्रयातस्य गुणमात्रात्मकं स्मृतम्॥निरिन्द्रियाणां च तदा ज्ञानिनां यच्छुभाशुभम् ॥
॥४९॥प्रकृत्यां चैव तत्सर्वं पुण्यं पापं प्रतिष्ठति ॥ योन्यवस्था स्वभावे च देहिनां तु निषिच्यते ॥ ५० ॥ जन्तूनां पापपुण्यन्तु प्रकृतौ यत्प्रतिष्ठितम् ॥
अव्यक्तस्थानि तान्येव पुण्यपापानि जन्तवः ॥ ये [illegible] पुनर्देहे देहान्यत्वे तथैव च ॥ ५१ ॥ धर्म्माधर्म्मौ तु जन्तूनां गुणमात्रात्मकावुभौ ॥
करणैः स्वैः प्रचीयेते कायत्वेनेह जन्तुभिः ॥ ५२ ॥ सुचेतनाः प्रलीयन्ते क्षेत्रज्ञाधिष्ठिता गुणाः ॥ सर्गे च प्रतिसर्गे च संसारे चैव जन्तवः ॥
संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते करणैः सञ्चरन्ति च ॥ ५३ ॥ राजसी तामसी चैव सात्त्विकी चैव वृत्तयः ॥ गुणमात्राः प्रवर्त्तन्ते पुरुषाधिष्ठितास्त्रिधा ॥ ५४ ॥
ऊर्द्ध्वं देवात्मकं सत्त्वमधोभागात्मकं तमः ॥ तयोः प्रवर्त्तकं मध्ये इहैवावर्त्तकं रजः ॥५५॥ इत्येवं परिवर्त्तन्ते त्रयः स्रोतोगुणात्मकाः॥लोकेषु सर्वभूता
नां तत्र कार्य्यं विजानता ॥ ५६ ॥ अविद्याप्रत्ययारम्भा आरभ्यन्ते हि मानवैः॥ एतास्तु गतयस्तिस्रः शुभाः पापात्मिकाः स्मृताः ॥ ५७ ॥
तमसाभिभवाज्जन्तुर्यथातथ्यं न विन्दति ॥ अतत्त्वदर्शनात्सोथ त्रिविधं बध्यते ततः ॥ ५८ ॥ प्राकृतेन च बन्धेन तथा वैकारिकेन च ॥ दक्षिणा
भिस्तृतीयेन बद्धोऽत्यन्तं विवर्त्तते ॥ ५९ ॥ इत्येते वै त्रयः प्रोक्ता बन्धा ह्यज्ञानहेतुकाः ॥ अनित्ये नित्यसंज्ञा च दुःखे च सुखदर्शनम् ॥ ६० ॥
अस्वे स्वमिति च ज्ञानमशुचौ शुचिनिश्चयः ॥ येषामेते मनोदोषा ज्ञानदोषा विपर्य्ययात् ॥ ६१ ॥ रागद्वेषनिवृत्तिश्च तज्ज्ञानं समुदाहृतम् ॥
अज्ञानं तमसो मूलं कर्म्मद्वयफलं रजः ॥ कर्म्मजस्तु पुनर्देहो महादुःखं प्रवर्त्तते ॥ ६२ ॥ श्रोत्रजा नेत्रजा चैव त्वग्जिह्वाघ्राणतस्तथा ॥
पुनर्भवकरी दुःखा कर्म्मणां जायते तु सा ॥ ६३ ॥ सतृष्णोऽभिहितो बालः स्वकृतैः कर्म्मणः फलैः ॥ तैलपालीकवज्जीवस्तत्रैव परि
वर्त्तते ॥ ६४ ॥ तस्मात्स्थूलमनर्थानामज्ञानमुपदिश्यते ॥ तं ज्ञानमवधार्य्यैकं ज्ञाने यत्नं समाचरेत् ॥ ६५ ॥ ज्ञानाद्विजयते सर्वं

धे यत्तु नेता नेता न विद्यते ॥ ९२ ॥ तृष्णाक्षयस्तृतीयस्तु व्याख्यातं मोक्षलक्षणम् ॥ शब्दाद्ये विषये दोषविषये पञ्चलक्षणे ॥ ९३ ॥ अप्रद्वेषोऽन
भिष्वङ्गः प्रीतितापविवर्जनम् ॥ वैराग्यकारणं ह्येते प्रकृतीनां लयस्य च ॥९४॥ अष्टौ प्रकृतयो ज्ञेया पूर्वोक्ता वै यथाक्रमम् ॥ अव्यक्ताद्यास्तु विज्ञे
या भूतान्ताः प्रकृतेर्लयाः ॥ ९५ ॥ वर्णाश्रमाचारयुक्ताः शिष्टाः शास्त्राविरोधिनः ॥ वर्णाश्रमाणां धर्म्मोऽयं देवस्थानेषु कारणम् ॥९६॥ ब्रह्मादीनि पि
शाचान्तान्यष्टौ स्थानानि देवता ॥ ऐश्वर्य्यमणिमाद्यं हि कारणं ह्यष्टलक्षणम् ॥ ९७ ॥ निमित्तमप्रतीघात इष्टे शब्दादिलक्षणे ॥ अष्टावेतानि रूपाणि
प्राकृतानि यथाक्रमम् ॥ ९८ ॥ क्षेत्रज्ञेष्वनुसज्यन्ते गणमात्रात्मकानि तु ॥ प्रावृट्काले पृथक्त्वेन पश्यन्तीह न चक्षुषा ॥ ९९ ॥ पश्यन्त्येवंविधं सिद्धा
जीवं दिव्येन चक्षुषा ॥ श्वासिति श्वानपानश्च योनीः प्रविशतस्तथा ॥ १०० ॥ तिर्य्यगूर्द्ध्वमधस्ताच्च धावतोऽपि यथाक्रमम् ॥ जीवप्राणास्तथालिङ्गं
कारणञ्च चतुष्टयम् ॥१०१॥ पर्य्यायवाचकैः शब्दैरेकार्थैः सोऽभिलिख्यते ॥ व्यक्ताव्यक्ते प्रमाणोऽयं स वै रूपं तु कृत्स्नशः ॥ १०२ ॥ अव्यक्तान्तगृ
हीतं च क्षेत्रज्ञाधिष्ठितञ्च यत् ॥ एवं ज्ञात्वा शुचिर्भूत्वा ज्ञानाद्धि विमुच्यते ॥१०३॥ नष्टश्चैव यथा तत्त्वं तत्त्वानां तत्त्वदर्शनम् ॥ यथेष्टं परिनि
र्य्याति भिन्ने देहे सुनिर्वृते ॥ १०४ ॥ भिद्यते करणञ्चापि ह्यव्यक्ताज्ञानिनस्ततः ॥ मुक्तो गुणशरीरेण प्राणाद्येन तु सर्वशः ॥ १०५ ॥ नान्यच्छरी
रमादत्ते दग्धे वीजे यथाङ्कुरः ॥ जीविकः सर्वसंसाराद्बीजशारीरमानसः ॥ १०६ ॥ ज्ञानाच्चतुर्दशाच्छुद्धः प्रकृतिं सोऽनुवर्त्तते ॥ प्रकृतिं सत्यमित्याहु
र्विकारोऽनृतमुच्यते ॥ १०७ ॥ तत्सद्भावोऽनृतं ज्ञेयं सद्भावः सत्यमुच्यते ॥ अनामरूपक्षेत्रज्ञनामरूपं प्रचक्षते ॥ १०८ ॥
यस्मात्क्षेत्रं विजानाति तस्मात्क्षेत्रज्ञ उच्यते ॥ क्षेत्रप्रत्ययतो यस्मात् क्षेत्रज्ञः शुभ उच्यते ॥ १०९ ॥ क्षेत्रज्ञः स्मर्य्यते तस्मात्क्षेत्रंतज्ज्ञै
र्विभाष्यते ॥ क्षेत्रत्वप्रत्ययं दृष्टं क्षेत्रज्ञः प्रत्ययी सदा ॥ ११० ॥ क्षरणात् करणाच्चैव क्षतत्राणात्तथैव च ॥ भोज्यत्वाद्विषयत्वाच्च क्षेत्रं क्षेत्रवि
दो विदुः ॥ १११ ॥ महदाद्यं विशेषान्तं सवैरूप्यं विलक्षणम् ॥ विकारलक्षणं तद्धै साक्षरक्षरमेव च ॥ ११२ ॥ तमेव च विकारन्तु यस्माद्वै क्षरते
पुनः ॥ तस्माच्च कारणाच्चैव क्षरमित्यभिधीयते ॥ ११३ ॥ सुखदुःखमोहभावा भोज्यमित्यभिधीयते ॥ अचेतत्वाद्धि विषयस्ताद्धि धर्म्मविभुः स्मृ
तः ॥ ११४ ॥ न क्षीयते न क्षरति विकारप्रसृतन्तु तत् ॥ अक्षरं तेन चाप्युक्तमक्षीणत्वात्तथैव च ॥ ११५ ॥ यस्मात्पुर्य्यनुशेते च तस्मा त्पुरुष
उच्यते ॥ पुरप्रत्ययिको यस्मात्पुरुषेत्यभिधीयते ॥ ११६ ॥ पुरुषं कथयन्त्वाथ कथन्तज्ज्ञैर्विभाष्यते ॥ शुद्धो निरञ्जनाभासो ज्ञानाज्ञानविवर्जितः
॥ ११७ ॥ अस्ति नास्तीति सोऽन्यो वा वद्धो मुक्तो गतः स्थितः ॥ नैहैतिकान्तनिर्देश्यसूक्ष्मस्तस्मिन्न विद्यते ॥ ११८ ॥ शुद्धत्वान्न तु देश्यो वै ह

स्ततः सूतस्तदासौ लोमहर्षणः ॥ व्याख्यातुमुपचक्राम पुनः सर्गप्रवर्त्तनम् ॥ ८ ॥ अहं वो वर्त्तयिष्यामि यथा सर्गः प्रपत्स्यते ॥ पूर्ववत्स तु
विज्ञेयः समासात्तं निबोधत ॥ ९ ॥ दृष्टं चैवानुमेयञ्च तर्कं वक्ष्यामि युक्तितः ॥ तस्माद्वाचो निवर्त्तन्ते ह्यप्राप्य मनसा सह ॥ १० ॥ अव्यक्तवत्
परोक्षत्वाद्ग्रहणं तद्दुरासदम् ॥ विकारैः प्रतिसंदृष्टे गुणसाम्ये निवर्त्तते ॥ ११ ॥ प्रधानं पुरुषाणाञ्च साधर्म्म्येणैव तिष्ठति ॥ धर्म्माध
र्म्मौ प्रलीयेते अव्यक्तौ प्राणिनां सदा ॥ १२ ॥ सत्त्वमात्रात्मको धर्म्मो गुणसत्त्वे प्रतिष्ठितः ॥ तमोमात्रात्मकोऽधर्म्मो गुणे तमसि तिष्ठति ॥ १३ ॥
अविभागवतावेतौ गुणसाम्यस्थितावुभौ ॥ सर्वकार्य्यं बुद्धिपूर्वं प्रधानस्य प्रपत्स्यते ॥ १४ ॥ अबुद्धिपूर्वं क्षेत्रज्ञ अधिष्ठास्यति तान् गुणान् ॥
एवं तानभिमानेन प्रपत्स्येत पुरस्तदा ॥ १५ ॥ यदा प्रवर्त्तितव्यन्तु क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः ॥ भोज्यभोक्तृत्वसम्बन्धं प्रपत्स्येते युतावुभौ ॥ १६ ॥
तस्माच्छरणमव्यक्तं साम्ये स्थित्वा गुणात्मकान् ॥ क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं तच्च वैषम्यं भजते तु तत् ॥ १७ ॥ ततः प्रपत्स्यते व्यक्तं क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः ॥
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं सत्त्वं विकारं जनयिष्यति ॥ १८ ॥ महदाद्यं विशेषान्तं चतुर्विंशगुणात्मकम् ॥ क्षेत्रज्ञस्य प्रधानस्य पुरुषस्य प्रपत्स्यते ॥ १९ ॥
ब्रह्माण्डे प्रथमः सोऽथ भविता चेश्वरः पुनः ॥ ततो ज्ञेयस्य कृत्स्नस्य सर्वभूतपतिः शिवः ॥ २० ॥ ईश्वरः सर्व्वमुक्तानां ब्रह्मा ब्रह्ममयो महान् ॥ आदि
देवः प्रधानस्यानुग्रहाय प्रवक्ष्यते ॥ २१ ॥ अनाद्यौ स्वयमुत्पन्नावुभौ सूक्ष्मौ तु तौ स्मृतौ ॥ अनादिसंयोगयुतौ सर्वक्षेत्रज्ञमेव च ॥ २२ ॥ अबुद्धिपू
र्वकं युक्तौ मशकौ तु वशौ तदा ॥ अप्रत्ययमनाद्यं च स्थितावुदकमप्स्वशः ॥ २३ ॥ प्रवृत्ते पूर्वतः पूर्वं पुनः सर्गे प्रपत्स्यते ॥ अज्ञागुणैः प्रवर्त्तन्ते
रजःसत्त्वतमात्मकम् ॥ २४ ॥ प्रवृत्तिकाले रजसाभिपन्नमहत्त्वभूतादिविशेष्यताञ्च ॥ विशेषतां चेन्द्रियताञ्च यान्ति गुणावसाने पतिभिर्मनुष्याः॥२५॥
सत्याभिध्यायिनस्तस्य ध्यायिनः सन्निमित्तकम् ॥ रजःसत्त्वतमा व्यक्ता विवर्म्माणः परस्परम् ॥ २६ ॥ आद्यन्ते संप्रपत्स्यन्ते क्षेत्रतज्ज्ञास्तु सर्वशः॥
संसिद्धकार्य्यकरणा उत्पद्यन्तेऽभिमानिनः ॥ २७ ॥ सर्वे सत्वाः प्रपद्यन्ते ह्यव्यक्तात्पूर्वमेव च ॥ प्रसूते या च सुवहाः साधिकाश्चाप्यसाधिका ॥ २८ ॥
संसरन्तस्तु ते सर्वे स्थानप्रकरणैः सह ॥ कार्य्याणि प्रतिपत्स्यन्ते उत्पद्यन्ते पुनः पुनः ॥ २९ ॥ गुणमात्रात्मकाश्चैव धर्म्माधर्म्मौ परस्परम् ॥ आर
प्स्यन्तीह चान्योन्यं वरेणानुग्रहेण च ॥ ३० ॥ सर्वे तुल्याः प्रसृष्टार्थं सर्गादौ यान्ति विक्रियाम् ॥ गुणास्तत्प्रतिधावन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥ ३१ ॥
गुणास्ते यानि सर्वाणि प्राक् दृष्टेः प्रतिपेदिरे ॥ तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृष्टमानाः पुनः पुनः ॥ ३२ ॥ हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्म्माधर्म्मावृतानृते ॥ तद्भावि
ताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥ ३३ ॥ महाभूतेषु नानात्वमिन्द्रियार्थेषु मूर्त्तिषु ॥ विप्रयोगाश्च भूतानां गुणेभ्यः संप्रवर्त्तते ॥ ३४ ॥ इत्येष वो

मृत्यवे प्राह मृत्युश्चेन्द्राय वै पुनः ॥ इन्द्रश्चापि वसिष्ठाय सोऽपि सारस्वताय च ॥ ६० ॥ सारस्वतस्त्रिधाम्ने च त्रिधामा च शरद्वते ॥ शरद्वतस्त्रिविष्टाय सोऽन्तरिक्षाय दत्तवान् ॥ ६१ ॥ वर्षिणे चान्तरिक्षो वै सोऽपि त्र्यय्यारुणाय च ॥ त्र्यय्यारुणो धनञ्जये स च प्रादात्कृतञ्जये ॥ ६२ ॥ कृतञ्जयात्तृणञ्जयो भरद्वाजाय सोऽप्यथ ॥ गौतमाय भरद्वाजः सोऽपि निर्यन्तरे पुनः ॥ ६३ ॥ निर्यन्तरस्तु प्रोवाच तथा वाजश्रवाय च ॥ स ददौ सोमशुष्माय स ददौ तृणबिन्दवे ॥ ६४ ॥ तृणबिन्दुस्तु दक्षाय दक्षः प्रोवाच शक्तये ॥ शक्तेः पराशरश्चापि गर्भस्थः श्रुतवानिदम् ॥ ६५ ॥ पराशराज्जातुकर्णस्तस्माद्द्वैपायनः प्रभुः ॥ द्वैपायनात्पुनश्चापि मया प्राप्तं द्विजोत्तमाः ॥ ६६ ॥ ॥ शांशपायन उवाच ॥ ॥ मया वै तत्पुनः प्रोक्तं पुत्रायामितबुद्धये ॥ इत्येव वाचा ब्रह्मादिगुरुणा समुदाहृता ॥ ६७ ॥ नमस्कार्याश्च गुरवः प्रयत्नेन मनीषिभिः ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं सर्वार्थसाधकम् ॥ ६८ ॥ पापघ्नं नियमेनेदं श्रोतव्यं ब्राह्मणैः सदा ॥ नाशुचौ नापि पापाय नाप्यसंवत्सरोषिते ॥ ६९ ॥ नाश्रद्दधानाविदुषे नापुत्राय कथञ्चन ॥ नाहिताय प्रदातव्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ॥ ७० ॥ अव्यक्तं वै यस्य योनिं वदन्ति व्यक्तं देहं कालमन्तर्गतञ्च ॥ वह्निं वक्त्रं चन्द्रसूर्य्यौ च नेत्रे दिशः श्रोत्रे घ्राणमाहुश्च वायुम् ॥ ७१ ॥ वाचो वेदांश्चान्तरिक्षं शरीरं क्षितिं पादौ तारका रोमकूपान् ॥ सर्वाणि चाङ्गानि तथैव तानि विद्यास्सर्वा यस्य पुच्छं वदन्ति ॥ ७२ ॥ तं देवदेवं जननं जनानां सर्वेषु लोकेषु प्रतिष्ठितञ्च ॥ वरं वराणां वरदं महेश्वरं ब्रह्माणमादिं प्रयतो नमस्ये ॥ ७३ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे सृष्टिवर्णनं नाम एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ छ ॥ शौनकादिऋषय ऊचुः ॥

सूत सूत महाभाग त्वया भगवता सता ॥ व्यासप्रसादाद्विगतशास्त्रतत्त्वबोधनेन च ॥ १ ॥ अष्टादशपुराणानि सेतिहासानि चानघ ॥ उपक्रमोपसंहारविधिनोक्तानि कृत्स्नशः ॥ २ ॥ चतुर्दशसहस्रं च मात्स्यं प्रोक्तमतिस्फुटम् ॥ तत्संख्यकं भविष्यञ्च प्रोक्तं पञ्चशताधिकम् ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयं महारम्यं प्रोक्तं नवसहस्रकम् ॥ कथितं ब्रह्मवैवर्त्तमष्टादशसहस्रकम् ॥ ४ ॥ शतोत्तरञ्च ब्रह्माण्डं सूर्यसंख्यासहस्रकम् ॥ अथ भागवतं दिव्यमष्टादशसहस्रकम् ॥ ५ ॥ सहस्राणि दशैवोक्तं पुराणं ब्रह्मनामकम् ॥ अयुतश्लोकघटितं पुराणं वामनाभिधम् ॥ ६ ॥ तथैवायुतसंख्यातं षट्शताधिकमादिकम् ॥ त्रयोविंशतिसाहस्रमानिलं तद्धृतं शुभम् ॥ ७ ॥ त्रयोविंशतिसाहस्रं नारदीयमुदाहृतम् ॥ एकोनविंशसाहस्रं वैनतेयमुदाहृतम् ॥ ८ ॥ सहस्रपञ्चपञ्चाशत्प्रोक्तं पाद्मं सुविस्तरम् ॥ सप्तदशसहस्रन्तु कौर्मं प्रोक्तं मनोहरम् ॥ ९ ॥ चतुर्विंशतिसाहस्रं सौकरं परमाद्भुतम् ॥ एकाशीतिसहस्राणि स्कान्दमुक्तं सुविस्तृतम् ॥ १० ॥ एवमष्टादशोक्तानि पुराणानि बृहन्ति च ॥ पुराणेष्व

तुं ज्ञातुं च परमार्थतः ॥ ३८ ॥ रज्जावहिर्मरौ वारि नीलिमा गगने यथा ॥ असद्विश्वमिदं भाति यस्मिन्नज्ञानकल्पितम् ॥ ३९ ॥ घटावच्छिन्न एवार्थं महाकाशो विभिद्यते ॥ कार्योपाधिपरिच्छिन्नं तद्ब्रह्मजीवसंज्ञिकम् ॥ ४० ॥ मायया चित्रकारिण्या विचित्रगुणशीलया ॥ ब्रह्माण्डं चित्रमतुलं यस्मिन् भित्ताविवार्पितम् ॥ ४१ ॥ धावतोऽन्यानतिक्रान्तं वदतो वागगोचरम् ॥ वेदवेदान्तसिद्धान्तैर्विनिर्णीतं तदक्षरम् ॥ ४२ ॥ अक्षरान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ इत्येवं श्रूयते वेदे बहुधाऽपि विचारिते ॥ ४३ ॥ अक्षरस्यात्मनश्चापि स्वात्मरूपतया स्थितम् ॥ परमानन्दसन्दोहरूपमानन्दविग्रहम् ॥ ४४ ॥ लीलाविलासरसिकं बल्लवीयूथमध्यगम् ॥ शिखिपिच्छकिरीटेन भास्वद्रत्नचितेन च ॥ ४५ ॥ उल्लसद्विद्युदाटोपकुण्डलाभ्यां विराजितम् ॥ कर्णोपान्तचरन्नेत्रखञ्जरीटमनोहरम् ॥ ४६ ॥ कुञ्जकुञ्जप्रियावृन्दविलासरतिलम्पटम् ॥ पीताम्बरधरं दिव्यं चन्दनालेपमण्डितम् ॥ ४७ ॥ अधरामृतसंसिक्तवेणुनादेन बल्लवीः ॥ मोहयन्तञ्चिदानन्दमनङ्गमदभञ्जनम् ॥ ४८ ॥ कोटिकामकलापूर्णं कोटिचन्द्रांशुनिर्मलम् ॥ त्रिरेखकण्ठविलसद्रत्नगुञ्जास्रगाकुलम् ॥ ४९ ॥ यमुनापुलिने तुङ्गे तमालवनकानने ॥ कदम्बचम्पकाशोकपारिजातमनोहरे ॥ ५० ॥ शिखिपारावतशुकपिककोलाहलाकुले ॥ निरोधार्थं गवामेव धावमानमितस्ततः ॥ ५१ ॥ राधाविलासरसिकं कृष्णाख्यं पुरुषं परम् ॥ श्रुतवानस्मि वेदेभ्यो यतस्तद्गोचरोऽभवत् ॥ ५२ ॥ एवं ब्रह्मणि चिन्मात्रे निर्गुणे भेदवर्जिते ॥ गोलोकसंज्ञिके कृष्णो दीव्यतीति श्रुतं मया ॥ ५३ ॥ नातः परतरं किञ्चिन्निगमागमयोरपि ॥ तथापि निगमो वक्ति ह्यक्षरात् परतः परः ॥ ५४ ॥ गोलोकवासी भगवानक्षरात्पर उच्यते ॥ तस्मादपि परः कोऽसौ गीयते श्रुतिभिः सदा ॥ ५५ ॥ उद्दिष्टो वेदवचनैर्विशेषो ज्ञायते कथम् ॥ श्रुतेर्वार्थोऽन्यथा बोध्यः परतस्त्वक्षरादिति ॥ ५६ ॥ श्रुत्यर्थे संशयापन्नो व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ विचारयामास चिरं न प्रपेदे यथातथम् ॥ ५७ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ विचारयन्नपि मुनिर्नाप वेदार्थनिश्चयम् ॥ वेदो नारायणः साक्षाद्यत्र मुह्यन्ति सूरयः ॥ ५८ ॥ तदापि महतीमार्त्तिं सतां हृदयतापिनीम् ॥ पुनर्विचारयामास कं व्रजामि करोमि किम् ॥ ५९ ॥ पश्यामि न जगत्यस्मिन्सर्वज्ञं सर्वदर्शनम् ॥ अज्ञात्वाऽन्यतमं लोके सन्देहविनिवर्त्तकम् ॥ ६० ॥ मेरोः कुहरिणीं गत्वा चचार परमं तपः ॥ यत्र कार्त्तस्वरस्फूर्जज्ज्योत्स्नाजालैर्निरन्तरम् ॥ ६१ ॥ सदा प्रबाधते विष्वक्तमःस्तोमं दृशन्तुदम् ॥ चकास्ते यत्र परमं कान्तारमतिसुन्दरम् ॥ ६२ ॥ नानाद्रुमलताकुञ्जकूजत्पक्षिनिनादितम् ॥ क्षुत्पिपासाभयक्रोधतापग्लानिविवर्जितम् ॥ ६३ ॥ जलाशयैर्बहुविधैः पद्मिनीखण्डमण्डितैः ॥ जातरूपशिलाबद्धतटसञ्चारपक्षिभिः ॥ ६४ ॥ शुभसम्भोजपवनैः सेव्यमानं समन्ततः ॥ शिवैरध्यासितस्नावैर्हिंस्रैः सत्वैः समुज्झितम् ॥ ६५ ॥ निर्जनं दिव्यलतिकाप्रियखण्डविराजितम् ॥ शुकैः पारावतै

अधिकारिविभेदेन कर्मज्ञानोपदेशतः ॥ त्रातं सर्वं जगन्नूनं शब्दब्रह्मात्ममूर्त्तिभिः॥९४॥अतोऽहं प्रष्टुमिच्छामि भवन्तश्चेत्कृपालवः ॥ कर्मणां फलमादिष्टं सर्गः कामैकचेतसाम् ॥९५॥ ईशार्पितधियां पुंसां कृतस्यापि च कर्मणः ॥ चित्तशुद्धिस्ततो ज्ञानं मोक्षश्च तदनन्तरम् ॥ ९६ ॥ मोक्षो ब्रह्मैक्यमित्येवं सच्चिदानन्दमेव यत् ॥ सर्वं समाप्यते तस्मिञ्ज्ञाते यद्धि कृताकृतम् ॥ ९७ ॥ यन्निःसङ्गं चिदाकाशं ज्ञानरूपमसंवृतम् ॥ निरीहमचलं शुद्धमगुणं व्यापकं स्मृतम्॥९८॥विकारेषु विनश्यत्सु निर्विकारं न नश्यति॥यथान्धतमसा व्याप्तलोकस्य रविरोजसा॥९९॥लोहस्येव मणिस्तद्वदरणिश्चानले यथा॥ यदाभासेन सा सत्ता प्रतिपद्य विजृम्भते ॥ १००॥ जीवेश्वरादिरूपेण विश्वाकारेण चाप्यहो ॥ तस्यामपि प्रलीनायां कूटस्थश्च यदेकक्रम् ॥१०१॥ भवद्भिरेवं निर्णीतं तत्तथैव न संशयः ॥ तथापि मम जिज्ञासा वर्त्तते केवलं हृदि॥१०२॥ अतोऽपि परमं किञ्चिद्वर्त्तते किल वा न वा ॥ तद्वदन्तु महाभागा भवन्तस्तत्त्वदर्शनाः ॥ १०३ ॥ यच्छ्रवः फलमेवेह जनुषो मे कृतार्थता ॥ एवं ब्रुवन्तमनघं व्यासं सत्यवतीसुतम् ॥ साधु साध्विति सङ्कीर्त्य प्रत्यूचुर्निगमा वचः ॥ १०४ ॥ ॥ वेदा ऊचुः ॥ ॥ साधु साधु महाप्राज्ञ विष्णुरात्मा शरीरिणाम् ॥ अजोऽपि जन्म सम्पद्य लोकानुग्रहमीहसे ॥ १०५ ॥ अन्यथा ते न घटते संसारकर्म्मबन्धनम् ॥ अस्पृष्टो मायया देव्या कदाचिज्ज्ञानगूहया ॥१०६ ॥ बिभर्षि स्वेच्छया रूपं स्वेच्छयैव निगूहसे ॥ अस्मत्सम्मत एवार्थो भवता सम्प्रदर्शितः ॥ १०७ ॥ पुराणेष्वितिहासेषु सूत्रेष्वपि च नैकधा ॥ अक्षरं ब्रह्म परमं सर्वकारणकारणम् ॥ १०८ ॥ तस्यात्मनोऽप्यात्मभावतया पुष्पस्य गन्धवत् ॥ रसवद्वा स्थितं रूपमवेहि परमं हि तत् ॥ १०९ ॥ अनुभूतं तदस्माभिर्जाते प्राकृतिके लये ॥ अक्षरात्परतस्तस्माद्यत्परं केवलो रसः ॥ न च तत्र वयं शक्ताः शब्दातीते तदात्मकाः ॥ ११० ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते अनुषङ्गपादे व्याससंशयापनोदनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥

॥ वायुरुवाच ॥ ॥ अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि गयामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥१॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥सनकाद्यैर्महाभागैर्देवर्षिः स च नारदः॥ सनत्कुमारं पप्रच्छ प्रणम्य विधिपूर्वकम्॥२॥ ॥ नारद उवाच ॥ ॥ सनत्कुमार मे ब्रूहि तीर्थं तीर्थोत्तमोत्तमम्॥तारकं सर्वभूतानां पठतां शृण्वतां तथा ॥ ३ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ॥ वक्ष्ये तीर्थवरं पुण्यं श्राद्धादौ सर्वतारकम् ॥ गयातीर्थं सर्वदेशे तीर्थेभ्योऽप्यधिकं शृणु ॥४॥ गयासुरस्तपस्तेपे ब्रह्मणा क्रतवेऽर्थितः ॥ आतस्य तस्य शिरसि शिलां धर्म्मो ह्यधारयत् ॥५॥ तत्र ब्रह्माऽकरोद्यागं स्थितश्चापि गदाधरः ॥ फल्गुतीर्थादिरूपेण निश्चलार्थमहर्निशम् ॥ गयासुरस्य विप्रेन्द्र ब्रह्माद्यैर्देवतैः सह ॥ ६ ॥ कृतयज्ञो ददौ ब्रह्मा ब्राह्मणेभ्यो गृहादिकम् ॥ श्वेतकल्पे तु वाराहे गयायागमकारयत् ॥७॥ गयानाम्ना गया ख्याता क्षेत्रं ब्रह्माभिकाङ्क्षितम् ॥ काङ्क्षन्ति पितरः पुत्रान्नरकाद्भय

ङ्कल्पस्तीर्थश्राद्धेष्वयं विधिः ॥ ३४ ॥ नावाहनं न दिग्बन्धो न दोषो दृष्टिसम्भवः ॥ सकारुण्येन कर्त्तव्यं तीर्थश्राद्धं विचक्षणैः ॥ ३५ ॥ अन्यत्रावा
हिताः काले पितरो यान्त्यमुं प्रति ॥ तीर्थे सदा वसन्त्येते तस्मादावाहनं न हि ॥ ३६ ॥ तीर्थश्राद्धं प्रयच्छद्भिः पुरुषैः फलकाङ्क्षिभिः ॥ कामं क्रो
धं तथा लोभं त्यक्त्वा कार्य्या क्रियाऽनिशम् ॥ ३७ ॥ ब्रह्मचार्य्येकभोजी च भूशायी सत्यवाक्छुचिः॥ सर्व्वभूतहिते रक्तः स तीर्थफलमश्नुते ॥३८॥
तीर्थान्यनुसरन्धीरः पाषण्डं पूर्व्वतस्त्यजेत् ॥ पाषण्डः स च विज्ञेयो यो भवेत्कामकारतः ॥ ३९ ॥ तीर्थेषु ये नरा धीराः कर्म्म कुर्व्वन्ति तद्गताः॥
यथा ब्रह्मविदो वेद्यं वस्तु चानन्यचेतसः ॥ प्रविशन्ति परेशाख्यं ब्रह्म ब्रह्मपरायणाः ॥ ४० ॥ याऽस्ते वैतरणी नाम नदी त्रैलोक्यविश्रुता ॥
साऽवतीर्णा गयाक्षेत्रे पितॄणां तारणाय वै ॥ स्नातो गोदो वैतरण्यां त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत् ॥ ४१ ॥ तथाऽक्षयवटं गत्वा विप्रान्सन्तोषयिष्यति ॥
ब्रह्मप्रकल्पितान्विप्रान्हव्यकव्यादिनाऽर्च्चयेत् ॥ तैस्तुष्टैस्तोषिताः सर्व्वाः पितृभिः सह देवताः ॥ ४२ ॥ गयायां न हि तत्स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते ॥
सान्निध्यं सर्व्वतीर्थानां गयातीर्थं ततो वरम् ॥ ४३ ॥ मीने मेषे स्थिते सूर्य्ये कन्यायां कार्मुके घटे ॥ दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयायां पिण्डपातनम् ॥
॥ ४४ ॥ मकरे वर्त्तमाने च ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः ॥ दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयाश्राद्धं सुदुर्लभम् ॥ ४५ ॥ गयायां पिण्डदानेन यत्फलं लभते नरः ॥
न तच्छक्यं मया वक्तुं कल्पकोटिशतैरपि ॥ ४६ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते गयामाहात्म्यं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ॥ छ ॥ ॥
॥ ॥ नारद उवाच ॥ ॥ गयासुरः कथं जातः किंप्रभावः किमात्मकः ॥ तपस्तप्तं कथं तेन कथं देहपवित्रता ॥ १ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ॥
विष्णोर्नाभ्यम्बुजाज्जातो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ प्रजाः ससर्ज संप्रोक्तः पूर्व्वदेवेन विष्णुना ॥ २ ॥ आसुरेणैव भावेन ह्यसुरानसृजत्पुरा ॥
सौमनस्येन भावेन देवान्सुमनसोऽसृजत् ॥ ३ ॥ गयासुरोऽसुराणाञ्च महाबलपराक्रमः ॥ योजनानां सपादञ्च शतं तस्योच्छ्रयः स्मृतः ॥ ४ ॥
स्थूलः षष्टियोजनानां श्रेष्ठोऽसौ वैष्णवः स्मृतः ॥ कोलाहलगिरिवरे तपस्तेपे सुदारुणम् ॥ ५ ॥ बहुवर्षसहस्राणि निरुच्छ्वासं स्थिरोऽभवत् ॥ तत्त
पस्तापिता देवाः संक्षोभं परमं गताः ॥ ६ ॥ ब्रह्मलोकं गता देवाः प्रोचुस्तेऽथ पितामहम् ॥ गयासुराद्रक्ष देव ब्रह्मा देवांस्ततोऽब्रवीत् ॥ ७ ॥
व्रजामः शङ्करं देवा ब्रह्माद्याश्च गताः शिवम् ॥ कैलासे चाब्रुवन्नत्वा रक्ष देव महासुरात् ॥ ८ ॥ ब्रह्माद्यानब्रवीच्छम्भुर्व्रजामः शरणं हरिम् ॥ क्षीरा
ब्धौ देवदेवेशः स नः श्रेयो विधास्यति ॥ ब्रह्मा महेश्वरो देवा विष्णुं नत्वा प्रतुष्टुवुः ॥ ९ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ ॥ नमो विष्णवे भर्त्रे सर्व्वेषां
प्रभविष्णवे ॥ रोचिष्णवे जिष्णवे च राक्षसादिग्रसिष्णवे ॥ १० ॥ धरिष्णवेऽखिलस्यास्य योगिनां पारयिष्णवे ॥ वर्द्धिष्णवे ह्यनन्ताय नमो भ्राजिष्णवे

महाव्रतम् ॥ ३७ ॥ सुपालकं गौतमञ्च तथा वेदशिरोव्रतम् ॥ जटामालिनमव्यग्रं चाट्टहासञ्च दारुणम् ॥ ३८ ॥ आत्रेयं चाप्याङ्गिरसमौपमन्युं महा
व्रतम् ॥ गोकर्णञ्च गुहावासं शिखण्डिनमुमाव्रतम् ॥ ३९ ॥ एतानन्यांश्च विप्रेन्द्रान्वेधा लोकपितामहः ॥ परिकल्प्याकरोद्यागं गयासुरशरीरके ॥
॥ ४० ॥ अग्निशर्मापि पञ्चाग्नीन्मुखादेतानथासृजत् ॥ दक्षिणाग्निं गार्हपत्याहवनीयौ तपोऽव्ययः ॥ ४१ ॥ सत्यावसथ्यौ देवर्षे येषु यज्ञाः प्रति
ष्ठिताः ॥ यज्ञस्य च प्रतिष्ठार्थं विप्रेभ्यो दक्षिणां ददौ ॥४२॥ हुत्वा पूर्णाहुतिं ब्रह्मा स्नात्वा चावभृथेन तु ॥ यज्ञयूपं सुरैः सार्द्धं समानीय व्यरोपयत् ॥
॥ ४३ ॥ ब्रह्मणः सरसां श्रेष्ठे सरस्येवाश्रितं शुभम् ॥ चलितश्चकितो ब्रह्मा धर्म्मराजमभाषत ॥ ४४ ॥ जाता गृहे तव शिला समानीयाविचारयन् ॥
दैत्यस्य शीघ्रं शिरसि तां धारय ममाज्ञया ॥ ४५ ॥ निश्चलार्थं यमः श्रुत्वा धारयन्मस्तके शिलाम् ॥ शिलायां धारितायान्तु सशिलश्चासुरोऽचलत् ॥
॥४६॥ देवानूचेऽथ रुद्रादींश्छिलायां निश्चलाः किल ॥ तिष्ठन्तु देवाः सकलास्तथेत्युक्त्वा च ते स्थिताः ॥४७॥ देवाः पादैर्लङ्घयित्वा तथापि चलितोऽ
सुरः ॥ ब्रह्माथ व्याकुलो विष्णुं गतः क्षीराब्धिशायिनम् ॥ तुष्टाव प्रणतो भूत्वा नत्वा चाहत्य तं प्रभुम् ॥ ४८ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ ब्रह्माण्डस्य पते नाथ
नमामि जगतां पतिम् ॥ गतिं कीर्त्तिमतां नृणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ ४९ ॥ विष्वक्सेनोऽब्रवीद्विष्णुं देव त्वां स्तौति पद्मजः ॥ हरिराहानय त्वं तं विष्णू
क्तः स तमानयत् ॥ अजमूचे हरिः कस्मादागतोऽसि वदस्व तत् ॥ ५० ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ देवदेव कृते यागे प्रचचाल गयासुरः ॥ शिलायां देवरूपिण्यां
न्यस्तायां तस्य मस्तके ॥ ५१ ॥ रुद्रादिषु च देवेषु संस्थितेष्वसुरोऽचलत् ॥ इदानीं निश्चलार्थं हि प्रसादं कुरु माधव ॥ ५२ ॥ ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ह्याकृष्य
स्वशरीरतः ॥ मूर्त्तिं ददौ निश्चलार्थं ब्रह्मणे भगवान्हरिः ॥ ५३ ॥ आनीय मूर्त्तिं ब्रह्मापि शिलायां समधारयत् ॥ तथापि चलितं वीक्ष्य पुनर्देवमथाह्वयत् ॥
॥ ५४ ॥ आगत्य विष्णुः क्षीराब्धेः शिलायां संस्थितोऽभवत् ॥ जनार्दनाभिधानेन पुण्डरीकेति नामतः ॥ शिलायां निश्चलार्थं हि स्वयमादिगदाधरः ॥५५॥
निश्चलार्थं पञ्चधासीच्छिलायां प्रपितामहः ॥ पितामहोऽथ फल्ग्वीशः केदारः कनकेश्वरः ॥ ५६ ॥ ब्रह्मा स्थितः स्वयं तत्र गजरूपी विनायकः ॥
गयादित्यश्चोत्तरार्को दक्षिणार्कस्त्रिया रविः ॥५७॥ लक्ष्मीः सिताभिधानेन गौरी च मङ्गलाह्वया ॥ गायत्री चैव सावित्री त्रिसन्ध्या च सरस्वती ॥ ५८ ॥
इन्द्रो बृहस्पतिः पूषा वसवोऽष्टौ महाबलाः ॥ विश्वेदेवाश्चाश्विनेयौ मारुतो विश्वनायकः ॥ सयक्षोरगगन्धर्व्वास्तस्थुर्देवाः स्वशक्तिभिः ॥ ५९ ॥ आ
द्यया गदया चासौ यस्माद्दैत्यः स्थिरीकृतः ॥ स्थित इत्येव हरिणा तस्मादादिगदाधरः ॥ ६० ॥ ऊचे गयासुरो देवान्किमर्थं वञ्चितो ह्यहम् ॥ यज्ञा
र्थं ब्रह्मणे दत्तं शरीरममलं मया ॥ विष्णोर्वचनमात्रेण किं न स्यां निश्चलो ह्यहम् ॥ ६१ ॥ यत्सुरैः पीडितोऽत्यर्थं गदया हरिणा तथा ॥ पीडितो यद्यहं

॥ नारदउवाच ॥ ॥ कथं शिला समुत्पन्ना ययाक्रान्तो गयासुरः ॥ किं रूपं किं च माहात्म्यं तस्याः किं वद नाम च ॥ १ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ॥
आसीद्धर्म्मो महातेजाः सर्व्वविज्ञानपारगः ॥ विश्वरूपा च तत्पत्नी भर्त्तृव्रतपरायणा ॥ २ ॥ तस्यां धर्म्मात्समुत्पन्ना कन्या धर्म्मव्रता सती ॥ सर्व्वल
क्षणसम्पन्ना लक्ष्मीरिव गुणाधिका ॥ ३ ॥ तस्यां ये तु गुणा ह्यासंस्ते तिष्ठन्ति जगत्त्रये ॥ धर्म्मो धर्म्मव्रतायास्तु त्रिषु लोकेषु मार्गयन् ॥ ४ ॥ ना
नुरूपं वरं लेभे धर्म्मोऽथ वरसिद्धये ॥ तपः कुरु वरार्थं त्वं तथेत्युक्त्वा वनं ययौ ॥ ५ ॥ कन्या सा च तपस्तेपे सर्व्वेषां दुष्करञ्च यत् ॥ वायुभक्षा
श्वेतकल्पे युगानामयुतं पुरा ॥ ६ ॥ ब्रह्मणो मानसः पुत्रो मरीचिर्नाम विश्रुतः ॥ पर्य्यटन्पृथिवीं सर्व्वां कन्यारत्नं ददर्श सः ॥ ७ ॥ रूपयौवनसम्प
न्नां परमे तपसि स्थिताम् ॥ पप्रच्छाथ मरीचिस्तां का त्वं कस्यासि तद्वद ॥ ८ ॥ रूपेणानेन मां भीरु विमोहयसि सुव्रते ॥ ब्रह्मात्मजोऽहं विख्यातो
मरीचिर्व्वेदपारगः ॥ ९ ॥ मरीचेर्व्वचनं श्रुत्वा कन्या प्रोवाच तं मुनिम् ॥ अहं धर्म्मव्रता नाम धर्म्मपुत्री तपोऽन्विता ॥ १० ॥ पतिव्रतार्थं विप्रेन्द्र
चरामि परमं तपः ॥ धर्म्मव्रतां मरीचिस्तामुवाच प्रीतिपूर्व्वकम् ॥ ११ ॥ पतिव्रता दर्शनान्मे भविष्यसि शुभव्रते ॥ पतिव्रतेच्छया पृथ्वीं विचरामि
ह्यहर्निशम् ॥ १२ ॥ त्वञ्चेत्पतिव्रता जाता भजे त्वां भज मां वरम् ॥ लोके न त्वादृशी कन्या मम तुल्यो न ते वरः ॥ १३ ॥ धर्म्मव्रते धर्म्मपत्नी
तस्मात्त्वं भव मेऽधुना ॥ धर्म्मव्रता मुनिं प्राह धर्म्मं याचय सुव्रत ॥ १४ ॥ तच्छ्रुत्वा धर्म्ममगमन्मुनिं धर्म्मो ददर्श ह ॥ तेजःपुञ्जं वरं नत्वा आसना
र्घ्यादिनाऽर्च्चयत् ॥ १५ ॥ किमर्थमागतः पृष्टो मरीचिर्धर्म्ममब्रवीत् ॥ कन्यार्थं भ्रमता पृथ्वीं दृष्टा ते कन्यका वरा ॥ मह्यं कन्याञ्च तां देहि श्रेयस्तव
भविष्यति ॥ १६ ॥ अर्घ्यादिना समभ्यर्च्य धर्म्मः प्रोचे तथेति तम् ॥ धर्म्मव्रतां समानीय दत्तवांस्तां मरीचये ॥ १७ ॥ वरं च दत्तवांस्तस्मै तद्वाक्यं
यत्तथा कृतम् ॥ अग्निहोत्रेण सहितां स्वाश्रमं तां द्विजोऽनयत् ॥ १८ ॥ रेमे मुनिस्तया सार्द्धं यथा विष्णुः श्रिया सह ॥ पार्व्वत्या च यथा शम्भुः
सरस्वत्या यथा ह्यजः ॥ १९ ॥ जज्ञे पुत्रशतं तस्यां मरीचेर्विष्णुनोपमम् ॥ मरीचिः फलपुष्पार्थं वनं गत्वा समागतः ॥ २० ॥ श्रान्तः कदाचित्तां प
त्नीमुवाचेति पतिव्रताम् ॥ भुक्त्वा तु शयनस्थस्य पादसंवाहनं कुरु ॥ २१ ॥ धर्म्मव्रता तथेत्युक्त्वा शयनस्थस्य सा मुनेः ॥ पादसंवाहनं चक्रे घृते
नाभ्यज्य तत्परा ॥ २२ ॥ निद्रायमाणेऽथ मुनौ ब्रह्मा तं देशमागतः ॥ इत्येव दृष्ट्वा ब्रह्माणं मनसार्च्चयितुं प्रभुम् ॥ २३ ॥ पादसंवाहनं कुर्य्यां किं पू
ज्योऽयं जगद्गुरुः ॥ इत्याकुला समुत्तस्थौ मत्वा सा तं गुरोर्गुरुम् ॥ २४ ॥ अर्घ्यपाद्यादिकं दत्त्वा ब्रह्माणं समपूजयत् ॥ सत्कृतायान्तु शय्यायां वि
श्राममकरोदजः ॥ २५ ॥ एतस्मिन्नन्तरे भर्त्ता समुत्तस्थौ च तल्पतः ॥ धर्म्मव्रतामपश्यन्स विप्रः क्रुद्धः शशाप ताम् ॥ २६ ॥ पादसंवाहनं त्यक्त्वा
यस्मादाज्ञां विहाय मे ॥ गतान्यत्र ततः पापाच्छापदग्धा शिला भव ॥ २७ ॥ भर्त्रा धर्म्मव्रता शप्ता मरीचिं प्राह सा रुषा ॥ शयाने त्वयि संप्राप्ते

रेणापि ते सिद्धाः सिद्धिभाजो भवन्तु वै ॥ ५४ ॥ पितृणां कुलसाहस्रमात्मना सहितं नरः ॥ श्राद्धादिना समुद्धृत्य विष्णुलोकं नयेद्ध्रुवम् ॥ ५५ ॥ यावत्योहि सरिच्छ्रेष्ठा गङ्गाद्याश्च ह्रदाः शुभाः ॥ समुद्राद्याः सरोमुख्या मानसाद्याः सुरेश्वराः ॥ नृणां श्राद्धं विदधतो मुक्तये निवसन्तु मे ॥ ५६ ॥ शरीरेण समायान्तु क्वचिन्नो यान्तु देवताः ॥ एको विष्णुस्त्रिधामूर्त्तिर्यो वत्सङ्कीर्त्यते बुधैः ॥ ५७ ॥ तावच्छिलायां सर्व्वाणि तीर्थानि सह दैवतैः ॥ सदा तिष्ठन्तु मुनयो गन्धर्व्वाणांगणाश्च ये ॥ ५८ ॥ सर्व्वदेवस्वरूपा च नामेयं देवरूपिणी ॥ यावत्तिष्ठति ब्रह्माण्डं तावत्तिष्ठतु वै शिला ॥ मम देहेऽस्मद्रूपे च ये जपन्ति तपन्ति च ॥ ५९ ॥ जुहोत्यग्नौ च तेषां वै तदक्षय्योपतिष्ठताम् ॥ अक्षयन्तु भवेच्छ्राद्धं जपहोमतपांसि च ॥ शिलापर्व्वतरूपेण मयि तिष्ठतु सर्व्वदा ॥ ६० ॥ पतिव्रतावचः श्रुत्वा देवाः प्रोचुः पतिव्रताम् ॥ त्वया यत्प्रार्थितं सर्व्वं तद्भविष्यत्यसंशयम् ॥ ६१ ॥ गयासुरस्य शिरसि भविष्यसि यदा स्थिरा ॥ तदा पादादिरूपेण स्थास्यामस्त्वयि सुस्थिराः ॥ वरं शिलायै दत्त्वैवं तत्रैवान्तर्दधुः सुराः ॥ ६२ ॥ ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते गयामाहात्म्यं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ॥ छ ॥ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ वक्ष्ये शिलाया माहात्म्यं शृणु नारद मुक्तिदम् ॥ यस्या गायन्ति देवाश्च माहात्म्यं मुनिपुङ्गवाः ॥ १ ॥ शिला स्थिता पृथिव्यां सा देवरूपातिपावनी ॥ विचित्राख्यं शिलातीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ २ ॥ तस्याः संस्पर्शनाल्लोकाः सर्वे हरिपुरं ययुः ॥ शून्ये लोकत्रये जाते शून्या यमपुरी ह्यभूत् ॥ ३ ॥ यम इन्द्रादिभिर्गत्वा ऊचे ब्रह्मागमद्भुतम् ॥ अधिकारं गृहाणाथ यमदण्डं पितामह ॥ ४ ॥ यममूचे ततो ब्रह्मा स्वगृहे धारयस्व ताम् ॥ ब्रह्मोक्तो धर्मराजस्तु गृहे तां समधारयत् ॥ ५ ॥ यमोऽधिकारं स्वं चक्रे पापिनां शासनादिकम् ॥ एवंविधा गुरुतरा शिला जगति विश्रुता ॥ ६ ॥ यथा ब्रह्मा यथा विष्णुर्यथा देवो महेश्वरः ॥ ब्रह्माण्डे च यथा मेरुस्तथेयं देवरूपिणी ॥ ७ ॥ गयासुरस्य शिरसि गुरुत्वाद्धारिता यतः ॥ अतः पवित्रयोर्योगः पितृणां मोक्षदायकः ॥ ८ ॥ पवित्रयोर्द्वयोर्योगे ह्ययमे धमजोऽकरोत् ॥ भागार्थमागतान्दृष्ट्वा विष्ण्वादीनब्रवीच्छिला ॥ ९ ॥ शिलास्थितिप्रतिज्ञां तु कुर्वन्तु पितृमुक्तये ॥ तथेत्युक्त्वा शिलायान्ते देवा विष्ण्वादयः स्थिताः ॥ १० ॥ शिलारूपेण मूर्त्या च पदरूपेण देवताः ॥ मूर्त्तामूर्त्तस्वरूपेण स्थिताः पूर्वप्रतिज्ञया ॥ ११ ॥ दैत्यस्य मुण्डपृष्ठे तु यस्मात्सा संस्थिता शिला ॥ तस्मात्स मुण्डपृष्ठाद्रिः पितृणां ब्रह्मलोकदः ॥ १२ ॥ आच्छादितः शिलापादः प्रभासेनाद्रिणा यतः ॥ भासितो भास्करेणेति प्रभासः परिकीर्त्तितः ॥ १३ ॥ प्रभासं हि विनिर्भिद्य शिलाङ्गुष्ठो विनिर्गतः ॥ अङ्गुष्ठोत्थित ईशोऽपि प्रभासेशः प्रकीर्त्तितः ॥ १४ ॥ शिलाङ्गुष्ठैकदेशो यः सा च प्रेतशिला स्मृता ॥ पिण्डदानाद्यतस्तस्यां प्रेतत्वान्मुच्यते नरः ॥ १५ ॥ महानदीप्रभासाद्र्योः सङ्गमे स्नानकृन्नरः ॥ रामो देव्या सह स्नातो रामतीर्थं ततः स्मृतम् ॥ १६ ॥ प्रार्थितोऽत्र महानद्या राम स्नातो भवेति च ॥ रामतीर्थं ततो भूत्वा त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ १७ ॥ जन्मान्तरशतं साग्रं यत्कृतं दुष्कृतं

शुकः पैलः कण्वो वेधाः शिवो हरिः ॥ ४५ ॥ तेषां दर्शनमात्रेण मुच्यते पातकैर्नरः ॥ वामहस्ते शिलायास्तु तथा चोद्यन्तको गिरिः ॥ ४६ ॥



१ अस्माच्छ्लोकादग्रे पाठान्तरश्लोका उपलभ्यन्ते ते यथा—स्थापितः पिण्डदस्तत्र पितॄन् ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ १ ॥ कुण्डश्चोद्यन्तकस्तत्र ह्यात्मनस्तपसा कृतः ॥ ब्रह्मणा तत्र सावित्रीकुमाराभ्यां सह स्थितम् ॥ २ ॥ हाहाहूहूप्रभृतयो गीतिनादं प्रचक्रिरे ॥ कुण्डमुद्यन्तकं तत्र गीतवादित्रको गिरिः ॥ ३ ॥ अगस्त्यो भगवान्यत्र तपश्चोग्रं चकार ह ॥ ब्रह्मणस्तु वरं लेभे महात्म्यं भुवि दुर्लभम् ॥ लोपामुद्रां तथा भार्य्यां पितॄणां परमां गतिम् ॥ ४ ॥ स्नातस्तत्र च मध्याह्ने सावित्रीं समुपास्य च ॥ कोटिजन्म भवेद्विप्रो धनाढ्यो वेदपारगः ॥ ५ ॥ अगस्त्यस्य पदे स्नात्वा पिण्डदो ब्रह्मलोकगः ॥ पितृभिः सह धर्म्मात्मा पूज्यमानो दिवौकसाम् ॥ ६ ॥ ब्रह्मयोनिं प्रविश्याथ निर्गच्छेद्यस्तु मानवः ॥ परं ब्रह्म स यातीह विमुक्तो योनिसङ्कटात् ॥ ७ ॥ नत्वा गयाकुमारश्च ब्राह्मण्यं लभते नरः ॥ सोमकुण्डाभिषेकी च सोमलोकं नयेत्पितॄन् ॥ ८ ॥ बलिः काकशिलायान्तु काकेभ्य ऋणमोक्षदः ॥ स्वर्गद्वारेश्वरं नत्वा स्वर्गाद्ब्रह्मपुरं व्रजेत् ॥ ९ ॥ पिण्डदो व्योमगङ्गायां निर्म्मलः स्वर्नयेत् पितॄन् ॥ शिलाया दक्षिणे हस्ते भस्मकूटमधारयत् ॥ ततोऽसौ भस्मकूटाद्रिर्भस्मस्नातश्च नारद ॥ १० ॥ वटो वटेश्वरस्तत्र स्थितश्च प्रपितामहः ॥ मतङ्गस्य पदे पुण्ये पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन् ॥११॥ तस्याग्रे रुक्मिणीकुण्डं पश्चिमे कपिला नदी॥ कपिलेशो नदीतीरे ह्यमासोमसमागमे ॥ १२ ॥ कपिलायां नरः स्नात्वा कपिलेशं नमेच्च यः ॥ श्राद्धदः स्वर्गगामी स्यान्माहेशीकुण्ड एव च ॥ १३ ॥ गौरी च मङ्गला तत्र सर्व्वसौभाग्यदायिनी ॥ जनार्दनो भस्मकूटे तस्य हस्ते च पिण्डदः ॥ १४ ॥ मन्त्रेण चात्मनोऽन्येषां सव्यहस्ते तिलैर्विना ॥ जीवतां दधिसंमिश्रं सर्व्वे ते विष्णुलोकगाः ॥ १५ ॥ एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन ॥ देहि देव गयाशीर्षे तस्मै तस्मिन्मृते तु तम् ॥ १६ ॥ एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन ॥ गयाशीर्षे त्वया देयो मह्यं पिण्डो मृते मयि ॥ १७ ॥ जनार्दन नमस्तुभ्यं नमस्ते पितृरूपिणे ॥ पितृपते नमस्तुभ्यं नमस्ते मुक्तिहेतवे ॥१८॥ गयायां पितृरूपेण स्वयमेव जनार्दन ॥ लक्ष्मीकान्त नमस्तेऽस्तु नमस्ते पितृमोक्षद ॥१९॥ तं ध्यात्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते च ऋणत्रयात् ॥ पुण्डरीकाक्षमभ्यर्च्य स्वर्गं प्रापुर्नरा ध्रुवम् ॥ २० ॥ वामजानु तु संपात्य नत्वा भीष्मो जनार्दनम् ॥ श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा भ्रातृभिर्विष्णुलोकगः ॥ २१ ॥ शिलाया दक्षिणे पादे प्रेतकूटो गिरिर्धृतः ॥ धर्म्मराजेन पादाभ्यां गिरिः प्रेतशिलाश्रयः ॥ २२ ॥ पादेन दूरे निक्षिप्तः शिलायाः पापभारतः ॥ प्रेतभावस्वरूपेण करग्रहणकानने ॥ २३ ॥ पृष्ठे स्थिताश्च बहवो विघ्नकारिण एव ते ॥ श्राद्धादिकरणान्नॄणां तीर्थं पितृविमुक्तिदम् ॥ २४ ॥ गतः शिलाङ्गसंस्पर्शात्प्रेतकूटः पवित्रताम् ॥ प्रेतकूटश्च तत्रास्ते देवास्तत्र पदे स्थिताः ॥ तत्र श्राद्धादिकं कृत्वा प्रेतत्वान्मोचयेत्पितॄन् ॥ २५ ॥ शिलासमीपे ये विप्र प्रेतरूपा भयानकाः ॥ सर्व्वे ते यमलोके तु पृथिव्यां पर्य्यटन्ति वै ॥ २६ ॥ गयासुरस्य शिरसि पुण्ये प्रेतादिवर्जिते ॥ स्थिता ब्रह्मादयो देवा गतः सोऽपि पवित्रताम् ॥ २७ ॥ कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजवनं गृहम् ॥ च्यवनस्याश्रमः पुण्यो नदी पुण्या पुनःपुना ॥ २८ ॥ वैकुण्ठे हेमदण्डश्च हेमकूटो गिरिस्तथा ॥ श्राद्धपिण्डादिकृत्तत्र पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ २९ ॥ शिलादक्षिणपादे तु गृध्रकूटो गिरिर्धृतः ॥ धर्मराजेन सुस्थैर्य्यकरणाय सुपावनः ॥ ३० ॥ गृध्ररूपेण तत्राथ तपः कृत्वा महर्षयः ॥ विमुक्ता गृध्रकूटोऽयं तत्र गृध्रेश्वरः स्थितः ॥३१॥ तत्र गृध्रेश्वरं दृष्ट्वा यान्ति शम्भुपदं नराः॥ तत्र गृध्रवटं नत्वा प्राप्तकामो दिवं व्रजेत् ॥३२॥ तत्र गृध्रगुहायाश्च पिण्डदः शिवलोकभाक् ॥ तत्र माहेश्वरी धारा पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन् ॥ ३३ ॥ मूलक्षेत्रं सरस्तत्र पिण्डदो ब्रह्मलोकभाक् ॥ ऋणमोक्षं पापमोक्षं शिवं दृष्ट्वा शिवं व्रजेत् ॥ ३४ ॥ आदिपालेन गिरिणा समाक्रान्तं शिलोदरम् ॥ यत्रास्ते गजरूपेण विघ्नेशो विघ्ननाशनः ॥ नाभौ च पिण्डदो यस्तु पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ३५ ॥ नितम्बे मुण्डपृष्ठस्य देवदारुवनं त्वभूत् ॥ मुण्डपृष्ठेऽरविन्दाद्रिं दृष्ट्वा पापं विनाशयेत् ॥ ३६ ॥ क्रौञ्चरूपेण संविष्टो मुनिस्तत्र तपोऽकरोत् ॥ तस्य पादाङ्कितो यस्मात्क्रौञ्चपादः प्रकीर्त्तितः ॥ ३७ ॥ स्नातो जलाशये तत्र नयेत् स्वर्गं कुलत्रयम् ॥ शिलायां व्यक्तरूपेण व्यक्ताव्यक्तात्मना स्थितः ॥ लक्ष्मीशो विबुधैः सार्द्धं तस्माद्देवमयी शिला ॥ ३८ ॥

शिलाया वामपादे तु स्थापितः प्रेतपर्वतः ॥ धर्मराजेन पापेभ्यो गिरिः प्रेतशिलाह्वयः ॥ ७० ॥ पादेन दूरे निक्षिप्तः शिलायाः पादभारतः ॥ गतः
शिलायाः संसर्गात्प्रेतकूटः पवित्रताम् ॥ ७१ ॥ प्रेतकुण्डश्च तत्रास्ते देवास्तत्र पदे स्थिताः ॥ तत्र कुण्डादिकं कृत्वा प्रेतत्वान्मोचयेत्पितॄन् ॥ ७२ ॥
पृथक्स्थिताश्च बहवो विघ्नकारिण एव ते ॥ श्राद्धादिकारिणां नृणां तीर्थे पितृविमुक्तये ॥ प्रेता धानुष्करूपेण करग्रहणकारकाः ॥ ७३ ॥ पादाङ्कितां
मुण्डपृष्ठां महादेवनिवासिनीम् ॥ तां दृष्ट्वा सर्वलोकश्च मुक्तः पापोपपातकैः ॥ ७४ ॥ गयाशिरसि पुण्ये च सर्वपापैर्विवर्जिते ॥ प्रेतादिवर्जितं
यस्मात्ततोऽतिपावनं वरम् ॥ ७५ ॥ कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम् ॥ च्यवनस्याश्रमं पुण्यं नदी पुण्या पुनःपुना ॥ ७६ ॥ वैकुण्ठो
लोहदण्डश्च गृध्रकूटश्च शोणकः ॥ अत्र श्राद्धादिना सर्वान्पितॄन्ब्रह्मपुरं नयेत् ॥ ७७ ॥ क्रौञ्चरूपेण हि मुनिर्मुण्डपृष्ठे तपोऽकरोत् ॥ तस्य पादा
ङ्कितो यस्मात्क्रौञ्चपादस्ततः स्मृतः ॥ ७८ ॥ स्नातो जलाशये तत्र नयेत्स्वर्गं स्वकं कुलम् ॥ बलिः काकशिलायाञ्च काकेभ्य ऋणमोक्षदः ॥७९॥
मुण्डपृष्ठस्य सानौ हि लोमशोलोमहर्षणः ॥ द्वावेतौ परमं तप्त्वा तपःसिद्धिं परां गतौ ॥ ८० ॥ आहूतास्तु सरिच्छ्रेष्ठा लोमशेन महानदी ॥ शरावती
वेत्रवती चन्द्रभागा सरस्वती ॥ ८१ ॥ कावेरी सिन्धुरीराच चन्द्रना च सरिद्वरा ॥ वासिष्ठी सरयूर्गङ्गा यमुना गण्डकीन्दिरा ॥ ८२ ॥ महावैतरणी
नाम्ना निक्षरा च दिवौकसः ॥ सावव्यलकनन्दा च ह्युदीची कनकाह्वया ॥ ८३ ॥ कौशिकी ब्रह्मदा ज्येष्ठा सर्वस्याघविमोचिनी ॥ कृष्णवल्वा चर्म्म
वती द्वे नद्यौ मुक्तिदायिके ॥ ८४ ॥ आहूते सरितां श्रेष्ठे लोमहर्षेण साहसात् ॥ तपसस्तु प्रभावेण नर्म्मदा मुनिपुङ्गव ॥ तासु सर्वासु यः स्नात्वा
पिण्डदः स्वर्नयेत्पितॄन् ॥ ८५ ॥ ब्रह्मयोनिं प्रविश्याथ निर्गच्छेद्यस्तु मानवः ॥ परं ब्रह्म स यातीह विमुक्तो योनिसङ्कटात् ॥ ८६ ॥ निक्षरायां
पुष्करिण्यां स्नातः श्राद्धादिकं नरः ॥ कुर्य्यात्क्रौञ्चपदे दिव्ये नियमाद्वासरत्रयम् ॥ सर्वान्पितॄन्नयेत्स्वर्गं पञ्चपापिन एव च ॥ ८७ ॥ जनार्दनो
भस्मकूटे तस्य हस्ते तु पिण्डदः ॥ आत्मनोऽप्यथवान्येषां सव्येनापि तिलैर्विना ॥ जीवतां दधिसंमिश्रं सर्वे ते विष्णुलोकगाः ॥ ८८ ॥ यस्तु
पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन ॥ यदुद्दिश्य त्वया देयस्तस्मिन्पिण्डो मृते प्रभो ॥ ८९ ॥ एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन ॥
अन्तकाले गते मह्यं त्वया देयो गयाशिरे ॥ ९० ॥ जनार्दन नमस्तुभ्यं नमस्ते पितृमोक्षद ॥ पितृपते नमस्ते तु नमस्ते पितृरूपिणे ॥ ९१ ॥
गयायां पितृरूपेण स्वयमेव जनार्दनः ॥ तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते च ऋणत्रयात् ॥ ९२ ॥ नमस्ते पुण्डरीकाक्ष ऋणत्रयविमोचक ॥ लक्ष्मी
कान्त नमस्ते स्तु पितॄणां मोक्षदो भव ॥ ९३ ॥ वामजानु सुसंपात्य नत्वा भीमो जनार्दनम् ॥ श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा भ्रातृभिर्ब्रह्मलोकभाक् ॥

च पुण्डरीकाक्ष उत्तमः ॥२४॥ इत्यादिव्यक्तरूपेण स्थितश्चादिगदाधरः॥ हेतियों राक्षसस्तस्मिन्हते विष्णुः पुरं गतः ॥ २५ ॥ ब्रह्मणा सह रुद्राद्यैः कारिते निश्चलेऽसुरे ॥ तुष्टावाद्यगदापाणिं वेधा हर्षेण निर्वृतः ॥ २६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ गदाधरं व्यपगतकालकल्मषं गयागतं विदितगुणं गुणातिगम् ॥ गुहागतं गिरिवरगौरगेहगं गणार्चितं वरदमहं नमामि ॥ २७ ॥ अहःश्रियं त्रिदशगणादिसुश्रियं भवाश्रियं दितिभवदारणाश्रियम् ॥ कलिश्रियं कलिमलमर्दनाश्रियं गदाधरं नौमि तमाश्रिताश्रियम् ॥ २८ ॥ दृढाद्दृढं परिवृढगाढसंस्तुतं कामाद्भुतं सुदृढमहाढिरूढिगम् ॥ तमाढ्यगं दृढदुरिताघढौकितं स्वढौकृतं दृढतरगोत्रसूक्तिभम्॥२९॥विदेहकं करणकलाविवर्जितं विजन्मकं दिनकरवेदिभूषितम् ॥ गदाधरं ध्वनिमुखवर्जितं परं नमाम्यहं सततमनादिमीश्वरं हरिम् ॥३०॥ मनोऽतिगं मतिगतिवर्जितं परं सदाद्वयं स्तुतिशिरसि संस्तुतं बुधैः॥ चिदात्मकं कलिगतकारणातिगं गदाधरं हृदयगतं नमामि तम् ॥ ३१ ॥ सनत्कुमार उवाच ॥ ॥ देवैः सार्द्धं ब्रह्मणैवं स्तुतश्चादिगदाधरः॥ ऊचे वरं वृणीष्व त्वं वरं ब्रह्मा तमब्रवीत् ॥३२॥ शिलायां देवरूपिण्यां न तिष्ठामस्त्वया विना ॥ स्थास्यामोऽत्र त्वया सार्द्धं नित्यं व्यक्तादिरूपिणा ॥ ३३ ॥ एवमस्तु श्रिया सार्द्धं स्थितश्चादिगदाधरः॥ लोकानां रक्षणार्थाय जगतां मुक्तिहेतवे ॥ सुव्यक्तः पुण्डरीकाक्षो जनार्दन इति श्रुतः ॥ ३४॥ वेदैरगम्या या मूर्त्तिरादिभूता सनातनी ॥ सुव्यक्ता श्वेतकल्पे सा भविष्यति तथा पुनः ॥ वाराहकल्पे ह्यव्यक्ता व्यक्तिमप्यगमत्पुरा ॥ ३५ ॥ सन्तारणाय लोकानां देवानां रक्षणाय च ॥ गयाशिरसि सुव्यक्तो भविष्यति न संशयः ॥ ३६ ॥ ये द्रक्ष्यन्ति सदा भक्त्या देवमादिगदाधरम् ॥ कुष्ठरोगादिनिर्मुक्ता यास्यन्ति हरिमन्दिरम् ॥ ३७ ॥ ये द्रक्ष्यन्ति सदा भक्त्या देवमादिगदाधरम् ॥ ते प्राप्स्यन्ति धनं धान्यमायुरारोग्यमेव च ॥ ३८ ॥ कलत्रपुत्रपौत्रादिगुणकीर्त्तिसुखानि च ॥ श्रद्धया ये नमस्यन्ति राज्यं ब्रह्मपुरं तथा ॥ भुक्त्वा व्रजेयुः सततं पुण्यपुञ्जफलं नराः ॥ ३९ ॥ गन्धदानेन गन्धाढ्यः सौभाग्यं पुष्पदानतः ॥ धूपदानेन राज्याप्तिर्दीपाद्दीप्तिर्भविष्यति ॥ ४० ॥ ध्वजदानात्पापहानिर्यात्राकृद्ब्रह्मलोकभाक् ॥ श्राद्धपिण्डप्रदो यस्तु विष्णुं नेष्यति वै पितॄन् ॥ ४१ ॥ श्रद्धया ये नमस्यन्ति स्तोत्रेणादिगदाधरम्॥ स्तोष्यन्ति च समभ्यर्च्य पितॄन्नेष्यन्ति माधवम्॥ शिवोऽपि परया प्रीत्या तुष्टावादिगदाधरम् ॥ ४२ ॥ ॥ ॥ शिव उवाच ॥ ॥अव्यक्तरूपो यो देवो मुण्डपृष्ठादिरूपतः ॥ फल्गुतीर्थादिरूपेण नमाम्यादिगदाधरम् ॥ ४३ ॥ व्यक्ताव्यक्तस्वरूपेण पदरूपेण संस्थितः ॥ मुखलिङ्गादिरूपेण नमाम्यादिगदाधरम् ॥ ४४ ॥ अव्यक्तरूपो यो देवो जनार्दनस्वरूपतः ॥ मुण्डपृष्ठे स्वयं जातो नमाम्यादिगदाधरम् ॥ ४५ ॥ शिलायां देवरूपिण्यां स्थितं ब्रह्मादिभिः सुरैः ॥ पूजितं सत्कृतं देवैस्तं नमामि गदाधरम् ॥ ४६ ॥ यंच दृष्ट्वा ततः स्पृष्ट्वा पूजयित्वा

वृद्धिश्राद्धे तु मात्रादि गयायां पितृपूर्वकम् ॥ पाद्यपूर्वं समारभ्य दक्षिणाग्रकुशैः क्रमात् ॥ पित्रादीनां समास्तीर्य्य शेषं गृह्योक्तमाचरेत् ॥ १८ ॥
दद्युः श्राद्धं सपिण्डानां तेषां दक्षिणभागतः ॥ कुशानास्तीर्य्य विधिना सकृद्दत्त्वा तिलोदकम् ॥ १९ ॥ गृहीत्वाञ्जलिना तेभ्यः पितृतीर्थेन यत्नतः ॥
सक्तुना मुष्टिमात्रेण दद्यादक्षय्यपिण्डकम् ॥ सम्बन्धिनस्तिलाद्भिश्च कुशेष्वावाहयेत्ततः ॥ २० ॥ आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ॥ तृ
प्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ॥ २१ ॥ अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम् ॥ आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम् ॥ २२ ॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः ॥ माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही ॥ २३ ॥ मातामहस्तत्पिता च प्रमातामहकादयः ॥
तेषां पिण्डो मया दत्तो ह्यक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥ २४ ॥ मुष्टिमात्रप्रमाणश्च ह्यार्द्रामलकमात्रकम् ॥ शमीपत्रप्रमाणं वा पिण्डं दद्याद्गयाशिरे ॥
उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलानि शतमुद्धरेत् ॥ २५ ॥ पितुर्मातुः स्वभार्य्याया भगिन्या दुहितुस्तथा ॥ पितृष्वसुर्मातृष्वसुः सप्त गोत्राः प्रकी
र्त्तिताः ॥ २६ ॥ चतुर्विंशतिर्विंशश्च षोडश द्वादशैव हि ॥ रुद्रादिवसवश्चैव कुलान्येकोत्तरं शतम् ॥ २७ ॥ नावाहनं न दिग्बन्धो न
दोषो दृष्टिसम्भवः ॥ न कारुण्येन कर्त्तव्यं तीर्थश्राद्धं विचक्षणैः ॥ २८ ॥ पिण्डासनं पिण्डदानं पुनः प्रत्यवनेजनम् ॥ दक्षिणा चान्नसङ्कल्पं
तीर्थश्राद्धेष्वयं विधिः ॥ २९ ॥ अस्मत्कुले मृता ये च गतिर्येषां न विद्यते ॥ आवाहयिष्ये तान्सर्वान्दर्भपृष्ठे तिलोदकैः ॥ ३० ॥
बन्धुवर्गकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते ॥ आवाहयिष्ये तान्सर्वान् दर्भपृष्ठे तिलोदकैः ॥ ३१ ॥ इत्येतैर्मन्त्रैः सजलैस्तिलैर्दर्भेषु ध्यानवान् ॥
आवाह्याभ्यर्च्य तेभ्यश्च पिण्डान्दद्याद्यथाक्रमम् ॥ ३२ ॥ अस्मत्कुले मृता ये च गतिर्येषां न विद्यते ॥ तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्य
हम् ॥ ३३ ॥ मातामहकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते ॥ तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ३४ ॥ बन्धुवर्गकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते ॥
तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ३५ ॥ अजातदन्ता ये केचिद्ये च गर्भे प्रपीडिताः ॥ तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ३६ ॥
अग्निदग्धाश्च ये केचिन्नाग्निदग्धास्तथा परे ॥ विद्युच्चोरहता ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ३७ ॥ दावदाहे मृता ये च सिंहव्याघ्रहताश्च ये ॥
दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभिर्वापि तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ३८ ॥ उद्बन्धनमृता ये च विषशस्त्रहताश्च ये ॥ आत्मापघातिनो ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्
॥ ३९ ॥ अरण्ये वर्त्मनि वने क्षुधया तृषया हताः ॥ भूतप्रेतपिशाचाद्यैस्तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ४० ॥ रौरवे चान्धतामिस्रे कालसूत्रे च ये
गताः ॥ तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ४१ ॥ असिपत्रवने घोरे कुम्भीपाकेषु ये गताः ॥ तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ४२ ॥

उवाच ॥ ॥ आदौ तु पञ्चतीर्थेषु चोत्तरे मानसे विधिः ॥ आचम्य कुशहस्तेन शिरश्चाभ्युक्ष्य वारिणा ॥ १ ॥ उत्तरं मानसं गच्छेन्मन्त्रेण स्नानमाचरेत् ॥ उत्तरे मानसे स्नानं करोम्यात्मविशुद्धये ॥ २ ॥ सूर्य्यलोकादिसंसिद्धिसिद्धये पितृमुक्तये ॥ देवादींस्तर्पयित्वाथ श्राद्धं कुर्यात्सपिण्डकम् ॥ ३ ॥ मानसं हि सरो ह्यत्र तस्मादुत्तरमानसम् ॥ सूर्यं नत्वार्चयित्वाथ सूर्य्यलोकं नयेत्पितॄन् ॥ ४ ॥ नमो भगवते भर्त्रे सोमभौमज्ञरूपिणे ॥ जीवभार्गवसौरेयराहुकेतुस्वरूपिणे ॥ ५ ॥ उत्तरान्मानसान्मौनी व्रजेद्दक्षिणमानसम् ॥ उदीचीतीर्थमित्युक्तं तत्रोदीच्यं विमुक्तिदम् ॥ अत्र स्नातो दिवं याति स्वशरीरेण मानवः ॥ ६ ॥ मध्ये कनखलं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ स्नातः कनकवद्भाति नरो याति पवित्रताम् ॥ ७ ॥ तस्य दक्षिणभागे च तीर्थं दक्षिणमानसम् ॥ अतः कनखलं लोके ख्यातं तीर्थमनुत्तमम् ॥८॥ दक्षिणे मानसे चैव तीर्थत्रयमुदाहृतम् ॥ स्नात्वा तेषु विधानेन कुर्य्याच्छ्राद्धं पृथक्पृथक् ॥ ९ ॥ दक्षिणे मानसे स्नानं करोम्यात्मविशुद्धये ॥ सूर्य्यलोकादिसंसिद्धिसिद्धये पितृमुक्तये ॥ १० ॥ ब्रह्महत्यादिपापौघयातनाया विमुक्तये ॥ दिवाकर करोमीह स्नानं दक्षिणमानसे ॥ ११ ॥ नमामि सूर्य्यं तृप्त्यर्थं पितॄणां तारणाय च ॥ पुत्रपौत्रधनैश्वर्य्यायुरारोग्यवृद्धये ॥ १२ ॥ अनेन स्नानपूजादि कृत्वा श्राद्धं सपिण्डकम् ॥ कृत्वा नत्वा च मौन्यर्कमिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ १३ ॥ फल्गुतीर्थं व्रजेत्तस्मात्सर्व्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ मुक्तिर्भवति कर्त्तॄणां पितॄणां श्राद्धतः सदा ॥ १४ ॥ ब्रह्मणा प्रार्थितो विष्णुः फल्गुको ह्यभवत्पुरा ॥ दक्षिणाग्नौ हुतं तत्र तद्रजः फल्गुतीर्थकम् ॥ १५ ॥ तस्मिन्फलति फल्वा गौः कामधेनुर्जलं मही ॥ दृष्टेरन्तर्गतं यस्मात्फल्गुतीर्थं न निष्फलम् ॥ १६ ॥ तीर्थानि यानि सर्व्वाणि भुवनेष्वखिलेष्वपि ॥ तानि स्नातुं समायान्ति फल्गुतीर्थं सुरैः सह ॥ १७ ॥ गङ्गा पादोदकं विष्णोः फल्गुर्ह्यादिगदाधरः ॥ स्वयं हि द्रवरूपेण तस्माद्गङ्गाधिकं विदुः ॥ १८ ॥ अश्वमेधसहस्राणां सहस्रं यः समाचरेत् ॥ नासौ तत्फलमाप्नोति फल्गुतीर्थे यदाप्नुयात् ॥ १९ ॥ फल्गुतीर्थे विष्णुजले करोमि स्नानमादृतः ॥ पितॄणां विष्णुलोकाय भुक्तिमुक्तिप्रसिद्धये ॥ २० ॥ फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा तर्पणं श्राद्धमाचरेत् ॥ सपिण्डकं स्वसूत्रोक्तं नमेदथ पितामहम् ॥ २१ ॥ नमः शिवाय देवाय ईशाय पुरुषाय वै ॥ अघोरवामदेवाय सद्योजाताय शम्भवे ॥ २२ ॥ फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् ॥ आत्मानं तारयेत्सद्यो दश पूर्वान्दशापरान् ॥ २३ ॥ नत्वा गदाधरं देवं मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥ ओं नमो वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च ॥ २४ ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय श्रीधराय च विष्णवे ॥ पञ्चतीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ॥ २५ ॥ अमृतैः पञ्चभिः स्नानं पुष्पवस्त्राद्यलङ्कृतम् ॥ न कुर्य्याद्यो गदापाणेस्तस्य श्राद्धमसार्थकम् ॥ २६ ॥ नागकूटाद्गृध्रकूटाद्युपादुत्तरमानसात् ॥

देशे देशे सुपूजिताः ॥ २ ॥ नैव पूर्व्वे केऽप्यकुर्व्वन्न करिष्यन्ति चापरे ॥ सिकता वा यथा लोके यथा च दिवि तारकाः ॥ ३ ॥ तथा बहुसुवर्णो
घैरसङ्ख्यातास्तु दक्षिणाः ॥ नैवेह पूर्वे ये केचिन्न करिष्यन्ति चापरे ॥ ४ ॥ प्रशंसन्ति द्विजास्तृप्ता देशे देशे सुपूजिताः ॥ गयं विष्ण्वादयस्तुष्टा
वरं ब्रूहीति चाब्रुवन् ॥ ५ ॥ गयस्तान्प्रार्थयामास ह्यभिशप्ताश्च ये पुरा ॥ ब्रह्मणा ते द्विजाः पूता भवन्तु क्रतुपूजिताः ॥ ६ ॥ गयाश्राद्धविधानाय
द्विजा मूर्त्ताश्चतुर्दश ॥ तेषां वाक्यं प्रकुर्व्वीत यदि ब्रह्मा स्वयं भवेत् ॥ ७ ॥ गौतमं काश्यपं कौत्सं कौशिकं कण्वमेव च ॥ भारद्वाजं ह्यौशनसं वात्स्यं
पाराशरं तथा ॥ ८ ॥ हरित्कुमारमाण्डव्यं लोकाक्षिं लोकसंमहत् ॥ वासिष्ठञ्च तथात्रेयं गोत्राण्येषां चतुर्दश ॥ ९ ॥ गयापुरीति मन्नाम्ना ख्याता ब्रह्म
पुरी यथा ॥ एवमस्तु वरं दत्त्वा तथा चान्तर्दधुः सुराः ॥ १० ॥ गयश्च भोगान्सम्भुज्य विष्णुलोकं परं ययौ ॥ विशालायां विशालोऽभूद्राजाऽपुत्रोऽ
ब्रवीद्द्विजान् ॥ ११ ॥ कथं पुत्रादयो मे स्युर्विशालं चाब्रुवन्द्विजाः ॥ गयायां पिण्डदानेन तव सर्व्वं भविष्यति ॥ १२ ॥ विशालोऽपि गयाशीर्षे पिण्ड
दः पुत्रवानभूत् ॥ दृष्ट्वाकाशे सितं रक्तं कृष्णं पुरुषमब्रवीत् ॥ १३ ॥ के यूयं तेषु चैवैकः सितः प्रोचे विशालकम् ॥ अहं सितस्ते जनक इन्द्रलोका
दिहागतः ॥ १४ ॥ मम पुत्र पिता रक्तो ब्रह्महा पापकृत्तमः ॥ अयं पितामहः कृष्ण ऋषयो येन घातिताः ॥ १५ ॥ अवीचिनरकं प्राप्तौ मुक्तौ त्व
त्पिण्डदानतः॥पितॄन्पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान्॥१६॥प्रीणयामीति यत्तोयं त्वया दत्तमरिन्दम ॥ तेनास्मद्युगपद्योगो जातो वाक्येन सत्तम॥१७॥
मुक्तिः[1] कृता त्वया पुत्र व्रजामः स्वर्गमुत्तमम्॥एवं पुत्रैः पितॄणां च कर्तव्या मुक्तिरुत्तमा॥१८॥त्वञ्च राज्यं चिरं कृत्वा भुक्त्वा भोगांश्च दुर्लभान्॥यज्ञान्सद
क्षिणान्कृत्वा यायाद्विष्णुपुरं ततः॥१९॥ एवं लब्धवरो राजा राज्यं कृत्वा दिवं गतः ॥ प्रेतराजः सह प्रेतैर्गयाश्राद्धाद्दिवं गतः॥२०॥प्रेतः कश्चिद्विमुक्त्यर्थं
वणिजं कञ्चिदब्रवीत् ॥ मम नाम्ना गयाशीर्षे पिण्डनिर्व्वापणं कुरु ॥ २१ ॥ प्रेतभावविमुक्त्यर्थं त्वं गृहाण धनं मम ॥ तद्धनं सर्व्वमादाय गयाश्राद्धव्ययं
कुरु ॥२२॥षोडशपञ्चभागांश्च तुभ्यं वै दत्तवानहम् ॥ स्वनामानि यथान्यायं सम्यगाख्यातवानहम् ॥२३॥ गत्वा गयां गयाशीर्षे प्रेतराजाय पिण्डकम्॥
समदाद्बन्धुभिः सार्द्धं स्वपितृभ्यस्ततो ददौ ॥ २४ ॥ प्रेतः प्रेतत्वनिर्मुक्तो वणिक् स्वगृहमागतः ॥ एवं गयस्य शम्भोश्च क्षेत्रं विष्णोः रवेस्तथा ॥ २५ ॥
उपोषितोऽथ गायत्रीतीर्थे महानदीस्थिते ॥ गायत्र्याः पुरतः स्नात्वा प्रातःसन्ध्यामुपासयेत् ॥ २६ ॥ श्राद्धं सपिण्डकं कृत्वा नयेद्ब्रह्मण्यतां कुलम् ॥
तीर्थे समुदिते स्नात्वा सावित्र्याः पुरतो नरः ॥ २७ ॥ सन्ध्यामुपास्य मध्याह्ने नयेत्कुलशतन्दिवम् ॥ पिण्डदानं ततः कुर्य्यात्पितॄणां मुक्तिकाम्य 

१–मुक्तीकृतास्त्वया सर्व्वे व्रजामः स्वर्गमक्षयम् ॥ सुपुत्रेण त्वया सर्व्वे ब्रह्मलोकं व्रजामहे ॥ ११ ॥ पुत्रपौत्रादिसंयुक्तो राज्यं कृत्वा दिवं व्रजन् ॥ तत्र भोगैः सुतृप्तस्त्वं ततो मोक्षम
वाप्स्यसि ॥ १२ ॥ इ० पा० ।

पुत्रक ॥ स्वर्गं व्रज शरीरेण भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ५७ ॥ दृष्टिमात्रेण सम्पूतान्नरकस्थान्दिवं नय ॥ इत्युक्त्वा प्रययौ पाण्डुः शाश्वतं पदमव्ययम् ॥ ५८ ॥ उद्भिज्जाः स्वेदजा वापि ह्यण्डजा ये जरायुजाः ॥ मधुस्रवां समासाद्य मृताः स्वर्गपुरं ययुः ॥ ५९ ॥ दशाश्वमेधिके हंसतीर्थे श्राद्धाद्दिवं व्रजेत् ॥ दशाश्वमेधहंसौ च नत्वा शिवपुरं व्रजेत् ॥ ६० ॥ भरतस्याश्रमे श्राद्धान्नयेद्ब्रह्मालयं पितॄन् ॥ मतङ्गस्य पदे श्राद्धी ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ॥ ६१ ॥ निर्मथ्याग्निं शमीगर्भे विधिर्विष्ण्वादिभिः सह ॥ लेभे तीर्थन्तु यज्ञार्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ६२ ॥ मखसंज्ञन्तु तत्तीर्थं पितॄणां मुक्तिदायकम् ॥ स्नात्वा च तर्पणं कृत्वा पिण्डदो मुक्तिमाप्नुयात् ॥ ६३ ॥ पितॄन्स्वर्गं नयेन्नत्वा सङ्गमेऽङ्गारकेश्वरौ ॥ गयाकूटे पिण्डदानादश्वमेधफलं लभेत् ॥ ६४ ॥ भस्मकूटे भस्मनाथं नत्वा च तारयेत्पितॄन् ॥ त्यक्तपापो भवेन्मुक्तः सङ्गमे स्नानमाचरेत् ॥ ६५ ॥ इष्टिं चक्रेऽश्वमेधाख्यं वसिष्ठो मुनिसत्तमः ॥ इष्टितो निर्गतः शम्भुर्वरं वृणु वसिष्ठकम् ॥ ६६ ॥ प्राहेति तं वसिष्ठोऽपि शिव तुष्टोऽसि मे यदि ॥ वस्तव्यं चात्र देवेश तथेत्युक्त्वा शिवः स्थितः ॥ ६७ ॥ पिण्डदो धेनुकारण्ये कामधेनुपदेषु च ॥ स्नात्वा नत्वाथ सम्पूज्य ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ॥ ६८ ॥ कर्दमाले गयानाभौ मुण्डपृष्ठसमीपतः ॥ स्नात्वा श्राद्धादिकं कृत्वा पितॄणामनृणो भवेत् ॥ ६९ ॥ फल्गुचण्डीश्मशानाक्षीमङ्गलाद्याः समर्चयेत् ॥ गयायाञ्च वृषोत्सर्गान्निःसप्तकुलमुद्धरेत् ॥ ७० ॥ यत्र तत्र स्थिता देवा ऋषयोऽपि जितेन्द्रियाः ॥ आद्यं गदाधरं ध्यायञ्छ्राद्धपिण्डादिदानतः ॥ ७१ ॥ कुलानां शतमुद्धृत्य ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ॥ गया गयो गया दित्यो गायत्री च गदाधरः ॥ ७२ ॥ गया गयासुरश्चैव षड्गया मुक्तिदायकाः ॥ गयाख्यानमिदं पुण्यं यः पठेत्सततं नरः ॥ ७३ ॥ शृणुयाच्छ्रद्धया यस्तु स याति परमां गतिम् ॥ पाठयेद्वा गयाख्यानं विप्रेभ्यः पुण्यकृन्नरः ॥ ७४ ॥ गयाश्राद्धं कृतं तेन कृतं तेन सुनिश्चितम् ॥ गयाया महिमानञ्च ह्यभ्यसेद्यः समाहितः ॥ ७५ ॥ तेनेष्टं राजसूयेन अश्वमेधेन नारद ॥ लिखेद्वा लेखयेद्वापि पूजयेद्वापि पुस्तकम् ॥ ७६ ॥ तस्य गेहे स्थिरा लक्ष्मीः सुप्रसन्ना भविष्यति ॥ उपाख्यानमिदं पुण्यं गृहे तिष्ठति पुस्तकम् ॥ ७७ ॥ सर्पाग्निचौरजनितं भयं तत्र न विद्यते ॥ श्राद्धकाले पठेद्यस्तु गयामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ७८ ॥ विधिहीनन्तु तत्सर्वं पितॄणान्तु गयासमम् ॥ यानि तीर्थानि त्रैलोक्ये तानि दृष्टानि तत्र वै ॥ येन ज्ञातं गयाख्यानं श्रुतं वा पठितं मुने ॥ ७९ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ ॥ सनत्कुमारो मुनिपुङ्गवाय पुण्यां कथाञ्चाथ निवेद्य भक्त्या ॥ स्वमाश्रमं पुण्यवनैरुपेतं विसृज्य संगीतगुरुं जगाम ॥ ८० ॥ इति श्रीमहापुराणे वायुप्रोक्ते गयामाहात्म्यं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ समाप्तमिदं वायुपुराणम् ॥ ७ ॥



इदं पुस्तकं मुम्बय्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन खेमराजेन स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम्.
शकाब्दाः १८१७, संवदब्दाः १९५२, सन्संज्ञकाब्दाः १८९५.

| नाम. | की. रु. आ. |
|---|---|
| श्रीमद्भागवताद्यपद्यव्याख्याशतक ( जन्माद्यस्य श्लोकके सौ अर्थ ) | २-० |
| भागवतलीलाकल्पद्रुम ( श्रीमद्भागवतकेसब चरित्र जन्माद्यस्य इस श्लोकमें ) | १-८ |
| अध्यात्मरामायण भाषाटीकासहित | ४-० |
| ब्रह्मोत्तरखंड | ०-१२ |
| कालिकापुराण ( शाक्तजनोंको अवश्य ग्राह्य ) | ४-० |
| रामाश्वमेध अक्षर बडा मोटा कागज | २-० |
| रामाश्वमेध भा० टी० सहित मोटेकागजकी | ४-० |
| जैमिनीयअश्वमेध मोटेअक्षरकी | २-० |
| वेंकटेशइतिहासमाला(इसमें शेषाचल वेंकटेशमाहात्म्य है) | १-८ |
| श्रीवाल्मीकीयरामायण सुंदरकांड मूल बडाअक्षर | २-० |
| भागवतशंकानिवारणमंजरी भाषाटीकासह | २-० |
| कार्त्तिकमाहात्म्य बडा पद्मपुराणका | ०-१० |
| कार्त्तिकमाहात्म्य भाषाटीका सह | ०-१२ |

| नाम. | की. रु. आ. |
|---|---|
| चातुर्मास्यमाहात्म्य | ०-८ |
| मार्गशीर्षमाहात्म्य | ०-६ |
| पौषमाहात्म्य | ०-६ |
| माघमाहात्म्य | ०-८ |
| फाल्गुनमाहात्म्य | ०-८ |
| वैशाखमाहात्म्य | ०-१० |
| श्रावणमाहात्म्य | ०-८ |
| भाद्रपदमाहात्म्य | ०-६ |
| पुरुषोत्तममाहात्म्य | ०-१२ |
| वायुपुराण | ५-० |
| मत्स्यपुराण | ५-० |
| अयोध्यामाहात्म्य | ०-१० |
| द्वारकामाहात्म्य | ०-६ |
| मायापुरीमाहात्म्य.( गंगामाहात्म्य ) | ०-१२ |
| प्रयागमाहात्म्य ( मूल ) | ०-८ |